'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 111	मार्गशिर 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द दिसम्बर 1972	संख्या 12

विज्ञान के नित नये चरण

डॉ० हीरा लाल निगम

मनुष्य की "पारस और अमृत" की खोज ही विज्ञान की जननी है, युग युगान्तर से चलती हुई यह खोज अभी भी अधूरी है, उसकी जिज्ञासा कभी भी शान्त न होगी। विज्ञान आज एक विचित्र मोड़ पर आ गया है, अपनी ही देनों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य पदार्थ प्रदूषण, वायु मंडल प्रदूषण, सागर प्रदूषण के भयानक खतरे उपस्थित हो गये हैं, प्रदूषण के कारण विज्ञान के ऊपर मानव की आस्था क्षीणतर होती प्रतीत होती है, किन्तु शीघ्र ही प्रदूषण निराकरण के रहस्य हस्तामलक होंगे, ऐसा विश्वास है। निस्संदेह वैज्ञानिक प्रयोगों से अमरत्व एवं सम्पन्नता साक्षातकार की सम्भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यह सर्वविदित है कि जीवचेतना का संचार डी० एन० ए०, आर० एन० ए० तथा प्रोटीन नामक रसायनिक पदार्थों पर निर्भर है, अभी तक इस संदेह वाहनीलिपि का जनक डी० एन० ए० माना जाता था, किन्तु हाल की खोजों से आर० एन० ए० आश्रित डी० एन० ए० पालीमरेज कई ट्यूमर वाइरसों में पाया जाता है। इस विपरीत लिपि के ज्ञान से जीव सम्बन्धी रहस्यों के उद्घाटन में विशेष सहायता मिलेगी। कैंसर, ल्यूकिमीया जैसे भयावह शत्रुओं पर विजय प्राप्त होगी, ऐसी आशा है। इसी वर्ष हाइड्राक्सी ग्वानीडीन नामक औषधि की ट्यूमर विनाशी शक्ति से कैन्सर अनुसंधान को नई दिशा मिली है, एड्रियामाइसीन नामक औषधि के उपयोग से ल्यूकीमिया के उपचार में बड़ी सफलता मिली है। डी० एन० ए० अणु से छेड़खानी कर जन्मजात 16 हजार रोगों पर भी नियन्त्रण किया जा सकेगा, और स्वस्थ मानव जाति का निर्माण हो सकेगा। अपने को अनेक में बदलने की क्षमता रखने वाले डी० एन० ए० का स्ट्रेड परखनली में बनाना सम्भव हो गया है, डी० एन० ए० वाइरस का ही रूप है, वाइरस सजीव तथा निर्जीव जगत् के बीच की अवस्था है, वैज्ञानिकों की आशा है कि जीवित सेलों की सृष्टि करने में भविष्य में वे सफल होंगे।

परखनली में बच्चे पैदा करने के प्रयास में स्तन पाई जीवधारियों में किये गये प्रयोग "ब्लैस्टोसिस्ट" अवस्था तक सफल हो चुके हैं, यह वह अवस्था है जब कि पिन्ड जननी के टिशू से सम्बन्धित हो जाता है।

इससे बन्ध्यापन, नपुंसकत्व ग्रादि का निराकरण सहज सम्भव हो जायगा। यही नहीं, होने वाली सन्तान के लिंग का पूर्ण निर्धारण भी सम्भव होगा, क्योंकि हाल ही में चूहों के ऊपर ग्लूकोज-6—फासफेट डिहाइड्रोजिनेज (G 6 PD) ग्रौर हिपोक्जेन्थीन ग्वानीन (HGPRT) नामक दो इन्जाइमों की क्रियाशीलता के ग्रध्ययन से बड़े ग्राशाप्रद परिणाम मिले हैं।

वाइरस के किस्म के डी० एन० ए० द्वारा जहाँ एक ग्रोर जीव के ग्रादि सृष्टि के रहस्योध्याटन की ग्राशाप्रद सम्भावना है वहीं दूसरी ग्रौर वाइरस की सहायता से कृषि नाशक जीवों तथा ग्रन्य हानिकारक कीट-पतंगों का नियन्त्रण भी सम्भव हो गया है। कीटों के मारने वाले वाइरसों की संख्या 300 से ऊपर है, विशेषता यह है कि एक प्रकार का वाइरस एक ही जाति के कीटों को मारता है। इन वाइरसों में मरण शक्ति तो है लेकिन पर्यावरण पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। इनका निर्माण भी सस्ता होता है। इस प्रकार ग्रभी तक प्रयुक्त होने वाले डी० डी० टी० ग्रादि ग्रनेक कीट-नाशक रासायनिक यौगिकों के प्रदूषण प्रभाव से बचा जा सकता है, ग्राक्सफर्ड की "नेचुरल एन्वारनमेंट रिसर्च कौंसिल" इन वाइरसों के प्रयोग के ग्रंतराष्ट्रीय मानक निर्धारित करने का प्रयास कर रही है।

रोग नाशक, कीट-पतंग नाशक साधनों व रासायनिक यौगिकों के निर्माण के ग्रलावा शारीरिक ग्रभावों की पूर्ति में भी विज्ञान सफल हुग्रा है, उदाहरणार्थ, जल जाने पर चमड़े के उपचार का कोई संतोषजनक उपचार नहीं था, हाल ही में प्रोपाइलीन ग्लाइकोल से व्युत्पन्न एक नये बहुलक प्लूयरानिक एक-127 का उपयोग कृत्रिम चमड़े के रूप में किया गया है, जिससे शरीर के चर्म में जल की मात्रा का संतुलन भी हो जाता है ग्रौर जले चर्म का दूषण से बचाव भी हो जाता है, घाव ठीक होने पर इस कृत्रिम चमड़े को पानी से धोकर हटाया जा सकता है।

कुछ वर्ष पूर्व किये गये ग्रंग प्रतिरोपण, विशेष रूप से हृदय प्रतिरोपण के चमत्कारों से हम परिचित ही हैं। ग्रनियिमित धड़कन वाले रोगी हृदय को चालू रखने के लिये वर्षों से बैटरी चालित विद्युत पेस मेकर का उपयोग हो रहा है, परन्तु हाल ही में नाभिकीय ऊर्जा से संचालित होने वाले पेस मेकर पेरिस के ब्रुसेस ग्रस्पताल में संसार भर में कुल चार व्यक्तियों को लगाये गये हैं, वे निर्बाध ग्रपना कार्य कर रहे हैं। इन पेस मेकरों में प्लूटोनियम 238 का इस्तेमाल होता है, हानिकर किरणों से बचाव की पूरी व्यवस्था की गई हैं।

रोग निदान के क्षेत्र में भी ज्ञान में बड़ी प्रगति हुई है, उदाहरणार्थ ट्रांस इलुमिनेशन की विधि से जो फाइवर ग्राप्टिक नामक प्रकाश स्रोत के कारण ग्रभी हाल ही में व्यवहारोपयोगी हुई है, दाँतों के ग्रार-पार देखा जा सकता है। दन्त चिकित्सा का यह नया फाइवर ग्राप्टिक उपकरण एक छोटे पेंचकस के ग्राकार का होता है ग्रौर उसके साथ ऐसा प्रतीत होता है जैसे रबड़ के पाइप के सिरे पर बिजली का एक बल्ब लगा हो।

ग्रौषधि के क्षेत्र में वर्तमान दसक की सबसे महान् देन सम्भवतः बीस कार्बन प्रोस्टाग्लैन्डिन है जो सूक्ष्म मात्रा में भी हृदय, स्नायु, प्रजनन, गुर्दा तथा पाचक तंत्रों के सुधार में प्रभावी सिद्ध हुये हैं। कठिनाई यह है कि इनका ग्रत्यंत सूक्ष्म मात्रा में ही बनाना संभव हो पाया है। इस वर्ष के ग्रारम्भ में ही यह पता चला है कि फ्लोरिडा के समुद्री तट में पाया जाने वाला एक मृदु कोरल पी० होमामल्ला इनका प्राकृतिक स्रोत हो सकता है, ऐसी ग्राशा बँध गई है कि स्वास्थ की यह संजीवनी सुगमता से जनसाधारण को उपलब्ध होगी।

जहाँ एक ग्रोर ग्रमरत्व के पथ पर मानव विज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, वहाँ साथ ही सम्पन्नता की दिशा में कुछ क्षेत्रों में ग्राशातीत सफलता मिली है, कुछ मिनटों में विज्ञान की ग्रनेकानेक उपलब्धियों का वर्णन या उनका मूल्यांकन ग्रत्यन्त कठिन है। दिन प्रति दिन के उपयोग में ग्राने वाली नवीनतम उपलब्धियों के कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है। नए ग्रनाजों में "ट्रिटिकेल" जो दुरम गेहूँ तथा राई के शंकस से कैनाडा में बनाया गया है वह पानी के ग्रभाव में सूखता नहीं, पाला से मरता नहीं। शाक-सब्जियों के सम्बन्ध

में और उपयोगी चमत्कार हुये हैं। आलू के ऊपर टमाटर (पोमैटो) पैदा करने की सफलता ने इस विज्ञान को नई दिशा दी है। भूमि के ऊर्वरत्व के लिये नाइट्रोजन की आवश्यकता है, नाइट्रोजन उर्वरकों के रसायनिक निर्माण के लिये अपने देश में भी अनेक कारखाने चालू हो चुके हैं किन्तु कारखानों में उत्पादित नाइट्रोजन की मात्रा धरती की माँग से कहीं कम है। वायुमण्डल में नाइट्रोजन 3/4 भाग है, हाल ही में किये गये खोजों से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का सीधा विग्रहण भी सम्भव हो गया है। टाइटैनियम व रूथोनियम धातु के संकीर्णों द्वारा यह निग्रहण सम्पारित किया जा सकता है।

वस्तु उपलब्धि के क्षेत्र में सबसे अद्भुत चमत्कार "फाइवर ग्लास बीटा" का निर्माण है, रेशम की भाँति मुलायम नेकयई काँच की बनाई जा सकती है, यह अचम्भे की बात है, किन्तु सत्य है। पिछले बीस वर्षों में कपास से हटकर टेक्साइल व्यवसाय कृत्रिम कार्बनिक रेशे नाइलान, डेकाटान आदि के निर्माण में लगा था, इनमें आग लगने का बड़ा भय रहता था, किन्तु निकट भविष्य में आप को अकार्बनिक रेशे से बने वस्त्र पहनने को मिलेंगे, जो अग्नि प्रूफ होंगे और जिनके बनाने का स्रोत बिना मोल की वस्तु यानि बालू है। अन्तरिक्ष उड़ानों में जाने वाले उड़ाकों और समुद्र की तलहटी में उतरने वाले पनडुब्बों को यही वस्त्र पहनाये जाते हैं।

इन्जीनियरिंग कार्यों के लिये जैसे पहले रीनफोर्स्ड कांक्रीट या विशेष इस्पात का प्रयोग होता था, उसी प्रकार अब ग्लास-फाइवर को पालीईस्टर या इपाक्सी थर्मोसेटिंग रेजिन के साथ मिलाकर कार्बन रीनफोर्स्ड प्लास्टिक (CFRP) बनाने से कई समस्यायें हल हो गई हैं। दौड़ प्रतियोगिता में भाग लेने वाली मोटर गाड़ियाँ C F R P को बनाई जा चुकी हैं, आपको स्मरण होगा कि 1969 की लेगैस मोटर गाड़ी दौड़ प्रतियोगिता FRPGT 40 फोर्डकार ने जीती थी। इस माल का दाम अभी 2500 रुपया प्रति किलोग्राम है, किन्तु शीघ्र ही इसका व्यावसायिक निर्माण सस्ते दाम में किया जा सकेगा।

सम्पन्नता एवं अमरत्व की अथक खोज का आधार विज्ञान के अन्तिम सत्य की खोज है। शिकागो विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्रवेत्ताओं को इस वर्ष यूरेनियम तत्व के एक परमाणु का फोटोग्राफ लेने में सफलता मिली है, यह 6 आंग्स्ट्राम वाले उच्च रिजोल्यूशन इलेक्ट्रान माइक्रासकोप द्वारा सम्भव हो सका है। यूँ तो होलोग्राफी और कम्प्यूटर के संयुक्त उपयोग से किसी काल्पनिक वस्तु का भी त्रिविमितीय (थ्री डाइमेंशनल) चित्र लेना सम्भव हो गया है। यह कार्य लेसर की शक्तिशाली किरण पुंजों द्वारा संपादित होता है। "लेसर" द्वारा नाभिकीय संगलन की सम्भावनायें सुगम हो गई हैं। हाइड्रोजन परमाणुओं के संगलन से हीलियम परमाणुओं की सृष्टि में ही सूर्य की उर्जा का रहस्य निहित है करोड़ों डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान देनेवाले हाइड्रोजन बम के निर्माण में इस संगलन के लिये आवश्यक महान उर्जा स्रोत के रूप में अभी तक स्वास्थ्य के लिये महान घातक रेडियमधर्मी तत्वों का उपयोग करना पड़ता था। इसी प्रकार अन्तरिक्ष से आने वाले महान उर्जा किरणों का स्रोत "कासर" के ज्ञान से नक्षत्र विज्ञान में एक क्रान्ति आ गई है। कुछ ही महीने पूर्व "टेक्साज" विश्वविद्यालय में पाँच अमरीकी वैज्ञानिकों ने जुपिटर (बृहस्पति) नक्षत्र में भारी हाइड्रोजन (ड्यूटीरियम) की विद्यमानता का पता लगाया है, नक्षत्रों में ड्यूटोरियम विद्यमानता का यह प्रथम पर्यवेक्षण है। चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध आदि ग्रहों की ऊँचाइयों तक उड़ने तथा समुद्र की तलहटी तक उतरने के प्रयास अधिकाधिक सफलीभूत हो रहे हैं। विज्ञान की सफलता में प्रदूषण तथा सृष्टि विनाशी विध्वंसक युद्ध की विभीषिकायें भी छिपी हैं किन्तु वैज्ञानिक इस सम्बंध में पूर्ण सजग हैं, शीघ्र ही यह प्रयास होगा कि शीर्षस्थ नेताओं द्वारा परमाणुविक युद्ध सम्बंधी निर्णय लेने की सम्भावनाओं को रोकने के लिये ऐसे रसायनों की खोज की जाय, जिससे उनकी मनोवृत्तियों को नियंत्रित किया जा सके। (आकाशवाणी, इलाहाबाद के सौजन्य से)

डा० हीरालाल निगम
रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

मूलभूत-कण भौतिकी

डॉ० रमेशचन्द्र पाण्डेय

वह कौन सी वस्तु है, आधारभूत वस्तु, जिसके आधार पर सम्पूर्ण विश्व का ब्रह्मांड का तथा तारक मण्डल का गठन हुआ है ? यह एक पुरातन प्रश्न है और सदियों से इस अनन्त सत्य की खोज में मनुष्य अपने आप को चिन्तनरत रखता रहा है भारतवर्ष में चिन्तन के आधार पर ऋषियों ने इसी सत्य की आराधना की है। भारतीय परंपरा एवं संस्कृति की छाप इस चिंतन पर इस भाँति पड़ी है कि उस मूलभूत वस्तु को जीव का रूप दे दिया गया तथा प्रकृति की अगणित क्रियाओं तथा उनकी उत्पत्ति का उत्तरदायित्व देव विशेषों को दे दिया गया। विशेषरूप से इस अनुसंधान में ही जीवों की विचारशक्ति का, उन विचारों की अन्तर्क्रियाओं का तथा क्रियाओं के परिणामस्वरूप साधारण जन-जीवन की रूपरेखा का व्यापक विश्लेषण हो पाया है। आधुनिक विज्ञान में मूलभूत वस्तुओं को निर्जीव रूप देकर उनकी अन्तर्क्रियाओं को नियमबद्ध करने की परंपरा है। इस परंपरा के अनुसार इन नियमों का चुनाव कुछ इस प्रकार हो जाता है कि वे पूर्वपरिचित सामान्यज्ञान से परे हो जाते हैं। इसी कारण इसे विशिष्ट ज्ञान अथवा विज्ञान कहते हैं। आधारभूत वस्तु की खोज करते-करते मनुष्य सूक्ष्मकणों तक पहुँच गया है और यही विज्ञान आज मूलभूत-कण भौतिकी के नाम से जाना जाता है।

ये मूलभूत-कण क्या हैं ? जो कोई वस्तु इतनी सूक्ष्म हो कि इसका पुनर्विघटन कठिन हो जाय, वही मूलभूत-कण हैं। यदि अनुसंधान की शृंखला में इसका पुनर्विघटन संभव हो जाय तो इसे हम पदार्थ कहने लग जाते हैं और नये तत्व को मूलभूत-कण की उपाधि प्रदान की जाती है। मौलिकता की बढ़ती शृंखला में परमाणु; अणु; न्यूक्लियस व इलेक्ट्रान; बेरियान; वोसॉन व लेप्टान; तथा कणिकाएँ हैं।

अभीतक बेरियॉन, बोसॉन और लेप्टॉन ही सबसे आधारभूत कणों के रूप में वैज्ञानिकों को ज्ञात हैं। बड़ी प्रतीक्षा के बाद कणिकाओं को मात्र एकबार आकाशमुखी प्रयोगशाला में देखा जा सका है। सम-कालीन मूलभूत-कण भौतिकी वेत्ताओं का विषय 76 बेरियॉन, 57 बोसॉन और 3 लेप्टॉन ही हैं। इन तीनों समूहों में अधिक मात्रा वाले कण कम मात्रा वाले कणों में अपने आप विघटित होते रहते हैं। बेरियॉन समूह के सदस्य अगर स्वतंत्र छोड़ दिए जाँय तो स्वतः न्यूट्रॉन और प्रोटॉन में विघटित हो जाते हैं। बोसॉन समूह के सदस्य पयॉन, सिग्मा और इटा में और फिर इलेक्ट्रॉन तथा फोटॉन में परिवर्तित हो जाते हैं। लेप्टॉन समूह का विघटन इलेक्ट्रॉन में हो जाता है। अतः इन तीनों समूहों का गठन किसी अन्य मूलमूत तत्व द्वारा संभव हो सकता है। इसी प्रकार अणुओं के गठन की खोज उनके विघटन के फलस्वरूप की गई थी; परन्तु वैसे विघटन की संभावना इन तीनों समूहों में दृष्टिगत नहीं होती। अतः वेत्ताओं ने अपना ध्यान कणों व उनके गुणों की समरूपता की ओर आकर्षित किया।

गुणों की समरूपता की खोज के दौरान कई ऊर्जा संख्याओं का अनुसंधान हुआ जिनके आधार पर कणों को कई विभागों में बाँटा गया। इन संख्याओं को हम एक-एक अक्षर से सम्बोधित करते हैं और इनका मूल्य कोई संख्या होती है। ये संख्याएँ ही कणों की समरूपता निर्धारित करती हैं :—

	बेरियॉन	बोसॉन	हैड्रॉन	लेप्टॉन
बेरियान संख्या (B)	1	0	0,1	0
विचित्रता (S)	0, −1, −2, −3	0, −1	0, −1, −2, −3	0
हाइपरॉन संख्या (Y) $Y = B + S$	1, 0, −1, −2	0, −1	1, 0, −1, −2, −3	0
घूर्ण व अंतरंगघूर्ण (J)	$\frac{1}{2}, \frac{3}{2}, \frac{5}{2}, \frac{7}{2} \cdots$	$0,1,2,3,4\cdots$	$0,1,2,3,4\cdots$ $\frac{1}{2}, \frac{3}{2}, \frac{5}{2}, \frac{7}{2} \cdots$	$\frac{1}{2}$
जुड़ाव (P)	±	±	±	±
अंतर्हित घूर्ण (I; I_1, I_2, I_3)	$0, \frac{1}{2}, 1\cdots$	$0, \frac{1}{2}, 1\cdots$	$0, \frac{1}{2}, 1\cdots$	$0, \frac{1}{2}\cdots$
अंतर्हित जुड़ाव (G)	±	±	±	0, ±

किसी कण का आवेश (Q) हम इन संख्याओं के आधार पर इस प्रकार लिख सकते हैं :—

$$Q = I_3 + \frac{B+S}{2}$$

इन अंकगणितीय समरूपताओं के अतिरिक्त बीजगणितीय समरूपताओं की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है और तीन मूलभूत कणिकाओं के आधार पर कण शृंखलाओं को सुसज्जित किया गया है। इस गणितीय साज सज्जा में बेरियॉन और बोसॉन समूहों को भी लपेट लिया जाता है।

इन विभाजनों के अतिरिक्त कणों को उनकी अन्तक्रियाओं के आधार पर भी विभाजित किया गया है। जोरदार, कमजोर, इलेक्ट्रोमैगनेटिक और ग्रेभिटेशनल-चार प्रकार की अन्तर्क्रियाएँ मुख्य रूप से ज्ञात हैं। इनके अतिरिक्त एक 'अत्यन्त कमजोर' अन्तर्क्रिया का प्रस्ताव भी है। इस प्रकार कणों की अन्तर्क्रियाओं तथा उनकी ऊर्जा संख्याओं में भी एक दूसरे पर निर्भरता दिखाई गई है। संभव है, शीघ्र ही कोई अद्भुत आविष्कार हो जिससे इन सब उलझे विचारों का कोई सीधा समाधान निकल आये। यह एक चुनौती है जो मनुष्य की जिज्ञासा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। इसका पूर्ण अनुसंधान और इसकी उपयोगिता का गठन ही हमारा क्षेत्र है।

डा० रमेशचन्द्र पाण्डेय,
भौतिकी विभाग
इलाहाबाद,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

जब हम काई खायेंगे

श्री तारा चन्द शर्मा

विज्ञान जहाँ आज चन्द्र तथा मंगल ग्रहों पर पहुँच रहा है, वहाँ दूसरी ओर वह समुद्र तलों को भी अछूता नहीं छोड़ रहा। विज्ञान के इस विजय अभियान को देखते हुए लगता है कि मानो मानव आज पृथ्वी से ऊब सा गया है।

समुद्र के अन्तराल का शोधकार्य अब बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। समुद्र अन्तराल के शोधकर्त्ताओं ने पता लगाया है कि समुद्र में अपार सम्पदायें भरी पड़ी हैं। उनके शोधकार्य के अनुसार जितना सोना, चाँदी, रत्नराशि, धातुयें, तथा रसायन पृथ्वी पर दिखाई पड़ती हैं, उससे कहीं सैकड़ों गुनी अधिक खनिज राशि समुद्र तल में दबी पड़ी हैं। आज अकेले प्रशान्त महासागर में ही 10 अरब टन सोना, 50 करोड़ चाँदी, 20 अरब टन यूरेनियम और अरबों टन मैगनीज भरा पड़ा है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि प्रति वर्ष इन सम्पदाओं के भण्डार में करोड़ों टन की वृद्धि होती रहती है। यह आंकड़ा तो केवल एक ही समुद्र का है। यदि दूसरे अन्य समुद्रों के आंकड़ों पर भी ध्यान दिया जाय तो शायद इस महान् सत्य पर किसी को भी विश्वास ही न हो।

समुद्र तल में यह सम्पदा अवश्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो आज समुद्र तल से पेट्रोलियम निकालने में कुछ देश कभी सफल नहीं होते। आज पृथ्वी पर पेट्रोलियम का 40 प्रतिशत भाग समुद्र के गर्भ में है। इसके अतिरिक्त लगभग 40 प्रकार के अन्य उपयोगी खनिजों एवं रसायनों का भी पता लगाया गया है।

खैर! यह बात केवल खनिज पदार्थों तक ही सीमित रह जाती तो कोई बात थी। परन्तु आज की बढ़ती हुई जन संख्या को भोजन सामग्री जुटाने की समस्या का समाधान भी इसी समुद्र से ही निकालने का प्रयास किया जा रहा है। पता नहीं लॉक्डीह एयर क्राफ्ट कारपोरेशन के अध्यक्ष श्री ए० कार्ल कोशियन के कथन की सार्थकता कब सिद्ध होगी। उन्होंने कहा है कि—अगले ही कुछ वर्षों में जब यह धरती मनुष्य की आवश्यकता पूर्ण करने में असमर्थ हो जायेगी, तब मनुष्य को जीवित रहने के लिये समुद्र का आश्रय लेने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं रह जायेगा।

समुद्र से लेकर छोटे-छोटे पोखर, नालों आदि में तरह-तरह की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें से कुछ का तो प्रयोग हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही औषध के रूप में किया जाता रहा है। बहुत पहले से ही उड़ीसा तथा अन्य प्रदेशों की आदिवासी जातियाँ जल में उत्पन्न होने वाली इन वनस्पतियों का प्रयोग साग भाजी के रूप में करती आ रही हैं। हम भले ही आज तक दरिद्रता एवं अभाव को ही इसका कारण माने, परन्तु वास्तव में वे इन वनस्पतियों को खाकर अच्छे स्वास्थ्य की धनी रही हैं। आज वैसे भी वे सभ्य वर्ग से रोगों की भी कम ही शिकार होती हैं।

हम इस बात को चाहे जिस भी रूप में स्वीकार करें, परन्तु यदि आज विज्ञान उन घृणित वनस्पतियों को ही स्वास्थ्य का उत्तम स्रोत माने तो अनायास ही उन अशिक्षित जातियों की दूरदर्शिता के आगे दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

जल में कई तरह की वनस्पतियाँ होती हैं। उसमें से "काई" को प्रायः हम जानते हैं। हमने जिस किस्म

की काई देखी है, वही उसकी सिमित सीमा नहीं है। यह काई तरह-तरह की होती है। अन्य समुद्री वनस्पतियों की तरह इस काई के प्रकार एवं वंश का भी एक व्यापक क्षेत्र है। आमतौर से काई को जलचरों का ही आहार समझा जाता है। परन्तु आज स्थिति बदल गई है। जहाँ पहले मनुष्य ने जल से केवल मछलियों तथा अन्य जन्तुओं को ही अपना आहार बनाया था, वहाँ आज उसे इस काई में भी कुछ नजर आ रहा है। लगता है, बहुत ही निकट भविष्य में यह काई सारे विश्व भर की प्रसिद्ध भोजन सामग्री बन जायेगी।

इस काई वंश में एक विशेष प्रकार की काई, जिसे मनुष्य के खाने के लिये सबसे उपयुक्त समझा जा रहा है, उसका नाम है—क्लोरेला। यह क्लोरेला नाम की काई एक बहुत ही छोटे प्रकार की काई है।

शोधकार्य द्वारा क्लोरेला के तत्वों का विश्लेषण किया गया है। उसके अनुसार इसमें—प्रोटीन 50 प्रतिशत तथा चिकनाई 7 प्रतिशत की मात्रा में होती है। इससे विटामिन की मात्रा एक पके हुए निम्बू की तुलना में होती है। इस किस्म की काई में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा भी प्रयाप्त रूप में पाई गई है।

इस उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह काई केवल मनुष्यों के लिये ही नहीं बल्कि अन्य थलचरों के लिये भी उपयुक्त खुराक है। इस तरह यह जहाँ एक ओर हमारा भोजन होगा वहाँ दूसरी ओर यह हमारे पालतू पशुओं के लिये उत्तम चारा भी सिद्ध होगी।

इस काई की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आज संसार के कुछ प्रसिद्ध देशों ने इसकी खेती करनी भी आरम्भ कर दी है। उन देशों में मुख्य हैं—अमेरिका, जापान, हालैण्ड, जर्मनी तथा इसराइल।

इस तरह कुछ ही आने वाले वर्षों में इस काई की खेती बहुत प्रचुर मात्रा में होने लगेगी। क्योंकि यह कृषि बहुत सरल और कम खर्च भी है। एक किसान बड़ी आसानी से बिना किसी की मदद के अकेला ही 100 एकड़ इस कृषि की देख भाल तथा कटाई, बुवाई कर सकता है। साल में एक एकड़ में लगभग 40 टन फसल काटी जा सकती है। इस फसल की वृद्धि भी कम आश्चर्य जनक नहीं है। प्रति 12 घण्टों में इसका वजन चौगुना हो जाता है।

अब कुछ अन्य नये प्रयोग किये जा रहे हैं। जिनसे कुछ विशेष प्रकार की खादों के मिश्रण से इसे और अधिक उपयोगी तथा गुणकारी बनाया जा सकेगा।

वनस्पति शास्त्री डॉ॰ सिडनी ग्रीन फील्ड के अनुसार यह क्लोरेला, अन्तरिक्ष यात्रियों के लिये भी एक आदर्श खुराक के रूप में काम में लायी जा सकती है; क्योंकि यह यान में रखे पानी के टेंकों में रोज आसानी से उगाई जा सकती है। अन्य खाद्यों की अपेक्षा यह अधिक सुरक्षित भी रहती है।

इस तरह से यदि इसकी उपयोगिता बढ़ती गई तो मनुष्य चाहे चन्द्रलोक में हो या पृथ्वी पर, एक न एक दिन यह काई ही उसका श्रेष्ठ उपयोगी भोजन होगा।

श्री ताराचन्द शर्मा
बुरला, सम्बलपुर
(उड़ीसा)

"आइन्स्टाईन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त"

श्री आश बिन्दु सिंह

प्रत्येक वस्तु पृथ्वी पर ही क्यों गिरती है ? सौर-मण्डल के ग्रह उपग्रह एक दूसरे से किस प्रकार बँधे हुए हैं ? इन प्रश्नों की व्याख्या करने के लिए न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार दो पिन्डों के बीच लगने वाला बल उनकी संहतियों के गुणनफल के समानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग के विलोमानुपाती होती है। इसके आधार पर न्यूटन ने उस समय उपलब्ध अनेकों घटनाओं की सफलतापूर्वक व्याख्या की इस सिद्धान्त को सम्पूर्ण भौतिकी में अनुभव का पूर्ण साधारणीयकरण माना गया। उस समय तक इसके प्रमाण में अनेकों फल प्राप्त थे। परन्तु स्थिरता एवं ठहराव का नाम विज्ञान नहीं है। विज्ञान सदैव जिज्ञासा पथ का पथिक रहा है। विकास के संक्रमण काल में कुछ ऐसे तथ्यों का उद्घाटन हुआ जो न्यूटन के नियम की सहायता से नहीं समझाए जा सकते थे। यहाँ पर हम कुछ ऐसे ही तथ्यों का उल्लेख करेंगे। सर्वप्रथम हम सूर्य से सबसे निकट ग्रह बुध के गति के बारे में प्राप्त परिणामों का उल्लेख करेंगे। प्रत्येक ग्रह सूर्य के चारों तरफ दीर्घ तृतीय कक्षाओं में परिभ्रमण करते हैं। ग्रहों के गति की गणितीय व्याख्या करने पर ज्ञात होता है कि ग्रहों की दिशा में सूर्य के ओर ग्रह के निकटतम बिन्दु में स्थानान्तरण होना चाहिए। अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा ज्ञात होता है कि खगोलीय तथ्यों एवं न्यूटन के सिद्धान्त द्वारा प्राप्त फलों में सौ वर्ष में बयालीस सेकन्ड का अन्तर है। यह सूक्ष्म अन्तर बहुत समय तक प्रकृति का रहस्यमय भेद बना रहा।

न्यूटन के नियम में दो संहतियों का उल्लेख किया गया है। सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त के अनुसार किसी कण की संहति उसके वेग पर निर्भर करती है। यह तथ्य न्यूटन के समय अज्ञात था। हम किस संहति को नियम में ले—स्थिर संहति को या परिवर्तित संहति को ? इस तरह यह नियम शुद्ध वैज्ञानिक विश्लेषण पर खरा नहीं उतरता है।

इस प्रकार एक नये सिद्धान्त की आवश्यकता का अनुभव किया गया। जर्मन भौतिकविद अल्बर्ट आइन्सटाइन ने नए ढंग से गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की व्याख्या की जिसने भौतिक विज्ञान को नया आयाम प्रदान किया।

समतुल्यता का सिद्धान्त—

आइन्स्टाइन ने सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त में असमरूप वेग की धारणा पर विचार किया। उन्होंने कहा कि सामान्य भौतिक नियम गैलीलियो निकाय के अतिरिक्त अन्य निकायों में भी वही रहते हैं। यह समतुल्यता के सिद्धान्त द्वारा ही सम्भव है। यह नियम जड़ता एवं गुरुत्व बल की समस्या पर आधारित हैं। साधारणतया किसी कण के संहति को उसमें किसी बल द्वारा उत्पन्न त्वरण से परिभाषित करते हैं। इसको जड़त्व संहति कहते हैं। किसी वस्तु द्वारा गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र उसके संहति के समानुपाती होता है। अतः किसी पिन्ड की संहति गुरुत्वाकर्षण बल के समानुपाती है। यह बल इकाई दूरी पर रखे गए एक पिन्ड पर लगता है इस तरह से परिभाषित संहति को गुरुत्वाकर्षण संहति कहते हैं।

गैलीलियो द्वारा पीसा की मीनार पर किए गए प्रयोग सिद्ध करते हैं कि गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में उत्पन्न त्वरण पिन्ड की मात्रा व भौतिक अवस्था पर किसी भी रूप में नहीं निर्भर करता है।

इस नियम को इस रूप में दर्शाया जा सकता है—

न्यूटन के गति के द्वितीय नियम के अनुसार—

बल = जड़त्व संहृति × त्वरण

यदि त्वरण गुरुत्वाकर्षण बल के द्वारा उत्पन्न हो तो—

बल = गुरुत्वाकर्षण संहृति × गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र की तीव्रता। इन सम्बन्धों द्वारा

$$\text{त्वरण} = \frac{\text{गुरुत्वाकर्षण संहृति}}{\text{जड़त्व संहृति}} \times \text{गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र}$$

की तीव्रता। हम जानते हैं कि दिए गए गुरुत्वार्षण क्षेत्र में त्वरण सदैव समान रहता है। अतः गुरुत्वाकर्षण संहृति एवं जड़त्व संहृति का अनुपात सभी पिन्डों के लिए स्थिर रहता है। उचित इकाइयों के चुनाव द्वारा हम इस अनुपात को इकाई मान सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि गुरुत्वाकर्षण संहृति एवं जड़त्व संहृति समान होती है।

इस तथ्य के प्रायोगिक आधार भी प्राप्त हैं। 1961 में आर० एच० डिकी द्वारा किए गए प्रयोगों में जड़त्व एवं गुरुत्वाकर्षण संहृति में सापेक्षिक अन्तर का अधिकतम मान 12-11 आता है। यह सिद्धान्त भारी नाभिकों के लिए भी सत्य है। भारी नाभिकों में बन्धन-ऊर्जा के रूप में संहृति ह्रास होता है। दोनों संहृतियाँ एक ही मान से घटती हैं।

समतुल्यता के सिद्धान्त को कुछ सीमा तक भाक के दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर समझाया जा सकता है। जिसके अनुसार जड़ता किसी पदार्थ का वास्तविक गुण नहीं है। यह पदार्थों की पारस्परिक क्रिया के कारण होता है। इसलिए किसी पदार्थ को त्वरित करने के लिए बल की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि यह ब्रह्मान्ड के अन्य पदार्थों के सापेक्ष स्थानान्तरित होता है। अतः किसी पदार्थ की जड़ता ब्रह्मान्ड में बिखरे अन्य संहृतियों के प्रभाव का परिणाम मात्र है। अतः किसी पदार्थ में जड़ता गुरुत्वाकर्षण के कारण होती है। यदि जड़त्व एवं गुरुत्वाकर्षण संहृति को एक सार्वभौमिक अनुपात में रखते हैं तो आश्चर्य की बात क्या है? इन्हीं आधारों पर हम गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक को ब्रह्मान्ड की संरचना से समन्वित करने का विचार कर सकते हैं।

न्यूटन के सिद्धान्त में समतुल्यता के इस सिद्धान्त को केवल एक संयोग माना गया है। परन्तु आइन्स्टाईन के अनुसार आकर्षित होने वाले पदार्थों के कारण स्थिर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र एवं समान त्वरण से त्वरित मापदंड के कारण उत्पन्न क्षेत्र में कोई अन्तर नहीं होता। यदि मान्य मापदन्ड का त्वरण गुरुत्व जनित त्वरण के बराबर एवं विपरीत हो तो एक दूसरे को स्थानापन्न किया जा सकता है। हम इस घटना का थोड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

दशाब्दि पूर्व आइन्स्टाईन ने सापेक्षता के विशेष सिद्धान्त में एक उपधारण दिया था, जिसके अनुसार समान वेग से वेगवान कक्ष में बैठा प्रेक्षक नहीं बतला सकता कि कक्ष स्थिर है या वेगवान। इस आधार पर उन्होंने समरूप परम वेग की धारणा को उखाड़ फेंका। इस उपधारण का ज्ञान रखते हुए कोई प्रेक्षक एक राकेट में बैठा है। राकेट सुदूर स्थित तारों की तरफ स्वेच्छापूर्वक बढ़ रहा है। इसके भीतर कोई गुरुत्वाकर्षण बल नहीं कार्य कर रहा है। अतएव सभी पदार्थ भारहीन अवस्था में रहते हैं। वहाँ कोई 'ऊपर' व 'नीचे' नहीं होगा। परन्तु जैसे ही राकेट का इन्जन चालू होगा सभी पदार्थ एक निश्चित दिशा में त्वरित होंगे। गुरुत्व जैसी घटनाएँ दिखलाई देगी। प्रेक्षक अपना पैर उठाने तथा खड़ा होने योग्य हो जाएगा। यदि राकेट का त्वरण गुरुत्व जनित त्वरण के बराबर हो तो हम दोनों में कोई भी अन्तर स्थापित करने में सफल नहीं होंगे। इस प्रकार समतुल्यता के सिद्धात द्वारा ज्ञात होता है गुरुत्वाकर्षण जड़ता का एक भाग मात्र है। गुरुत्वाकर्षण अपनी शक्ति का प्रयोग किसी वस्तु की जड़ता के अनुपात में ही करता है। यही कारण है कि सभी पदार्थ अपनी जड़ता की मात्रा से प्रभावित हुए

बिना समान गति, से नीचे गिरते हैं। सितारों व ग्रहों की गतिविधियाँ उनकी स्वभावगत जड़ता से उत्पन्न होती हैं और वे जो मार्ग अपनाते हैं वह दिक्रकाल अखण्डता के तृतीय तत्वों द्वारा निर्धारित होता है।

समतुल्यता का सिद्धान्त विद्युतीय एवं प्रकाशीय घटनाओं पर भी लागू होता है। प्रकाश का क्वांटा 'फोटोन' गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रभावित होता पाया गया है।

समतुल्यता के सिद्धान्त के आधार पर आइन्स्टाइन ने गुरुत्वाकर्षण के नए सिद्धान्त की व्याख्या की। इसके लिए चतुर्विस्तारक ब्रह्माण्ड की कल्पना की अपेक्षा है।

चर्तुविस्तारक दिक-काल—

दीर्घकाल तक गणितज्ञ यह समझते रहे हैं कि यूक्लिड की ज्यामित ही एक मात्र ज्यामित है। पर यूक्लिड के प्रमेय सदैव ठीक नहीं बैठते। कल्पना कीजिए कोई व्यक्ति ग्रीनविच मध्याह्न रेखा के साथ उत्तर ध्रुव से भूमध्य रेखा तक पहुँचता है और फिर वहाँ से दायी ओर मुड़कर भूमध्य रेखा के साथ-साथ पृथ्वी की परिधि का एक चौथाई तय करता है। यहाँ से फिर दायीं ओर घूमता है और उत्तरी ध्रुव को वापिस पहुँचता। यहाँ पहुँचने पर उसे मालूम होता है कि जिस रास्ते वह उत्तरी ध्रुव चला था उससे ठीक समकोण बनाते हुए रास्ते वह लौटा है। इस प्रकार उसकी यात्रा से बने त्रिभुज के अन्त: कोणों का योग दो समकोण से अधिक है। अत: पृथ्वी की सतह की ज्योमिति यूक्लिड की ज्योमिति से भिन्न है। इसी प्रकार पर्याणी (घोड़े की जीन) की सतह पर बने त्रिभुज के अन्त: कोणों का योग दो समकोण से कम होता है। इन्हीं कारणों से नई ज्यामित की आवश्यकता समझी गई। गणित में वक्रतल उस तल को कहते हैं जिसका ज्यामिति गुण समतल से भिन्न होता है। वक्रतल की वक्रता यूक्लिड के नियमों से विक्षेपण द्वारा मापी जाती है। विभिन्न सतहों के वक्रता के अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न ज्यामितियों की आवश्यकता पड़ी। रीमान् ने दिखलाया कि हमारी त्रिविमतीय ज्यामिति न विमतीय ज्यामिति की एक विशेष रूप मानी जा सकती है न विमतीय ज्यामिति में दिक्र वक्र है। मित्रकोस्की ने बताया कि किसी भी मापदण्ड में कोई घटना चार नियामकों द्वारा व्यक्त की जा सकती है। नया आयाम समय है। चर्तुविस्तारक विश्व में (x, y, z, t,) का मान 'विश्व बिन्दु' कहलाता है। एक बिन्दु की गति को विश्वरेखा कहते हैं। एक सामान्य घटना दो विश्वरेखाओं का प्रतिच्छेदन होती है। चर्तुविमतीय ब्रह्माण्ड की कल्पना स्वयं में एक आश्चर्य की कल्पना है। आइन्स्टाईन इनके शब्दों में—

'अगणितज्ञ जब चर्तुविस्तार वस्तुओं के बारे में सुनता है तो एक रहस्यपूर्ण भय में जकड़ जाता है। यह भावना उसी तरह की होती है जैसी प्रेत भावना निगूठ के चिन्तन से उत्पन्न होती है। फिर भी इससे अधिक और 'सामान्य' वक्तव्य नहीं हो सकता है कि जिस संसार में हम निवास करते हैं, वह चतुर्विस्तारक दिक् काल की अखण्डता है।"

आइन्सटाईन का नियम—

आइन्स्टाईन का गुरुत्वाकर्षण नियम न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण से सर्वथा भिन्न है। यह कोई 'शक्ति' नहीं है। आइन्सटाईन के अनुसार यह विचार कि भौतिक वस्तुएँ एक दूसरे को आकर्षित कर सकती हैं, एक भ्रम है जो कि प्रकृति सम्बंधी गलत यान्त्रिक धारणाओं के कारण पैदा हुआ है। उनके अनुसार पदार्थ की उपस्थिति चतुर्विस्तारक द्रिक-काल को विकृत कर देती है। एक क्षेत्र में पदार्थ का घनत्व जितना ही अधिक होगा दिक्र की वक्रता उतनी ही अधिक होगी। जिस तरह रेलगाड़ी के वक्र मार्ग पर चलने से केन्द्राभिसारी बल उत्पन्न होता है उसी प्रकार पिण्डों का वक्र-मार्ग पर वेग गुरुत्वाकर्षण बल उत्पन्न करता है। अत: गुरुत्वाकर्षण बल द्रिक-वक्रता का प्रत्यक्षीकरण है। गुरुत्व चतुर्विस्तारक द्रिक-काल सातव्य की वक्रता है।

स्पष्ट है कि सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त में गुरुत्वाकर्षण का ज्योमितिकरण करने का प्रयास किया गया है। इस प्रश्न में कोई अन्तर नहीं दिखता ब्रहमाण्ड का गुरुत्वाकर्षण नियम क्या है? दोनों प्रश्न एक

[शेष पृष्ठ 25 पर]

एक सितारा-पूँछवाला

शंकर प्रसाद दीक्षित

240 ई० पूर्व एक रात आकाश में लोगों ने एक अजीब नक्षत्र देखा जिसके पीछे एक लम्बी झाड़ू जैसी पूँछ थी। चमक में भी यह नक्षत्र औरों की अपेक्षा बहुत तेज था। बड़े-बूढ़ों ने बताया कि उन्होंने इससे पूर्व अपने बचपन में भी एक आध बार ऐसा पूँछवाला सितारा देखा था, लेकिन यह इस बार का सितारा तो बहुत चमक वाला है, ऐसा उन्होंने कभी नहीं देखा था। दूर-दूर के जानकार लोग एकत्रित हुए, विचार विमर्श हुआ, आखिर यह क्या है ? पर वह किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सकें, और उधर रोज रात में अपने समय पर पूँछवाला सितारा अपनी पूरी चमक सहित आकाश में आ जाता। रात के अँधेरे में एक चमकदार अनजान चीज ऐसा प्रतीत होता जैसे यह पूँछवाला सितारा सारे संसार को चेतावनी दे रहा हो। एक छिपा हुआ डर सभी लोगों में समा गया कहीं यह पुच्छलतारा किसी दुर्घटना की सूचना तो नहीं दे रहा है। इसी बीच यत्र-तत्र अनेक दुर्घटनाएँ हो गईं, कहीं किसी योग्य आदरणीय पुरुष की मृत्यु हो गई, कहीं भीषण बाढ़ आ गई, कुछ अन्य राज्यों में युद्ध छिड़ गया। और लोगों की धारणा पुष्ट हो गई कि यह नया सितारा ईश्वर ने इन दुर्घटनाओं की सूचनार्थ ही भेजा था। यद्यपि वैसे हम देखें तो प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ दुर्घटनाएँ होती ही रहती हैं। इस वर्ष ही पं० जर्मनी में ओलिम्पिक खेलों के समय इजरायल के अनेक खिलाड़ियों की अमानवतापूर्ण हत्या कर दी गई, भारत के अनेक प्रांतों में बाढ़ आई अन्य कई प्रान्तों में सूखा पड़ गया। गत वर्ष हजारों निरपराध बंगालियों की हत्या पाकिस्तानियों द्वारा की गई और भारत को मजबूरन पाकिस्तान के साथ युद्ध करना पड़ा। इसी भाँति प्रति वर्ष कुछ न कुछ हुआ ही करता है।

हेली अंधविश्वासों से मुक्ति; 240 ई० पूर्व की इस घटना के बाद भी कई बार ऐसे ही पुच्छलतारे देखे गए, कभी तेज तो कभी कम चमक वाले। 1682 में एक बार फिर तेज चमक वाला पुच्छल तारा आकाश में आया, इन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक हेली ने अनेक गणनाओं के बाद निष्कर्ष निकाला कि यह विचित्र पुच्छलतारा दुर्घटना सूचक नक्षत्र नहीं वरन् हमारे अपने सौर मण्डल का एक छोटा सा सदस्य है, केवल कुछ धूल मिट्टी व बर्फ का पिण्ड जो सूर्य के पास आने पर तेज चमकता दिखाई देने लगता है।

हेली ने यह भी गणना की कि 1682 में दिखाई देने वाला पुच्छलतारा वही है जो इससे पूर्व 1607, 1531··· ··और सर्वप्रथम 240 ई० पूर्व दृष्टिगोचर हुआ था। उसने यह भी बतलाया कि प्रत्येक 75½ वर्ष बाद यह पुच्छलतारा आकाश में आता रहेगा, जब तक कि इसकी मृत्यु न हो जाए। उसकी गणना के अनुसार 1758, 1335 व 1910 में हेली का पुच्छलतारा आकाश में देखा गया तथा अब हम अपने जीवन काल में 1985 में इसे स्वयं देख सकेंगे। इसी भाँति अन्य सभी पुच्छलतारे भी अपनी-अपनी कक्षाओं में सूर्य की परिक्रमा करते हुए निश्चित् समय के पश्चात् दृष्टिगोचर होते रहते हैं, यद्यपि अधिकतर पुच्छलतारों का पुन: दिखाई देना सैकड़ों वर्ष बाद हो पाता है। जन्म व जीवन : वास्तव में जब हमारे सौरमण्डल का जन्म

हुआ था,* तो अनेक बड़े-बड़े ग्रहों के बनने के पश्चात् भी कुछ पदार्थ अंतरिक्ष में यत्र तत्र बिखरा रह गया था यह छोटे-छोटे टुकड़े (जिनका व्यास सामान्यत: 1-2 मील होता है) सूर्य के गुरुत्व के प्रभाव में आकर भिन्न-भिन्न कक्षाओं में उसकी परिक्रमा करने लगे। अपने परिक्रमाकाल के अधिकतर समय में ये पिण्ड सूर्य से लाखों मील दूर अंतरिक्ष में चल रहे होते हैं, जहाँ ताप-क्रम बहुत ही कम होता है और यह बर्फ से भी ठंडे होते हैं, साथ ही इनके अन्दर उपस्थित जलवाष्प बर्फ में परिणित हो जाती हैं। परन्तु अपनी महान् यात्रा करते हुए जब यह पिंड सूर्य के कुछ समीप आता है तो ऊष्मा पाकर इसके अन्दर के पदार्थ का वाष्पीकरण होने लगता है और यदि यह सूर्य के बहुत ही समीप आ जाता है तो सूर्य की ओर से तीव्र विकीरण आने के कारण इसका वाष्पीकृत भाग विकिरण के साथ तेजी से बाहर की ओर भागता है और इस प्रकार इस पिंड से एक चमकती हुई पूँछ निकली हुई दिखाई देती है, यह पूँछ सदैव सूर्य से दूसरी ओर फैली हुई होगी। इस प्रकार पुच्छल तारे में एक केन्द्रीय भाग (न्यूक्लियस) होता है जिसका व्यास एक मील के लगभग होता है तथा इस केन्द्रीय भाग से एक लम्बी पूँछ निकली हुई दिखाई देती है जिसकी लम्बाई 10,000 मील से 10,000,00 मील तक हो सकती है।

पुच्छल तारे की पूँछ सदैव सूर्य से विपरीत दिशा में होगी। अत: जब यह सूर्य की ओर आ रहा होगा तो इसकी पूँछ इसके केन्द्रीय भाग के पीछे की ओर चल होगी परन्तु जब पुच्छल तारा सूर्य से दूर जा रहा होगा तो इसकी पूँछ केन्द्रीय भाग के आगे-आगे भाग रही होगी।

मृत्यु अंतरिक्ष में परिक्रमा करते हुए यह छोटे-छोटे पिण्ड जब-जब सूर्य के समीप आकर पुच्छल तारे बनते हैं, सदैव इनकी मात्रा का एक भाग वाष्पीकृत होकर पूँछ के रूप में बाहर निकल जाता है, अर्थात् प्रत्येक बार सूर्य पास से निकलने पर कर के रूप में इन्हें अपनी मात्रा का कुछ भाग दे देना होता है। और इस भाँति अनेक बार कर देते-देते अंत में किसी यात्रा के समय इनके पास केवल इतना ही पदार्थ रह जाता है कि सूर्य उस सबका वाष्पीकरण कर देता है और उसके बाद यह पूर्णत: समाप्त हो जाता है। उस स्थान पर यत्र तत्र केवल कुछ बिखरे हुए छोटे-छोटे मिट्टी व पत्थर के टुकड़ों के रूप में इसके भग्नावशेष रह जाते हैं।

हमारी पृथ्वी यदि कभी अपनी यात्रा के बीच किसी ऐसे स्थान से होकर निकलती है जहाँ किसी प्राचीन पुच्छलतारे के भग्नावशेष बिखरे हों तो यह टुकड़े मेट्योर शॉवर के रूप में (जिन्हें सामान्य भाषा में हम तारा टूटना कहते हैं) हमें दिखाई देते हैं। ऐसे ही एक स्थान से पृथ्वी अगस्त माह के दूसरे सप्ताह में होकर निकलती है; और हम अपने आकाश में लग-भग प्रति मिनट एक मेट्योराइट (टूटता तारा) देख सकते हैं।

इस विषय में पूरी जानकारी विज्ञान के पिछले अंकों में दी जा चुकी है (लेखमाला ब्रह्मांड एक विवेचन रवीन्द्र कुमार दुबे)।

शंकर प्रसाद दीक्षित
रसायन विभाग
जनता महाविद्यालय, इटावा

कोबाल्ट बम की खोज : अभिराम या अभिशाप

सुरेश चन्द्र आमेटा

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात, वैज्ञानिकों ने कई भयानक हथियारों का आविष्कार किया। ऐसे ही नृशंस-विनाशक परमाणु बम एवं हाइड्रोजन बम के विषय में, एक लम्बे समय से हम काफी पढ़-सुन रहे हैं। ये और कुछ नहीं, सिर्फ नाभिकीय-संलयन एवं विखण्डन से उत्पन्न ऊर्जाओं के परिणाम है। परमाणु बम का विस्फोट, हमें निम्न प्रभावों से प्रभावित करता है :—

(1) विस्फोट प्रभाव

(2) क्षण-दीप्ति प्रभाव

(3) नाभिकीय विकिरणों का प्रभाव एवं

(4) रेडियो-सक्रियता के प्रभाव।

ये सभी प्रभाव, कितने क्षेत्र को प्रभावित करते हैं, इसका निम्न उदाहरण से ही मूल्यांकन हो जाता है। 20,000 टन टी० एन० टी० के तुल्य परमाणु बम के विस्फोट पर, आधे मील त्रिज्या का क्षेत्र पूरी तरह से तबाह हो जायेगा तथा एक मील त्रिज्या के क्षेत्र में विध्वंसक प्रभाव दृष्टिगत होंगे। इसी प्रकार, क्षण-दीप्ति प्रभाव में, इनसे विकिरित होने वाले विकिरणों के कारण जमीन की सतह का तापक्रम 3000° सेन्टीग्रेड तक पहुँच जायगा, जिसके कारण एक मील की त्रिज्या के क्षेत्र में रहने वाले सभी जीवित पदार्थों पर जलन का प्रभाव इंगित होगा।

इसके बजाय, यदि हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया जाय तो नाभिकीय संलयन के फलस्वरूप जो ऊर्जा उत्पन्न होगी, उसके कारण वहाँ तापक्रम परमाणु बम के विस्फोट से प्राप्त तापक्रम से भी कई गुना अधिक हो जायेगा। इसे निम्न अभिक्रियाओं द्वारा दर्शाया जा सकता है।

$$H^2 + H^2 = H^3 + H^1 + 4 \text{ Mev.}$$

$$H^2 + H^2 = H^3 + n + 3{\cdot}3 \text{ Mev.}$$
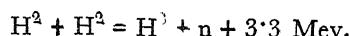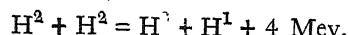
परन्तु, इन विस्फोटक-प्रभावों तथा क्षण-दीप्ति प्रभावों से भी संतुष्टि न पाकर, इनसे भी उच्च कोटि के प्रभावों से प्रभावित करने के लिये कोबाल्ट बम का आविष्कार किया गया, ताकि रेडियो-सक्रिय प्रभाव काफी बड़े पैमाने पर दृष्टिगत हो। इसमें क्लीवाणु (न्यूट्रान) अभिक्रियायों से अत्यधिक रेडियो-सक्रियता प्राप्त की गई। वायु में, क्लीवाणु, नाइट्रोजन से अभिक्रियित होकर उत्पादन के रूप में रेडियो समस्थानिक C^{14} बनाते हैं। इसे निम्न अभिक्रिया से बताया जा सकता है :—

$${}_7N^{14} + {}_0n^1 \rightarrow {}_6C^{14} + {}_1H^1$$
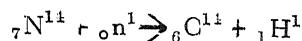
एक हाइड्रोजन बम से भी बहुत से क्लीवाणु मिलते हैं, जो कि C^{14} बनाते हैं। यदि हाइड्रोजन बम को चारों ओर से क्लीवाणु-शोषक में बन्द कर दिया जाय जो छोटे अर्द्ध-जीवन-काल का समस्थानिक बनाये तो उत्पन्न रेडियो-सक्रियता अत्यधिक हानिकारक होगी। इस शोधक के रूप में कोबाल्ट का उपयोग कर यह कमी भी पूरी कर दी गई ताकि विश्व-सभ्यता को नष्ट करने में और बर्बरता की कमी न रह जाये। इसे "कोबाल्ट बम" नाम दिया गया।

क्लीवाणुओं के अवशोषण से प्राप्त स्थानिक Co^{60} होता है, जिसका अर्द्ध-जीवन-काल 5·3 वर्ष होता है।

[शेष पृष्ठ 25 पर]

विज्ञान-वार्ता

अपोलो-17 की चन्द्रयात्रा इतिहास की महानतम विज्ञान-इन्जिनियरिंग योजना का अन्तिम चरण

विज्ञान की विशालतम विज्ञान-इन्जिनियरिंग योजना—अमेरिका का अपोलो-17 कार्यक्रम—अपोलो-17 के चन्द्र धरातल पर उतरने के साथ पूरा हो जायेगा। यह चन्द्रमा की छठी समानव अन्तरिक्ष उड़ान होगी।

अपोलो-17 और उसके तीन अन्तरिक्षायात्री भारतीय समय के अनुसार 7 दिसम्बर को प्रातः 8·23 पर केप कनेडी, फ्लोरिडा से अपनी ऐतिहासिक अन्तरिक्ष-यात्रा पर रवाना हो जायँगे।

लगभग 13 दिन की यह अन्तरिक्षयात्रा, विगत 4 वर्षों से सम्पन्न समानव चन्द्रयात्राओं में अन्तिम, सर्वाधिक लाभप्रद समानव चन्द्रयात्रा होगी।

जैसा कि इस योजना के बनाने वालों ने सोचा था, यह उड़ान अमेरिका के उस समानव चन्द्रयात्रा कार्यक्रम का अन्तिम चरण होगा, जिसकी तैयारियाँ आज 10 वर्ष पूर्व प्रारम्भ ही गई थीं। इससे पहले के अपोलो-मिशनों की भाँति, अपोलो-17 की अन्तरिक्ष-यात्रा भी रोमांच और उल्लेखनीय तकनीकी प्रयोगों से परिपूर्ण होगी।

अपोलो-17 की उड़ान योजना भी पहले अपोलो-मिशनों के समान ही होगी। इनमें से हर अपोलो-मिशन ने अन्तरिक्ष अन्वेषण के क्षेत्र में नई सफलताएँ प्राप्त की हैं। अपोलो-17 भी चन्द्रमा सम्बन्धी अनुसन्धान को पिछले मिशनों के मुकाबले में और आगे बढ़ाएगा।

अपोलो-17 का प्रक्षेपण सूर्यास्त के कई घण्टे उपरान्त होगा। यह पहला अवसर होगा जब अमेरिकी अन्तरिक्षयात्री अपनी अन्तरिक्ष उड़ान रात्रि के समय प्रारम्भ करेंगे। विश्व के सबसे अधिक शक्तिशाली राकेट सेटर्न-५ के लिए भी रात्रि में अन्तरिक्षयात्रा पर प्रस्थान करने का यह पहला अवसर होगा।

केप कैनेडी तथा चन्द्रमा पर अपोलो मिशन के निर्धारित अवतरणस्थल 'तोरस-लिटरो क्षेत्र' की सापेक्ष स्थितियों को दृष्टि में रख कर ही प्रक्षेपण के लिए रात्रि का समय चुना गया है। चन्द्रमा के जिस स्थान पर अपोलो-17 को उतारना है वह पृथ्वी से दृष्टिगोचर चन्द्रमा के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित पर्वतीय पठारों और घाटियों से परिपूर्ण क्षेत्र है। रात्रि में देर से, प्रक्षेपण करने पर यात्रा के दौरान मार्ग-परिवर्तन करने की अधिक जरूरत नहीं पड़ेगी जिससे ईंधन की बचत होगी। इसके अलावा चन्द्रमा पर उतरने के समय सूर्य अनुकूल कोण पर होगा।

पहली बार अमेरिकी अन्तरिक्षयात्रियों की टोली में, एक पेशेवर वैज्ञानिक, श्री हेरिसन एच० श्मिट, शामिल होंगे। इस 37-वर्षीय वैज्ञानिक ने भूगर्भ विज्ञान में पी एच० डी० की डिग्री हासिल की है। वह चन्द्रमा पर उतरने वाले खण्ड के पायलट होंगे।

अपोलो-17 में वे सभी वैज्ञानिक उपकरण होंगे जो हमसे पूर्व के अन्य अपोलो अन्तरिक्षयानों में थे। अपोलो-17 में दस नए वैज्ञानिक प्रयोगों की भी व्यवस्था की गई है।

इनमें से सात प्रयोग चन्द्रमा के धरातल पर सम्पन्न होंगे तथा तीन चन्द्रमा की परिक्रमा के दौरान पूरे किये जाएँगे।

अन्तरिक्षयात्रियों की टोली का नेतृत्व 40 वर्षीय श्री यूजीन ए० सरनन करेंगे। वह अपोलो-17 के कमाण्डर होंगे। वह 1963 में अन्तरिक्षयात्री बने थे तथा उस समय से लेकर अब तक वह दो बार अन्तरिक्ष की यात्रा पर जा चुके हैं तथा कुल मिला कर 11 दिन से भी अधिक समय तक अन्तरिक्ष में रह चुके हैं। मई 1969 में उन्होंने अपोलो-10 पर सवार होकर चन्द्रमा की 31 परिक्रमाएँ कीं तथा उनका अन्तरिक्षयान चन्द्रमा से केवल 15 किलोमीटर दूर रह गया था। इसके पूर्व, जून, 1966 में उन्होंने जेमिनी-9 पर अन्तरिक्षयात्रा की थी। इस अन्तरिक्षयात्रा में उन्होंने कुल मिला कर 2 घण्टे 10 मिनट तक अन्तरिक्ष में विचरण किया था। वह पहले अन्तरिक्षयात्री थे जिन्होंने पृथ्वी की एक परिक्रमा में लगने वाला समय खुले अन्तरिक्ष में व्यतीत किया।

श्री सरनन श्री श्मिट के साथ चन्द्रमा के धरातल पर उतरेंगे। श्री श्मिट चन्द्रमा के धरातल पर उतरने वाले सर्वप्रथम वैज्ञानिक होंगे। वह चट्टानों और चट्टानों के विभिन्न आकार-प्रकार का विश्लेषण करने में माहिर हैं। वह 1965 में अन्तरिक्षयात्रियों की टोली के लिए चुने गए थे।

सरनन और श्मिट चन्द्रमा पर उतरने वाले 11वें और 12वें व्यक्ति होंगे।

अपोलो-17 की अंतरिक्ष-टोली के तीसरे सदस्य 39-वर्षीय रोनाल्ड ई० ईवान्स है। 1966 से अन्तरिक्षयात्री हैं लेकिन अभी तक उन्होंने कोई अन्तरिक्ष-यात्रा नहीं की है। कमाण्ड-खण्ड के चालक के रूप में, वह चन्द्रमा की परिक्रमा करेंगे, और कमाण्ड-खण्ड की देख-रेख करने के अलावा, उस समय कुछ वैज्ञानिक प्रयोग भी करेंगे, जब श्री सरनन और श्मिट चन्द्रमा के धरातल पर होंगे।

अपोलो-17 की उड़ान उन तीन समानव चन्द्र-उड़ानों में तीसरी है, जिसमें अधिक विकसित प्रकार का अपोलो-अन्तरिक्षयान प्रयुक्त किया गया है। इस अधिक विकसित अपोलो-अन्तरिक्षयान में, चन्द्रमा के धरातल पर प्रयुक्त होने वाले वाहन का वैज्ञानिक अन्वेषण कार्य के लिए अधिकतम सम्भव उपयोग किया जाएगा। इस तीनों समानव चन्द्र उड़ानों में से प्रत्येक में—अपोलो-15, अपोलो-16 और अपोलो-17 – बैटरी से चालित मोटरगाड़ी के ढंग के वाहन ल्यूनर रोवर को ले जाने की व्यवस्था है। श्री सरनन और श्री श्मिट चन्द्रमा के धरातल पर 'ल्यूनर-रोवर' पर सफर करने वाले 5वें और 6वें अन्तरिक्षयात्री होंगे।

सरनन और श्मिट तीन बार चन्द्रमा के धरातल पर अन्वेषण के लिए निकलेंगे। इन अन्वेषण-यात्राओं में उनका एक प्रमुख कार्य चन्द्रमा के धरातल में स्थापित स्वचालित अनुसन्धान स्टेशन शृंखला को अन्तिम रूप देना होगा। वह स्वचालित अनुसन्धान-स्टेशन सम्भवतः कई वर्षों तक रोज लाखों की संख्या में चन्द्रमा सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएँ पृथ्वी को प्रसारित करते रहेंगे।

श्री सरनन और श्री श्मिट इस प्रकार का 6 ठा स्वचालित अनुसन्धान-केन्द्र स्थापित करेंगे। पिछली अपोलो-यात्राओं में चन्द्रमा के धरातल पर विभिन्न दूरियों पर जो अनुसंधान-स्टेशन स्थापित किए जा चुके हैं, उनके उपकरण और यन्त्र अब भी सक्रिय हैं तथा वे पृथ्वी को महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रेषित कर रहे हैं।

अपोलो-7 चन्द्रमा के लिए जो प्रयोग पैकेज (एलसेप) ले जा रहा है, उनमें चार यन्त्र बिलकुल नए ढंग के हैं।

इनमें एक 'ल्यूनर सरफेस ग्रेवीमीटर' है जिसका उपयोग चन्द्रमा पर पृथ्वी तथा नक्षत्रों के गुरुत्वाकर्षण प्रभाव की नाम करने के लिए होगा। इसके अलावा, इनमें एक 'ल्यूनर एजेक्टा एण्ड नेटियोराइट्स' नामक प्रयोग 'जिसका कार्य चन्द्रमा के धरातल पर गिरने वाली सौर धूल के परिमाण को मापना तथा उनका-पिण्डों के आयात से धरातल के होने वाले क्षरण का पता लगाना है। एक 'ल्यूनर सीसमिक प्रोफाइलिंग' नामक प्रयोग भी हे, जिसके अन्तर्गत विस्फोटों का

प्रयोग कर चन्द्रमा की भौतिक विशिष्टताओं का विश्लेषण किया जाएगा।

'ए सेप' के अलावा, अपोलो-17 में तीन अलग प्रयोगों की भी व्यवस्था की गई है। ये हैं: चन्द्र धरातल की परतों का पता लगाने वाला प्रयोग 'सरफेस इलेक्ट्रिक प्रापरटीज'। यदि चन्द्रमा के गर्भ में कहीं भी जीवज्ञान है तो इस उपकरण द्वारा उसका पता लगाया जा सकेगा एक अन्य उपकरण 'ल्यूनर ग्रेनिटी ट्रेसर' (चन्द्र गुरुत्वाकर्षण की नाप करेगा। 'ल्यूनर न्यूट्रोन प्रोब' नामक एक और उपकरण क्षरण और विकास सम्बन्धी सूचनाएँ प्रदान करेगा।

चन्द्रमा की कक्षा में, को ईवान्स कमाण्ड-खण्ड में फिट कैमरों तथा अन्य अनुसन्धान-उपकरणों को सक्रिय करेंगे। ये सभी उपकरण कमाण्ड-खण्ड के 'वैज्ञानिक उपकरण-खण्ड' (साईटिफिक इंस्ट्रूमेण्ट मौड्यूल) में फिट हैं।

इस खण्ड (सिम) में कई यन्त्र हैं। 'ल्यूनर राडार साउण्डर' नामक यन्त्र चन्द्र धरातल के गर्भ में 1, 3 किलोमीटर की गहराई पर विद्यमान परिस्थितियों का पता लगाएगा। 'स्कैनिंग रेडियोमीटर' नामक एक और यन्त्र चन्द्रमा के अंधेरे हिस्से के तापमान का अध्ययन करेगा। एक और यन्त्र, 'फौर धूवी स्पेक्ट्रोमीटर' गैसों के प्रसार और विस्तार के बारे में सूचना देगा।

उड़ान-योजना के अनुसार, अपोलो-17 की अन्तरिक्ष-यात्रा प्रशान्त महासागर में पागो पागो से 800 किलोमीटर दक्षिण में स्थित समोआ के पास समाप्त होगी। अपोलो-17 अपनी अन्तरिक्ष-यात्रा समाप्त कर भारतीय समय के अनुसार 20 दिसम्बर को रात्रि के 12, 54 मिनट पर उक्त स्थान पर उतरेगा।

इस प्रकार अपोलो-17 की यात्रा में कुल मिला कर 12 दिन, 16 घण्टे और 31 मिनट लगेंगे। दूसरे शब्दों में अपोलो-16 की यात्रा की तुलना में, अपोलो-17 की यात्रा में 9 घण्टे अधिक लगेंगे। अपोलो-15 की चन्द्रमा की वापसी यात्रा अब तक की सबसे लम्बी अन्तरिक्षयात्रा थी।

यह आशा की जाती है कि अपोलो-17 के अन्तरिक्ष-यात्री 12 दिसम्बर को आधी रात के बाद 1,20 पर (भारतीय समय) चन्द्रमा के धरातल पर उतरेंगे तथा 15 दिसम्बर को भारतीय समय के अनुसार प्रातः 4, 26 पर वहाँ से प्रस्थान करेंगे। वह कुल मिला कर 3 दिन, तीन घण्टे और एक मिनट चन्द्रमा के धरातल पर व्यतीत करेंगे। अपोलो-17 के अन्तरिक्ष-यात्रियों ने चन्द्रमा के धरातल पर जितना समय व्यतीत किया था, उसकी तुलना में यह समय 4 घण्टा अधिक होगा।

यदि अपोलो-17 चन्द्रमा के धरातल पर उतरने में सफल रहा, तो अमेरिकी अन्तरिक्षयात्री चन्द्रमा की विषुवत रेखा के उत्तर तथा दक्षिण में तीन-तीन वेश स्थापित करेंगे। इनमें से दो पृथ्वी से दृष्टिगोचर चन्द्र-पृष्ठ के पश्चिमी अर्धभाग में तथा चार पूर्वी अर्धभाग में होंगे।

अपोलो अन्तरिक्षयानों के यात्री अब तक चन्द्रमा में कुल 269 किलोग्राम धूल और शिलाखण्ड, चन्द्रमा के धरातल के हजारों फोटोग्राफ तथा लाखों की संख्या में वैज्ञानिक सूचनाएँ लाए हैं। अपोलो-17 इन सब में उल्लेखनीय वृद्धि करेगा।

यद्यपि, अपोलो-17 के बाद समानव चन्द्रयात्रा कार्यक्रम समाप्त हो जाएगा, परन्तु इसके बाद भी अन्तरिक्ष योजनाओं में, संशोधित ढंग के अपोलो अन्तरिक्षयान और उपकरण प्रयोग किए जाएँगे। अपोलो-17 के कमाण्डर के मस्तिष्क में उस समय इन्हीं अन्तरिक्ष योजनाओं की बात थी, जब उन्होंने कहा: "इस उड़ान के साथ कार्यक्रम समाप्त हो रहा है, परन्तु हम इसे एक ऐसा अन्त मानते हैं, जिससे एक नई शुरूआत होगी।"

अन्तरिक्ष में खगोलीय वेधशाला

पोलैण्ड के खगोल वैज्ञानिक, निकोलस कोपरनिकस (1473-1543) आधुनिक खगोल विज्ञान के जन्मदाता के रूप में विख्यात है। अब मनुष्य को सृष्टि का अधिकतम शक्तिशाली दृश्य उपलब्ध करने के लिए कोपरनिकस नामक दूरवीक्षण यन्त्र अन्तरिक्ष में परिक्रमा कर रहा है।

नक्षत्रों का पर्यवेक्षण करने वाले इस दूरवीक्षण-यन्त्र का वजन 2,200 किलोग्राम है। आशा की जाती है कि यह यन्त्र सृष्टि के कुछ आदिकालीन रहस्यों का भी उद्घाटन करने में समर्थ होगा। इसके उपकरण उन रहस्यपूर्ण स्पन्दकों पर केन्द्रित होंगे, जो ब्रह्माण्डीय प्रकाश-स्तम्भों की भाँति नियमित मध्यान्तरों से एक्स-रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) द्वारा पिछले अगस्त में केप कैनेडी (फ्लोरिडा) से अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त कोपरनिकस (जिसका प्राविधिक नाम 'परिक्रमागत खगोलीय वेधशाला-सी' है) अन्तरिक्षीय कक्षा में स्थापित अब तक के सबसे भारी और जटिलतम मानव रहित अन्तरिक्ष-यानों में से है। यह ब्रह्मान्ड का पर्यवेक्षण इतनी शुद्धता और सफाई से करने में समर्थ है, जितनी शुद्धता और सफाई से अभी तक ऐसा करना सम्भव नहीं हुआ है। इसका 82 सेन्टीमीटर व्यास का दूरवीक्षण यन्त्र—जो अन्तरिक्ष में अब तक भेजा गया सबसे बड़ा दूरवीक्षण-यन्त्र है—730 किलोमीटर ऊँची कक्षा से पृथ्वी पर स्थित फुटबाल के आकार वाली किसी भी वस्तु का पर्यवेक्षण कर सकता है।

किन्तु इस परिक्रमागत वेधशाला के वास्तविक लक्ष्य अरबों-करोड़ों किलोमीटर दूर स्थित गैस और धूल के अन्तर्ग्रही मेघ हैं, जिनके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का विश्वास है कि वे या तो सितारों को जन्म देने वाले मूल स्रोत हैं या उन ब्रह्माण्डीय पिन्डों की राख हैं, जो विस्फोट के कारण नष्ट हो गये।

यह दूरवीक्षण-यन्त्र तीन मीटर लम्बे और बेलनाकार अन्तरिक्ष-यान की मध्यवर्ती नलिका में स्थापित है। यह रेडियो-संकेतों द्वारा अतिकासनी प्रकाश के सम्बन्ध में आँकड़े सुलभ करेगा। पृथ्वी पर स्थित दूरवीक्षण यन्त्रों की तुलना में कोपरनिकस का यह सबसे उल्लेखनीय लाभ है, क्योंकि पृथ्वी पर स्थित दूरवीक्षण यन्त्र वायुमन्डल के बीच में आ जाने से ब्रह्माण्डीय दृश्यों का ठीक-ठीक पर्यवेक्षण करने में असमर्थ होते हैं।

गैस के दूरस्थ मेघों में से होकर गुजरने वाले कासनी प्रकाश का विश्लेषण करके, कोपरनिकस के उपकरण इन मेघों की रासायनिक संरचना का निर्धारण कर सकते हैं।

इस स्वचल अन्तरिक्षीय वेधशाला का एक अन्य उद्देश्य इस बात का अध्ययन करना है कि विभिन्न ग्रहों के बीच अन्तर्ग्रही गैस में सिलिकोन और अन्य सामान्य तत्वों का विलयन किस प्रकार होता है।

कोपरनिकस में एक अन्य उपकरण भी लगा है, जिसमें छोटे-छोटे 3 दूरवीक्षण यन्त्र शामिल हैं। ये दूरवीक्षण-यन्त्र विभिन्न तरंग-लम्बाइयों पर, अन्तरिक्ष में एक्स-रश्मियों के मूल स्रोतों का अध्ययन करेंगे।

अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों के अनुसार, अन्तरिक्ष अनुसन्धान की प्रमुख उपलब्धियों में एक यह खोज रहीं है कि सृष्टि के बहुत से पदार्थ एक्स-रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं, और खगोल वैज्ञानिकों की धारणा थी कि अन्य सितारे भी एक्स-रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं जिनका पता पृथ्वी पर से नहीं लगाया जा सकता था।

किन्तु अमेरिका द्वारा दिसम्बर, 1670 में प्रक्षिप्त भू-उपग्रह, 'एक्सप्लोरर-४२' ने, तथा उससे पूर्व अन्तरिक्ष में भेजे गये खोजी राकेटों ने, यह खोज की थी कि सृष्टि में एक्स-रश्मियों के 200 से अधिक मूल स्रोत हैं। ये स्रोत विपुल मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं। अतः, खगोल वैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तरिक्ष से आने वाली ऊर्जा इस बात की सूचक है कि ऊर्जा के ऐसे भी स्रोत हैं, जिनसे अभी तक ऊर्जा का उत्सर्जित होना असम्भव माना जाता रहा है।

कोपरनिकस पर एक नया और अनोखा संगणक लगाया गया है, जो कक्षागत-परिक्रमा के दौरान वैज्ञानिक क्रियाओं में सुधार करेगा और उन्हें सरल बनायेगा। संगणक की सुरक्षित स्मरण-क्षमता 18 टुकड़ों में 16,000 शब्द ग्रहण कर सकती है। साथ ही, वह से सम्प्रेषित 1,024 निर्देश संग्रह कर सकती है। इससे अन्तरिक्षयान रोसमन (नौर्थ कैरोलाइना) स्थित भूतलीय केन्द्र के साथ अपने दैनिक सम्पर्कों के बीच स्वयं संचालित रहेगा।

कोपरनिकस अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष में स्थापित परिक्रमागत खगोलीय वेधशालाओं की शृंखला में चौथी और अन्तिम वेधशाला है ।

चमगादड़ जैसी शक्ल वाला कोपरनिकस अन्तरिक्षयान बड़ी आसानी से अन्तरिक्षीय कक्षा में पहुँच गया, जो इसके लिए पहले से निर्धारित कक्षा के लगभग समान ही थी । कक्षा में पहुँच जाने पर यह अपने बुझे हुए राकेट से पृथक् हो गया और इसने अपने और-पैनलों को फैला दिया । ये पैनेल सौर विकिरण को बिजली में परिवर्तित कर देते हैं, जिससे अन्तरिक्षयान पर रखे गये यन्त्र चालू होते हैं ।

१९७२ के नोबेल पुरस्कार जीतने वाले वैज्ञानिक

आशा की जाती है कि भेषजशास्त्र, भौतिकशास्त्र और रसायनशात्र के क्षेत्रों में जिन उल्लेखनीय खोजों पर 1972 के नोबेल पुरस्कार दिये गये हैं, उनका आगामी दशकों में मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ेगा ।

भेषजशास्त्र का पुरस्कार एक अमेरिकी और एक अंग्रेज में बाँटा गया है । इस दोनों ने अलग-अलग रूप में पहली बार ऐसे अनुसन्धान किये, जिनसे रोग के विरुद्ध शरीर की प्राकृतिक बचाव-व्यवस्था को समझने में उल्लेखनीय योग मिला है ।

मानव तथा अन्य प्राणियों की इस मूलभूत क्रिया के बारे में नई जानकारी से कैन्सर तथा अन्य प्रमुख रोगों के अधिक अच्छे उपचार के लिए खोज करने में महत्वपूर्ण मदद मिलेगी ।

इस अनुसन्धान से उन प्रयत्नों में प्रगति होने की भी आशा की जाती है, जो शरीर की उन अन्त:क्रियाओं को प्रभावहीन बनाने के लिए किये जा रहे हैं जिनके कारण शरीर बाहरी तत्वों को ग्रहण नहीं कर पाता और जिनके फलस्वरूप रोगी के शरीर में किसी दूसरे प्राणी के हृदय, गुर्दे तथा अन्य अंग को लगाने में रुकावट पड़ती है ।

भौतिकशास्त्र का पुरस्कार तीन अमेरिकियों में बाँटा गया है । यह पुरस्कार उस कार्य पर दिया गया है जिससे बिजली के स्वरूप पर नया प्रकाश पड़ रहा है और जिससे सम्भवत बिजली-उद्योग में बिजली के उत्पादन और उसे पहुँचाने की नई विधियाँ निकल सकेंगी ।

रसायनशास्त्र का पुरस्कार भी तीन अमेरिकियों को संयुक्त रूप से मिला है । यह पुरस्कार उन तत्वों की आधारभूत खोज पर दिया गया है जिनके कारण वंशानुगत विशेषताएँ एक के बाद दूसरी पीढ़ी में जाती हैं । इस जानकारी से सम्भवत: शारीरिक विरासत पर रासायनिक नियन्त्रण का मार्ग खुल जाये और पैतृक रोगों की रोकथाम और उनका उपचार हो सके ।

यह पाँचवाँ अवसर है कि किसी एक ही देश के वैज्ञानिकों को एक ही वर्ष में विज्ञान के तीनों क्षेत्रों में पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । 1946, 1969 और 1968 में भी अमेरिका को इसी प्रकार पुरस्कार मिले थे और जर्मनी ने 1905 में तीनों पुरस्कार जीते थे ।

1972 के नोबेल पुरस्कार-विजेताओं में इलिनौय विश्वविद्यालय के डॉ० जौन बारडीन भी हैं । वह पहले व्यक्ति हैं जिन्हें भौतिकशास्त्र में दो नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । उन्हें 1956 में ट्रांजिस्टरों का आविष्कार करने पर भी नोबेल पुरस्कार में हिस्सा मिला था । उनका यह आविष्कार आधुनिक विद्युदाणविक विज्ञान का आधार बन गया और जैबी रेडियों सहित छोटे और शीतल विद्युदाणविक उपकरणों के निर्माण ने तकनीकी विद्या में एक क्रान्ति ला दी ।

भेषजशास्त्र का नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए न्यूयार्क के रौकफेलर विश्वविद्यालय के 43-वर्षीय डा० जेराल्ड एम० ऐडलमैन और इंगलैण्ड के औक्सफौर्ड विश्वविद्यालय के 55 वर्षीय डा० रोडनी पोर्टर ने अब तक ज्ञात सबसे बड़े जैविक व्यूहाणु की बनावट का रहस्योद्घाटन किया और इस प्रकार पहली बार बतलाया कि मानव शरीर द्वारा उत्पन्न रोग-प्रति-कारक तत्व (एण्टीबौडीज) किस प्रकार रोगजनक तत्वों पर आक्रमण करके उन पर काबू पाते हैं ।

उनकी खोज के परिणामस्वरूप शायद अन्त में ऐसे रोग-प्रतिकारक तत्वों की रचना की जा सके जो विशेष किस्म के कैन्सर जैसी विशिष्ट बीमारी की रोकथाम कर सकें, अतिसंवेदनशीलता (एलर्जी) के विरुद्ध शरीर के प्रयत्नों को सहारा दिया जा सके, रोग उत्पन्न करने वाले विभिन्न प्रकार के विषाणुओं और जीवाणुओं के विरुद्ध रोग-प्रतिकारक तत्वों की प्रभाव-कारिता बढ़ाने के लिए उनकी बनावट में थोड़ा परिवर्तन किया जा सके या प्रयोगशाला में संश्लेषित (कृत्रिम) रोग-प्रतिकारक तत्व तैयार किये जा सकें।

रोग-प्रतिकारक तत्वों की बनावट जान लेने के बाद, वैज्ञानिकों के लिए अब यह सम्भव हो जायेगा कि वे किसी विशेष रोग-प्रतिकारक तत्व की क्रिया को रोकने के लिए दवाएँ तैयार कर सकें जिससे रोगी के शरीर में किसी अन्य शरीर का गुर्दा, हृदय या अन्य कोई अंग लगाने पर उसे हानि न पहुँच सके।

भौतिकशास्त्र में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले तीन वैज्ञानिकों—प्रोविडेन्सके ब्राउन विश्वविद्यालय के 49-वर्षीय डा० बारडीन और 42-वर्षीय डा० लियों एन० कूपर तथा पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय (फिला-डेल्फिया) के 41-वर्षीय डा० जैन आर० श्राइफर ने अतिसंवाहकता (सुपरकण्डक्टिविटी) पर प्रकाश डालने वाला सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसकी खोज पहले-पहल 1911 में डच भौतिकशास्त्री कैमरलिंग ओन्स ने की थी।

कुछ धातुओं को जब बहुत ठंडा कर दिया जाता है तो उनमें विद्युतधारा का प्रतिरोध करने की शक्ति बिलकुल नहीं रहती, यहाँ तक कि धातु के एक छल्लेनुमा टुकड़े में विद्युत धारा कम हुए बिना लगातार प्रवाहित होती रहती है। इन तीन वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त के सामने आने से पहले इस बात का कारण एक रहस्य बना हुआ था।

इस बात का पता चल जाने के बाद अब वैज्ञानिक ऐसे तरीके खोज रहे हैं जिससे इस विशेषता को कम ठंडी हुई धातुओं में भी उत्पन्न किया जा सके ताकि बिजली के उद्योग में अधिक अनुकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत इससे काम लिया जा सके। इस सिद्धान्त का उपयोग बिजली के इंजनों और जेनरेटरों के निर्माण में किया जा रहा है।

रसायनशास्त्र में आधा पुरस्कार राजधानी वाशिंगटन के निकटवर्ती 'यू० एस० नेशनल इन्स्टिट्यूट्स औव् हैल्थ' के 56-वर्षीय डा० क्रिश्चियन बी० एनफिन-सन को और शेष आधा न्यूयार्क स्थित रॉकफेलर विश्वविद्यालय के 59-वर्षीय डा० स्टैनफर्ड मूर और 61-वर्षीय विलियम एच० स्टीन को संयुक्त रूप से दिया गया है।

डा० एनफिनसन को यह पुरस्कार पित्र्यसूत्र (क्रोमोसोम) और पित्र्यैक (जीन) की प्रक्रिया का अध्ययन करने पर दिया गया है। डा० मूर और डा० स्टीन ने राइबोन्यूक्लीज का विश्लेषण करने पर इसे हासिल किया है। राइबोन्यूक्लीज एक ऐसा तत्व है जो कोषाणुओं की महत्वपूर्ण क्रियाओं को प्रारम्भ करने में योग देता है।

सात अमेरिकी पुरस्कार-विजेताओं में से चार ऐसे हैं जिनकी आयु 40 और 50 वर्षों के बीच हैं और इस प्रकार वे इस सम्मान को प्राप्त करने वाले सबसे कम आयु के व्यक्तियों में से हैं। 1950 के बाद अमेरिकियों ने शरीर-क्रिया विज्ञान अथवा भेषजशास्त्र में 17 नोबेल पुरस्कार या तो जीते अथवा उनमें भागीदार बने। इसी प्रकार 1955 के बाद भौतिकशास्त्र में उन्होंने 12 पुरस्कार जीते या उनमें भागीदार बने। 1951 के बाद रसायनशास्त्र में अमेरिकियों ने 8 नोबेल पुरस्कार प्राप्त किये हैं।

ज्ञान विज्ञान

क्या १० वां ग्रह है ?

क्या सौर मंडल में किसी दसवें ग्रह का अस्तित्व है ? यदि है तो क्या उस पर प्राणी भी हैं ?

आज से 42 वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने सौरमन्डल के नवें ग्रह 'प्लूटो' की खोज की थी। लेकिन इसकी खोज के बाद भी, कुछ खगोलशास्त्री बराबर यह कहते रहे हैं कि सौरमन्डल में 10वाँ ग्रह—प्लेनेट-एक्स—भी है तथा यह प्लूटो से भी अधिक दूरी पर है। लेकिन, वैज्ञानिक प्रमाणों के अभाव के कारण इन खगोल-शास्त्रियों की मान्यता पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

अब, लारेन्स लिवरमोर प्रयोगशाला (कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय) के श्री जोजेफ एल॰ ब्रूँडी ने इस दसवें ग्रह को खोज लेने का दावा किया है। उनका कथन है कि वह इस ग्रह को दूरवीक्षण यन्त्र या फोटो द्वारा भले ही न देख पाते हों परन्तु विद्युद्गणु-गणनायन्त्रों और तर्कों द्वारा इसकी विद्यमानता प्रमाणित की जा सकती है।

किस प्रकार ? श्री ब्रैंडी ने हेली के पुच्छल तारे के यात्रा-पथ का विश्लेषण किया है। यह पुच्छल तारा कई बार हमारे सौरमन्डल में दृष्टिगोचर होता है और इसकी गतिविधियों में कुछ विचित्र अनियमितताएँ दीखती हैं।

श्री ब्रैंडी का कहना है कि पुच्छल तारे के यात्रा-पथ में जो विचित्र अनियमितता कभी-कभी दृष्टिगोचर होती है, उसका मुख्य कारण उस ग्रह की गुरुत्वाकर्षण शक्ति होनी चाहिए जिसकी कक्षा प्लूटो की कक्षा से भी आगे है। उनका कहना है कि विद्युदणु गणनायन्त्रों के अनुसार भी हेली पुच्छल तारे का विचित्र आचरण के लिए कोई 'प्लैनेट-एक्स' उत्तरदायी हो सकता है। लेकिन, इस 'प्लेनेट-एक्स' की बनावट अन्य उपग्रहों से सर्वथा भिन्न और कक्षा सूर्य से कम से कम 10 अरब किलोमीटर दूर होनी चाहिए।

सबसे मीठा पदार्थ

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने वस्तुओं को मीठा करने के लिए कम कैलोरी वाले ऐसे नये पदार्थ की खोज की है, जो चीनी की तुलना में 3,000 गुना अधिक मीठा है। इस नये मधुर तत्व की खोज पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के मोनेल कैमिकल सेन्सेज सेन्टर के दो वैज्ञानिकों—डा॰ जेम्स ए॰ मोरिस और ड॰ रौबर्ट एच॰ कागन—ने की है। उन्होंने अफ्रीका में उगने वाली जंगली लाल बेरी से इस मधुर तत्व को प्राप्त किया है। उन्होंने इस नये प्राकृतिक मधुर तत्व का नाम "मोनीलिन" रखा है।

सैकरीन जैसे कृत्रिम मधुर तत्वों की तुलना में, मोनीलिन बहुत आसानी से घुल जाता है। यह एक प्रकार का प्रोटीन है और बहुत आसानी से हजम हो जाता है। डा॰ कागन के अनुसार यह पहला प्रोटीन तत्व है, जिसका स्वाद ही मधुर नहीं है, बल्कि जो अब तक ज्ञात सबसे अधिक मधुर प्राकृतिक तत्व है।

बिना सुई वाला फोनोग्राफ

अमेरिका की एक फर्म ने एक ऐसा रिकार्ड प्लेयर तैयार किया है, जिसमें रिकार्ड बजाने के लिए सूई की जरूरत नहीं पड़ती।

सूई के स्थान पर एक बहुत ही सूक्ष्म प्रकाश-किरण का इस्तेमाल किया जाता है। यह सूक्ष्म प्रकाश-किरण

एक लैंस के द्वारा रिकार्ड पर बनी लीकों पर केन्द्रित की जाती है। लीकों से टकरा कर यह प्रकाश-किरण ध्वनि में बदल जाती है।

एक सामान्य रिकार्ड प्लेयर के पिकअप में एक सुई फिट की जाती है और फिर यह पिकअप घूमते हुए रिकार्ड की लीक पर साध दिया जाता है। गतिशील लीकों में सुई द्वारा कम्पन उत्पन्न होता है और यही कम्पन ध्वनि-तरंगों के रूप में बदल जाते हैं।

उक्त फर्म के प्रवक्ता के अनुसार नये रिकार्ड प्लेयर की सतह पर किसी प्रकार की रगड़ नहीं लगती इसलिए रिकार्ड के घिसने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सुई-रहित रिकार्ड प्लेयर से बहुत ही तेज ध्वनि निकलती है और चूँकि इसके कारण रिकार्ड घिसता नहीं, इसलिए रिकार्ड का जीवन काफी बढ़ जाता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अन्तरिक्षयान को उल्कापिन्डों से शायद ही कोई नुकसान पहुँचे। उस अन्तरिक्षयान की यात्रा से जो अनुभव प्राप्त होगा उससे पहली बार यह मालूम किया जा सकेगा कि इस क्षेत्र में यात्रा करते हुए कितनी कठिनाइयों और खतरों का सामना करना पड़ सकता है। अभी तक केवल पृथ्वी पर स्थित या पृथ्वी की कक्षा में स्थापित यन्त्रों की सहायता से इन सम्भावित खतरों का अध्ययन किया गया है।

'पायोनियर-एफ' अगले वर्ष ३ दिसम्बर को बृहस्पति ग्रह के सबसे निकट पहूँचेगा।

क्या शिशु सोचता है ?

अमेरिकी मनोविज्ञानशास्त्री जेरोम कागन की राय है कि छोटे शिशु उससे कहीं अधिक सोचते हैं जितना मनोविज्ञानशास्त्री समझते हैं। डॉ० कागन हार्वर्ड विश्वविद्यालय (मौसचूसेट्स) में सामाजिक सम्बन्धों के प्रोफेसर हैं।

बाल-विकास के शिक्षार्थियों की चिरकाल से यह धारणा है कि शिशु अपने जन्म के बादपहले 18 महीनों में संसार को केवल अपनी इन्द्रियों से और शरीर की क्रियाओं से ही महसूस करता है। इस अरसे में लुढ़कने बैठने, रेंगने और चलने की क्रियाएँ करता है और स्नायुओं, मांसपेशियों व अन्य शारीरिक प्रणालियों में परिपक्वता आने के साथ-साथ प्रगति करता है। अब तक वैज्ञानिक यही मानते थे कि इस अरसे के बाद ही उसमें विचार-चिन्तन प्रारम्भ होता है।

डॉ० कागन और उनके सहयोगियों ने अब यह निश्चय किया है कि कुछ विचार-चिन्तन शिशु की केन्द्रीय स्नायु-प्रणाली से जुड़ा होता है और जब वह 9 महीने का हो जाता है तब उसकी शारीरिक गति-विधियों में दक्षता आने के साथ ही उस विचार-चिन्तन में परिपक्वता आने लगती है।

परीक्षणों से विदित हुआ है कि जब शिशु दो मास का हो जाता है तब वह घटनाओं और पदार्थों के सम्बन्ध में मानसिक प्रभाव बनाने लगता है। अगले 6 महीनों में वह घटनाओं और पदार्थों पर जो ध्यान देता है वह पहले के प्रभावों से हलके-हलके भिन्न होता है।

फिर लगभग 8 या 9 महीने की आयु में शिशु में सक्रिय मानसिक क्रिया के ऐसे पहले चिन्ह दीख पड़ते हैं जिन्हें मापा जा सकता है। डॉ० कागन कहते हैं कि तब शिशु नवीन घटनाओं का स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ कल्पनाएँ करने का अर्थात् समस्याओं को हल करने का यत्न करता है।

मनोविज्ञान-वेत्ता कहते हैं कि इस नई जानकारी से कि शिशु एक वर्ष की आयु होने से भी पहले सोचते हैं, यह निष्कर्ष निकलता है कि पालन-पोषण की भिन्न अनुभूतियों से बच्चे के मनोवैज्ञानिक विकास पर वर्तमान धारणा की अपेक्षा बहुत पहले असर होता है।

संकरज विषाणु से फ्लू का नया टीका

अमेरिका के वाशिंगटन-स्थित तीव्रग्राहिता (ऐलर्जी) और संक्रामक रोगों के राष्ट्रीय 'संस्थान' के वैज्ञानिकों ने श्लेष्माज्वर (इन्फ्लूएन्जा) का एक नई किस्म का टीका निकाला है जिससे सम्भवतः इस दुर्बलताकारी और प्राणघातक रोग का व्यापक संक्रमण समाप्त हो जायेगा।

नये टीके में रोगों का प्रतिरोध करने के लिए जीवित किन्तु क्षीण विषाणुओं से काम लिया जाता है।

अब तक जो टीके प्रयुक्त किये जाते हैं उन्हें निर्जीव विषाणुओं से तैयार किया जाता है।

दोनों किस्मों के टीकों का मूल सिद्धान्त एक ही है : यानी झूठे खतरे की घंटी बजाना और शरीर की रक्षात्मक प्रणाली से ऐसी विष-प्रतिरोधी शक्ति पैदा करने की तीव्र क्रिया करवाना जो श्लेष्माज्वर के विषाणुओं को नष्ट कर सके। विष-प्रतिरोधी क्षमता के कारण रोगसंक्रमण रुक जाता है।

क्षीण विषाणु असल में इन्फ्लूएन्जा का संकरज विषाणु होता है। आम तौर पर सबल विषाणु नाक के रास्ते से फेफड़ों में पहुँचते हैं और वहाँ रोग का संचार करते हैं। नया संकरज विषाणु मनुष्य के फेफड़ों की गर्मी नहीं सहन कर सकता, किन्तु वह नाक और गले के अपेक्षाकृत कम तापमान में पनपता है। शरीर के इन नाजुक अवयवों में विषाणुओं की उपस्थिति से शरीर को ऐसा विष-प्रतिरोधी द्रव्य पैदा करने की प्रेरणा होती है जिससे शरीर में प्रवेश करने वाले सबल विषाणु तक मर जायें।

पुराने टीके की तुलना में नये टीके में एक लाभ यह है कि उसे रक्त-प्रवाह में प्रविष्ट करने की जरूरत नहीं। बाँह में सुई लगाने के बजाय नाक में बूंदें डालने से काम चल जायेगा।

'फ्लू' के निर्जीव विषाणुओं वाले सामान्य टीके को बहुत प्रभावकारी नहीं माना जाता। उससे रोग के मामूली लक्षण—सिरदर्द हलका बुखार और मिचली होने की शिकायतें होती हैं। किन्तु परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि नया टीका न केवल प्रभावकारी है बल्कि उससे वे शिकायतें भी नहीं होतीं।

'फ्लू' के विषाणु तत्काल नवोत्पत्ति में समर्थ होते हैं। फलस्वरूप जिस व्यक्ति में एक किस्म के फ्लू के विषाणुओं की प्रतिरोध-क्षमता होती है उस पर दूसरी किस्म के विषाणु प्रहार कर सकते हैं।

अमेरिकी संस्थान वैज्ञानिकों का कथन है कि जहाँ विषाणु की किसी नई किस्म से कोई रोग हुआ हो वहाँ वे महामारी उत्पन्न करने वाली विशिष्ट नस्ल का उपयोग करके झटपट एक संकरज विषाणु तैयार कर सकते हैं और इस रोग के फैलने की रोकथाम कर सकते हैं।

धूम्रपान के खतरे

सिगरेट पीने से स्वास्थ्य को होने वाले खतरों के बारे में भारत में व्यापक रुप से चिन्ता व्यक्त की जा रही है। अब यह सिद्ध हो गया है कि कुछ बीमारियाँ ऐसी हैं जो धूम्रपान करने वालों में ही ज्यादा हैं और धूम्रपान न करने वालों में कम पाई जाती हैं। लगातार धूम्रपान करने से फेफड़े के कपाटों (वाल्वों) को क्षति पहुँचती है तथा रुधिर वाहिकाओं को भी क्षति पहुँचती है जो फेफड़ों को सफाई के लिए खून पहुँचाती हैं। ऐसे मामलों में हृदय पर ज्यादा जोर पड़ता है। इससे हृदय पर खिंचाव पड़ता है और उसका नतीजा यह होता है कि आदमी थकावट महसूस करने लगता है और उसे साँस लेने में दिक्कत होने लगती है।

विशेषज्ञों का मत है कि फेफड़े का कैंसर धूम्रपान से होता है। वैसे फेफड़े के कैंसर का धूम्रपान से संबंध स्थापित करने के लिए अभी तक कोई प्रमाण तो नहीं मिला लेकिन आंकड़ों से यह पता चलता है कि धूम्रपान से मनुष्य के फेफड़ों में कैंसर होने की संभावनाएँ ज्यादा रहती हैं। इसके अलावा मनुष्य जितना अधिक धूम्रपान करेगा कैंसर की संभावनाएँ उतनी ही अधिक होंगी।

अमरीका में धूम्रपान और स्वास्थ के बारे में किए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि 14 घातक बीमारियों में धूम्रपान करने वालों की मृत्यु दर धूम्रपान न करने वालों की मृत्यु दर से ड्योढ़ी है। भारत में भी अनेक-अध्ययन किए गए हैं और उनसे पता चला है कि :—

1. भारत में कैंसर के रोगी कम हैं किन्तु उनकी संख्या बढ़ रही है। 1950 में कैंसर के रोगी प्रति हजार 16.9 थे और 1959 में प्रति हजार 26.9।
2. तम्बाकू खाने और धूम्रपान से जीभ और मुँह का कैंसर होता है।
3. बीड़ी पीने से ग्रास नली और उसके आसपास

के अवयवों में कैंसर होता है। ज्यादा और लगातार तम्बाकू खाने से पाचन अंगों के ऊपरी हिस्सों में कैंसर होता है।

यह भी देखा गया है कि धूम्रपान त्यागने से कैंसर के आसार धीरे-धीरे कम होने लगते हैं।

सबके लिये पोषक खाद्य

पोषण के बारे में हम सब भी काफी हद तक अनभिज्ञ हैं। उत्पादन से उपभोक्ता तक पहुँचते-पहुँचते भोजन के अनेक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। इस हानि को कम से कम करने के लिये कीटनाशी उपचार डिब्बाबन्दी, परिरक्षण की अनेक विधियाँ खोजी गई। धीरे-धीरे खाद्य समाधन उद्योग स्वतन्त्र उद्योग बन गया और आज हमारे देश में भी यह सबसे बड़ा स्वतन्त्र उद्योग है। पर इस उद्योग की अधिकांशतः इकाइयां बहुत छोटी-छोटी हैं।

भारत में मैसूर का केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान इस दिशा में विशेष सेवारत हैं। यह संस्थान अपनी स्थापना काल से ही देश के खाद्यान्न स्रोतों के अधिकाधिक विकास में योगदान दे रहा है जिसकी अब देशवासियों को पर्याप्त मात्रा में सन्तुलित भोजन मिल सके। खाद्यान्नों के भण्डारन, परिरक्षण, समाधन, डिब्बा बन्दी आदि की बेहतर विधियाँ विकसित करना इस संस्थान के प्रमुख कार्य हैं। देश में उपलब्ध ऐसे स्रोतों से, जिनका अभी तक उपयोग नहीं किया जा रहा है, पोषक और पूरक खाद्य तैयार करने में यह संस्थान विशेष रूप से रुचि लेता है।

संस्थान ने गहन अनुसन्धान के बाद यह सिद्ध कर दिखाया है कि मग के दूध से भी शिशुओं के लिए पोषक और जल्दी पचने वाले खाद्य तैयार किये जा सकते हैं। पहले भैंस के दूध से ऐसे खाद्य तैयार करना असम्भव समझा जाता था। संस्थान द्वारा की गई इस खोज के फलस्वरूप देश में दुग्ध आधारित शिशु आहार निर्माण उद्योग बहुत फल-फूल रहा है और अब हमें दूध के बने शिशु आहार आयात नहीं करने पड़ते जिससे प्रतिवर्ष लगभग नौ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

संस्थान से तेलहन और दलहन जैसे सस्ते वनस्पति स्रोतों से, जिनका अभी तक पूर्ण उपयोग नहीं होता है और जो देश में बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं, उच्च-प्रोटीन खाद्य निकसित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस दिशा में अनेक उत्पाद, विशेष रूप से शिशुओं, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए, विकसित किये गये हैं।

खाद्यान्न और उनका भण्डारन

हमारे देश की खाद्य समस्या को जटिल बनाने का एक सबसे बड़ा कारण है चूहों, कीड़ों आदि द्वारा अनाज की बरबादी। कहा जाता है कि '6 चूहे मिल कर उतना ही अनाज खाते और बरबाद कर देते हैं जितना एक आदमी खाता है।

अब भी देश में जितना अनाज उत्पन्न होता है उसका लगभग दो-तिहाई भाग किसान अपने घरों आदि में भण्डारित कर लेते हैं। गरीब और आधुनिक तकनीकों में अनभिज्ञ होने के फलस्वरूप किसानों के पास अच्छे गोदाम नहीं होते और भण्डारन से बहुत बड़ी मात्रा से अनाज बरबाद हो जाता है।

भण्डारन के दौरान अनाज को कीड़ों, चूहों आदि से सुरक्षित रखने के लिए मैसूर के खाद्य अनुसंधान संस्थान ने 'ड्यूरोफ्यूम' नामक धुआवन (फ्युमिगेशन) विधि विकसित की है। यह विधि काफी प्रभावशाली है। थोड़ी मात्रा में भण्डारित अनाज, दलहन और बीजों को कीड़ों से बचाने के लिए 'मिनीफ्यूम' टिकियायें बहुत उपयोगी पायी गई हैं। सन् के बोरों को नाशक कीटों से बचाने के लिए कीटनाशी इमलशन तैयार किया गया है।

विज्ञान समाचार

दुर्घटना रोकथाम हेतु टायर अलार्म

जापान की एक फर्म ने गाड़ी के टायरों में खराबी के कारण होने वाले दुर्घटनाओं की रोकथाम हेतु एक ऐसे किस्म की अलार्म युक्ति विकसित की हैं जो टायरों में किसी भी किस्म का नुक्स जैसे वायुदाब में कमी, ताप की अधिकता इत्यादि होते ही चालक को इसकी सूचना देने लगती है।

इस युक्ति के आविष्कारक फर्म, नियान मोटर कं० के अनुसार उत्तम कार्यक्षमता के अतिरिक्त यह युक्ति अत्यन्त टिकाऊ भी है।

इमली की पत्तियों से अम्ल

क्षेत्रीय अनुसन्धान प्रयोगशाला, जोरहट (असम) ने एक ऐसा प्रयंत्र विकसित किया है जिससे इमली की पत्तियों से ही टार्टरिक अम्ल व्यापारिक स्तर पर प्राप्त किया जा सकता है।

टार्टरिक अम्ल एक रसायन है जिसका उपयोग अमादक पेय, मिठाइयाँ बेकारी उत्पाद इत्यादि के अतिरिक्त फोटोग्राफी, चमड़ा कमावन, चीनी-मिट्टी और टार्टरेट रसायनों के उत्पादन भी होता है। वस्त्रों पर छपाई हेतु प्रयुक्त एस्टर भी इसी से तैयार किये जाते हैं।

विदेशों में यह शराब उद्योग से उप-उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। शराब का अपेक्षाकृत कम उत्पादन होने के कारण भारत में इसे इस स्रोत से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

देश से टार्टरिक अम्ल उत्पादन हेतु कच्चा माल इमली की पत्तियाँ व अन्य रसायन से उपलब्ध है। वस्तुतः यह एक ऐसा प्रक्रम है जो छोटे उद्योगपत्तियों के लिए काफी मुनाफे का सिद्ध हो सकता है क्योंकि भारत में टार्टरिक अम्ल की भारी खपत है।

सर्दी के घाव तथा उनका उपचार

बहुत सर्दी से शरीर के खुले अंगों पर घाव हो जाते हैं। ऊँचे स्थानों पर, जहाँ तापमान बहुत कम रहता है, रहने वाले सैनिकों के लिए के घाव बहुत भयंकर सिद्ध हुए हैं।

दिल्ली की आल इंडिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल साईसेस, सेना चिकित्सा सेवा तथा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सहयोग से 1963 से इस बारे में अध्ययन कर रहा है। इस अध्ययन के यह पता चलता है कि सर्दी से स्नायविक प्रणाली में कुछ परिवर्तन आ जाता है।

इन घावों पर अनेक दवाएँ तथा भेषज-शास्त्रीय तरीके आजमाए गए और अब इनके इलाज के लिए बढ़िया दवा तैयार कर ली गई है।

सूर्य से बिजली

भविष्य की बिजली सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिन अनेक सुझावों पर विचार किया जा रहा है उनमें से एक सौर बिजलीघर का सुझाव भी है। इसके द्वारा सूर्य के चिकित्सा को बिजली में परिणत करके पृथ्वी पर सम्प्रेषित और प्रयुक्त किया जायेगा। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने बताया है कि 10,000 मेगा वाट बिजली पैदा करने के लिए 1200 टन का उपग्रह तैयार किया जायेगा। इतनी बिजली बड़े से बड़े नगर की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होगी। वैज्ञानिकों का मत है कि इस प्रकार के उपग्रहों के संजाल के समूचे संसार में दूषण विहीन बिजली मिल सकेगी।

आवश्यक सूचनाएँ

1—विज्ञान-परिषद् एक स्वर्ण पदक वर्ष की विज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्तम प्रकाशित पुस्तक के लेखक को प्रदान करता है। इस पदक का नाम 'स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक' है।

2—विज्ञान परिषद् एक अन्य स्वर्ण-पदक विज्ञान-परिषद् अनुसन्धान पत्रिका में प्रकाशित सर्वोत्तम शोध-पत्र के लेखक को भी प्रदान करता है। यह पदक 'श्रीमती डा० रत्नकुमारी स्वर्ण-पदक' के नाम से है तथा हर तीसरे वर्ष विज्ञान परिषद् द्वारा प्रदान किया जाता है।

नोट—उपरोक्त दोनों पुरस्कारों के लिए आवश्यक विज्ञापन 'विज्ञान' के आगामी अंक में देखें।

3—'विज्ञान' के पुराने अंकों की अनेकों प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्रत्येक वर्ष के सभी अंक-समूहों के लिए मूल्य केवल 4 रु०।

अग्रिम राशि भेज कर अथवा वी० पी० द्वारा 'विज्ञान' के इन अंकों को मंगाकर लाभान्वित हों।

4—जिन महानुभावों का 'विज्ञान' का वार्षिक शुल्क अभी आना शेष है वे कृपया वार्षिक शुल्क यथाशीघ्र भेजने का कष्ट करें अन्यथा आगामी जनवरी 1973 से परिषद् को बाध्य होकर उनका नाम सूची से निलम्बित करना होगा।

—संपादक

'विज्ञान परिषद्' माननीय न्यायाधीश श्री हरिश्चन्द्र जी के आकस्मिक निधन पर गहरा शोक प्रकट करती है।

श्री हरिश्चन्द्र जी का आरम्भ से ही परिषद् के उन्नयन में विशेष सहयोग रहा है तथा 1947 से 1951 तक वे परिषद् के सभापति थे।

समस्त 'विज्ञान'-परिवार इस दिवंगत महान् आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 111	कार्तिक 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द नवम्बर 1972	संख्या 11

प्राचीन भारत में उज्जयिनी के आचार्य व्याडि का रसायन विज्ञान के क्षेत्र में योगदान

डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

अत्यन्त प्राचीन काल से ही विविध विद्याओं की केन्द्र उज्जयिनी नगरी, न केवल सान्दीपनि जैसे आचार्य, कालिदास जैसे कवि कुल गुरु एवं शृंगार-नीति वैराग्य-शतकत्रयकार भर्तृहरि जैसे राज-योगियों की साधना स्थली रही है वरन् यह सारस्वत-पुण्य-भूमि विज्ञान की रसायन तथा ज्योतिष शाखाओं के अपने युग के श्रेष्ठतम शास्त्रज्ञ, रसायनाचार्य व्याडि एवं ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की भी कर्म-स्थली रही है। प्रस्तुत लेख में हम उज्जयिनी के आचार्य व्याडि के संबंध में मुख्यतः ग्यारहवीं शताब्दी के विदेशी प्रवासी विद्वान् अलबेरुनी द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर विवेचन करेंगे।

महान् रसायनाचार्य व्याडि :

भारतीय रसायन के इतिहास से संबंधित देशी एवं विदेशी विद्वानों के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों का सावधानीपूर्वक किया गया अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि इन ग्रन्थों में उज्जयिनी के रसायनाचार्य व्याडि को उनका उचित स्थान एवं सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कई स्थलों पर व्याडि के नाम का उल्लेख आता है किन्तु कहीं भी उनके ग्रन्थ तथा जीवनी एवं उनकी देन के संबंध में व्यवस्थित तथा व्यापक जानकारी प्राप्त नहीं होती। अलबेरुनि ने अवश्य ही तीन सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ भानुयशस्, नागार्जुन एवं व्याडि के संबंध में अपने ग्रंथ में लिखते हुए व्याडि के संबंध में सर्वाधिक विवरण दिया है तथा उनको अधिकतम महत्ववाला तथा शताब्दियों तक सपत्नीक जीवित रहने वाला विद्वान् बताया है किन्तु व्याडि की रसायन संबंधी रचना के प्रति वह भी मौन हैं।

रस सिद्धों की शृंखला में व्याडि का भी नाम लेते हुए रस-रत्न-समुच्चयकार ने लिखा है—

> इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलि व्याडिरेव च ॥······
> ······सप्तविंशति संख्याका रससिद्धि प्रदायकाः ॥

किन्तु इससे अधिक जानकारी व्याडि के संबंध में रस रत्न समुच्चय में नहीं है। गुणाढ्य की वृहत्कथा में तथा कुछ परिवर्तित रूप में सोमदेव के कथा सरित सागर में व्याडि का नाम उज्जयिनी के विक्रमादित्य के समकालीन सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ के रूप में आया है तथा संबंधित लघु कथा अथवा किंवदन्ति भी दी गई है। पतंजलि ने व्याडि का संदर्भ देते हुए लिखा है।

"अपिशल पाणिनीय व्याडिय गौतमीया:"

रस रत्न प्रदीप में जो कि रामराजा द्वारा विरचित ग्रन्थ है, व्याडि के संबंध में कई संदर्भ मिलते हैं। आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय ने रसराज लक्ष्मी नामक ग्रन्थ का आधार लेते हुए व्याडि की प्रशंसा के संदर्भ में गरुड़ पुराण का निम्न श्लोकांश उद्धृत किया है—

"व्याडिर्जगाद: जगतो हि महा प्रभाव:, सिद्धो विदग्धहित तत्परया दयाल:"

शब्द कल्पद्रुम में व्याडि को कोषकार बताया गया है। हेमचंद्र ने व्याडि को विन्ध्यवासी एवं नन्दिनी तनय बताया है। दाक्षी के पुत्र पाणिनी एवं दक्ष के सबसे छोटे प्रपौत्र व्याडि बतलाये जाते हैं। राजशेखर के काव्य मीमांसा के उद्धरण से कि पाणिनी, पिंगल, व्याडि, वररुचि तथा पतंजलि ने पाटलीपुत्र में ही अपनी काव्यशास्त्रीय परीक्षाएं दी थीं, व्याडि साहित्यकार भी प्रतीत होते हैं। व्याडि के संग्रह से पतंजलि एवं भर्तृहरि ने कई उद्धरण दिये हैं। नागेश ने महाभाष्य पर कैयट की समालोचना पर अपने आलोचना ग्रंथ 'उद्योत' में व्याडि के संबंध में लिखा है कि उनके संग्रह में एक लाख श्लोक हैं। व्याडि का एक ग्रन्थ उत्पलिनि भी माना गया है, जिसके उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। इस सब विवरण से सहज ही यह प्रश्न उठता है कि साहित्यिक एवं वैज्ञानिक व्याडि, भिन्न-भिन्न व्यक्ति तो नहीं थे ? दोनों को एक ही दर्शाने वाला स्पष्ट संदर्भ प्राप्य नहीं है। चूँकि यह कहा जाता है कि व्याडि का चमत्कार महाराजा विक्रमादित्य ने अपनी आँखों से देखा था, व्याडि के संबंध में विक्रमादित्य के समकालीन होने की धारणा परिपुष्ट होती है, किन्तु फिर भी निश्चयात्मक रूप से व्याडि के काल का निर्णय एक समस्या ही मानी जानी चाहिये।

व्याडि के संबंध में अलबेरूनी—

अलबेरुनि के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, "अलबेरुनि का भारत" के आधार पर हम व्याडि के संबंध में उनकी जानकारी तथा उनके द्वारा वर्णन की गई किंवदन्ति का विवेचन करें। अलबेरुनि लिखते हैं कि, "राजा विक्रमादित्य के समय में उज्जैन नगर में व्याडि नामक एक मनुष्य रहता था। उसने रसायन विधा पर पूरा ध्यान दिया था और इसके कारण अपना जीवन और सम्पत्ति दोनों नष्ट कर डाले थे। परन्तु उसके सारे परिश्रम से उसे इतना भी लाभ नहीं हुआ कि वह ऐसी चीजें ले सके, जिनका लेना साधारण अवस्थाओं में भी बहुत सुगम होता है। हाथ के तंग हो जाने से उसे उस विषय से घृणा हो गई, जो इतने समय तक उसके सारे उद्यम का उद्देश्य बना रहा था और वह एक नदी (शिप्रा ?) के तट पर बैठकर शोक और निराशा से विश्वास (निश्वास ?) छोड़ने लगा। उसने अपने हाथ में वह भेषज संस्कार ग्रंथ पकड़ लिया जिसमें से वह अपनी औषधियों के लिये व्यवस्था पत्र लिया करता था और उसमें से एक-एक पत्र फाड़कर जल में फेंकने लगा। उसी नदी के किनारे नीचे की तरफ कुछ दूर पर एक वेश्या बैठी थी। उसने पत्रों को बहते देख कर पकड़ लिया और रसायन संबंधी कुछ एक पत्रों को बाहर निकाल लिया। व्याडि की दृष्टि उस पर उस समय पड़ी जबकि पुस्तक के सारे पत्र उसके पास से जा चुके थे। तब वह स्त्री उसके पास आई और पुस्तक को फाड़ डालने का कारण पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया, क्योंकि मुझे इससे कुछ लाभ नहीं हुआ, मुझे वह चीज नहीं मिली जो कि मुझे मिलनी चाहिये थी। मेरे पास प्रचुर धन था, पर इससे मेरा दिवाला निकल गया। इतनी देर तक सुख प्राप्ति की आशा में रहने के अनन्तर अब मैं दु:खी हूँ। वेश्या बोली उस व्यापार को मत छोड़ो जिसमें तुमने जीवन व्यतीत किया है,

उस बात के सम्भव होने में सन्देह मत करो जिसको तुम्हारे पूर्ववर्ती ऋषियों ने सत्य बताया है। तुम्हारी कल्पनाओं की सिद्धि में जो बात है, वह शायद नैमितिक है जो अकस्मात ही दूर हो जावेगी। मेरे पास बहुत सा नकद धन है, आप इसे ले लीजिए और अपनी कल्पना सिद्धि में लगाइये। इस पर व्याडि ने फिर अपना काम शुरू कर दिया।

परन्तु इस प्रकार की पुस्तकें पहेलियों के रूप में लिखी हुई हैं इसलिये उससे एक औषधि के व्यवस्था-पत्र का एक शब्द समझने में भूल हो गई। उस शब्द का अर्थ यह था कि तेल और नर रक्त दोनों की इसके लिये आवश्यकता है। यह रक्तामल लिखा था जिसका अर्थ उसने लाल आमलक समझा। जब उसने औषधि का प्रयोग किया तो उसका कुछ भी असर न हुआ। अब वह विविध औषधियाँ पकाने लगा, परन्तु अग्निशिखा उसके शिर से छू गई और उसका मस्तक जल गया। इसलिये उसने अपनी खोपड़ी पर बहुत सा तैल डाल कर मला। एक दिन वह किसी काम के लिये भट्टी से बाहर उठ कर जाने लगा। ठीक उसके सिर के ऊपर छत में एक मेख बाहर को निकली हुई थी। उसका सिर उसमें लगा और रक्त बहने लगा। पीड़ा होने के कारण वह नीचे की ओर देखने लगा। इससे तेल के साथ मिले हुए रक्त के कुछ बिन्दु उसकी खोपड़ी के ऊपरी भाग से देगची में गिर पड़े, पर उसने इन्हें गिरते हुए नहीं देखा। फिर जब देगची पक चुकी तो उसने और उसकी स्त्री ने क्वाथ की परीक्षा करने के लिये उसे अपने शरीरों पर मल लिया। इसके मलते ही वे दोनों वायु में उड़ने लगे। विक्रमादित्य इस घटना को सुनकर अपने प्रासाद से बाहर निकला और अपनी आँखों से उन्हें देखने के लिये चौक में गया। तब उस मनुष्य ने उसे आवाज दी, मुँह खोल ताकि उसमें मैं थूकूँ। राजा को इससे घृणा आई और उसने मुँह न खोला। इसलिये थूक दरवाजे के पास गिरा। इसके गिरते ही डेवढ़ी सोने से भर गई। व्याडि और उनकी स्त्री जहाँ चाहते थे उड़कर वहाँ चले जाते थे। उसने इस विद्या पर प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। लोग कहते हैं कि वे दम्पत्ति अभी तक जीवित हैं (अलबेरुनि के जमाने तक)।

अब हम यह देखें कि नागार्जुन के संबंध में अलबेरुनि ने क्या लिखा है। अलबेरुनि लिखते हैं :—

"इस कला का एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि नागार्जुन था। यह सोमनाथ के समीपवर्ती दैहक कोट का रहने वाला था। उसने इस (रसायन) कला में निपुणता प्राप्त की थी और एक पुस्तक रची थी जिसमें कि इस विषय के सारे ग्रन्थों का सार है। यह पुस्तक बहुत दुर्लभ है।

समीक्षा :—

अलबेरुनि के उपर्युक्त वर्णन एवं व्याडि के संबंध में किये गये विवेचन के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं—

नागार्जुन का नाम आजकल प्राचीन भारत के प्रसिद्ध रसायनवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठित है किन्तु नागार्जुन से लगभग एक शताब्दी बाद के प्रवासी अरब विद्वान् अलबेरुनी ने नागार्जुन के सम्बन्ध में कुछ ही पंक्तियाँ लिखी हैं जबकि व्याडि के संबंध में प्रशंसात्मक वाक्य लिखते हुए उन्होंने विस्तृत विवरण दिया है। यह तथ्य सिद्ध करता है कि व्याडि, यद्यपि नागार्जुन से कई शताब्दी पूर्व हुए थे किन्तु अलबेरुनि के समय तक भी भारतीय जन मानस में उनका बहुत उच्च स्थान था तथा उनकी रासायनिक उपलब्धियों का दबदबा था जिनके बारे में समग्र भारत की सामान्य जनता में भी किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं।

व्याडि को अवश्य ही कुछ विशिष्ट रासायनिक उपलब्धियाँ हुई होंगी जो कि किंवदन्तियों के रूप में सामान्य जनता में प्रचलित हो गई। सामान्य जनता अवश्य ही रसायनज्ञों को आदर मिश्रित भय से देखती होगी। तभी उनके संबंध में इस कथन की परिचायिका किंवदन्तियाँ प्रचलित हो जाती थीं।

सौराष्ट्र के दैहक दुर्ग के समान ही विक्रमादित्य से लेकर अलबेरुनि के युग तक उज्जयिनी भी रसायन विद्या का केन्द्र रही होगी। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अलबेरुनि के वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि मालव का एक और स्थल, धार, भी रसायन विज्ञान का केन्द्र था। आज भी

[शेष पृष्ठ ९ पर]

प्रकाश से नेत्रों के दृष्टि-पटल पर रासायनिक परिवर्तन

श्री सुरेश चन्द्र आमेटा

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में सबसे अधिक कोमल अवयव आँख है तथा आँख का महत्वपूर्ण अवयव दृष्टिपटल (रेटीना) है। दृष्टि पटल द्वारा हम संसार की प्रत्येक गतिविधि देख सकते हैं, आँख के इस महत्वशाली अंग से सर्वेक्षण की सीढ़ियाँ चढ़ सकते हैं। इसके बिना मानव अन्धा है। प्रकाश जगत की अनुभूति कराने वाले इस अवयव की क्रिया-प्रक्रिया का रचनात्मक वर्णन करने का लक्ष्य ही इस लेख का विषय है :—

जब किसी वस्तु विशेष से निकली प्रकाश की किरणें दृष्टि-पटल पर गिरती हैं तो दृष्टि-पटल पर कुछ रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनसे कि तंत्रिका में विध्रुवीकरण एवं पुनः ध्रुवीकरण हो जाता है। इससे प्राप्त आवेग संवेदन तंत्रिका के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचते है और हमें उस विशिष्ट वस्तु की अनुभूति कराते हैं।

दृष्टि-पटल आँख की तीन सतहों में से एक है और इसका कार्य कैमरे की प्लेट के सदृश होता है। यह एक प्रकाश-संवेदित सतह होती है। यह किसी बाह्य प्रकाशीय वस्तु के प्रकाश को ग्रहण करने में शीघ्रता प्रदर्शित करती है। दृष्टि-पटल में दो प्रकाश-संवेदित पदार्थ होते हैं, जिन्हें शलाका एवं शंकु कहा जाता है। इनमें से शलाकाओं का कार्य रात्रि में दृष्टि बोध कराना है जब कि शंकु प्रकाश में दृष्टि-बोध कराने में सहायक होते हैं।

शलाकाओं के शीर्ष पर एक प्रकाश-संवेदित पदार्थ होता है जिसे कि होडॉप्सिन कहा जाता है। इसी तरह शंकुओं में यह पदार्थ आयोडॉप्सिन के रूप में होता है। ये दोनों पदार्थ केरिटनोइड है और ये कांमॉपोटीन के अन्तर्गत आते हैं। होडॉप्सिन में एक प्रोटीन ऑसिन और एक प्रॉस्थिेटिक समूह रेटिनिन$_1$ होता है। रेटिनिन$_1$ का रासायनिक सूत्र विटामिन ए,$_1$ एल्डिहाइड है। इसी प्रकार आयोडॉप्सिन में प्रोटीन तो फोटॉप्सिन होता है परन्तु प्रॉस्थेटिक समूह रेटिनिन$_1$ ही होता है।

जब प्रकाश की किरणें नेत्र के दृष्टि-पटल पर गिरती है तो इसका रंग पीले में बदल जाता है जब कि अंध-अनुकूलित नेत्र में इसका रंग नीला होता है। इसमें सर्व प्रथय होडॉप्सिन का परिवर्तन लूमी-होडॉप्सिन में हो जाता है जो कि बाद में मेटा-होडॉप्सिन में बदल जाता है। मेटा-होडॉप्सिन प्रकाश की उपस्थिति से ही रेटिनिन$_1$ और ऑप्सिन में विभाजित हो जाता है। रेटिनिन$_1$ इसके पश्चात ऐल्कोहॉल डिहाइड्रोजिनेज की उपस्थिति में विटामिन ए$_1$ में परिवर्तित हो जाता है। ऐल्कोहॉल डिहाइड्रोजिनेज को रेटिनिन रिड्क्टेज से भी प्रदर्शित किया जा सकता है रेटिनिन$_1$, से प्राप्त विटामिन ए$_1$, दृष्टि-पटल की वर्णक-सतह में जमा हो जाता है। यह सब कुछ प्रकाश की उपस्थिति में होता है।

अँधेरे में इसके ठीक विपरीत फोटॉप्सिन बनता है। विटामिन ए$_1$ और रेटिनिन$_1$, जो कि ह्ोडॉप्सिन में उपस्थित होते हैं वे ह्ोडॉप्सिन में तो नियो-बी अथवा ११ समपक्ष रूप में होते हैं परन्तु ह्ोडॉप्सिन के विघटित होने पर रेटिनिन$_1$ और विटामिन ए$_1$ विपक्ष रूप में प्राप्त होते हैं। उनके विपक्ष रूपों में ह्ोडॉप्सिन प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए अन्धेरे में रेटिनिन$_1$ और विटामिन ए$_1$, समपक्ष रूप में परिवर्तित होंगे और फिर उनसे होडॉप्सिन बनेगा। यह परिवर्तन जिस एन्जाइम की सहायता से होगा, उसे रेटिनिन आइसो-

मरेज कहते हैं। विटामिन $ए_1$ जब विपक्ष रूप से समपक्ष रूप में परिवर्तित हो जायेगा तो फिर इससे ११-समपक्ष अथवा निया-बी-रेटिनिन$_1$, बनेगा जो कि प्रोटीन ऑप्सिन से क्रिया कर ह्ोडॉप्सिन बनायेगा।

इससे पूर्व कि हम इसकी प्रक्रिया का और आगे अध्ययन करें, $ए_1$ एवं $ए_2$ विटामिन तथा रेटिनिन$_1$ एवं रेटिनिन$_2$ से विभिन्नता के बारे में भी जानना आवश्यक है। इनमें रासायनिक स्तर पर तो सिर्फ एक द्विबंध का अन्तर होता है।

शंकुओं के शीर्ष पर के आयोडॉप्सिन में भी प्रकाश के कारण ह्योडॉप्सिन के समान ही अभिक्रियायें होगी परन्तु उसमें प्रोटीन ऑप्सिन के स्थान फोटॉप्सिन प्राप्त होता है। इन अभिक्रियाओं में प्राप्त रेटिनिन$_1$, और विटामिन $ए_1$, विपक्ष रूप में होंगें और क्यों कि इनसे आयोडॉप्सिन प्राप्त नहीं किया जा सकता है इसलिये ये भी आइसोमरेज की उपस्थिति में विपक्ष रूप से समपक्ष अथवा नियो-बी-रूप में परिवर्तित होंगें। इसके पश्चात ११-समपक्ष अथवा नियो-बी-रेटिनिन से, फोटॉप्सिन से अभिक्रिया कर आयोडॉप्सिन बनायेंगे।

इससे एक तथ्य और सामने आता है कि शलाकाएँ तो रात्रि को देखने में सहायक होती हैं और शंकुओं से दिन के प्रकाश में देखने में सहायता मिलती है।

कई बार आपको भी अनुभव हुआ होगा कि जब आप काफ़ी प्रकाश से अँधेरे बंन्द थियेटर में घुसते है तो आपको वहाँ कुछ भी नजर नहीं आता और आप कई बार तो किसी से टकरा भी जाते हैं, परन्तु कुछ समय बाद इस कठिन परिस्थिति से आपको छुटकारा मिलता है और आप अँधेरे में भी कुछ-कुछ देखने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि दिन के प्रकाश ह्ोडॉप्सिन और आयोडाप्सिन दोनों विघटितहोते रहते हैं और उनसे विपक्ष-विटामिन $ए_1$, एवं विपक्ष रेटिनिन बन जाते हैं। अब आप अचानक अँधेरे सिनेमा थियेटर में घुसते हैं तो होडॉप्सिन की कमी अथवा समाप्ति के कारण आप वहाँ कुछ भी नहीं देख पायेगें। कुछ समय अँधेरे की क्रिया के कारण विपक्ष वेटिनिन$_1$ एवं विपक्ष विटामिन $ए_1$, का परिवर्तन निमो-बी-विटामिन $ए_1$, एवं नियो-बी-रेटिनिन$_1$ में हो जाता है जो कि फिर ऑप्सिन के साथ क्रिया कर ह्योडॉप्सिन बना देता है जो कि कम प्रकाश में देखने में सहायक होता है। इसी कारण कुछ समय के बाद ह्ोडॉप्सिन बनने से आप अँधेरे सिनेमा थियेटर में भी देखने के अभ्यस्त हो जायेंगे।

कुछ शुद्ध जल में रहने वाली मछलियों की शलाकाओं में ह्ोडॉप्सिन के स्थान पर एक नया वर्णक पोरफाइरॉप्सिन पाया गया है। इसके प्रकाश में विघटन में थोड़ा सा अन्तर यह है कि प्रोटीन ऑप्सिन के स्थान पर स्कोटॉप्सिन पाया जाता है तथा रेटिनिन$_1$, एवं विटामिन $ए_1$, न होकर रेटिनिन$_2$ एवं विटामिन $ए_2$ प्राप्त होते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने एक नीला प्रकाश-संवेदित वर्णक संश्लेषित किया है, जिसे उन्होंने साइनॉप्सिन नाम दिया है इसकी उपस्थिति किसी प्राणी के नेत्र में रेटिना पर नहीं प्रमाणित की जा सकी है।

श्री सुरेशचन्द्र आमेटा
प्राध्यापक रसायन विभाग
सेठ मथुरादास विनानी राजकीय
महाविद्यालय, नाथद्वारा (राज०)

पौध एवम् प्राणी जगत में ऊर्जा की उत्पत्ति

श्री श्याम सुन्दर पुरोहित तथा श्री चैतन्य कुमार गहलौत

सभी सजीव प्राणी अपने पर्यावरण से ऊर्जा ग्रहण करते हैं तथा ऊर्जा का उपयोग विभिन्न भौतिक क्रियाओं जैसे वृद्धि, गति, रासायनिक कायान्तरण, ताप-नियन्त्रण एवम् जैविक-चमक में करते हैं। इस प्रकार इस आधारभूत आवश्यकता में कोशिकायें सदैव ही पर्यावरण की दया पर निर्भर रहती है। बिना ऊर्जा के जीवनोद्भव कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव हैं। प्राथमिक रूप से जल के क्वथनांक एवम् गलनांक के मध्य, न्यूनाधिक सभी जीव परोक्ष रूप में ऊष्मा पर ही निर्भर रहते हैं। प्रायः कई जातियाँ एक निश्चित तापक्रम रखती हैं। सभी पौधे यहाँ तक कि शीत-रक्त प्राणियों का अन्तताप व वाह्यताप लगभग एक ही होता है। ऐसे प्राणी निश्चित तापक्रम के विशेष बिन्दु से नीचे गिरने पर कार्य नहीं कर सकते, सभी इस तापक्रम पर नहीं मरते, फिर भी शीत वातावरण में तथा सम-शीतोष्ण प्रदेशों में निष्क्रिय हो जाते हैं या ऐसी प्रजनन-स्थितियाँ उत्पन्न कर लेते हैं, जो शीत प्रतिरोधक होती हैं तथा पुनः उष्ण काल आने तक अपना जीवन-चक्र पूर्ण नहीं कर पाते। स्तनपोषी एवम् पक्षी अपने आन्तरिक-तापक्रम के स्थायित्व एवं नियन्त्रण के कारण ही विकसित होते हैं। ये विशिष्ट प्रकार से अपने लिए ऊष्मीय-ऊर्जा की पूर्ति स्वयं कर सकते हैं, बशर्ते कि उनके भोज्य-पदार्थों में रासायनिक ऊर्जा की उपयुक्त मात्रा उपलब्ध हो।

एक कोशिका अपने जैसी अनेक कोशिकाऐं उत्पन्न करने में सक्षम होती हैं। परन्तु प्रजनन के लिए आवश्यक द्रव्य पर्यावरण से ही प्राप्त किये जाते हैं। इन द्रव्यों को अपने जैसी ही संरचना में परिणत करने के लिए कोशिका को ऊर्जा को आवश्यकता होती है।

कोशिका को केवल वृद्धि के लिए ही ऊर्जा की जरूरत क्यों होती है ? वृद्धि के समय कोशिका न तो गतिशील होती है न ही उसमें रक्त-पिचकारिता होती है। वास्तव में यह ऐसी कोई चीज प्रयोग में लेती है जो किसी भी तरह कार्य से संबंधित हो। कोशिका को ऊर्जा की आवश्यकता इसलिये होती है कि यह अव्य-वस्थित से तथा पर्यावरण के अव्यवस्थित क्रम से जटिल एवं उच्च स्तर पर व्यवस्थित संरचना का निर्माण करती हैं। भौतिक शास्त्र का यह मूल भूत सिद्धान्त है कि क्रम की उत्पत्ति स्वतोजनक रूप से कभी भी अग्रसर नहीं होती। हाँलाकि, इसका उल्टा सही है कि व्यवस्थित से अव्यवस्थित क्रम स्वतोजनक रूप से आता है। इसलिए कार्य किया जाना जरूरी है या दूसरे शब्दों में, एक व्यवस्थित संस्थान बनाने के लिये ऊर्जा का क्षय करना ही होगा। द्विगुणित होते समय कोशिका द्वारा बनाया गया क्रम रासायनिक होता है। कोशिका के दीर्घ आण्वीय तत्व (प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल, पालि-सेकेराइड्स) अत्यन्त संक्षिप्त रूप से क्रमबद्ध अणु होते हैं। भविष्य में निर्माता इकाई जो कि इन बड़े अणुओं को बनाती है, कोशिका से ही बनी होगी या पर्यावरण से प्राप्त होती है। इन विधियों में रासायनिक ऊर्जा का क्षय होना आवश्यक है।

दैहिक क्रियाओं में आवश्यक ऊर्जा जैसे ही ऊष्मा में बदलती है, इसका अधिकांश भाग पर्यावरण में ही नष्ट हो जाता हैं। हमें ज्ञात है कि कई कोशीय-

अभिक्रियाओं में ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं एवं इनमें से कई में तापक्रम की जैविक सीमा में, ऊष्मा के स्तर पर, उपलब्ध ऊर्जाओं से कहीं अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं। इसके लिए जन्तुओं को उच्च-रासायनिक-ऊर्जा के पदार्थों को स्वांगीकृत करना तथा इस ऊर्जा को रासायनिक तथा ऊष्मीय, दोनों तरह से कार्य में लाते हुए इन्हें विभिन्न विधियों द्वारा वितरित करना आवश्यक हैं। इसलिए सभी जन्तु प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रकाश-संश्लेषक-पादपों पर निर्भर रहते हैं जो रवि-किरणों से रासायनिक ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। मांसाहारी जन्तु व शाक पोषियों का भोजन मुख्यत: हरे पेड़ पौधे ही हैं। इस अर्थ में सभी जन्तु परजीवी हैं, तथा इस पृथ्वी पर बिना पौधों के कोई भी जन्तु जीवन पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता।

अकार्बनिक पदार्थों के आवश्यक होने पर भी, प्राणी इन पदार्थों से रासायनिक ऊर्जा प्राप्त नहीं कर सकते। पानी, कार्बन-डाईआक्साइड तथा खनिज, जन्तु चयापचय के लिए विलायक (सालवेन्ट), अभिकर्मक (रीएजेन्ट) उत्प्रेरक (केटेलीस्ट) तथा संरचनात्मक खनिजों (स्ट्रक्चरल-मिनरल्स) की तरह आवश्यक हैं। कार्बनिक-यौगिक ऊर्जा स्रोतों की तरह कार्य करते हैं। ये कार्बनिक-यौगिक कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन तथा वसा नामक भोजन की मुख्य श्रेणियों में, उनसे संबंधित यौगिकों के रूप में होते हैं। जन्तुओं में रासायनिक ऊर्जा का होना आवश्यक है, जिसे प्राय: उपलब्ध-स्वतन्त्र-ऊर्जा से भी दर्शाया जाता है। यद्यपि स्वतन्त्र-ऊर्जा के परिवर्तन आसानी से ज्ञात नहीं किये जा सकते, विशेषकर जब कि जन्तुओं की तरह जटिल संस्थान उद्भवित हो जाते हों। इसलिए स्वतन्त्र ऊर्जा, ऊष्मीय-तत्व, कलरी-मापीय-विधियों से ज्ञात की जाती हैं।

निम्नांकित गतिज-ऊष्मीय समीकरण, किसी विधि के लिए, स्वतन्त्र ऊर्जा में परिवर्तन, की कुल ऊष्मीय तत्व में परिवर्तन से तुलना करता है। यदि इन्हें क्रमश: अ तथा ब से इंगित करे तो

$$\triangle \text{अ} = \triangle \text{ब} - \text{प}\triangle \text{स}$$

"प" परम ताप को, △ स ताप अनुपात को, जो कि इस संस्थान में व्यतिक्रम तथानिरंकुसतत्व कामाप है, दर्शाता हैं। इस समीकरण से यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्र-ऊर्जा एवम् उष्मीय परिवर्तन, किसी सीमा तक विभेदित किए जा सकते है तथा वास्तव में, ये सभी कई रासायनिक प्रतिक्रियाओं में ऐसा ही करते हैं। भाग्यवश जन्तुओं की सभी चयापचयिक क्रियाओं में "प△स" सदैव ही △ अ तथा △ ब की तुलना में अत्यन्त कम होने के कारण नगण्य माना जा सकता है क्योंकि कई दशाओं में न तो △ अ एवम् न ही △ स अनुमानित किए जा सकते हैं। निम्नांकित पूर्ण-प्रतिक्रिया इस प्रकार है :—

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \rightarrow 6Co_2 + 6H_2O$$

ग्लूकोज + 6 आक्सीजन→6 कार्बन-डाइआक्साइड + 6 पानी
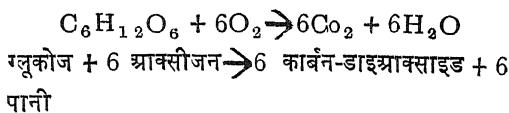
इसके लिए △ अ = − 685,000 कलरी/अणु एवम △ ब = − 674,000 कलरी/अणु होगी (म△स = 12,000 कलरी/अणु को छोड़कर, जोकि अपेक्षाकृत एक सूक्ष्म गुणक हैं)। समान स्थितियों में, सभी आक्सीकारक प्रतिक्रियायों के लिए होती हैं, लेकिन कुछ संभावित मध्यवर्ती प्रतिक्रियाओं के लिए नहीं जैसे :—

$$CH_3COO\ PO_3H + H_2O \rightarrow CH_3COO- + H_3PO4 -$$
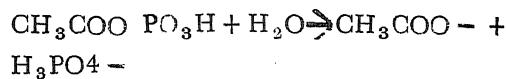
एसीटाइलफास्फेट + पानी→एसीटेट फास्फोरिकएसिड

इस दशा में △अ = − 13,500 कलरी/अणु, △ब = − 7,200 कलरी/अणु एवम् य△स = 63,00 कलरी/अणु हैं इसलिए इस स्थिति में 'प△स' को नगण्य मानना, कठिन होता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ द्वारा टाली जाती हैं जिनसे प△स में हानि असाध्य हो। चयापचयिक पथ संभवत: उच्च-ऊर्जा के यौगिकों जैसे एसीटाइल-फास्फेट का साधारण हाइड्रोजनीकरण नहीं करता। बल्कि, युग्मिक प्रतिक्रियाएँ, उपलब्ध स्वतन्त्र-ऊर्जा के अधिकांश भाग को कुछ दूसरे कार्य योग्य मध्यवर्ती में बदल देता है।

भोजन से ऊर्जा

प्रायोगिक रूप से जन्तुओं में सभी ऊर्जाएँ उनके भोजन से चयापचयिक-प्रतिक्रियाओं द्वारा आती हैं। कुछ दशाओं में भोजन सीधे आक्सीकृत हो जाता है तथा जहाँ तक चयापचय के साधन उपलब्ध होते रहते है यह क्रिया चलती रहती है। अन्य स्थितियों में भोजन के तत्व बाद में कार्य में लेने के लिए, संग्रहित कर लिए जाते हैं। प्रत्येक जन्तु की सामान्य भोजन आवश्यकता उसकी पूर्ण ऊर्जा की आवश्यकता द्वारा ज्ञात की जाती हैं। यह आवश्यकता कुछ गुणकों जैसे :—पाचकता (डाइजेस्टिक्लिटी) श्वसन-भजनफल (रेस्पिरेटरी-काशिएन्ट), ऊर्जा-संतुलन (एनर्जी-बेलेन्स) आधारी चायपचय (बेसल-मेटाबोलिज्म) पेशीय क्रिया (मस्कुलर-एक्टिविटी) तथा ऊर्जा अनुमोदन पर निर्भर करती हैं। निम्न तालिका इस बात को स्पष्ट करती है।

तालिका 1

विभिन्न श्रेणियों के पोषकों की अनुमानित, दहन-ऊष्मा (दहन की ऊष्मा, कि० कलरी/ग्राम)

तालिका 2

पोषक	सीधे-जन्तु कलरीमापन द्वारा मापी गई ऊर्जा	पाचन में हानि में संशोधित	कलरी-मापन
1—कार्बोहाइड्रेट	4	4·1	4·1
2—वसा	9	9·5	9·5
3—प्रोटीन	4	4·4	5·6

ऊर्जा के स्तूप का आकार हमेशा सीधा होता है, क्योंकि इसमें हमेशा समय के गुणक का ध्यान रखा जाता है। ऊर्जा का स्तूप एक निश्चिय समय पर, इकाई क्षेत्र में संस्थान के विभिन्न अंतिम सीमा के प्राणियों द्वारा काम में ली गई ऊर्जा की कुल मात्रा को दर्शाता है।

उम्र वर्षों में	नर	नारी
5	53	53
10	50	46
15	45	40
20	41	37
30	40	36
40	38	35
60	36	35
75	34	32

तालिका 3

पेशीय क्रिया तथा मनुष्य का ऊर्जा-दाब

क्रियाएँ	ऊर्जा की आवश्यकता कि कलरी/व०
सोने में	65
जागने में (विश्राम पर)	77
बैठने में (विश्राम पर)	100
जोर से पढ़ने में	105
आराम से खड़े रहने में	105
सावधान होकर खड़े रहने में	115
हल्के व्यायाम से	170
सक्रिय व्यायाम में	290
शारीरिक सीमा तक व्यायाम में	600

अंतिम सीमावर्ती प्राणियों में सर्वाधिक होती हैं, इसीलिए स्तूप का आकार चौड़ा होता है। जलीय इको-संस्थान में कार्बनिक-प्रकाश-जीवाणुओं की जनसंख्या, शीघ्र ही अपना जीवन-चक्र पूर्ण करती हैं एवम् कुछ घन्टों या दिनों में ही फोटो-प्लेन्क्टोन्स की नई संततियाँ नये पौधों का निर्माण हो जाता है। एक वर्ष के मध्य फोटोप्लेन्क्टोन्स की इन सभी संततियों का सामूहिक ऊर्जा-तत्व निश्चत रूप से, समान समय पर एवम् जगह में, शाक-भक्षी मछलियों की कुछ संततियों से अधिक होती है। उच्च मांसाहारी का ऊर्जा-तत्व सबसे कम होगा। इसलिये ऊर्जा के स्तूप का आकार, सीधे

स्तूपके सिवाय हो ही नहीं सकता। प्राथमिक-उत्पादकों या किसी अंतिम-सीमा के प्राणियों के नाश के फल स्वरूप, अगले उच्च अंतिम सीमा-वर्ती प्राणी, भोजन की चाह में स्वतः ही मरने लगेंगे।

जैसा कि तालिका-3 में बताया गया है कि आवश्यकता पेशीय क्रिया के साथ-साथ जन्तु के आकार उम्र, लिंग इत्यादि पर निर्भर हैं। विभिन्न कार्य करने वाले लोगों की ऊर्जा क्षय की दर भी विभिन्न होती हैं। जैसा कि कार्यालय में कार्य करने वाले का ऊर्जा क्षय 2.600 कि०कलरी दिन, एवम् चित्रकार के लिए 3,300 कि०कलरी दिन आदि।

उपरोक्त लेख से ऊर्जा का महत्व इंगित होता है। इससे आसानी से समझा जा सकता है कि सजीवों में ऊर्जा का कितना महत्व है। मानव को प्रत्येक कार्य करने के लिए ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है, इसलिए हमारे शरीर में ऊर्जा की समुचित मात्रा का होना आवश्यक है। यदि हम शरीर-विज्ञान वेत्ताओं द्वारा दी गई तालिका का अध्ययन करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि ऊर्जा की समुचित मात्रा प्राप्त करने के लिए सन्तुलित आहार करना अत्यावश्यक है।

श्याम सुन्दर पुरोहित
तथा
चैतन्य कुमार गहलौत
वनस्पति-विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
नाथद्वारा, (राज०)

● ●

[पृष्ठ 3 का शेषांश]

धार में बिना जंग खाया हुआ बृहत् धातु स्तम्भ पड़ा हुआ इस कथन की कुछ अंशों तक परिपुष्टि करता है।

व्याडि के युग में भी प्रयोगों एवं प्रेक्षणों का व्यवस्थित विवरण पुस्तकों के रूप में रखने की परिपाटी थी।

यहाँ यह प्रेक्षणीय है कि न तो उपर्युक्त समस्त विवरण में तथा न ही रस साहित्य में व्याडि रचित ग्रन्थ का स्पष्ट उल्लेख आता है। अतः आचार्य व्याडि का वैज्ञानिक के नाते उचित एवं शुद्ध मूल्यांकन तभी संभव हो सकेगा जब रस संबंधी उनकी रचना की खोज एवं शोध हो सकेंगे।

व्याडि का काल तथा यह प्रश्न कि रसायनज्ञ व्याडि एवं साहित्याचार्य व्याडि एक ही अथवा भिन्न व्यक्ति थे, ऊहापोह के मुख्य विषय हैं। इन समस्याओं पर शोध करना, व्याडि के ग्रंथ की खोज कर उसे प्रकाशित, सम्पादित एवं प्रचलित करना, उसकी व्याख्या करना, आदि अपने आप में स्वतंत्र शोध आदि के विषय हो सकते हैं। इस दिशा में निष्ठापूर्वक सतत परिश्रम की आवश्यकता प्रतीत होती है ताकि व्याडि, उज्जयिनी एवं मालव को रसायन के क्षेत्र में योगदान की दृष्टि से उन्हें उचित स्थान प्राप्त हो सके।

डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री
रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

● ●

रेडियो-तरंगें उनका प्रेषण तथा अभिग्रहण

श्री श्याम लाल काकानी

आप जब अपने मकान पर रेडियो से 'विविध भारती' 'रेडियो सीलोन' 'बी बी सी' तथा जयपुर स्टेशनों को ट्यून करते हैं तो आपको अपने एच्छित प्रोग्राम सुनाई देने लगते हैं। रेडियो सेट पर प्रोग्राम सुनते समय आपके मस्तिष्क में यह विचार भी अवश्य उत्पन्न हुआ होगा कि इतनी दूर से रिले होने वाला प्रोग्राम तत्काल आप तक कैसे पहुँच जाता है ? आइये हम इसे समझने का प्रयास करें।

रेडियो-तरंगों का प्रेषण मुख्य रूप में उच्च आवृत्ति की विद्युत-चुम्बकीय तरंगों का उत्पादन, इनको निम्न आवृत्ति की तरंगों (भाषण या संगीत) के साथ मिश्रित करना तथा एरियल अथवा ऐंटेना द्वारा सभी दिशाओं में भेजना है।

रेडियो संग्रहण में ये तरंगें एक दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं और निम्न आवृत्ति की तरंगें प्रवर्धित होकर लाउडस्पीकर में पहुँच जाती हैं। अतः हमें रेडियो तरंगों के प्रेषण और अभिग्रहण को समझने के लिए निम्न बातों को समझना विशेषतः आवश्यक है।

1. रेडियो तरंगें एवं अधिरोपण।
2. ऐंटेना या एरियल।
3. आॅयन-मण्डल तथा उसका प्रभाव।

(1) रेडियो तरंगे

रेडियो तरंगें, विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के परिवार की ही सदस्य हैं। ये प्रकाश के वेग से ही गमन करती हैं तथा परावर्तन, अपवर्तन, व्यतिकरण, विर्वतन तथा ध्रुवण के नियमों का पालन करती हैं। इन तरंगों की तरंग-लम्बाई लगभग 40 मीटर से 800 मीटर तक होती हैं। इनके दोलन की आवृत्ति निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं।

$$c = n\lambda \text{ या } n = \frac{c}{\lambda}$$

उदारहण के लिए एक रेडियो तरंग जिसकी तरंग लम्बाई 300 मीटर हो तो आवृत्ति

$$n = \frac{3 \times 10^{10}}{300 \times 10} = 10^5 \text{ साइकिल/से०}$$

$$= 100 \text{ किलो साइकिल/सेकन्ड}$$

जब हम माइक्रोफोन के सामने बोलते हैं तो ध्वनि तरंगे उसी आवृत्ति और गुण की विद्युत तरंगों में परिवर्तित हो जाती हैं। इनकी आवृत्ति लगभग 200-500 साइकिल प्रति से० होती है।

30 से 25000 कम्पन प्रति से० की आवृत्तियां श्रव्य-आवृत्तियाँ कहलाती हैं। 5000 या 25 किलो साइकिल प्रति से० से उपर की आवृत्तियां पराध्वनिक आवृत्तियां कहलाती हैं। 600 किलो साइकिल से उपर की आवृत्तियां रेडियों आवृत्तियां कहलाती हैं। रेडियो प्रसारण के लिए लघुतम तरंगों की तरंग लम्बाई लगभग 12 मीटर होती है और इनकी आवृत्ति

$$n = \frac{3 \times 10^{10}}{12 \times 100} = 25 \text{ मेगा साइकिल/से०}$$

इससे अधिक आवृत्ति की तरंगे आकाश में ही समाप्त हो जाती हैं। अधिक लम्बी तरंगे भी लाभदायक नहीं है।

रेडियो प्रसारण के उपयोग के लिए आवृत्तियों की सम्पूर्ण परास, श्रृव्य आवृत्तियों की परास से ऊपर होती है। रेडियो तरंगे केवल वाहक के रूप में कार्य करती

हैं और इनको वाहक तरंगे कहते हैं। श्रव्य आवृत्तियों को वाहक आवृत्तियों पर अध्यारोपित करते हैं और परिणामी तरंगों को मोडुलन तरंगों कहते हैं।

2. ऐंटेना या एरियल : एक ऐंटेना तारों का एक तंत्र होता है जो प्रेषण केन्द्रों से रेडियो तरंगों के पारेषण के लिए और संग्रहण यंत्रों पर रेडियो तरंगों के संग्रहण के लिए उपयोग में लाया जाता है। दूसरे शब्दों में एक ऐंटेना उच्च आवृत्ति की प्रत्यावर्ती ऊर्जा को प्रेक्षण केन्द्र पर रेडियो तरंगों की ऊर्जा में और संग्रहण यंत्रों में रेडियो तरंग ऊर्जा को उच्च आवृत्ति प्रत्यावर्ती ऊर्जा में परिवर्तित कर देती है। वैसे तो ऐंटेना कई प्रकार के होते हैं लेकिन आकार और तरंग लम्बाई के आधार पर इनको दो श्रेणियों में रख सकते हैं—

(a) हर्ट्‌स ऐंटेना—कोई भी ऐंटेना जिसकी लम्बाई $\lambda/2$ या इसका विषम या सम गुणांक हैं तो इसे हर्ट्‌ज ऐंटेना कहते हैं। हर्ट्‌ज़ ऐंटेना क्षैतिज या उर्ध्वाधर लगाया जा सकता है।

(b) मार्कोनी ऐंटेना—कोई भी ऐंटेना जिसकी लम्बाई $\lambda/4$ या इसका विषम गुणांक हो तो इसे मार्कोनी ऐंटेना कहते हैं। इसको भी क्षैतिज या उर्ध्वाधर रुप लगाया जा सकता है।

हर्ट्‌स और मार्कोनी ऐंटेना में दूसरा प्रमुख अन्तर यह है कि हर्ट्‌स ऐंटेना में कोई ऐसा तार नहीं होता जिसका सम्बन्ध धरातल से हो, लेकिन मार्कोनी ऐटेना अक्सर भूसंपर्कित होता है।

अगर अच्छी गुणता वाले संगीत का प्रसारण करना होता है तो 50 से 8000 साइकिल/सेकंड आवृत्ति परास की आवश्यकता होती है। अत: वाहक आवृत्ति मान लो 2000 किलो साइकिल हो तो ऊपरी पार्श्व बैन्ड 2000050 से 2,008000 और निम्न पार्श्व बैन्ड 199950 से 192000 तक विस्तार होता है। अतः कुल बैन्ड चौड़ाई 16 k c/s की आवश्यकता है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार प्रत्येक रेडियो स्टेशन की कुल बैंड चौड़ाई 9 किलो साइकिल/से० सीमित की जाती है और दो रेडियो स्टेशनों के बीच 9 k. c./s. होती है अत: प्रत्येक पार्श्व बैन्ड की चौड़ाई 4·5 k. c./s सीमित होती है अन्यथा पास वाले स्टेशनों में आपस में व्यतिकरण होगा।

रेडियो तरंगों का प्रेषण तथा संचरण

जब मोडुलन रेडियों तरंगे ऐंटेना को छोड़कर छोड़ती है तो इसका कुछ भाग धरातल के सम्पर्क में भू-तरंग के रूप में तथा शेष भाग व्योम तरंग के रूप में गमन करता हैं। तरंगे विशिष्ट पारेषण सिद्धान्तों का अनुगमन करती है और पृथ्वी पर स्थान विज्ञान एवं वायुमण्डल की परिस्थितियों से शासित होती है।

प्रेषण ऐंटेना से विकरित ऊर्जा संग्राही ऐंटेना तक कई संचरण विधियों से पहुँच सकती है। व्योम तरंगे, आयनमण्डल से परावर्तित होकर लौटती है और संग्राही ऐंटेना पर पहुँचती है। भू तरंगे भी संचरण का कार्य करती है। भू तरंग भी सतह तरंग और आकाश तरंग में विभाजित हो जाती हैं। आकाश तरंग भी दो भागों में विभक्त हो जाती है (i) सीधी तरंग जो प्रेषित्र से संग्राही तक सीधी चलती है। (ii) पृथ्वी से परावर्तित तरंग जो पृथ्वी के धरातल से परावर्तन होने के पश्चात् संग्राही पर पहुँचाती है।

भू तरंग पृथ्वी धरातल से बहुत ऊपर आयन मंडल से प्रभावित नहीं होती।

सतह तरंग पृथ्वी में विभव उत्पन्न करती है जिससे भंवर धारायें उत्पन्न होती हैं। भंवर धाराओं के कारण सतह तरंग की ऊर्जा में कमी होती जाती है। जैसे-जैसे सतह तरंग प्रेषित्र से दूर होती जाती है आवृत्ति में वृद्धि के साथ तेजी से मंदन प्रारम्भ हो जाता है इसलिए सतह तरंग से संचार केवल निम्न आवृत्ति तक ही संभव है।

व्योम तरंगों का उपयोग दिन में लम्बे परास उच्च आवृत्ति संचारण के लिए होता है। रात्रि में व्योम तरंग निम्न आवृत्ति पर लम्बी परास में सम्पर्क का साधन होती है। व्योम तरंग रेडियो तरंग का वह भाग है जो सीधी ऊपर बढ़ती है यह भू तरंग से

पूर्णतया भिन्न होती है। व्योम तरंग की कुछ ऊर्जा आयन मण्डल से परावर्तित होकर पुनः पृथ्वी पर लौट आती है। लौटती हुई व्योम तरंग के सामीप्य में प्रेषित्र तीव्र संकेत ग्रहण करता है चाहे वह सतह तरंग की परास से कई हजार मील दूर क्यों नहीं हो।

आयन-मंडल तथा उसके प्रकार

आयन-मंडल विरलित वायुमंडल में पृथ्वी से 40 से 350 मील ऊँचाई पर पाया जाता है। आयन-मंडल में वायु मंडल की अपेक्षा धनात्मक और ऋणात्मक आयनों की संख्या अधिक होती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऋणात्मक आयन स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन होते हैं। आयन सूर्य से परा बैंगनी और कण विकिरणों से उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी का अपनी अक्ष पर घूर्णन, सूर्य के चारों ओर घूर्णन और सूर्य धब्बों का उभरना ये सभी आयन मंडल में आयनों की संख्या को प्रभावित करते हैं तथा इससे रेडियो प्रेषण की दूरी और स्वरूप प्रभावित होते हैं।

आयन मंडल में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। कुछ आयन आपस में मिलकर उदासीन परमाणुओं का निर्माण करते हैं और कुछ परमाणुओं की बाह्य कक्षाओं में से इलेक्ट्रॉनों को निकालकर आयनीकृत करते हैं। आयनों के बनने की और मिटने की क्रिया हवा की मात्रा और सूर्य विकिरणों की शक्ति पर निर्भर करती है।

लगभग 350 मील की ऊँचाई पर हवा के कण इतने कम हो जाते हैं कि उच्च पैमाने पर आयनों का बनना सम्भव नहीं होता। 40 मील से नीचे केवल कुछ ही आयन उपलब्ध होते हैं क्योंकि आयनों के आपस में मिलकर उदासीन बनने की दर बहुत ऊँची होती है। ऊपरी परतों से ही सूर्य के अधिकांश परा-बैंगनी विकिरणों का अवशोषण होने के कारण 40 मील से नीचे केवल कुछ ही आयन होते हैं जो व्योम तरंग संचारण को प्रभावित करते हैं।

आयनीकरण के विभिन्न घनत्व के कारण विभिन्न ऊँचाइयों पर आयन मंडल में विभिन्न परतें दिखाई देती हैं। वास्तव में आयन मंडल में ऐसी कोई परतें नहीं होती हैं।

आयन मंडल एक चालक की तरह कार्य करता है और रेडियो तरंग से भिन्न-भिन्न मात्राओं में ऊर्जा का अवशोषण करता है। आयन मंडल रेडियो दर्पण की तरह भी कार्य करता है और व्योम तरंग को पृथ्वी की ओर परावर्तित होता है।

जब तरंग ऐंटैना से निकलने के पश्चात् आयन मंडल से टकराती है तो झुक जाती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्योम तरंग आयन मंडल के साथ कितना कोण बनाती है प्रेषण की आवृत्ति क्या है तथा आयन मंडल में आयन घनत्व क्या है?

रेडियो तरंग विज्ञान आज की सभ्यता का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा उपग्रह से या अन्य साधनों से संचार व्यवस्था में अनेकानेक सुधार के प्रयास किये जा रहे हैं।

श्याम लाल काकानी
प्राध्यापक भौतिकशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय
शाहपुरा (राजस्थान)

वर्णान्धता क्यों ?

श्री सुरेश चन्द्र आमेटा तथा श्री महेश चन्द्र आमेटा

आपने सड़क के किनारे फुटपाथ पर बैठे अन्धे भिखारियों को जरूर देखा होगा। उनके लिए यह संसार अन्धकारमय हो जाता है, इनकी संख्या हजारों से लाखों तक है, इनके अलावा भी हमारे सभ्य संसार में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो देख तो सकते हैं, परन्तु विभिन्न रंगों को भली-भाँति देख नहीं सकते, उनमें अन्तर नहीं कर पाते। इस प्रकार की अन्धता को वर्णान्धता कहते हैं। वर्णान्ध मनुष्य और स्वस्थ्य मनुष्य में हम बिना विशेष जाँच कोई परिवर्तन नहीं पाते हैं। दुनियाँ में औरतों की अपेक्षा आदमी कई गुना अधिक वर्णान्ध है। साधारणतया: इनकी संख्या 8% तक होती है। हो सकता है आप स्वयं या आपका साथी भी वर्णान्ध हो परन्तु आप इतने बड़े रहस्य से आज तक अनजान रहे हैं। आइये, इस रहस्य से पर्दा उठाने के लिये हम आयुर्विज्ञान की शरण ले ताकि आप स्वयं अपनी आँखों को आज ही परख सकें।

वर्णान्धता वास्तव में मनुष्य की आँखों में वर्ण दर्शन की कमी के कारण होती है। वर्ण दर्शन का अर्थ है—विभिन्न रंगों को देखना। मनुष्य की आँख 400 से 750 A· तरंग दैर्ध्य वाली प्रकाश की किरणों को देख सकती है। संसार में तीन प्राथमिक वर्ण है। लाल-हरा, और बैगनी। इन वर्णों के अलावा पूरक वर्ण इस प्रकार है। लाल-हरा, पीला-नीला और काला व सफेद।

वर्ण दर्शन द्वारा हम विभिन्न रंगों को कैसे देख पाते हैं, इस विषय में वैज्ञानिकों में बहुत मतभेद अभी तक चला आ रहा है। समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। उसमें से प्रमुख ये हैं :—

(i) यंग हेल्महोल्टज का त्रिवर्णता सिद्धांत—इस सिद्धान्त के अनुसार तीनों प्राथमिक वर्णों के लिये तीन अलग शंकु होते हैं, जिनमें इन वर्णों के लिए आपेक्षिक प्रकाश ग्राही होते हैं। जब भी कोई प्रकाश की किरण आँख पर पड़ती है तो तीनों प्रकाश ग्राही उद्दीप्त होते है परन्तु आपेक्षिक तरंग दैर्ध्यवाली प्रकाश की किरण आपेक्षिक प्रकाश ग्राही को विशेष रूप में उद्दीप्त करती है।

ग्रेनेट का प्रभाव कारक एवं माडूली कारक सिद्धांत—ग्रेनेट ने आँख की तन्त्रिकाओं पर माईक्रो-इलैक्ट्रोड रख कर जाँच की। उसने बताया कि यहाँ कुछ गेंगलिओन कोशिकाएँ होती हैं, जिनका नाम उसने प्रभावकारक रखा। इसी प्रकार की दूसरी कोशिकाओं को उसने माडूली कारक का नाम दिया। प्रभावकारक का कार्य प्रकाश किरणों की तीव्रता ज्ञात करना है और माडूलीकारक विभिन्न वर्णों का ज्ञान करवाता है।

इन दोनों के अलावा भी दूसरे कई विद्वानों ने अपने विचारों का प्रतिपादन किया, परन्तु उपरोक्त सिद्धान्त बहुत सरल और कुछ हद तक सही भी है। इन सिद्धान्तों द्वारा हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि हमें विभिन्न वर्ण अलग-अलग क्यों दिखाई देते हैं। इनकी क्रियाविधि में यदि कोई गड़बड़ हो तो आदमी विभिन्न वर्णों में अन्तर कर पाने में असमर्थ रहता है, उसे हम वर्णान्धता कहते हैं। वह आदमी स्वयं वर्णान्ध कहलाता है। सामान्यतया वर्णान्धता तीन प्रकार की होती हैं :—

(i) एक वर्णता—इसमें आदमी किसी भी प्रकार का रंग नहीं देख पाता।

(ii) द्विवर्णता—इसमें आदमी तीन प्राथमिक वर्णों में से केवल दो को देखता है और एक-एक को नहीं देख पाता है। जो लाल रंग नहीं देख पाता उसे प्रोटेनोपिया जो हरा नहीं देखता उसे ड्यूटेरेनोपिया और जो नीला नहीं देखता उसे ट्रीटेनोपीया कहते हैं।

(iii) त्रिवर्णता—इसमें आदमी तीनों वर्णों को देख सकता है परन्तु किसी एक विशिष्ट वर्ण को देखने की क्षमता उसमें साधारण से कुछ कम होती है। ऊपर दी गई दोनों अवस्थाओं की अपेक्षा इसके रोगी ही अधिक होते हैं।

इन विभिन्न प्रकार की वर्णान्धता का पता लगाने के लिए कुछ परीक्षण निम्न हैं :—

(१) होल्मग्रीन का ऊन परीक्षण :—इसमें रोगी को किसी विशेष (प्राथमिक वर्ण) वर्ण की ऊन का एक टुकड़ा दिया जाता है और उसे वहाँ रखी (लगभग 100) उसी वर्ण की विभिन्न तीव्रता वाले टुकड़ों से मिलाने को कहा जाता है।

(२) एंड्रीज़ ग्रीन लेन्टर्न परीक्षण :—इसमें रोगी को एक छोटे छिद्र द्वारा विभिन्न प्रकाश प्रदीप्त वर्ण दिखाये जाते हैं और उन्हें पहचानने के लिए कहा जाता है।

(३) इसीहारा का परीक्षण :—इसमें रोगी को विभिन्न वर्णों द्वारा बने अक्षर दिखाये जाते हैं और उनमें विन्दुओं द्वारा बने अंकों को पूछा जाता है।

वर्णान्धता जानने का उपयोग :—(i) किसी भी सरकारी नौकरी में स्थायी होने से पहले हमें इस बात का सबूत देना होता है कि हमारी आखें बिलकुल स्वस्थ्य हैं और हम वर्णान्ध नहीं है।

(ii) कुछ विशेष नौकरियों (इन्जिन चालक, हवाई जहाज चालक) में प्रति वर्ष हमें अपनी आंखें वर्णान्ध हैं या नहीं, इसकी जांच करानी आवश्यक होती हैं।

सुरेशचन्द्र आमेटा,
प्राध्यापक, रसायन विभाग
से० म० वि० रा० महाविद्यालय
नाथद्वारा (राज०)

तथा
महेश चन्द्र आमेटा
पंचम अर्धसत्र (आयुर्विज्ञान)
र० ना० टै० आयु०
महाविद्यालय, उदयपुर
(राज०)

विज्ञान-वार्ता

प्रोटीन के अभाव की पूर्ति

भोजन के बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। जीवित रहने के लिए तो भोजन जरूरी है, परन्तु स्वास्थ्य के लिए सन्तुलित आहार भी आवश्यक है। भारत में हम जो भोजन लेते हैं उसमें कार्बोहाइड्रेट्स और चर्बी की मात्रा तो अधिक होती है, किन्तु उसमें प्रोटीन का तत्व सामान्यतः कम ही रहता है। दूध की कमी, वस्तुओं की ऊँची कीमतें और पशुओं से मिलने वाले अन्य प्रोटीन की कमी के कारण ही हमारे भोजन में प्रोटीन की मात्रा कम रहती है। प्रोटीन के कारण कुपोषण को हम तभी दूर कर सकते हैं जब हम देश में प्रोटीनयुक्त भोजन का उत्पादन बढ़ाएँ और उसे इतनी सस्ती दर पर उपलब्ध कराएँ कि सर्वसाधारण उसे खरीद सके।

मैसूर का केन्द्रीय खाद्य और तकनीकी अनुसंधान संस्थान प्रोटीनजन्य कुपोषण दूर करने के लिए उपयुक्त तकनीकों का अनुसंधान कर रहा है। संस्थान ने दालों, तिलहनों और शाक-सब्जियों आदि से अनेक तरह के अधिक मात्रा में प्रोटीनयुक्त कम खर्चीले खाद्य पदार्थ तैयार किए हैं। संस्थान द्वारा तैयार किए गए विभिन्न किस्मों के साथ पदार्थ अब बाजार में उपलब्ध हैं। ये हैं: प्रोटीन कन्सेन्ट्रेट्स, प्रोटीन मिक्स और प्रोटीन दूध।

संस्थान ने मूंगफली से ९० प्रतिशित शुद्ध प्रोटीन बनाने की तकनीक विकसित कर ली है। इसे प्रोटीन आइसोलेट के नाम से जाना जाता है और अनेक प्रकार की दवाइयां तथा प्रोटीनयुक्त खाद्य-पदार्थ बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।

प्रोटीन आइसोलेट और पशुओं के दूध से संस्थान ने प्रोटीनयुक्त दूध बनाया है जो कि मिल्टोन कहलाता है। जीवाणुरहित मिल्टोन को छह महीने तक रखा जा सकता है। यह पेय आजकल संस्थान में तथा बंगलौर की सरकारी दुग्धशाला में तैयार किया जा रहा है। भारत सरकार अनेक मिल्टोन उत्पादन केन्द्र खोलने पर विचार कर रही है।

संस्थान ने देश में पहली बार भैंस के दूध को बच्चों के पीने लायक पौष्टिक और सुपाच्य बनाने की विधि ईजाद की है। इससे देश में बाल आहार उद्योग की स्थापना हो सकेगी और प्रतिवर्ष लगभग ६ करोड़ रुपये के आयात की बचत होगी।

संस्थान ने बंगाली चना और मूंगफली के आटे से कम चर्बी वाले बहुउद्देशीय आहार बनाने की विधि निकाली है। यह आहार प्रोटीन कुपोषण के शिकार बच्चों, गर्भवती महिलाओं और दूध पिलाने वाली माताओं के लिए पूरक आहार के काम आ सकता है। इसके उत्पादन के लिए दो कारखाने मैसूर में और दो उत्तर प्रदेश में लगाए गए हैं।

६ महीने से कम उम्र के स्तनपायी बच्चों के लिए पूरक आहार के रूप में भी अब दूध उपलब्ध होने लगा है। ६ महीने से ५ बर्ष तक की उम्र के बच्चों को दूध छुड़ाने के लिए आहार बनाने की विधि भी निकाली गई है। एक बड़ी सरकारी संस्था के सहयोग से बच्चों के लिए पहले से पकाया आहार तैयार किया गया है जो कि देश में बड़े पैमाने पर तैयार किया जा रहा है और बेचा जाता है। अनाजों, दालों और तिलहनों के आटे से "बाल-आहार" नामक एक और खाद्य तैयार किया गया है। इस तरह के उत्पादन केन्द्र सरकार की एजेंसियों के माध्यम से बेचे जाते हैं।

संस्थान ने प्रोटीनयुक्त गेहूँ के आटे, उच्च प्रोटीन युक्त बिस्कुट पेय पदार्थ और चाय तथा काफी में दूध के स्थान पर कृत्रिम दूध आदि तैयार करने के नुस्खें ईजाद किए हैं। उच्च प्रोटीनयुक्त बिस्कुटों का व्यापारिक उत्पादन हो ही रहा है और भारत सरकार ने कुछ शहरों में प्रोटीनयुक्त गेहूँ के आटे का प्रचलन भी शुरू कर दिया है।

केन्द्रीय खाद्य और तकनीकी अनुसंधान संस्थान अब उच्च प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थों के लिए सरसों, सोयाबीन और तिलों का उपयोग कर रहा है।

अनुसंधान की गई विधियों का उपयोग करने के लिए संस्थान और व्यापारियों के बीच बहुत अच्छा सम्पर्क रहता है। संस्थान ने अभी तक ४० विधियाँ १७० फर्मों को दी हैं। जिनमें से ३० विधियों के आधार पर उत्पादन शुरू हो गया है। संस्थान की सलाहकार सेवाएँ उद्योगपतियों की दिन-प्रति-दिन की समस्याओं के समाधान में सहायक होती है और उन्हें उत्पादनों के परीक्षण, विश्लेषण और स्तरीकरण की सुविधाएँ भी दी जाती हैं।

स्थानीय खाद्य उद्योगों की मदद के लिए मंगलौर, त्रिचूर, हैदराबाद, बम्बई, नागपुर, लखनऊ और लुधियाना में प्रयोग केन्द्र खोले गए हैं।

संस्थान ने उद्योग और सरकारी संस्थानों की जरूरत पूरी करने के लिए प्रशिक्षण और शिक्षा की सुविधाएँ भी उपलब्ध कराई हैं। यह संस्थान दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्र का भी काम करता है।

हीमोफीलिया : एक घातक रोग

हीमोफीलिया एक खतरनाक रोग है जिसमें साधारण-सी चोट अथवा खरोंच लगने, कटने से रक्त-स्राव शुरू होने पर खून बहुत धीरे-धीरे जमता है अथवा बिल्कुल जमता ही नहीं। परिणामस्वरूप रक्त बहता रहता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इसे सामान्यतः 'राजाओं का रोग' कहा जाता है। आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग राजघराने से यह रोग दहेज के रूप में दूसरे राजकुलों में पहुँचा। इग्लैंड का राजकुल भी इसके प्रसार में सहायक हुआ है। महारानी विक्टोरिया के सबसे छोटे पुत्र लिओपोल्ड की मृत्यु 32 वर्ष की अवस्था में हीमोफीलिया से ही हुई थी। उसकी एक बहन बिएट्रिस इस रोग को अपने एक्सर कुल ले गई। उनके पुत्र युवराज डॉन अलफान्सो की मृत्यु अत्यधिक रक्तस्राव के कारण ही हुई थी। उसके पाँच वर्ष पहले उसके छोटे भाई प्रिंस डॉन गोपसाले का भी इस रोग के कारण देहान्त हो गया था।

यह रोग वंशानुगामी होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्त्रियाँ इस रोग की वाहक होती हैं। वे स्वयं तो रोग-सह्य होती हैं। अतः उन पर रोग का असर नहीं होता, पर माता अपने पुत्र को यह रोग विरासत में दे देती है। पुरुष रोगी के सभी पुत्र या पोते आदि आमतौर से सामान्य तथा स्वस्थ होंगे। किन्तु उसकी पुत्रियाँ इस रोग के जीन की वाहक होंगी। इन लड़कियों की संताने भी इस रोग की वाहक होंगी। इस प्रकार किसी मनुष्य के नाती इससे ग्रस्त हो जाते हैं और यह रोग कई पीढ़ियों को लाँघ कर कहीं आगे प्रकट होता है, जबकि परिवार वालों को इसकी याद तक नहीं रहती।

हीमोफिलिया के रोगी के शरीर में विटामिन 'के' की कमी का नितान्त अभाव रहता है। विटामिन 'के' की गड़बड़ी के कारण रक्त में उन पदार्थों का निर्माण नहीं हो पाता, जो रक्तस्राव रोकने के काम में आते हैं।

टूटे हुए (खंडित) प्लेट लेट और चोट ग्रस्त ऊतक कोशिकाओं से थाम्बकाइनेज नामक एन्जाइम निकलकर, प्रोथ्रॉम्बिन पदार्थ को कैल्सियम लवणों के साथ थ्रॉम्बिन में बदल देता है। यही थ्रॉम्बिन रक्त के प्रोटीन फाइब्रिनोजन से क्रिया करके फाइब्रिन के रूप में बदल जाता है। इसके थक्का अथवा खुरंड शारीरिक क्रिया द्वारा बनता है।

इसके बारीक धागे जो, अत्यंत बारीक और लचकदार होते हैं, चारों तरफ फैलने लगते हैं और रक्त कणिकाओं को घेर लेते हैं। [शेष पृष्ठ 19 पर]

ज्ञान-विज्ञान

शिशु का तापमान जानने के लिये चिपकनी टेप

प्रसूतिगृहों की नवजात शिशु-शालाओं में शिशुओं का तापमान साधारणतः एक से तीन चार बार लिया जाता है। इसके लिए थर्मामीटर को शिशु की गुदा में लगाया जाता है इसमें व्यर्थ ही बहुत समय नष्ट होता है तथा असुविधा भी होती है।

समय के इस नाश को रोकने के लिये अमेरिका में अब एक प्रकार की चिपकनी टेप तैयार की गई है। काले रंग की छोटी गोलाकार टेप शिशु के पेट पर चिपका दी जाती है। यदि तापमान सामान्य नहीं होता तो टेप का रंग बदल जाता है। यद्यपि इससे बच्चे का सही तापमान ज्ञात नहीं होता तो भी मोटे तौर पर देख कर ही यह पता चल जाता है कि बच्चे पर नज़र रखने की जरूरत है। इसके उपरान्त नर्स गुदा में थर्मामीटर लगा कर बच्चे का सही तापमान ले सकती है।

यह युक्ति ऐसे पदार्थ पर आधारित है जिसे द्रव मणिभ (लिक्विड क्रिस्टल) कहते हैं। इन्हें पारदर्शी प्लास्टिक में बन्द किया गया होता है जिसके पीछे की ओर चिपकन पदार्थ लगा होता है। ताप में परिवर्तन होने पर द्रव मणिभों का रंग भी बदल जाता है। शरीर का तापमान सामान्य होने पर इसका रंग हरा हो जाता है और ज्वर की दशा में गहरा नीला। सामान्य से कम होने पर टेप का रंग भूरा या काला जैसा हो जाता है।

धातु-परीक्षण यंत्र

बम्बई के भारतीय टेक्नॉलॉजी संस्थान ने धातुओं के परीक्षण के लिए एड्डी करेंट टेस्टर नाम का नया यंत्र तैयार किया है। इससे किसी भी धातु से बने कल-पुर्जों और मशीनों की कठोरता, तनाव शक्ति, कार्बन की मात्रा, धातु की मिलावट तथा उष्मा उपचार की स्थितियों की जांच की जा सकती है। इससे धातु को नष्ट नहीं करना पड़ता। परम्परागत विधि में धातु की जाँच करने के बाद उसे नष्ट कर दिया जाता है। इससे समय की भी बरबादी होती है। इस विधि के प्रयोग से इस सबसे छुटकारा मिल जाएगा। इस विधि से किसी भी धातु की जाँच कुछ ही शर्तों में की जा सकती है।

वॉयलिन, सारंगी के तार का उत्पादन भारत में

केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान, मद्रास के वैज्ञानिकों ने वॉयलिन, सारंगी वाद्य यन्त्रों में प्रयुक्त तार व घोड़े के बाल की उत्तम किस्म विकसित करने की एक ऐसी विधि खोज निकाली है जिससे इन्हें अब स्वदेश में ही तैयार किया जा सकेगा।

वॉयलिन, सारंगी इत्यादि वाद्ययन्त्रों में लगे ताँत के तार और उन पर रगड़े जाने वाले गज अथवा घोड़े के बाल अभी तक आयात किये जाते हैं। अपने देश में घोड़े के बाल की काली या भूरी किस्म ही उपलब्ध है और वादक उसे उपयोग करना पसन्द नहीं करते।

इस संस्थान द्वारा विकसित विधि से घोड़े के काले और भूरे बालों को उत्तम सफेद किस्म में परिवर्तित किया जा सकेगा और भेड़ बकरियों की छोटी आँतों से ताँत तैयार की जा सकेगी। वाद्ययंत्र विकास केन्द्र, मद्रास ने इसे पूर्णरूप से सन्तोषजनक पाया है।

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में वॉयलिन का शौक लोगों में बहुत अधिक है तथा वहाँ इनकी भारी खपत की आशा है।

कफ़ोत्सारक औषधि के उत्पादन-अनुसन्धान में सफलता

ग्लिसरील ग्वाएकोलेट एक ऐसा रसायन है जो मुख्यत: खाँसी में कफोत्सारक औषधि के अतिरिक्त, कुछ विशेष अवस्थाओं में, आन्त्र-रोग में प्रतिरोधी के रूप में भी व्यवहृत होता है। अभी इस औषधि के लिए भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। अनुमान है कि प्रति वर्ष देश में लगभग 1.5 लाख रुपये के मूल्य की खपत है।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना के वैज्ञानिक एक ऐसी उत्पादन विधि विकसित करने में सफल हो गए हैं जिससे ग्लिसरिल ग्वाएकोलेट का भारत में ही उत्पादन संभव हो सकेगा। कुछ औषधि उत्पादक फर्मों ने भी इसके गुणों की जांच की है और इसे राष्ट्रीय फार्मुलरी में निर्धारित विशिष्टताओं में अनुरूप पाया है।

प्रयोगों में यह पाया गया है कि 2 टन वार्षिक उत्पादन क्षमता वाले संयन्त्र स्थापित करना अधिक लाभदायक रहता है। लघु-उद्योग के स्तर पर माल तैयार करने के लिये केवल शीशे से निर्मित उपकरणों से भी कार्य लिया जा सकता है।

फुहार से धातु का चूर्ण

जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातु-कर्म प्रयोगशाला ने फुहार से जस्त और अल्यूमीनीयम का चूरा तैयार करने की विधि विकसित की है। इस विधि के अनुसार पिघली हुई धातु की फुहार को छोटे-छोटे परमाणुओं में तोड़ दिया जाता है जिससे धातु का चूरा तैयार हो जाता है। इस पद्धति से धातु का चूरा तैयार करने का यंत्र देश में ही बनाया जा सकता है।

अल्यूमीनियम और जस्त का चूर्ण रंग आदि बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। यह चूरा तैयार करने का प्लान्ट केवल चूरा बनाने के लिए भी लगाया जा सकता है।

इलायची का तेल निकालने की विधि

पिछले दिनों मैसूर की केन्द्रीय खाद्य अनुसंधान संस्था ने विभिन्न प्रकार की इलायचियों में तेल की मात्रा जानने का कार्य शुरू किया था और इसके दौरान इस संस्था ने इलायची में से तेल निकालने की विधि विकसित कर ली है। यह एक महत्वपूर्ण सफलता है, क्योंकि संसार की मंडियों में इलायची का तेल एक हजार रु० से लेकर 1,500 रु० प्रति किलोग्राम के बीच बिकता है।

संसार में भारत ही ऐसा देश है जहाँ सबसे अधिक इलायची पैदा होती है। संसार में उत्पन्न कुल इलायची का लगभग 70 प्रतिशत भाग भारत में पैदा होता है। देश के केरल, मैसूर और तमिलनाडु राज्यों में आम तौर पर इलायची की खेती की जाती है। वहाँ 80 हजार हेक्टर से अधिक भूमि में इलायची की खेती की जाती है 1971-72 के दौरान लगभग तीन हजार टन इलायची पैदा हुई। देश से लगभग 10 करोड़ रुपये की इलायची प्रति वर्ष बाहर के देशों को भेजी जाती है।

ओ-रूमानी आम की संकर किस्म

आन्ध्र प्रदेश के कृषि विश्वविद्यालय में आम की एक संकर किस्म निकाली गयी है जिसका नाम ओ-रूमानी रखा गया है। यह आम की भारी पैदावार देती है और इसके फल काफी दिन तक रखे जा सकते हैं।

ओ-रूमानी किस्म आन्ध्र प्रदेश में कडपा जिले के प्रादेशिक फल अनुसन्धान केन्द्र, अनन्तराजूपेट में रूमानी (मादा) और मलोगोआ (नर) के मेल से निकाली गई है।

ग्रौ-रुमानी में रुमानी ग्रौर मलगोग्रा के बीच के गुण पाए जाते हैं। देखने में संकर फल रुमानी की तरह बड़े ग्राकार का होता है। इसके गूदे में रेशा बिल्कुल नहीं होता ग्रौर गुठली मूल वृक्ष के फल की गुठली से छोटी होती है।

मूंग की नयी किस्म

जबलपुर (मध्य प्रदेश) स्थित जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय ने लगभग 12 से 15 क्विन्टल फी हैक्टर पैदावार देने वाली मूँग की नयी किस्म जवाहर-45 की देश के सभी राज्यों में खरीफ के मौसम में उगाने के लिए सिफारिश की है।

इसकी फसल ढाई महीने में 15 सितम्बर के बाद पक कर तैयार होती है ग्रौर इस तरह ग्रगस्त के ग्रन्त ग्रथवा सितम्बर के शुरुग्रात में जो भारी वर्षा होती है, उससे यह बच जाती है।

इसकी फसल में फी हेक्टर 30 किलो नाइट्रोजन, 25 से 30 किलो पोटाशियम ग्रौर 50 से 60 किलो फास्फोरस डालने की सिफारिश की गयी है। उपर्युक्त मात्रा में उर्वरक डालने से 30 से 40 प्रतिशत तक पैदावार बढ़ जाती है।

[पृष्ठ 16 का शेषांश]

इस प्रकार खुरंड जम जाता है ग्रौर रक्त का प्रवाह मंद पड़ते-पड़ते बिल्कुल बंद हो जाता है। हीमोफिलिया के रोगी के शरीर में यह क्रिया नहीं होती। परिणाम स्वरूप रक्तस्राव भी नहीं रुक पाता ग्रौर रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

विटामिन 'के' वसा में घुलनशील होता है ग्रौर प्रायः सभी हरी साग-सब्जियों में पाया जाता है। मांस में (विशेषकर सूग्रर की कलेजी में) भी इसकी पर्याप्त मात्रा रहती है। ग्राँतों में पचे हुए भोजन के ग्रवशोषण के समय कुछ जीवाणुग्रों की क्रिया द्वारा भी वह विटामिन बनता है।

हीमोफिलिया के रोगी की देखभाल ग्रत्यन्त सावधानी से करनी चाहिए। इसके रोगी भारी तथा कड़ा काम नहीं कर सकते, क्योंकि मामूली-सी खरोंच भी इनके लिए प्राणलेवा बन जाती है। यहाँ तक की दाँत निकलवाते समय भी बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। पर ऐसा भी हो सकता है कि पूरी सावधानी बरतने पर भी ग्रचानक रोगी के शरीर में वृक्क, ग्रामाशय, मांस-पेशियों या ग्रन्य किसी स्थान में रक्तस्राव हो सकता है। कभी-कभी कुहनी या घुटने की रक्त-वाहिनी संधियों के रिक्त स्थानों से रक्त प्रवाहित होने लगता है। रक्त तंत्रिकाग्रों में दाब बढ़ता जाता है। इससे दर्द भी बढ़ता है ग्रौर रोगी बेचैनी से छटपटाते हुए हाँथ-पाँव झटकने लगता है। यदि उसका समुचित रूप से उपचार न हो तो स्थायी पंगुता का शिकार हो जाना तो साधारण सी बात है।

वैज्ञानिक ऐसे पदार्थों के ग्रन्वेषण ग्रौर प्रयोग में लगे हैं जो रोगी के शरीर में पहुँच कर खून को जमाने ग्रौर रक्तस्राव को रोकने की प्रक्रिया में सहायता करे। नीबू का सत, सर्प विष, विटामिन 'के', स्त्री के लैंगिक हारमोन ऐसे पदार्थों में प्रमुख हैं। वैसे ग्राजकल हीमोफिलिया का सबसे ग्रच्छा उपचार है रोगी के शरीर में तुरन्त ताजा रक्त ग्रौर प्लाज्मा पहुँचाना। लेकिन कई बार शरीर में रक्त तथा प्लाज्मा के पहुँचते ही रोगी की मृत्यु हो जाती है। रक्त बैंक इस रोग में विशेष उपयोगी हो सकते हैं। रक्तस्राव के समय वहाँ से रोगी के रक्त समूह का रक्त लेकर तत्काल उसे दिया जा सकता है।

विज्ञान-समाचार

अब मशीन भी बात कर सकती है !

इस्टोनियन विज्ञान अकादमी के साइबर्नेटिक संस्थान ने एक ऐसी मशीन बनायी है जो रिकॉर्ड की हुई आवाज की सहायता के बिना ही स्वयं अपनी वाणी से बात कर सकती है; ऐसी सूचना हाल ही में सोवियत समाचार ऐजेन्सी 'तास' ने दी है।

यह युक्ति, जिसे वाक् संकेतों का संश्लेषक कहते हैं, एक गणितीय सारणी की सहायता से विभिन्न ध्वनियों की विविध दैर्घ्यों की ध्वनि-तरंगें निर्मित करती है; यह सारणी किसी दी हुई ध्वनि, आयामों और कला के प्राचलों पर आधारित होती है।

फिलहाल यह गणितीय सारणी हाथ से बनायी जाती है। किन्तु वैज्ञानिक एक ऐसी नियंत्रण-युक्ति पर काम कर रहे हैं जो संश्लेषक को अलग-अलग शब्द और वाक्य 'सृजन' करने तथा उन्हें मानवीय वाणी में उच्चारण करने में सहायता करेगी।

मरुस्थलों की प्यास दक्षिणी ध्रुव की बर्फ से बुझेगी :

आपको यह बात भले ही शेख-चिल्ली की सी लगे, किन्तु दुनियाँ के एक विशालतम निगमों में से एक निगम-रेण्ड निगम, न्युयार्क-के शोधकर्ताओं का विश्वास है कि उन्होंने एक ऐसा व्यवहारिक एवं सस्ता तरीका मालूम कर लिया है जिससे वे दक्षिणी ध्रुव से हिमशैल (आइसबर्ग) खींचकर संसार के मरुस्थलों तक ला सकते हैं और वहाँ उन्हें पिघलाकर ताजे जल की आपूर्ति कर सकते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि यह जल अन्य प्रकार जैसे समुद्र जल से प्राप्त पेय जल से अधिक सस्ता पड़ेगा।

इन शोधकर्ताओं ने बताया है कि पृथ्वी पर समस्त जल का 97 प्रतिशत भाग समुद्र जल है। शेष 3 प्रतिशत का तीन चौथाई बर्फ के रूप में संसार में कहीं न कहीं जमा हुआ है। लगभग पूरा का पूरा जमा हुआ शुद्ध जल दक्षिणी ध्रुव पर है। दक्षिणी ध्रुव के हिमशैल उत्तरी ध्रुव के हिमशैलों से इस माने में भिन्न हैं कि उनकी आकृति नियमित होती हैं। वे विशाल आयताकार सन्दूक नुमा होते हैं तथा एक-सी सीधी स्थिति में आसानी से तैरते रहते हैं। वे 100 मील तक लम्बे होते हैं, यों सामान्य लम्बाई 10 मील होती है; उनकी चौड़ाई 1 मील तक होती है तथा औसत गहराई 900 फुट के लगभग होती है।

शोधकर्त्ताओं के अनुमान के अनुसार हिमशैलों की पूरी की पूरी गाड़ी को दक्षिणी ध्रुव से दक्षिणी कैलीफोर्निया तक, जहाँ बड़े मरुस्थली क्षेत्र हैं, खींचकर लाने में 10 महीने लगेंगे। यात्रा के समय बर्फ की रक्षा के लिए हिमशैलों को पानी भरी प्लास्टिक की दोहरी चादरों से लपेटना होगा जिससे उनपर घर्षण और समुद्र जल के प्रभाव न पड़ें। विशेषज्ञों का अनुमान है कि पिघलने और घर्षण के कारण 10 प्रतिशत से अधिक हानि नहीं होगी।

हिम गाड़ियाँ चूँकि अधिकांशतः पानी के अन्दर चलेंगी अतः उन्हें खींचने में कोई बड़ी यांत्रिक समस्या नहीं उत्पन्न होगी। उन्हें समुद्र तट के काफी निकट तक लाया जा सकेगा। वहाँ से उन्हें तोड़कर तट पर स्थित बुर्जों तक ले जाया जायेगा और वहां यांत्रिक रूप से बड़े ढेलों को कूटकर पम्पों द्वारा नियत स्थानों तक भेज दिया जायेगा।

आपके बुखार की नाप आधे सैकण्ड में !

बुखार नापने के लिए मुँह में थर्मामीटर रखकर आधा या एक मिनट प्रतीक्षा करने का कष्ट अब नहीं करना पड़ेगा। एक ऐसी मशीन का आविष्कार हुआ है जो आधे सैकण्ड में रोगी के बुखार का 'फोटो' ले लेती है। इस क्रान्तिकारी मशीन को 'इनफ्रारैड थर्मोग्राफ' कहते हैं तथा इसका प्रयोग अमरीका की दक्षिणी कारोलीना के जार्ज टाउन यूनिवर्सिटी मैडीकल सेण्टर में हो रहा है।

यह थर्मोग्राफ शरीर से निकलने वाली अवरक्त किरणों को पकड़ लेता है और उन्हें तापमान बताने वाले विभिन्न रंगों में बदल देता है।

इस नयी युक्ति से सीने के कैंसर की शीघ्र पहचान होने की बड़ी आशा बँधी है।

फसल उगाने की नयी रिले विधि

भारतीय कृषि शोध संस्थान ने एक ऐसी नयी रिले विधि निकालने का दावा किया है जिससे प्रति हैक्टेअर 90 क्विण्टल अनाज अथवा लगभग 10 क्विण्टल तिलहन अथवा 200 क्विण्टल आलू पैदा करने की संभावना पैदा हुई है। इस विधि में अनुक्रमण में खेती का सतत उत्पादन करना होता है।

उक्त संस्थान में हाल के प्रयोगों से पता चला है कि दक्ष मारी नियंत्रण के परिणाम स्वरूप कपास का उत्पादन 330 प्रतिशत, सोरगम का 400 प्रतिशत और हरे चने का 111 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है।

एक दिन कैन्सर प्रतिवर्ती हो सकेगा

एक इजरायली आनुवंशी विशेषज्ञ ने दावा किया है कि उसने सामान्य को कैन्सर कोषों में और कैन्सर को पुनः सामान्य कोषों में बदलने के सफलतापूर्वक प्रयोग किये हैं। उन्होंने कहा कि एक दिन मनुष्य में कैन्सर प्रतिवर्ती हो सकेगा।

डा० लियो सॉक्स, जो इजराइल के रहोवोट स्थित वाइज़मान विज्ञान संस्थान के आनुवंशी विभाग के अध्यक्ष हैं, ने कहा है कि अभी उनकी विधि का डाक्टरी उपयोग होने में लम्बा समय लगेगा।

दाँतों से श्रवण

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, लौस एंजेलैस संयुक्त राज्य अमेरिका, के एक डॉक्टर अर्ल कोलार्ड ने एक ऐसी सूक्ष्म वायरलेस विधि का आविष्कार किया है जिसकी सहायता से कोई भी मनुष्य दाँतों के द्वारा ध्वनि सुन सकेगा। विशेष रेडियो फ्रीक्वेंसी पर प्रसारित संकेत दांत में संयोजित विद्युत चुम्बकीय ट्रांसड्यूसर को गतिमान कर देंगे। इनके गतिमान् होने पर रेडियो-संकेत स्पन्दनों में बदल जायँगे और दांत के माध्यम से मस्तिष्क के उस भाग को प्रसारित हो जायँगे जो श्रवणेन्द्रिय को संचालित करता है। मस्तिष्क के इस भाग में पहुँचने पर ये स्पन्दन स्वतः ध्वनि के रूप में परिवर्तित हो जायँगे।

डा० कोलार्ड का कहना है कि यह विधि उन लोगों को बहुत पसन्द आयगी जो कानों में ध्वनि ग्रहण करने वाले उपकरणों का प्रयोग करना पसन्द नहीं करते। उनका यह भी विश्वास है कि इस विधि की सहायता से वायु में, अन्तरिक्ष में और समुद्र-गर्भ में विचरण करने वाले जलयानों में संचार की अच्छी व्यवस्था करने में बहुत सहायता मिलेगी।

टेलिस्क्राइवर

अब उसी टेलिफोन लाइन द्वारा, जिसका उपयोग हम सामान्य वार्तालाप के लिए करते हैं, हाथ से लिखी सूचना को दूसरे स्थान पर भेजना सम्भव हो जायेगा।

इस विधि के अन्तर्गत, सम्बन्धित व्यक्ति अपने लिखने के उपकरण पेन, पेन्सिल या चॉक—को एक 'लोकेशन इण्डिकेटर' के साथ सम्बद्ध कर देगा। यह एक सूक्ष्म-विधि है जो अन्य सम्बद्ध उपकरणों के साथ मिल कर उन सभी हरकतों को विद्युत् स्पन्दनों में बदल देती है जो पेन या पेन्सिल द्वारा किसी कागज या ब्लैक बोर्ड पर की जाती हैं। हाथ से की जाने वाली ये हरकतें स्वतः विद्युदाणविक स्पन्दनों में परिवर्तित होकर टेलिफोन लाइन द्वारा दूसरे स्थान को प्रसारित हो जाती हैं।

दूसरे छोर पर, जहाँ यह सन्देश प्राप्त किया जाता है, टेलिफोन लाइन से प्राप्त होने वाले विद्युदाणविक स्पन्दन एक विशिष्ट स्वतः डेवलप होने वाली फोटो-स्टेट फिल्म द्वारा ग्रहण किये जाते हैं और उन्हें तुरन्त एक स्क्रीन पर प्रस्तुत कर दिया जाता है। जैसे-जैसे भाषणकर्ता या लेखनकर्ता अपनी ओर रेखाचित्र खींचता जाता है, वैसे-वैसे ये रेखाचित्र बिना किसी विलम्ब के दूसरी ओर दृष्टिगोचर होते जाते हैं। दूसरे शब्दों में भाषण करने या रेखाचित्र बनाने में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार की फिल्म को भविष्य के उपयोग के लिए भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

उपयोगकर्ता जैसे ही अपनी कलम चलाता है, उससे सम्बद्ध लोकेशन इण्डिकेटर अल्ट्रासौनिक स्पन्दनों की एक अनवरत शृंखला प्रसारित करने लगता है। लिखने के स्थान के दोनों ओर एक माइक्रोफोन लगा होता है जो ध्वनि-स्पन्दनों को ग्रहण करता जाता है। ये माइक्रोफोन इतने संवेदनशील होते हैं कि कलम की स्थिति का हर समय ठीक-ठीक पता रखते हैं।

बिजली द्वारा टूटी हड्डी का त्वरित उपचार

टूटी हड्डियां जोड़ने और उनका उपचार करने में विशेष योग्यता-प्राप्त शल्य-चिकित्सकों के सामने प्रायः हड्डी टूटने के ऐसे अनेक मामले आते रहते हैं, जिनमें हड्डियों को जोड़ना सम्भव नहीं हो पाता। कई-कई महीने या वर्षों तक उपचार करने के बाद भी टूटी अस्थियाँ जुड़ नहीं पातीं।

फिलाडेल्फिया के शल्य-चिकित्सकों की एक टोली ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि उन्हें ऐसे ही एक जटिल अस्थिभंग का उपचार करने में सफलता मिली है।

जिस मानव प्राणी पर यह प्रयोग किया गया, वह एक 51-वर्षीया महिला थी। उसका दाहिना घुटना टूट गया था। उसके पैर पर 13 सप्ताह पलस्तर बँधा रहा और उसके बाद कई महीने तक उसकी सेवा-सुश्रूषा होती रही। फिर भी टूटी हड्डी जुड़ नहीं सकी।

तब अस्थि-शल्योपचार के सहायक प्रोफेसर डा० कार्ल टी० ब्राइटन और उनकी अनुसन्धान-टोली ने हड्डी से एक तार बांध दिया। इस प्रकार 9 सप्ताह तक उस पर बिजली की करेण्ट के झटके दिये गये। इससे टूटी हड्डी जुड़ गई और वह महिला बगैर कष्ट के चलने-फिरने लगी।

डा० ब्राइटन को यह सफलता 9 वर्ष के कठिन प्रयास के बाद मिली। इस बीच वह अधिकांशतः खरगोशों पर अपने परीक्षण करते रहे। उन्हें पता चला कि 10 से लेकर 20 माइक्रो एम्पियर की विद्युत् धारा कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करती, जबकि उससे अधिक क्षमता की करेण्ट न्यूनतर विकास उत्प्रेरित करती है और कभी-कभी विनाशक सिद्ध होती है।

नई विधि के अन्तर्गत, अस्थि-भंग वाले स्थान को सुन्न करके टूटी हड्डियों को बिजली के तार और बैटरी से जोड़ने में 20 मिनट का समय लगेगा, जबकि हड्डी जोड़ने विषयक सामान्य शल्योपचार में लगभग 2 घण्टे लग जाते हैं। साथ ही, अब अपेक्षाकृत बहुत कम समय में हड्डी पर पलस्तर चढ़ाया जा सकता है, इसलिए हड्डियों और मांसपेशियों के कड़ा या विकृत होने की भी सम्भावना पुरानी विधियों की अपेक्षा कम ही होती है।

बाल विज्ञान

बच्चो, मानव की सदैव यह चेष्टा रही है कि उसका नाम अमर रहे—उसने बड़े या छोटे तरीके से सदैव यह कोशिश की है कि आने वाली पीढ़ियाँ जानें कि संसार में उस नाम का कोई व्यक्ति हुआ है। यदि कोई काम ऐसा हो जिसके बारे में विशेषज्ञों का यह कहना हो कि यह नहीं हो सकता, तो चुनौती और भी बड़ी हो जाती है। आओ, आज हम इसी विषय में कुछ चर्चा करेंगे।

दो महासागरों को मिलाने वाली नहर पनामा-नहर

1903 में अमेरिकियों ने असम्भव समझे जाने वाले कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया—मानव का यह सदियों पुराना स्वप्न था कि अतलान्तक महासागर और प्रशान्त महासागर को एक-दूसरे से मिला दिया जाये और दक्षिणी अमेरिका के सिरे से होकर 10,000 मील लम्बी यात्रा न करनी पड़े।

समस्याएँ असीम थीं। 55,000 से अधिक आदमियों को 100 अंश (फारेनहाइट) गर्मी में काम करना पड़ा। उधर चिकित्सा-अधिकारियों ने मलेरिया तथा पीतज्वर की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया।

27 करोड़ घनगज मिट्टी और चट्टानों को हटाने के लिए 6 करोड़ टन बारूद का प्रयोग किया गया। कभी-कभी 1 मील पर 1 करोड़ डालर का खर्च आया।

अमेरिकी चिकित्सकों की टोली ने बीमारी की समस्याओं को आश्चर्यजनक तरीके से हल कर लिया और इंजीनियरों तथा मजदूरों ने 1,000 फुट लम्बे और 110 फुट चौड़े लोहे के फाटकों का निर्माण किया। वे फाटक संसार के सबसे विशाल फाटक हैं। इस प्रकार असम्भव समझी जाने वाली पनामा नहर बन कर तैयार हो गई।

कोलोराडो नदी पर हूवर बाँध

अमेरिका में ऐरिजोना और नेवाडा की सीमा पर स्थित हूवर बाँध के निर्माण पर विवाद था। इंजीनियरों और भूगर्भ-शास्त्रियों का कहना था कि अविश्वसनीय कोलोराडो नदी पर बाँध बनाना असम्भव है। वे कहते थे कि पहली बाढ़ से ही बाँध और उसके साथ आधे कैलिफोर्निया का सफाया हो जायेगा।

किन्तु 1930 में आर्थर पावल डेविस के स्वप्नों से प्रेरित होकर सरकार ने 70 लाख टन कंक्रीट डालने का काम शुरू कर दिया। धरती पर किसी निर्माण-कार्य में मनुष्य ने इतना अधिक सामान कभी प्रयुक्त नहीं किया था। कंक्रीट को इकट्ठा और अखंड रखने के लिए कंक्रीट डालने का कार्य दो साल तक लगातार चौबीसों घंटे चलता रहा..... हूवर बाँध पर सुरक्षा सम्बन्धी अपूर्व उपायों के बावजूद कोलोराडो नदी को नियन्त्रित करने में लगे लोगों को खतरों और मृत्यु का सामना करना पड़ा। विशाल बाँधों द्वारा रोक दिये जाने से नदी का पानी मजदूरों के सिरों से 50 फुट ऊपर पहुँच गया और दोनों ओर की चट्टानी सुरंगों में से होकर जोरों से बहने लगा। निर्माण-काल में 98 व्यक्तियों को अपनी जानें गंवानी पड़ीं। किन्तु 6 वर्षों के बाद हूवर बाँध बन कर पूरा हो गया। बाँध-निर्माण के कार्य में एक अपूर्व अवसर, शैली और कार्यविधि सामने आई।

"लोहे की कविता"

पुलों के डिजाइन तैयार करने वाले अमेरिका के जोजेफ स्ट्राम 1920 तक संसार में 399 पुलों का निर्माण कर चुके थे और उनकी इच्छा थी कि उनका 400 वां पुल ऐसा हो जिसमें असम्भव समझा जाने वाला काम करके दिखाया जाये यानी सनफ्रांसिस्को के बन्दरगाह का पुल बनाया जाये।

10 वर्ष तक स्ट्रास का सभी ओर से विरोध किया गया। प्रमुख भूगर्भशास्त्रियों का कहना था कि भूकम्प से गोल्डन गेट पर बना कोई भी पुल पूरी तरह तहस-नहस हो जायेगा। संसार के कुछ प्रमुख इंजीनियरों का कहना था कि जोरदार आंधियों और समुद्री लहरों के कारण काम करना बिलकुल असम्भव होगा। कुछ लोगों ने इस योजना का यह कह कर विरोध किया कि पुल से बन्दरगाह का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा।

भूकम्पों के दौरान बुर्जियाँ बुरी तरह हिल गईं और पुल पर ऊँचाई पर काम करने वाले लोग समुद्री बीमारी में ग्रस्त हो गए। अन्त में खाड़ी पर पुल के निर्माण के लिए पहला तार खींचा गया और उसे बुर्ज पर बाँधा गया। सब मिलकर 30,000 मील लम्बे तार खींचे गए।

और तब मई 1937 में, अर्थात निर्माण-कार्य आरम्भ होने के साढ़े चार वर्ष बाद, स्ट्रास का 400 वां पुल बन कर तैयार हो गया। एक प्रकार से यह पुल लोहे से कविता का निर्माण था।

40 वर्षों तक संसार की सबसे ऊँची इमारत

और इसके बाद असम्भव समझी जाने वाली यह गगनचुम्बी इमारत सामने आती है जिसे 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' कहते हैं। इसके निर्माताओं का कहना था कि कि वे इसका निर्माण 2 वर्ष से भी कम समय में कर सकते हैं और यह इमारत किसी भी प्राकृतिक शक्ति का मुकाबला कर सकती है। संशयशील व्यक्ति इसे देख कर चकित थे और यह 40 वर्षों तक संसार की सबसे ऊँची इमारत रही और यह 14 महीनों से भी कम समय में बन कर पूरी हुई। इमारत की मजबूती की परख 1945 में हुई जब बी-25 किस्म का एक विमान 250 मील प्रति घंटे की चाल से उड़ते हुए इमारत से टकराया। उससे 79 वीं मंजिल का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया किन्तु इमारत को कोई बड़ा नुकसान नहीं पहुँचा।

- अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।
- हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 110 | ज्येष्ठ 2028 विक्र०, 1892 शक | संख्या 10
अक्टूबर 1972

सूर्य : धरती के लिये एक अतुल्य वरदान

श्री निरंकार सिंह

पूरब से उदय होकर पश्चिम में अस्त हो जाने वाले सूर्य की शोभा को किसने नहीं देखा है? नित्य एक प्रकार का यह मनमोहक दृश्य मनुष्य अपने जन्म से आज तक देखता आया है और इससे उसका जी कभी नहीं उबा। प्रागैतिहासिक काल में तो इससे प्रभावित होकर मनुष्य ने इसमें देवत्व की कल्पना की थी और इन्हीं की स्तुति में अपनी कवित्व शक्ति का उपयोग किया था। किन्तु जबसे मनुष्य में विचार और विवेचना का प्रादुर्भाव हुआ तब से वह यह समझने का प्रयत्न करता रहा कि यह कैसा है, क्यों चमकता है, इसका विस्तार क्या है, इत्यादि।

वैज्ञानिकों ने अपने दुर्लभ प्रयासों से सूर्य के बारे में बहुत सी बातें जान ली हैं। अब तो सूर्य अत्यन्त तेजोमय एवं जाज्वल्यमान गोलाकार पिंड मात्र माना जाता है। इसके आकर्षण के कारण पृथ्वी तथा अन्य ग्रह अपनी कक्षा में स्थिर रहकर निरंतर इसका परिभ्रमण करते हैं। अन्तरिक्ष में अवस्थित अनगिनत छोटे-बड़े तारात्रों के बीच अपना सूर्य भी एक साधारण पीला, टिमटिमाता बौना तारा है। अन्य तारों की तुलना में यह इतना अधिक तेजोमय इसलिये जान पड़ता है चूँकि इसकी दूरी पृथ्वी से अन्य तारों की अपेक्षा बहुत ही कम है। लेकिन फिर भी इस दूरी का मान लगभग 9 करोड़ 29 लाख मील है, वैसे यह यह दूरी कम नहीं है पर अन्तरिक्ष की अन्य दूरियों की तुलना में यह उपेक्षणीय है।

सूर्य पृथ्वी से 3 लाख 32 हजार गुना भारी है जबकि पृथ्वी का भार लगभग 1,68,00,00,00,00, 00,00,00,00,00,000 मन है। सूर्य मुख्यत: हाइड्रोजन नामक तत्व से बना हुआ है। अनेक प्राकृतिक कारणों से सूर्य का हाइड्रोजन उसके भीतर ही हीलियम में परिवर्तित होता जा रहा है। इस परिवर्तन के कारण ही सूर्य से उष्मा एवं प्रकाश आदि के रूप में प्रचण्ड ऊर्जा बाहर निकलती रहती है। सूर्य के तल का ताप लगभग 5,500 डिग्री सेन्टीग्रेड है जबकि पानी 100 डिग्री सेन्ट्रीग्रेड पर उबलता है। सूर्य का आन्तरिक ताप लगभग 2 करोड़ डिग्री सेन्टीग्रेड है। अत्यधिक आन्तरिक ताप के कारण सूर्य का तल उबलते हुये द्रव्य के तल की भाँति अस्थिर रहता है। अर्थात् आन्तरिक पदार्थ

बाहरी तल पर और तल का पदार्थ भीतर आता जाता रहता है। इस क्रिया के कारण सूर्य के तल से प्राय: बड़ी-बड़ी लपटें निकलती रहती हैं। इन लपटों का रंग सामान्यतया गुलाबी होता है और आकार बड़ा विचित्र। सूर्य का अत्यधिक ताप होने के कारण यह अपने चारों ओर गरमी और प्रकाश उगलता रहता है।

महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस जाज्वल्यमान पिण्ड के तेज से ही पृथ्वी पर सभी प्रकार के जीवों का अस्तित्व है। सूर्य से हम तक आने वाला प्रकाश ही वह स्रोत है जिससे जीवन की समस्त प्रक्रियाओं को बल मिलता है। सूर्य से हमें जो प्रकाश और गरमी मिलती है उसे वैज्ञानिक सौर ऊर्जा कहते हैं। सूर्य-ऊर्जा का एक विशाल स्रोत है। ऊर्जा कई प्रकार की होती है तथा इसकी आवश्यकता प्रत्येक कार्य के लिये होती है। पनबिजलीघरों को गिरते हुये जल से ऊर्जा मिलती है और इन बिजली घरों से उत्पन्न बिजली भी ऊर्जा का एक रूप है जिनसे कल-कारखानों के पहिये चलते हैं तथा हमारी आपकी दैनिक जरूरतों में यह सहायक है। वायु में उड़ने वाले वायुयान, सड़कों पर चलने वाली मोटर तथा गाड़ियाँ पेट्रोल के दहन से ऊर्जा प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार समस्त जीव भोजन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

सभी वानस्पतिक पदार्थों का जीवन सौर ऊर्जा पर ही आश्रित है। सूर्य के प्रकाश के बिना पृथ्वी की वानस्पतिक निर्माण की क्रियायें नहीं हो सकती हैं। और उसके बिना जीवन का अनन्त क्रम भी नहीं चल सकता। सभी वानस्पतिक पदार्थों के जीवन का आधार सूर्य है। पत्थर का कोयला जो वानस्पतिक पदार्थों के जमीन में दब जाने से तैयार हुआ है आज भी कल-कारखानों की जान है।

हम जो पेट्रोल कार या बस के चलाने के लिये प्रयोग करते हैं वह सूर्य के प्रकाश के कारण बन सका है। वस्तुत: वह सूर्य की जीवाश्मी ऊर्जा ही है। पनबिजली घरों में विजली, नदियों पर बाँध बनाकर ऊँचाई से पानी के गिराने से उत्पन्न होती है। पर नदियों में पानी का एकत्र होना व प्रवाहित होना सौर ऊर्जा के कारण ही सम्भव है। सूर्य प्रतिदिन लगभग दस हजार टन पानी समुद्र की सतह से उड़ाकर वायुमण्डल में भेजता है जहाँ से इस जलराशि की काफी मात्रा वर्षा के रूप में नीचे गिरती है। जिनसे नदियों में जल प्रवाहित होता रहता है। पृथ्वी के मुख पर प्रदर्शित हो रही समस्त ऊर्जा का एक अंश भी ऐसा नहीं जिसका जन्म सूर्य से न हुआ हो।

कोयला और पेट्रोलियम ऊर्जा प्राप्ति के दो प्रमुख स्रोत हैं। दोनों की मात्रा लगातार घटती जा रही है, उनकी प्राप्ति के लिये जमीन के भीतर और गहरे उतरना जरूरी होता जा रहा है और इसलिये उन्हें प्राप्त करने में कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। बात इतनी होती तो गनीमत थी। असली समस्या तो यह है कि अगले लगभग 300 वर्षों में इन दोनों स्रोतों का भण्डार खत्म हो जायेगा। भारत में तो यह संकट और भी जल्दी आने वाला है। सुविख्यात भारतीय वैज्ञानिक डा० भाभा ने अपने एक वक्तव्य में कहा था :—

"भारत में कोयले का कुल भंडार एक सौटन प्रति जन से अधिक नहीं है। यह चीन के अनुमानित कोयले के भंडार का बीसवाँ, ब्रिटेन का पेंतीसवाँ और अमेरिका का एक सौपचासवाँ भाग है। अब यदि भौगोलिक विकास के बाद भारत में कोयले की खपत प्रतिवर्ष इतनी हो जावे, जितनी आज अमेरिका में है तो हमारा सब कोयला लगभग बीस वर्ष में समाप्त हो जायेगा। यदि देश में उपलब्ध पानी की पूरी सम्भावित शक्ति को भी उपयोग में लाया जाय तो भी 1/10 किलोवाट प्रतिजन से अधिक बिजली नहीं मिलेगी। इसकी तुलना अमेरिका से कीजिये जहाँ इस समय भी इससे 6 गुना है और नारवे में तो 11 गुना है। भारत की जनसंख्या तीव्रता से बढ़ती जा रही है, तेल का अनुमानित भंडार तो कोयले से भी कम है। इस प्रकार हम निष्कर्ष निकालने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि भारत अपने पानी और तेल आदि के प्रचलित साधनों से वह जीवन स्तर प्राप्त नहीं कर सकता जो आज अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे देशों के लिये सामान्य बात बन चुकी है। अत: भारत के लिये केवल यही उपाय रह जाता है कि वह अधिकाधिक परमाणु ऊर्जा का उपयोग करे।"

डा० भाभा के उपयुक्त कथन से स्पष्ट है कि कोयला

पेट्रोलियम और जल-विद्युत के आधार पर हजारों वर्षों से चली आ रही मानव सभ्यता भविष्य में इस आधार पर नहीं चल पायेगी। तब क्या होगा?

तब हमारे लिये दो ही बड़े ऊर्जा स्रोत रह जाँयगे। (1) परमाणु ऊर्जा और (2) सौर ऊर्जा। दोनों के उपयोग पर मानव सभ्यता का भविष्य निर्भर करता है।

सौर ऊर्जा का असीम भण्डार हम पर बरस रहा है लेकिन समस्या है उसके उपयोग के उत्तम सुलभ साधनों के आविष्कार की। इस समस्या का शीघ्राति-शीघ्र हल करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि परमाणु ऊर्जा को निर्माण कार्य में जोतना।

सूर्य अपने चारों ओर जो ऊर्जा उगलता रहा है उसकी अधिकांश ऊर्जा अन्तरिक्ष की अतल गहराइयों में खो जाती है। पर उस ऊर्जा का एक अत्यल्प भाग पृथ्वी पर भी आता है। यदि हम मान लें कि पृथ्वी को सूर्य से गर्मी वर्तमान की तरह नियत मात्रा में निरन्तर नहीं मिल रही वरन् उसका कोटा उसे किस्तों में मिलता तो एक सेकेण्ड में उससे जितनी ऊर्जा मिलेगी उससे पृथ्वी का 70 वर्ष तक काम चल सकता है। लेकिन सूर्य अपनी ऊर्जा किस्तों में नहीं देता, यदि ऐसा होता तो उसकी एक सेकिन्ड की समस्त ऊर्जा से पृथ्वी भाप बन जाती।

सौर ऊर्जा रूस, इंगलैण्ड, अल्जीरिया, लेबनान, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, इटली तथा कुछ अन्य देशों में छोटे पैमाने पर प्रयोग में लाई जा रही है।

रूस सौर ऊर्जा के उपयोग में सबसे आगे है। इस बात का ज्वलन्त प्रमाण यह है कि पिछले वर्ष रूस ने लूना 17 को चन्द्रमा पर भेज कर एक चन्द्रबग्घी (लूनाखोद) चन्द्रमा पर उतारी थी। आठ पहियों के आधार पर टिकी टंकी के आकार की यह ढाई मीटर लम्बी और डेढ़ मीटर ऊँची है। इसका प्रत्येक पहिया सूर्य की किरणों से प्राप्त शक्ति से चलता है।

रूस में ताशकन्द के पास चरवाक पन बिजलीघर के निर्माण-स्थल पर 82 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में पानी गरमाने की एक संरचना बनायी गयी है। गर्मी के दिनों में यह कैंटीन और स्नान गृहों के लिये गर्म पानी प्रदान करती है और जाड़ों में मकानों को गर्म करती है। यहाँ के वैज्ञानिक सौर ऊर्जा से चलने वाले वातानुकूल बनाने का भी प्रयत्न कर रहे हैं।

रूस में ही एक ऐसे सौर बिजलीघर की प्रायोजना बन चुकी है, जिसके द्वारा 25 लाख किलोवाट घंटा विद्युत और बीस हजार टन भाप प्रतिवर्ष तैयार हो सकेगी। इस ढंग से प्राप्त होने वाली बिजली पन बिजली से सस्ती होगी।

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने सूर्य के प्रकाश को विद्युत में बदलने के लिये सिलिकान धातु को उपयोग में लाकर "सोलर सेल" का निर्माण किया है। ऐसे सेल विद्युत घड़ियों व छोटे ट्रांजिस्टरों के लिये उपयोगी हैं। अमेरिका के एक नगर में इन्हीं सेलों से निर्मित बैटरियाँ टेलीफोन लाइनों में प्रयुक्त की जा रही हैं।

"सोलर सेल" की उपयोगिता अन्तरिक्ष यान तथा राकेटों में दूर संचार व्यवस्था के लिये बड़े महत्व की सिद्ध हुई हैं। अन्तरिक्ष यान की प्रणालियों को विद्युत प्रदान करने का प्राथमिक स्रोत "सोलर सेल" ही है अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में सौर ऊर्जा की महत्ता इसलिये अधिक है कि जहाँ अन्य साधनों का पृथ्वी के साथ ले जाना जरूरी है, वहाँ यह सर्वव्यापी है। अमेरिका ने ऐसे सोलर सेल के निर्माण की दिशा में अच्छा कार्य किया है।

ब्रिटिश एयर क्राफ्ट कारपोरेशन के "इलेक्ट्रानिक एण्ड स्पेस सिस्टिम्स ग्रुप" ने ऐसे यन्त्र का सफलतापूर्वक विकास किया है, जो सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर सकता है।

भारत की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने भी एक ऐसे चूल्हे का निर्माण किया है जो सूरज से प्राप्त ऊर्जा के सहारे चल सकता है। प्रस्तुत लेख के लेखक ने भी सौर ऊर्जा से कार्य करने वाले एक यन्त्र का आविष्कार किया है।

श्री निरंकार सिंह
वासुदेव भवन
गोयनका लेन, अस्सी
वाराणसी

चिकित्सा में कर्णातीत तरंगों का उपयोग

डा० सतीश चन्द्र श्रीवास्तव

कर्णातीत लहरें साधारण ध्वनि की तरह प्रास्थ लहरें हैं। इनकी आवृत्ति 20,000 साइकिल प्रति सेकण्ड से अधिक होती हैं तथा इसी कारण वह ध्वनि कानों से सुनी नहीं जा सकती। इन लहरों का यद्यपि वैज्ञानिक अनुसंधान में गत पचास वर्षों से उपयोग होता आया है, परन्तु चिकित्सा में इनका उपयोग केवल गत बीस वर्षों से ही सम्भव हो पाया है। मुख्यत: गत दस वर्षों से चिकित्सा की दोनों मूल शाखाओं, चिकित्सा एवं निदान, में इन लहरों का विशेष उपयोग किया जाने लगा है। जहाँ तक निदान का सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले दस वर्षों में कर्णातीत निदान एक्स-किरण निदान का काफी हद तक स्थान ले लेगा। इससे पूर्व कि इन उपयोगों की चर्चा की जाय, निम्न दो बातों को समझ लेना आवश्यक है—

1—लहरों के जीव पदार्थों में प्रवेश से जीवों पर प्रभाव—

जब कर्णातीत लहरें किसी जीव पदार्थ में प्रवेश करती हैं तो उनकी गति में भिन्न-भिन्न ऊतकों की पर्तों में प्रवेश करने से अन्तर आ जाता है। इसके अतिरिक्त इन लहरों का अवशोषण भिन्न-भिन्न ऊतकों में भिन्न होता है। किसी भी जीव पदार्थ में एक अथवा दो मिलीमीटर तक भी एक प्रकार के ऊतक नहीं पाये जाते। ऊतकों की इस भिन्नता के कारण ये लहरें प्रत्येक सतह पर परावर्तित होती हैं। उदाहरणार्थ जब ये लहरें शरीर के किसी भाग में प्रवेश करती हैं तो वे क्रमश: एपिथीलियल ऊतक, वसा, सम्मिलन ऊतक, माँसपेशी तथा हड्डी में प्रवेश करती हैं। वास्तव में जीव पदार्थों में इससे भी अधिक विषमता होती है। गति, अवशोषण व ध्वनि अवरोध के विभिन्न ऊतकों में अन्तर और उसके कारण उत्पन्न परावर्तन व आवर्तन की सहायता कर्णातीत निदान में ली जाती है।

2—जीव पदार्थों पर कर्णातीत लहरों का प्रभाव—

इन प्रभावों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक तो गुह्य (द्रव पदार्थ में कर्णातीत लहरों के प्रवास से छोटे-छोटे बुलबुले पैदा होते हैं जिनके फूटने से बहुत अधिक ताप व दाब उत्पन्न होता है, इसी को गुह्य कहते हैं) सीमा से अधिक तीव्रता पर पड़ने वाले प्रभाव व इस सीमा से नीचे पड़ने वाले प्रभाव। गुह्य सीमा से ऊपर की कर्णातीत लहरें जीव पदार्थों के लिए नाशक होती हैं। अत: जहाँ ऊतकों का नाश करना होता है वहाँ इनका उपयोग किया जाता है।

जब कर्णातीत लहरों की तीव्रता कम होती है तो गुह्य की सम्भावना नहीं रहती। वह सीमा उस द्रव पदार्थ की प्रकृति आदि पर निर्भर है जिसमें लहरें प्रवेश करती हैं। अधिक आवृत्ति पर जैसा कि चिकित्सा में बहुधा उपयोग होता है गुह्य की सीमा इससे भी अधिक होती है परन्तु सुरक्षा के विचार से चिकित्सा में कम गुह्य सीमा वाली लहरों का प्रयोग किया जाता है। जीव पदार्थों पर इन लहरों के निम्न प्रभाव हो सकते हैं—

ताप—

कर्णातीत लहरों का जब किसी पदार्थ में प्रवाह होता है तो वे अवशोषण के कारण ताप में परिवर्तित हो जाती हैं। यह ताप भिन्न-भिन्न ऊतकों में उनके अवशोषण के अनुसार भिन्न होता है। हड्डियों में अवशोषण ऊतकों के अनुपात में अधिक होता है। इसी कारण

हड्डियों और उसके समीप कर्णातीत लहरों के प्रवाह से ताप सबसे अधिक हो जाता है। कभी यह ताप खतरे की सीमा से अधिक हो जाता है जिसका कि कर्णातीत डोज़ निर्धारित करते समय ध्यान रखा जाता है। मनुष्य के शरीर में बहता हुआ रक्त भी इस बढ़ते ताप को कम करने में सहायक होता है और बहुत से रोगों में रक्त के प्रवाह की गति बढ़ने से सहायता मिलती है।

रासायनिक क्रियायें—

ताप के अतिरिक्त इन लहरों के द्वारा बहुत सी रासायनिक तथा जीव-वैज्ञानिक अभिक्रियायें भी होती हैं। परन्तु यह कहना कठिन है कि इन क्रियायों का मनुष्य के शरीर में लहरों के प्रवाह के कारण परिवर्तनों से कहाँ तक सम्बन्ध है। इनमें से कुछ परिवर्तन रक्त की गति में अन्तर आने से भी हो सकते हैं। यह प्रश्न अभी तक भली-भाँति नहीं हल किया जा सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि जो प्रयोग अलग ऊतकों पर किये गये हैं और उन पर रक्त के प्रवाह के स्थान पर बनावटी निविष्ट द्वारा लिया गया है, वे कहाँ तक जीवित पदार्थों से मिलते हैं; यह कहना कठिन है। जीव का होना अथवा न होना ही काफी महत्त्वपूर्ण है और इन प्रयोगों में अन्तर ला सकता है। अतः ऐसे प्रश्नों का उत्तर जीवित पदार्थों में प्रयोग करने से ही मिल सकता है जो कि अभी नहीं किये जा सके हैं।

शरीर के ऊतकों की कोशिकाओं में परिवर्तन—

शरीर के ऊतक नाना प्रकार की कोशिकाओं से निर्मित हैं। इन कोशिकाओं का पदार्थ एक झिल्ली में भरा होता है और इनकी बनावट व संरचना अत्यन्त जटिल होती है। जब कर्णातीत लहरें जीवित शरीर में प्रवेश करती हैं तो वे कोशिकाओं पर कई तरह प्रभाव डाल सकती हैं। लहरों के दबाव के कारण परासरसी दाब में अन्तर आ सकता है तथा कोशिका के बाहर व अन्दर के द्रव पदार्थों का विसरण बढ़ सकता है। झिल्ली के छिद्र बड़े हो सकते हैं जिसके कारण अन्दर व बाहर के द्रव अलग नहीं रह सकते। कोशिकाओं की झिल्ली फट सकती है। इन प्रभावों को आवश्यकतानुसार शल्य चिकित्सा में उपयोग में लाया जा सकता है।

तन्त्रिका पर प्रभाव—

तन्त्रिका पर लहरों के प्रभाव से तन्त्रिका आवेग को थोड़ी देर के लिए रोका जा सकता है। अतः इस कारण कई प्रकार के दर्दों से मुक्ति मिल सकती है। यदि तन्त्रिका पर वास्तव में थोड़ी देर के लिए प्रभाव डालकर आवेग रोका जा सकता और इसका बाद में कोई हानिकारक प्रभाव न पड़ता तो ये लहरें सचमुच कर्णातीत स्थानिक संवेदहरण के रूप में या अन्य प्रकार के पीड़ाहरण कार्यों के लिए भली-भाँति उपयोग में लाई जा सकती थीं।

लहरों का जाँच में उपयोग—

इन लहरों द्वारा जाँच करने के लिए मुख्यतः तीन विधियाँ काम में लाई जाती हैं—

(अ) गूँजविधि—

यह इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि जब कोई लहर दो भिन्न प्रकार के ऊतकों के अन्तर्पृष्ट से टकराती हैं तो उसका कुछ भाग पहले ऊतक में परावर्तित होकर व शेष भाग दूसरे ऊतक में आवर्तित होकर चला जाता है। यह परावर्तन दोनों ऊतकों के ध्वनि अवरोध पर निर्भर करता है जो कि उनके ध्वनि वेग और घनत्व पर निर्भर है। इसी प्रकार प्रत्येक अन्तर्पृष्ट पर इन लहरों का परावर्तन होता है और ये परावर्तित लहरें ट्रांसड्यूसर पर फिर वापस आ जाती हैं। यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक कि ये लहरें पदार्थ में पूरी तरह शोषित नहीं हो जातीं। इस प्रकार ट्रांसड्-यूसर पर प्रारम्भिक व अन्य परावर्तित लहरें आ मिलती हैं जिन्हें ऑसिलोस्कोप पर देखा जा सकता है। जितनी बार किसी अन्तर्पृष्ट से परावर्तन होता है उतनी बार इसे देखा जा सकता है परन्तु प्रत्येक बार अपेक्षाकृत यह धीमा होता जाता है। कभी-कभी एक ग्राहक व एक प्रेषक ट्रांसड्यूसर का उपयोग किया जाता है जिनमें परावर्तित तरंगों के स्थान पर आवर्तित तरंगें ग्राही ट्रांसड्यूसर पर पड़ती हैं जिन्हें ऑसिलोस्कोप पर देखकर रोग का पता लगाया जा सकता है।

(ब) फ़ोटोग्राफी विधि—

यह विधि पहिले जैसी ही है, केवल अन्तर यह है

कि इसमें ऑसिलोस्कोप के अवलोकन की सहायता से एक चलता हुआ कर्णातीत जाँच यंत्र रोगी भाग का अवलोकन करता है। इस प्रकार गूँज की चोटियों के स्थान पर एक फोटो की तरह का चित्र मिल जाता है जिसमें रोग का पता आसानी से चल जाता है।

(स) कर्णातीत टेलिविज़न कैमरा—

इसका उपयोग उन जगहों पर किया जाता है जहां शरीर के हिलते-डुलते भागों की हिलने-डुलने की जाँच की जाती है। यह पूरे टेलिविज़न के सिद्धान्त पर आधारित है, केवल अन्तर यह है कि प्रकाश के स्थान पर कर्णातीत लहरों का प्रयोग होता है।

रोगों का पता लगाना—

यों तो बहुत से रोगों का इन लहरों द्वारा पता लगाया जाने लगा है परन्तु कुछ मुख्य विषय जिनमें इन लहरों का विशेष उपयोग किया गया है, इस प्रकार हैं—

(1) आँखों की जाँच—

आँखों की जाँच में मुख्यतः रेटिना विलगाव, आकार, उसके बीच के लेन्स की माप और आँखों की कक्षा की संरचना का पता लगाने में ये लहरें अपेक्षाकृत सफल सिद्ध हुई हैं।

(2) गायनॉकोलॉजी—

आजकल चार सप्ताह से भ्रूण के बढ़ने और पूर्ण शिशु बनने तक सारी जाँच कर्णातीत लहरों द्वारा की जा सकती है। इस प्रकार गर्भ में ही शिशु की देखभाल व दवा की जा सकती है जिससे अपंग शिशुओं को बचाया जा सकता है और उनके दोष को पैदा होने के पहले ही ठीक किया जा सकता है। गर्भ की पूर्ण अवस्था में भी जाँच करने से शिशु या माँ पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस तरीके से गर्भ में रसौली का पता आसानी से लगाया जा सकता है जो एक्स किरणों द्वारा कठिन होता है।

(3) न्यूरोलॉजी—

इस विषय में इन लहरों का उपयोग सबसे पहले किया गया। रसौली का सही स्थान निर्धारित करने में इन लहरों की सहायता ली जाती है। पारकिन्सन के रोग में मस्तिष्क के जिस भाग को काटना या नष्ट करना होता है उसका पता भी इन लहरों द्वारा करते हैं।

(4) कार्डियोलॉजी—

हृदय के हिलने-डुलने की जाँच और पूर्वहृद अपसरण की जाँच में ये लहरें बहुत सहायक होती हैं। एक्सकिरण द्वारा इनका पता लगाना कठिन है।

(5) सामान्य निदान—

रसौली का पता लगाने में, विशेषतया छाती की रसौली की जाँच में, यह ढंग बड़ा सहायक हुआ है। कई प्रकार की पथरी के पता लगाने में यह ढंग अपेक्षाकृत सुविधाजनक है। इसके अतिरिक्त कोई बाहरी चीज शरीर में घुस जाने से उसका पता लगाकर निकालने में इनका उपयोग किया जाता है।

लहरों का चिकित्सा में उपयोग—

गत दस वर्षों से इन लहरों का उपयोग बहुत से रोगों को अच्छा करने में किया गया है। कुछ मुख्य विषय जिनमें इनका उपयोग सफलतापूर्वक किया गया है वे तीन क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं।

(1) परिधि तन्त्रिका तंत्र—जैसे न्यूराइटिस व न्यूरॉलाजिया।

(2) कंकाल पेशी तंत्र—जैसे स्पॉन्डिलाइटिस, आर्थाइटिस व मयालजिया।

(3) चर्म रोग—जैसे अलसर व स्कलरोडरमा।

इनके अतिरिक्त घावों के अच्छा करने में और ऑफथेलमॉलोजी में रेटिना के विलगाव को दूर करने में इनका उपयोग किया गया है। आशा है कि जैसे-जैसे इन लहरों के शरीर पर प्रभाव और उसकी क्रियाविधि का पूरा पता चलेगा, नये-नये उपयोग सामने आते जाएँगे।

चीड़-फाड़ में लहरों का उपयोग—

सबसे पहले चीड़-फाड़ में कान की बीमारी में इन लहरों का उपयोग किया गया। इस बीमारी में

[शेष पृष्ठ 10 पर]

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में रसायन एवं भौतिक शास्त्र

डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

प्रस्तुत लेख में वैदिक युग से लेकर ईसा के निकट सम्बन्धी पूर्व युग तक के प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध रसायन एवं भौतिक शास्त्र सम्बन्धी प्रमुख एवं महत्वपूर्ण सन्दर्भों के संक्षिप्त तथा समीक्षात्मक सिंहावलोकन का प्रयास किया गया है।

मानव संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ऐसी कई ऋचाओं से भरे पड़े हैं जो दर्शाती हैं कि भारतीय महर्षियों में सृष्टि के मूलभूत उपादानों के सम्बन्ध में ऊहापोह की एवं प्रकृति की विभिन्न लीलाओं के कारणों एवं गुणवर्गों को ज्ञात करने की अंधविश्वास एवं पूर्वाग्रह से दूर, विशुद्ध वैज्ञानिक प्रवृत्ति थी। इसी वैज्ञानिक जिज्ञासा, विचार एवं क्रिया पद्धति ने ईसा से कई शताब्दियों पूर्व ही न केवल भौतिक एवं रासायनिक विधाओं के वरन् गणित, चिकित्सा—विज्ञान, यांत्रिकी, नक्षत्र शास्त्र, प्राणि एवं वनस्पति शास्त्र आदि के क्षेत्रों में भी भारत को विज्ञान की कई शाखाओं के जन्मदाता होने का गौरव दिलाया। जहाँ तक विशेषत: भौतिक एवं रसायन विद्याओं का प्रश्न है वेदों एवं वेदोत्तर वाङ्मय में इस कथन की परिपुष्टि के लिए प्रचुर प्रमाण उपलब्ध है। आइये हम इन दोनों शास्त्रों को ईसा के पूर्व के भारत की देन का सिंहावलोकन करें।

प्रतीत होता है कि रसायन शास्त्र की धातुकर्म ऋग्वेद काल में ही काफी उन्नत हो चुकी होगी क्योंकि ऋग्वेद काल में······हिरण्य शृंगोऽयो अस्य पादा:··· अयो मुखम्······हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा······ आदि सन्दर्भ उपलब्ध है। जिनका अर्थ है······स्वर्ण जटित सींग······एवं लोहे से युक्त पैर······लोहे के मुख वाले तीर······सोने एवं लोहे के खंभे······इत्यादि। इसी प्रकार यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में भी लोहे सीसे, रांगा, स्वर्ण आदि के उपयोग से संबंधित कई ऋचायें हैं।

वैदिक काल में न केवल सुप्रसिद्ध सोमरस एवं जड़ी बूटियों के रसों का तथा उनके विभिन्न मिश्रणों का, वरन् सुराओं का भी निर्माण होता था। इस हेतु शहद, जौ एवं वनस्पति रसों का उपयोग किया जाता था। यजुर्वेद के 19 वें अध्याय के दो ऋचांश इस प्रकार हैं।

क्रयस्प रूप सोमस्क, लाजा: सोमांशवो मधु ॥13॥
रूपमुप सदा मेतत्तिस्रो रात्री: सुरासुता ॥14॥

जिसके भावार्थ के अनुसार जौ, शहद, चावल एवं सोम रस के मिश्रण को तीन दिन तक रखने से वह सुरा में परिवर्तित हो जाता है। वेदों में सुरा की निन्दा एवं सोमरस की प्रशंसा की गई है।

भौतिक शास्त्री की दृष्टि से भी वेदों में महत्वपूर्ण प्रसंग है। ऋषियों को यह ज्ञात था कि सूर्य का श्वेत प्रकाश सात रङ्गों से निर्मित होता है। इस सम्बन्ध से प्राया कई ऋचांशों में से कुछ इस प्रकार हैं।

"अवदिवस्तारयन्ति सप्तसूर्यस्य:" अर्थात् सूर्य की सात किरणें पानी को आकाश से नीचे गिरा रही है। "यत्र गवा निहिता सप्त नामह" जहाँ एक सूर्य किरण ने अपने सात नाम रखे हैं तथा "सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम" सूर्य के एक चक्रीय रथ को सात नामों वाला एक ही घोड़ा चलाता है। यह संभवत: ज्ञात था कि सूर्य गगनमंडल का केन्द्रीय ग्रह है" "एवं अन्य ग्रह इसके आकर्षण से ठहरे हुए है। उदाहरणार्थ, कहा गया है" अयं विश्वानि तिष्ठति

"अर्थात् इसने विश्व को ठहरा रखा है तथा" पृथ्वी रजसो धारयत् कवी "अपनी शक्ति से सूर्य पृथ्वी को धारण करता है। पृथ्वी के सम्बन्ध में भी कुछ महत्वपूर्ण ऋचांश है यथा "वर्तमानम् प्रचक्रियेव रोदसी मरुद्भ्य: "अर्थात् पृथ्वी मरुद्गणों की शक्ति से चक्री के समान घूम रही है।" महती वभूविथ महान वेग,

"अर्थात् पृथ्वी महान् है, इसके वेग एवं कपन महान है" यो अक्षेणेव चक्रियों······पृथ्वी भुतध्वाम् "तथा" सविता यन्त्रै: पृथ्वीम्·········सविता द्यामदृहत" अर्थात् जैसे धुरी के चारों ओर चक्री घूमती है वैसे ही सूर्य पृथ्वी को घुमाता है एवं आकाश को स्थिर रखता है।

इस प्रकार की समस्त ऋचाओं का वैदिक साहित्य के विशेषज्ञों द्वारा विशेष अनुसंधान एवं विश्लेषण आवश्यक है क्योंकि पृथ्वी के घूमने सम्बन्धी ज्ञान को हम कापरनिकस था आर्यभट्ट द्वारा दिया हुआ मानते हैं जबकि प्राचीनतम ज्ञान ग्रन्थ ऋग्वेद में भी इस सम्बन्ध सन्दर्भ है यदि यह कथन अन्तिम रूप से सिद्ध हो जाता है तो भौतिक शास्त्र के इतिहास की दृष्टि से एवं भारतीय वैज्ञानिक वाङ्मय को मूर्धन्य स्थान दिलाने की दृष्टि से इन तथ्यों का बड़ा महत्व रहेगा। यह जान कर आश्चर्य होता है कि वैदिक ऋषियों को यह भी ज्ञात था कि चन्द्र सूर्य की किरणों द्वारा चमकता है।

वेदोत्तर काल अर्थात् ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों के युग में भी वैज्ञानिक विकास की परम्परा बनी रही। शतपथ ब्राह्मण के 14।2।2।54 प्रकरण में सोना, चांदी, लोहे आदि के पात्रों में आहुति न देते हुए केवल मिट्टी के पात्र में क्यों दी जाय, इस संबंध में सतर्क विश्लेषण भौतिक शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन्हीं दिनों, स्वर्ण एवं रजत तश्तरियाँ अर्थात् रुक्स बनने लगे थे। "सुवर्ण रजतौ रूक्मौ व्युपारयति., धातु कर्म शास्त्र की दृष्टि से शतपथ का 6।1।3।5 प्रकरण दर्शनीय है जिसमें कहा गया है कि प्रजापति ने सिकता अर्थात् बालू से शर्करा अर्थात् रेत का चूर्ण बनाया एवं इसे धातु के अवयस्क के साथ तपाकर सुवर्णादि धातु निर्मित किए।

कठ, प्रश्न, मुण्डकादि उपनिषदों में सृष्टि के मूल-भूत तत्वों के सम्बन्ध में रहस्यवादी भाषा में विचार प्रस्तुत किये गये हैं। छन्दोग्य उपनिषद में यज्ञ के विशिष्ट या घाव जोड़ने के प्रसङ्ग में लवण से सोना, सोने से चांदी, चांदी से त्रपु आदि को जोड़ने से संबंधित किसी धातु-रसायन शास्त्रीय विधि का संकेत मिलता है।

वेद एवं ब्राह्मण युग के बाद ईसा से लगभग 2 से 5 शती० पूर्व का समय-भौतिक एवं रासायनिक दोनों ही विधाओं के क्षेत्र में सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक दोनों दृष्टिकोणों से अधिक उन्नत, वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित प्रतीत होता है। इसी युग में चरक एवं सुश्रुत ने जो लगभग समकालीन थे अपनी प्रसिद्ध संहिताओं की, कणाद् एवं कपिल ने अपने वैशेषिक एवं सांख्य दर्शन की तथा आचार्य चाणक्य ने अपनी कौटिल्यम् अर्थ-शास्त्रम् की रचना की थी।

चरक संहिता में पदार्थों के वर्गीकरण के प्रकरण में मध्य वर्ग,इक्षु वर्ग आदि का विवरण आता है। इनके अन्तर्गत धातक्य, मृद्वीका आदि 10 से भी अधिक प्रकार की मदिराओं एवं मत्स्याडिका आदि शर्कराओं के नाम हैं। किण्वों (एन्जाइम्स्) की उपयोग विधि भी निर्देशित है। स्पष्ट है कि एलकोहॉल्स, शुगर्स् एवं एन्जाइम्स् के निर्माण और उपयोग भारतीयों के लिए नये नहीं हैं। चरक को सैंधव आदि 15 प्रकार के लवणों का ज्ञान था। प्रकरण 8।14 में कहा गया है कि सैंधव-सौवर्चल-काल-विड-पाक्य-अनूप-कूप्य-बालुकैल मौलिक - सामुद्र - रोम -कौद्भिदौपरपाटेयक -पांशुजान्येव प्रकाराणि चान्यानि लवण वर्ण परिसंख्यातानि। चरक को क्षार एवं लवण के गुणधर्मों तथा उनके परस्पर निराकरण की प्रवृत्ति भी ज्ञात थी। सुश्रुत ने भी विदारिगन्धादि 37 गणों में पदार्थों का एवं जलादि 20 वर्गों में द्रव्यों का वर्गीकरण किया है। चरक एवं सुश्रुत दोनों ही संहिताओं में मुक्ता, वैदूर्य, प्रवाल आदि रत्नों लोहा, ताँबा, चाँदी आदि धातुओं एवं तुत्थ माक्षिक मन:शिलान, हरिताल आदि धातु अयस्कों के गुण धर्मों तथा उनके औषधिक प्रयोगों के संबंध में विस्तृत वर्णन मिलते हैं। इस युग में विभिन्न प्रकार के तैल बनाये जाते थे एवं गुग्गुलू, तेजपत्रादि पदार्थों द्वारा सुगन्धित

धूप तैयार होते थे। आधुनिक ऐसेन्शियल ऑइल्स एवं एल्केलॉइड्स की दृष्टि से ये तथ्य महत्वपूर्ण हैं। दोनों ग्रन्थों में पारद एवं गन्धक के उपयोग एवं विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए उपयुक्त विधियों तथा उपकरणों का भी विवेचन है।

यद्यपि चाणक्य का ग्रन्थ मूलतः अर्थनीति एवं राजशास्त्र से सम्बन्धित है, तथापि प्रसंगवश इसमें रसायन-शास्त्र-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री भी उपलब्ध होती है। इस ग्रन्थ के रत्नों से सम्बन्धित अध्याय में मोतियों के ताम्रपर्णिक, पौण्डयादि भेद, मणियों के सौगन्धिक, पद्मरागादि प्रकार, एवं विविध रत्नों के परीक्षण, उद्गमस्थान, आदि के सम्बन्ध में समीचीन विवरण हैं। मणियों के षडतु (षट्कोणीय, हेक्सॉगॉनल) एवं चतुस्र (चतुष्कोणीय) आदि वर्गों का भी उल्लेख है। यह समस्त अध्याय आधुनिक क्रिस्टलोग्रॉफी एवं जेमॉलॉजी (मणि एवं रत्न-शास्त्र) के इतिहास के दृष्टि से महत्वपूर्ण है। खदानों से सम्बन्धित प्रकरण में चाणक्य ने स्वर्ण, चांदी आदि धातुओं के खदानों की पहचान, इन धातुओं के उत्खनन, शिलाजीत, मनःशिल, हरिताल, आदि अयस्कों के परीक्षण, आदि की विधियों का विवरण दिया है। तांबे, सोने, चाँदी, आदि धातुओं से निर्मित विभिन्न गुण-धर्मों वाली मिश्र धातुओं (एलॉय) से सम्बन्धित वर्णन भी प्राप्त हैं। मौर्य-चाणक्य काल में तुलाओं, तौल के प्रतिमानों एवं इकाइयों का भी समुचित विकास हो चुका था। कौटिल्य ने सुराध्यक्ष की व्यवस्था के प्रकरण में छह प्रकार की सुराओं का उल्लेख किया है। किण्वों द्वारा उनके निर्माण की विधियाँ भी दी है। यथा, "मेदकप्रसन्ना-सवारिष्ठमैरेयमधूनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्योति मेदकयोगः, मेदक, प्रसन्ना आसव, अरिष्ट, मेरेय, मधु—ये छह प्रकार की सुराएं होती हैं; एवं एक द्रोण जल, आधा आढक चावल, तीन प्रस्थ किण्व मिलाकर मेदक नामक सुरा तैयार की जा सकती है। कौटिल्य ने कालकूट, वत्सनाम, मेषशृंग, आदि विषों और उनके परीक्षण की विधियाँ दी भी हैं। अर्थ-शास्त्र के चौदहवें प्रकरण में युद्ध-रासायनिक धूम उत्पन्न करने, अन्धा एवं पागल बना देने वाले रासायनिक योगिकों के निर्माण एवं प्रयोगों का विवेचन भी किया गया है।

(५) जहाँ तक सैद्धान्तिक पक्ष का सम्बन्ध है अंतर्दृष्टि, वैज्ञानिक विचारों की गहराई एवं मौलिकता की दृष्टि से वैशेषिक तथा सांख्य-दर्शन प्रेक्षणीय है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार सृष्टि की संरचना में उत्पादन-स्वरूप ६ पदार्थ, ९ द्रव्य, १७ गुण तथा ५ कर्म होते हैं। जल, वायु, तेज, पृथ्वी, ये चार मूल तत्व होते हैं जिनका सूक्ष्मतम कण परमाणु कहलाता है। सभी परमाणु गोल होते हैं, तथा अनवरत रूप से गतिशील तथा परिस्पंदित होते रहते हैं "अनवरत-परिस्पंद मानापरिमितपवनादि परमाणवः"। ये परमाणु परस्पर संयोग से द्वयणुक त्र्यणुक आदि बनाते हैं। इस प्रकार अणु परस्पर मिलकर दृश्य विश्व के विभिन्न गुणधर्मी पदार्थों की रचना करते हैं। वैशेषिक-दर्शन के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, न्याय सिद्धान्त-मुक्तावली में "परमाणुः परमसूक्ष्म आवश्ववयवः स्वयं निरवयवों अतीन्द्रियो नित्यः" कथन प्राप्त होता है। इसका अर्थ, है, 'परमाणु' पदार्थ का सूक्ष्मतम, अविभाज्य, आरम्भिक, अनश्वर एवं शाश्वत अवयव है। ये गुण डाल्टन के आधुनिक परमाणुवाद के उपकथनों के समकक्ष है। यह विवेचन स्पष्टतया प्रतिपादित करता है कि परमाणु वाद का सर्वप्रथम जन्म भारत में ही सांख्य एवं वैशेषिक के आचार्यों द्वारा हुआ।

रासायनिक परिवर्तनों में लगने वाले क्षारों एवं उसके अन्तर्भूत प्रकार के सम्बन्ध में वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपाद भाष्यादि ग्रन्थों में सविस्तार एवं सतर्क विश्लेषण मिलता है, जिसकी तुलना आधुनिक विश्लेषणों से की जा सकती है। वैशेषिक दर्शन में अणुओं एवं परमाणुओं के अवक्षेपण, प्रसारण, आकुंचन गमन, आदि कर्म माने गये हैं, जबकि आधुनिक विज्ञान अणुओं के ऋजुरेखीय-गमन एवं विभिन्न प्रकार के प्रकम्पनों की कल्पना करता है।

सांख्यदर्शन के मतानुसार सृष्टि के आरम्भ में सत्, रज, तम—इन त्रिगुणों का सम तौल रहता है। किन्तु

इनमें विक्षोभ उत्पन्न होने पर सृष्टि के दो मूल घटक-प्रकृति एवं पुरुष-संयोग करके पहले महत्, तदनन्तर अहंकार का विकास करते हैं। अहंकार पुन: मन एवं एकादश इन्द्रियादि-रूप अन्तर्जगत्, एवं भूतादि अर्थात् अचेतन पदार्थ के सूक्ष्मतम कण-रूप बहिर्जगत्, इन दो शाखाओं में विकसित होता है। भूतादि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये तन्मात्राएँ अभिवृद्ध होकर आकाश वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन पाँच मूल तत्वों के परमाणु विकसित करती हैं। अन्ततोगत्वा इन परमाणुओं के विविध संयोगों से दृश्य विश्व के पदार्थों की रचना होती है।

सांख्यदर्शन उत्तरोत्तर उद्भव एवं विकासवाद की प्रस्थापना करता है वैशेषिकदर्शन एवं डाल्टन जहां परमाणुओं तक ही पहुँच पाये हैं, सांख्यदर्शन ने पाँच मूल तत्वों के न केवल परमाणुओं की, वरन् उनके भी अवयवों, तन्मात्रा, भूतादि, अहंकार आदि की परिकल्पना की है। अचेतन, पार्थिव परमाणुओं द्वारा निर्मित प्राणी-शरीर में क्यों और कहां से प्रेम, वात्सल्यादि भावों का उद्भव होता होगा, इस सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर आज भी उपलब्ध नहीं है, जबकि कपिल ने अहंकार के माध्यम से अन्तर्जगत् एवं बहिर्जगत को सम्बन्धित कर कम से कम दार्शनिक दृष्टि से इस दिशा में प्रशंसनीय प्रकाश डाला है।

परमाणुवाद के दृष्टिकोण से न्याय, जैन, बौद्ध, एवं योग-दर्शन का, तथा उत्तरकालिक पौराणिक एवं आयुर्वेदिक वाङ्मय का भी महत्व है। इस सम्बन्ध में जैन दर्शन की पुद्गल-सम्बन्धी कल्पना विशेषतः प्रेक्षणीय है।

इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान के ईसा पूर्वकालिक इतिहास की दृष्टि से प्राचीन भारतीय वाङ्मय बहुमूल्य रत्नों से भरा हुआ है। अनुसंधानार्थ एवं भारतीय मनीषियों को उनका उचित गौरव दिलाने के दृष्टिकोण से भारतीय विद्वानों के समक्ष विशाल कार्यक्षेत्र प्रस्तुत है। यह भी ध्यानाकर्षणीय है कि विदेशी लेखकों द्वारा लिखित विज्ञान के इतिहास ग्रन्थों में भारतीय विद्वानों एवं उनके सिद्धान्तों आदि को समुचित स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है।

डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री
रसायन अध्ययन शाला
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन (म० प्र०)

[पृष्ठ 6 का शेषांश]

रोगी को चक्कर सा लगता है जो कभी-कभी इतना अधिक हो सकता है कि मिर्गी की तरह की बेहोशी हो सकती है। इसको ठीक करने के लिए कान के कुछ आन्तरिक भाग को नष्ट करना पड़ता है। इस कार्य के लिए कर्णातीत लहरें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गत दस वर्षों से पारकिन्सन-रोग, जो केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र से सम्बन्धित हैं और जिसमें रोगी के हाथ व सिर स्थिर नहीं रहते, जिसके कारण खाना-पीना भी कठिन हो जाता है, के लिए इन लहरों का उपयोग किया जा रहा है। इसमें मस्तिष्क के कुछ भाग को नष्ट करने से रोगी अच्छा हो जाता है और उस पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

अन्त में यह कहना आवश्यक है कि यह विषय नया है और इस क्षेत्र में काफी प्रयोगों की आवश्यकता है। आशा की जाती है कि धीरे-धीरे चिकित्सा, शल्य चिकित्सा व निदान में प्रतिदिन इन लहरों का उपयोग बढ़ता ही रहेगा।

डा० सतीश चन्द्र श्रीवास्तव
रीजनल रिसर्च लेबोरेट्री
भुवनेश्वर, उड़ीसा

दो और नये शाकनाशी

डा० नन्दलाल थैहलयानी तथा डा० अरुण कुमार सक्सेना

खेतों में उपयोगी फसलों के साथ बहुत से बेकार पौधे उग आते हैं और उनकी वृद्धि रोक देते हैं जिससे उपज कम हो जाती है। अतः खेतों की उपज बढ़ाने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि फसल वाले पौधों को कोई हानि न हो और साथ ही अनावश्यक पौधे खेतों से निकाल दिये जाँय। आजकल इस कार्य को विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थों के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा है जिन्हें शाकनाशी पदार्थों के नाम से पुकारा जाता है। प्रायः इस प्रकार के आधुनिक रासायनिक पदार्थ मूलतः पौधों में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया को कम कर देने में सहायक होते हैं किन्तु वे स्वयं मिट्टी में मिल कर दीर्घकाल तक उसी में रह जाते हैं। इन पदार्थों के अधिक समय तक मिट्टी में रहने से फसल वाले पौधों को हानि हो सकती है। इसी कारण फसलों को ऐसे खेतों में तुरन्त नहीं लगाया जा सकता। यह एक विकट समस्या है।

इस प्रकार की समस्या से छुटकारा पाने के लिए कई नवीन रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया गया है जिनकी क्रिया तीव्र तथा अचूक होती है साथ ही ये फसलों के पौधों को तनिक भी हानि नहीं पहुँचाते। इन शाकनाशी पदार्थों के तनु घोल का उपयोग किया जाना आवश्यक है क्योंकि यह घोल न तो मिट्टी में बना रहेगा न तनु होने के कारण अन्य फसल वाले पौधों पर प्रभाव ही डालेगा। ऐसे नवीन शाकनाशी यौगिकों पर शोध कार्य आरम्भ हो गया है। आई० सी० आई० की जियालोट हिल प्रयोगशाला ने इस प्रकार के दो पदार्थों की खोज की है ये पदार्थ बाईपिरीडीनियम समूह के है। इन्हें पैराक्वाट तथा डाइक्वाट के नामों से पुकारा गया है। जब इनका उपयोग किया गया तो इनमें उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त एक और विलक्षण गुण यह पाया गया कि ये पौधों की उपापचय क्रियाशीलता में कार्य करते हैं तथा उन्हीं के अन्दर ऐसे प्राकृतिक पदार्थों का निर्माण करते हैं जिससे वे पौधे शीघ्रता से स्वतः नष्ट हो जाते हैं। शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि इनके चतुष्क यौगिक श्रेष्ठतम तथा अचूक हैं। 1933 में एल० माइकेलोस तथा ई एस० हिल नामक दो वैज्ञानिकों ने अथक परिश्रम से इन यौगिकों के गुणों को ज्ञात किया। पैराक्वाट दीर्घ काल से 'रिडाक्स सूचक' की भाँति उपयोग में लाया जाता था और इसका प्राचीन नाम मिथिल बाई-लोजन था। वास्तव में इन्हें पूरी तरह से शाकनाशी पदार्थों के रूप उपयोग में करने का श्रेय आर० एफ० होमर, जी० सी० तथा टी० ई० टोमलिसन को प्राप्त हुआ। इन वैज्ञानिकों का मत था कि इस प्रकार के गुणों की क्षमता रखने वाले पदार्थों में निम्नलिखित विशेष बातें होनी चाहिए।

(1) रिडॉक्स विभव E_0 (Redox potential) की लगभग —300 तथा—500 mv के बीच होना चाहिए।

(2) दोनों पिरीडिन वलय एक ही तल पर हों।

पैराक्वाट तथा डाइक्वाट के रिडॉक्स विभव मान क्रमशः—446 mv तथा—349 mv पाये गए किन्तु इसी के एक और यौगिक वेनजिख वाईलोन का मान —350 mv था। वेनजिल वाईलोन की शाकनाशी क्रियाशीलता सबसे क्षीण पाई गई। शोध-कार्यों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि इस शाकनाशी क्रियाशीलता का कारण इस यौगिक का विशाल आकार था।

पैराक्वाट तथा डाइक्वाट शाकनाशी पदार्थों में

विशिष्ट बात यह है कि इन्हें एक ही स्थान पर बार-बार प्रयुक्त करना चाहिए। इनके उपयोग से पौधे सर्वप्रथम क्लोरोफिल समाप्त करने लगते हैं और फिर वे पीले हो कर पत्तियाँ गिरा देते हैं।

गेहूँ के बोने के पहले गुड़ाई के समय मिट्टी में पैराक्वाट छिड़कने से खर-पतवार के बीज मिट्टी के अन्दर ही नष्ट हो जाते हैं और खरपतवार उग ही नहीं पाते। इस प्रकार गेहूँ की उपज बढ़ जाती है।

ऊसर चरागाह :—

ऐसे चरागाह, जो तेजी से ऊसर में बदलते जा रहे हैं, इसके बार-बार छिड़काव से ऊसरों में नहीं बदल पाते। वे कुछ समय पश्चात् हरे-भरे दिखाई देने लगेंगे।

फलों के बगीचे :—

फलों के पेड़ों के नीचे निकलने वाले झाड़-फूस फलों की मात्रा को कम कर देते हैं। इन शाकनाशी पदार्थों को छिड़कने से ये सरलता पूर्वक नष्ट हो जाते हैं।

पंक्तियों में लगाये गये पौधे :—

पंक्तियों में लगे पौधों के बीच वाले स्थान में खर-पतवार निकल आते हैं। इन्हें नष्ट करने के लिये एक विशेष प्रकार की पिचकारी से सावधानी से छिड़काव करके उन्हें दूर किया सकता है।

सावधानी :—

इन समस्त शाकनाशी पदार्थों का उपयोग करते समय विशेषज्ञ से अवश्य सलाह ले लेनी चाहिए अन्यथा लाभ के बजाय हानि हो सकती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है इस देश के किसानों के लिये दोनों शाकनाशी पदार्थ वरदान सिद्ध हो सकते हैं।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
15, कटरा रोड
इलाहाबाद—2

लेखकों से निवेदन

- 'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।
- लेखों के साथ यथासम्भव आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बना कर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।
- अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

प्लास्टिक तथा उनके बढ़ते चरण

डा० राम चन्द्र कपूर

प्लास्टिक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उन पदार्थों के लिये किया गया था जो कि सांचे द्वारा ढाले या बनाये जा सकते थे। व्यापक रूप में इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के पदार्थ आते हैं जैसे काँच, इस्पात, रबर व रोज़ीन, तथा सेलुलॉइड और बेकेलाइट। परन्तु सही अर्थों में प्लास्टिक संश्लिष्ट रेज़िन है तथा प्राकृतिक रेज़िन जैसे रोज़ीन व शल्क-लाख से भिन्न है। यह प्रकृति में पाये जाने वाले कच्चे पदार्थों से अथवा कृत्रिम रसायनों द्वारा बनाया जा सकता है।

संश्लिष्ट प्लास्टिक को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : ताप-प्लास्टिक तथा ताप-दृढ़ प्लास्टिक। ताप-प्लास्टिक वे हैं जो कि साधारण ताप द्वारा मुलायम हो जायें तथा आकार में बदले जा सकते हैं, तथा ताप-दृढ़ प्लास्टिक वे हैं जो एक बार गर्म करने पर एक कठोर संहति का रूप धारण कर लेते हैं तथा जिनको आसानी से मुलायम नहीं किया जा सकता। रेडियो कैबिनेट तथा टेलीफोन समुच्चय के बाह्य केस ताप-दृढ़ प्लास्टिक के ही बने होते हैं तथा एक बार बनने के बाद इनके आकार में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

प्लास्टिक, ताप-प्लास्टिक होगा अथवा ताप-दृढ़ प्लास्टिक यह उस क्रिया पर निर्भर करता है जिसके द्वारा प्लास्टिक बनाया जाता है। ताप-प्लास्टिक रेज़िन बहुलकीकरण उत्पाद हैं जिनमें कि एक ही प्रकार के बहुत से अणु आपस में मिलकर एक बड़े गुच्छ का रूप धारण कर लेते हैं। 'ल्युसाइट' तथा 'क्रीन' दो ताप-प्लास्टिक पदार्थ हैं। ताप-दृढ़ प्लास्टिक संघनन क्रियाओं द्वारा बनाये जाते हैं उदाहरणतया जब फिनोल तथा फ़ार्मऐल्डिहाइड को एक साथ गर्म किया जाता है तो बेकेलाइट रेज़िन बनता है तथा पानी निकलता है।

प्लास्टिक के उपयोग उसके गुणों जैसे अम्ल, क्षार, जल, तेल तथा कार्बनिक विलायकों से प्रतिरोध आदि पर आधारित हैं। दाह्यता, चीमड़पन, कठोरता, तेलों में विलेयता, विद्युत-रोधण आदि इसके कुछ और मुख्य गुण हैं।

फीनोलिक प्लास्टिक बहुत ही अच्छे विद्युत-रोधी हैं और विद्युत-संधारित्रों के भाग बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। पॉलीस्टाइरीन प्लास्टिक जल द्वारा अप्रभावित रहते हैं और स्नान गृहों में 'टाइल' के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। यूरिया-फार्मऐल्डिहाइड प्लास्टिक कठोर और चीमड़ होते हैं तथा कम्प्यूटिंग स्केल के केस बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। मेथिल मेथाक्राइलेट प्लास्टिक पारदर्शक होते हैं तथा लेन्सों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। पॉलीइथिलीन आंशिक-लचीला होता है तथा पानी व अन्य कई द्रवों का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता है। इसी कारण से यह इन द्रवों को रखने के लिये 'कन्टेनर' के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। वे प्लास्टिक जो कि तेल में घुलनशील हैं इनैमल पेन्ट के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं।

प्लैस्टीसाइजर जैसे कपूर तथा रेड़ी के तेल को प्लास्टिक पदार्थों के साथ अक्सर मिला दिया जाता है जिससे कि कार्य करने में आसानी हो तथा अंतिम उत्पाद की कठोरता बढ़ जाय। स्नेहक जैसे मोम या स्टियरिक एसिड भी कभी-कभी मिला दिये जाते हैं जिससे कि प्लास्टिक उत्पादों को आसानी से सांचे से अलग किया जा सके। त्वरक जैसे कैल्सियम आक्साइड,

जिंक क्लोराइड वा ऑक्ज़ेलिक एसिड बहुलकीकरण की क्रिया की गति को बढ़ाने के लिये इस्तेमाल किये जाते हैं। रंजक द्रव्य भी अंतिम उत्पादों में विभिन्न प्रकार की छटा लाने के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

प्रमुख संश्लिष्ट प्लास्टिक :

1. सेल्यूलोज़ नाइट्रेट : यह कपास और नाइट्रिक अम्ल की क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। सल्फ्यूरिक अम्ल भी नाइट्रिक अम्ल के साथ मिला दिया जाता है और उपर्युक्त क्रिया में निकलने वाले जल का शोषण करता है। नाइट्रेटेड कपास को एल्कोहल व ईथर के मिश्रण में घोला जाता है और जब विलायक वाष्पित हो जाता है तब जेली जैसा एक पदार्थ बच रहता है। सेल्यूलायड एक सेल्यूलोज नाइट्रेट प्लास्टिक ही है जिसमें कपूर प्लैस्टीसाइज़र के रूप में मिला रहता है। यह सर्वप्रथम 1869 में बनाया गया था और सबसे पुराना संश्लिष्ट प्लास्टिक है। यह बहुत ही अधिक ज्वलनशील है।

2. फ़ीनोलिक प्लास्टिक : जब फ़ीनोल को फार्मऐल्डिहाइड के साथ उत्प्रेरक की उपस्थिति में उबाला जाता है तब एक कठोर, गोंद-सा पदार्थ अवशेष रहता है। बेकेलाइट, एक ताप-दृढ़ प्लास्टिक इसी प्रकार बनाया जाता है। फ़ीनोल के स्थान पर क्रीसोल, C_5H_7OH को तथा फार्मऐल्डिहाइड के स्थान पर किसी अन्य एल्डिहाइड को भी इस्तेमाल किया जा सकता है। फ़ीनोलिक प्लास्टिक अज्वलनशील हैं तथा विभिन्न रसायनों और विलायकों का इस पर कोई प्रभाव नहीं हैं अतः ये विभिन्न प्रकार के उत्पादों के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं।

3. यूरिया-फार्मऐल्डिहाइड प्लास्टिक : संश्लिष्ट यूरिया, व फार्मऐल्डिहाइड को जब उत्प्रेरक के साथ गर्म किया जाता है तब यह प्राप्त होता है। यह काफी मजबूत होता है और न टूटने योग्य तश्तरियों, पानी पीने के पात्रों, बटन आदि वस्तुओं के निर्माण में प्रयोग होता है।

4. विनीलाइट प्लास्टिक : इस प्लास्टिक के निर्माण में ईथीन कच्ची सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती है। पारदर्शक पट्टियाँ इसी प्लास्टिक की बनी होती हैं।

5. पॉलीस्टाइरीन : स्टाइरीन, C^8H^8 के बहुलकीकरण से ही यह प्लास्टिक प्राप्त किया जाता है। इसके ऊपर जल का कोई प्रभाव नहीं होता है।

6. मेथाक्राइलेट्स : प्लास्टिक का एक बहुत ही महत्वपूर्ण समूह है जिसे मेथाक्राइलेट रेज़िन कहते हैं। इस समूह के प्लास्टिकों के निर्माण में भी ईथीन, कच्ची सामग्री के रूप में इस्तेमाल की जाती है। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण प्लास्टिक मेथिल मेथाक्राइलेट है जो कि अपनी पारदर्शकता के लिये विख्यात है। यह लेन्सो, शृंगार करने के सामान आदि बनाने में प्रयोग किया जाता है।

7. पॉलीइथिलीन तथा पॉलीप्रोपीन : इथिलीन का जब अधिक दबाव पर उत्प्रेरक की उपस्थिति में बहुलकीकरण किया जाता है तब एक मुलायम, आंशिक-लचीला प्लास्टिक प्राप्त होता है। यह अधिकतर बोतलों और थैलों के निर्माण में प्रयोग होता है। पॉलीइथिलीन के थैले कमीजों, कपड़ों, कम्बलों आदि के लपेटने में अक्सर इस्तेमाल किये जाते हैं। पॉलीप्रोपीलीन, बहुलकीकरण द्वारा प्राप्त एक दूसरा एलकीन संश्लिष्ट प्लास्टिक है और रस्सी आदि के बनाने में काम आता है।

8. टेट्रोफ्लोरोइथिलीन : इथिलीन के चारों हाइड्रोजन परमाणुओं का फ्लोरीन से विस्थापन करके जब बहुलकीकरण किया जाता है तो टेट्राफ्लोरोइथिलीन प्लास्टिक प्राप्त होता हैं। यह ऐसे तंतुओं के बनाने में काम आता है जिन पर रसायनिक द्रव्यों का कोई प्रभाव नहीं होता। इसका घर्षणगुणांक बहुत ही कम है अतः यह उष्मा प्रतिरोधक पदार्थों के बनाने में काम आता है।

डा॰ रामचन्द्र कपूर
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज
कानपुर-१

विज्ञान-वार्ता

हँसियाकार कोशिका रक्तहीनता

कहते हैं प्रकृति धनी और निर्धन, काले और गोरे आदि में भेद नहीं करती। यदि महामारी फैलती है तो सबको हानि पहुँचाती है। पर एक ऐसा रोग भी है जो मनुष्यों के वर्णों में भेद करता है, देश-प्रदेश की सीमा पहचानता है और बाल्यावस्था से यौवनावस्था तक अपने शिकार, मनुष्यों, के प्राण हर लेने में दक्ष है। साथ ही अधिक 'शिकार' पाने के लिये स्त्री-पुरुषों की प्रजनन क्षमता भी बढ़ा देता है।

इस रोग का नाम है 'हँसिया कोशिका रक्तहीनता' (सिकिल सैल एनीमिया)। नाम विचित्र तो है पर इसके लक्षणों के अनुरूप ही हैं।

अधिक गर्मी से, लू लगने से निर्जलीकरण होने पर, ठण्ड की अधिकता से, अथवा आक्सीजन की कमी होते ही तश्तरीनुमा सामान्य लाल रक्त कोशिकाएँ हँसियाकार हो जाती है और फलस्वरूप रोगी रक्तहीन होने लगता है अथवा किसी कारण शरीर में आक्सीजन की कमी होते ही रोगी का शरीर पीला हो जाता है। ज्वर, हड्डियों में दर्द, अंग-प्रचालन-अवरुद्धता तथा दृष्टिदोष, कभी-कभी अंधापन और एफसिया नामक ऐसा रोग उत्पन्न हो जाता है जिसमें वाणी अवरुद्धता से लेकर मानसिक विकृति तक हो सकती है। शारीरिक विकृति तथा 'अहम्' की भावना भी रोगियों में देखी गई है। उग्र रोग वाले ३० वर्ष की आयु तक अपने प्राण भी खो सकते हैं।

हँसियाकार कोशिका रक्तहीनता के रोगी दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिन्हें यह अपने माता और पिता, दोनों से, आनुवंशिक तौर पर प्राप्त होता है समयुग्मजी कहलाते हैं। समयुग्मजी व्यक्ति में रोग कभी भी उग्र हो सकता है।

दूसरे प्रकार के रोगी वह है जिन्हें यह रोग-विशेषत: आनुवंशिक तौर पर केवल माता या पिता से प्राप्त है दोनों से नहीं। ऐसी रोगी में रोग सामान्यत: दबा रहता है। ऐसा व्यक्ति इस रोग के लिये विषम युग्मजी कहलाता है। व्यायाम, मद्यपान, जलमग्न तैराकी आदि कारणों से रक्त में आक्सीजन की मात्रा काफी कम हो जाने पर ही रोग के संलक्षण प्रकट होने लगते हैं और रोग उग्र हो सकता है।

इस रोग का प्रसार विश्व में कुछ समुदायों में ही पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य नीग्रो बहुल पाश्चात्य देशों में लगभग दस प्रतिशत नीग्रो लोगों में यह रोग-विशेषत: पाया गया है तो दूसरी ओर अफ्रीका में लगभग पचास प्रतिशत नीग्रो रोग-विशेषक होते हैं। भारतीय चिकित्सकों द्वारा किये गए विस्तृत परीक्षणों से पता चला है कि जहाँ रोग-विशेषक दक्षिण भारत में वद्धायद आदिमवासियों, मध्य भारत में महार, कुम्बी तथा तेली समुदाय को अपना शिकार बनाता है वहाँ उत्तर भारत के आदिवासी भी इससे पीड़ित होते हैं।

इस रोग के सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध रहने पर भी इसके निदान के विषय में वैज्ञानिक उदासीन रहे हैं। संभवत: यह सामाजिक उपेक्षा है।

चिकित्सक अब तक ऐसे रोगियों को स्वास्थ्य की देख-भाल, आराम तथा लम्बी अवधि तक रोग निरोध पेनिसिलीन के व्यवहार का परामर्श देते रहे हैं।

रोग की उग्रता की दशा में यूरिया और डेक्ट्रोस की अंत:शिरा सुई लगाई जाती है और ऑक्सीजन सुंघाया जाता है। कभी-कभी रक्त क्षारता बढ़ाने वाले रसायनों का भी उपयोग किया जाता है। यूरिया जल विरोधी बंधनों में रुकावट डालती है। ऐसा वैज्ञानिकों का विश्वास है।

आधुनिक प्रयोगों से यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला गया है कि केवल जीनी इन्जीनियरों द्वारा ही ऐसे आणविक रोग का उपचार नहीं, रासायनिक उपचार भी उत्साहवर्धक है। आवश्यकता इस बात की है कि इस उपेक्षित रोग के उपचार के लिए विस्तृत अनुसंधान किया जाये। (विज्ञान समाचार सेवा के सौजन्य से)

प्रदूषण तथा जीवन संघर्ष

मानव क्रिया-कलाप के परिणामस्वरूप अनिवार्यत: वातावरण में पदार्थ और ऊर्जा का प्रसार होता रहता है; जब ऐसा पदार्थ या ऊर्जा मनुष्य के स्वास्थ्य अथवा कल्याण के लिए खतरा उत्पन्न करते हैं, चाहे ये खतरा प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष, तो उन्हें प्रदूषण कहा जाता है।

यह भी समझ लेना आवश्यक है कि वायु, समुद्र, ताज़े पानी और खाद्य पदार्थों में विभिन्न मात्राओं में विजातीय द्रव्य होता है और इस अर्थ में प्रदूषण के लिए संभावना बराबर मौजूद रहती है। जब हम कहते हैं कि कोई वस्तु दूषित है तो हम उस वस्तु में मौजूद विजातीय द्रव्य के संबंध में निर्णय देते हैं।

वातावरण प्रदूषण के सम्बन्ध में वायु का महत्व कितना अधिक है इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1969 में केवल अमरीका में वातावरण में 28 करोड़ टन प्रदूषण प्रविष्ट हुए। मुख्य प्रदूषणों में तीन चौथाई कार्बन मोनो आक्साइड था जो मोटर गाड़ियों से निकला। मोटर गाड़ियों से ही हाईड्रोकार्बन और नाइट्रोजन के आइक्साइडों का आधा भाग वातावरण में आया। गन्धक के आक्साइडों का दो-तिहाई से अधिक भाग कारखानों की चिमनियों, ताप बिजली घरों और ताप संबंधी अन्य कारखानों से आया। जो प्रदूषण कणों के रूप में था, वह मुख्य रूप से औद्योगिक कारखानों और बिजली घरों से आया।

यह बात बहुत समय से स्पष्ट है कि वायु प्रदूषण न केवल आँखों पर असर डालता है बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य और निवास की सम्पूर्ण परिस्थितियों को भी खतरनाक बनाता है। प्रदूषण अपने मूल स्रोतों से काफी दूर तक फैल जाते हैं। वे वातावरण के विभिन्न रूपों के साथ प्रसारित होते हैं और उनका असर क्षेत्रीय, यहाँ तक कि विश्वव्यापी जलवायु पर भी पड़ सकता है।

इस प्रदूषण के बचाव के लिए सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था में सुधार और उसे प्रोत्साहन देना आवश्यक है। इसके साथ ही अगर हम भट्टियों में सुधार करें और उसमें ऐसे ईंधन का प्रयोग करें जिससे दूषित धुआँ कम से कम निकले तो और भी अच्छा नतीजा निकल सकता है।

समुद्री प्रदूषणों का सबसे गम्भीर स्रोत गन्दी नालियों का पानी और कल-कारखानों का कचरा है, जो या तो नदियों के द्वारा अथवा सीधे समुद्र में पहुँचता है। ये प्रदूषण समुद्री धाराओं, ज्वार-भाटों और हवाओं के प्रभाव से या तो कुछ क्षेत्रों में बँट जाते हैं या कुछ अन्य क्षेत्रों में जमा हो जाते हैं। (जहाजों से गिरने वाले तेल से उत्पन्न प्रदूषण का स्रोत जहाजों के आने-जाने वाले मार्ग हैं, लेकिन तेल प्रदूषण महासागरों में जहाज मार्गों से काफी दूर-दूर के स्थानों तक पहुँच जाता है।

समुद्री प्रदूषण से मनुष्य के स्वास्थ्य को सीधा खतरा मुख्य रूप से मछलियों के भोजन से है। इन मछलियों के अन्दर जहरीले पदार्थ जमा हो जाते हैं। ये मछलियां नदी के ऊपर से गन्दे पानी में से रोगाणु ग्रहण कर लेती हैं जो इनको खाने वालों तक पहुँच जाते हैं।

जहाँ तक नियंत्रण के उपायों का सम्बन्ध है यह तो आवश्यक है ही कि समुद्र में रसायनों को डालने का कार्य नियंत्रित होना चाहिए—लेकिन यह भी आवश्यक है कि समुद्री प्रदूषण के अन्य स्रोतों जैसे नदियों के पानी के साथ बहकर आने वाले दूषित पदार्थों आदि को रोकना चाहिए क्योंकि ये अधिक खतरे वाले स्रोत हैं।

बैक्टीरिया जैसे जैविक प्रदूषण जल सम्बन्धी बड़े खतरे उत्पन्न करते हैं।

ताज़े पानी के प्रदूषण का असर मनुष्य पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप में पड़ता है। मानव स्वास्थ्य पर सीधा असर पीने के पानी के साथ बीमारी के कीटाणुओं या हानिकारक रसायनों के मिलने से होता है। ऐसे लोगों की मृत्यु संख्या अपेक्षाकृत अधिक है जो पानी के साथ मिश्रित प्रदूषणों से बीमार होते हैं। इस संबंध में अनेक शहरों में आबादी की बढ़ती हुई संख्या से विशेष रूप से समस्या उत्पन्न होती है।

पानी में मिश्रित रासायनिक प्रदूषणों के कारण होने वाली मृत्यु संख्या इस समय अधिक नहीं है लेकिन उसके दीर्घकालीन प्रभावों की ओर से आंख नहीं मूँदी जा सकती । जैसे-जैसे नदियों से पानी ले कर पीने के लिए देने, उस पानी के फिर नदी में पहुँचने और उसे फिर लेकर पीने के लिए देने का क्रम बढ़ता जाएगा, इस सम्बन्ध में चिन्ता भी बढ़ती जाएगी।

ताज़े पानी के प्रदूषण का अप्रत्यक्ष असर पीने के पानी और भोजन दोनों ही के द्वारा होता है। समुद्री प्रदूषणों के सम्बन्ध में पहले जो कुछ कहा गया है उस प्रकार के प्रदूषण आमतौर पर अधिक घनत्व के साथ ताज़े पानी में मौजूद होते हैं और इसीलिए झीलों और छोटी नदियों आदि में पैदा होने वाले पेड़-पौधों तथा उनके आसपास रहने वाले जीवों को प्रदूषण से खतरा भी समुद्री प्रदूषणों की अपेक्षा अधिक होता है।

यदि खाद्य पदार्थों की भलीभाँति रक्षा न की जाए तो जैविक, रासायनिक अथवा विकिरण सम्बन्धी प्रदूषण उत्पन्न हो जाते हैं। उगते हुए अथवा विकने के लिए बाजार में पहुँचते हुए खाद्य पदार्थ ऐसे सूक्ष्म जैविक पदार्थों द्वारा दूषित हो सकते हैं जिनके कारण बीमारियाँ पैदा होती हैं।

कीटनाशकों से सम्बद्ध प्रदूषण या तो उगती हुई फसल में उनके अनुचित और लापरवाही से किए गए प्रयोग द्वारा या बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग द्वारा होता है। कभी कभी लाने ले जाने या उनके भंडारण द्वारा भी प्रदूषण का खतरा पैदा हो जाता है।

हाल के वर्षों में विभिन्न उद्देश्यों से खाद्य पदार्थों से सम्बद्ध प्रक्रियाओं के लिए अनेक रसायनों का प्रयोग आरम्भ हुआ है। जब इन रसायनों का अवश्यकता से अधिक प्रयोग हो जाता है तो उससे प्रदूषण का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

रोगाणु नाशकों तथा पशु चिकित्सा के लिए प्रयुक्त औषधियों से सम्बद्ध प्रदूषण मांस या दूध के साथ हमें प्राप्त होता है।

विकिरण सम्बन्धी प्रदूषण आमतौर पर वायुमंडल में अथवा समुद्र के गर्भ में किए जाने वाले परमाणु परीक्षण के फलस्वरूप रेडियो-सक्रिय पदार्थों से वातावरण में प्रवेश से आता है। परमाणु भट्ठियों के कचरे से भी इस प्रकार के प्रदूषण का जन्म होता है।

गन्दे पानी की निकासी और कारखानों के कचरे से सम्बद्ध नियन्त्रण के लिए नियम और कानून के अतिरिक्त खाद्य पदार्थ को दूषित होने से बचाने के लिए विशेष कानून की आवश्यकता है।

खाद्य पदार्थ सम्बन्धी प्रदूषण से बचाव के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार करना आवश्यक है— कीटनाशकों और खाद्य संरक्षण से सम्बद्ध पदार्थों का पंजीकरण और उनके प्रयोग पर नियन्त्रण। खाद्य प्रक्रिया उद्योग के सभी चरणों में सफाई की व्यवस्था और राष्ट्रीय खाद्य मानकों का निर्धारण।

आज विश्व भर में प्रदूषण को लेकर इसलिए चिन्ता व्यक्त की जा रही है कि मानव के क्रिया-कलाप से आज जो समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं ये पहले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और कठिन हैं। इसीलिए उनका समाधान भी कहीं अधिक मुश्किल है। इसके साथ ही यह भी अनुभव किया जाता है कि प्रदूषण के बारे में अवश्य ही कुछ किया जाना चाहिए क्योंकि आज मानव की जो क्षमता है, वह पहले से कहीं अधिक है। आज प्रदूषण के सम्बन्ध में न केवल उसकी जानकारी अधिक है बल्कि वह समाज व्यवस्था को नया रूप देने तथा भविष्य का नव-निर्माण करने में पहले से अधिक सक्षम है और वस्तुतः अगर प्रदूषण का नियन्त्रण करना है तो इस प्रकार की प्रतीति आवश्यक है।

नाशक जीवों का नियंत्रण : वाइरस की सहायता से

चूहों, कीटों, फफूंद आदि जैसे नाशक जीवों के नाश और नियन्त्रण के लिये वैज्ञानिक विभिन्न प्रकार के उपाय करते है। कहीं विभिन्न प्रकार के रसायन काम में लाए जाते हैं तथा कहीं उनके प्राकृतिक शत्रुओं की सहायता ली जाती है। इनमें से बहुत से अन्ततः पर्यावरण को प्रदूषित भी कर देते हैं और अन्ततः मानव

के लिए भी हानिकर सिद्ध हो रहे हैं। डी० डी० टी० यद्यपि मच्छर के नाश में बेहद सहायक हुई हैं तो भी उसके हानिकर प्रभावों को देखते हुए स्वीडन और सं० रा० अमेरिका में उसके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

अत: वैज्ञानिक अब ऐसे उपाय खोजने में लगे हैं जिनसे वातावरण भी प्रदूषित न हो और नाशक जीव पर भी नियन्त्रण प्राप्त हो जाये।

वैज्ञानिकों का विचार है कि नाशक जीवों में वाइरस रोग फैला कर उन पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

जैसे अन्य जीव वाइरस संक्रमणों से मर जाते हैं उसी प्रकार कीट भी इनसे मरते हैं। वैज्ञानिकों ने पाया है कि कीटों को मारने वाले वाइरसों की संख्या ३०० से ऊपर है। विशेषता यह है कि यह वाइरस विशिष्ट प्रकार के है अर्थात् एक प्रकार का वाइरस कीट की एक जाति को ही मारता है किसी अन्य जाति को नहीं। इन ३०० में से कुछ ऐसे हैं जो ऐसे कीटों का नाश करते हैं जो नाशक जीवों में प्रमुख स्थान रखते हैं।

अत: ये नाशक-जीव-नाशी आदर्श सिद्ध हो सकते हैं जिनमें मारक शक्ति तो है लेकिन जिनका पर्यावरण पर कोई प्रभाव नहीं होता—जो केवल अपने लक्ष्य के लिये ही मारक हैं अन्यों के लिये सर्वथा हानि रहित। साथ ही इनका निर्माण सस्ता भी पड़ता है।

तो भी जिस प्रकार रसायनों के सम्बन्ध में अन्तर-राष्ट्रीय मानक निर्धारित हो चुके हैं, नाशक-जीवों के नाशी वाइरस-युक्त पदार्थों के वैसे मानक अभी निर्धारित नहीं हुए हैं। ऐसी स्थिति वाइरस-विधि के प्रचार में बाधक सिद्ध हो रही है।

अब ब्रिटेन के ऑक्सफर्ड नगर स्थित प्राकृतिक पर्यावरण अनुसंधान परिषद (नेचरल एन्वाइरमेण्ट रिसर्च काउंसिल) में इस दिशा में अनुसन्धान हेतु केन्द्र स्थापित किया जा रहा है। यह केन्द्र वाइरस युक्त पदार्थों के अन्तर-राष्ट्रीय मानक निर्धारित करने का यत्न करेगा; उनके छिड़काव की उत्तम विधि तथा छिड़काव की दर का पता लगाएगा।

वाइरस विधि से नाशक जीवों का नाश करने की दिशा में पहला कदम पूर्वी अफ्रीका में एक मॉथ के विरुद्ध अपनाया जाएगा जो कि अनाज और घास को बहुत हानि पहुँचाता है। यह मॉथ एक किस्म का छिपा हुआ वाइरस संक्रमण अपने में लिये रहता है जो कि कई बार फैल कर विशाल संख्या में इस मॉथ को मार देता है। इससे यदि कोई छिड़काव बन पाया तो यह रासायनिक नाशक-जीव-नाशियों का प्रचलन सर्वथा बन्द करवा देगा। आशा है इस तरह की स्थिति शीघ्र ही उत्पन्न हो जाएगी।

मच्छरों में वाइरस-संक्रमण फैलाकर मलेरिया को नियंत्रित करने की भी पूरी संभावना है। इससे डी० डी० टी० के इस्तेमाल और उससे उत्पन्न हानिकर प्रभावों सम्बन्धी विश्वव्यापी विवाद भी समाप्त हो जाएगा।

वाइरस-विधि से केवल हानिकर कीटों की ही नहीं अपितु इससे हानिकर पक्षियों को भी नियंत्रित किया जा सकेगा। दक्षिण अफ्रीका से सूडान तक अनेक क्षेत्रों में क्यूलिया नामक पक्षी खतरनाक सिद्ध हो रहा है। लाखों की संख्या में यह पक्षी अनाज के खेतों में टूट पड़ते हैं और बढ़ती फसल को चट कर जाते हैं। किसी विशिष्ट वाइरस की खोज हो जाने पर इस नाशक पक्षी पर नियंत्रण सम्भव हो जायगा।

(विज्ञान समाचार सेवा के सौजन्य से)

ज्ञान-विज्ञान

प्याज और आंसू

प्याज छीलते ही आंखों से आंसू निकलने लगता हैं। ब्रिटिश नेशनल वेजिटबल रिसर्च सेंटर के गंध रसायन विभाग ने इस पर अनुसंधान कर के निष्कर्ष निकाला है कि जिस भूमि में प्याज उगाया जाता है उसकी मिट्टी में उपस्थित गंधक ही इस सारी गड़बड़ का कारण हैं। इसी गंधक के कारण प्याज में वह तिरतिरापन आ जाता है जो हमारी आँखों से पानी टपकाते हैं।

प्याज से निकलने वाले इस तिरपरे वायु को गैस वर्ण लेखन द्वारा परीक्षण करने पर उसमें अधिक मात्रा में उपस्थित गंधक का पता चला है। प्याज के इस गुण के लिये गंधक को दोषी ठहरानेवाला यह प्रथम प्रयत्न नहीं है। भारत और इटली में 1954 में प्रकाशित दो अनुसंधान पत्रों में यह सूचित किया गया है कि भूमि में गंधक की मात्रा कम कर के प्याज उगाने पर उसका तीखापन कम हो जाता है। सफेद लिस्बनी किस्म प्याज को शीशे से बने कमरों की पांच क्यारियों में उगाया गया है जिनमें गंधक भिन्न-भिन्न मात्राओं में उपस्थित था। मिट्टी के गंधक के अनुपात में ही प्याज में भी तीखापन घटता-बढ़ता देखा गया है।

जेबी गणनायन्त्र

अब वह जमाना नहीं रहा जब गणनायन्त्र इतने बड़े होते थे कि उनके लिए अलग मेज लगाने की आवश्यकता होती थी। "बौमार इन्स्ट्रूमेन्ट्स इन्कॉर्पोरेटेड नामक अमेरिकी फर्म ने इतना छोटा गणनायन्त्र बनाया है जिसे कोट की जेब में रखा जा सकता है।

बैटरी से चलने वाले और हथेली पर उठाने लायक इस गणनायन्त्र से जोड़ने-घटाने तथा गुणा व भाग करने के काम लिये जा सकते हैं। इसका वजन ३४० ग्राम है और वह ८ संख्याओं तक तथा दशमलव के ८ वें भाग तक हिसाब करता है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि लघु गणनायन्त्र से विशाल गणनायन्त्रों का काम हल्का हो जायेगा।

शहरी कचरे से बढ़िया उर्वरक

शहरी सभ्यता के विकास के साथ-साथ कचरे के ढेर भी बढ़ते जा रहे हैं। शहरी कचरे को उपयोगी उर्वरक में परिवर्तित करने के लिये अनेक वैज्ञानिकों ने प्रयत्न किये हैं परन्तु सफलता नहीं मिली। इस कचरे में सबसे जल्दी कम्पोस्ट होने वाली वस्तु है शर्करायें और सबसे देर में कम्पोस्ट होने वाली हैं सेलूलोस। क्योंकि शहरी कचरे में कागज की मात्रा ७५ प्रतिशत तक होती है इसलिये उसे कम्पोस्ट करना बहुत कठिन होता है। अब ब्रुकलेन (न्यूयार्क) के इन्कोलौंजी इन्कार्पोरेशन ने ऐसी विधि निकाली है जिससे कागज को आसानी से सड़ाया जा सके। इस विधि में कागज को उर्वरक में बदलने के लिये कोई नया बैक्टीरिया इस्तेमाल नहीं किया गया है वरन् कम्पोस्ट के तरीकों में ताप, वायु प्रवेश, आर्द्रता और बैक्टीरियाओं को स्वस्थ रखने के लिये पोषण तत्वों को मिलाने के तरीकों में संशोधन किया गया है।

ताप, वायु प्रवेश, आर्द्रता और बैक्टीरियाओं को स्वस्थ रखने के लिये पोषक तत्वों को मिलाने के तरीकों में सबसे पहले कचरे में से चुम्बक द्वारा लोहे के टुकड़ों को अलग किया जाता है और कूड़े के छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं। फिर ४-५ दिन तक उसे डाइजेस्टर

में उपचारित किया जाता है। इससे कम्पोस्ट बन जाता है पर उसकी एक बार फिर परीक्षा की जाती है। इस बार प्लास्टिक के टुकड़ों तथा अन्य अनुपचारित वस्तुओं के लिये फिर पोषण तत्व मिलाये जाते हैं और समापित माता को सुखा लिया जाता है। इस प्रकार कचरे से एक बढ़िया उर्वरक प्राप्त हो जाता है।

सस्ता धूप जल-हीटर

केन्द्रीय भवन अनुसंधान के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सस्ता और सरल जल-हीटर तैयार कर लिया है जो सूर्य की रोशनी से ६० लिटर तक पानी एक बार गर्म कर सकेगा और जाड़े के दिनों में गर्म जल की समस्या हल कर सकेगा। इस सरल जल-हीटर में ताप अवशोषण और गर्म जल के भंडारन की व्यवस्था साथ-साथ की गई है जिससे कि इसे घरों में सुविधापूर्वक लगाया जा सके।

दिसम्बर मास के किए गए परीक्षणों में यह देखा गया कि सायंकाल चारबजे तक इसके गर्म जल का ताप औसत ५०° से० ग्रे० रहा जबकि के जल का औसत ताप १८° था।

घातक सौन्दर्य-चिकित्सा

सा० रा० अमेरिका की युवतियाँ अपने वक्ष सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने के लिये द्रव सिलीकोन के इजेंक्शन लगवाया करती थीं। पयोधरों में दिये जाने वाले इजें-क्शनों से इनका आकार बढ़ जाया करता है परन्तु अब अमेरिकी मेडिकल एसोसियेशन ने इनके इस्तेमाल के विरुद्ध चेतावनी दी है।

यह पाया गया था कि ऐसे इंजेक्शनों के लगाने के उपरान्त बहुत से रोगियों की हालत बिगड़ जाती है और ऐसे रोगियों की संख्या दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। यहाँ तक हुआ है कि वहाँ चार महिलाओं की तो ऐसे इंजेक्शनों के बाद मृत्यु भी हो गई है।

ह्यूस्टन, टेक्साज में ऐसी एक महिला के शव की परीक्षा से ज्ञात हुआ कि रुधिर वाहिनियों में से होता हुआ यह पदार्थ कभी-कभी मस्तिष्क में भी पहुँच जाता है।

इंजेक्शनों के उपरान्त बने फोड़ो से छुटकारा पाने के लिये कई बार तो ऐसी महिला के पूरे पयोधरों को ही काट कर अलग कर देना पड़ा।

यान्त्रिक बेरा

क्या यान्त्रिक बेरा (सेवक)? हाँ। वह अब वर्जि-निया (अमेरिका) के फेयरफक्स अस्पताल में काम करता है।

उसका काम है रोगियों के पास भोजन पहुँचाना। वस्तुत: यान्त्रिक बेरा तीन पहियों वाली एक स्वचालित गाड़ी है जिसके स्टेनलेस स्टील वाले पेट में गरम भोजन की ३४ थालियाँ समा जाती हैं।

यह यान्त्रिक बेरा रसोईघर से किसी की मदद के बिना अस्पताल के लिफ्ट के आगे ठहरता है, फिर विद्युदाणविक विधि से आवाज करता है और दरवाजा खोल कर लिफ्ट में सवार हो जाता है। यह यांत्रिक बेरा हर मंजिल में बारी-बारी से खाना पहुँचाता है। किन्तु किसी मंजिल पर पहुँच कर उसे ठहरना पड़ता है और अस्पताल का कर्मचारी उसे वहाँ पहुँचाता है जहाँ भोजन की जरूरत होती है।

जब यान्त्रिक बेरे में खाली थालियाँ इकट्ठी हो जाती हैं, तब वह थालियाँ धोने वाले अन्य यान्त्रिक बेरे के पास पहुँचता है।

निस्सन्देह बैरे को हर दौरे के बाद एक बार फव्वारे से स्नान करना पड़ता है। वह अपने को कीटाणु-विहीन बनाता है और फिर अपने पेट में थालियाँ भरने के लिए रसोईघर में लौट आता है।

विज्ञान-समाचार

इलाहाबाद के वैज्ञानिकों द्वारा धान को हानि पहुँचाने वाले कीट के नियन्त्रण के लिए अनुसन्धान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने माजू मक्खी की रोकथाम की नयी विधियाँ निकालने के लिए एक अनुसन्धान-परियोजना चालू की है। माजू मक्खी भारत तथा कई अन्य देशों में धान की फसल को गम्भीर क्षति पहुँचाती है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जीव-विज्ञान विभाग के डा० एस० एन० प्रसाद के नेतृत्व में वैज्ञानिकों की एक टोली इस परियोजना को चला रही है। अमेरिकी कृषि विभाग की कृषि अनुसन्धान सेवा के डा० आर० आई० सेलर इस अनुसन्धान में सहयोग करेंगे। अमेरिकी सरकार ने इस योजना की वित्तीय व्यवस्था के लिए 1.46,000 रुपए का एक अनुदान दिया है।

माजू मक्खी धान के पौधे के डण्ठल को क्षति पहुँचा कर उसके विकास में बाधा पहुँचाती है। इसके कारण इसके डण्ठल का रंग हरे से बदल कर हल्का सफेद हो जाता है। इस प्रकार का विकारग्रस्त डण्ठल धान उत्पन्न नहीं कर पाता। कभी-कभी तो इस मक्खी के लग जाने से धान के खेत साफ हो जाते हैं।

इलाहाबाद के वैज्ञानिक इस कीट की आदतों और जीव-वैज्ञानिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। वे उन कीटों का भी अध्ययन करेंगे जो इसे आहार बना सकते हों, या इसके परजीवी हों। ऐसा करके वे इसे नियन्त्रित करने की उपयुक्त विधियाँ ढूँढ़ निकालेंगे। इस अनुसन्धानों से भारत में हरित क्रान्ति की प्रगति में एक बाधा तो दूर होगी ही, अमेरिका सहित बहुत से अन्य देशों के करोड़ों किसान भी लाभान्वित होंगे।

आकाश-तड़ित अब भयावह नहीं रहेगी

अमरीका के वैज्ञानिकों का कहना है कि वे तड़ित की विध्वंसात्मक शक्ति को दबाने में सफल हो गये हैं। परियोजना के नेता डा० हाइन्ज़ काज़मीर के अनुसार इस सफलता के परिणाम-स्वरूप बनों की आग रोकने में सहायता मिलेगी क्योंकि 80 प्रतिशत आग तड़ित से लगती है।

डाक्टर काज़मीर और राष्ट्रीय महासागरीय एवं वायुमण्डलीय प्रशासन के उनके पाँच सहयोगियों ने झंझावातों में धातुकृत नाइलोन रेशे की भूसी को बिखेर दिया और उन तूफानी विद्युतीय क्षेत्रों का आयनीकरण करने में सफल हो गये जो तड़ित उत्पादन करते हैं। यह ज्ञातव्य है कि तड़ित उत्पादन के लिए 500,000 वोल्ट प्रति मीटर आवश्यक है। डा० काजमीर और उनके सहयोगियों ने भूसी की मदद से वायुमण्डल की चालकता बढ़ा दी जिससे तूफानी विद्युतीय क्षेत्रों के लिए तड़ित की शक्ति निर्माण होना असंभव हो गया तथा तड़ित दब गया।

कोलोरेंडो के वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोग के लिए एक प्रणोदक-चालित बी० 26 विमान प्रयुक्त किया। इस विमान में विद्युतीय क्षेत्र नापने के उपकरण स्थापित कर दिये जिससे वे जान सकें कि भूसी को कहाँ विखेरना है। विमान को तूफान के दुर्दान्त आधार की ओर उड़ाया जाता है और वहाँ भूसी को बिखेर दिया जाता है जिससे तूफान की ऊर्ध्वगति से बादलों में फैल जाय।

भूसी विधि को उस क्षेत्र में प्रयोग नहीं कर सकते जहाँ वायुयानों का आवागमन रहता है क्योंकि इससे रडार की कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप होता है।

विमान हरण की रोकथाम की क्ष-किरण युक्ति

अमेरिकी हवाई कम्पनी 'पान अमेरिकन वर्ल्ड एअरवेज' ने विमान हरण की रोकथाम के लिए एक क्ष-किरण टेलीविजन युक्ति का प्रयोग प्रारम्भ किया है। यह युक्ति. जिसे 2,25,0000 रु० की लागत से बेन्डिक्स कारपोरेशन ने बनाया है क्ष-किरण धड़कन की सहायता से यात्री के सामान के अन्दर देख लेती है। यह धड़कन प्रकाश में परिवर्तित कर दी जाती है और ज्यों ही प्रकाश की तीव्रता बढ़ा दी जाती है, सन्दूक या थैले के अन्दर जो कुछ भी है उसका चित्र बन जाता है।

उक्त हवाई कम्पनी के सुरक्षा निदेशक ने जिन्होंने हाल ही में कैनेडी हवाई अड्डे पर इस युक्ति का प्रदर्शन किया, बताया कि इस युक्ति को सुवाह्य पावर यूनिट के साथ धावन-पथ तक ले जाया जा सकता है जहाँ विमान हरण अथवा बम्ब की धमकी के कारण वायुयान को रोक लिया गया हो। उनके अनुसार यह युक्ति तकनीकी में एक नया मार्ग प्रशस्त करती है। जिसके कलस्वरूप विमान हरण के उन्मूलन में बड़ी सहायता मिलेगी।

शल्य-चिकित्सा की अतिशीत विधि

शल्य-चिकित्सक अब भयानक रोग ग्रसित तन्तुओं को बिना काटे हुए नष्ट कर सकते हैं। पश्चिमी जर्मनी में हाल ही में डाक्टरों ने द्रव नाइट्रोजन की सहायता से ऋण 180 डिग्री सेण्टीग्रेड तापमान तक उपकरणों को ठण्डा करके सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया है। इस विधि में तन्तु के एक बड़े क्षेत्र को जमा दिया जाता है। जब वह पिघलने लगता है तो कोष शरीर में सड़ने लगते हैं और इससे कोई विषैला प्रभाव भी नहीं पड़ता तथा अवशेष बिना किसी कठिनाई के अंग प्रक्रिया द्वारा विघटित हो जाते हैं।

इस विधि का प्रयोग उन अंगों को काटने में किया जाता है जिनमें बहुत रक्त भरा होता है जैसे गुर्दे या जिगर। इसमें अधिक रक्तस्राव भी नहीं होता। अत्यन्त गंभीर दशा के रोगी अथवा वृद्ध जनों का अपेक्षाकृत कम खतरे के साथ इस विधि से उपचार हो सकता है।

शुक्र-तल पर अन्धकार !

जिन घने श्वेत बादलों के कारण मनुष्य शुक्र ग्रह को नहीं देख पाता, सम्भवत: वे उसके तल को अन्धकार में भी रखते हैं। यह अनुमान रूसी वैज्ञानिकों ने वीनस-८ अन्तरिक्ष यान द्वारा पृथ्वी पर भेजी गयी सूचनाओं के आधार पर लगाया है। ज्ञातव्य है कि यह यान गत २२ जुलाई को शुक्रतल पर धीमे से उतरा था।

शुक्र के बादलों का आवरण सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करता है, इसीलिए शुक्र गगन में तीसरी सबसे अधिक चमकीली वस्तु है, इससे अधिक चमकीले सूर्य और चन्द्र हैं।

रूसी समाचार एजेन्सी तास ने उक्त सूचना देते हुए यह भी बताया है कि अन्तरिक्ष-यान वीनस-८ द्वारा भेजी हुई सूचनाओं के विश्लेषण से पहले के अनुमानों की पुष्टि हुई है कि शुक्र के अन्धेरे किनारे और प्रकाशित किनारे के तापमानों तथा वायुमण्डलीय दाब में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जहाँ यान उतरा, वहाँ का तापमान ४७० अंश सेण्टीग्रेड तथा दाब ९० किलो-ग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर था। शुक्र के वायुमंडल में ९७ प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड, लगभग २ प्रतिशत नाइट्रोजन तथा कुछ अंश आक्सीजन, पानी और अमोनिया के हैं।

तास ने बताया कि इस ग्रह का तल काफी नरम है और उसका घनत्व १.५ ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। तल की मिट्टी में पुटेशियम, यूरेनियम और थोरियम की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा है।

बाल विज्ञान

(१) आओ बच्चो, तत्वों की संख्या गिनें

संसार के जितने भी जड़ चेतन पदार्थ हैं वे सभी रासायनिक तत्वों के विभिन्न संयोजन से बने हैं। किसी पदार्थ में कोई तत्व हैं तो किसी में कोई अन्य। आवर्तन सारिणी में रासायनिक तत्वों को उनकी परमाणु संख्या के अनुसार दिखाया जाता है। अब तक वैज्ञानिकों ने 105 तत्वों की खोज कर ली है। परमाणु संख्या 105 के बाद के तत्वों का आविष्कार हो पायेगा अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसका कारण यह है कि परमाणु संख्या बढ़ने के साथ ही साथ तत्वों की आयु भी बहुत कम होती जाती है उदाहरण: वेत्ता कुर्चातोनियम की अर्धायु केवल ०.३ सेंकड ही है।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व 1871 के रूसी रसायन मेन्डलीव ने आवर्तन सारिणी की रचना की थी। चाहे वह भौतिक शास्त्री हो चाहे रसायन शास्त्री सभी को इस सारिणी की आवश्यकता पड़ती है।

सैद्धांतिक रूप से ऐसा माना जाता है कि आवर्तन सारिणी के तत्वों की संख्या 168 तक बढ़ाई जा सकती है।

निम्नतालिका में यूरेनियम के बाद के तत्वों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

तत्व	मूल संकेत	परमाणु संख्या
नेप्चूनियम	Np	93
प्लूटोनियम	Pu	94
अमरीशियम	Am	95
क्यूरियम	Cm	96
बर्कीलियम	Bk	97
कैलिफोर्नियम	Cf	98
आइन्सटीनियम	Es	99
फर्मियम	Fm	100
मेन्डेलीवियम	Md	101
नोवेलियम	No	102
लारेन्सियम	Lw	103
कुर्चातोवियम	Ku	104
हैहनियम	Hn	105

(२) बच्चो क्या तुम जानते हो कि पौधे भी हम सब की तरह ही सोचते हैं।

ठीक मनुष्य मात्र की तरह ही पौधे भी दुःख-सुख का अनुभव करते हैं, भयभीत होते हैं तथा सम्भवतः संपर्क में आए व्यक्तियों के विचारों से भी अवगत हो जाते हैं।

यह किसी कवि या कथाकार की कल्पना नहीं है वरन् मशीन द्वारा सत्यमिथ्या वक्तव्यों की जाँच करने वाले एक विशेषज्ञ के प्रयोगों का सत्य निष्कर्ष है।

बच्चो तुमने डॉ० जगदीशचन्द्र वसु का नाम तो सम्भवतः सुना ही होगा। अपने देश भारत के ये एक अत्यन्त ही प्रतिभावान वैज्ञानिक हुए हैं। भारत को संसार के आधुनिक विज्ञान मानचित्र पर एक सम्मानित स्थान प्रदान कराने वालों में डॉ० वसु का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

संसार के ये सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया था कि पौधे भी अन्यान्य जीवधारियों के समान ही व्यवहार करते हैं। वे सोते हैं, जगते हैं, बढ़ते हैं, मरते है, तथा पूर्णतः संवेदनशील हैं।

अभी हाल में ही संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रमुख नगर न्यूयार्क के एक वैज्ञानिक डॉ० क्लेव वैक्सटर ने

ड्रेसीना नामक पौधे पर इसी प्रकार के कई रोचक एवं महत्वपूर्ण प्रयोग किये हैं।

पौधे की जड़ों को पानी से सींचने के पश्चात् उन्होंने पौधे का अपने यंत्र पॉलीग्राफ द्वारा विभिन्न दृष्टियों से से अध्ययन किया तथा परीक्षण के उपरान्त उन्हें वैसे ही परिणाम प्राप्त हुए जैसे कि उसी यंत्र द्वारा मनुष्यों पर प्रयोग करने से प्राप्त होते हैं। पौधे द्वारा दुःख-सुख के अनुभव को ज्ञात करने के लिए उन्होंने ड्रेसीना की एक पत्ती को जलाने का विचार किया तो उनके यंत्र का संकेतक उसमें व्याप्त भय का संकेत देने लगा।

पॉलीग्राफ से लिए गए अन्य परीक्षणों में तो यहाँ तक पता लगा कि यदि एक पौधे को हानि पहुँचा कर कोई व्यक्ति पास वाले दूसरे पौधे के पास पहुँचता हैं तो दूसरा पौधा उस हिंसक व्यक्ति को देखते ही भय से मूर्छित हो जाता है।

डॉ० वैक्सटर द्वारा किए गए प्रयोगों से उक्त परिणामों के आगे अभी कई प्रश्न चिह्न लगे हुए हैं।

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3 5/

भाग 109 | ज्येष्ठ 2028 विक्र०, 1892 शक सितम्बर 1972 | संख्या 9

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक वाङ्मय में गणित

पं० सुरेश रामकृष्ण शास्त्री तथा डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

गणित की सुदृढ़ नींव पर आज विज्ञान की भव्य अट्टालिका खड़ी हुई है। हम भारतीयों के लिये यह गौरव का विषय है कि इस नींव के निर्माता हमारे ही पूर्वज थे। केवल मस्तिष्क ही नहीं वरन् समग्र चरित्र के दृष्टिकोण से भी वे इतने महान् थे कि अपनी उपलब्धियों की प्रशंसा के लिये या स्वयं के संबंध में परिचयात्मक रूप से भी कुछ भी लिखाना या लिखवाना वे एक हेय कार्य समझते थे। संभवत: इसी कारण प्राचीन भारतीय वाङ्मय में गणित के विकास का समीचीन विवरण देने के देनेके हेतु उपयुक्त, ठोस एवं लिखित सामग्री समुचित रूप में उपलब्ध नहीं है। कुछ ही हस्तलिखित ग्रन्थ एवं प्रकीर्ण संदर्भ हैं जो यह आभास देते हैं कि भारतीय गणित विभिन्न समयों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अन्य देशों की अपेक्षा उत्कृष्ट अवस्था में था। यद्यपि विकास का क्रमिक इतिहास इन सूत्रों से प्राप्त करना दुष्कर कार्य है, किन्तु ये संदर्भ इस तथ्य के ज्वलंत प्रमाण हैं कि भारतीय मस्तिष्क केवल मात्र दार्शनिक तत्व चिंतक ही नहीं था, जैसा कि बहुधा कहा जाता है, वरन् गणित, सिद्धांत ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विज्ञानों का अध्ययन करने वाला भी था। प्रस्तुत छोटे से लेख में प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्राप्य गणित संबंधी समस्त सामग्री की समीक्षा संभव नहीं होने से उदाहरणात्मक दृष्टि से चयन किये हुए कतिपय विशिष्ट प्रकरण ही विवेचित किये जा रहे हैं।

वेदों में गणित संबंधी उल्लेख—

भारतीय ज्योतिष और गणित का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितने कि इसके सभ्यता एवं संस्कृति। ऋग्वेद में इस तथ्य के संबंध में कई प्रमाण प्राप्य हैं। इस आधार पर भारत में गणित की उत्पत्ति लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व ठहरती है।

10^7 तक के उच्च मानों वाली संख्याओं के नामकरण वेदों से उपलब्ध होते हैं जो निश्चयात्मक रूप से गणित की विभिन्न शाखाओं में से कम से कम अंकगणित के विकास के परिचायक तो हैं ही। $100 = 10^2$

शत, सहस्त्र, $1000 = 10^3$, इसी प्रकार, $100000000 = 10^8$ अर्बुद, के संबंध में स्पष्ट संदर्भ हैं। उदाहरणार्थ, शतं, सहस्त्रमयुतं न्यर्बुदंच असंख्येयम् (10।4।8।24 अथर्व); एव "षष्टिं सहस्त्रां, नवतिं नवंच" (1।10।53।9, ऋग०)। गणित के विश्वविख्यात इतिहास लेखक केजोरी का स्पष्ट मत है कि किसी भी समकालीन सभ्यता के ग्रन्थों में उच्च अंकों के नामकरण एवं ज्ञान की इतनी गहराई तक पहुँचने संबंधी उल्लेख प्राप्य नहीं है।

वैदिक ऋषियों को गणित की समान्तर श्रेढ़ियों (एरिथमेटिक प्रोग्रेशन्स) के संबंध में जानकारी थी। यजुर्वेद (18।16) में ऐसी दो श्रेढ़ियों का स्पष्ट विवरण है। उदाहरणार्थ, "एकं च में तिस्त्रं च मे; तिस्त्रं चमे — — — त्रयन्त्रिशच्च में यज्ञने कल्पन्ताम्", जहाँ प्रथम पद, 1 है, सार्व अन्तर (कामन डिफरंस) = 2 है, तथा अन्तिम पद—33 है, इस प्रकार समान्तर श्रेढ़ी हुई 1, 3, 5, 7, — — 31, 33 'के इसी प्रकार, "चतस्त्रश्च मे, अष्टौच मे, — — — अष्टचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" एक अन्य श्रेढ़ी है जिसमें प्रथम पद — 4 है, सार्वअन्तर 4— है तथा अन्तिम पद — 48 है, तथा श्रेढ़ी का रूप है 4, 8, 44, 48।

वैदिक युग में योजनों एवं काष्ठों में दूरियाँ एवं लम्बाइयाँ मापी जाती थीं "योजनामिमाना: काष्ठां गच्छेत" (9।13 यजु०)। यज्ञों एवं विभिन्न कर्मकाण्डीय गतिविधियों के लिये विविध आकृति की वेदियों एवं अन्य उपकरणों के निर्माण के संबंध में ऋचाएँ उपलब्ध हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस समय तक ज्यामिति का भी पर्याप्त विकास हो चुका था। इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों में तथा अन्य समकालीन सामग्री में भी प्रचुर संदर्भ मिलते हैं, किन्तु यह प्रकरण एक स्वतंत्र लेख का विषय बन सकता है। इस शृंखला में भारतीय गणित एवं समकालीन माने जाने वाले यूनानी गणित के संबंध में भी कुछ परिवीक्षण उचित होगा।

भारतीय और यूनानी गणित—

विश्व सभ्यता के प्राचीनतम भारतीय ग्रंथ वेदों में उपर्युक्त संदर्भों जैसे स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि गणित का व्यवस्थित अध्ययन किस भूभाग पर प्रारंभ हुआ। पाश्चात्य विद्वान इस पक्ष में हैं कि यूनान में सर्व प्रथम गणित का आविष्कार एवं प्रवर्द्धन हुआ एवं इसके पश्चात् भारत, चीन एवं मिश्र आदि प्राचीन सभ्यताओं वाले देशों ने इस क्षेत्र में उन्नति की। किन्तु इस विवादास्पद प्रश्न को यहीं छोड़ते हुए गणित के इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक केजोरी का अनुसरण कर गणित की विकास-धारा को दिशादान देने वाली भारतीय एवं यूनानी प्रवृत्तियों की इस स्थल पर तुलनात्मक आलोचना रोचक होगी।

ग्रीक गणित, हिन्दी गणित की अपेक्षा अनुकूल परिस्थितियों में विकसित हुआ। भारत में गणित की सत्ता एक विशेष वर्ग (ब्राह्मण) के हाथ में थी जब कि यूनान में किसी भी वर्ग का व्यक्ति इसका अध्ययन अध्यापन कर सकता था। यूनान में "गणित-गणित के लिये" का सिद्धान्त था जबकि भारत में गणित, ज्योतिषशास्त्र का एक सहायक अंग मात्र समझा जाता था। यूनानी गणितज्ञ भाषा की गूढ़ता और वैज्ञानिक उपजातियों तथा उनके संरक्षण के प्रति सजग थे जबकि भारतीय विद्वान गुप्त काव्यात्मक भाषा का ऐसा लौहावरण गणित पर चढ़ाते थे कि साधारण स्तर के व्यक्ति के लिये इसका अध्ययन करना राई का पहाड़ बनाने जैसा था। भारतीय मस्तिष्क की रुचि बीजगणित और अंकगणित की ओर अधिक थी जबकि ग्रीक मस्तिष्क ज्यामिति की ओर अधिक झुका हुआ था।

कुछ भी हो इतना तो सभी मानते हैं कि यूनान की अपेक्षा भारतीयों ने विश्व को कुछ अधिक ही दिया है और यह भी कि यूनानी गणित भारतीय गणित से प्रभावित हुआ।

मध्यकालीन प्रमुख भारतीय गणितज्ञ और उनकी कृतियाँ :—

मध्यकाल के सर्व प्रथम भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट (सन् ४७६ ई०) माने जा सकते हैं, जिन्हें विदेशी

विद्वान् 'भारत का न्यूटन' कहते हैं। इन्होंने 'आर्य भट्टीय' की रचना की। जिसके गीतिका, गणित, काल-क्रिया और गोल नामक चार खंड हैं। इसमें सूर्य और तारों के स्थिर होने, पृथ्वी के गोल होने और अपने अक्ष पर सूर्य के चारों ओर घूमने का सिद्धान्त बतलाया गया है। सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा का आपेक्षिक परिणाम और दूरी निश्चित की गई है। इसमें गुरुत्वाकर्षण की विवेचना के अतिरिक्त ग्रहणों के कारणों की वैज्ञानिक व्याख्या भी है। आर्यभट्ट के पूर्व भी भारत में पांच सिद्धान्त प्रचलित थे। आर्यभट्ट ने उनकी जांच पड़ताल की तथा 'आर्य भट्टीय' में उन्हें स्थान दिया। ये सिद्धान्त थे पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर और पैतामह।

लगभग एक शताब्दी पश्चात् पंजाब प्रांत ने 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त" के लेखक ब्रह्मगुप्त को जन्म दिया। इस ग्रंथ का बहुत बड़ा भाग ज्योतिष से सम्बन्धित है। केवल 12वें और 18वें अध्याय में गणित का विवेचन पाया जाता है। इन्होंने एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की जो आर्य भट्ट की आलोचना के उद्देश्य से लिखा गया था। "सूर्य-सिद्धान्त" नामक अद्वितीय कृति भी हमें आकर्षित करती है, जिसके रचयिता का प्रश्न विवाद ग्रस्त बना हुआ है। भारतीय ज्योतिषियों की मान्यता है कि स्वयं भगवान सूर्य ने इसकी रचना की। इसके बाद की शताब्दियों में "गणितसार" के लेखक श्रीधराचार्य और बीजगणित के लेखक पद्मनाभ का नाम भी उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत ने इसी समय भास्कराचार्य जैसे मस्तिष्क को जन्म दिया जिनकी कृतियाँ "सिद्धान्त शिरोमणि", "लीलावती" इत्यादि ज्योतिष ग्रन्थों की शिखामणि हैं। वस्तुतः, आर्यभट्ट ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य भारतीय गणित के प्रणेता, पोषक और उन्नायक कहे जा सकते हैं। केवल भारत ही नहीं, अपितु सारा विश्व इनकी देन के लिये आभारी रहेगा।

प्राचीन भारत में विकसित गणित की विभिन्न शाखाएँ—

भारतीयों ने गणित की बीज गणित, अंक गणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति इत्यादि सभी शाखाओं में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया।

अंक-गणित में ब्याज, बट्टा, छूट, क्रम-संचय, उपचय, (Permutations and Combinations) अंक-गणितात्मक और ज्यामितीय श्रेढ़ियोंका योग, साझा इत्यादि अनेक प्रमुख विषयों का समावेश था।

बीज-गणित में एक घातीय और वर्गात्मक समीकरणों के सरलीकर्त्ता भारतीय लोग ही हैं। $y^2 = ax^2 + 1$ के सरलीकरण में "चक्ररीति" के प्रयोग से भारतीय गणितज्ञों के मस्तिष्क की तीक्ष्णता परिलक्षित होती है।

ज्यामिती में कई प्रमेय भारतीयों द्वारा आविष्कृत थे। भास्कराचार्य ने पायथागोरस के प्रसिद्ध प्रमेय की स्वयं की उपपत्ति दी है। समबहुभुज क्षेत्रों के भुज योग के गणन से भारतीय सुपरिचित थे। भास्कर, आर्यभट्ट इत्यादि ने (π) का बहुत से स्थानों तक शुद्ध मूल्य भी निकाला था।

त्रिकोणमिति में भी भारतीयों ने समीचीन उन्नति की थी। $3°45'$ तक के कोणों की ज्या और उत्क्रमज्या निकालना उन्हें ज्ञात था। ज्योतिष में वे बहुधा समक्षेत्रीय और गोलीयसमकोण त्रिभुजों को सरल किया करते थे।

कुछ महत्वपूर्ण आविष्कार और भारत की विश्व को देन।

वैज्ञानिक आविष्कारों की बृहद्रत्न-मंजूषा में भारत का एक-एक आविष्कारक एक-एक महामणि के रूप में अपनी अंशुमालाओं से माँ शारदा की अर्चना कर रहा है। विभिन्न क्षेत्रों में भारत की देन का विवेचन इस प्रकार है :—

(अ) अंकगणित :—

(1) अंक-लेखन-पद्धति के आविष्कर्ता हमारे ही पूर्वज थे। डॉ० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "अरब वालों ने यह विद्या हिन्दुओं ही से सीखी थी। इसी कारण इस विद्या को वे 'इल्म-ए-हिन्दसा' अर्थात् हिन्दी या भारत की विद्या कहते हैं।"

(2) स्थानीयमान का सिद्धान्त भी भारतीय मस्तिष्क की उपज है। प्रख्यात अरब गणितज्ञ अलबेरूनी ने लिखा है। "इस शास्त्र में हिन्दू लोग संसार की सब जातियों से बढ़कर हैं। मैंने अनेक भाषाओं के अंकों और नामों को सीखा है परन्तु मैंने किसी भी जाति में हज़ार के आगे के लिये कोई नाम नहीं पाया। हिन्दू लोगों में अट्ठारह अंकों की संख्याओं तक के नाम हैं और वे उसे परार्ध कहते हैं।"

(3) प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री आर० सी० दत्त का कथन है कि दशमलव के सिद्धान्त के अनुसार अंकों के रखे जाने के लिये संसार हिन्दुओं का अनुगृहीत है और इस सिद्धान्त के न होने से गणित शास्त्र का होना ही असम्भव था।"

(4) व्युत्क्रम की रीति का आविष्कार भास्कराचार्य ने किया। गुणन के आधुनिक प्रकार का प्रवर्तन भी हम लोगों ने ही किया था।

(ब) रेखागणित और त्रिकोणमिति (Geometry and Trignometry) :—

(1) "मॉनियर विलियम्स की मान्यता है कि बीज गणित का आविष्कार और ज्योतिष के साथ उसका प्रथम प्रयोग हिन्दुओं के द्वारा ही हुआ। इसीलिये डॉ० थीवो कहते हैं कि :—"संसार रेखा गणित के लिये भारतवर्ष का ही ऋणी है, यूनान का नहीं।" त्रिभुजों के और बहुभुजों के क्षेत्रफल के प्रमेय वस्तुत: भारतीयों ने ही ज्ञात किये थे।

(2) गोलीय त्रिभुजों का सरलीकरण। अत्यन्त छोटे कोणों की ज्या कोटिज्या और (π) का बहुत से अंकों तक शुद्ध मूल्य निकालना भारतीय गणितज्ञों का ही कार्य है।

(स) बीजगणित (Algebra)

(1) चरम ऋण राशि की अभिव्यंजना और एक सरल रेखा पर धन (+) और ऋण (−) अंकों का प्रदर्शन भारतीयों के ही परिश्रम के फल हैं।

(2) हेंकल कहते हैं कि :—"Pell" के समीकरण के नाम से प्रसिद्ध समीकरण $y^2 = ax^2 + 1$ का सरलीकरण सर्वप्रथम भारतीयों ने ही किया था।"

(3) केजोरी के मतानुसार हम कह सकते हैं कि :—"$Ax^2 + By + C$ का सरलीकरण और अ/ब को विस्तृत प्रवर्तित भिन्न के रूप में लाने का कार्य भारतीय विद्वानों का था न कि यूलर का।"

(4) के० पी० बसु का कथन है कि वर्गात्मक समीकरण के सरलीकरण की श्रीधराचार्य (500 ई०) की विधि तो प्रसिद्ध है ही साथ ही द्वियुक्पद सिद्धान्त भी भारतीयों को परिष्कृत रूप में ज्ञात था।

(द) गणित-ज्योतिष तथा अन्य।

(1) प्रोफेसर बेकर और कोलब्रुक ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि चीन और अरब की ज्योतिष विद्या का विकास भारतवर्ष से ही हुआ है तथा उनका क्रांति मंडल हिन्दुओं का ही बनाया हुआ है।

(2) प्राय: सारा संसार यह जानता है कि "पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है" यह बात सर्वप्रथम आर्य भट्ट को ही ज्ञात हुई।

(3) सूर्य और चन्द्र ग्रहण दैवी आपत्ति से नहीं, वरन् चन्द्र और पृथ्वी के अपनी धुरी पर परिभ्रमण करते एक दूसरे के छायापथ में जा जाने से होते हैं यह तथ्य आत्म विश्वास पूर्वक सर्व प्रथम आर्य भट्ट ने ही व्यक्त किया।

(4) श्रीकृष्ण वल्लभ द्विवेदी के कथानुसार :—"चलन-कलन (Calculus) के जन्मदाता भास्कराचार्य समझे जाते हैं।

सभ्यता और प्रगति के प्रशस्त मार्ग की रचना में भारत ने निस्पृह और मौन रहकर कितना योगदान दिया इसका मूल्यांकन आप स्वयं कर सकते हैं। कल्पना कीजिये कि भारतीय न होते तो आज के विश्व का क्या स्वरूप होता? इसीलिये गणित के इतिहास के विश्व प्रसिद्ध लेखक केजोरी को मुग्ध होकर

[शेष पृष्ठ 16 पर]

पुराने अंगों के बदले में नये अंग

डा० नन्दलाल थेहलयानी, तथा डा० अरुण कुमार सक्सेना

मानव शरीर तथा यंत्रों की बनावट में काफ़ी हद तक समानता पाई जाती है। यदि यंत्र विभिन्न पुर्जों से मिल कर बना होता है तो शरीर की रचना भी इसी प्रकार अनेकों अंगों से मिल कर होती है। बस अन्तर इतना ही है कि यंत्रों के पुर्जे कारखानों में बनते हैं जबकि शारीरिक अंग स्वत: शरीर द्वारा निर्मित होते है। इसके अतिरिक्त यंत्रों की दक्षता लगभग 18% है जबकि मनुष्य की कार्य दक्षता यंत्रों से कई गुनी या इससे भी अधिक है। जिस प्रकार यंत्रों के भाग विसपिट कर खराब हो जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य शरीर से अंग भी आयु के बढ़ने के तथा रोगों के कारण ठीक से कार्य नहीं करते। जिस प्रकार यंत्रों के ये पुर्जे बदल दिये जाने पर फिर से पूर्ववत कार्य करने लगते हैं इसी प्रकार यदि शरीर के खराब तथा रोगग्रस्त अंगों को बदल दिया जाये तो मनुष्यस्वस्थ रह सकता है और उसकी कार्यक्षमता में भी कमी नहीं आ पाती। प्रश्न यह है कि क्या आवश्यक अंगों को मूलत: बदल देना उतना ही सरल हैं जितना कि यंत्रों के पुर्जों का वदल देना। जी, नहीं। यंत्रों के पुर्जे तो सरलतापूर्वक बनाये जा सकते है किन्तु शरीर के अंग प्रयोगशाला में अपने मूलरूप में नहीं बनाये जा सकते। यंत्रों की क्रिया तथा उनकी रचना सर्वविदित है किन्तु शरीर के अंगों के विषय में अभी तक पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया हैं। शरीर के अंगों को बदलने की शल्य-विद्या को प्रतिरोपण के नाम से पुकारा जाता है। भारतीयों के लिये यह कोई नवीन विद्या नहीं है। 6,000 वर्ष पूर्व वेदों में इसका वर्णन 'मधु विद्या' के नाम से हुआ है। पौराणिक कथाओं में अश्वनी कुमार नामक दो जुड़वा भाइयों का वर्णन आया है जो अत्यन्त दक्ष शल्यक थे। इन्होंने अपने गुरु दधान्वी से शल्य विद्या प्रतिरोपण विद्या में प्राप्त की थी। कहा जाता है कि इन्द्र देव प्रतिरोपण शल्य विद्या के जनक थे। अश्वनी तथा इन्द्रदेव में आपस में विरोध होने के कारण इन्द्रदेब ने अपने शिष्य दधान्वी को इस शर्त पर पारंगत बनाया और साथ में बचन भी ले लिया वे इस विद्या को किसी अन्य को नही सिखायेंगे। अश्वनी कुमार की जब यह पता चला तो उन्होंने भी दधान्वी से बहुत आग्रह करके यह विद्या सीख ली। अश्वनी कुमार ने इन्द्रदेव से अपने गुरु दधान्वी की जान बचाने का उपाय भी ढूँढ़ निकाला। सर्वप्रथम उन्होंने गुरु का सिर काट कर उसके स्थान पर एक घोड़े का सर लगा दिया। दधान्वी का सर बड़ी सावधानी से सुरक्षित स्थान पर रख दिया गया तथा इस बात का विशेष ध्यान रखा कि उसमें कोई खराबी नहीं आने पावे। इधर जब इन्द्रदेव को यह ज्ञात हुआ कि दधान्वी ने अपना बचन भंग कर दिया है तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और बिना कुछ सोचे ही दधान्वी का घोड़े वाला सिर काट दिया। अश्वनी कुमार ने दधान्वी के असली सर को प्रतिरोपित कर दिया। इसी प्रकार की कथा गणेश जी में हाथी के सर के प्रतिरोपण की है।

प्रतिरोपण शल्य विद्या का विवरण ग्रीक पौराणिक कथाओं में भी आया है। डेडलस ने अपने हाथों के स्थान पर पक्षी के पंखों का प्रतिरोपण किया था। डेडलस ने इसी प्रकार का प्रयोग करके सूर्य की ओर उड़ान भरी थी। प्रतिरोपण की त्रुटि के कारण वह सफल नहीं हो सका। इसी से 600 वर्ष पूर्व प्रतिरोपण का बड़ा ही अच्छा वर्णन सुश्रुत ने 'सुश्रुत संहिता'

में किया है जो शल्यकों के लिये अब भी एक अमूल्य ग्रन्थ है। यूरोप के निवासियों ने जब भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया तो वे इस विद्या से अत्यन्त प्रभावित हुए और वे इस विद्या को अपने-अपने देशों में ले गये और वहाँ लोगों ने वैज्ञानिक आधार पर इस पर कार्य आरम्भ कर दिया। 1869 ईसवीं में रिवरडीन नामक वैज्ञानिक ने पौधों के तनों में कलम लगाने का सफल प्रयोग किया। 1602 ईसवीं में कैरेल ने सफलतापूर्वक एक जानवर के गुर्दे को दूसरे जानवर में प्रतिरोपित किया। 1906 ईसवीं में जेबुली ने सुअर के गुर्दे को मनुष्य के गुर्दे के स्थान पर प्रतिरोपित किया किन्तु ये सब प्रयोग न्यून जानकारी के कारण असफल रहे। 1954 में मरे ने एक जुड़वा भाई का गुर्दा दूसरे भाई के लगाया तथा इस प्रकार मस्तिष्क को छोड़कर सभी अंगों का प्रतिरोपण किया गया। सर्वप्रथम सफल ऐतिहासिक प्रतिरोपण का श्रेय 1967 में क्रिस्चियन बेनार्ड को प्राप्त है। उन्होंने एक मनुष्य के शरीर में दूसरे मनुष्य का हृदय प्रतिरोपित किया। इन सफलताओं के पीछे सर पीटर मेडवार तथा मेकफार्टेन नामक वैज्ञानिकों का हाथ था जिन्हें 1960 ई० में नोवेल पुस्कार प्राप्त हो चुका है।

ये प्रतिरोपण तीन प्रकार से सम्भव है :—

(क) एक ही मनुष्य के अंग निकाल कर उसी मनुष्य में फिर से प्रतिरोपित कर देना जैसे कि त्वचा।

(ख) एक ही जाति के जीवों के अंगों को निकाल कर उसी जाति के दूसरे जीव में प्रतिरोपित करना। जैसे एक मनुष्य हृदय दूसरे मनुष्य के हृदय के स्थान पर लगा दिया जाय।

(ग) विभिन्न प्रकार की जातियों के अंग एक दूसरे के अंग के स्थान पर प्रतिरोपित हों जैसे कि सुअर के अंग मनुष्य के अंगों के स्थान पर प्रयुक्त किये जायें।

उपर्युक्त जीवों के प्रतिरोपणों में से प्रथम प्रतिरोपण में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है किन्तु शेष दो पर अभी भी शोध कार्य तथा प्रयोग चल रहे हैं। शेष दोनों की असफलता का कारण एक विशेष प्रकार की घटना है जिसे "बहिष्कृत करने की घटना" के नाम से पुकारा जाता है। शरीर अपने ही ऊतकों को पहचानने की विलक्षण क्षमता रखता है। यदि शरीर में किसी प्रकार नया ऊतक आ जाय तो वह उसे बहिष्कृत कर देगा। यह भी देखा गया है कि सगे भाई-बहिनों आदि के अंग एक दूसरे में नहीं लग पाते। इसका कारण ऊतकों की असमानता है। एक बार शरीर द्वारा बहिष्कृत हो जाने पर यदि फिर वे ही अंग लगाये जायें तो शरीर उन्हें फिर तुरन्त बहिष्कृत कर देगा।

इस जटिल घटना को इस प्रकार समझा जा सकता है—जो अंग या भाग प्रतिरोपित किये जाते हैं उनमें बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ पाये जाते है जिन्हें एन्टिजेन कहते हैं। इस प्रकार जब अंग लगाये जाते हैं तो ये एन्टिजेन वाहिका द्वारा चक्कर लगा कर उसी स्थान पर पहुँच जाते है जहाँ प्रतिरोपण हुआ होता है और यदि अंगों के ऊतकों में समानता न हुई तो ये प्रतिपदार्थ उत्पन्न करते है जिन्हें प्रतिरक्षी भी कहते हैं। प्रतिरक्षी पदार्थ भी वाहिका द्वारा चक्कर काट कर उसी प्रतिरोपित स्थान पर पहुँच जाते हैं और प्रतिरोपित भाग को नष्ट कर देते हैं। प्रतिरोपण में सफलता प्राप्त करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि बहिष्कृत करने की घटना को कम बनाया जाय अथवा बिलकुल न होने दिया जाय। यदि निम्न बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय तो आजकल यह सम्भव है।

(1) एन्टिजेन की मात्रा कम की जाय।

(2) प्रतिरक्षी पदार्थों को जो पहिले ही बन चुके हों, प्रतिरोपित स्थान पर आने से रोका जाय।

(3) प्रतिरक्षी पदार्थों को बनने से रोका जाय।

कुछ भाग ऐसे भी होते है जिनमें एन्टिजेन की मात्रा बहुत ही कम होती है, जैसे कि हृदय उपास्थि आदि और इस कारण बहिष्कृत ये होने के पश्चात् भी नष्ट नहीं होते हैं। मेडावेर तथा बरनेट वैज्ञानिकों के शोधकार्यों के आधार पर यह तथ्य सामने आया है कि

ऐन्टिजेन को बहिष्कृत करने की शक्ति बच्चों के जन्मने के पश्चात शनैः शनैः बढ़ती है वह जन्मजात नहीं होती। उन्होंने यह भी देखा कि यदि किसी मादा जानवर को बच्चे जनने के पूर्व एन्टिजेन दे दिया जाय तो बच्चे के शरीर में यह शक्ति स्वयं पैदा हो जावेगी। यदि किसी को अंग की आवश्यकता हो तो और यदि उसके एन्टिजेन इस पशु से मिलते हों तो यह पशु उस मनुष्य को अपने अंग ग्रहण करने की शक्ति देता रहेगा अर्थात उस जानवर के अंग उस मनुष्य में लगते रहेंगे किन्तु जानवर का जीवन काल उस मनुष्य के जीवन काल से बड़ा होना चाहिए।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त निम्नांकित प्रायोगिक कठिनाइयाँ भी प्रतिरोपण करते समय सामने आई हैं।

(1) अंगों का प्रचुरता में न पाया जाना। कुछ अंग जीवित मनुष्य से सरलतापूर्वक नहीं प्राप्त किये जा सकते।

(2) अंगों को दान करने वाले को स्वस्थ होना आवश्यक है।

(3) ऊतकों में समानता होनी चाहिए।

(4) अंग-दाता को इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि उसका अंग शायद दूसरे के न लग सके और बेकार हो जाय और इस प्रकार उसकी यह सेवा वृथा हो जाय।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखकर यह समझ में आता है कि ब्लड बैंक को तरह अंगों के बैंक की स्थापना होनी चाहिए। इस बैंक के दान दाता वे हों जो स्वस्थ हों तथा जिनकी मृत्यु किन्हीं दुर्घटनाओं के कारण हुई हो। अगों की विशेषताओं का ध्यान रखते हुए उन्हें विशेष रूप से अलग-अलग रखा जाये जिससे आवश्यकता पड़ने पर सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकें।

अंगों के प्रतिरोपण विज्ञान के मार्ग में कुछ कानूनी समस्याएँ भी हैं। शल्यक अपनी ख्याति के लिये अच्छे तथा स्वस्थ दाता से अंग प्राप्त न करें। न वे धनवान रोगियों के लिये गुण्डों की सहायता से हत्या करवा कर उनके अंग प्राप्त करें और यश लूटें। डा० क्रिश्चियन बेनार्ड के ऊपर फिलिप्स बेलवर्ग की पत्नी का यही आरोप अभी भी है। दस हजार रोगियों के विकृत अंगों के लिये दस हजार स्वस्थ व्यक्तियों का मरना आवश्यक है। इन्हीं सब कारणों से अब जरूरत है कि अंग कृत्रिम हों। अभी यह प्रयोगशाला तक सीमित है और कृत्रिम पुतली हड्डियाँ, ग्रंथियाँ, धमनियाँ आदि सफलतापूर्वक काम में लाई गई हैं।

मनुष्य की 'पारस और अमृत' की दीर्घकालीन खोज अभी भी अधूरी है। उसकी जिज्ञासा भी कभी शान्त न होगी किन्तु इन प्रयोगों से मनुष्य का जीवन काल बढ़ेगा। मनुष्य चाँद आदि पर पहुँच रहा है किन्तु अपने ही शरीर के अन्दर की बातों को वह नहीं जान पा रहा है। निकट भविष्य में उसे आशातीत सफलता मिल सकती है और उसके अमरत्व का सपना साकार हो सकता है। हाँ, हमारे बीच असंख्य अश्वनी कुमार चाहिए।

डॉ० अरुण कुमार सक्सेना
15, कटरा रोड, इलाहाबाद
तथा
डॉ० एन० एल० थेहलयानी
464-ए, नवाब यूसुफ रोड, इलाहाबाद

कीटनाशी रसायनों के दुष्प्रभाव तथा उनसे बचाव

डा० आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव तथा श्री शिव शंकर लाल कटियार

हरित क्रांति की सफलता से देश को वर्तमान निर्णायक घड़ी में अभूतपूर्व मुक्ति मिली है। देश इस अप्रत्याशित सफलता से केवल आत्मनिर्भर ही नहीं हुआ है बल्कि कृषि एवं अन्य उद्योगों में शोध एवं अनुसंधान कार्य करने की प्रेरणा और सर्वसाधारण के ध्यान आकर्षण में गति मिली है। भारत एक कृषि प्रधान देश है अतएव यहाँ कृषि का महत्व सर्वोपरि है। उन्नत कृषि तकनीकी के दो आधारभूत स्तम्भ हैं, प्रथम फसल उत्पादन एवं द्वितीय फसल सुरक्षा। फसल उत्पादन विधि मुख्यतया उन्नत बीज, भरपूर खाद तथा प्रचुर सिंचाई आदि क्रियाओं से प्रति पोधा उपज वृद्धि करता है जब कि फसल सुरक्षा संरक्षण प्रदान कर पौधे को कीट रोग, एवं अन्य व्याधियों से मुक्त रखती है। चूँकि सुरक्षात्मक संरक्षण से ही पौधा स्वस्थ रहकर उर्वरक व सिंचाई आदि क्रियाओं का लाभ ले सकता है, अस्तु फसल सुरक्षा का स्थान प्रमुख है। उन्नतिशील जातियों के प्रचलन, उर्वरकों के प्रयोग, बहुफसली चक्र की लोकप्रियता, सिंचाई साधनों की प्रचुरता आदि कारणों से फसल पहले की आपेक्षा कीट व रोग व्याधियों से अधिक संक्रमित होती है। इस प्रकार वर्तमान समय में भरपूर उत्पादन हेतु कीट एवं रोग नियंत्रण कार्यों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। खड़ी फसलों, भण्डारों, राजकीय संग्रहालयों आदि में होने वाली व्यापक क्षति से फसल सुरक्षा का स्थान और भी ऊँचा हो गया है। परिणाम स्वरूप कीट व्याधियों के संक्रमण को रोकने या नष्ट करने में कीटनाशी रसायनों का प्रचुर प्रयोग अनिवार्य हो चुका है। जनसाधारण की जागरुकता के साथ-साथ इन रसायनों के प्रयोग में निरन्तर वृद्धि भी हो रही है। वर्ष 1934-65 में इन रसायनों की खपत 12069 (टेकनिकल) टन थी, जो बढ़कर 1969-70 में 20650 (टेकनिकल) टन हो गयी तथा वर्ष 1970-71 में 24820 टन (टेकनिकल) जिसकी कीमत 35 करोड़ रुपये लगभग है, का प्रयोग किया गया है। प्राप्त लाभों के कारण, अगले वर्षों में और भी अधिक उत्तरोत्तर उपयोग बढ़ाने की पूर्ण संभाबना है। 1973-74 तक 46 हजार टन (टेकनिकल) जीव नाशक रसायनों के प्रयोग होने की आशा है, यद्यपि दूसरे देशों की अपेक्षा हमारे देश में प्रति हेक्टेयर खपत बहुत कम है। भारत में सिर्फ 180 ग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग की जा रही है, जब कि अमेरिका में 1490 ग्राम, यूरोप में 1870 ग्राम व जापान में 10790 ग्राम प्रति हेक्टेयर खपत होती है। इतनी कम मात्रा में प्रयोग के बाद भी हमारे देश में कीटनाशियों के अनियमित प्रयोगों से स्वास्थ्य संकट की समस्या उठ खड़ी हुयी है। वर्ष 1958 में हमारे देश में पैराथियान कीटनाशी की विषाक्तता से 100 व्यक्तियों की मृत्यु हुयी थी जबकि इतनी संख्या विश्व के सभी देशों को मिलाकर भी नहीं थी। इस प्रकार मानव शरीर में विभिन्न कीटनाशियों की विद्यमान मात्रा भी अन्य देशों की तुलना में बहुत है, जबकि इन रसायनों का प्रयोग आपेक्षाकृत हमारे यहाँ बहुत कम है।

कीटनाशी रसायन तीव्र एवं घातक विष हैं व किंचित असावधानी से स्वास्थ्य संकट उत्पन्न कर सकते हैं। वैज्ञानिक हेज के मतानुसार ठोस एवं तरल पदार्थों से

होने वाली मृत्यु दुर्घटनाओं में 10 प्रतिशत मृत्यु जीव नाशक रसायनों से होती हैं। कीटनाशियों के सीधे सम्पर्क में आने अथवा प्रयोग के समय असावधानी के कारण होने वाली दुर्घटनायें तो महत्वपूर्ण हैं ही, किन्तु इनसे भी अधिक पौधों, खाद्य पदार्थों, भण्डारित अनाजों, आवास गृहों, पशुओं आदि पर प्रयुक्त रसायनों के अवशेष से होने वाले विषैले प्रभाव की समस्या है। शनैः शनैः एकत्रीकरण से मानव शरीर में हानि रहित सीमा से अधिक अवशेष के संग्रह होने पर अनेकानेक स्वास्थ्य जटिलताओं की उत्पत्ति संभावित है।

लगभग 650 जीव नाशक रसायन यौगिक उपलब्ध हैं जिनमें से प्रायः 200 यौगिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान प्रयुक्त कीटनाशी रसायन प्रमुखतः दो समुदाय के हैं। प्रथम आरगैनो क्लोरीन यौगिक एवं द्वितीय आरगैनो फास्फेट यौगिक। आरगैनो क्लोरीन यौगिक द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सर्वाधिक उपयोग में आने वाले प्रथम संश्लेषित कीटनाशी रसायन है। यह कीटनाशी जल में अघुलनशील व वसा में घुलनशील होते हैं। अपघटन हुए बिना दीर्घकाल तक मूल रूप में बने रहते हैं। इस समुदाय के कीटनाशियों में डी० डी० टी०, बी० एच० सी एन्ड्रिन, एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, लिनडेन व क्लोरडेन आदि प्रमुख व सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली यौगिक हैं। इनमें से डी० डी० टी का स्थान सर्वोपरि है। डी० डी० टी० के अविष्कारक डा० मूलर को 1941 में नोबुल पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है। डी० डी० टी० के अन्वेषण के समय यह आशा की गयी थी कि इस रसायन मात्र से विश्व की खाद्य एवं स्वास्थ्य समस्याओं से सम्बन्धित कीट व्याधियों के उन्मूलन में पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकेगी, परिणामस्वरूप डी डी० टी० को फसल, वृक्ष, भण्डार, पशु और आवास आदि स्थानों में विभिन्न कीटों के विरुद्ध बहुतायत से प्रयोग किया गया। कीट नियंत्रण में सफलता तो प्राप्त हुई किन्तु डी० डी० टी० की विषाक्तता अवशेष स्वास्थ्य के लिये एक समस्या भी ले आयी। डी० डी० टी० का विषहीन पदार्थों में शीघ्रता से अपघटन नहीं होता बल्कि जहां इसका प्रयोग किया जाता है वहाँ दीर्घकाल तक यह ठोस अणु के रूप में विद्यमान रहता है। वसा में विलेय होने के कारण यह जन्तुओं की वसा में संग्रहित हो जाता है जहाँ से यह हमारे भोजन में पहुँच सकता है। डी० डी० टी० उपचारित चारा खिलाने पर यह कीटनाशी पशुओं के वसा में एकत्र होता रहता है व पुनः दूध की चिकनाई के साथ हमारे शरीर में पहुँच जाता है। डी डी० टी० के क्षय की गति बहुत मंद होती है व शरीर से बाहर निकलने के लिये इसे पानी में विलेय व्युत्पन्नों में परिवर्तित करना पड़ता है, जो एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।

कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया प्रदेश में डी० डी० टी० दीर्घकाल से प्रयुक्त की जा रही है। सर्वेक्षण करने पर यह देखा गया है कि दूध पिलाने वाली माताओं में से 50 प्रतिशत के दूध में 20 पी० पी० एम० डी० डी० टी० की मात्रा पायी गयी और 4 प्रतिशत में यह 100 पी० पी० एम० से भी अधिक है। आल्वर्टा (कनाडा में 99·55 प्रतिशत माताओं के दूध में औसतन 77 पी० पी० एम, डी० डी० टी० व अन्य नाशक जीवनाशी पाये गये हैं। मानव शरीर में विद्यमान डी० डी० टी० की मात्रा के संबंध में विश्व के विभिन्न देशों में किये गये सर्वेक्षण के आंकड़े तालिका 1 में प्रदर्शित है।

तालिका 1

मानव शरीर में डी० डी० टी० की मात्रा
(आई० सी० ए० आर० 1967)

देश	वर्ष	औसत मात्रा (पी० पी० एम)
1—अमेरिका	1954-55	11·7
2—अमेरिका	1961-62	10·7
3—अमेरिका	1963	11·1
4—कनाडा	1958-60	5·3
5—हंगरी	1960	12·3
6—इंगलैन्ड	1963-64	3·3
7—भारत (दिल्ली)	1964	28·0-31·0
8—भारत (अन्य)	1964	13·3

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि भारतीय व्यक्तियों में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक डी० डी० टी० की मात्रा पायी गयी है। प्रोफेसर ठेकर के अनुसार भारतीय व्यक्तियों के शरीर में औसतन अधिक डी० डी० टी० की मात्रा पाये जाने का प्रमुख कारण इस यौगिक का अवांछनीय प्रयोग है। शाक भाजी व अन्य खाद्य पदार्थ डी० डी० टी० के अनाधिकृत प्रयोग के कारण दूषित रूप में खाने के लिये मिलते हैं जिनसे हमारे शरीर में डी० डी० टी० की मात्रा संग्रहित होती रहती है। बाजार में बिकने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों के संग्रहित न्यादर्शों के परीक्षणों के परिणाम तालिका—2 में प्रदर्शित हैं।

तालिका—2

बाजार से एकत्रित न्यादर्शों में कीटनाशी अवशेष (आई० सी० ए० आर० 1967)

भोज्य पदार्थ	न्यादर्श संख्या	डी० डी० टी० की अवशेष मात्रा (पी० पी० एम०)
1—तिलहन	18	1.10-4.11
2—तेल	14	5.25-5.75
3—संग्रहित आलू	8	1.12-8.90
4—दालें	12	5.00-32
5—चावल	4	9 -16
6—आटा	3	12 -15
7—गेहूँ	120	8 -33

इनके अतिरिक्त दूध, मांस व अंडों के न्यादर्शों में भी डी० डी० टी० अवशेष पाया गया है। मानव शरीर में डी० डी० टी० के अवशेष की सह्य सीमा 0.25 मि० ग्रा० या 0.002 मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम शारीरिक भार पर निर्धारित की गई है जबकि डा० त्रिपाठी के मतानुसार भारतीय मनुष्यों के शरीर में डी० डी० टी० की औसतन मात्रा 0.2664 मि० ग्रा० पायी गयी है, जो कि निर्धारित सह्य सीमा से अधिक है। औद्योगिक विश्व विज्ञान अनुसंधान केन्द्र लखनऊ में किये गये शोध कार्यों से विदित हुआ है कि आरगैनो क्लोरीन यौगिकों के अधिक मात्रा में एकत्र होने से शरीर में रक्त अल्पता रोग होने की आशंका रहती है। डी० डी० टी० से त्वचा की कोशिकाओं में परिवर्तन हो जाता है तथा बाल बहुत तेजी से झड़ने लगते हैं। यकृत आदि अन्य अंगों को भी क्षति पहुँचने की संभावना रहती है। परीक्षणों से यह भी ज्ञात हुआ है कि पक्षियों एवं चूहों के लिंग हारमोनों पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। यह यौगिक अपघटित हुए बिना लम्बे समय तक जल एवं भूमि में भी सक्रिय रूप में विद्यमान बने रहते हैं। पन्त नगर क्षेत्र में किये गये परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि वहाँ की मृदा में 15, 4 तथा 0.65 पी० पी० एम० डी० डी० टी० की मात्रा अवशेष रूप में विद्यमान है। जल में रहने वाली मछलियाँ इन यौगिकों को अपने शरीर की वसा में संग्रहित कर लेती हैं जो बाद में उसको खाने वाले अन्य प्राणियों में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार यह यौगिक स्वस्थ्य के लिए चिन्ता के विषय हैं। इस समुदाय के कीटनाशियों की विषाक्तता अवशेष का दीर्घ समय तक बने रहने के कारण इंगलैण्ड में 1962 से दी एल्ड्रिन व डाईएल्ड्रिन के बीजोपचार पर रोक लग गयी है। जबकि स्वेडन में इसके प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। अमेरिका में इन यौगिकों के अवशेष की सीमा निश्चित कर दी गयी है इस सीमा से अधिक होने पर खाद्य पदार्थ उपयोग के अयोग्य घोषित कर दिये जाते हैं, अस्तु हमें भी इस दिशा में सक्रिय कदम उठाना होगा।

आरगैनो फास्फैटिक यौगिक अपेक्षाकृत कम समय तक स्थाई रहते हैं और शीघ्रता से विषहीन व्युत्पन्नों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस कारण इन योगिकों का भूमि, जल अथवा प्राणियों के शरीर में दीर्घकाल तक संचय नहीं पाया गया है। यह यौगिक क्लोरीनैटिड समुदाय की तुलना में तीव्र व प्रभावकारी विष होते हैं और इसी कारण सीधे सम्पर्क में आने पर अधिक प्राणघातक सिद्ध होते हैं, अतः इनके प्रयोग के समय विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। रिक्त डिब्बे एवं बोतलों को नष्ट करना आवश्यक होता है, ताकि

तालिका–3

(डा० रतनलाल के सौजन्य से)

कीटनाशी उपचारित फसल में विषाक्तता अवशेष की सह्य सीमा हेतु आवश्यक मध्यान्तर समय

कीटनाशी	ऋतु	अवशेष निर्धारण हेतु फसल और भाग	निर्धारित सह्य सीमा (पी० पी० एम०)	उपचारण के उपरांत अवशेष सह्य सीमा तक पहुँचने में आवश्यक दिन
लिन्डेन घोल	शीत	सरसों की पत्तियाँ	10	2
बी० एच० सी० (घुलनशील चूर्ण)	,,	,,	5	13
मालाथियान घोल	,,	टमाटर के फल व लटर की फलियाँ	8	0
		सरसों की पत्तियाँ	8	4
		सरसों की हरी फलियाँ	8	3
		गाँठ व फूल गोभी	8	1 से 4
मालाथियान चूर्ण	,,	गाँठ, पात व फूल गोभी के पत्ते	8	3-5
मालाथियान घोल	,,	,,	8	6-9
पैराथियान घोल	,,	टमाटर के फल	1	2
	,,	सरसों की पत्तियाँ	1	28
कार्बेरिल	ग्रीष्म	मक्का की पत्तियाँ	10	21
(घुलनशील चूर्ण)	बरसात	,, ,,	10	15
	ग्रीष्म	बैगन के फल	10	15
	बसन्त	,, ,,	10	20
	शीत	,, ,,	10	25
डाइमेथाएट घोल	शीत	फूलगोभी के फल व पत्तियाँ	2	10-12
	,,	पात गोभी के फल व पत्तियाँ	2	9-14
	,,	सरसों की पत्तियाँ	2	7
	,,	सरसों की फलियाँ	2	5-10
फास्फेमिडान घोल	,,	पातगोभी फल	0·5	10-11
	,,	सरसों की फलियाँ	0·5	9-11
	ग्रीष्म	लोबिया की फलियाँ	0·5	10-12
	,,	भिन्डी की फलियाँ	0·5	9-10

असावधानी के कारण क्षति न पहुँचा सकें। इन यौगिकों की प्रक्रिया का महत्व रीढ़धारी जन्तुओं के एस्टिलकोलीनएस्टरेज इन्जाइम के नियंत्रित होने के कारण है। इस इंजाइम के अभाव में नाड़ी संस्थान प्रभावित होता है और जीव की जैविक क्रियायें बन्द हो जाती हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कीटनाशी रसायनों का प्रचुरतम प्रयोग मानव स्वास्थ्य के लिये अहितकर है। फसल सुरक्षा में इन कीटनाशियों का महत्वपूर्ण स्थान है और प्राप्त लाभों को ध्यान में रखते हुए इनके प्रयोग को हतोत्साहित करना असामाजिक कार्य होगा। वर्तमान समय में कीट नियंत्रण में सबसे सरल-सस्ता प्रभावकारी व उपलब्ध ढंग कीटनाशी रसायनों का प्रयोग ही है। दूसरे देशों की तुलना में भारत को अभी और अधिक जीव नाशक रसायनों की खपत में वृद्धि करनी है व कृषकों को इस पर अधिक खर्च करने हेतु प्रोत्साहित करना है। भारत में केवल 2·15 रुपया प्रति हैक्टेयर इन रसायनों के ऊपर खर्च होता है, जबकि अमेरिका में 35·00 रुपया व जापान में 110,00 रुपया प्रति हैक्टेयर खर्च किया जाता है। अतएव कीटनाशियों के प्रयोग में कटौती किये बिना इन्हें अहानिकर ढंग से प्रयोग करने की विधि की आवश्यकता है। हानि एवम् लाभ दोनों पहलुओं के समन्वय से समस्या का निराकरण ही एकमात्र हल है।

इन कीटनाशियों के उपयोग का उत्तरदायित्व शिक्षित, अनुभवी एवम् कुशल व्यक्तियों के ऊपर रक्खा जाय, जिन्हें प्रयोग के समय सभी संभव सावधानियों का सतर्कतापूर्वक पालन करने का प्रशिक्षण प्राप्त हो। कृषकों को कीटनाशियों के लाभ के अतिरिक्त होने वाले घातक प्रभावों से भी अवगत कराया जाय। कीट विशेष तथा फसल विशेष के लिये उचित एवम् संस्तुत कीटनाशी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। घरेलू प्रयोग पर विशेष सावधानी रक्खी जाय। कीटनाशियों के छिड़काव तथा उपज प्राप्त होने के मध्य विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित "मध्यांतर समय" का कठोरता से पालन होना चाहिए जिससे हानिकारक यौगिक अपघटन के द्वारा हानिरहित या सह्य सीमा के नीचे चले जावें। प्रयुक्त डिब्बे, बोतलों आदि को खाली होते ही नष्ट कर देना चाहिए। कुछ प्रमुख कीटनाशियों के लिए निर्धारित "मध्यांतर समय" तालिका—3 में प्रदर्शित है।

कीटनाशी अवशेष सह्य सीमा के लिये आवश्यक समय के निर्धारण के संबंध में हुआ शोध-कार्य यद्यपि नगण्य है तथापि विशेषज्ञों के जागरुक होने से निकट भविष्य में विस्तृत जानकारी प्राप्त होने की आशा है।

फसल की उपचारित कीटनाशियों से होने वाले घातक प्रभाव की अपेक्षा भण्डार में संग्रहित अनाजों की सुरक्षा हेतु प्रयुक्त कीटनाशियों की अवशेष विषाक्तता भी अति महत्वपूर्ण है। भारतीय कृषक स्वास्थ्य को होने वाले दुष्परिणामों की चिन्ता किये बिना सुगमता से उपलब्ध कीटनाशियों का प्रयोग प्रचुरता से करते हैं। अतएव इस संबंध में किसी हानिरहित कीटनाशी के प्रयोग करने की अनुशंसा विशेषज्ञों द्वारा तुरन्त होनी चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कीटनाशियों के प्रयोग में समुचित एवम् आवश्यक सावधानी व सतर्कता अपनाकर संभावित दुष्प्रभाव से मुक्त रहकर भी खाद्य उत्पादन में भरपूर वृद्धि की जा सकती है जो कि वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ० आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव तथा
श्री शिवशंकर लाल कटियार
कीट-विज्ञान विभाग
उत्तर प्रदेश कृषि विज्ञान संस्थान, कानपुर

सापेक्षता

(बीसवीं शताब्दी की एक महान क्रांति, क्रांतिकारी—25 वर्षीय युवक आइन्स्टीन)

पारसमल अग्रवाल

वैज्ञानिक शिरोमणि अलबर्ट आइन्स्टीन ने सन् 1905 में भौतिक जगत में व्याप्त अशान्ति को जो कि इस कारण से उत्पन्न हुई थी कि प्रायोगिक परिणामों का सैद्धान्तिक परिणामों से समझौता नहीं होता था, निम्न पंक्तियों का उपयोग कर दूर कर दिया।

(1) काल्पनिक ईथर की जैसी ऐसी कोई वस्तु दुनिया में नहीं है जिससे तुलना कर किसी भी वस्तु का (जो कि समान गति से गतिमान हो) वास्तविक वेग ज्ञात किया जा सके।

(2) प्रकाश का वेग निर्वात में व्यक्ति 'अ' की दृष्टि में भी वही है जो कि 'ब' की दृष्टि में चाहे 'ब' 'अ' के सापेक्ष किसी भी गति से गतिमानहो।

विश्व प्रसिद्ध आइन्स्टीन का सापेक्षता का सिद्धान्त इन्हीं दो पंक्तियों पर आधारित है।

थोड़ा सा सोचने पर ही साधारण से साधारण व्यक्ति भी दूसरी बात को बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देखेगा। यदि आप ऐसा नहीं देख रहे हैं तो निम्न रूप से सोचिये।

'अ' और 'ब' दो व्यक्ति हैं। 'ब' पूर्व दिशा में 50 कि० मी० प्रति घन्टे के वेग से जा रहा है व 'अ' पृथ्वी पर स्थिर है। अब यदि एक रेलगाड़ी पूर्व दिशा की तरफ ही 50 कि० मी० प्रति घण्टे के वेग से जा रही हो तो 'ब' की दृष्टि में रेलगाड़ी का वेग शून्य होगा जबकि 'अ' की दृष्टि में 50 कि० मी० प्रति घन्टा।

अब आप उक्त उदाहरण को आइन्स्टीन की दूसरी पंक्ति को समझने के लिये यदि काम में लेंगे तो निश्चित ही यह कहेंगे कि यह कैसे सम्भव है कि 'अ' और 'ब' दोनों के लिये प्रकाश का वेग एक ही रहे जबकि रेलगाड़ी का वेग भिन्न है। (आप ऐसा सोचकर न टाल दें कि प्रकाश का वेग बहुत ज्यादा है अतः 'अ' और 'ब' के बीच यदि 50-60 कि० मी० प्रति घण्टे का वेग है तो कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ेगा। यदि आप ऐसा सोचते हैं तो यह अवश्य जान लीजिये कि आइन्स्टीन के अनुसार 'अ' और 'ब' के बीच चाहे कितना भी वेग क्यों न हो प्रकाश का वेग दोनों के लिये समान होगा।

इस प्रकार आप इस बात को असम्भव मानते हैं परन्तु आइन्स्टीन 'अ' और 'ब' की घड़ियों की चाल में व लम्बाई के पैमाने में इस तरह की हेरा-फेरी कर देते हैं कि किसी भी तरह से दोनों की दृष्टि में प्रकाश का वेग समान रहे। घड़ियों की चाल में व लम्बाई के पैमानों में हेरा-फेरी पुनः आपको आश्चर्यकारी व असम्भव लगेगी परन्तु आपको चाहे कुछ भी लगे आइन्स्टीन महोदय ने तो इन दो असम्भवों के मेल से भौतिक विज्ञान जगत् में व्याप्त अशान्ति को दूर कर दिया, केवल इतना ही नहीं उनके इस सिद्धान्त ने भौतिक विज्ञान में क्रान्ति मचा दी। क्रान्ति भी कोई छोटी किस्म की नहीं परन्तु ऐसी जिसकी एक लहर (अणु शक्ति) ही ऐसी थी जिसका दुरुपयोग हिरोशिमा व नागासाकी को नष्ट कर बैठा (भौतिक विज्ञान का या आइन्स्टीन का इसमें कोई दोष नहीं)।

सापेक्षता के सिद्धान्त का भौतिक विज्ञान जगत के हर प्रदेश में महत्व है। सूक्ष्मतिसूक्ष्म कण से ब्रह्माण्ड पर्यन्त इस सिद्धान्त की पहुँच है।

कुछ विचित्र किन्तु सत्य परिणाम जो कि इस सिद्धान्त से प्राप्त होते हैं, निम्नानुसार हैं।

(1) लम्बाई व दूरी की सापेक्षता :—इसको समझने के लिये कल्पना कीजिये दो व्यक्तियों की जिनके हाथ में मीटर पैमाने हैं। आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्तानुसार पहले व्यक्ति के सापेक्ष दूसरा व्यक्ति पैमाने की लम्बाई की दिशा में यदि किसी वेग से चलने लगे तो दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में पहले व्यक्ति का पैमाना छोटा व पहले व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का पैमाने छोटा लगेगा, चाहे वे दोनों व्यक्ति कितने ही नजदीक क्यों न हों। इस प्रकार का छोटा होना दूरी के कारण किसी वस्तु के छोटे प्रतीत होने से पूर्णतः भिन्न है। दूरी के कारण छोटे प्रतीत होने के अन्तर्गत वस्तु की आकृति नहीं बदलती। अर्थात् यदि वस्तु गोलाकार है तो वह गोलाकार ही प्रतीत होगी परन्तु आपेक्षिक वेग के कारण वस्तु की आकृति में भी परिवर्तन हो जाता है। इस सिद्धान्तानुसार एक वस्तु जो कि विश्रामावस्था में गोला लगे तो जब वह किसी वेग से गतिमान होगी तब वह अण्डाकार प्रतीत होगी) पैमाना कितना छोटा हो जायेगा यह दोनों के आपेक्षिक वेग पर निर्भर करेगा। यदि दोनों के बीच में आपेक्षित वेग $2 \cdot 99 \times 10^{17}$ से० मी० प्रति सेकण्ड है तो पहले को दूसरे का पैमाना 5 से० मी० के करीब व इतना ही लम्बा दूसरे को पहले का लगेगा।

इस तरह के परिवर्तन के कारण अब विज्ञान लोक में किसी की लम्बाई या दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को व्यक्त करते समय यह बताना जरूरी हो जाता है कि किसी व्यक्ति के सापेक्ष उक्त लम्बाई या दूरी है। हम केवल इतना कह दें कि हिमालय पर्वत की ऊँचाई समुद्र तल से 29000 फीट है तो यह पर्याप्त न होगा। क्योंकि सभी व्यक्तियों के लिये इस सिद्धान्त के अनुसार यह ऊँचाई 29000 फीट नहीं है। परन्तु इस नये सिद्धान्त के अनुसार यह ऊँचाई 26000 फीट उस व्यक्ति के लिये है जो पर्वत के सापेक्ष स्थिर हो इसके विपरित जो व्यक्ति पर्वत की अपेक्षा उर्ध्वाधार दिशा में ऊपर की ओर या नीचे की ओर कोई वेग रखता हो उसके लिये पर्वत की ऊँचाई 29000 फीट से कम होगी। यदि वेग $2 \cdot 99 \times 10^{10}$ से० मी० प्रति सेकण्ड हो तो यह ऊँचाई। 1450 फीट के बराबर होगी। यह तथ्य सभी तरह की दूरियों व लम्बाई के लिये सत्य है।

साधारण वेग की अवस्था में लम्बाई में परिवर्तन नगण्य होगा। कितने वेग के होने से क्या लम्बाई यह निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

$$Lv = Lo\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}$$

इस सूत्र में

Lo दो बिन्दुओं के बीच की दूरी उस व्यक्ति की अपेक्षा है जो बिन्दुओं के सापेक्ष स्थिर हों।

Lv उन्हीं दो बिन्दुओं के बीच की दूरी उस व्यक्ति के सापेक्ष है जिसका वेग बिन्दुओं के सापेक्ष लम्बाई की दिशा में (दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली सरल रेखा के अनुदिशा) v से० मी० प्रति सेकण्ड है।

C = प्रकाश का निर्वात में वेग $= 3 \times 10^{10}$ से० मी०/सेकण्ड

इस सूत्र में हमें यह भी मालूम पड़ता है कि जब $v = c$ हो जायेगा तब Lv का मान शून्य होगा। उक्त सत्य से प्रभावित होकर एक कवि महोदय लिखते हैं कि—

There was a young man named Fisk
Whose fencing was exceedingly brisk
So fast was his action
The Lorentz contraction reduced his rapier to adisc

वेग के कारण लम्बाई में उक्तवर्णित कमी होने को Lorentz Contraction कहा जाता है।

(2) समय की सापेक्षता :—(घड़ी का व अन्य क्रियाओं का सुस्त होना :—इसको समझने के लिये

सरल सा काल्पनिक उदाहरण लीजिये दो जुड़वां भाइयों का जो कि दोनों पृथ्वी पर साथ-साथ बड़े हुए हैं 40 वर्ष तक/दोनों इस अवस्था तक हर दृष्टि में हुबहू एक जैसे लगते हैं। अब इस अवस्था में एक भाई राकेट से किसी एक दिशा में बड़े बेग से चल पड़ता है। जब एक भाई ने राकेट से यात्रा प्रारम्भ की थी उस समय दोनों भाइयों की घड़ियाँ मिली हुई थीं। दोनों भाइयों के पास टेलीविजन सेट भी हैं। माना कि दिन के एक बजे यात्रा प्रारम्भ की थी। थोड़ी ही देर बाद जब पृथ्वी वाला भाई अपनी घड़ी में 3 बजते हुये देखता है उस समय टेलीविजन द्वारा अपने भाई की घड़ी को भी देखे तो सापेक्षता के सिद्धान्तानुसार यह 3 से कम पायेगा व जब राकेट वाला अपनी घड़ी में 3 देखेगा उस समय अपनी भाई की घड़ी में 3 से कम पायेगा।

आपको इस प्रकार की घड़ियों की विचित्र दशा देखकर आश्चर्य होना चाहिये। आप यह सोचकर आश्चर्य करना न छोड़ दें कि यह कमी केवल टेलीविजन द्वारा दृश्य पहुँचने में लगे हुए समय के कारण से ही हुई है। यदि ऐसा मानते हों तो आप ऐसी कल्पना करिये कि उनके पास इस तरह के विशेष ढंग के टेली-विजन सेट है जिनको दृश्य पहुँचाने में समय नहीं लगता (वास्तव में ऐसे टेलीविजन बनाये नहीं जा सकते। [टेलीवीजन द्वारा दृश्य एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड के वेग से पहुँचते हैं।) ऐसे टेलीविजन यदि हो तो भी समय में अन्तर मालूम पड़ेगा। यह अन्तर राकेट के वेग पर निर्भर करेगा (देशान्तर द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में समयान्तर होने से यह समयान्तर पूर्णतः भिन्न है।) इस तरह एक को दूसरे की घड़ी सुस्त प्रतीत होगी।

केवल घड़ी की नहीं अपितु एक को दूसरे की सभी क्रियाएँ सुस्त लगेंगी। उदाहरणार्थ यदि यह माना जाय कि उन भाइयों के केश समय के हिसाब से सफेद होते जा रहे हों व राकेट की उड़ान एक ही दिशा में एक ही वेग से लगातार कई वर्षों तक जारी रहती हो तो पृथ्वी वाले भाई को अपने बाल राकेट वाले भाई की तुलना में अधिक सफेद लगेंगे व राकेट वाले को उसके बाल पृथ्वी वाले की तुलना में अधिक सफेद लगेंगे।

यदि राकेट का वेग पृथ्वी की तुलना में $2{\cdot}83 \times 10^{10}$ से० मी०/सेकण्ड है तो पृथ्वी वाला भाई जब 70 वर्ष (40 वर्ष + 30 वर्ष) का होगा उस समय उसको राकेट वाला भाई टेलीविजन से देखने पर 50 वर्ष (40 वर्ष + 10 वर्ष) का ही लगेगा। इसके विपरीत राकेट वाला भाई जब राकेट में अपने आपको 70 वर्ष का पायेगा तब उसको पृथ्वी वाले भाई का चेहरा 50 वर्ष का ही लगेगा। इस प्रकार एक को दूसरा छोटा व दूसरे को पहला छोटा लगने लगेगा।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि एक घटना को घटने में लगने वाला समय भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न होगा। यह भिन्नता उसके बीच आपेक्षिक वेग की मात्रा पर निर्भर करेगी। (मानो वैज्ञानिक दशा के कारण समय की भिन्नता प्रतीत होना उक्त वर्णित भिन्नता से पूर्णतः भिन्न है।)

साधारण वेग की अवस्था में घड़ियों में व अन्य सभी क्रियाओं में लगने वाले समय में अन्तर नगण्य होगा। वेग के कारण समय में जो परिवर्तन होता है वह निम्न सूत्र द्वारा मालूम किया जा सकता है।

$$tv = \frac{to}{\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}}$$

इस सूत्र में प्रयुक्त अक्षरों का अर्थ निम्नानुसार है। to→ किसी कार्य के होने में लगने वाला समय उस व्यक्ति की घड़ी की अनुसार जो उस कार्य स्रोत की अपेक्षा स्थिर हो।

tv उसी कार्य के उसी स्थान पर होने में लगने वाला समय एक ऐसे व्यक्ति की हाथ की घड़ी के अनुसार जो कि कार्य स्रोत की अपेक्षा वेग v से०मी० प्रति सेकण्ड से गतिमान हो।

c = प्रकाश का निर्वात में वेग = 3×10^{10} से० मी०/सेकण्ड

(3) वेग के कारण संहति में वृद्धि होना व संहति का ऊर्जा में बदलना :—

अणु शक्ति से आप सभी परिचित हैं। यह सापेक्षता के विचित्र सिद्धान्तों की ही देन है। इसके अनुसार पदार्थ को ऊर्जा में व ऊर्जा को पदार्थ में बदला जा सकता है। इस ऊर्जा की मात्रा बहुत होती है। उदाहरणार्थ यदि एक ग्राम पदार्थ पूर्णतया ऊर्जा में परिणित किया जाय यो उससे उतनी ऊर्जा प्राप्त होगी जितनी कि एक मेगावाट शक्ति सामर्थ्य वाले विद्युत प्लाण्ट से ढाई लाख घण्टों तक लगातार प्राप्त होती रहे।

कितने ग्राम पदार्थ को नष्ट करने पर कितनी उर्जा प्राप्त होगी यह निम्न सूत्र द्वारा मालूम किया जा सकता है।

$$E = mc^2$$

इस सूत्र में प्रयुक्त बीजाक्षरों का अर्थ निम्नानुसार है।

E → उर्जा (अर्ग में)
m → संहति (ग्राम में)
c → 3×10^{10}

प्रिय पाठकों ये सब कोरी गप्पें नहीं हैं उपरोक्त सभी विचित्र परिणामों की प्रायोगिक जाँच हो गई हैं व ये सभी सत्य पाये गये हैं।

सर्व साधारण जनता को भी इस प्रकार के विचित्र-विचित्र परिणामों को देखकर अपने दृष्टिकोण को उदार बनाने की प्रेरणा लेनी चाहिये व साथ ही यह भी सोचकर व्यक्ति को अपने ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिये कि ज्ञान के विशाल समुद्र की एक बूँद भी कोई प्राप्त नहीं कर पाया है। महान् वैज्ञानिक न्यूटन ने स्वयं अपने अनुभव के आधार पर लिखा था। "मैं समुद्र के किनारे रहने वाला बालक हूँ। मैंने अपने साथियों की अपेक्षा यद्यपि कुछ अधिक चमकीले पत्थर प्राप्त किये हैं परन्तु ज्ञान का विशाल समुद्र मेरे सामने अछूता लहरा रहा है।"

श्री पारसमल अग्रवाल
भौतिकी विभाग
श्री मा० ला० व० राजकीय महा विद्यालय
भीलवाड़ा
(राजस्थान)

[पृष्ठ 4 का शेषांश]

भारतीयों के संबंध में लिखना पड़ा कि :—"विचार कीजिए उस पूर्ण गणितात्मक प्रतीकवाद का, गणन-पद्धति का, विचार कीजिये उनकी उन बीज और अंक-गणितात्मक प्रति-प्रक्रियाओं का, जो उतनी ही पूर्ण है जितनी कि आप की प्रक्रियाएँ आज हैं और फिर न्याय कीजिये कि क्या गंगा के तीर के निवासी वे ब्राह्मण क्या वास्तव में श्रद्धा और सन्मान के पात्र नहीं हैं? दुर्भाग्यवश कहिये कि भारतीयों की "अज्ञेय विश्लेषण" (बीजगणित) की आविष्कृतियों में से कुछ यूरोप पहुँची, लेकिन—देर से। वे वह प्रभाव न डाल सकीं जो उन्होंने दो या तीन शताब्दियों पूर्व हुँचने पर डाला होता।"

आधुनिक काल में भी भारत ने डॉ० साहा, डॉ० चन्द्रशेखर डॉ० रमन, डॉ० भाभा डॉ० गणेश प्रसाद, श्री रामानुजन्, सुश्री शकुन्तला आदि जैसे व्यक्तित्वों को जन्म दिया है जिन्होंने सत्ता, यश एवं अर्थ के पशुत्व तथा मोह से परे रह कर अपनी साधना एवं प्रतिज्ञा से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। प्राचीन भारत की उज्जवल परम्पराओं के अध्ययन के आधार पर यह विश्वास भी व्यक्त किया जा सकता है कि राष्ट्र प्रेम की भावना से समन्वित, उच्च आदर्शों की मानस भूमि पर विचरण करने वाले, अहर्निश अनुसंधान रूपी तप में रत, पाखण्ड आडम्बर एवं कुकूटनीति से दूर रहने वाले वैज्ञानिक मनीषियों की सारस्वत साधना द्वारा अवश्य ही ज्ञान-प्रसून प्रसूत होंगे एवं इन पुष्पों से निर्मित यश-सौरभ एवं ज्ञान-सौन्दर्य को विकीर्ण करने वाली माला से भारत एवं भारती का कण्ठ एक बार पुन: अवश्य सुसज्जित होगा।

पं० सुरेश रामकृष्ण शास्त्री, इन्दौर
तथा
डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण, शास्त्री
रसायन-विभाग
विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन

विज्ञान-वार्ता

चोकर : एक महत्वपूर्ण खाद्य

गेहूँ के दानों की बाहरी सतह या छिलके को प्राय: चोकर या भूसी के नाम से पुकारा जाता है। आमतौर पर आटे के इस महत्वपूर्ण भाग को निरुपयोगी एवं व्यर्थ समझ कर फेंक दिया जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप स्वास्थ्य को भारी क्षति उठानी पड़ती है।

चोकर गेहूँ के वजन का लगभग पाँचवाँ हिस्सा होता है परन्तु उसमें गेहूँ के कुल खनिज लवणों का तीन-चौथाई भाग उपस्थित होता है। चोकर में अपने वजन का बीसवाँ भाग खनिज लवण होते हैं। अपने वजन का तेरहवाँ भाग फॉस्फोट ऑफ पोटाश होता है। आटे से चोकर अलग कर देने से उसकी पोटाश की मात्रा में कमी हो जाती है। ऐसे आटे को निरन्तर खाने से कैंसर तक हो सकता है।

मामूली चोकर में 3 प्रतिशत चिकनाई, 12 प्रतिशत प्रोटीन तथा एक तिहाई भाग स्टार्च होता है।

गेहूँ के आटे से जब चोकर या भूसी को छान कर निकाल दिया जाता है, तब आटे में उपस्थित कैलशियम का लगभग आधा भाग, पोटैशियम का तीन चौथाई भाग, फॉस्फोरस का 4/5 भाग तथा लोहे का 4/5 भाग कम हो जाता है। मैदे में तो कैलशियम की मात्रा इतनी कम होती है कि मैदे की 10 पाव रोटी खाने से भी शरीर की कैलशियम की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। चोकर समेट आटे की रोटी में लोहे की मात्रा साधारणतया बिना चोकर की आटे की रोटी से दुगुनी होती है। डा० मेरी एस० रोज तथा उनके सहकर्मियों ने भी यह स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि लौह लवणों की मात्रा की दृष्टि से भी मैदा अत्यन्त हीन है, जबकि चोकर समेत आटा लौह की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

कब्ज को दूर करने के हेतु जुलाब देने वाली दवा में भी चोकर अत्यन्त लाभदायक है। चोकर आँतों को बल एवं सक्रियता प्रदान कर उनका कार्य सुचारु रूप से चलाने में सहायता देता है।

चोकर में प्रोटीन की मात्रा 12 प्रतिशत होती है, उसका आधे से अधिक भाग अंग में लग जाता है। चोकर में विटामिन-बी-काम्पलेक्स भी होता है यद्यपि उसकी मात्रा बहुत अल्प होती है। चोकर में पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट का $\frac{1}{3}$ भाग शरीर द्वारा पचा लिया जाता है। कागिल तथा एण्डरसन के अनुसार चोकर मल के परिमाण को बढ़ाता है तथा आँतों की गति में तेजी लाता है। इसका रेशा अन्य साधारण खाये जाने वाले पदार्थों के रेशों की तुलना में शरीर में सड़न को रोकने में अधिक योगदान देता है।

क्षय रोगियों के भोजन में चोकर को शामिल करने से क्षय रोग से मरने वालों की संख्या में कमी आ जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में बहुत पहले से क्षय रोग से मरने वालों की संख्या 36,000 प्रति वर्ष थी जबकि नार्थ राइडिंग में खाद्य पदार्थों की पोषकता को बढ़ा कर क्षय रोगियों की मृत्यु की दर को कम किया गया है। उक्त रोग में उचित निर्देशन तथा काफी मात्रा में भोजन में चोकर का इस्तेमाल करने से उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की गई।

स्नायु दुर्बलता एवं रक्ताल्पता के रोगी चोकर की 'चाय' से अत्यन्त लाभ उठा सकते हैं। 'चाय' बनाने की विधि इस प्रकार है : साफ चोकर को लीजिए, फिर उसके तौल के छ: गुन ठण्डे साफ पानी में किसी अच्छे

ढक्कनदार बर्तन में डालकर आध घण्टे तक उबलने दीजिए फिर उतार कर उसे सुस्वादु बनाने के लिए उसमें शहद, शक्कर अथवा नींबू का रस मिलाइये।

अच्छे तथा शुद्ध चोकर के एक गुने तथा गेहूँ के आटे के आठ गुने को मिलाकर विशेष चोकर की रोटियाँ भी बनायी जा सकती है। बिस्कुट तथा केक भी बनाये जा सकते हैं। कब्ज में, मंदाग्नि में तथा मधुमेह की कुछ विशेष अवस्थाओं में इसके समुचित उपयोग से लाभ उठाया जा सकता है।

(विज्ञान समाचार सेवा)
के सौजन्य से

गन्ने का मोम

आधुनिक युग में कठोर मोम का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग विभिन्न उद्योगों जैसे कि कार्बन पेपर, बूट पॉलिश, फर्श पॉलिश, कबोर्ड, मोमबत्ती, शृंगारिक प्रसाधनों आदि में किया जाता है। भारत इसके लिए पूर्णत: विदेशों पर आश्रित है तथा लगभग 250,000 हण्डरवेट कठोर मोम का प्रति वर्ष आयात किया जाता है। कठोर मोम के औद्योगिक उपयोग एवं आयात में खर्च हुई मुद्रा पर ध्यान देने पर यह आवश्यक हो जाता है कि भारत में सरलता से बड़े पैमाने पर उपलब्ध, पर अब तक गौण समझे जाने वाले उत्पादों को उपचारित उनके गुण कठोर मोम के सदृश्य बना लिये जाये। इससे विदेशी मुद्रा की बचत होगी। गन्ने का मोम, जो शक्कर बनाने वाली मिलों में आमतौर से 'प्रेसमड' बच रहता है मोम बनाने का सुगम एवं महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो सकता है। गन्ने के मोम का रासायनिक रूपान्तरण करने के पश्चात यह कार्नुबा मोम के स्थान पर विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

ऐवोक्वीन ने 1841 में यह पता लगाया था कि मोम की एक बहुत पतली सतह सफेद पाउडर के रूप में गन्ने के तने पर पायी जाती है तथा इसका जमाव तने की गाँठ पर सर्वाधिक होती है। एवोक्वीन ने इस मोम का नामकरण 'सिरोसीन' किया। शर्करा मिलों में जब गन्ने की पिराई की जाती है तो तनों पर लगा मोम गन्ने के रस में कलल रूप में घुल जाता है। गन्ने का रस जब कार्बोनेशन या सलफिटेशन विधि से शुद्ध किया जाता है तो यह मोम भारी अघुलनशील लवण के रूप में 'प्रेसमड' के रुप में एकत्रित होता है। यह 'प्रेसमड' ही गन्ने के मोम का स्रोत है।

इससे लगभग 75 प्रतिशत व आर्द्रता तथा 5-7 प्रतिशत मोम तथा वसा पदार्थ पाये जाते हैं। मोम की प्रतिशत सलफिटेशन मड में कार्बोनेशन मड के अनुपात में अधिक होती है। भारत की अधिकतर शर्करा मिलें सलफिटेशन विधि का प्रयोग करती हैं इसलिए उनसे प्राप्त 'प्रेसमड' में भी मोम की मात्रा अधिक होती है। इन सब तथ्यों को देखते हुए गन्ने का मोम विदेशों से आयातित काबुंना मोम की कमी को पूरा कर सकता है। अनुमान लगाया गया है कि भारत की शर्करा मिलों में प्रतिवर्ष 3,25,00,000 टन गन्ना पेरा जाता है जिससे लगभग 23,00,000 टन प्रेसमड प्राप्त होता है जो 330,000, किलोग्राम मोम का साधन हो सकता है।

'प्रेसमड' में से मोम प्राप्त करने के लिए उसे धूप में सुखा कर किसी उपयुक्त विलायक से निसारित कर लिया जाता है। विलायक के रूप में अधिकतर नार्मल हेक्सेन, नार्मल हेप्टेन, सॉलवेन्ट आयल सी० पी० 90-120° या मिनरल टर्पीनिलीन 135°-190° का उपयोग किया जाता है। निसारण हेतु मिनरल टर्पीनिलीन सबसे उत्तम विलायक है क्योंकि इसमें किसी प्रकार के विस्फोट का भय नहीं होता। इस प्रकार प्राप्त अपरिष्कृत मोम में लगभग 40 प्रतिशत ओलीइक, लिनोलिक एवं स्टिरियक अम्ल के पिलसुराइड तथा ६० प्रतिशत मोम ऐल्कोहल, अम्ल, एस्टर, हाइड्रॉक्सी अम्ल तथा रेजिन पाये जाते हैं। गन्ने के मोम में वसा भाग में साइटोस्ट्रॉल, स्टिरमास्ट्रॉल तथा मायरिसिल ऐल्कोहल औषधीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह कार्टिजोन जैसे उपयोगी हारमोन के संश्लेषण के लिए मध्यस्थ पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

यदि गन्ने के मोम में रेजिन तथा अन्य अकार्बनिक अशुद्धियाँ नहीं हैं तो अपरिष्कृत मोम ही कार्बन पेपर बनाने में प्रयोग किया जा सकता है। इस मोम का पायस (इम्लशन) फलों के परिक्षण में भी उपयोगी है। इसका 12 प्रतिशत पायस बनाने के लिए लगभग 90 ग्राम अपरिष्कृत मोम को पिघला कर उसमें 150 ग्राम ओलीइक अम्ल तथा 300 ग्राम 'ट्राईएथैनैलेमाइन' मिला लिया जाता है तथा मिश्रण में 90° से० पर हिलाते हुए 6 लिटर गर्म पानी मिला दिया जाता है। यह अपरिष्कृत मोम फर्श की पॉलिश, मोमबत्ती, पेपर कप, विद्युत विसंवाही वस्तुएँ बनाने तथा बोतलों को सील करने में प्रयोग किया जा सकता है।

अपरिष्कृत गन्ने का मोम बूट पालिश बनाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि हरे-काले रंग के होने के अतिरिक्त यह नरम भी होता है और चमड़े की सतह पर अधिक चमक उत्पन्न नहीं कर सकता। इसके लिए इसका रासायनिक उपचार किया जाता है। अपरिष्कृत मोम को रासायनिक उपचार देने के लिए पहले सान्द्र नमक के तेजाब से शोधन करके अकार्बनिक अशुद्धियाँ अलग कर ली जाती हैं तत्पश्चात् ऐल्कोहल ऐसीटोन या अन्य किसी कार्बनिक विलायक से निसारित वसारहित तथा क्रोमिक अम्ल या पोटैशियम क्लोरेट तथा सान्द्र गंधक के अम्ल से विरंजित कर लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त मोम जलने पर बिल्कुल राख नहीं छोड़ता और न ही उसमें वसा होती हैं। यह कार्बन पेपर इत्यादि बनाने के लिए अत्यन्त उत्तम होता है परन्तु बूट पालिश बनाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह काबुंना मोम की तरह कठोर नहीं होता है तथा इसमें थिक्सोट्रोपिक गुण नहीं होते हैं।

परिष्कृत गन्ने के मोम को काबुंना मोम के तुल्य कठोर एवं पालिश के लिए उपर्युक्त बनाने के लिए उसे एमाइड एस्टर मोम में परिवर्तित कर देते हैं। ऐमाइड तथा एस्टर मोम बनाने के लिए मोम को क्रमशः पोपलएमीन या पॉलिऐलकोहल से उपचारित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त मोम की कार्बन शृंखला लम्बी हो जाती है जिससे मोम के द्रवांक तथा जेलिंग गुण बढ़ जाते हैं। ऐमाइड मोम (4 भाग) तथा एस्टर मोम (1 भाग) का मिश्रण एक अत्यन्त कठोर, चमकदार, चिकना तथा न चिटकने वाला मोम होता है। इसकी कठोरता जिंक स्टीरेट डालने से और बढ़ जाती है। यह मोम मिश्रण बूट पॉलिश बनाने से काबुंना मोम का प्रतिस्थापक हो सकता है।

इन विधियों से प्राप्त परिष्कृत मोम पर लागत खर्च लगभग 2·00-2·50 रुपये तथा ऐमाइड एवं एस्टर मोम मिश्रण पर 4·50-5·50 रुपये प्रति किलोग्राम आती है। शकर की मिलों से प्राप्त प्रेसमड से गन्ने का मोम का उत्पादन यदि भारत में बड़े पैमाने पर किया जाये तो यह विदेशों से आयातित काबुंना मोम की कमी पूरी कर सकता है। इस प्रकार गन्ने का मोम औद्योगिक रूप से उपयोगी पदार्थ हैं जो आयात को रोकने में सहायक होगा। (विज्ञान समाचार सेवा)
के सौजन्य से

ज्ञान-विज्ञान

चोट लगने से दाँत के निकल जाने पर उसे दोबारा लगाया जा सकता है

दाँतों के विषय में अनुसंधान करने वाले एक अमेरिकी का कहना है कि यदि किसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप कोई दाँत निकल कर गिर पड़े तो दुर्घटना होने के बाद कुछ समय के भीतर उसे दोबारा जड़ा जा सकता है।

इलिनौय विश्वविद्यालय के कालेज ऑव् डेन्टिस्ट्री के डा० मोरीमैसलर पिछले कई वर्षों से यह जानने का प्रयत्न करते रहे हैं कि दोबारा जड़े गये कुछ दाँत क्यों जोड़े रहते हैं और दूसरे क्यों गिर पड़ते हैं।

डा० मैसलर के अनुसंधान की व्यवस्था अमेरिका के राष्ट्रीय दन्त अनुसंधान संस्थान ने की थी। उन्होंने अधिकतर छानबीन पशुओं को लेकर की है। किन्तु अब उनका कहना है कि उन्होंने मनुष्यों पर भी परीक्षण किये हैं। उनके कथनानुसार दाँत के कोमल भीतरी भाग को यदि सूखने न दिया जाये और दाँत को लगभग 30 मिनट के भीतर दोबारा जड़ दिया जाये तो दाँत का भीतरी भाग सामान्यतया निर्जीव नहीं होने पाता। यदि दाँत को छः घण्टे के भीतर जड़ दिया जाये तो उसकी बाहरी रगें जीवित रह सकती हैं और उन्हें सफलतापूर्वक दोबारा जोड़ा जा सकता है।

डा० मैसलर का कहना है कि दाँत को दोबारा जड़ने से पहले यदि कुछ मिनट तक सोडियम फ्लोराइड के 2 प्रतिशत घोल से जड़ वाले भाग को भिगोया जाये तो उसे नुकसान नहीं पहुँचने पाता। दाँत पर रोगाणुनाशक टैट्रासाइक्लिन लगाने से दाँत के इर्द-गिर्द जबड़े की हड्डी के विकास को बढ़ावा मिलता है।

रिहायशी मकानों की ईंटे : बेकार चीजों से मकान का निर्माण

अमेरिकी इन्जिनियरों ने रेत, एसबैस्टस और टूटे काँच आदि बेकार चीजों से ईंटें बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है। इस निर्माण-प्रक्रिया कोपेटेण्ट कराया गया है। इसमें बेकार चीजों के समुच्चय के साथ सीमेण्ट व कुछ सामान्य रसायनद्रव्यों को मिलाया जाता है। फिर इस मिश्रण को आवे में पकाने के बजाय सांचों में दबा कर ईंटें तैयार कर ली जाती हैं। ये ईंटें बनाने के लिए विशेष उपकरणों अथवा विशिष्ट प्रक्रियाओं की जरूरत नहीं होती। इन ईंटों का उपयोग पहले-पहल जार्जिया की वाल्डोस्टा बस्ती में तीन शयनकक्षों वाला मकान बनाने में किया गया था।

गणनायन्त्र से वास्तुशिल्पियों की मदद

वास्तुशिल्पी के काम आने वाले सामान्य उपकरणों—पैन्सिल और ड्राइंगबोर्ड—का चलन अब शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा। वस्तुतः यूटा विश्वविद्यालय के एक अनुसन्धान-केन्द्र में स्थापत्यशिल्पियों ने इन से काम लेना भी बन्द कर दिया है। वे उनकी जगह नक्शे तैयार करने के लिए एक विद्युदाणविक गणनायन्त्र से उपयोग लेने लगे हैं।

नकशे प्रस्तुत करने वाले नये गणनायन्त्र में बहुत से ज्यामितीय नमूने होते हैं। मशीन के कुंजी-पटल पर बटन दबाने से इन नकशों को एक परदे पर उसी प्रकार देखा जा सकता है जैसे टेलिविजन पर चित्र दीख पड़ते हैं।

गणनायन्त्र के परदे पर प्रस्तुत नकशों को किसी भी समय कुंजियों द्वारा सामान्य निर्देश देकर बदला

या 'मिटाया' जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, किसी इमारत के नकशे में, केवल कुंजियों के स्पर्श मात्र से, विभाजक दीवारों को हटाया जा सकता है, छतों को ऊँचा किया जा सकता है, खिड़कियों का स्थान बदला जा सकता है तथा भीतर नजर डालने के लिए बाहरी दीवारों को खत्म किया जा सकता है। इसके अलावा सूक्ष्म निरीक्षण के लिए छोटे स्थलों को बड़ा किया जा सकता है—जैसा कि सामान्य बोर्ड पर नहीं हो सकता।

दो छोटी सी कैथोड नलियों को एक तार के जरिये गणनायन्त्र से जोड़ कर वास्तुशिल्पी चित्रों को मोटाई, लम्बाई और ऊँचाई में देख सकता है। इस प्रकार वह जिस इमारत को बनाने वाला है उसके पूर्ण रूप का अन्दाज कर सकता है।

जब कोई डिजायन पूरा तैयार हो जाता है तब गणनायन्त्र अपने स्मृति-पटल पर उसके विस्तृत व्यौरे की बातें 'याद' रखता है, जिससे उसके नकशे बनाने की कोई जरूरत नहीं रहती। और आवश्यक निर्देश देने पर वह उसके निर्माण के लिए सारे सामान की सूची तथा लागत-खर्चों का ब्यौरा पेश कर देता है।

इत्र और सुगंधित जल उत्पादन का नया उपकरण

राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, लखनऊ, में एक ऐसे उपकरण का निर्माण किया गया है जिससे फूलों, बीजों तथा जड़ी-बूटियों का इत्र, तेल, सुगंधित जल इत्यादि का उत्पादन किया जा सकेगा।

प्रचलित उपकरण में आसवन के दौरान ताप की अधिकता होते ही तेल के गुण नष्ट होने का भय बना रहता है और अपूर्ण द्रवण के फलस्वरूप उनकी मात्रा भी कम ही प्राप्त होती है।

इस उद्यान के डा० बी० सिंह तथा सहयोगियों द्वारा निर्मित इस स्वनियन्त्रित उपकरण में वाष्प बनते ही द्रवण भी प्रारम्भ हो जाता है। उपकरण में जल से तेल अलग करने और जल निष्कासन की भी व्यवस्था हैं और आसवन के उपरांत उत्पाद की मात्रा भी मापी जा सकती है।

प्रयोगशाला स्तर पर उपरोक्त उपकरण का निर्माण बेहद सस्ता बैठता है। फ्रांस, सिंगापुर और ईरान जैसे इत्र उत्पादक देशों में इसकी बहुत चर्चा की जा रही है। इस आविष्कार के लिये इन वैज्ञानिकों को आविष्कार संवर्धन मण्डल ने संयुक्त रूप से पुरस्कृत भी किया है।

क्या डी० डी० टी० हानिकर है ?

कीटों की 3,000 जातियों में से 0·1 प्रतिशत कृषिनाशी हैं और वाइरस, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ का संवहन करती हैं जो कि मानवों और जन्तुओं में रोग फैलाते हैं। इन कीटों से रक्षा हेतु पहले ऐसे रसायन बनाए गए जिनका सेवन करने से ये हानिकर कीट मर जाते हैं फिर डी० डी० टी सदृश ऐसे रासायनिक पदार्थों का विकास हुआ जिनके सम्पर्क में आने पर कीटों का नाश हो जाता है। इनमें विविध क्लोरीनेटेड हाइड्रो-कार्बन, आर्गेनोफास्फेट और कार्बोनेट शामिल हैं। कीट नाशी के रूप में क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बनों, जैसे कि डी० डी० टी०, लिंडेन, ऐल्ड्रिन, डाएएल्ड्रिन, ऐन्ड्रिन और क्लोरडेंन का उपयोग सर्वाधिक होता है।

डी० डी० टी० का सबसे बड़ा खतरा यह है कि इसका पक्षियों और चूहों के लिंग-हारमोनों पर दुष्प्रभाव पड़ता है यद्यपि यह धीरे-धीरे होता है।

कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया प्रदेश में डी० डी० टी० काफी समय से इस्तेमाल हो रहा है। यह देखा गया है कि वहाँ दूध पिलाने वाली माताओं में से 50 प्रतिशत के दूध में 20 पी० पी० एम० डी० डी० टी० पाया गया है और 4 प्रतिशत में यह 100 पी० पी० एम० से भी अधिक है। आल्बर्टा (कनाडा) में ऐसी 99·555 प्रतिशत माताओं के दूध में औसतन 77 पी० पी० एम० डी० डी० टी० और अन्य नामक जीवनाशी पाए गए गए हैं। दिल्ली में किए गए एक सैम्पल सर्वेक्षण में पाया गया है कि यहाँ के निवासियों के रुधिर में डी० डी० टी० की मात्रा 70-90 पी० पी० एम० है जो कि

औसत अमेरिकी या यूरोपियन में विद्यमान मात्रा से 7-9 गुना है।

काजू के छिलकों से नया रबड़ रसायन

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना, के दो वैज्ञानिकों, एन० डी० घाटमे, तथा जी० गोरवेल, ने काजू के छिलकों से प्राप्त होने वाले तरल पदार्थों से रसायन निस्सारित किया है, जो प्रचलित एन्टीआक्सीडेंट रसायनों की तुलना से काफी उत्तम है।

काजू के छिलकों से प्राप्त तरल पदार्थ एक उपउत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। अभी तक इसके व्युत्पन्न का उपयोग रोधी वर्निश, सैकर, इनेमल जलसह पदार्थ, गाड़ियो का ब्रेक-लाइनिग, अपमार्जक (डेटरजेंट) तैल-विलयशील रंजक, राल इत्यादि के उत्पादन में किया जाता है।

ऐसा समझा जाता है कि इससे प्राप्त रबर रसायन का उपयोग रबर उद्योग में बहुतायत से किया जायगा।

नाभिकीय ऊर्जा से रोगी हृदयों को गति

अनियमित धड़कन वाले रोगी हृदय को चालू रखने के लिये वर्षों से बैटरी चालित विद्युत पैसमेका का उपयोग हो रहा है। परन्तु संसार भर में कुल चार ऐसे व्यक्ति हैं जिनके नाभिकीय ऊर्जा से संचालित होने वाले पेस-मेकर सफलतापूर्वक लगाए जा चुके हैं। ये चारों व्यक्ति निर्बाध अपना कार्य कर रहे हैं और सक्रिय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ये पैसमेकर उन लोगों के शरीर में पेरिस के बुसेस अस्पताल में स्थापित किये गए थे। रेडियो-समस्थानिक की ऊर्जा से संचालित होने वाले इस सूक्ष्म केप्सूल में एक थर्मोपाईल रखा गया है जो कि ऊष्मा को विद्युत ऊर्जा में बदल देता है।

इन पेस मेकरों में ईंधन के तौर पर लूटोनियम—238 इस्तेमाल होता है। हानिकर विकिरणों से इसे बचाने की पूरी व्यवस्था की गई है।

विज्ञान-समाचार

भारत, ईरान और इजरायल के वैज्ञानिक स्काइलैब के परीक्षणों में भाग लेंगे

वाशिंगटन, 3 अगस्त : अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) ने "स्काइलैब" से प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग करके भूतल पर किये जाने वाले पर्यवेक्षणीय प्रयोगों में भाग लेने के लिए 71 राष्ट्रों के वैज्ञानिकों को चुना है, जिनमें भारत, ईरान और इजरायल भी शामिल है। स्काइलैव उस अमेरिकी अन्तरिक्ष स्टेशन का नमूना है, जो 1973 में अन्तरिक्षीय कक्षा में स्थापित होगा और 8 महीने तक पृथ्वी की परिक्रमा करेगा।

इन परीक्षणों में भाग लेने के लिए अमेरिका से 83 और 16 अन्य देशों के 23 वैज्ञानिक चुने गये हैं चूंकि इन सभी देशों के चुने गये वैज्ञानिक अपनी-अपनी अनुसन्धान-टोलियों के अध्यक्ष होंगे, इसलिए परीक्षणों में भाग लेने वाले अनुसन्धानकर्ताओं की संख्या उपर्युक्त संख्या की कई गुनी होगी।

भूतलगत पर्यवेक्षणीय प्रयोग स्काइलैब के प्रमुख उद्देश्यों में शामिल हैं स्काइलैब के अन्य उल्लेखनीय प्रयोगों के लिए, जो चिकित्सा विज्ञान, जीव विज्ञान, खगोल विज्ञान, भौतिक विज्ञान और अन्य क्षेत्रों से सम्बद्ध होंगे, अनुसन्धानकर्ताओं का चुनाव अभी किया जाना है। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक अनुसंधान स्काइलैब का एकमात्र उद्देश्य है।

भूतलगत पर्यवेक्षणीय प्रयोगों के लिए सूचनाएँ स्काइलैब के अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा संग्रहीत होंगी। वे एक यन्त्रपुन्ज में, जिसका नाम अर्थ रिसोर्सेज़ एक्सपेरिमेण्ट पैकेज "इरैप" है, शामिल उपकरणों की सहायता से ये सूचनाएँ एकत्र करेंगे। इसमें 5 विद्युदाणविक सेंसर शामिल हैं, जो एक साथ दृश्य और अदृश्य प्रकाश में पृथ्वी का पर्यवेक्षण करते हैं।

आशा है कि इन सेंसरों से प्राप्त छायाचित्र और सूचनाएँ कृषि, वनविज्ञान, मत्स्य उद्योग, प्रदूषण-नियन्त्रण, खनिज सर्वेक्षण, सूखे और बाढ़ के नियन्त्रण मानचित्रण तथा अन्य क्षेत्रों में सुधार करने में सहायक सिद्ध होंगी।

इनमें से कुछ सेंसर उन सेंसरो जैसे ही हैं, जो "अर्ट्स-एनामक मानवरहित, स्वचल अन्तरिक्षयान में लगे हैं। अमेरिका द्वारा "अर्ट्स-ए' का प्रक्षेपण 23 जुलाई, 1972 को किया गया था। पृथ्वी की कक्षा में परिक्रमा कर रहे इस अन्तरिक्षयान का पूरा-नाम "अर्थ रिसोर्सेज टेक्नोलोजी सैटेलाइट" है और इसमें संलग्न 'ए' अक्षर इस बात का द्योतक है कि यह इस प्रकार के दो वाहनों में पहला है। द्वितीय "अर्ट्स" 1973 में अन्तरिक्षीय कक्षा में स्थापित होगा।

स्काइलैब के यन्त्रपुन्ज "इरैप" का निर्माण पृथ्वी के साधनों का सर्वेक्षण करने के लिए प्रयुक्त उपकरणों और प्रविधियों की उन्नत और सुधरी किस्मों का परीक्षण करने के लिए किया गया है। उसके बाद, इन्हें "अर्ट्स" श्रेणी के उन्नत नमूनों में लगाया जायेगा, और इस प्रकार वे सुधरी किस्न की स्वचल भू-पर्यवेक्षण प्रणाली का निर्माण करेंगे, जो कृषि, वन विज्ञान, भूतत्व विज्ञान, भूगोल, ऋतुविज्ञान, पारिस्थितिकी, महासागरीय विज्ञान, जल विज्ञान, आदि क्षेत्रों में अनुसन्धान के लिए प्रयुक्त होगी।

अमेरिका के बाहर, वैज्ञानिकों की 21 टोलियाँ पृथक-पृथक 40 भूतलगत पर्यवेक्षीय प्रयोग करेंगी। इनमें से एक प्रयोग अहमदाबाद (भारत) के भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन से श्री पी० आर०

पिशरोटी के निर्देशन में एक टोली द्वारा सम्पन्न होगा। यह टोली "ईरैप" से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग भारत के प्राकृतिक साधन-स्रोतों के अधिक प्रभावकारी प्रबन्ध के लिए करेगी।

ईरान सरकार के एक अनुसन्धानकर्त्ता, श्री के० इब्तबाद, जो तेहरान के हैं, "अर्ट्स" और "ईरैप" से प्राप्त आंकड़ों की सहायता से 2 प्रयोग करेंगे और उनके द्वारा फसलों में परिवर्तन का पता लगायँगे और वन्य भूमि का सर्वेक्षण करेंगे।

रोम में संयुक्तराष्ट्र-संघ के श्री ओ० ई० फिशनिक सूडान के एक स्थान से कृषि सम्बन्धी साधन-स्रोतों के सर्वेक्षण की व्यवहार्यता का अध्ययन करेंगे।

इजरायल के एक वैज्ञानिक, जोजेफ ओट्टरमैन, जो तेलअबीव विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं, 6 पृथक-पृथक परीक्षण करके फसलों की बीमारियों और कीट-रोगों का पता लगायेंगे, गेहूँ के खिए उपयुक्त भूमि का पता लगायेंगे, नम और शुष्क मिट्टी तथा वनस्पतियों का विश्लेषण करेंगे, लहर-प्रणालियों और समुद्र की अन्य स्थितियों का निर्धारण करेंगे और ईरेप के सेंसरों द्वारा पानी के रंग और तापक्रम के सम्बन्ध में प्राप्त आँकड़ों द्वारा मछली के शिकार के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का पता लगायेंगे।

इनके अलावा, कुछ अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता अन्य देशों से सम्बद्ध परीक्षण करेंगे। उदाहरण के लिए, एम्हर्स्ट में मैसाचूसेट्स विश्वविद्यालय के श्री एच० टी० वी० स्मिथ, एक अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता है, जो स्काइलैब से प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग करके दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के नामीब कालाहरी स्थित बालू के टीलों का मानचित्र तैयार करेंगे। एक दूसरे अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता, वाशिंगटन, डी० सी०, के अर्थ रोटेलाइट कार्पोरेशन के श्री डेविड एस० सिमोनेट स्काइलैब के आंकड़ों का प्रयोग करके अमेरिका और आस्ट्रेलिया में भूमि के उपयोगों सम्बन्धी मानचित्र तैयार करने की विधियों का अध्ययन करेंगे।

इरेप और आर्ट्स द्वारा प्राप्त आंकड़ों के साथ-साथ कई प्रयोगों में हवाई सर्वेक्षणों तथा भूतल से वैज्ञानिकों द्वारा किये गये सर्वेक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का भी प्रयोग किया जायेगा। वैज्ञानिकों द्वारा किये जाने वाले परीक्षण का व्यय भार स्वयं उनके ही संगठन वहन करेंगे। किन्तु इरेप और वर्ट्स से प्राप्त- आंकड़े उन्हें अमेरिकी अन्तरिक्ष एजेंसी निःशुल्क सुलभ करेगी।

स्काइलैब एक प्रयोगात्मक अन्तरिक्ष-प्रयोगशाला है, जिसका आकार शैयन-कक्षों वाले मकान के बराबर है। उसे 30 अप्रैल, 1973 को मानवरहित रूप में केप कैनेडी, फ्लोरिडा से प्रक्षिप्त किया जायेगा। उसके एक दिन बाद अपोलो अन्तरिक्ष यान में 4 अन्तरिक्ष-यात्रियों की एक टोली प्रक्षिप्त होगी। यह यान पृथ्वी की कक्षा में स्काइलैब से जुड़ जायेगा। फिर अन्तरिक्ष-यात्री स्काइलैब में प्रविष्ट हो जायेंगे और उसके भीतर 28 दिन रह कर वैज्ञानिक प्रयोग करेंगे। उसके बाद वे कक्षा में परिक्रमा कर रही स्काइलैब को खाली छोड़ कर पृथ्वी पर वापस लौट आयेंगे।

उसके दो महीने बाद एक दूसरी चालक टोली पृथ्वी से रवाना होगी, जो स्काइलैब में 56 दिन की अवधि बिताऐंगी। फिर वह पृथ्वी पर वापिस लौट आयेगी। एक महीने बाद चालकों की तीसरी टोली स्कालैब में भेजी जायेगी जो उसमें 56 दिन रहेगी।

स्काइलैब द्वारा पृथ्वी के पर्यवेक्षण से प्राप्त समस्त सूचनाएँ भू-साधन स्रोत पर्यवेक्षण प्रणाली के एक आंकड़ा-केन्द्र पर संग्रहीत होंगी। यह केन्द्र अमेरिका के अन्तरिक्ष विभाग द्वारा संचालित होगा और सायो फाल्स, साउथ डाकोटा, में स्थित होगा।

किन्तु महासागर और वायुमण्डल सम्बन्धी आंकड़े मेरिलैण्ड स्थित अमेरिकी राष्ट्रीय महासागरीय एवं वायुमण्डलीय प्रशासन में संग्रहीत होंगे। विश्व में कोई भी सूचना की प्रतिलिपि बनाने पर होने वाले व्यय की राशि अदा करके इन केन्द्रों से सभी चित्र और सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 109	श्रावण 2028 विक्र०, 1892 शक जुलाई-अगस्त 1972	संख्या 7-8

प्राचीन आर्यावर्त की पादप-सम्पदा

□ श्याम सुन्दर पुरोहित तथा चैतन्य कुमार गहलौत

मानव जीवन में पादप सम्पदा के महत्व का मूल्यांकन करना, कठिन ही नहीं अपितु असंभव प्राय: है। पादप-जगत् मानव जीवन के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। मानव जीवन की प्रत्येक क्रिया में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पादप सहायक होते हैं। मानव जीवन की सभी दैनिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, औषधि इत्यादि तथा किसी सीमा तक रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति भी पादप ही करते हैं। पादप बड़े द्रव्य-सहायता—साधन भी है जिन पर आधुनिक सभ्यता की आधारशिला रखी हुई है। मानव इतिहास में बड़ी ही कठिनाई से कोई ऐसी दशा होगी, जिनमें पादपो नें मूल भूत अभिनय न किया हो एवं यही तथ्य प्राचीन भारत वर्ष के लिये भी एक कटु सत्य था। उस समय जब विश्व सभ्यता द्वारा भारत वर्ष 'सोने की चिड़िया' के नाम से पहचाना जाता था। उस समय विज्ञान, उपयोगितावादी कारणों के कारण, कुलांचे चौकड़ी भरता हुआ, उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

तत्कालीन वनस्पति-वेत्ताओं ने पादप सम्पदा को उनकी उपयोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया, जैसे खाने योग्य पौधे, औषधियों में उपयोगी पौधे, विषैले पौधों एवं आर्थिक रूप से लाभदायक पौधे इत्यादि। वनस्पति साहित्य में ऐसे कई प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जिनमें पौधों की औषधि-सम्बधि, कृषि संबंधी एवं उद्यान संबंधी, महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। वन ग्रन्थों में 'आयुर्वेद', चरक संहिता', एवं 'सुश्रुत-संहिता' नामक ग्रन्थ महत्वपूर्ण उपलब्धियां है। एक ऐसी किंवदन्ती है कि आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व, तक्षशिला-विश्वविद्यालय के एक प्रख्यात प्राध्यापकभिक्षुअलेयनेअपने जाविका नामक शिष्य से, विश्वविद्यालय के चार योजन (चार वर्ग मील) में उत्पन्न सभी पौधों को पहचानने एवम् उनके गुणों का वर्णन करने के लिये कहा। कालान्तर में जाविका राजा बिम्बिसार के राजवैद्य बने। धन्वन्तरि एवं नागा-

र्जुन आदि को भी औषधि में प्रयुक्त पौधों के बारे में गूढ़ ज्ञान था।

वेद (2500 ईसा पूर्व), रामायण (1000 ईसा पूर्व), महाभारत (600 ईसा पूर्व), उपनिषद, पाणिनी-व्याकरण (315 ईसा पूर्व) कौटिल्य के अर्थ शास्त्र द्वारा समावेष्ठित् प्राचीन-भारतीय-साहित्य, यह प्रदर्शित करता करता है कि भारतीयों को औषधि निर्माण का अत्यन्त विकसित ज्ञान था। कृषि ज्ञान का विकास पुनः मोहन-जोदड़ों काल (325 ईसा पूर्व) में भी देखा जा सकता है। यद्यपि सिन्धु सभ्यता के लोगों के कृषि ज्ञान के बारे में कम ही ज्ञात किया जा सका है, फिर भी, गेहूं तथा मक्की के दृष्टान्त यह दर्शाते हैं कि ये दोनो उस समय भी उगाये जाते थे। हिन्दू लोगों को रूई, बाजरा, खजूर, तथा अन्य फलों एवम् सब्जियों का ज्ञान था।

रावोल्फिया, जिसे संस्कृत में 'सर्पगंधा' कहा जाता है, नामक पौधे का, उस समय अपनी महत्वपूर्ण विशेषताओं के कारण सभी को ज्ञान था। इसे सांप के काटने तथा किसी कीट के डंक मारने पर विषघाती के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। आजकल इसने अपने, उच्च-रक्त-चाप तथा मानसिक-रुग्णता पर, नियन्त्रक गुण के कारण विश्व व्याप्त प्रसिद्धी प्राप्त कर रखी है **पुत्रांगिवा एक्सबरथाई** का भी प्राचीन भारत के लोगों को ज्ञान था। इसके द्वारा निष्कर्षित औषधि स्त्रियों को प्रसव काल में मध्य दी जाती थी। इस पौधे का नाम ही, इसके गुणों का प्रदर्शन करता है। तुलसी (आसिमम-सेन्टम) को मन्दिर तथा घरों में, अपनी विशिष्ट सुगन्ध के कारण उगाया जाता है। हिन्दू घरों में इसे पूजा भी जाता है। विभिन्न सुकृत पौधों से निकर्षित तेलों का उपयोग, विभिन्न प्रकार के दर्दों में किया जाता था।

उन दिनों भारतवर्ष में कभी भी अकाल नहीं पड़ा। उस समय गेहूँ, जौ, गन्ने, चावल, मटर, मूंग, उड़द, मसूर एवं फलों जैसे लौकी, आम, खजूर, केला, तरबूज, नारंगी, अनार इत्यादि की बहुतायत थी। उन दिनों आम का सर्वाधिक प्रचलन था। एक राजा का नाम आम्रगुप्त, एक कस्बे का नाम आम्रपुरा एवं एक पर्वत का नाम आम्रकूट होना इसके प्रमाण है।

यहां यह बताना आवश्यक है कि हमारे पूर्वजों के काल में मांड संग्रहक, आलू एवं शलजम का अभाव था। आलू भारत में सबसे पहले सन् 1730 में पहचाने गये तथा पहली बार इन्हें अजंर में, एक जलपान में खाने के काम में लिया गया था जो कि वायसराय के सम्मान में आयोजित किया गया था। हमारे पूर्वजों ने लाल मिर्च को कभी नहीं चखा था। वे तम्बाखू के धूम्रपान के सुभीते से काफी दूर थे एवं उन्होंने कभी बीड़ी या हुक्का काम में नहीं लिया। तम्बाकू का प्रयोग पश्चकोलम्बी-युग में आरम्भ हुआ। मसालों में अदरक, कालीमिर्च, प्याज, लहसुन, इमली एवं इलायची का प्रयोग अवश्य होता था। उस समय तेल का मुख्य स्रोत तिल था जो बाद में सरसों एवं खोपरे में से भी निकाला जाने लगा।

भारत के पश्चिमी समुद्री किनारों की स्वाभाविक उपज, कालीमिर्च, निर्यात के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इसका ज्ञान ग्रीक लोगों एवं रोम वासियों को भी था तथा यह अरब व्यापारियों द्वारा या तो फारस की खाड़ी, मेसोपोटामियाँ एवं सीरिया से या लाल सागर एवं स्वेज की खाड़ी के द्वारा यूरोप में ले जाई गई। इसी समय मिर्च को सोना, चांदी एवं स्त्री के बदले में तोला जाता था और यह मिर्च का ऊंचा मूल्य ही था जिसने यूरोप वासियों को भारत आने का समुद्री रास्ता ढूंढने के लिये प्रेरित किया।

नशीले पेय एवं शराब, प्राचीन भारत के हिन्दुओं द्वारा उपयोग में लिये जाते थे। आर्यों द्वारा भंग का उपयोग काफी मात्रा में होता था। सन के पौधे (कैनाबिस-सटाइवा) की पत्तियों द्वारा निष्कर्षित पदार्थ तीव्र नशीला होता था। शराब के सत (एल्कोलॉयड) से निर्मित पेय प्रायः अस्वीकृत किये जाते थे। हमारे प्राचीन साहित्य में कहा गया है कि 'एक मूर्ख ब्राह्मण, जो शराब पींता है, धर्म से विलग होगा एवं नर्क कुण्ड की प्राप्ति करेगा।' यहां तक कि कुछ अपवादों को छोड़कर

सभी राजा शराब पीते थे जिनमें कभी-कभी उनकी रानियां भी सहयोग देती थी। भगवान का अपना तथा कथित पेय 'सोमरस' कहलाता है। उसी समय दूसरे पेय भी थे 'जैसे-'द्राक्षासव', जो अंगूर के रस से बनाया जाता था, महुआ से निर्मित 'सिध्रु' खजुर के रस से निर्मित 'खर्जुरा' और अनाज से निर्मित 'सुरा' इत्यादि।

चाय, काफी तथा कोको हमारे पूर्वजों द्वारा कभी छुआ भी नहीं गया। भारत में काफी ब्राजील से आई तथा कोको अफ्रीकी देशों से आया। यद्यपि चाय वास्तव में तो भारत एवं चीन के पर्वतीय क्षेत्रों से उत्पन्न हुई तथापि यह कभी भी भारतीयों द्वारा उपयोग में नहीं ली गई। काफी समय पहले से ही चीनी एवं जापानी लोगों ने चाय का पौधा उगाना शुरू कर दिया था। यह विश्वास किया जाता है कि इस पौधे को सर्व प्रथम बोने वाला चीन के सम्राटों में से कोई एक था।

भारत ने रेशे एवं रंग उद्योग का नेतृत्व किया। रूई से कपड़े बुनने का सर्व प्रथम ज्ञान हिन्दुओं को था। हिरोडोटस ने पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व में अपने मत की अभिव्यक्ति इस प्रकार की कि 'भारतवर्ष में एक जंगली वृक्ष हैजो रोमों को अपने फल की तरह धारण करता हैं। भारतीय लोग इनसे अपने वस्त्र बनाते हैं।' सिकन्दर महान् जब भारत आया तो फल लगते हुए कपास के पौधे को देखकर उसने असीम आनन्द प्राप्त किया और अपनी अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त किया भारतीय पौधे मेमने धारण करते हैं जिनसे वस्त्र बनाये जाते हैं।' उस समय अन्य रेशे भी थे, जो भरावट के काम आते थे जैसे—शालमली एवं आक। ज्यादा मोटे रेशे वाले पौधे भी उस समय पाये जाते थे जैसे—सन, नारियल, जूट, तथा मूंज इत्यादि।

बिना रंगों के हमारा सामाजिक जीवन नीरस एवं कुंठित हो जाता। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में बलदेव तथा कृष्ण को उनके नीले पीले वस्त्रों के कारण क्रमशः नीलाम्बर एवं पीताम्बर कहा गया है। नीला रंग अपने निर्यात मूल्य के कारण काफी उपयोगी था। इस रंग को नील नामक पौधे से निष्कर्षित किया जाता था। प्रायः हिमालय में उत्पन्न होने वाले 'मंजीष्ठा' नामक पौधे की जड़ों से 'मदार' प्राप्त किया जाता था। यह कपड़ों को लाल रंग में रंगने के काम आता था एवं अभी भी भारतीय वैश्य वर्ग इससे बही खाते बांधने का काम लेते हैं।

बुका-मोनोस्पर्मा, केशिया आंरिकुलेटा, अकेशिया-कटेचू एवम् अकेशिया-अरेबिका, अन्य पौधे हैं, जिनसे पक्के रंग निष्कर्षित किये जाते हैं। पान का उपयोग, शौक के लिये किया जाता था एवं मुख्यतया आर्यो द्वारा अन्य सामग्री-सुपारी (**अरेका कटेंचू**), कत्था (**अकेशिया-कटेचू) यूजोनिया-केर योफितेलटा** एवं **इलेटेरिया- कार्ड-मोमम** के साथ उपयोग में लिया जाता था।

उन दिनों बगीचों के मालिक को धनी माना जाता था। स्त्रियाँ पौधों को पानी देती थी तथा कई आभूषणिक पुष्पों का उपयोग पुष्पीय जवाहरात की तरह करती थी। आभूषणों के रूप में काम आने वाले पौधों में महत्वपूर्ण **जैसमीन**, चम्पा (**केशिया फिश्चुला**) तथा **अस्बेजियां** इत्यादि हैं।

कालीदास ने अपने नाटकों के कई सुन्दर आरोहियों का वर्णन किया। ये अपने नाटक 'शकुन्तला' में लिखते हैं कि 'वह आकर्षक एवं सुगन्ध से परिपूर्ण पुष्पों की भूखी थी। वृक्षों में **सारका इन्दिका**, जो अशोक के नाम से जाना जाता था तत्कालीन लोगों द्वारा काफी पसन्द किया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि इसके चारों ओर वृत्ताकार घूमते हुए, अपने बाँये पाँव से वृक्ष की शाखा को छूकर तत्कालीन नवयुवक एवं नवयुवतियों का एक अत्यन्त ही सुन्दर नृत्य आयोजित किया जाता था। उनका विश्वास था कि यदि यह वृक्ष कुमारों एवं कुमारियों के बांये पांव से स्पर्शित किया जाये तो वृक्ष में अधिक बहार आ जाती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में **'फाइकस कृष्णा'** नामक पौधा काफी महत्व रखता था। इस वृक्ष को भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित माना गया ऐसा

कहा जाता था कि अपने घर से चुराने के बाद, भगवान् कृष्ण मक्खन को इस वृक्ष की लिपटी हुई पत्तियों में रख देते थे।

स्त्रियाँ पौधों को दातुन, केश तेल सुगंधित द्रव्य, एवम् रंगों के रूप में काम लेती थी। 'मुर्या' की चारकोल काष्ठ दांत साफ करने के काम आती थी। 'स्माईलेक्स' भी दाँत साफ करने के काम आता था एवं अखरोट के साथ मिलाकर यह होठों को रंगने के काम में लिया जाता था।

कमल का फूल हिन्दू धर्म में काफी महत्व रखता है एवं संस्कृत साहित्य में भी विभिन्न विषयों में इसका महत्व वर्णित है। धनदेवी लक्ष्मी को कमल के फूल में ही बैठा दिखाया जाता है। प्राचीन काल के हिन्दुओं को वर्गीकरण विज्ञान, आकारिकी, वातावरण विज्ञान एवं पित्रागति का ज्ञान था। हिन्दू लोग पौधों में लिंग भेद से पिरिचित थे। 'पेन्डेनस' में दो प्रकार के पुष्प विन्यास पाये जाते हैं—नर एवं मादा। इसमें से नर पुष्प क्रम को 'धूलि-पुष्पिका' एवम् मादा पुष्पक्रम को 'स्वर्ण-केतकी' के नाम से जाना जाता है एवं द्विलिंगी पुष्प क्रम को 'केतकीदुयाम' कहते हैं।

निघंटु रत्नाकर में बताया गया है कि जब शीतला का प्रकोप चल रहा हो, उस समय यदि इमली के बीज का चूर्ण हल्दी के साथ मिलाकर दवा रूप में दिया जाय तो यह एक अच्छा शीतला-व्याधि-रोधक सिद्ध होगा।

प्याज भी एक बहुत ही अच्छी दवा का काम करती है। जब किसी की नाक से रक्त निकलने लगता तो प्याज के रस की दो चार बूंद नाक में डालकर रक्त का गिरना बन्द कर दिया जाता था। साथ ही यह हृदय रोग, वीर्य दोष, सायनस में नाक में से पानी जाना, पेशाब में चिकनाहट को रोकने में भी समर्थ होता है।

ब्राह्मी (हाईड्रोकोटाइल-एशियाटिका) भी मेधा स्मरण शक्ति-वर्धक, वर्ण्य, रसायन, आयुस्य, कुषघ्न, रक्त शोधक, कफघ्न ज्वरघ्न, हृदयवल्य, बाजीकरण, मूत्रल, उन्माद-अपस्मार, हिस्टरिया इत्यादि अन्य मान व्याधियों को दूर करने के काम में ली जाती थी।

वैदिक साहित्य में विभिन्न प्रकार की जड़ी बूंटियों का वर्णन वर्णित है। आज भी इनका रेशों, लकड़ी तथा भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। अरण्डी, राई, बडीहड़, हल्दी, अजमायन, साबूदाना, ईसबगोल आदि आज भी घरेलू उपचार के रूप में काम में लिये जाते हैं। रामायण में सुषेण नामक वैद्य का नाम आता है जिसने लक्ष्मण की मूर्छावस्था दूर करने के लिये हनुमानजी से संजीवनी बूटी मंगाई थी।

आक भी काफी उपयोगी दवा है। इसके फूल पाचन, अरुचि इत्यादि रोग में काम में लिये जाते थे। आक का दूध, उदर एवं गुल्म रोग दूर करने में प्रयुक्त किया जाता था। पसीना आने वाली श्वांस मिटाने के लिये आक का मूलत्वक काम में लिया जाता था।

गेहूं के तुस गर्मी के रोगों में अमृत का काम करते हैं। 'प्राचीन आर्यावर्त की पादप सम्पदा' का अति संक्षिप्त अध्ययन करने के पश्चात् हम कुछ पौधों को पृथक् गुण बताने के लिये निम्नांकित वर्णन कर रहे हैं।

(१) नील (इन्डिगोफेरा-टिन्क्टोरिया)

नीले रंग के लिये इसकी खेती पहले भारत वर्ष में कई स्थानों पर अत्यधिक परिमाण में होती थी। जबसे कृत्रिम नीला रंग बनने लगा है इसकी खेती समाप्त प्राय: हो गई है। अभी भी इसके क्षुप उत्तर भारत, बंगाल, बिहार उड़ीसा, सिन्ध, अवध, बम्बई, तथा दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। चरक के 'विरेचन' और सुश्रुत के 'अधोभागहर' में इसका वर्णन है।

इसका उपयोग लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफ वातशामक, रेचक, यकृदुतेजक, शूल प्रशमन, वेदना स्थापन, लेखन, कृमिघ्न, उतेजक, हृद्य, मूत्रल रक्त प्रसाधन, शोथहर, व्रण रोपण, केश वर्धन, केश रंजन, विषनाशक, विषम ज्वर प्रतिबन्धक तथा उदर रोग, मद, मुर्छा, भ्रम आदि मस्तिष्क दौर्बल्य विकार, विबन्ध, आमवात, उदावर्त,

जलोदर, यकृत-प्लीहावृद्धि, शूल, वातरक्त, रक्त विकार वातविकार, मूत्र विकार, कास श्वांस, फुफ्फुस-शोथ आदि में किया जाता है ।

(2) पानलता (डोरिस-यूलीजिनोसा)

यह तथा इसकी जाति की लताएं पूर्वी हिमालय प्रदेशों में तथा दक्षिण में पश्चिमीघाट से लंका तक एवं आसाम तथा बर्मा के उष्ण कटिबन्धिय क्षेत्रों में स्वयं जात पाई जाती है। इस लता में पुष्प वर्षाकाल में एवं फल शीतकाल में आते हैं। इसकी छाल का उपयोग टिड्डीयों को भगाने के लिये तथा जो कीड़े, वृद्धिशील, छोटे छोटे पौधों की पत्तियों, टहनियों एवं पुष्पों को खा जाते हैं उनके नाशार्थ विशेषतः किया जाता है। यह संधिवात, जीर्ण-पक्षाघात, कष्ठार्तव, धातु-तुष्टि-गठिया (आमवात), पर एवं बदग्रन्थी तथा अन्य ग्रन्थियों को फोड़ने के लिये किया जाता है।

(3) पीली कपास (कांक्लोस्पर्मम-गोसिपियम)

इसके वृक्ष उत्तरी भारत के शुष्क पहाड़ी प्रदेशों में तथा बिहार,. उड़ीसा गढ़वाल बुन्देलखंड एवं दक्षिण में पाये जाते हैं।

इसका गोन्द मधुर संकोचक, अत्यन्त स्निग्ध, कफघ्न, किंचित पौष्टिक तथा कण्ड की रूक्षता, मूत्रदाह, गर्भाशम एवं मूत्राशय का क्षत, गर्भाशय शैथिल्य, प्रदर, गर्भश्राव, अतिसार प्रवाहिका, नेत्र विकार विशेषतः ट्रेकोमा, अत्यार्तव, सुजाक, अश्मरी, मूत्र नलिकावरोध आदि में विशेष प्रयुक्त होता है ।

(4) बनगोभी (कोल वर्ट)

इसके कुछ चमत्कारिक उपयोग निम्न है।

व्रण परणार्थ में इसकी पत्ती को पीस कर टिकिया बनाई जाती है। फिर उसको तेल में पकाकर जला लिया जाता है। इसमें कपूर मिलाकर घोल लेते हैं। इससे रूई को तर करके घाव पर रखने से घाव शीघ्र ही भर जाता है। इसकी पत्ती को जल में घिस कर छानने के बाद जवाखार और शक्कर के साथ लेने पर सुजाक में लाभ होता है। पत्तियों को साफ कर गुलाबी फिटकरी के आँख पर बाँधने से गरमी से हुई नेत्रपीड़ा में लाभ होता है। इसका पत्र-रस सूर्योदय से पूर्व कान में डालने से आधे सिर के दर्द में लाभ होता है।

इनके अलावा भी, नकछिकनी, छीक लाने के लिये नरकचूर-कंठ एवम् मुख शुद्धिकरण करने के लिये, नर-कटनल-गर्म निस्सार के लिये, नर बेल-गर्भाशय-विकृतिनाश के लिये, नाखूना-पक्षाघात के लिये, पीलानागकेसर-मस्तिष्क दौर्बल्य के लिये, लालनाग केसर-उदरशूल के लिये, नारंगी-वातपित नाश के लिये, नारियल का पानी-रक्तशोधन के लिये, नाशपाती-श्वेत प्रदर के लिये, कागजी नींबू-दूषित पदार्थों के निष्कासन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। ऐसे हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनका उपयोग एक से एक बढ़कर होता है।

नमी तो पादपों के लिये वरदान है। जहाँ वर्षा अच्छी हो, वहाँ की भूमि नम होगी जिससे निषेचन में पादपों को सुविधा होगी एवं पादप सम्पदा अधिक उत्पन्न होगी। इसी तरह रेगिस्तान के पादप भी अपने वातावरण के अनुकूल हो जाते हैं। पानी की हानि कम करने के लिये इनके आवरण कठोर एवं मोटे हो जाते हैं।

पौधों के मानव एवं प्राणी जगत के लिये लाभदायक होने के कारण हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम पादप सम्पदा की रक्षा करे। सभी हिन्दू धर्म ग्रन्थ इसी उपदेश से भरे पड़े हैं कि 'वनस्पति को नष्ट करने का, मनमें विचारमात्र लाना ही घोर अपराध है।' यद्यपि उपयुक्त औषधि कारक एवं गुणकारी पादपों के बारे में इतनी ढील दी गई है कि वे सावधानी से काम में लिये जाये ताकि वे नष्ट न हो जाये। **आज जबकि वानस्पतिक प्रगति हमें पादपों के मूल्यवान् महत्व से अवगत करा रही है, हमारा भी यह पवित्र धर्म हो जाता है कि हम पादप जगत की रक्षा करें।**

औषधि विज्ञान में फ्लेवन्वायड यौगिकों का महत्व

□ डा० ओमप्रकाश यादव

फ्लेवन्वायड समूह के यौगिक वनस्पति जगत में रंग-विरंगे फूलों से लेकर पौधों के हर अंग में प्रायः प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इस समूह के यौगिकों में C_6-C_3-C_6 नाभिक पाया जाता हे जिसमें दो बेंजीनयूनिट (C_6) एक एलीफैटिक C_3 युनिट से संलग्न होते हैं। प्राचीन समय में इन यौगिकों का महत्व रंजक पदार्थों के रूप में ज्ञात था, लेकिन इस शताब्दी में पिछले पचास वर्षों के शोध कार्यों ने इस बात के पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि औषधि विज्ञान में इनकी निश्चित उपयोगिता है।

सर्व प्रथम क्वोयके (1931) ने खरगोशों की जैविकी क्रियाओं पर कुछ फलेवनाल यौगिकों के प्रभाव का अध्ययन किया। इस अध्ययन के फल स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि मिरसेटिन मोरिन तथा कैम्पफेराल नामक यौगिक मूत्र वर्धन में सक्रिय थे। पुकुडा (1932) ने इस अध्ययन को और विस्तृत किया और उसने खोज की कि फलेवनाल ग्लाइकोसाइड, जिनमें क्वेरसिट्रिन (I) रुटिन (II) तथा मिरीसिटीन (III) सम्मिलित हैं भी मूत्र वर्धन में सक्रिय थे।

HO O OH —OH OR₁ OR₂ XO O

I R_1=H; R_2 =रैंम्नोस यूनिट

II R_1=H; R_2=रुटिनोस,

III R, OH; R_2 =रैंम्नोस यूनिट
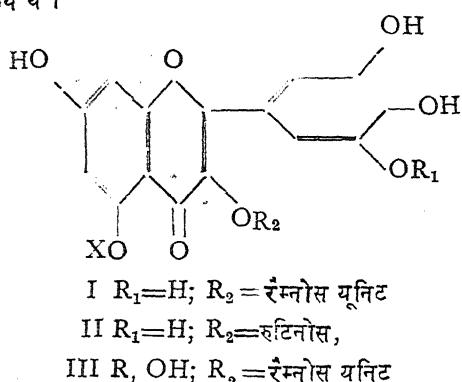
प्राचीन समय से ही चीन तथा जापान में प्रयोग की जाने वाली मूत्रवर्धन में सक्रिय औषधियां मूलतः फलेवनाल यौगिकों की ही बनी हुई होती थी। आयुर्वेदिक औषधि विज्ञान में प्रयोग की जाने वाली कुछ वनस्पतियों जैसे नेरियम ओलिएन्डर में रुटिन तथा कैम्पफैराल, 3–रैम्नो-ग्लूकोसाइड तथा डिजीटेलिस परयूरिया में ल्यूटिओलिन नामक यौगिक प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इन वनस्पतियों की उपादेयता मुख्यतः इन्हीं यौगिकों की क्रियाशीलता पर निर्भर करती हैं।

फलेवोनाल यौगिकों की औषधि प्रतिक्रियात्मक शक्ति इनके अणुओं में उपस्थित हाइड्राक्सिल समूह की संख्या पर निर्भर करती है। जिस अणु में यह संख्या अधिक होगी वह अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होगा। कुछ यौगिकों की पोटेन्सी इस प्रकार है, मिरसेटिन क्वेरसेटिन कैम्प-फेराल। क्लार्क और गीजमैन (1947) ने लगभग सत्तर प्रकृति जन्य तथा संश्लिष्ट फलेनाल यौगिकों की एपीनेफीन पर क्रिया का अध्ययन किया। प्रकृति जन्य यौगिकों में रुटिन तथा गासीपेटिन (4) नामक यौगिक और संश्लिष्ट यौगिकः 3, 3′, 4′,—ट्राई हाईड्राक्सी फलेवोन पर्याप्त सक्रिय पाये गये। इस अध्ययन के फलस्वरूप यह भी ज्ञात हुआ कि ऐसे फलेवनाल यौगिक जो मेटल-चीलेट बना सकते हैं, एपीनेफीन के आक्सीकरण को रोकने में सक्षम थे तथा कैटेकाल नाभिक जो प्रायः सभी सक्रिय यौगिकों में पाया जाता है सक्रियता से कोई संबंध नहीं रखता। एपीनेफीन रक्त-वाहिनियों में पाया जाने वाला एक पदार्थ है जो इनकी रचना का मुख्य आधार होता है और इसकी कमी से रक्त-वाहिनी की गति शिथिल पड़ जाती

है जिससे उच्च रक्त दाब की बीमारी उत्पन्न हो जाती है। आजकल गासीपेटिन तथा कुछ संश्लिष्ट फ्लेवनाल यौगिक एपीनेफीन की कमी से उत्पन्न बीमारियों के उपचार में प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

HO OH
HO O
—OH
OH
HO O
4
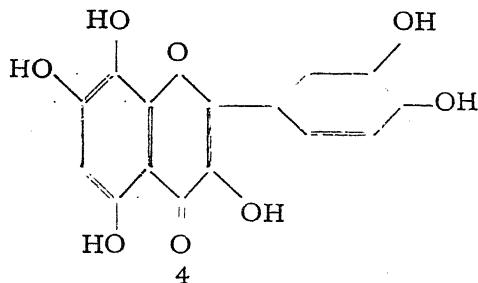
एपीनेफीन की कमी से संलग्न एक और बीमारी का अध्ययन किया गया है जिसका मूल कारण' विटामिन बी की कमी बताई जाती है। 'इस बीमारी के प्रारम्भिक लक्षण स्कर्वी' जैसे होते हैं जो विटामिन सी की कमी से उत्पन्न होती है। लेकिन धीरे-धीरे रक्त कोशिकायें, रक्त-वाहिनियाँ एवं रक्त-प्लाजमा प्रोटीन नष्ट होने लगती है और शर्करा रोग, बेचैनी तथा एलर्जी के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। इस बीमारी का उपचार स्कर्वी की तरह केवल विटामिन सी के उपयोग से सम्भव नहीं होता।

सेन्ट-जार्जी तथा उनके सहयोगियों (1936-37) ने यह पता लगाया कि हंगरी में उगने वाले पेप्रिका नामक वृक्ष में पाये जाने वाले फवोन तथा उनके ग्लाइकोसाइड्स इस बीमारी के उपचार में उपयोगी थे। नीबू के जूस तथा छिलकों एवं सिट्रस फलों में पाये जाने वाले फ्लेवन्वायड यौगिक ही इस बीमारी में उपयोगी पाये गये। इन फलों में विटामिन सीप्रचुर मात्रा में पाई जाती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त यौगिक विटामिन सी की उपस्थिति में क्रियाशील होते हैं।

सर्वप्रथम सिट्रीन नामक यौगिक इस बीमारी में क्रियाशील पाया गया, लेकिन बाद में पता चला कि यह हेसपीरीडिन (5) तथा इरीयोडिक्टीन (5) और मिरेसीटिन तथा उनके ग्लाइकोसाइड्स का एक मिश्रण है। रुटीन नामक फ्लेवनाल भी काफी सक्रिय पाया गया। आजकल एक सेश्लिष्ट यौगिक रुटिन, 3–हाइड्राक्सी, 3′,4′,5,7, टेट्राकिस (एथासीकार्बो निलाक्सी) फ्लेवोन, 3–रुटिनोसाइड (7), विटामिन बी की कमी में काफी सक्रिय पाया गया है।

,OH
R′O O
—OR
CH_2
HO O

5, R = – CH_3; R′=रैम्नोग्लूकोस

6, R = H; R′= रैम्नोग्लूकोस
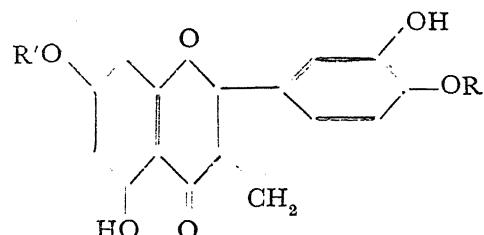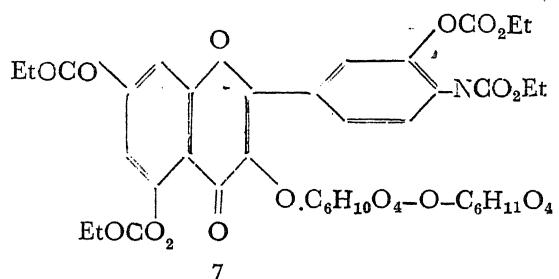
OCO_2Et
EtOCO O
–NCO_2Et
$O.C_6H_{10}O_4–O–C_6H_{11}O_4$
$EtOCO_2$ O
7

इन यौगिकों की क्रिया-पद्धति के सम्बन्ध में काफी मतभेद है। वावरा और वेब के अनुसार फ्लेवेनोन यौगिक अपने चालकोन अरिजात के रूप में सक्रिय पाये जाते हैं। लोवले और पैरेट के मतानुसार ये यौगिक एपीनेफीन के आक्सीकरण को रोकते हैं जिसके फलस्वरूप रक्त-संवहन तंत्र क्षतिग्रस्त नहीं होने पाता। गीजमैन एवं उनके सहयोगियों का मत है कि ये यौगिक स्वयं रक्त-वाहिनियों के लिए सुरक्षा का कार्य करते हैं जबकि श्रीमती लाकेट के अनुसार ये यौगिक रक्त-वाहिनियों में कोलेजन नामक यौगिक का संश्लेषण उत्प्रेरित करते हैं जो इनका सुरक्षात्मक आधार होता है।

फ्लेवन्वायड यौगिकों के प्रभाव का जीवन सबंधी क्रियाओं पर वृहद अध्ययन किया गया है। इसके फलस्वरूप

यह ज्ञात हुआ है कि सेजन से संलग्न फ्लेवन्वायड तुषार आघात से पीड़ित चूहों के उपचार में काफी उपयोगी सिद्ध हुये हैं। रुटिन तथा संबंधित यौगिक तुषार आघात ग्रस्त खरगोशों पर भी काफी सक्रिय पाये गये। कीसमैन (1948) तथा फहरमैन (1955) ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात किया है कि ऐसे चूहे जिन्हें फ्लेवन्वायड युक्त भोजन दिया जाता रहा, उनमें शीत-आघात से उतकों की बहुत कम क्षति हो पाई थी जबकि फ्लेवन्वायड रहित भोजन पाने वाले चूहों में यह क्षति काफी अधिक थी। खरगोशों के ऊपर किये गये प्रयोगों ने भी इस तथ्य की पुष्टि की कि फ्लेवन्वायड युक्त भोजन आघात से होने वाली उतकों की हानि को रोकते हैं तथा उनके उपचार में सहायक होते हैं। एम्ब्रोसे ने क्वेरसेठिन, रुटिन और टेक्सीफोलिन की उपयोगिता का शीत-आघात के उपचार में वर्णन किया है।

वैज्ञानिक प्रयोगों से यह पता चला है कि विटामिन सी के साथ प्रयोग किये जाने पर इन यौगिकों की सक्रियता और बढ़ जाती है तथा ये गिनी-पिग तथा बंदरों के उपचार में भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में कई प्रकृति उपलब्ध एवं संश्लिष्ट फ्लेवन्वायड यौगिक ऐन्टीबायटिक सक्रियता युक्त पाये गये हैं। कोयले और सहयोगियों ने ज्ञात किया है कि क्वरसेटिन नामक यौगिक स्टेफाइलीकोकस आरियस नामक परजीवी के विरुद्ध काफी सक्रिय होता है।

मार्ती एव रोकर्स ने ज्ञात किया कि रुटिन, अनीमिया और ल्यूकोसाइटोसिस के उपचार में आरोमाइसिन की तरह ही सक्रिय था। मिकलास, जेनोस तथा टेमस (1968) ने संश्लिष्ट चालकोन यौगिकों पर अध्ययन के फलस्वरूप ज्ञात किया है कि 3°-नाइट्रो, 4°-हाइड्राक्सी चालकोंन के मेथाक्सी संजात (8, 9, 10) स्टैफाइलोकोकस आरियस के विरुद्ध अन्य एन्टीवायोटिक के अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होते हैं। रेमनेटिन नामक यौगिक कुछ जाति के बैक्टीरिया के विरुद्ध सक्रिय पाया गया है।

R_2, R_1, NO_2, OH, R_3, O
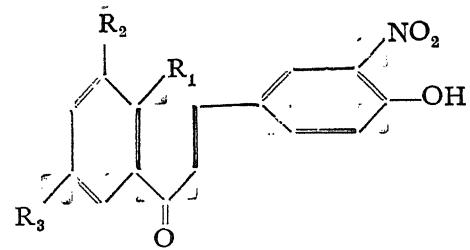
8, $R_1 = -OCH_3$; $R_2 = R_3 = H$
9, $R_1 = R_2 = -OCH_3$; $R_3 = H$
10. $R_1 = R_3 = -OCH_3$; $R_2 = H$

कटिंग तथा सहयोगियों ने चूहों पर किये गये प्रयोगों से ज्ञात किया कि कुछ फ्लेवन्वायड यौगिक वाइरस से उत्पन्न बीमारियों में उपचार हेतु प्रयुक्त किये जा सकते हैं। क्वेरसेटिन एक्टमेलिया नामक वाइरस के विरुद्ध काफी सक्रिय पाया गया है।

मार्टिन एवं सहयोगियों ने एन्जाइम्स पर फ्लेवन्वायड यौगिकों की क्रिया का अध्ययन किया। हेस्पेरेडिन नामक यौगिक हायलोयूरीनीडेज नामक एन्जाइम पर सक्रिय पाया गया है। इसी प्रकार क्वेरसेटिन हेस्पेरेडीन डाईकार्बाक्सीलेज के विरुद्ध, 3 4, 3′, 4′- टेट्राहाइड्राक्सी चालकोन, लीवर जैन्थीन आक्सीडेज के विरुद्ध, एवं कुछ बाईफ्लेवन्वायड यौगिक कैटेकाल मेथिल ट्रान्सफेरेज के विरुद्ध सक्रिय पाये गये हैं।

नादकर्णी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इंडियन मैटिरिया' मेडिका में पोंगेमिया ग्लेबा के बीज से प्राप्त करंज तेल का त्वचा संबन्धी बीमारियों विशेषकर ल्यूकोडर्मा के उपचार में वर्णन किया है। रासायनिक परीक्षणों के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि इस तेल की सक्रियता इसमें उपस्थित करन्जोन, पोन्गेमिन एवं पोगेन्लेब्रोन नामक फ्यूरेनोफ्लेवोन यौगिकों के कारण होती है।

फ्लेवन्वायड यौगिक खाद्यपदार्थों के रूप में महत्वपूर्ण हैं और प्राय: सभी यौगिक विषैले प्रभाव से वंचित होते हैं। केवल फ्लोरीजीन (11) नामक यौगिक विषैला पाया गया है।

HO OH CH_2 —OH

CH_2

C

$C_6H_{11}O_5.O$ O

11
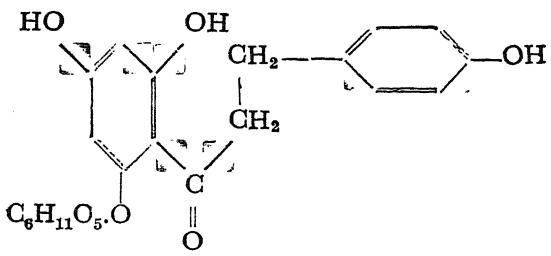
बेनेट एवं अंडरवुड (1936) ने अपने कुछ परीक्षणों में देखा कि आस्ट्रेलिया में क्लोवर नामक वृक्ष की पत्तियाँ अत्यधिक मात्रा में खाने वाली भेडें निस्संतान हो जाती थी। ब्रेडबरी और ह्वाइट ने बताया कि क्लोवर में जेनीस्टीन (12) नामक एक आइसोफ्लेवोन यौगिक पाया जाता है जो भेडों की प्रजनन शक्ति नष्ट कर देना है पिछले कुछ वर्षों में पता चला है कि कई आइसोफ्लेवोन यौगिक मादा जनन हारमोन की तरह व्यवहार करते हैं। इनमें मुख्य रूप से बायोचेनिन ए यूनेटिन, डेडजीन एवं फारमोनोनेटिन नासक यौगिक उल्लेखनीय हैं। आजकल कई संश्लिष्ट आइसोफ्लेवोन यौगिक मादा जनन हारमोन के रूप में औषधियों में प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

HO O

—OH

HO O

12
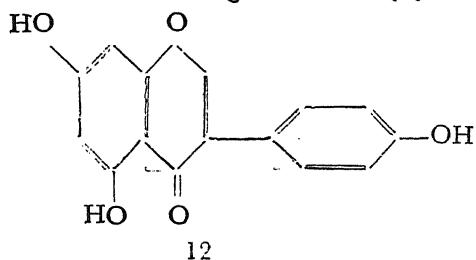
फ्लेवन्वायड यौगिकों के औषधीय गुण संबंधित अनेक प्रयोग किये गये हैं और ये विभिन्न व्याधियों के उपचार में उपयोगी सिद्ध हुये हैं। बहुत से यौगिक रक्त-वाहिनियों एवं हृदय के संकुचन तथा रक्तदाब को प्रभावित करते हैं। रेम्नस जेपोनिका के बीजों में पाये जाने वाले यौगिक कैम्पफेराल तथा केम्पफेराल, 7—रैम्नोग्लूकोसाइड रेचक होते हैं। अल्प मात्रा में दिये जाने पर क्वेरेसेटिन रक्त दाब के उपचार में सक्रिय पाया गया है। क्वेरसेटिन तथा कुछ अन्यफ्लेवनाल ग्लाइकोसाइड छोटी आँत के शीतीय संकुचन को तथा चूहों में नींद की कमीं करने में सक्षम पाये गये गये हैं। कुछ यौगिक रुधिर की लालरक्त-कोशिकाओं में पोटैशियम का विनिमय करते हैं।

विलमैन ने इन यौगिकों के विभिन्न उपयोगों का वर्णन किया है। इनका उपयोग शर्करा रोग, काला ज्वर, आर्थराइटिस, एलर्जी, रक्तस्राव, प्रसव, अल्बूमिन-जन्य, तथा एक्स किरणों एवं अन्य विकिरणों से उत्पन्न बीमारियों के उपचार में किया जा रहा है। अमेरिका में साधारण शीत के उपचार में फ्लेवन्बायड यौगिक युक्त औषधियाँ प्रचुरता से उपयोग में लाई जा रही है। कुछ यौगिक रेटिना एवं नेत्र सम्बन्धी बीमारियों, डरमैटाइसीस तथा विषाणु जनित बीमारियों के उपचार में भी प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

ग्रहों-उपग्रहों पर जीवधारियों के अस्तित्व की सम्भावनाएँ

□ श्याम मनोहर व्यास

तीन अन्तरिक्ष यात्रियों को लेकर अन्तरिक्ष यान अपोलो-8 का चन्द्रमा के चारों ओर परिभ्रमण करना इस शताब्दी की एक महत्वपूर्ण घटना है।

चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है। वहाँ उबड़-खाबड़ भूमि है, धातुओं की भस्म का ढेर है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार वहां जीवधारियों का अस्तित्व नहीं है। कभी कभी पृथ्वी के किसी भूभाग से उड़न तश्तरियाँ देखी जाती हैं। समाचार पत्रों में भी इनके बारे में काफी चर्चा होती रहती है।

उड़न तश्तरियाँ सचमुच वैज्ञानिकों के लिए रहस्य का विषय बनी हुई हैं।

क्या ये आकाशीय ग्रहों से आती हैं या केवल दृष्टि-भ्रम है? इस बारे में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। यदि ये उड़न तश्तरियाँ किसी अन्य ग्रह से आती हैं तो अवश्य ही वहाँ के प्राणी हमसे अधिक विज्ञान के क्षेत्र में बढ़े-चढ़े होंगे।

आइये, आज इसी पर विचार करें कि क्या विश्व में कहीं और भीजीवन की सम्भावना है, और है तो कितनी? सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ग्रहों-उपग्रहों पर ही जीवों का अस्तित्व सम्भव है, तारों-नक्षत्रों पर नहीं।

कारण स्पष्ट है कि तारे जलते हुए अग्निपिण्ड हैं।

इसके विपरीत ग्रह ठोस एवं ठंडे हैं।

हमारे सौरमण्डल में केवल दो ही ग्रह ऐसे हैं जहाँ जीवधारियों के अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है—

(1) शुक्र और (2) मंगल।

दोनों ही हमारी पृथ्वी के पड़ोसी ग्रह हैं।

इसके विपरीत बुध-वृहस्पति, शनि, यूरेनस आदि ग्रहों पर जीवधारियों का अस्तित्व सम्भव नहीं क्योंकि वे सब सूर्य से काफी दूर होने के कारण बहुत ठण्डे हैं या सूर्य के काफी पास होने के कारण अत्यन्त गर्म है।

दोनों ही परिस्थितियाँ जीवों के अनुकूल नहीं है।

मंगल ग्रह पर जीवन

मंगल सूर्य से बाइस करोड़ सत्तर लाख किलोमीटर दूर है। मंगल रात्रि में तारे के समान चमकता है।

जीव विज्ञान वेत्ताओं ने हाल ही में अमेरिका की नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन से कहा है कि वह अपने अनुसन्धान कार्य में ऐसे यन्त्रों को भी शामिल करेगा जो निकट भविष्य में शीघ्र मंगल की सम्भावित यात्रा में वहाँ विद्यमान जीवन की सूचना दे सकेंगे।

अन्तरिक्ष विज्ञान-वेत्ता जीव-विज्ञान की स्वचालित प्रयोगशाला मंगलग्रह पर भेज देंगे।

मंगल ग्रह पर पहुंच कर ये यन्त्र वहाँ की मिट्टी ले लेंगे और उसे कुछ रासायनिक यौगिकों के सम्पर्क में आने देंगे। यदि उस मिट्टी में अणु-जीव होंगे तो विकसित होंगे अन्यथा कोई रासायनिक क्रिया नहीं होगी।

प्रत्येक दशा में विद्युन्मय यन्त्रों की सहायता से संकेत धरती पर पहुंच जायेंगे। मंगल पर बड़े-बड़े धूल के तूफान उठते हैं। यदि वहाँ वनस्पति और नहरें हैं; तो अवश्य ही जीवों का अस्तित्व होगा।

सम्भवतः मंगल के प्राणी आकार में छोटे होंगे।

शुक्र ग्रह पर जीवधारियों का अस्तित्व

शुक्र ग्रह सूर्य से 10 करोड़ 78 लाख किलो मीटर दूर है। यह सूर्य की परिक्रमा 225 दिन में पूरी करता है। शुक्र ग्रह सदैव सफेद बादलों के घेरे में छिपा रहता है। यहाँ के वायुमण्डल में कार्बन डाइ आक्साइड की अधिकता है। अन्तरिक्ष-विज्ञान वेत्ताओं के अनुसार वहाँ पर वनस्पति भी है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डाक्टर हाबेर के कथनानुसार शुक्र का वायुमण्डल असंख्य जीवधारियों से भरा पड़ा है।

शुक्र के वायुमण्डल के अनुकूल ही वहाँ के जीवधारियों ने अपने आपको ढाल लिया होगा।

अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना जीव का स्वाभाविक गुण है।

सुदूर ब्रह्माण्ड में जीवन

पृथ्वी की आयु तीन अरब वर्ष मानी गयी है। आज की पृथ्वी का चित्र प्रारम्भिक पृथ्वी से बहुत ही भिन्न है। प्रारम्भ में पृथ्वी के वायुमण्डल में कार्बन पदार्थों की अधिकता थी।

कार्बन जीवों के लिए आवश्यक तत्व है। कार्बन की यह विशेषता है कि यह आपस में मिलकर कई जीव-तत्वों को जन्म देता है।

मीथेन गैस कार्बन और हाइड्रोजन का यौगिक है। कई ग्रहों पर मीथेन गैस काफी मात्रा में पायी जाती है। अनुमान है कि सृष्टि के आरम्भ में मीथेन गैस सौर-विकिरणों तथा ब्रह्माण्ड किरणों के प्रभाव में आकर कई ग्रहों-उपग्रहों में पहुँच कर वहाँ के समुद्रों में विलीन हो गयी।

कार्बन के वे ही यौगिक पानी से क्रिया कर जीवों में परिणत हो गये।

अन्य ग्रहों पर विभिन्न प्रकार के प्राणियों की कल्पना की जा सकती है।

उदाहरण के लिए यदि प्रकाश है तो जीव को आँखे प्राप्त होंगी। और, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् में प्रकाश की प्रचुरता है, अतएव हम आशा कर सकते हैं कि यदि किसी अन्य ग्रह पर प्राणी हैं तो उनकी भी आँखें मनुष्य की आँखों जैसी ही होंगी।

यह सोचना गलत है कि ईश्वर ने हमारी पृथ्वी पर ही अनुकूल वायुमण्डल पैदा कर जीवधारियों को जन्म दिया।

पृथ्वी के समान ब्रह्माण्ड के अन्य लाखों-करोड़ों ग्रहों पर भी जीवन विद्यमान है।

हमारे सौरमंडल का निर्माण एक नीहारिका से हुआ है। ब्रह्माण्ड में ऐसी बीस अरब निहारिकायें हैं।

हमारा सूर्य प्रकाश गंगा का एक सामान्य तारा है। कई ऐसे सितारों का पता चला है जिनके सूर्य की तरह ही ग्रह-परिवार हैं। आकाश गंगा में नये सितारे भी उदय हो रहे हैं।

डाक्टर पी० स्ट्रव का अनुमान है कि दूरदर्शक यन्त्र से दिखाई देने वाली आकाश गंगा में बीस लाख ग्रह ऐसे हैं जहां जीवन की सम्भावना है और वहाँ के जीवधारी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पृथ्वीवासियों से अधिक विकसित हैं।

डाक्टर शेपले के कथनानुसार तो लगभग एक अरब ग्रहों पर जीवधारियों का अस्तित्व है।

यदि वैज्ञानिक ऐसे ग्रह पर पहुंच जायं जो आकार में, आयु में, तापक्रम में पृथ्वी के बराबर हो तो निश्चित रूप से वहाँ उन्हें पृथ्वी के समान ही जीवन मिलेगा। विश्व में हम अकेले ही नहीं हैं।

चन्द्रमा पर पहुंचने के पश्चात् वैज्ञानिको का अगला पड़ाव मंगल और शुक्र ग्रह ही हैं।

● ●

हारमोन के चमत्कार

□ मुरलीधर प्रसाद सिंह

हमारे शरीर की वाहिनीविहीन अंतः स्रावी ग्रंथियों द्वारा हारमोनों की रचना होती है। ये ग्रन्थियां हारमोनों को सीधे रुधिर में उड़ेला करती हैं जिससे रुधिर प्रवाह के साथ यह हारमोन शरीर के विभिन्न भागों में पहुंच कर मेटावोलिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ये हारमोन शरीर के विभिन्न अंगों पर केवल उत्तेजक प्रभाव ही नहीं डालते वरन् निरोधक प्रभाव भी डालते हैं।

मानव शरीर में असंख्य हारमोन वाहिनी-विहीन ग्रंथियों द्वारा प्रत्येक क्षण स्रावित किए जाते हैं। वैज्ञानिकों की प्रतिभा कुछ विशेष प्रकार के हारमोनों की खोज कर चुकी है जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

आज के युग में अधिकाँश व्यक्ति मधुमेह (डायवेटीज) से परिचित हैं क्योंकि अधिकांश परिवारों में एक न एक व्यक्ति इस रोग से ग्रसित है। अग्न्याशय या पैंक्रियाज में पाई जाने वाली आइलेट्स ऑफ लैंगरहैन्स नामक कोशिकाओं द्वारा स्रावित इन्सूलिन नामक हारमोन की कमी से यह रोग हो जाता है। इन्सूलिन के अभाव में शकर का स्वांगीकरण नहीं हो पाता जो मूत्र के साथ निरंतर शरीर से बाहर निकलती रहती है। इन्सूलिन की सुई देकर इस रोग का इलाज होता है।

कोलीसिस्टोकाइनिन तथा सिक्रिरीन नामक हारमोन छोटी आँत द्वारा स्रावित होते हैं। ये अग्न्याशय और पित्ताशय को उत्तेजित करते हैं। ग्रेस्ट्रीन नामक हारमोन रुधिर प्रवाह द्वारा आमाशय में पाई जाने वाली गैस्ट्रीक ग्लेंड को उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप गैस्ट्रीक जूस का स्राव होता है जो भोजन पाचन में सहायता देता है।

स्वरयंत्र के दोनो किनारों पर पाई जाने वाली द्विपालिन थाइराएड ग्रन्थियों द्वारा बनाए गए हारमोन को थाइराक्सीन कहते हैं। थाइरॉक्सीन की कमी से बाल्यावस्था में क्रेटीनिज्म या जड़वामना नामक रोग हो जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के शरीर में कमजोरी, मस्तिष्क में कमजोरी, हृदय की गति धीमी तथा सुस्ती का अनुभव होता है। थाइराक्सीन के अभाव में प्रौढ़ मनुष्य को मिक्सोडेमा नामक रोग हो जाता है। इसमें सिर के बाल झड़ने लगते हैं, सिर में सदैव पीड़ा होती हैं, मेटाबोलिक क्रियाओं की गति मन्द पड़ जाती है। थाइराक्सीन की उचित मात्रा देकर इसका इलाज किया जाता है।

थाइराएड ग्रंथियों के पृष्टतल पर स्थित पैराथाइराएड ग्रन्थियों के द्वारा पैराथारमोन का स्राव होता है। इस हारमोन के अभाव में रक्त में कैल्सियम और फॉसफेट एकत्रित नहीं हो पाते जिसके फलस्वरूप हड्डियों की वृद्धि रुक जाती है। पैरा थारमोन की कमी से बच्चों को टिटैनी नामक रोग हो जाता है। आवश्यकता से अधिक पैराहारमोन के स्राव से हड्डियाँ कोमल और टेढ़ी हो जाती है।

शरीर में थाइराक्सीन की कमी से गलगंड हो जाता है। आयोडिन की कमी से यह रोग विशेष तौर पर होता है।

वृक्क के समीप स्थित एडरीनल ग्रन्थियों के बाहरी भाग कोरटेक्स से कोरटीन हारमोन बनता है। एडरीनल ग्रन्थि के भीतरी भाग मेड्‌यूला में एड्रीनेलीन या एपीनेफ्रीन हारमोन बनता है। गौण लैंगिक लक्षणों पर कोरटीन का

अधिक प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि पुरुष तथा स्त्री का लिंग ही बदल जाता है। इसका कारण अधिक कोरटीन का स्राव है।

एड्रीनेलीन का निर्माण आजकल प्रयोगशाला में भी होने लगा है। इसकी अधिकता से पेशियों में कुंचन होता है। परिणामतः रक्तचाप बढ़ जाता है। हृदय की गति मन्द पड़ जाने से एड्रीनेलीन की सूई दी जाती है।

लगभग तेरह हारमोन मस्तिष्क की प्रतिपृष्ठ सतह पर स्थित पियूष ग्रन्थि में बनते है। पियूष ग्रन्थि का अग्रभाग लगभग छः हारमोन उत्पन्न करता है। ये हारमोन गर्भाशय को उत्तेजित करने में प्रमुख स्थान रखते हैं। इनमें से कुछ हारमोंन वाहिनी विहीन ग्रन्थियों को हारमोन उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करते हैं। ये हारमोन व्यक्ति के कद का भी नियंत्रण करते हैं। इनकी वृद्धि से व्यक्ति नौ फीट लम्बा और कमी से बौना हो जाता है। बच्चों में ये अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इनकी अधिकता से एक्रोमिगली नामक रोग हो जाता है। शैशवावस्था में पियूष ग्रन्थि को निष्क्रिय कर देने पर इन हारमोनों के अभाव में जननग्रन्थियाँ क्रियाशील नहीं हो पाती। प्रोलैक्टीन नामक हारमोन स्तनि ग्रन्थियों को दूध बनाने के लिए उत्तेजित करता है।

मानव जीवन के अस्तित्व के बनाए रखने के लिए पुरुष के जननतंत्र में वृषण तथा स्त्री के जननतंत्र में अण्डाशय की कुछ कोशिकाएं क्रमशः शुक्राणु और अण्डे उत्पन्न करती हैं जिनके सायुज्य से निषेचन के पश्चात् शिशु का जन्म होता है। इन्हीं वृषण तथा अण्डाशय की कुछ कोशिकाएं कुछ विशेष प्रकार के हारमोन भी उत्पन्न करती हैं। शुक्राणु उत्पादक नलिकाओं की इण्डरस्टीशियल कोशिकाएं टेस्टोस्टीरोन तथा एण्ड्रोस्टेरोन नाम के हारमोन उत्पन्न करती हैं। इन्हीं के प्रभाव से युवकों में दाढ़ी-मूछ निकलती हैं और सारे शरीर पर बाल होते हैं।

अण्डाशय तीन हारमोंन पैदा करता है। ग्राफियन फालिकिल्स इस्ट्रोन का निर्माण करता है। पीत पिंड या कार्पस लूटियम प्रोजिस्टिरोन तथा रिलैक्सिन नामक दो हारमोन बनाता है। इस्ट्रोन और प्रोजिस्टरोन के कारण ही स्त्री के गौण लैंगिक लक्षणों का विकास होता है। स्तन की वृद्धि होती है और मासिक स्राव होता है। रिलैक्सिन प्रसव में मदद करता है। पेल्विक गर्डिल के लिगामेंट के ढीला हो जाने के कारण प्रसव आसानी से हो जाता है।

मानव तथा अन्य स्तनपायी जन्तुओं में वृषण उदर-गुहा से खिसक कर स्क्रोटल सैक में आ जाते हैं। प्लैसेंटा के द्वारा निर्मित हारमोन के कारण ही ऐसा हो पाता है। यदि वृषण उदरगुहा में स्थित होते हैं तो आवश्यकता से अधिक ताप में शुक्राणुओं के परिपक्वन में बाधा पड़ती। केवल हाथी ही एक ऐसा स्तनि है जिसके वृषण उदरगुहा में स्थित होते हैं। यह हारमोन भ्रूण में जननांगों के विकास पर भी नियंत्रण करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव शरीर के संचालन और क्रियाशीलता में हारमोनों का महत्वपूर्ण योगदान है। वैज्ञानिक इन सभी हारमोनों को प्रयोगशाला में निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं। मानव शरीर में पाए जाने वाले हारमोनों की संक्षिप्त सूची निम्न हैं।

(1) इन्सूलिन (2) कोलोसिस्टोकाइनिन
(3) सिक्रीटीन (4) गैस्ट्रिन
(5) थाइराक्सीन (6) पैराथारमोन
(7) कोरटीन (8) एपीनेफ्रीन
(9) प्रोक्लेटीन (10) टेस्टोस्टीरोन
(11) एण्ड्रोस्टेरोन (12) इस्ट्रोन
(13) प्रोजिस्टरोन (14) रिलैक्सिन
(15) प्लैसेंटा।

● ●

अनिश्चितता का सिद्धान्त

□ आशबिन्दु सिंह

अनिश्चितता का सिद्धान्त प्रकृति का मूल-भूत सिद्धान्त है। इसकी व्याख्या 1927 में जर्मन भौतिकविद् डब्लू हाइजेनबर्ग ने प्रस्तुत की थी। अनिश्चितता के सिद्धान्त को जानने से पूर्व हमें इसके उत्पत्ति के कारणों पर विचार करना चाहिए।

प्रकाश की आधारभूत प्रकृति सदैव से विवादास्पद रही है। आइजक न्यूटन ने प्रकाश को दिए हुए माध्यम में तेज वेग से चलने वाले कणों का प्रवाह माना। हाइगन्स का कथन था कि प्रकाश ईथर के माध्यम में तरंगों के रूप में संचारित होता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मैक्स प्लांक ने क्वांटम की अभिकल्पना प्रस्तुत की जिसने भौतिक विज्ञान को नई दिशा प्रदान की। उनके अनुसार विकिरण पानी की धारा के समान सतत प्रवाह नहीं हैं अपितु वह छोटे छोटे कणों के रूप में उत्सर्जित होता है। इसकी कल्पना हम मशीन गन से लगातार निकलती गोलियों से कर सकते हैं। इन छोटे छोटे कणों को 'क्वांटा' कहा गया। यह प्रकृति में रहने वाला ऊर्जा का सबसे छोटा सिक्का है। लुई दी ब्राग्ली ने बताया कि केवल विकिरण व प्रकाश को द्वैध नहीं समझना चाहिये अपितु इलेक्ट्रान, प्रोटान सभी द्वैध प्रकृति रखते हैं। उन्होंने कहा कि कोई भी घूमता हुआ कण, जो भी प्रकृति रखता हो, तरंग गुण अवश्य रक्खेगा। ये विरोधी भावनाएँ किस प्रकार स्वीकार की जायँ? इस समस्या का समाधान करने के लिये इरविन शाडिन्जर ने इलेक्ट्रानों को तरंग का पैकेट माना जो (मान लिया) एक छोटा सा क्षेत्र △स घेरे हुए हैं। इलेक्ट्रान को तरंग पैकेट समझने का अर्थ यह है कि किसी क्षण विशेष पर इलेक्ट्रान की स्थिति को एकदम शुद्ध रूप से नहीं बताया जा सकता। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि इलेक्ट्रान △स पर फैली तरंगों के समूह में कहीं पर है। एक लम्बे तरंग पैकेट में इलेक्ट्रान की स्थिति बहुत अनिश्चित हैं परन्तु वेग बहुत कम है अतः कण का वेग शुद्धतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। छोटे तरंग पैकेट में कण की स्थिति कम या अधिक स्थिर है, परन्तु ऐसे कण का फैला हुआ वेग अधिक है, अतः उसे शुद्धतापूर्वक नहीं मापा जा सकता। इस प्रकार या तो कण की स्थिति या कण का वेग दोनों में से एक ही को एक समय शुद्धतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। इसी को हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता-सिद्धान्त में प्रदर्शित किया गया है। जिसके अनुसार एक साथ किसी कण की स्थिति एवं संवेग शुद्धतापूर्वक ज्ञात करना असम्भव है। हाइजेनबर्ग ने सिद्ध किया कि यदि कण की स्थिति की माप में अनिश्चितता $\triangle x$ और उसके संवेग की माप में अनिश्चितता $\triangle p$ हो तो दोनों का गुणनफल लगभग प्लैंक स्थिरांक के बराबर होता है। गणितीय रूप में लिखने पर :

$$\triangle x \cdot \triangle p \approx \frac{h}{2\pi}$$

जहाँ $h = 6{\cdot}67 \times 10^{-27}$ अर्ग-सेकन्ड

स्पष्ट है कि जितनी शुद्धतापूर्वक हम स्थिति को नापेंगे उतनी ही अशुद्धता संवेग नापने में होगी। इसका विलोम भी सत्य है।

इसी प्रकार कण की ऊर्जा एवं समय के लिए भी एक फल प्राप्त होता है

$$\triangle E.\ \triangle t \sim \frac{h}{2\pi}$$

इसका अर्थ यह है कि हम जितनी ही शुद्धता किसी पारमाण्वीय घटना के घटित होने के समय के माप में करेंगे उतनी ही अशुद्धता ऊर्जा परिवर्तन के माप में होगी।

अनिश्चितता-सिद्धान्त की सत्यता एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है मान लीजिए हम किसी उपकरण-जैसे उच्च क्षमता वाला सूक्ष्मदर्शी—का उपयोग करके एक इलेक्ट्रान की स्थिति का पता लगाना चाहते हैं। यदि हम चाहते हैं कि इलेक्ट्रान की स्थिति का ठीक-ठीक पता लगाने में कम से कम अनिश्चितता व्याप्त हो तो हमें अत्यन्त लघु तरंग दैर्ध्य के विकिरण जैसे गामा किरणों का प्रयोग करना चाहिए। इलेक्ट्रान दिखलाई देने के लिये कम से कम एक फोटोन सूक्ष्मदर्शी से प्रकीर्णित होना चाहिए। यह फोटोन इलेक्ट्रान से प्रतिक्रिया करके उसे पीछे हटायेगा। इस क्रिया में काम्पटन प्रभाव के अनुसार फोटान से कुछ संवेग इलेक्ट्रान ग्रहण कर लेगा। इस संवेग परिवर्तन के परिमाण में अनिश्चितता व्याप्त है क्योंकि इसका मान फोटोन के प्रकीर्णन की दिशा के अनुसार बदलता है। हम फोटोन के प्रकीर्णन होने के परास को निश्चित दिशा में सीमाबद्ध नहीं कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए सूक्ष्मदर्शी की क्षमता को बहुत ज्यादा घटाना होगा जो कि इलेक्ट्रान की स्थिति के बारे में कम शुद्धता देगा। गणितीय रूप से विवेचना करने पर हम उस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं जिसे हाइजेनबर्ग ने बताया है।

भौतिक ढंग से विचार करने पर अनिश्चितता पूर्ण शुद्धता के स्थान पर सम्भाविता को जन्म देती है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि इलेक्ट्रान किसी निश्चित कक्षा में घूम रहा है। केवल इतना ही कह सकते हैं कि इलेक्ट्रान के वहां होने की सम्भाविता बहुत अधिक है। परन्तु हमेशा यह सम्भावना है कि वह कहीं भी हो सकता है।

नील्स बोहर के अनुसार हाइजेनबर्ग का अनिश्चितता-सिद्धान्त उसी घटना का पूरक वर्णन करता है। अर्थात् किसी घटना का पूरा चित्र पाने के लिए हम पदार्थ के कण तथा तरंग दोनों गुणों का वर्णन करते हैं। परन्तु अनिश्चितता सिद्धान्त के अनुसार कोई ऐसा प्रयोग नहीं किया जा सकता जो एक समय दोनों गुणों को प्रदर्शित करे। प्रयोग उद्देश्यानुसार तरंग या कण दोनों में से एक ही गुण को बतला सकेगा।

सभी भौतिक घटनाओं में अनिश्चितता व्याप्त है। प्लैंक स्थिरांक सभी निरीक्षित घटनाओं से संबन्धित है। इस सम्बन्ध में एक अपवाद है—गुरुत्वाकर्षण। यद्यपि गुरुत्वाकर्षण भी ऊर्जा एवं संहति गुण के रूप में प्रदर्शित होता है परन्तु अद्यावधि हम इसके बारे में बहुत अल्पज्ञान रखते हैं। अतः कोई निश्चित धारणा बनाना असंगत होगा।

कुछ दार्शनिक अनिश्चितता सिद्धान्त को प्रकृति का मूल सिद्धान्त मानते हैं। दूसरी तरफ भौतिक शास्त्री विश्वास करते हैं कि वे विकिरण तथा पदार्थ का एक सफल सिद्धान्त प्रतिपादित करने में अभी तक असमर्थ हैं।

विज्ञान-वार्ता

चिकित्सा में उपयोगी समुद्र के विषैले जन्तु

अष्टपाद उन समुद्री जन्तुओं में से हैं जिनसे गोताखोरों को घृणा है। आठ भुजाओं वाले इस जन्तु के सर्प-सदृश आठ ग्रन्थिकेश होते हैं। इस जन्तु के कारण सतर्क न रहने वाले अनेक गोताखोरों को समुद्र-तल पर मृत्यु का शिकार होना पड़ता है।

अष्टपाद को सामान्यतया 'दानव मछली' कहते हैं। समुद्र के अन्दर यह जन्तु भीषण आक्रमण करता है। साथ ही यह लार उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियों से ऐसा विष छोड़ता है जिससे उसके शिकार शक्तिहीन हो जाते हैं।

किन्तु 'दानव मछली' को शीघ्र ही मनुष्यों से उचित सम्मान प्राप्त होने लगेगा। कैलिफोर्निया में 'वर्ल्ड लाइफ रिसर्च सेण्टर' के डा० ब्रूस हालस्टेड ने पता लगाया है कि अष्टपाद की लार से हृदय-रोग से पीड़ित व्यक्तियों के जीवन की रक्षा की जा सकती है।

डा० ब्रूस ने लार से एक ऐसा विषैला अंश अलग किया है जो रक्त को जमने से रोकता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस विषैले तत्व से निकाले गये सत्व का उपयोग उन रोगियों का उपचार करने में किया जा सकता है जिनके हृदय की धड़कन कभी तेज और कभी मन्द हो जाती है।

अष्टपाद के अतिरिक्त और भी बहुत से ऐसे जहरीले समुद्री जन्तु हैं जिनके विष से निकाले गये सत्व रोगी मनुष्यों की प्राणरक्षा कर सकते हैं।

छानबीन से सिद्ध हो गया है कि समुद्र के अनेक विषैले जन्तु मानवजाति के रक्षक भी हो सकते हैं बशर्ते कि रोगी के शरीर में उनका विष उचित मात्राओं में पहुंचाया जाये।

न्यूयार्क नगर में समुद्री विज्ञान सम्बन्धी ओसबर्न प्रयोगशालाओं के निदेशक डा० रोज नाइग्रेली ने पता लगाया है कि 'सी क्यूकम्बर' नामक छोटे समुद्री जन्तु का विष कैन्सर के विकास को मन्द कर देता है और कभी-कभी उसे रोक भी देता है। क्योंकि इस जन्तु का जहर नाड़ी की गतियों का प्रवाह रोक देता है, इसलिए जिन व्यक्तियों का कोई अंग काट दिया जाता है उनका आपरेशन के बाद इलाज करने में यह जहर वरदान सिद्ध हो सकता है।

समुद्री औषधियों के क्षेत्र में एक अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति हैं नायेमी विश्वविद्यालय के डा० चार्ल्स लेन। उन्होंने पता लगाया है कि जेलीफिश नाम समुद्री मछली जिस घातक तन्तु-गुच्छे का निस्सरण करती है उससे घावों (अलसर) और हृदय-रोगों का इलाज किया जा सकता है।

'स्टार फिश' से भी एक दवा प्राप्त होती है। यह दवा मांसपेशियों को बल प्रदान करती है। वैज्ञानिकों ने इस सत्व को गर्भ-निरोध की दृष्टि से भी बहुत गुणकारी पाया है।

चूहों के साथ किये गये परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि स्क्विड मछली से प्राप्त पाओलिन नामक सत्व से पक्षाघात और इन्फ्लूएंजा के विषाणुओं से पीड़ित रोगियों की रक्षा की जा सकती है।

समुद्र में घोंघे प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। इनसे भी विविध रोगों की औषधियां प्राप्त होती हैं।

अनुसन्धानकर्ताओं का कथन है कि समुद्री घोंघे से एक नई रोगाणुनाशक दवा प्राप्त की जा सकती है। बड़ी सीपी से एक ऐसी दवा तैयार की जा सकती है जिससे खून को जमने से रोका जा सकता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में पल कर बड़ी होने वाली शम्बुक (सीपदार मछलियों) से शरीर के किसी भी भाग को सुन्न करने के लिए सत्व प्राप्त किया जा सकता है, जो सामान्य दवाओं से अनुमानतः 1 लाख गुना अधिक प्रभावकारी होगा।

कैल्प नामक समुद्री घास से तैयार किया गया मिश्र पदार्थ शरीर से स्ट्रान्शियम-90 का नाश करने में सहायक हो सकता है। दीर्घकाल तक कायम रहने वाले आणविक विखण्डनीय पदार्थों में यह एक सबसे खतरनाक पदार्थ समझा जाता है।

चिकित्सा वैज्ञानिकों को पता चला है कि समुद्री साही (सी अरचिन) तथा कुछ समुद्री कीड़ों से प्राप्त किये गये विष से कैन्सर के सजीव केशाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। उन्होंने घोंघे नुमा उदरपाद (गेस्ट्रापॉड) का अध्ययन किया और देखा कि वह मांस-पेशियों को आराम देने वाला एक ऐसा तत्व उत्पन्न करता है जिसे किसी दिन शायद मांश-पेशियों की ऐंठन दूर करने वाली दवा के रूप में विकसित किया जा सकता है।

तपेदिक के रोगियों को भी समुद्री जीव-जन्तुओं से दवा प्राप्त हो सकती है। लाल दाढ़ी वाले स्पन्ज (शोषक जलजीव) के शरीर में एक ऐसा संयुक्त पदार्थ होता है जो तपेदिक रोग का मुकाबला करने में उपयोगी समझा जाता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि औषधियों के स्रोत के रूप में समुद्र की छानबीन का उनका कार्य अभी प्रारम्भ ही हुआ है। मनुष्य के लिए समुद्र के विदोहन—समुद्र के तल पर उत्पादन करने, खनिजों का पता लगाने, पेट्रोलियम निकालने आदि—के सम्बन्ध में किये जाने वाले अन्य परीक्षणों के साथ आज की प्रारम्भिक सफलताओं से भविष्य में बड़े-बड़े लाभ होने की आशा है।

कृत्रिम फेफड़े से श्वास-क्रिया का संचारण

इंजिनियरों और वैज्ञानिकों के सहयोग से ऐसी अनेक मशीनें और विधियां सामने आई हैं जिनका विकास इनमें से किसी एक वर्ग द्वारा अकेले नहीं किया जा सकता था।

कृत्रिम फेफड़ा भी एक ऐसी ही मशीन है। यह कृत्रिम फेफड़ा उन छोटे बच्चों के लिए तैयार किया गया है जिन्हें जन्म के कुछ समय बाद ही सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। रक्त को एक नली के द्वारा बच्चे के शरीर से मानव-निर्मित फेफड़े में और वहां से पुनः शिशु के शरीर में पहुंचाया जाता है। इस प्रकार शिशु के अपने फेफड़े के ठीक ढंग से काम न करने पर भी उसे जीवित रखा जाता है।

मशीनी फेफड़ा प्रायः धागा लपेटने वाली चरखी जैसा दीखता है। प्रयोगशालाओं में और पशुओं के साथ किये गये सफल परीक्षणों के बाद अमेरिका के कई अस्पतालों में अब इस मशीन का उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है।

कृत्रिम फेफड़े का विकास 1968 में अमेरिका के राष्ट्रीय हृदय एवं फेफड़ा संस्थान में चिकित्सकों, जीवशास्त्रियों और इंजीनियरों की एक टोली ने किया था।

मानव रोगियों पर मशीनी फेफड़े का पहली बार प्रयोग करते हुए उसे उन शिशुओं के लिए काम में लाया जा रहा है जिनका जीवन साँस लेने में कष्ट होने के कारण खतरे में होता है। यह स्थिति विशेषकर उन शिशुओं में पाई जाती है जिनका जन्म समय से पहले हो जाता है और जिनके फेफड़े स्पष्टतः अभी इतने विकसित नहीं होते कि उन्हें जीवित रख सकें। ऐसे शिशुओं की श्वास-प्रणालियां जवाब दे देती हैं और उन्हें बहुधा वह रोग हो जाता है जिसे 'हाइएलिन मैम्बरेन डिजीज़ कहते हैं। यह रोग-प्रायः सदैव घातक होता है। रोग का यह नाम उस झिल्ली (मैम्बरेन) के कारण है जो बीमारी के दौरान फेफड़े के महत्वपूर्ण हिस्सों पर

फैल जाती है। इस रोग की रोकथाम अथवा चिकित्सा का कोई प्रभावकारी उपाय अभी मालूम नहीं हुआ।

सामान्य परिस्थितियों में, फेफड़े में से होकर प्रवाहित होने वाला सांस ताजी ऑक्सीजन ग्रहण करता है और कार्बन डायऑक्साइड छोड़ता है जो सांस छोड़ने से बाहर चली जाती है। शरीर में अपनी प्रक्रिया के दौरान रक्त शरीर के हिस्सों को ऑक्सीजन प्रदान करता है। शरीर के ये भाग बिना ऑक्सीजन के अधिक समय तक क्रियाशील नहीं रह सकते।

शरीर में संचरण करते हुए रक्त कार्बन डायऑक्साइड को इकट्ठा भी करता है। यह एक प्रकार की गैस हैं जिसे शरीर द्वारा उत्सर्जित कर दिया जाता है। यदि कार्बन डायऑक्साइड को न हटाया जाये तो इसके जमा होने से शरीर में विष उत्पन्न हो सकता है और इसकी बहुत बड़ी मात्रा घातक सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार फेफड़े का मुख्य कार्य शरीर में संचरण करने वाले रक्त को सांस द्वारा ग्रहण की गई ऑक्सीजन प्रदान करना और रक्त से कार्बन डायऑक्साइड को हटाना है।

कृत्रिम फेफड़ा शरीर में इन गैसों को पहुँचाने और निकालने का काम सिलिकन रबड़ की बहुत पतली झिल्ली की मदद से करता है। यह झिल्ली एक मिलिमीटर के 1200वें भाग जितनी पतली होती है और यह नली के रूप में होती है जो कृत्रिम फेफड़े के बीच की चरखी के इर्द-गिर्द आवरण की तरह लिपटी होती है। इस चपटी नली पर ऑक्सीजन के प्रवेश करने और गैस की निकासी के रास्ते बने होते हैं।

रोगी के शरीर से नली में से होकर बहने वाला रक्त एक ओर से चरखी में प्रवेश करता है और उसके बाद सिलिकन के आवरण की परतों के बीच उस समय तक प्रवाहित होता रहता है जब तक रक्त चरखी के दूसरे सिरे से निकल कर एक अन्य नली के द्वारा रोगी के शरीर में नहीं लौट जाता।

क्योंकि रक्त की यह विशेषता है कि जब उसका संसर्ग अपने ही शरीर की आन्तरिक सतहों से भिन्न किसी अन्य वस्तु से होता है तो वह जम जाता है, इस लिए रक्त के कृत्रिम फेफड़े में प्रवेश करने से पूर्व ही रक्तवाहिनी नली में हेपारिन नामक रासायनिक द्रव्य को पहुंचाया जाता है। हेपारिन रक्त को जमने से रोकता है।

कृत्रिम फेफड़े से रक्त के बाहर आ जाने के बाद प्रोटामाइन नामक एक अन्य रासायनिक द्रव्य को नली में पहुँचाया जाता है जिसमें रक्त में जमने की सामान्य विशेषता फिर से आ जाये। ऐसा होना आवश्यक हैं क्योंकि यदि रक्त में जमने की क्षमता न रहे तो मामूली सा घाव होने पर भी रोगी के शरीर से इतना रक्त बह सकता है कि वह मर जायेगा और साथ ही शरीर के भीतर रक्तस्राव होने पर उस पर काबू नहीं पाया जा सकेगा।

कृत्रिम फेफड़ा प्रति मिनट 450 घन सेन्टिमीटर (लगभग 1 पाइन्ट) रक्त को ऑक्सीजन प्रदान करता है।

श्वास लेने में सहायक झिल्ली वाले अन्य साधनों की तुलना में कृत्रिम फेफड़े का एक मुख्य लाभ यह है कि ऑक्सीजन के प्रवेशद्वार के निकट ऑक्सीजन को उसके द्वारा एक हलके से रिक्त स्थान में थोड़ा-थोड़ा ठहर कर ग्रहण किया जाता है।

हवा खींचने की इस प्रक्रिया से ऑक्सीजन बुलबुलों के रूप में रक्त में प्रवेश नहीं कर पाती क्योंकि उस अवस्था में यदि झिल्ली में से हवा निकलने लग जाये तो रोगी को खतरा हो सकता है।

इस प्रक्रिया से होने वाले स्पन्दन द्वारा रक्त का फेफड़े में संचार होने लगता है और इसके लिए रक्त की धौंकनी की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह इसका विशेष लाभ है क्योंकि रक्त धौंकनियों से कोशिकाओं और बिम्बाणुओं जैसे रक्त के कुछ कोमल घटकों को प्रायः स्थायी रूप से हानि पहुंचती है।

ज्ञान-विज्ञान

गर्भ-निरोधक गोलियों से नवजात शिशुओं में पीलिया रोग

गर्भाधान के पूर्व गर्भ-निरोधक गोलियां खाने वाली माताओं के स्तनपान करने वाले नवजात शिशु पीलिया रोग से पीड़ित हो सकते हैं।

ब्रिटेन के दो चिकित्सकों की खोज के अनुसार अनेक शिशु जन्मोपरांत लगभग एक सप्ताह तक पीलिया रोग से पीड़ित हो सकते हैं। इस अवस्था में चिकित्सक रोग को सामान्य मानते हैं क्योंकि जीवन के प्रारम्भिक दिनों में रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन के भंग होने के कारण विलीरूबिन नामक वर्णक उत्पन्न होता है और इसके प्रभाव को नवजात शिशु का अर्धविकसित यकृत वहन नहीं कर पाता। फलस्वरूप पीलिया रोग के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि एक सप्ताह से भी अधिक समय तक पीलिया रोग से पीड़ित शिशुओं की अधिकांश माताओं ने गर्भाधान के पूर्व इन गोलियों का प्रयोग किया था। ऐसे शिशुओं को बोतल से दूध पिलाने पर रोग के लक्षण विलुप्त होते देखे गये हैं।

बैटरी चालित स्वदेशी ट्रांजिस्ट्रीकृत टेलीविजन

ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतवितरण व्यवस्था के अभाव को ध्यान में रख कर भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के इलैक्ट्रानिक पद्धति विभाग, अहमदाबाद ने बैटरी अथवा विद्युत से चलने वाला एक टेलीविजन सेट तैयार किया है जो कम लागत पर प्राप्त हो सकेगा।

इस विभाग के निदेशक डा० बी० एस० राव ने इसका ब्यौरा देते हुए बताया कि यह किसी भी प्रकार के विद्युत स्रोत से बनाया जा सकेगा। इसमें सामान्यतः प्रयुक्त होने वाले वाल्वों के स्थान पर ट्रांजिस्टर लगाये गये हैं।

डा० राव के अनुसार पहली जून 1974 से इन ट्रांजिस्टर युक्त टेलीविजन सेटों के दैनिक कार्यक्रम उस कृत्रिम उपग्रह की सहायता से प्राप्त होने लगेंगे जो अमेरिका की 'नासा' (अमेरिका का राष्ट्रीय वैमानिकी तथा अंतरिक्ष प्रशासन) के द्वारा 1973 के उत्तरार्द्ध में छोड़ा जाएगा।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से

अण्डों को सुरक्षित रखने की नई तकनीक

केन्द्रीय खाद्य औद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर में एक ऐसी नई तकनीक विकसित की गयी है जिससे शीत-संग्रहागार में रखे बिना ताजे अंडों को और भी अधिक समय तक अन्य उपायों द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है।

इस तकनीक के अनुसार ताजे अण्डों के ऊपर पेट्रोलियम सम्बन्धित निरूपण द्वारा अभिक्रिया की जाती है। निरूपण में उचित परिरक्षक मिश्रित रहते हैं। निरूपण को अभिक्रिया के पश्चात बहा दिया जाता है और गीले अण्डों को शुष्क करने के उपरान्त डिब्बों में भर लिया जाता है।

इस सम्पूर्ण क्रिया में लगभग दो घण्टे लगते हैं। ऐसे अण्डों को लगभग चार सप्ताह तक सामन्य ताप पर बिना हानि सुरक्षित रखा जा सकता है। इस क्रिया में सामान्य

उपकरण ही प्रयुक्त होते हैं।

व्यापारिक पूछ-ताछ के लिये प्रबन्ध निदेशक, नेशनल रिसर्च डेवलपमेण्ट कारपोरेशन ग्राफ इंडिया, 61 रिंग रोड, लाजपत नगर नई दिल्ली–24 से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

तंजानिया में जल शुद्धि

केन्द्रीय जल स्वास्थ्य इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान, नागपुर ने तंजानिया के जल में फ्लोराइडों की मात्रा न्यून रखने के लिये संयंत्र स्थापना हेतु सर्वेक्षण किया है। उत्तर तंजानिया के ग्रारुश नामक क्षेत्र के जल में फ्लोराइडों की मात्रा 3 से 18 मि० ग्रा० प्रतिलिटर तक पाई गई है।

दांतों को हानि से बचाने के लिये फ्लोराइड लाभकारी तो है पर पानी में उनकी मात्रा 1·0 मि० ग्रा० प्रतिलिटर से अधिक बढ़ जाने पर वे हानि पहुंचाने लगते हैं।

इस संस्थान ने अपने देश में 5,000 से 8,000 स्थापित किये अनेक संयंत्र क्षमता वाले गैलन प्रति दिन हैं। इसमें डी० फ्लोरीन–2 नामक विधि प्रयुक्त होती है।

तंजानिया में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु डी–फ्लोराइडनेशन संयंत्र लगाने का सुझाव भारत सरकार के समक्ष रखा गया है। संयंत्र इस संस्थान द्वारा भारत में ही निर्मित किया जाएगा।

कम्प्यूटर द्वारा अपराधियों पर घेरा

भगोड़े अपराधियों का सफलतापूर्वक पीछा करने के लिये पश्चिम जर्मनी की जीमेन्स नामक कम्पनी ने एक ऐसी कम्प्यूटर नियंत्रित प्रणाली अपनाई है जिससे गश्ती पुलिस गाड़ियों की सूचना टेलीविजन के पर्दे पर निरन्तर मिलती रहेगी। इस प्रकार पुलिस नियंत्रण केन्द्र गश्ती पुलिस गाड़ियों को आवश्यक निर्देश दे सकेगा। निश्चित समय पर गाड़ियों से रेडियो संकेत प्राप्त होने पर उनकी स्थितियों के आधार पर अपराधी को चारों ओर से घेरने के निर्देश दिये जा सकेंगे।

विज्ञान समाचार

मूंगफली के आटे से 'पनीर'

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर में दूध के स्थान पर मूंगफली तथा अन्य तिलहनों से पनीर तैयार किया गया है। इसके लिये मूंगफली या अन्य तिलहन के आटे में समुचित मात्रा में फास्फेट लवण, हाइड्रोजनित वनस्पति तेल और इमल्साफायर मिलाकर उसे उपयुक्त ताप पर उपचारित किया जाता है। इससे जो पदार्थ मिलता है वह देखने में ही नहीं अपितु खाद्य गुणों में भी दूध से बने पनीर जैसा ही होता है।

चमड़े की कतरनी से चमड़ा-बोर्ड

केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान, मद्रास के वैज्ञानिकों ने बेकार समझे जाने वाली चमड़ा-कतरनों से चमड़ा-बोर्ड 'इंसौल काउंटर, जैसे उपयोगी पदार्थ बनाने की विधि विकसित की है जिसमें बहुतायत से व्यर्थ के रूप में फेंक जाने वाले कतरनों का भी व्यापारिक उपयोग किया जा सकेगा। इस विधि से बेकार क्रोम कमाये और वनस्पति कमाये चमड़ों की बेकार कतरनों का सदुपयोग किया जा सकेगा। इन कतरनों से व्यापारिक हानि के अतिरिक्त प्रदूषण की भी संभावना रहती है।

इस चमड़ा बोर्ड से साइकिल औजार रखने का थैला, पुस्तकों की जिल्द जैसे अनेक उपयोगी सामान बनाये जा सकते हैं। क्रोम कमाये चमड़े की कतरनों से तैयार किया गया चमड़ा बोर्ड अपेक्षाकृत अधिक स्थायी और अधिक तापरोधी होता है।

आज देश में लगभग 5000 टन बोर्ड प्रतिवर्ष तैयार किये जाते हैं पर मांग लगभग 10,000 टन आंकी जाती है। ये बोर्ड मुख्य रूप से छाल कमाये चमड़े से तैयार किये जाते हैं।

संस्थान में किये गये परीक्षणों में यह पाया गया है कि प्रतिवर्ष 300 टन चमड़ा बोर्ड उत्पादन की दर से प्रति बोर्ड की कीमत 4.20 रुपया आने का अनुमान है।

इस विषय में व्यापारिक पूछताछ के लिये प्रबंध-निदेशक राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, भारत, 61 रिंग रोड, लाजपतनगर, नयी दिल्ली-24 से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

लाइसिन उत्पादन का विकसित प्रक्रम

केन्द्रीय औषधि अनुसंधान-संस्थान (सी० डी० आर० आई०) लखनऊ, में लाइसिन उत्पादन के लिये माइक्रोकाकस ग्लूटेमिक्स नामकजीवाणु का एक ऐसा उत्परिवर्ती विभेद तैयार किया गया है जो सामान्य संवर्धा माध्यम पर संवर्धन कराये जाने पर 20 ग्राम लाइसिन प्रति लिटर उत्पन्न कर सकता है।

हमारे शरीर के समुचित विकास के लिये लाइसिन एक महत्वपूर्ण एमिनो एसिड है। यह खाद्य पदार्थों को अंग लगाने में सहायता देता है। पर हमारा शरीर स्वयं इसे नहीं बना सकता। एसलिये इसे हमें भोजन के रूप में ग्रहण करना पड़ता है।

देश में व्यापक रूप से फैली प्रोटीन अल्पपोषकता को दूर करने हेतु आजकल आटे और डबलरोटी में लाइसिन मिलायी जाती है पर इसकी सम्पूर्ण मांग विदेशों से ही माल मंगा कर पूरी की जाती है।

मृदुजल से हृदय रोग

निरंतर मृदु जल पीते रहने से हृदय रोग में कमी और मृत्यु की संभावनाएं कम होती हैं। ये निष्कर्ष लंदन स्कूल आफ हाइजिन एंड ट्रौपिकल मेडिसिन के वैज्ञानिक डा० मार्गरेट काफोर्ड और उनके सहयोगियो ने निकाले हैं।

उपर्युक्त वैज्ञानिकों द्वारा किये गये विस्तृत अध्ययनों के दौरान यह देखा गया है कि उन नगरों में जहां पिछले 30 वर्षों के दौरान मृदु जल के स्थान पर कठोर जल सप्लाई किया गया, हृदय रोग तथा मृत्यु की दर कम हो गयी। इसके विपरीत कठोर जल के बदले मृदुजल उपयोग करने वाले नगरों में हृदय रोगों से पीड़ित होने वाले और मरने वालों की संख्या में काफी कमी पायी गयी।

इस अध्ययन में हृदय रोग के लिये उत्तरदायी अन्य कारण, जैसे धूम्रपान, गरिष्ठ भोजन, शोरगुल आदि कारकों को सम्मिलित नहीं किया गया है। अब इस विषय पर विस्तृत अध्ययन किये जा रहे हैं।

नये पोलीएस्टर वस्त्र

जापान की एक फर्म ने ऐसे पोलीएस्टर वस्त्र तैयार किये हैं जो गुणों में सूती वस्त्र के समान हैं। प्रचलित पालीएस्टर-वस्त्रों की तुलना में यह उच्च ताप पर नहीं पिघलते और न घर्षण से इस पर स्थित ही उत्पन्न होती है। इसकी एक और विशेषता यह है कि यह सूती वस्त्र के समान पसीने का अवशोषण करता है परन्तु धूल मुक्त रहता है।

इन गुणों के समावेश के लिये वस्त्र को विशेष रासायनिक घोलों से उपचारित करके धागों के सतह की आण्विक संरचना में परिवर्तन किया जाता है। समझा जाता है कि पालीएस्टर-वस्त्र के कपड़ों की दुनियां में इससे नई क्रान्ति आयेगी।

मनोवृत्तियों के नियंत्रण हेतु रसायन

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक संस्था के अध्यक्ष डा० केनेथ बी० क्लार्क ने सुझाव दिया है कि शीर्षस्थ नेताओं द्वारा आणविक युद्ध संबंधी निर्णय लेने की संभावनाओं को रोकने के लिये ऐसे रसायनों की खोज की जाय जिससे उनकी मनोवृत्तियों को नियंत्रित किया जा सके। दूसरे शब्दों में उसके युद्ध संबंधी निर्णयों पर नियंत्रण रखा जा सके जिससे वे किसी मानसिक उत्तेजनावश युद्ध संबंधी कोई निर्णय न ले सकें।

इने-गिने शीर्षस्थ नेताओं के हाथों में विश्व आणविक शक्ति का केन्द्रीयकरण देखकर यह सुझाव रखा गया है क्योंकि किसी भी ऐसे राजनीतिज्ञ के पागलपन से आणविक युद्ध छिड़ने और विश्व नष्ट होने की संभावना है।

नये लघु उद्योगों की संभावनाएं

स्टेनलेस इस्पात के बर्तनों पर तांबा-लेपन

केन्द्रीय विद्युत रसायन अनुसंधान संस्थान, कराईकुडी में स्टेनलेस इस्पात बर्तनों पर तांबा लेपन का एक ऐसा प्रक्रम विकसित किया गया है जिससे मंहगे निकिल के स्थान पर स्टेनलेस स्टील के ऊपर तांबे का सीधे तौर पर लेपन किया जा सकता है। इस विकसित प्रक्रम में उपचारित बर्तन को पुनः कापर सल्फेट घोल से उपचारित किया जाता है।

बर्तनों की तली पर तांबा-लेपन के उपरांत उनकी सुचालकता बढ जाती है और भोजन पकाने में अत्यन्त सुविधा होती है।

आवश्यक रसायन देश में उपलब्ध हैं। 8 घंटे में 20 से० मी० व्यास वाले 25 बर्तनों पर तांबालेपन किया जा सकता है। प्रति वर्ग मीटर सतह के तांबालेपन में 750 रु० का व्यय आता है।

इससे लघु उद्योग में इच्छुक व्यक्ति प्रबन्ध निदेशक, नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कारपोरेशन आफ इंडिया, 61 रिंग रोड, लाजपतनगर, नई दिल्ली-24 से सम्पर्क स्थापित कर सकते है।

भूख आयोडीन की

बदलते हुए जमाने के साथ-साथ भूख ने भी अपने चेहरे बदले हैं। वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ नई 'भूख' का भी पता लगा है। कोई प्रोटीन का भूखा है, कोई विटामिनों का तो कोई खनिजों का। कुछ लोगों को भोजन में पर्याप्त कैल्सियम नहीं मिलता, तो कुछ लोग लोहे के अभाव से पीड़ित हैं। इसी तरह विश्व की लगभग बीस करोड़ जनता आयोडीन की 'भूख' से पीड़ित है। विश्व के सभी देशों में बच्चों से लेकर बूढ़ों तक में गलगण्ड (गाइटर) नाम की बीमारी मिल जाएगी, जो आयोडीन की भूख का ज्वलंत संकेत है।

हमें बहुत अधिक आयोडीन की आवश्यकता नहीं रहती। 150 माइक्रो ग्राम आयोडीन दिन भर के लिए पर्याप्त रहती है। इतनी आयोडीन थाइराइड ग्रंथि के हारमोन थायराक्सिन के लिए काफी है। इसी थायराक्सिन का 67 प्रतिशत भाग आयोडीन के अस्तित्व के लिए काफी हैं। इस थायराक्सिन का 67 प्रतिशत भाग आयोडीन से निर्मित होता है। इसकी कमी से एक अन्य ग्रंथि पीयूष में थाइराइड को उद्दीपित करने वाला हारमोन पैदा होने लगता है। इसके फलस्वरूप थाइराइड बढ़ कर गाइटर के रूप में बदल जाती है।

प्राचीन समय में भी गलगण्ड का उपचार आयोडीन के यौगिकों की सहायता से किया जाता था। ईसा से 2500 वर्ष पूर्व के हिन्दू ग्रथों में गलगण्ड और उसके समुद्री घास, नमक, स्पंज इत्यादि वस्तुओं से उपचार का उल्लेख है। नेपोलियन के समय में एक वैज्ञानिक ने समुद्री घास को उबालते समय देखा कि वह बर्तन धीरे-धीरे मोर्चा खा गया हैं। बाद में प्रयोगों से पता चला कि समुद्री घास में उपस्थित आयोडीन के कारण ही ऐसा हुआ था। तभी से आयोडीन गलगण्ड की विशेष औषधि के रूप में स्वीकार की गई।

एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में उपलब्ध कुल आयोडीन भंडार दो तिहाई हिस्सा थाइरांइड ग्रंथि में जमा रहता है। शेष भाग हड्डियों रक्त, नाड़ी और अन्य कोशिका समूहों में रहता है। शरीर व्यवस्था को सुचारू रूप में रखने के लिये आयोडीन अत्यन्त आवश्यक हैं। यह शरीर में आवश्यक रसायनों के संतुलन को ठीक रखने में सहायक होता है।

आयोडीन फेफड़े की सूजन, पुरानी खांसी, दमा आदि की एक अचूक दवा है। लेकिन यह उपचार केवल डाक्टर की अनुमति से ही करना चाहिए। धमनियों के कठोर हो जाने पर तथा हृद्-रोगों में पोटैशियम आयोडाइड का उपयोग होता हैं, लेकिन अब रेडियधर्मी आयोडीन तैयार हो जाने से इसका महत्व कम हो गया है।

शरीर के विशेष अंग का एक्स-किरण चित्रण करने तथा ल्यूरोस्कोप में भी आयोडीन का उपयोग होता है। इसके उपयोग से चिकित्सक मूत्र नली की सूजन, श्वास नलो में अवरोध तथा उसकी सूजन, पित्ताशय और गुर्दे की पथरी आदि की आसानी से जांच कर सकता है। आयोडीन के उपयोग से हृदय की धमनी और रक्त कोशिकायें आदि स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगती हैं और रक्त संचालन क्रिया का दोष दूर किया जा सकता है।

'आमातिसार' रोग के उपचार में आयोडीन प्रयुक्त की जाती है। इसके लिए इसकी 'वायोफार्म' नामक टिकिया काम में लायी जाती है। पानी में पाये जाने वाले इस रोग के कीटाणु भी आयोडीन से बनी 'डिग्नी-कोकोल-हाइड्रोइड' टीकियो की सहायता से नष्ट किए जा सकते हैं।

गर्भवती स्त्रियों को आयोडीन की विशेष आवश्यकता रहती है। इसकी कमी से बच्चा दुर्बल और कमजोर मस्तिष्क का रह जाता है।

पोटैशियम आयोडाइड यौन रोगों की एक अच्छी दवा है। आयोडीन का मलहम, गर्दन, बगल और पेट के नीचे की ग्रंथियों के फूल जाने पर लगाया जाता है। सूजन के साथ दर्द होने पर मलहम में 'विंटरग्रीन' मिलाकर लगाने से यथेष्ट लाभ होता है।

रेडियधर्मा आयोडीन

परमाणु विज्ञान की चिकित्सा शास्त्र को सबसे बड़ी देन है रेडियोधर्मी आयोडीन। रोगों के निदान व उपचार में यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। उदाहरणार्थ, थाइराइड ग्रंथि की परीक्षा करने के किए चिकित्सक रोगी को रेडियो-धर्मी आयोडीन का घोल पिलाते हैं। इसको पिलाने के 48 घंटा में ही गाइगर काउण्टर यंत्र से हमें पता लग जाता है कि कितना आयोडीन उस ग्रंथि को प्राप्त हुआ। थाइराइड ग्रंथि के अधिक क्रियाशील हो जाने पर आयोडीन (रेडियधर्मी आयोडीन) के परमाणु अधिक क्रियाशील कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं। परन्तु आस-पास के अन्य अंगों को इससे कोई हानि नहीं होती।

एन्जाइना पेक्टोरिस नामक कष्टदायक हृदय-रोग में में रेडियधर्मी आयोडीन बहुत लाभ पहुंचाती है। हृदय की गति में अवरोध होने पर भी यह उपयोगी पायी गयी है। आयोडीन थाइराइड ग्रंथि की क्रिया को मंद कर देती है। इससे शरीर की शक्ति का क्षय कम हो जाता है। कभी-कभी रेडियोधर्मी आयोडीन का प्रभाव अत्यन्त चमत्कारी होता है। उसके उपयोग से ऐसे रोगी भी, जो वर्षों से बिस्तर पकड़े रहते हैं, बिल्कुल निरोग हो जाते हैं।

थाइराइड ग्रंथि के कैंसर का इलाज भी अब रेडियो-आयोडीन से होने लगा है। इस कैंसर से ग्रस्त कोशिकायें फेफड़ों को आसानी से अपना शिकार बना लेती हैं। ऐसी अवस्था में रेडियोधर्मी आयोडीन ही इसका एकमात्र उपचार है। थाइराइड के कैंसर के कारण एक रोगी के फेफड़ों में सूजन आ गयी थी। ग्रंथि का आपरेशन करवाया गया लेकिन फेफड़ों में सूजन रह ही गयी, रेडियोधर्मी आयोडीन द्वारा उपचार होने से उसके दोनों फेफड़े ठीक हो गए।

आयोडीन प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक वरदान है। इसकी सहायता से असाध्य समझे जाने वाले अनेक रोगों का उपचार अब आसानी से होने लगा है।

- **अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी का ही प्रयोग करें।**

- **हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। उसको आदर की दृष्टि से देखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।**

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० |3|5|

भाग 109	ज्येष्ठ 2028 विक्र०, 1892 शक मई-जून 1972	संख्या 5-6

आणवीय मृत्यु या सम्पूर्ण शरीर की मृत्यु पर एक विचार

□ सुरेश चन्द्र

सिकन्दर महान् केवल 33 वर्ष की अवस्था में मर गया, नेपोलियन बोनापार्ट की मृत्यु कम अवस्था में हुई, जॉन मिल्टन, महान कवि, जिसे शेक्सपियर के बाद दूसरा स्थान दिया जाता है, कम आयु में ही मर गया, श्री रामानुजन जो भारत के महान गणितज्ञ थे केवल 33 वर्ष की अवस्था में परलोक सिधार गये, स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु भी थोड़ी आयु में हो गयी, संत तुलसीदास की मृत्यु 108वर्ष में हुई और लगभग सभी नेपाल नरेश अपनी 49-52वर्ष की अवस्थायें प्राप्त करके परलोक सिधारते गये, एक बार धर्मयुग में निकला कि पंजाब में एक व्यक्ति कीउम्र 160 वर्ष की है। इन विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों से भिन्न कुछ अन्य लोग भी कम अवस्था या अधिक आयु को प्राप्त होकर मरते रहते हैं। कुछ बच्चों की मृत्यु जन्म के तत्काल या कुछ दिनों में हो जाती है।

पूर्वोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि लोग अपनी भिन्न-भिन्न आयु में मरते हैं न कि ईश्वर द्वारा पहले से निश्चित की हुई आयु में, जैसा कि बहुधा लोग कहते हैं। मृत्यु का कारण न तो कमजोरी है और न मजबूती। यह दूसरी ही वस्तु है जो मृत्यु का निमित्त बनती है। मृत्यु में ईश्वर का कोई हिस्सा नहीं है बल्कि पूर्वजों से पैतृक रूप में पायी गयी अवस्था ही प्राकृतिक आणविक मृत्यु का वास्तविक कारण है।

यदि हम अपने शरीर का परीक्षण करें तो हम पायेंगे कि हमारा शरीर छोटे-छोटे कणों का बना है ये कण शरीर की इकाई हैं और कोशा (Cell) कहलाते हैं। दो प्रकार के द्रव इन कोशाओं में भरे रहते हैं, पहला सोमेटोप्लाज्म (Somatoplasm) है जो माँस हड्डी आदि बनाते हैं इसमें हमारी कुछ भी उत्सुकता नहीं है। दूसरा जर्मप्लास्म (Germplasm) है जो कि जन्यु कोशाओं (Germcells) में भरा रहता है अर्थात् शुक्राणु (Sperm) और अंड (Ova) जो नर और मादा शरीरों में रहते हैं वंशानुगत गुणों को भूत से भविष्य तक

बनाये रखने में बहुत ही मुख्य वस्तु हैं। ये पैत्रक गुणों के उत्तरदायी होते हैं। जो निषेचन (Fertilization) के दौरान एक शरीर से दूसरे में पहुँचते हैं।

निषेचन (Fertilization) में, नर अपने शुक्राणुओं को मादा शरीर में गिराता हैं, जो अंड (Female-Germplasm) रखता है, और एक सबसे शक्तिशाली शुकाणु अंड को वधकर भीतर पहुंच जाता है और जब यह क्रिया सम्पादित होती है उस समय नर और मादा दोनों के ही गुण परस्पर जुड़ने के समय नव निर्मित शरीर (Zygo.e) में चले जाते हैं जो शिशु का विकास करते हैं। शुक्राणुओं और अंड कोशाओं के मध्य में भिन्न प्रकार का गाढ़ा जर्मप्लास्म रहता है। कोशिका विभाजन प्रारम्भ होने पर यह भिन्न प्रकार का आकार विलीन हो जाता है और धागे के समान आकार धारण कर लेता है। इन्हें क्रोमोसोम्स (Chromosomes) कहते हैं। इनकी पूरी लम्बाई पर छोटे-छोटे बिंदु जैसे कण रहते हैं जो जीन्स (Genes) कहलाते हैं। ये जीन्स गुणों के निर्णायक हैं। इनमें से कुछ लिंग निर्णायक होते हैं जो नवजात शिशु के लिंग भेद पर प्रभाव डालते हैं। अर्थात नर या मादा शिशु बनने के कारण यही जीन्स होते हैं। दूसरे प्रकार के निर्णायक शिशु संरचना के कारण होते हैं, इनके प्रभाव के द्वारा ही शिशु-कान्ती, नीली या भूरी आँखें, भूरे बाल, लंबा या नाटापन और अपने माता-पिता की शक्ल प्राप्त करते हैं। तीसरे और सबसे मुख्य प्रकार के निर्णायक, मृत्यु सम्बन्धी निर्णायक (Fatal determiners) या लीथल फैक्टर (Lethal Factor) हैं जो मृत्यु के उत्तरदायी हैं और मनुष्य को उनकी पूर्वजों से प्राप्त शक्ति के आधार पर एक निश्चित आयु प्रदान करने की रहस्यमयी सामर्थ्य रखते हैं।

अक्सर हम यह समाचार सुनते हैं कि अमुक नवजात बच्चा गत हो गया। ऐसा क्यों हुआ ? यह लीथल फैक्टर की क्रिया है जो तुरन्त क्रिया शील हो गया। किन्तु यह लीथल फैक्टर भिन्न भिन्न उम्र में क्रिया शील होता है, इसी कारण लोग भिन्न-भिन्न आयु में मरते हैं। यह लीथल फैक्टर, अपने पूर्वजों से शक्ति प्राप्त करता है और इसी कारण से यह मानव संतति से गहरा सम्बंध रखता है। यही मुख्य कारण है जो नेपाल के राज परिवार में राजाओं की शीघ्र मृत्यु का निमित्त बनता है, और यही कारण सभी जातियों के जीवों की मृत्यु का उत्तरदायी है। जीन्स सदैव पूर्वजों से ही शक्ति प्राप्त करते है, अतः हमारी मृत्यु का उत्तरदायित्व भी हमारे पूर्वजों पर है।

उपरोक्त विवरण हमारे जीवन और मृत्यु के संबंध में ईश्वरीय हस्तक्षेप के सभी विचारों का निराकरण कर देता है। अर्थात ईश्वर इस हीन मानसिक विचारों का नहीं है कि वह हमारे मृत्यु और जन्म में बाधा डाले। हमारा शरीर शक्ति पुंज या ईश्वर का एक अंश है और ईश्वर अपने ही अंश को नष्ट नहीं करेगा। अतः यह स्पष्ट है कि मृत्यु जिसे लोग कहते हैं वास्तव में मृत्यु नही बल्कि परिस्थिति पर आधारित अवस्था परिवर्तन है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ और जीवन

□ ललित कुमार

हमारे शरीर में कुछ विशेष प्रकार की ग्रन्थियां पायी जाती हैं जो नलिका रहित होती हैं। इसीलिये इन्हें नलिका रहित ग्रन्थियां कहते हैं। ये ग्रंथियां कुछ प्रकार के स्राव उत्पन्न करती है जिन्हें हारमोन कहते हैं। हारमोन्स शरीर की अनेकों जीव रासायनिक क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं। ये उद्दीपन व अवरोध दोनों प्रकार की क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं। इनके स्रावों का स्रवण रक्त धारा में होता है। आधुनिक परिभाषा के अनुसार हारमोन उन्हीं स्रावों को कहा जाता है जो अन्तः स्रावी ग्रंथियों द्वारा निकलते हैं।

1915 में डा० स्मिथ ने देखा कि यदि चूहे की पियूष (पिच्यूटरी) ग्रंथि को निकाल दिया जाये तो वह मर जाता है। उसके शरीर का परीक्षण करने पर पता चला कि चूहे के शरीर की सभी ग्रंथियां नष्ट हो चुकी थी जिसके कारण वह मरा। इस प्रकार डा० स्मिथ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पियूस ग्रंथि के स्राव द्वारा ही अन्य सभी ग्रंथियां संचालित रहती है।

इस प्रकार पियूष हमारे शरीर की एक प्रमुख ग्रंथि है जो अन्य सभी ग्रंथियों को संचालित करती हैं। इसका आकार मटर के समान होता है। यह हमारे शरीर के अग्र भाग में, मस्तिष्क के नीचे खोपड़ी में पूर्ण रूप से सुरक्षित रहती है। इसकी रचना को हम तीन भागों में बांट सकते हैं। अग्र, मध्य व पश्च।

अग्रभाग से तेरह प्रकार के स्राव उत्पन्न होते हैं। जो विभिन्न क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं। उन तेरह में एक स्राव वृद्धि वर्धक होता है। जिसे सोमेटोट्रोफिन कहते हैं। इसी की कमी के कारण ही कुछ मनुष्य बौने रह जाते हैं जिन्हें आपने सर्कस आदि में देखा होगा। इस भाग के कुछ अन्य हारमोनों के नाम इस प्रकार हैं जैसे ऐडेनोकार्टिको ट्रोफिन (ए० सी० टी० एच०), थाइरो-ट्रोफिन, प्रोलेक्टिन, गोनाडोट्रोफिन आदि।

मानव शरीर में रक्त चाप का बढ़ जाना, प्रसूति के गर्भ का सिकुड़ जाना तथा मूत्र का शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाना, पश्च भाग के स्रावों की कमी का कारण होते हैं। इस भाग के अन्य स्राव नासोप्रेसिन व आक्सीटोसिन है। आक्सीटोसिन के कारण ही मादा के स्तनों से दुग्ध का निष्कासन होता है। तथा प्रसूति काल के बाद मादा साधारण अवस्था में आ जाती है।

मध्य भाग से निकलने वाले स्राव को इण्टरमीडीन कहते हैं। ये हारमोन्स त्वचा के मीलोनोफोर कोशिकाओं पर प्रभाव डालते हैं। मनुष्य को इसकी भूमिका का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। वैसे अन्य वर्ग जैसे मत्स्य, सरीसृप व एम्फीबिया आदि में ये जन्तुओं की सुरक्षा में सहायक होते हैं। यदि कोई जन्तु प्रकाशहीन स्थान पर बैठा हो तब यह स्राव त्वचा के रेशों में फैल कर वातावरण के अनुकूल रंग कर देता है जिससे शत्रु जन्तु उसको नहीं देख पाते प्रकाश में आते ही इसका प्रभाव नष्ट हो जाता है तथा त्वचा अपनी पुरानी हालत में आ जाती है।

नारियों में पियूष ग्रंथि दो प्रकार के स्राव उत्पन्न करती है, जो अंडाशय के विकास तथा उसमें उपस्थित ग्रंथियों को उत्तेजित करते हैं। जिसके फलस्वरूप एक प्रकार का स्राव उत्पन्न होता है जो स्तन, जननेन्द्रिय, योनि व गर्भाशय आदि भागों का विकास करता है। इसी स्राव के द्वारा ही नारियों में ऋतु चक्र प्रारम्भ होता है। उन दो स्रावों में से एक नारी के अंडाशय में अण्ड उत्पन्न करता है। यदि ये अण्डे फलित नहीं होते

तो वे ऋतु चक्र या मासिक धर्म के साथ बाहर निकल जाते हैं। यह चक्र स्त्रियों में लगभग 30 वर्ष तक चलता है।

यदि इसी बीच अण्डाशय का अण्ड फलित हो जाता है तब पियूष ग्रंथि अपना पहला स्राव बन्द कर देती हैं। जिसके परिणाम स्वरूप पीतकाय उत्तेजित हो एक प्रकार का स्राव उत्पन्न करता है जो मासिक धर्म बन्द कर देता है तथा साथ ही नवीन अण्डों का बनना भी बन्द हो जाता है।

इस प्रकार जब अण्डाशय कुछ महीनों में पूर्ण विकसित व परिपक्व हो जाता है, तब पियूष ग्रंथि पुनः पहला स्राव उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देती है। जिससे पुनः मासिक धर्म यथावत् प्रारम्भ हो जाता हैं। पूर्ण परिपक्व होने की दशा के आने तक नारियों के स्तन दुग्ध से परिपूर्ण हो चुकते हैं। कुछ ही समय बाद एक नवजात शिशु अपनी किलकारियों भरी आवाज सहित इस दुनियां में कदम रखता है।

हमारे देश के हिमाचल प्रदेश की आधी से भी ज्यादा जनता गले के गोईटर रोग से ग्रसित थी, जिसका कारण आयोडीन की कमी था। गले में एक स्राव ग्रंथि होती है जिसे थाइराइड़ कहते हैं। जो थाइरोक्सीन नामक हारमोन को उत्पन्न करती है। आयोडिन इस हारमोन का प्रमुख अंग होता है जिसकी कमी के कारण ही गले में गोइटर रोग उत्पन्न हो जाता है। यदि थाइरोक्सीन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो तब गोइटर रोग की सम्भावना नहीं होती क्योंकि ये आयोडिन की कमी को पूर्ण कर देता है। समुद्र के निकट रहने वाली जातियां प्रायः अपने भोजन में समुद्री शैवाल आदि का प्रयोग करती है यही कारण है कि समुद्र के निकट रहने वाले नागरिकों में यह रोग नहीं पाया जाता।

थाइराइड की स्रावों की कमी के कारण बहुत सी बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे शरीर के ताप का गिरना, हृदय धड़कन का कम होना कमजोरी, बालों का झड़ जाना बोलते समय गले में तकलीफ महसूस करना, आलस्य का आ जाना आदि इस स्राव की कमी के कारण हैं। इसकी कमी से मीक्सीडिया नामक रोग भी हो जाता है। थाइराइड के स्राव जीवन भर नहीं निकलते हैं इसके स्रावों की मात्रा उम्र के अनुसार घटती जाती है। थाइराइड के स्राव की अधिकता में वे सभी हालतें आती हैं जो स्राव की कमी के कारण होती है परन्तु ये सारी बीमारियां ठीक विपरीत रूप में होती हैं।

पेराथाइराइड ग्रंथि, थायराइड ग्रंथि से ही संलग्न रहती हैं। इस ग्रंथि को सबसे पहले 1850 में भारतीय गैंडों में देखा गया था। यह ग्रंथि सभी उच्च कशेरुक प्राणियों, स्तनधारी, पक्षी, सरीसृप, एम्फिबिया आदि में पायी जाती है। पेराथायराइड की संख्या परिवर्तनशील है वैसे प्रायः इनकी संख्या चार होती है। स्तनधारियों में इसका वजन सिर्फ 0·12 ग्रा० होता है। ये गेहूँ के दानों के समान होती है। इसके स्राव का संश्लेषण सबसे पहले 1925 में हुआ था परन्तु स्राव पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं था। सन् 1959 में पूर्ण रूप से शुद्ध स्राव उत्पन्न किया गया। यह लगभग 80 अमीनों अम्लों का बना होता है इसका अणु भार 9000 है। इसके हारमोन शरीर के रक्त के केल्सियम व फास्फोरस की मात्राओं को नियन्त्रित करते हैं। इसके हारमोन में उपस्थित केल्सिटोनिन नामक पदार्थ कैल्सियम की मात्राओं को नियन्त्रित करता है।

हमारे शरीर में वृक्क के अग्र भाग में एड्रिनल ग्रंथि का एक जोड़ा पाया जाता है। महान वैज्ञानिक एडिसन ने 'एडिसन डिसीज़' को इसी ग्रंथि के नष्ट हो जाने का कारण बताया था। इसीलिये इस बीमारी का नाम एडिसन डिसीज रखा गया। इस ग्रंथि को भी दो भागों में बांटा जा सकता है। एड्रिनल मज्जा व एड्रिनल कोटला। वैसे दोनों से निकलने वाले स्राव की रचना लगभग समान होती है। इन दोनों ग्रंथियों का संचालन पियूष द्वारा निकलने वाले ए० सी० टी० एच० नामक स्राव द्वारा होता है। कै होना, दस्त आना, भूख का न लगना, रक्त की कमी हो जाना मूत्र में नमक की मात्रा का बढ़ जाना तथा पोटोसियम की मात्रा का कम होना, पेशियों का कमजोर हो जाना विकास का रुक

जाना इडीमा रोग का हो जाना आदि एड्रिनल मज्जा के नष्ट हो जाने पर प्रतीत होते हैं। एड्रिनल कोटला दो प्रकार के स्राव एड्रिलिन व नारएड्रिलिन उत्पन्न करती है। यह ग्रंथि जीव को किसी भी वातावरण में अनुकूल करने में सहायक होती है। प्रायः यह ग्रंथि प्रतिकूल वातावरण में ही प्रभावित होती है।

1959 में सबसे पहले अग्नाशय द्वारा उत्पन्न रोग को वान मेरिग और मिनकोस्की ने कुत्तों में पाया। इसके द्वारा उत्पन्न स्राव का नाम इन्सूलिन है। आधुनिक युग में मधुमेह को पूर्ण रूप से नियन्त्रित कर लिया गया है। इस रोग में शरीर में शर्करा का उपापेचयन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता अतः वह मूत्र के साथ निकलना प्रारम्भ कर देता है। इन्सूलिन का इंजेक्सन लगाने पर शर्करा का मूत्र से निकलना बन्द हो जाता है। इन्सूलिन एक प्रकार का प्रोटीन होता है। जिसका अणुभार 600 होता है। और यह लगभग 51 अमीनो अम्लों का बना होता। है। मधुमेह के रोग में शरीर की अनेकों अन्य क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। जैसे रक्त में शर्करा की मात्रा का बढ़ जाना, मूत्र का अधिक होना, रक्त दाब का बढ़ हो जाना, मूत्र से शर्करा का निकलना आदि, कभी-कभी मृत्यु इस रोग का कारण बनती है। इस हारमोन पर शरीर की अनेकों यांत्रिक क्रियायें नियन्त्रित रहती हैं। क्योंकि शर्करा का उपापचयन इन्सूलिन द्वारा होता है जिससे हमें शक्ति मिलती है।

पुरुषों में वृषण व नारियों में अंडाशय ऐसी ग्रंथियां होती हैं जो नर व मादा में भेद उत्पन्न करती हैं। वृषण से उत्पन्न स्राव को टेस्टोस्टेरोन कहते हैं। यही वह स्राव है जिसके कारण नर में पुरुषत्व के गुण उभरते हैं। किशोरावस्था के उपरान्त दाढ़ी मूछ का निकल आना, आवाज में भारीपन हो जाना, मांस पेशियों का मजबूत हो जाना तथा शरीर के प्रत्येक भाग पर जवानी का मचल आना इसी स्राव के कारण होता है। टेस्टोस्टेरोन में एन्ड्रोजेन नामक पदार्थ पाया जाता है। कुछ नारियों में दाढ़ी आदि का निकल आना इसी पदार्थ का कारनामा होता है।

एस्ट्रोजेन, एस्ट्राडिओल इस्ट्रोम और प्रोगेस्ट्रोम आदि नारी जनन-अंग के हारमोन्स होते हैं। एस्ट्रोजेन, प्रोगेस्ट्रोम क्रमशः आतंर-प्रवारक व कारपस लियूटियस तथा लूटियल कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं। ये दोनों स्राव नारी की जनन क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं जो हमेशा उत्पन्न होते हैं। एस्ट्रोजेन ममेरी ग्रंथि को उत्तेजित करता है। ये नारी में जनन अंगों की रचना को गति प्रदान करते हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों पर स्राव ग्रन्थियां निरंतर अपना स्राव संश्लेषित करती है। आंत आदि में अग्नाश्य स्राव अपने साथ तीन प्रकार के एन्जाइम रखता हैं। जो भोजन पर विभिन्न प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर में हारमोन्स का एक विशिष्ट स्थान है। यहां तक कि हमारे शरीर की सभी भौतिक व रसायनिक क्रियायें इन्हीं उत्प्रेरकों पर ही निर्भर हैं। इतना कुछ ज्ञान होते हुये भी पिनियल व थाइमस आदि ग्रंथियां हमारे लिये रहस्य का विषय हैं।

● ●

विभाजन सिद्धान्त के लिये भारतीय गणितज्ञ रामानुजन का योगदान

ओमप्रकाश दुबे

विभाजन सिद्धान्त से तात्पर्य किसी धनात्मक पूर्णांक को छोटे से छोटे धनात्मक पूर्णांक में हरेक संभव ढंग से विभाजित करने की क्रिया से होता है। उदाहरणार्थ : 5 को निम्नलिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है

4+1, 3+2, 3+1+1, 2+2+1, 2+1+1+1, 1+1+1+1+1

इस प्रकार से 5 को 6 ढंग से लिखने के साथ-साथ स्वयं 5 को भी विभाजन के अन्तर्गत रखना चाहिये। इसलिये 5 का विभाजन निम्नलिखित होगा।

5, 4+1, 3+2, 3+1+1, 2+2+1, 2+1+1+1, 1+1+1+1+1

अतः 5 का विभाजन संख्या 7 हैं। इसी प्रकार 6 का विभाजन निम्नलिखित होगा

6, 5+1, 4+2, 3+3, 3+2+1, 2+2+2, 2+1+1+1+1, 3+1+1+1, 4+1+1, 1+1+1+1+1+1, 2+2+1+1

अतः 6 का विभाजन संख्या 11 है।

इसी प्रकार 7 या 8 या अन्य किसी संख्या का भी विभाजन किया जा सकता है। एक का विभाजन संख्या एक ही है और शून्य का भी विभाजन संख्या एक ही है।

इन परिणामों को सांकेतिक ढंग से भी प्रदर्शित किया जाता है। जैसे—

प (1)=1

प (2)=2

प (3)=3

प (4)=5

यहाँ पर प (न) संकेत से तात्पर्य किसी पूर्णांक न के विभाजन की कुल संख्या से है।

अनेक गणितज्ञों के प्रयत्न से बहुत सी संख्याओं को विभाजन संख्या को ज्ञात किया गया है इस प्रकार से ज्ञात 20 संख्याओं के विभाजन संख्या की एक तालिका निम्नलिखित है।

प (न) के विभाजन के लिये तालिका,

जहाँ न=0, 1,2,3,4....20

प (0)=1	प (11)=56
प (1)=1	प (12)=77
प (2)=2	प (13)=101
प (3)=3	प (14)=135
प (4)=5	प (15)=176
प (5)=7	प (16)=231
प (6)=11	प (17)=297
प (7)=15	प (18)=385
प (8)=22	प (19)=490
प (9)=30	प (20)=627
प (10)=42	

किसी दिये हुये संख्या का विभाजन ज्ञात करने के लिये कोई न कोई एक निश्चित विधि होनी चाहिये। इसी प्रकार की एक विधि का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

किसी एक रेखा में न इकाई लिखी। अन्तिम दो इकाइयों को 2 से विस्थापित कर दिया, इसके बाद दो इकाइयों को 2 से फिर विस्थापित किया और जब तक संभव हो विस्थापित करने की क्रिया। फिर न−3 और 3 को लिखा, दो इकाइयों को 2 द्वारा विस्थापित किया। न−6 इकाई और दो 3 लिखा, 2

द्वारा दो इकाइयों को विस्थापित किया। इस विधि की सहायता से 5 का विभाजन निम्न प्रकार से होगा।

11111, 1112, 122, 113, 23, 14, 5 अर्थात् कुल 7 विभाजन हुये। और 7 का विभाजन होगा :

1111111, 111112, 11122, 1222, 11113, 1123, 223, 133, 1114, 124, 34, 115, 25 16,7 अर्थात् कुल 15 विभाजन हुये।

इस विधि द्वारा विभाजन को लिखने में भूल होने की कम संभावना है, किन्तु विभाजन लिखना सरल नहीं है। कोई भी इस बात की कल्पना कर सकता है कि 100 का विभाजन करने में कितना अधिक समय और परिश्रम लगेगा। इसलिये गणितज्ञों ने सरल और कम परिश्रम से विभाजन निकालने की विधि का आविष्कार किया। स्विज गणितज्ञ पुलर ने एक विधि का आविष्कार किया, जिसे जनक फलन की विधि (Method of generating function) कहते हैं, जिसमें फ (जनक फलन कहलाता है) के एक दिये हुये फलन के श्रेणी में एक प्रसार के फ के विभिन्न घातों का गुणांक न के विभिन्न विभाजन देता है। इस प्रकार :

$$ज\,(फ) = \frac{1}{(1-फ)\,(1-फ^2)\,(1-फ^3)\,---\,आदि}$$
$$= प\,(0) + प\,(1)\,फ + प\,(2)फ^2 + प\,(3)\,फ^3 + प\,(4)\,फ^4 + \ldots.$$

पुलर के द्वारा आविष्कृत यह विधि विभाजन को प्राप्त करने के लिये यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विधि है। परिणाम स्वरूप हम न से कम संख्याओं के विभाजन के साथ प (न) को जोड़ता हुआ निम्नलिखित संबंध, जिसे रिकर्सन (Recursion) कहते हैं, प्राप्त करते हैं, जो न के विभाजन की संख्या को प्राप्त करने के लिये बहुत सहायक है बशर्ते न से कम संख्याओं के लिये वे ज्ञात हों।

$$प\,(न) = प\,(न-1) + प\,(न-2)\,\,प\,(न-3) - प\,(न-7) + --- + (-1)^{क-1} प\left(न - \frac{3क^2-क}{2}\right) + (-1)^{क-1} प\left(न - \frac{3क^2+क}{2}\right)$$

उदाहरणार्थ : हम सिद्ध कर सकते हैं कि

$$प\,(20) = प\,(19) + प\,(18) - प\,(15) - प\,(13) + प\,(5) + प\,(8)$$
$$= 490 + 385 - 176 - 101 + 7 + 22$$
$$= 875 - 277 + 29$$
$$= 904 - 277$$
$$= 627$$

जो प (20) का मान है।

प (न) के अंकगणितीय गुणों पर रामानुजन का अनुमान :—

भारतीय महान गणितज्ञ श्री निवास रामानुजन ने प (न) के मानों के पर्यवेक्षण से निम्नलिखित अनुमान लगाया और बाद में सिद्ध भी किया।

(अ) प (5न+4), 5 का पूर्ण गुणक है।

(ब) प (7 न+5), 7 का पूर्ण गुणक है।

(स) प (11 न+6), 11 का पूर्ण गुणक है।

जहाँ न=0, 1, 2, 3 आदि है।

अब (अ) को लेने पर—प (4), प (9), प (14), प (19), प (24) इत्यादि 5 के पूर्ण गुणक हैं। फिर (ब) को लेने पर—प (5), प (12), प (19), प (26) इत्यादि 7 के पूर्ण गुणक हैं।

इसी प्रकार (स) को लेने पर—प (6), प (17) प (28), प (39) इत्यादि 11 से पूर्ण गुणक हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि रामानुजन ने इसके आगे भी बताया और सिद्ध किया कि प (25 न+24), 5^2 के द्वारा पूर्ण भाज्य है। इसी प्रकार वे 7^2 और 11^2 के द्वारा भाज्यता के सापेक्ष परिणाम प्राप्त किये और $\delta = 5^{अ}, 7^{ब}, 11^{स}$ द्वारा भाज्यता के सापेक्ष एक सामान्य अनुमान दिया, जहाँ अ, ब, स अब 0, 1, 2, 3 इत्यादि हैं। रामानुजन ने अनुमान लगाया कि प $(म\delta + \lambda)$, δ के द्वारा प्रत्येक म के लिये भाज्य है, जहाँ λ, $(24\lambda - 1)$, δ के द्वारा पूर्ण भाज्य है, संबंध को संतुष्ट करता है।

आचार्य जगदीशचन्द्र बसु

□ **संकलित**

आचार्य जगदीश चन्द्र बसु का जन्म मेमनसिंह नाम के स्थान में 30 नवम्बर 1858 को हुआ। आपके पिता श्री भगवानचन्द्र बसु डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फरीदपुर में हुई। उच्च शिक्षा के हेतु आप कलकत्ता आये और सेन्ट जेवियर्स स्कूल में नाम लिखाया। माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्ति हेतु आपने सेन्ट जेवियर्स कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आप फादर लाफोन्ट के सम्पर्क में आये और उनके प्रभाव से आपको विज्ञान की प्रयोगिक शिक्षा में विशेष रुचि उत्पन्न हुई। आप विशेष कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी नहीं थे। बी० ए० आनर्स में आपको द्वितीय श्रेणी ही प्राप्त हो सकी, आपके सम्बन्धी श्री आनन्द मोहन बसु ने जो केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय रेंगलर थे आपको विशेष प्रभावित किया। आपकी उत्कट इच्छा इंगलैण्ड जा कर आगे के अध्ययन करने की थी। धनाभाव के कारण आपको बड़ी कठिनाई थी। आपकी माता जी ने अपने आभूषण बेचकर आपके इंग्लैण्ड के व्यय की व्यवस्था की। आसाम में रहने के समय आप पर कई बार मलेरिया का प्रकोप हुआ। इस लिए आपकी इच्छा इंगलैण्ड जाकर औषधि विज्ञान पढ़ने की थी किन्तु वहाँ प्राकृतिक विज्ञान की ओर आपका अधिक झुकाव हो गया। यहाँ आपने क्राइस्ट कालेज केम्ब्रज में प्रवेश लिया। यह इंग्लैण्ड का प्रथम विद्यालय था जिसमें भारतीय प्रवेश ले सकते थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस के सभापति श्री आनन्द मोहन बसु और दिवंगत जस्टिस सैय्यद महमूद ने भी इसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ आप लार्ड रेले, फान्सिस डरविन, सर माइकेल फोस्टर, सर जेम्स डेवार और सिडनी वाइन्स जैसे प्रमुख शिक्षकों के निकट सम्पर्क में आये। आपने केम्ब्रिज से विज्ञान में बी० ए० की और लंदन से बी० एस सी० की उपाधियां प्राप्त की।

विदेश से लौटने पर सन् 1884 में आप कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में भौतिक विभाग के जूनियर प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुये। सरकारी नौकरी से 57 वर्ष की आयु में अवकाश पाने तक आप इस कालेज में अध्यापन कार्य करते रहे। अपने शिक्षक जीवन के प्रथम दस वर्ष आपने मुख्यतः अध्यापन कार्य किया। साथ ही पुरातत्वीय उपलब्धियों के अध्ययन, और पर्यवेक्षण में अपने अवकाश का समय बिताया सन् 1892 ई० में आप भारतवर्ष में प्रथम बार एडीसेन के फोनोग्राफ के प्राथमिक माडल लाये। आप सुप्रसिद्ध गायकों और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के स्वरों के रिकार्ड बनाते थे।

अपनी 36वीं वर्ष गांठ के अवसर पर आपने अनुसंधान कार्य करने की प्रतिज्ञा की। प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ते में शोध कार्य की सुविधायें उपलब्ध न थी वैज्ञानिक यन्त्र पुराने थे वातावरण भी अनुसंधान कार्य के अनुकूल न था। फिर भी बसु ने हिम्मत न हारी और अनेकों प्रकार की असुविधाओं और बाधाओं की चिन्ता न कर अनवरत परिश्रम किया।

सन् 1894 से 1899 के बीच आपका अन्वेषण कार्य मुख्यतः लघुतरंग दैर्ध्य की विद्युत चुम्बकीय तरंगों के सृजन और उनके गुणों के परीक्षण से सम्बंधित रहा। सन् 1865 में क्लक मैक्सवेल ने बताया कि प्रकाश तरंगे विद्युत चुम्बकीय प्रकृति की है। इन तरंगों का वेग इन दोनों प्रकार की इकाइयों का अनुपा त है। सन् 1887 ई० में

हर्टज ने 5.5 मीटर तरंग दैर्ध्य की विद्युत चुम्बकीय लहरें उत्पन्न करके मैक्सवेल के सिद्धांत का परीक्षण किया और उसे सत्य पाया। इतने अधिक तरंग दैर्ध्य की लहरों के साथ प्रयोग करने के लिये बड़े आकार के यन्त्रों और अधिक स्थान की आवश्यकता पड़ती थी। बोस ने कम तरंग दैर्ध्य की तरंग उत्पन्न करने की व्यवस्था की। उन्होंने तरंग उत्पादक के आकार को छोटा करके 5 मिलीं मीटर तरंग दैर्ध्य तक की विद्युत चुम्बकीय लहरें उत्पन्न की। इन लहरों का तरंग दैर्ध्य हर्टज द्वारा उत्पादित तरंगों के तरंग दैर्ध्य का दस हजारवाँ भाग है। इस प्रकार बोस ने अपने यन्त्रों का आकार भी छोटा और सुविधा जनक कर लिया। बोस के इन यन्त्रों की बड़ी प्रसंशा हुई। प्रमुख भौतिक वैज्ञानिक जे० जे० थामसन ने इस यन्त्र का चित्र अपनी पुस्तक विद्युत और चुम्बक में दिया और एनसाइक्लो पीडिया ब्रिटानिका के नवे संस्करण में भी इसका विवरण प्रकाशित हुआ। लगभग 50 वर्ष तक इन विद्युत चुम्बकीय लहरों पर कोई भी महत्वपूर्ण अन्वेषण कार्य नहीं किया गया। दूसरे विश्व युद्ध के अवसर पर इन तरंगों ने वैज्ञानिकों का ध्यान पुनः आकर्षित किया। इस अवसर पर इन लहरों के उत्पादन और पहचान के ढंगों में विशेष सुधार हुये और शत्रु पक्ष के हवाई जहाजों की गतिविधि लक्ष्य करने के लिये रैडार विधि का जन्म हुआ।

सन् 1899 से 1904 के बीच आपने जो शोध कार्य किया उससे इस तथ्य पर विशेष प्रकाश पड़ता है कि जड़ और चेतन दोनों ही एक प्रकार की क्रिया के उत्तर में एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया करते हैं। इस सम्बन्ध में बोस ने कोहियरर पर प्रयोग किये। ब्रेनली ने कोहियरर में धात्वीय रवों का प्रयोग किया था। बोस ने इस कार्य के हेतु इस यन्त्र में कुछ चालकों और अर्धचालकों का समावेश किया। आपने पाया कि कोहियरर निरन्तर प्रयोग के फल स्वरूप श्रान्ति के चिन्ह दिखाता है। कुछ समय के विश्राम के पश्चात यंत्र की कार्य क्षमता पुनः पूर्ववत हो जाती है। बोस ने कोहियरर की डिजाइन को सरल बनाया और उसमें कई सुधार किये। बोस अन्य परिज्ञापकों पर भी प्रयोग करते रहे। आपने परिज्ञापकों के रूप में गेलाना केलास सेलीनियम और चाँदी की प्लेटों से बने फोटो इलेक्ट्रिक सेलों का भी प्रयोग किया। आजकल गेलीना केलास; सिलीकन, जर्मेनियम, सिलीनियम आदि के केलासों का उपयोग ए० सी० विद्युत के शोधन में किया जाता है। सौर शक्ति को विद्युत शक्ति में परिवर्तन करने के लिए भी इस सिद्धान्त को उपयोग में लाया जाता है। बोस के द्वारा सम्पादित सिद्धाँतों पर ही डायोड और ट्रायोड बल्ब के समान कार्य सम्पन्न करने वाले ट्रान्सिस्टर का निर्माण हुआ। इस प्रकार लगभग ५० वर्ष पूर्व किये गये प्रयोगों के आधार पर एक सरल और सस्ती व्यवस्था ट्रान्सिस्टर के रूप में आ गई जो दुर्बल ए० सी० लहरों की पहचान करती है और उन्हें सबल बनाने की क्रिया में योग देती है।

वालर के अनुसार जीवित टिशुओं में उत्तेजना के फलस्वरूप विद्युत की उत्पत्ति होती है। बोस ने अकार्बनिक पदार्थों के कुछ ऐसे नमूने बनाये जिनमें यांत्रिक अथवा प्रकाश द्वारा उत्तेजना देने पर विद्युत पैदा हुई। विष देने पर जीवित टिशुओं की भांति अकार्बनिक वस्तुओं पर भी प्रभाव पड़ा। सन् 1900 में पेरिस में और सन् 1901 में रायल इन्स्टीट्यूट लन्दन में आपने प्रयोगों द्वारा यह तथ्य सिद्ध करके दिखलाये। बाद के अन्वेषणों में आप ने पौधों और जीव जन्तुओं के विषय में भी इसी प्रकार की समानता का प्रदर्शन किया। आपने बताया कि जीवित और निर्जीव वस्तुओं के बीच में एक सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। इस बीच में आपने जड़ और चेतन दैहिक नियमों यथा बोध, मस्तिष्क द्वारा प्रभाव या नियन्त्रण, स्मृति, चयन के गुण आदि के सम्बन्ध में मौलिक अनुसंधान किये।

सन् 1905 से मृत्यु पर्यन्त आपने पौधों और मानवीय टिशुओं ऊद्दीपन के प्रभाव की समानता पर कार्य किया। पश्चिमी देहशास्त्रियों ने आपके सिद्धांत का बड़ा विरोध किया। विरोधियोंके आक्षेपों के निराकरण के लिये आंपको 15 वर्ष की लम्बी अवधि तक कठिन परिश्रम करना पड़ा।

अन्त में इस सिद्धान्त को मान्यता मिली और इनके सबसे कट्टर विरोधी जो रायल सोसाइटी आफ लन्दन के सदस्य थे इनके सिद्धान्त को मानने पर विवश हुये और सन् 1922 ई० में आपको रायल सोसाइटी का फेलो चुन लिया गया, बोस का मत है कि पौधो और जीवों में प्रोटोप्लास्मीय पदार्थ के कारण एक ही प्रकार के प्रारम्भिक गुण रहते हैं। यथा चिड़चिड़ापन, सिकुड़ने का गुण, चालकता और संवेदनशीलता। अधिक विकसित जीवों में इन गुणों में से कोई एक विशेष गुण विशेष रूप से उन्नत हो जाता है। जैसे माँस पेशियों में सिकुड़न, चयनतंतुओ में चिड़चिड़ेपन का प्रभाव और हृदय की माँस पेशियों में संवेदनशीलता। पौधों के टिशू अभी इतने प्रभावी नहीं हो सके हैं।

डेस्मोडियम गायरेंस नामक पौधे की पत्तियों को तोड़कर कटा हुआ भाग पानी में डुबो दिया गया। परीक्षण से ज्ञात हुआ कि ऐसी स्थिति में भी पत्तियों में 2 से 4 मिनट के अन्तर से नियमित वर्त्तुलाकार धड़कन चलती रहती है जैसा कि पशुओं के साथ होता है। दो धड़कनों के बीच लिया गया समय पत्ती की आयु, तापक्रम आदि पर निर्भर रहता है। जीवों के हृदय के समान इस पौधे की पत्तियों पर भी ताप, रसायन और उत्तेजकों के उपयोग से प्रतिक्रिया होती है।

मिमोसा प्यूडिका नाम के पौधे पर उत्तेजना का वही प्रभाव पड़ता है जो ज्ञान तन्तुओं पर उसी प्रकार की स्थितियों में पड़ता। तापीय, यान्त्रिक अथवा वैद्युतिक उत्तेजनों के प्रभाव स्वरूप पत्ती में एक विशिष्ट गति की विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है जिसके परिणाम स्वरूप पत्तियाँ बन्द हो जाती हैं। अत्यधिक उत्तेजना के कारण बारबार प्रतिक्रिया होने लगती है। यदि एक दुर्बल विद्युत धारा पत्तों में बहाई जाय तो यान्त्रिक प्रतिक्रिया की वृद्धि या ह्रास का मापन सरलता से किया किया जा सकता है। क्लोरोफार्म या ईथर के प्रभाव स्वरूप इस पौधे में उत्तेजना की चालकता अवसाद में परिवर्तित हो जाती है।

बोस ने उच्च सम्बर्धनशील यन्त्रों की सहायता से पौधों में उत्तेजना के फलस्वरूप हुई प्रतिक्रिया के यान्त्रिक और वैद्युतिक प्रभावों का मापन किया और पाया कि पौधों के व्यवहार इस दिशा में जीवों की भाँति ही रहते हैं। कृत्रिम उत्तेजकों के अतिरिक्त पौधों पर वातावरण के अनुसार तापक्रम, प्रकाश घनता, आर्द्रता सिंचाई आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इनके प्रभाव पर पौधों का विकास, टहनियों का विपरीत दिशाओं में झुकाव, टहनियों का इस प्रकार झुकना कि उन्हें अधिकतम प्रकाश मिल सके आदि निर्भर करता है।

सन् 1915 ई० में आप प्रेसीडेन्सी कालेज में एमरीट्स प्रोफेसर बनाये गये। सन् 1917 में आपने बोस इन्स्टीट्यूट की स्थापना की। इस विद्यालय के हेतु आपने 11 लाख का दान प्राप्त किया। सरकार ने भी 1 लाख का वार्षिक आवर्तक अनुदान दिया। बोस ने 12 लाख रुपये के एक ट्रस्ट की स्थापना की जिससे अनुसंधान को और विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करने में इच्छुक विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता मिल सके। बोस की मृत्यु के बाद इनकी पत्नी श्रीमती अबला बोस ने अपने प्रयत्नों से एक 3॥ लाख रुपये के दूसरे ट्रस्ट का निर्माण किया जिसकी आय का उपयोग कई वैज्ञानिक और सान्स्कृतिक कार्यों में होता है। इस इंस्टीट्यूट की स्थापना के उद्देश्य निम्न हैं:—

1. पौधों के दैहिक व्यवहार सम्बन्धी शोध कार्य को प्रोत्साहन।

2. नालन्दा और तक्षशिला की परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए सभी जातियों में विज्ञान के प्रसार हेतु कार्य।

बोस इस इंस्टीट्यूट के मृत्यु पर्यन्त (1937 तक) निदेशक रहे। इनके जीवन काल में ही इस इन्स्टीट्यूट की अच्छी ख्याति हो गयी थी। आजकल भी यहाँ अच्छा अनुसंधान कार्य चल रहा है।

बोस ने योरुप अमेरिका और जापान के विभिन्न वैज्ञानिक केन्द्रों पर व्याख्यान दिये। ये व्याख्यान और इन अवसरों पर आयोजित प्रायोगिक प्रदर्शन बड़े सफल रहे।

[शेष पृष्ठ 19 पर]

अवसादी-विज्ञान, अवसाद, अवसादन : एक संक्षिप्त विवेचना

□ राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव

एक भू-वैज्ञानिक धरातल पर पायी जाने वाले शैलों का अध्ययन करता है। उसमें रुचि लेता है। वह इन शैलों का अध्ययन कर उनसे अनेक तथ्यों को प्राप्त करता है। प्राप्त हुये इन तथ्यों के आधार पर वह शैलों के प्राकृतिक इतिहास को मालूम करता है। धरातलीय शैलों के इतिहास से वह पृथ्वी के प्राकृतिक इतिहास के दस्तावेज को तैयार करता है। भू-वैज्ञानिक पृथ्वी के इतिहास-भवन का निर्माण मुख्य रूप से अवसादी शैलों के भू-वैज्ञानिक द्वारा ही करता है। आयतन की दृष्टि से यदि हम देखें तो मालूम होता है कि कुछ ज्ञात धरातल का केवल 5 प्रतिशत अंश ही अवसादी तथा मेटा-अवसादी शैलो द्वारा निर्मित है। इसके विपरीत धरातल का 15 प्रतिशत अंश आग्नेय तथा मेटा-आग्नेय शैलों द्वारा निर्मित है। दूसरी तरफ अवसादी शैलों का प्रभावन क्षेत्र कुल धरातलीय क्षेत्र का 75 प्रतिशत है। इस प्रकार हम पाते हैं कि धरातल की एक ऊपरी महीन सतह ही अवसादों द्वारा निर्मित हुई है।

भू-विज्ञान के विद्यार्थी लम्बे समय से अवसादी शैलों का अध्ययन करते आ रहे हैं। अवसादी-शैलकी मुख्य रूप से अवसादी शैलों के इतिहास के लिए उत्तरदायी है। अवसादी शैलों के अध्ययन के लिए वर्तमान समय में विश्व में अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ है। अवसादी विज्ञान अपने किशोरावस्था को इस सदी के मध्यकाल में ही पूरा कर पूर्ण वयस्कता को प्राप्त हो रहा है।

भू-वैज्ञानिक और इंजीनियर अवसादों को समझाने का प्रयत्न करते हैं। अवसादों का उनके कार्यों में विशेष महत्व है। वे यह समझने का प्रयत्न करते हैं कि अवसादों की अवस्था क्यों इस प्रकार की है, जैसा कि वे हैं? कौन से वे कारण हैं जिनसे अवसादों की अवस्था में बराबर परिवर्तन होता रहता है? इन परिवर्तनों की प्रक्रिया को भी वे नजरअन्दाज नहीं करते। किसी भी वस्तु को समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि हम उसके आरम्भ और अन्त तक की प्रक्रिया को भी भली-भांति समझें। अवसादन की घटना या प्रक्रिया का तथा अवसादों के जिस विज्ञान के अन्तर्गत हम अध्ययन करते हैं उसे ही अवसादी-विज्ञान की संज्ञा दी गई है। अवसादी-विज्ञान वह विषय है जिसके अन्तर्गत हम अवसादन की घटना या प्रक्रिया का अध्ययन और अध्यापन करते हैं।

अवसाद

भू-विज्ञान के विज्ञार्थियों के लिए यह एक सामान्य-ज्ञान तथ्य है कि धरातल पर पायी जाने वाली चट्टानों के रूपाकार लगातार धीरे-धीरे बाह्य और अन्तरनिहित भू-शक्तियों के प्रभाव में बदलते रहते हैं। जल, वायु, हिम, ताप और दाब ऐसी ही बाह्य शक्तियां हैं। इन भू-शक्तियों के प्रभाव में धरातलीय चट्टानों की संरचना, बुनावट, संगठन और रूपाकार लगातार धीरे-धीरे बदलते रहते हैं। इस प्रकार एक शैल समूह से दूसरे नये शैल समूहों का जन्म होता रहता है। यह भू-वैज्ञानिक परिवर्तन एक विशेष चक्र का रूप ग्रहण कर पूरा होता रहता है।

धरातल पर पायी जाने वाली आग्नेय चट्टानें बाह्य भू-शक्तियों के प्रभाव में धीरे-धीरे नष्ट होकर अवसादी शैलों के निर्माण के लिए विभिन्न अवयवों को जन्म देती

रहती हैं। पुराने अवसादी शैलों के ऊपर भी इन बाह्य भू-शक्तियों का प्रभाव पड़ता है तो वे भी नवीन प्रकार की अवसादी शैलों के निर्माण के लिए विभिन्न अवयवों को जन्म देती हैं। इस प्रकार की घटना आग्नेय और अवसादी शैलों के कायान्तरित समतुल्यों के साथ भी बाह्य भू-शक्तियों के प्रभाव में घटती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक अवसादी शैल विशेष भू-चक्रों के आंशिक या पूर्ण समाप्ति की प्रतिक्रिया के ही परिणाम हैं तथा अवसादी शैल पूर्व-विद्यमान शैलों के अवयवों द्वारा ही किसी न किसी रूप में निर्मित होता है। इस प्रकार हमारा यह विश्वास बढ़ जाता है कि विशेष भू-चक्र पूर्ण होने की सम्पूर्ण प्रक्रिया में अनेकों बार गतिशील होते रहते हैं।

पूर्व-विद्यमान शैलों पर, चाहे वे आग्नेय हों, या कायान्तरित हों, या वे अवसादी शैल ही क्यों न हों, जब वाह्य भू-शक्तियों का उन पर प्रभाव पड़ता है तो वे नवीन अवसादी शैलों के निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार के अवयवों को जन्म देती हैं। आखिर ये विभिन्न प्रकार के अवयव क्या हैं? भू-वैज्ञानिक साहित्य में इन्हीं अवयवों को हम 'अवसाद' की संज्ञा देते हैं।

अवसाद ही वे आधार हैं जिनपर अवसादी विज्ञान का विशाल भवन निर्मित हुआ है। अवसाद किसी भी स्रोत से, चाहे वह शैल हो, कार्बनिक पदार्थ हो, ज्वालामुखीय पदार्थ हो या बाह्य ब्रह्माण्ड से पृथ्वी पर अनेक भू-प्रक्रियाओं द्वारा आये हुये कण हों, से निर्मित होते हैं। ये अवसाद अपने उद्‌गम स्रोत से अपने जमाव के स्थान तक किसी भी माध्यम में विभिन्न प्रकार से वाहित हो सकते हैं। इन अवसादों का जमाव धरातल पर विशेष वातावरण में ताप और दाब के प्रभाव में हो सकता है। अवसादों के उद्‌गम स्रोत धरातलीय शैलों के अतिरिक्त भी हो सकते हैं। बड़े या छोटे कणों के रूप में ये अवसाद खुले बाह्य ब्रह्माण्ड से भी सीधे वायुमण्डल से होकर धरातल पर पहुंचते रहते हैं तथा धरातलीय अवसादों के मध्य इनका जमाव होता रहता है।

'अवसाद कणों के वे समूह हैं जो विशेष दूरी तक पार्श्वीय या ऊर्ध्वाधर वाहित होकर किसी एक विशेष स्थान पर इकट्ठे होते रहते हैं।' इन कणों या अवसादों का जब प्रथम जमाव होता है तो इनकी अवस्था असंपिडित होती है। भू-वैज्ञानिक भाषा में ऐसे अवसादों के जमाव को अभिनव अवसाद कहते हैं। समय के साथ-साथ अनेक प्रक्रियाओं द्वारा ये असंपिडित अवसाद संपिडित और कठोर होकर अवसादी शैलों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के संपिडित अवसादों को प्राचीन अवसाद कहा जाता है।

जब धरातलीय शैलों का अपक्षयन होता है तो वे भौतिक या रासायनिक रूप से मिट्टी में बदल जाते हैं और अनेक परिवहन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। मिट्टी या अपक्षयीत शैलों के बहुत से गुण अभिनव या असंपिडित अवसादों के गुणों से मेल खाते हैं। तकनीकी ढंग से हम उन्हें अवसाद कह सकते हैं। क्योंकि इनमें उपस्थित तमाम अवयव गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में आकर जमा हो जाते हैं।

अवसादों का परिवहन जल की धारायें, वायु, हिम, जीव और सामान्य गुरुत्वाकर्षण के द्वारा होता है तथा अवसादों का जमाव किसी विशेष स्थान पर भौतिक, रासायनिक या जैविक कारणों से हो सकता है।

पेटीजॉन के अनुसार 'जटिल किस्म के वे शैल हैं जिनका उद्‌भव संग्रथित होता है तथा अवसाद आनुवंशिकिय और वातावरण की प्रक्रिया द्वारा निर्मित होते हैं।

अवसादन

1929 में प्रकाशित विवस्टर के नये अन्तर्राष्ट्रीय शब्दकोष के अनुसार 'अवसादन वह घटना या प्रक्रिया है जो कि अवसादों के जमा होने की प्रक्रिया को प्रदर्शित करती है।' परन्तु यदि हम गहराई से अवसादन की इस परिभाषा का अध्ययन करे तो वह अपूर्ण और आंशिक सी लगती है। अवसादन की प्रक्रिया से केवल अवसादों के जमा होने का ही बोध नहीं होता वरन् अवसादन की

प्रक्रिया कई एक भू-प्रक्रियाओं की समूह है। अवसादन की प्रक्रिया में तमाम प्रक्रियाएं निहित हैं। मातृशैलों से अवसादों के भौतिक और रासायनिक कारकों और प्रक्रियाओं द्वारा विघटन तथा इन विघटित का विभिन्न माध्यमों द्वारा परिवहन फिर उनका विशेष वातावरण में विशेष स्थानों पर जमाव और फिर अवसाद कणों का संपिडित होकर कठोर होने की प्रक्रिया और इसी के मध्य सीमेंटिंग पदार्थों का उनके छिद्रों में जमा हो जाना, यह सब कुछ भी अवसादन की ही प्रक्रिया में समाहित है। अवसादन की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया पृथ्वी की सतह पर सामान्य रूप से होती रहती है।

अवसादन की इस प्रक्रिया-वृत्त में नये खनिजों का जन्म हो जाता है और पुराने खनिज अपनी पूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। एक अवसाद कण दूसरे अवसाद कण से सुगठित रूप से बंध जाता है।

अवसादन की रासायनिक प्रक्रियाओं को हम अपघटन, संक्षारण इत्यादि की संज्ञा दे सकते हैं। परन्तु इन सारे शब्दों का मतलब एक समान ही होता है। कार्बनिक और अकार्बनिक, दोनों प्रकार के रासायनिक कारण अवसादन की प्रक्रिया के अंतिम फल को प्राप्त करने में सक्रिय रहते हैं।

अवसादन की भौतिक प्रक्रियाओं को हम मुख्यतः विघटन या शैलों के कर्वाकरण की संज्ञा देते हैं।

जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है, अवसादन भौमिकी की वह शाखा है जो मुख्यतः अवसादन की विभिन्न प्रक्रियाओं तथा अवसादी शैलों के उद्भव से तात्पर्य रखती है।

अवसादन की प्रक्रिया में मुख्य रूप से पांच मूल भू-प्रक्रियाएं निहित हैं :—

(1) अपक्षयन
(2) अपरदन
(3) परिवहन
(4) जमाव
(5) संपिडन

संदर्भ ग्रन्थ

1. पेटीजॉन एफ० जे० 'सेडीमेन्ट्री राक्स'
2. ट्रास्क, पी० डी० 'अप्लाइड सेडीमेन्टेसन'
3. ट्वीनहाफेल, डब्लू० एच०—'प्रिंसिपल्स आफ सेडीमेन्टेन्सन'
4. डग्लास, जी० जे० 1951—'फ्राम सेडीमेन्ट्री पेट्रालाजी टू सेडीमेन्टॉलॉजी'
5. गोल्डमैन, एम० आई० 1950—'ह्वाट इज सेडीमेन्टॉलॉजी ?
6. लांहसी, इ० ए०—1951—'फरदर डिसक्सन आफ ह्वाट इज़ सेडीमेन्टॉलॉजी ?
7. वाडेल, एच०—1932—'सेडीमेन्टेसन एण्ड सेडीमेन्टॉलॉजी'
8. वाडेल, एच०—1933—'सेडीमेन्टटेसन एण्ड सेडीमेन्टॉलॉजी'

ब्रह्माण्ड क्या है ? एक विवेचन-(3)

□ रवीन्द्र कुमार दुबे

[गत अंकों में आपने पढ़ा अनेकानेक आकाशगंगाओं व उनमें उपस्थित नक्षत्र ग्रह व उपग्रहों के विषय में। द्वितीय अंक में आपने आकाशगंगा व नक्षत्रों की आश्चर्यजनक ढंग से उत्पत्ति के बारे में पढ़ा साथ ही आपने यह भी देखा कि नक्षत्रों के जीवनकाल में किस प्रकार उनमें अत्यधिक ऊर्जा, ऊष्मा के रूप में उत्पन्न व उत्सर्जित होती है, अब इस लेखनमाला के तृतीय व अंतिम चरण में आप ब्रह्माण्ड के विषय में कुछ अन्य आश्चर्यजनक, मनोरंजक व ज्ञानवर्द्धक बातें पढ़ेंगे।]

1054 में चीनवासियों ने अंतरिक्ष में अचानक एक नए नक्षत्र को देखा, उस स्थान पर उससे पूर्व कोई नक्षत्र नहीं दिखाई देता था, साथ ही साथ यह नक्षत्र सूर्य की भाँति के एक सामान्य नक्षत्र से लगभग एक लाख गुना अधिक प्रकाशवान था। इसे अतिथि नक्षत्र नाम दिया गया। 'अतिथि नक्षत्र दिन में भी आकाश में दिखाई देता था, बस एक नन्हा सा चमकीला कण। यद्यपि सूर्य से यह अत्यधिक प्रकाशवान था, और यही नहीं अधिकतर नक्षत्र सूर्य से अधिक प्रकाशवान हैं, परन्तु क्योंकि सूर्य हमारी पृथ्वी से अति समीप है अतः हमें सूर्य ही अधिक प्रकाशवान प्रतीत होता है। इसी भाँति के कई नक्षत्र इसके बाद भी अचानक अंतरिक्ष में जन्म लेते हुए दिखाई दिए। बस कुछ समय पूर्व तक जहां कुछ नहीं दिखाई देता था, अचानक उस स्थान पर एक महान, अति महान नक्षत्र जन्म ले लेता है। आकार में इतना विशाल कि यदि अपना सूर्य इसके केन्द्र पर रख दिया जाए तो केवल पृथ्वी सहित हम लोग ही नहीं हमारा पड़ोसी ग्रह 'मंगल' भी इस महान नक्षत्र के उदर में सी समा जाएंगे। कितना आश्चर्यजनक लगता है, यह तथ्य।

क्या वास्तव में यह नक्षत्र अचानक ही जन्म ले लेता है ? आकृति में इतना बडा, व प्रकाश में इतना अधिक नक्षत्र अचानक एक क्षण में कैसे जन्म ले सकता है, पर उस क्षण के पूर्व तो वहाँ कुछ नहीं दिखाई देता था, अच्छे से अच्छे दूरदर्शी द्वारा भी बस वहाँ शून्य ही दिखाई देता था, फिर हाँ एक बात, पहले हीं मैं कह चुका हूँ कि अच्छे से अच्छे दूरदर्शी द्वारा भी हम केवल एक विशेष दूरी तक के नक्षत्र के प्रकाश को ही देख सकते हैं, सम्भव है कि यह आश्चर्यजनक रूप से नवजात नक्षत्र, (जिन्हें नोवा व सुपरनोवा नाम दिया गया है) वास्तव में एक शिशु नक्षत्र न होकर एक प्रौढ़ नक्षत्र हो। एक ऐसा प्रौढ़ जो शिशु व यौवन काल में उतना प्रकाशवान न रहा हो, पर अपने जीवन के अंतिम क्षणों में (जो कई दिन के समय के रूप में होता है) उसने अपने को अत्यधिक प्रकाशवान बना लिया हो, बुझते दिए की लौ की भाँति।

यह क्रिया कुछ इस प्रकार होती है—हाइड्रोजन समाप्त होने के अंतिम चरण में नक्षत्र कुछ सिकुड़ना प्रारम्भ कर देता है पर इसके परिणाम स्वरूप इसके अन्दर का दाब व तापक्रम बढ़ने लगता है. अतः बाहर उत्सर्जित होने वाले प्रकाश की मात्रा भी अधिक हो जाती है और यह नक्षत्र अधिक चमकदार दिखाई देने लगता है। पर नक्षत्र के सिकुड़ने से इसके गोल घूमने की दर (रोटेशन) में वृद्धि हो जाती है और धीरे-धीरे यह इतनी तीव्रता से गोल घूमने लगता है कि इसके छोटे-छोटे भाग टूट कर अलग होने लगते हैं (यह छोटे छोटे भाग भी आकार में अपनी पृथ्वी से बड़े ही होते हैं), जिससे नक्षत्र

के अन्दर का अत्यधिक गर्म भाग कुछ समय के लिए खुल जाता है, ठीक उसी भाँति जैसे कि राख के अन्दर दबी आग के ऊपर से थोड़ी राख अचानक उड गई हो। कभी कभी यह भी होता है कि घूमने की गति अत्यधिक बढ़ जाने के कारण नक्षत्र के छोटे छोटे भाग टूट कर अलग होने के स्थान पर यह दो बडे भागों में टूट जाता है और यह भाग तीव्र गति से एक दूसरे से दूर भागने लगते हैं। नक्षत्र की इस स्थिति को 'नोवा' कहते हैं, तथा यही क्रिया जब बृहद् रूप में होती है तो 'सुपरनोवा' कहलाती है। एक 'सुपरनोवा' के सामने हाइड्रोजन बम केवल उतना ही महत्व रखता है जितना कि सूर्य के सामने एक मोमबत्ती, परन्तु हमसे अत्यधिक दूरी पर होने के कारण यह हम पर कुछ बुरा प्रभाव नहीं डाल पाते हैं। इस क्रिया के परिणामी नक्षत्र के टूटे हुए भाग आकाश में यूं ही विचरण करते रहते हैं अथवा किसी अन्य नक्षत्र के गुरुत्व क्षेत्र में आने पर उसके ग्रह बन जाते हैं। यदि एक सुबह यूँ ही स्वास्थ बनाने के लिए छड़ी लेकर आप अंतरिक्ष की सैर पर निकले और आपको इधर उधर कुछ वर्गमील क्षेत्रफल के टुकड़े अपने साथ टहलते हुए दिखाई दे जाएं तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं होगी। वास्तव में कभी जिस स्थान पर 'चीनी अतिथि नक्षत्र' दृष्टिगोचर हुआ था, उस स्थान पर अभी भी अनेक चमकदार धब्बे अच्छे दूर दर्शी द्वारा देखे जा सकते हैं। 'अतिथि नक्षत्र' के यह अवशेष रेडियो तरंगों के भी स्रोत हैं तथा इनके द्वारा उत्पन्न रेडियो तरंगों को पृथ्वी पर एक अच्छे रेडियो दूरदर्शी द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

अब पुनः मैं आपको ब्रह्माण्ड के पूर्ण चित्र तक वापस ले चलना चाहूँगा। सुविधा के लिए अपनी आकाश-गंगा को आप एक छोटी सी मधुमक्खी के रूप में मान लीजिए तो इससे दो गज की दूरी पर निकटस्थ आकाश-गंगा होगी। अब आप सोचिए जब एक मधुमक्खी के छत्ते को छेड़ दें तो क्या होता है बस चारों ओर मक्खियाँ ही मक्खियाँ फैल जाती हैं और यदि यह मक्खियाँ आप की आज्ञा मान लें तो इन्हें एक दूसरे से दो गज की दूरी पर रहने के लिए कह दीजिए और आपका ब्रह्माण्ड आपके सामने है लगभग एक मील के घेरे में फैली हुए प्रत्येक मक्खी के स्थान पर एक आकाशगंगा को रख दीजिए। हाँ, एक मील के बाहर क्या होगा यह कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, वास्तव में वैज्ञा-निकों के लिए भी यह ब्रह्माण्ड अनादि है, अनंत है।

पर एक प्रश्न फिर भी रह जाता है, इस घेरे में फैली हुई मक्खियाँ एक दूसरे के सापेक्ष स्थिर हैं अथवा गतिशील, मक्खी के छत्ते से जब एक साथ मक्खियाँ उड़ना प्रारम्भ करती हैं तो उनका घेरा लगातार फैलता जाता है, अर्थात् वह सब एक दूसरे से दूर भागती जाती हैं, क्या ब्रह्माण्ड में भी इसके समान कोई गति होती है? हाँ वास्तव में ब्रह्माण्ड की समस्त आकाशगंगाएं एक दूसरे से दूर भाग रही है, शायद यह आपको आश्चर्यजनक प्रतीत हो रहा हो कि ऐसा कैसे सम्भव है। लेकिन शायद एक तुलना से यह बात आपको कुछ ग्राह्य प्रतीत होने लगे। बगैर हवा भरे हुए गुब्बारे से ऊपर आप अनेक नन्हें नन्हें निशान स्याही या किसी अन्य चीज से लगा लीजिए और अब इस गुब्बारे में हवा भरना शुरू कीजिए। जैसे जैसे आप हवा भरते जाएंगे धब्बे गुब्बारे की सतह पर एक दूसरे से दूर भागते चले जाएंगे साथ ही यदि आप यह मान लें कि गुब्बारे के अन्दर के स्थान में भी इसी भाँति अनेक धब्बे ये तो उनके बीच की दूरी भी लगातार बढ़ती जाएगी अर्थात् वह भी एक दूसरे से दूर भागते रहेंगे जब तक गुब्बारे में हवा भरना जारी रखा जाएगा। ठीक इसी भाँति हमारा ब्रह्माण्ड रूपी गुब्बारा भी लगातार फूलता जा रहा है, न जाने कितना स्थान है इसके बाहर। और अब कुछ बात इस फैलाव की गति के बारे में भी कर ली जाए। यह पाया गया है कि हमारी आकाशगंगा के निकट की आकशगंगाओं की गति इसके सापेक्ष कई लाख मील है और जितना ही हम बार की ओर जाएंगे यह गति भी बढ़ती चली जाएगी। अधिक से अधिक जिस दूरी तक की आकाशगंगा को हम दूरदर्शी द्वारा देखने में सफल हुए हैं उसकी गति हमारे सापेक्ष लगभग 20 करोड़

मील। घंटा है, अर्थात् इससे भी दो गुनी दूरी पर स्थित आकाशगंगा की गति की प्रकाश गति के बराबर होगी और उससे भी दूर, प्रकाश की गति से अधिक। भौतिकी का कुछ ज्ञान रखने वालों को यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता होगा क्योंकि आइन्स्टीन के विशेष सापेक्ष सिद्धांत के अनुसार यह सर्वथा असम्भव है कि किसी चीज की गति प्रकाश की गति से अधिक हो, परन्तु वास्तव में जब हम पूर्ण ब्रह्माण्ड की बात करते हैं तो यहाँ पर आइन्स्टीन का सामान्य सापेक्ष सिद्धांत (जनरल थ्योरी) लागू होता है। और इस प्रकार इतनी अधिक दूरी पर स्थित आकाशगंगा, जिसकी गति हमारे सापेक्ष प्रकाश की गति से अधिक है, से निकला हुआ प्रकाश अथवा रेडियो तरंगें कभी हमारी पृथ्वी तक नहीं पहुँचेगी और हम उन्हे देखने में कभी समर्थ न हो सकेंगे।

अब मैं ब्रह्माण्ड की कहानी के इसी भाग को कुछ विस्तृत रूप में आपके सम्मुख रखना चाहूंगा क्योंकि इस समय वैज्ञानिकों का सर्वाधिक ध्यानाकर्षण करने वाला विषय यही है। आपने ऊपर यह पढ़ा कि समस्त आकाश-गंगाएं एक दूसरे से दूर भाग रही है और जितनी अधिक इनकी दूरी हमसे होगी उतनी ही अधिक इनकी गति होगी अर्थात् यदि गणना की जाए तो यह परिणाम प्राप्त होगा कि लगभग 100 करोड़ वर्षों बाद हमारी निकटस्थ आकाशगंगा भी हमसे इतनी दूर जा चुकी होगी कि इसकी गति हमारे सापेक्ष प्रकाश की गति से अधिक होगी और हम आकाश में किसी अन्य आकाशगंगा को नहीं पाएंगे, बस अपनी आकाशगंगा के अतिरिक्त सारा अंत-रिक्ष नक्षत्र विहीन होगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होगा क्योंकि ब्रह्माण्ड अचानक किसी एक दिन नहीं बन गया था, यह लगातार रचना के पद पर है, अभी जो आकाशगंगाएं हमारे पास हैं वह हमसे दूर चली जाएंगी पर उनके स्थान पर नवीन आकाशगंगाएं जन्म ले लेंगी ब्रह्माण्ड में लगातार ऐसी रचना होती रहती है नित्य कुछ नए नक्षत्र कुछ नए ग्रह कुछ नए उपग्रह जन्म लेते हैं, कुछ समाप्त हो जाते हैं, कुछ हमसे दूर चले जाते हैं, बस अपनी आखिरी झलक दिखा कर। पर यह लगातार रचना भी तो अंतरिक्ष गैस (इंटरस्टेलर स्पेस में उपस्थित गैस) व उसमें उपस्थित धूल आदि के कणो से ही होती होगी और अन्ततः एक दिन अंतरिक्ष में निर्वात (वैक्यूम) हो जाएगा जब इसमें उपस्थित समस्त पदार्थ नक्षत्र आदि की रचना में समाप्त हो चुका होगा। यहाँ भी हम धोखा खाते हैं क्योंकि लगातार रचना के बावजूद भी अंतरिक्ष गैस का घनत्व स्थिर रहता है इसका अर्थ यह हुआ कि नई आकाशगंगाओं के जन्म से अंतरिक्ष गैस के स्वास्थ पर कोई असर नहीं पड़ता, पर यदि ऐसा है तो नई आकाशगंगाओं के जन्म में लगा हुआ पदार्थ कहाँ से आया? शून्य से कोई पदार्थ जन्म कैसे ले सकता है? अभी तक विज्ञान सफलता पूर्वक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी है यद्यपि कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि जिस भाँति गुरुत्व क्षेत्र होता है उसी भाँति पूर्ण ब्रह्माण्ड का वृहद् आकार अंतरिक्ष में एक रचना क्षेत्र (क्रीएशनफील्ड) को जन्म देता है और इस रचना क्षेत्र के कारण ही अंतरिक्ष में लगातार कुछ नया पदार्थ जन्म लेता रहता है।

संक्षेप में यही है हमारे इस ब्रह्माण्ड की कहानी।

भारत में उष्ण जल स्रोत

□ विजय कान्त श्रीवास्तव

भारत में उष्ण एवं शीत जलवायु विस्तृत क्षेत्रों में पायी जाती है। यहाँ अनेक स्थानों पर उष्ण सोते पाये गये हैं। जलवायु के कारण उष्ण सोतो के लिए न्यूनतम तापक्रम 25°C रखा गया है जबकि अन्य शीत देशों में न्यूनतम तापक्रम 20°C रखा गया है। भारत में पाये जाने वाले उष्ण सोतों का तापक्रम प्रायः 30°C तक पाया जाता है। इनमें खनिजों की मात्रा प्रायः 100 PPM. (पार्ट्स पर मिलियन) तक होती है। भारत में लगभग 300 उष्ण सोते पाये गये हैं। सारिणी 1 में स्थान नाम आदि दिया गया है। ये सोते प्रायः आ०प्र, आसाम, बिहार गुजरात, हरयाणा, हि० प्र०, जम्मू कश्मीर, केरल, म० प्र०, पं० बंगाल, उड़ीसा, पंजाब राज० तथा उ० प्र० में पाये जाते हैं।

अनेक सोतो का उद्गम स्थान एक ही पाया गया है। सोतो के उद्गम स्थान के बीच में दरार तथा भ्रंश के कारण जल का आवागमन होता है। भौमिकी रूप से उष्ण सोतों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया है :—

(1) आर्कियन शील्ड (पठारी भागों) के उष्ण सोते जिन पर पृथ्वी की अन्य गतियों का प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) पठारी भागों के वे सोते जो मेसोजोइक ज्वालामुखी तथा पूर्व गोंडवाना क्रिया से प्रभावित होते हैं।

(3) मेसोजोइक गति के बाद वाले सोते।

पहले वर्ग में सोते कम पाये जाते हैं तथा इनका ताप 30—32°C तक पाया जाता है। इनमें खनिज पदार्थ भी कम पाये जाते हैं। ऐसे सोते आ० प्र०, मैसूर, केरल तथा महाराष्ट्र में पाये जाते हैं। प्रायः इन सोतों के उद्गम स्थान के पास भ्रंश या जोड़ पाया जाता है।

द्वितीय वर्ग के सोतों का उद्गम अधिक दुरुह है। ये टेक्टानिक शील्ड में पाये जाते हैं। फौगोनिक अवस्था का इन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। भारत में सूरत तथा रत्नागिरी तक एक सीध में ऐसे सोते पाये जाते हैं। इनसे एक सीधे भ्रंश का अनुमान होता है। महाराष्ट्र तथा म० प्र० के सोते भ्रंश तथा दरारों द्वारा उत्पन्न हुए हैं। हरयाणा का सोहना सोता गंगा घाटी में भ्रंश के कारण उत्पन्न हुआ है। इन सोतो पर पिछले भौमिकी युगों का काफी प्रभाव पड़ा है। अतः ये इपिरोजेनिक गतियों के कारण उत्पन्न हुए माने जाते हैं। पृथ्वी गर्भ में 40–45°C तक की उष्णता पायी जाती है परन्तु स्रोतों में इससे अधिक तापक्रम भी पाया गया है। ज्वालामुखी क्रिया के कारण ही उष्णता बढ़ती है।

तीसरे वर्ग के सोते टरशियरी युग के हैं। इनकी उत्पत्ति हिमालय के साथ हुई है। ये सोते प्रायः उ० प्र०, पंजाब हि० प्र०, तथा जंज० I में पाये जाते हैं। ये सोते प्रायः भ्रंश के पास पाये जाते हैं। प्रायः समस्त सोतों में कुछ खनिज पदार्थ समान रूप से पाये जाते हैं। भारत में घाटी रूप में पाये जाने वाले वाले सोतों को छोड़कर प्रायः सब सोतों में खनिज मात्रा 1000 PPM. तक पायी जाती है। राजगीर तथा मुंगेर को छोड़ कर प्रायः सब सोते क्षारीय या उदासीन हैं। राजगीर का सोता अम्लीय है। इनमें खनिज की मात्रा 30–60 PPM तक है। प्रायः सभी सोतों में गंधक, सल्फाइड, क्लोराइड आदि पाया जाता है। कुछ

सोतों में बोरान कार्बन डाइआक्साइड, सल्फाइड तथा अन्य गैस भी पायी जाती हैं।

सारिणी नं० 1

क्रम	राज्य	जिला	सोता	तापक्रम
1	आ० प्र०	खम्मान	जनामपेटा	30°C
2			पादियापुरम	28
3		वारागल	बुगा	43
4		कुर्नूल	कलवा	32
5	केरल	किलोन	वारकली	30
6		त्रिवेद्रम	कराकूल	29
7	महाराष्ट्र	यूतमाल	खेर	30
8	मैसूर	गुलवर्गा	कभूल	32
9			युदनूर	32
10	आ० प्र०	पू० गोदावरी	गुंडाला	60
11	आसाम	मिकिर	कोनिली	57
12		सिवसागर	नम्बार	39
13	विहार	धनवाद	चरक	38
14			शिउपुर	40
15			ततलोई	68
16		गया	अग्निकुंड	52
17			व्रह्मकुंड	48
18		हजारीबाग	दुआरी	45
19			कावा	35
20			सूरजकुंड	87
21		मुंगेर	भरारी	65
22			भीमवध	64
23			भावराह	44
24			लक्ष्मीश्वरकुंड	67
25			सीताकुंड	57
26			रामेश्वरकुंड	44
27			रिसीकुंड	46
28			श्रृंगरिसी	31
29		पलामू	जरोम	55
30		पटना	राजगीर	42

क्रम	राज्य	जिला	स्थान	तापक्रम
31		संथान परगना	वरमइसा	34
32	विहार	संथाल परगना	भारीपानी	33
33			रामपुर	61
34			तंतेश्वरी	60
35			तंतलोई	65
36	गुजरात	केरा	लासुंदारा	56
37		कसियावाड़	तुलसीसाम	51
38		पंचमहल	तुवा	63
39		सूरत	उनाई	55
40	हरयाना	गुरगांव	सोहना	46
41	म० प्र०	सरगुजा	तातापानी	88
42		छिन्दवाड़ा	अनाहोनी	57
43		होशंगाबाद	छोटा	56
44		शंडला	ववेहा	38
45	महाराष्ट्र	कोलावा	सोव	41
46		,,	उनहेरा	41
47		रत्नागिरी	अरावली	40
48			खेद	35
49			मात	69
50			राजवाड़ी	61
51			संगामेश्वर	60
52			तुरल	61
53			राजापुर	60
54		थाना	वाजरेश्वरी	58
55	ओड़ीसा	धनेकनाल	धवेलजारी	56
56		गंजम	लोहागुही	46
57		पुरी	अरारी	59
58	राजस्थान	सिकार	गनेशर	38
59	पं० बंगाल	वीरभूम	अग्निखुड	71
60			व्रश्वकुं	42
61		पुरलिया	शिउपुर	40
62	हि० प्र०	कागड़ा	कलाल	43
63			वशीष्ट	58

क्रम	राज्य	जिला	स्थान	तापक्रम	क्रम	राज्य	जिला	स्थान	तापक्रम
64			कसोल	82	74			गोका	67
65			मनीकरन	100	75			होतो	76
66			किरगंगा	50	76			खोरकान	102
67			बैजनाथ	57	77			पनामिक	75
68		शिमला	जग्रोरी	55	78			दुगा	26
69		महासू	रुनी	57	79	उ० प्र०	चमोली	तपोवन	45
70		कांगड़ा	धर्मशाला	40	80			बद्रीनाथ	45
71	ज० क०	लद्दाख	चोगो	58	81			गौरीकुंड	53
72			चुतरान	61	82		टेहरी	जमुनौली	89
73			दुचिन	85					

[पृष्ठ 10 का शेषांश]

सन् 1922 में आप रायल सोसाइटी लन्दन के फेलो चुन लिये गये। सन् 1928 से 1933 तक आप 'कमेटी फार इन्टेलेक्चुअल कोआपरेशन आफ दी लीग आफ नेशन्स' के सदस्य रहे। 23 नवम्बर 1937 में 79 वर्ष की आयु में आपका देहावसान हो गया।

बोस आधुनिक भारत में वैज्ञानिक शोध कार्य के अग्रणी रहे हैं। आपने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कार्य किया है जिसे सारे विश्व ने मान्यता दी है आप का कार्य विशेष रूप से सीमावर्ती क्षेत्रों में रहा। अपने शोध कार्य की प्रथम श्रृंखला में आपने माइक्रो तरंगो और प्रकाश तरंगों पर कार्य किया।

दूसरी श्रृंखलावत खोजें जड़ और चेतन वस्तुओं पर क्रियाओं की प्रति क्रियाओं में समानता पर थीं और अंतिम और तृतीय श्रृंखलावत अनुसंधान पौधों और जीव जन्तुओं पर उत्तेजना आदि के प्रभावों में समानता पर थे। बोस की इस वैज्ञानिक देन ने उन्हें सदैव के लिये अमर बना दिया। वे उन भारतीयो में से थे जिन्होंने देश का मस्तक संसार के सम्मुख ऊंचा किया है।

ज्ञान-विज्ञान

पौधों में प्रणय

जीवों में प्रणय की भावना प्राकृतिक देन है । विभिन्न प्राणियों में प्रणय की विभिन्न विधियाँ होती हैं जिनसे हम भली भाँति परिचित हैं, किन्तु पौधों में भी प्रणय होता है, यह शायद बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा। पौधों में भी नर तथा मादा लिङ्ग भेद होते हैं। नरों की संख्या अधिक रहती है और उन्हें मादा की तलाश में खूब भटकना पड़ता है । इस कार्य के लिए वे कीड़ों का सहारा लेते है, मादा स्थायी होती है और नरों को आकर्षित करने के लिए कुछ द्रव पदार्थ स्रावित करती है । नर और मादा को मिलाने का कार्य कीड़े करते हैं । कुछ पौधों में यह कार्य इतनी विचित्र विधि से होता है जिसे देख मनुष्य मात्र को भी आश्चर्य होने लगता है। इसका एक अनोखा उदाहरण युक्का(Yucca) नामक पौधे में प्रणय की विधि है।

युक्का पौधे में नीचे कई पत्ते होते हैं जिनकी चोटी नुकीली और काँटेदार होती हैं। वर्षा ऋतु में जुलाई-अगस्त के बीच पत्तियों के बीच से एक डंठल निकलता है जिस पर घण्टी के आकार के कई श्वेत पुष्प लगते हैं जो रात में खूब चमकीले मालूम होते हैं। प्रणय का कार्य रात में होता है और वह भी एक विशेष प्रकार के पतंगे द्वारा जिसका नाम है प्रोन्यूबा युकासेला (Pronuba yuccasela) ।

मादा प्रोन्यूबा रात के समय अण्डे देने के लिये किसी सुरक्षित स्थान की खोज में निकलती है और युक्का के श्वेत चमकदार पुष्पों पर आ कर बैठती है । मादा के शरीर पर कई पराग (नर) चिपक जाते हैं और मादा उड़ कर दूसरे पुष्प पर जा कर बैठती है। अब इस मादा का कार्य बड़ा मनोरंजक होता है।

मादा प्रोन्यूबा पुष्प के अण्डकोष में छेद करती है और एक अण्डा देती है । प्रत्येक अण्डा देने के बाद वह उड़कर अण्डकोष की चोटी पर जा बैठती है और अपने साथ लाये गए पराग का गोला बना कर उस पर रखती है तथा उन्हें अपनी जीभ से अन्दर ढकेल देती है। यह कार्य वह कई बार करती है ताकि उसके द्वारा लाए गए पराग (नर) मादा पुष्प से निश्चित रूप से संयोग कर सकें। प्रणय की यह विधि वास्तव में मनुष्य मात्र को आश्चर्यचकित कर देती हैं और प्रकृति की रचना की दाद देती है कि किस प्रकार एक प्राणी, एक पौधे के प्रणय कार्य में पूरी सहायता देता है। इतना ही नहीं, यह सम्बन्ध आगे चलकर इतना घनिष्ट हो जाता है कि इस पतंगे और पौधे दोनों का जीवन ही जुड़ जाता है

देखा गया है कि पतंगे के अण्डे से बच्चे निकलते हैं और प्रणय के बाद अण्डकोष से फल बनता है जिसमें बीज रहते हैं। बीज तथा पतंगे के बच्चे एक ही फल में साथ-साथ बढ़ते हैं। जब बीज बाहर गिरने लगते हैं तो कीड़े के बच्चे भी फल की दीवार में छेद बना कर बाहर जमीन पर आ गिरते हैं पौधे के बीच और पतंगे की कोषावस्था दोनों ही कुछ दिनों तक आराम करते हैं।

दूसरे वर्ष बीज अंकुरित होकर उससे पौधा बनता है और पतंगा भी कोषा से बाहर आ जाता है और फिर से पौधों के प्रणय में सहायता करता है।

युक्का के प्रणय का यह अनोखा तरीका वनस्पति शास्त्र के विद्वानों के लिए अभी भी एक विचित्र उदाहरण के रूप में उपस्थित है।

भारत में यह पौधा अब कई बगीचों में देखा जा सकता है। दो वर्ष पूर्व युक्का का एक पौधा जबलपुर के विज्ञान महाविद्यालय में लगाया गया। इसमें बड़े सुन्दर फूल लगे किन्तु फल एक भी नहीं था। कारण स्पष्ट है, जबलपुर में जब तक पतंगा प्रोन्यूबा नहीं लाया जावेगा तब तक युक्का में भी प्रणय नहीं होगा। कई अन्य स्थानों पर भी इस पौधे को लगाया गया किन्तु फल बिल्कुल नहीं मिले। जब प्रोन्यूबा पतंगा ऐसे स्थानों पर लाया गया तभी इस पौधे में फल लगने आरम्भ हुये।

प्रकृति कीं कितनी विचित्र लीला है। फ्रान्सिस डार्विन ने तो यहाँ तक कह डाला कि यदि इस संसार में प्रोन्यूबा पतंगा नहीं रहता तो संसार में युक्का पौधा भी नहीं होता।

विचित्र खाद्य रुचियाँ

शायद आप लोगो में से अधिकाँश ने यह सुन रखा होगा कि गाँवों में घूमने वाली "कञ्जड़" नामक जाति विचित्र प्रकार के पदार्थों को अपनी खाद्य सामग्री के रूप मे प्रयुक्त करती है। पहले-पहल उनकी खाद्य रुचियों को सुन कर आश्चर्य हो सकता है किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि वे विषखोपरे, गोजर, छिपकली, साँप आदि को अपना भक्ष्य बनाते हैं। ये ऐसे खाद्य पदार्थ हैं जिन्हें समाज में निकृष्ट समझा जाता है और उनको खाने वालों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

यद्यपि एक ही देश में विचित्र खाद्य पदार्थों के प्रयुक्त किये जाने के उदाहरण कम हो सकते हैं किन्तु यदि समस्त संसार की विभिन्न जातियों की ऐसी विचित्र खाद्य रुचियों की सूची बनाई जाय तो अत्यन्त रोचक परिणाम प्राप्त होते हैं।

इन विचित्र खाद्यों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं:—

1. पशु २. पक्षी तथा पतंगे 3. निर्जीव पदार्थ।

आपने शिकारियों द्वारा अजगर साँप, मगर आदि के मारे जाने का वर्णन पढ़ा होगा किन्तु यह कि सर्प जैसे विषैले प्राणी को खाद्यपदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है अत्यन्त कुतूहलपूर्ण है। प्रश्न उठता है कि क्या खाने वाला मरता नहीं? आखिर ऐसे खाद्य पदार्थों की क्या उपयोगिता हो सकती है।

पशुओं में जिन प्राणियों के मांस का प्रयोग बहुतायत से होता है वे हैं मेढक, कुत्ता, बन्दर, मगर, छिपकली तथा साँप। पक्षियों तथा पतंगों में गुबरैले, टिड्डी, टिड्डे आदि आते हैं। निर्जीव पदार्थों में पत्थर, शीशे के टुकड़े तथा धातु की कीलें।

विज्ञान-वार्ता

धूम्रपान करने वाले झुर्रियों को खतरे की चेतावनी समझें

अभी हाल में कैलिफोर्निया के एक चिकित्सक ने सिगरेट पीने के फलस्वरूप एक अन्य खतरे की ओर ध्यान खींचा है—और यह ऐसा खतरा है कि जिससे धूम्रपान वालों के गर्व को सीधी चोट पहुंचती है। रैडिंग (कैलिफोर्निया) के डा० हैरी डब्ल्यू० डेनयेल ने खोज की है कि सिगरेट पीने से चेहरे पर जल्दी ही झुर्रियां पड़नी शुरू हो जाती हैं।

डा० डेनयेल ने कहा—'मैं कुछ समय से यह देख रहा था कि जो रोगी और मित्र अधिक सिगरेट पीते हैं उनके चेहरों पर विशेष रूप से अधिक गहरी झुर्रियाँ दीखती हैं। तब मैंने इस धारणा की परीक्षा करने का निश्चय किया।'

एक वर्ष के भीतर 30 से 70 वर्ष तक की आयु के जो लोग आते रहे उन्हें एक प्रश्नावली देकर उनसे अपनी धूम्रपान की आदत, धूप में समय बिताने की मात्रा और स्वास्थ्य सम्बन्धी पिछले ब्यौरे की जानकारी देने को कहा गया।

प्रश्नावली के पूरा हो जाने पर डाक्टर ने हर व्यक्ति के चेहरे पर, विशेषतः हर आंख के कोर के बाहरी हिस्से पर, झुर्रियों की पड़ताल की। झुर्रियों की गहराई, लम्बाई और संख्या देख कर हर व्यक्ति को, झुर्रियों के लिहाज से, एक से छः वर्गों में बांटा गया।

झुर्रियों का अनुपात प्रश्नावली से उपलब्ध जानकारी के अनुरूप रहा और उनके निष्कर्ष आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट थे।

हर आयु-वर्ग में जिन व्यक्तियों के चेहरों पर अधिक झुर्रियां थीं वे उसी अनुपात से अधिक सिगरेट पीने वाले निकले।

सिगरेट के धुंए में विद्यमान निकोटिन से त्वचा के छोटे रक्तकोष सिकुड़ जाते हैं। एक अरसे बाद इस प्रक्रिया से त्वचा के तन्तु खराब हो जाते हैं और फलतः झुर्रियां पड़ जाती हैं।

धूम्रपान वाले जिन व्यक्तियों की जांच-पड़ताल की गई उनमें सबसे अधिक झुर्रियों वाले 15 व्यक्तियों में से 7 को इस पड़ताल के बाद अगले वर्ष में कैन्सर और हृदय-रोग जैसी सिगरेट सम्बन्धी बड़ी बीमारियां हो गईं।

धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के चेहरे पर गहरी झुर्रियों का होना गंभीर चेतावनी का सूचक है। उसे अपनी आयु के अन्य अधिकांश व्यक्तियों की अपेक्षा सिगरेट पीना छोड़ देने पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है—और झुर्रियां यही बात कहती हैं।

क्या हिचकियाँ आती हैं? एक चम्मच चीनी से ही आराम।

आम तौर पर हिचकियां आने से कोई हानि नहीं होती, किन्तु कभी-कभी उनसे कष्ट होता है और वे रुकती भी नहीं।

वैसे हर कोई इसका कोई घरेलू इलाज कर लेता है और अधिकतर लोग यह मानते हैं कि हिचकियों के दौर का एक मात्र पक्का इलाज यही है कि उनके स्वयं खत्म

हो जाने की प्रतीक्षा की जाये।

किन्तु लगता है कि अब इसका इलाज निकल आने वाला है या यों कहें कि वह घर की आलमारी में ही है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के सनफ्रांसिस्को स्थित 'स्कूल ऑव् मैडिसिन' के डा० एडगर इंगलमैन हिचकियों के एक नये उपचार की परीक्षा कर रहे हैं और यह है कि एक चम्मच भर चीनी।

डा० इंगलमैन और उनके दो साथियों ने हिचकियों के 20 रोगियों में से प्रत्येक को एक-एक चम्मच चीनी खिलाई।

डा० इंगलमैन ने बताया कि 'एक चम्मच सफेद दानेदार चीनी सूखी ही निगलने से 19 रोगियों को तुरन्त हिचकियां बन्द हो गईं।

तथापि, अनुसन्धानकर्ताओं का विश्वास है कि किसी रोगी की हिचकियां रक्त-प्रवाह में चीनी का रासायनिक प्रभाव पहुंचने से बन्द नहीं होतीं। उनका मत है कि दानेदार चीनी निगलने से गले के पृष्ठ भाग में नसों के सिरे संभववतः उद्दीप्त हो जाते हैं और हिचकियां लाने वाली स्नायु-तरंगें अवरुद्ध हो जाती हैं।

सम्मोहन विधि द्वारा मछली का शिकार

मछली पकड़ने के कांटे और जाल का चलन अब पुराना पड़ गया प्रतीत होता है और उसका स्थान एक ऐसी चीज ले रही है जिसका मछलियां पकड़ने के लिए कभी प्रयोग करते नहीं सुना गया। वह चीज है : सम्मोहन विद्या।

सम्मोहन विद्या मछलियां पकड़ने की उन नवीनतम विधियों में से है जिनका प्रस्ताव 'यू० एस० नेशनल मेरीन फिशरीज सर्विस, ने किया है।

'नेशनल मैरीन फिशरीज सर्विस' ने मछलियों को आकृष्ट करने के लिए एक तैरते मंच की कल्पना की है। उपर्युक्त विभाग के एक प्रवक्ता का कहना है कि इस मंच के नीचे दूधिया प्रकाश वाले जलमग्न बल्बों द्वारा सारडीन जाति की 1 लाख मछलियों तक को आकृष्ट किया जायेगा।

बिजली की स्पन्दित लहर मछलियों को एकत्र और सम्मोहित करेगी और मछलियां पानी में डूबे पम्पों की ओर खिचती चली जायेंगी।

तब उन पम्पों के जरिये मछलियों को बेड़े के ऊपर खींच लिया जायेगा और वहां उन्हें स्वचालित विधि द्वारा उपयोग लायक बना लिया जायेगा।

दाँतों की परीक्षा—अब उनके आरपार भी देखना संभव

जल्दी ही ऐसा समय आयेगा जब डाक्टरों को रोगी के दांतों की पूर्ण परीक्षा करने के लिए एक्स-रे यन्त्र का उपयोग नहीं करना पड़ेगा। अभी हाल में एक अमेरिकी फर्म ने ऐसी विधि निकाली है जिसे 'ट्रान्सइलुमिनेशन' कहते हैं। इससे दन्त चिकित्सक न केवल रोगी के दांत देख सकेंगे, बल्कि उनके आरपार भी देख सकेंगे।

'ट्रान्स-इलुमिनेशन' की विधि 'फाइबर ऑप्टिक' नामक प्रकाश-स्रोत के कारण अभी हाल में व्यवहारोपयोगी हुई है। इस विधि से दन्त चिकित्सक तत्काल दांतों की परीक्षा कर सकता है और उसे एक्स-रे फिल्म के तैयार होने तथा उसका निष्कर्ष निकालने की प्रतीक्षा नही करनी होगी।

इस समय तक 'ट्रान्स-इलुमिनेशन' विधि का प्रयोग नियमित रूप से संभव नही था क्योंकि दांतों के पार तक जाने वाला जोरदार प्रकाश आम तौर पर इतने बड़े पैमाने पर होता था कि उसे मुंह के भीतर प्रयुक्त नहीं किया जा सकता था और उसकी गर्मी भी बहुत होती थी।

किन्तु 'फाइबर ऑप्टिक्स' के उपकरण छोटे हैं, उनसे तेज प्रकाश हासिल हो सकता है और देर तक प्रयोग के बाद भी वे गरम नहीं होते। प्रकाश-स्रोत को इच्छानुसार इधर-उधर ले जाया जा सकता है और उसे मुंह के भीतर चारों ओर घुमाया जा सकता है।

जब स्वस्थ दांत को अलोकित किया जाता है तो वह चमकदार सफेद दीखता है। छीजा हुआ दांत काली छाया

दिखलाता है। जहाँ दांत भरा गया हो वहां काले धब्बे या रेखाएं दीखती हैं। खाद्य पदार्थों के अवशेषों के ठोस परतदार जमाव और मुंह के स्राव की दन्त शर्करा—जो दांतों पर बैठ जाती है और जिसे दन्त चिकित्सक से साफ करवाना चाहिए—स्पष्टता से अलग दीखती हैं।

इसके अलावा इस विधि से दांतों की खोड़ों का प्रारम्भिक अवस्था में ही पता लगाया जा सकता है जबकि अन्य प्रकार से पता नहीं चलता।

दन्त चिकित्सा का यह नया 'फाइबर औप्टिक्स' उपकरण एक छोटे पेंचकस के आकार का होता है और उसके साथ ऐसा प्रतीत होता है जैसे रबड़ के पाइप के सिरे पर बिजली का बल्ब लगा हो। उपकरण के भीतर विशुद्ध ग्लास फाइबर के धागों के लिपटे बण्डल होते हैं। हर गुच्छे से प्रकाश को उसी प्रकार जहां-तहां पहुंचाया जा सकता है जैसे लपेटवाँ पाइप से पानी ले जाया जाता है। जोरदार 'ट्रान्स-इलुमिलेशन' प्रकाश एक सिरे से उपकरण में आता है और दूसरी ओर से बाहर निकलता है—भले ही तारें तुड़ी-मुड़ी हों।

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने बताया कि ट्रान्स-इलुमिनेशन बच्चों की बड़े पैमाने पर परीक्षा की दृष्टि से विशेष उपयुक्त है। प्रौढ़ों के दांतों की अपेक्षा नये दांतों पर इनेमल हलका होता है इस लिए उनमें से प्रकाश अधिक आसानी से आरपार चला जाता है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 109	फाल्गुन 2028 विक्र०, 1892 शक मार्च-अप्रैल 1972	संख्या 3-4

ब्रह्माण्ड क्या है ? एक विवेचन-(2)

□ रवीन्द्र कुमार दुबे

गत अंक में मैंने आपके समक्ष ब्रह्माण्ड के भौतिक स्वरूप का एक चित्र प्रदर्शित किया। एक अच्छे दूरदर्शी यंत्र द्वारा हम ब्रह्माण्ड का जो रूप देखेंगे वह कुछ इस प्रकार होगा, लगभग पाँच अरब प्रकाश वर्ष की दूरी तक अनेकानेक आकाशगंगाएं, प्रत्येक आकाशगंगा में 10 करोड़ से 100 अरब के बीच नक्षत्र अपने ग्रहों व उपग्रहों सहित। स्वभावतः इस विशाल चित्र की कल्पना करते ही आपके मस्तिष्क में एक प्रश्न अवश्य ही आया होगा, कि यह इतनी सारी आकाश गंगाएं कहाँ से आ गईं ? क्या सदैव से ही हमारा ब्रह्माण्ड इसी रूप में था ? और इन आकाश गंगाओं में थोड़ी थोड़ी दूरी पर (लगभग 2-3 प्र० व०) नक्षत्र कैसे बने ? और आगे प्रश्न उठाने के पहले मैं इन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दे देना अच्छा समझूँगा, अन्यथा प्रश्नों के वन में आप भटक कर रह जाएंगे।

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक वैज्ञानिक 'थेलीज' ने पूछा था, "यह संसार,, (उनका तात्पर्य ब्रह्माण्ड से था) किस चीज का बना हुआ है" ? उनके इस एक प्रश्न के अन्दर विज्ञान का एक पूरा युग छिपा हुआ है। पिछले दो हजार वर्षो से वैज्ञानिक उनके इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ते चले आ रहे हैं, और जो कुछ इस समय ज्ञात है उसके अनुसार मैंने पिछले अंक में ही लिखा था कि एक ही आकाशगंगा के विभिन्न नक्षत्रों के बीच के स्थान में शून्य नहीं होता है वरन् बहुत ही कम घनत्व वाली गैसों का मिश्रण इस स्थान में भी होता है। इसी भाँति विभिन्न आकाशगंगाओं के बीच के स्थान (इंटर-गैलेक्टिक स्पेस) में भी निर्वात नहीं हैं, यहाँ भी गैसों का एक मिश्रण उपस्थित रहता है—जिसका घनत्व बहुत ही कम होता है—नक्षत्रों के बीच पाई जाने वाली गैस से भी बहुत कम—इतना कि अगर दस गैलन गैस में आप ढूंढें तो मुश्किल से एक परमाणु मिलेगा। आप सोचेंगे, फिर तो पूर्ण ब्रह्माण्ड के चित्र में इस आकाशगंगा के बीच पाई जाने वाली गैस की कोई सत्ता ही नहीं है,

लेकिन नहीं ब्रह्माण्ड में छिपे अनन्त रहस्यमयी तथ्यों के बीच हमेशा आप धोखा खाएंगे। तथ्य तो वह होगा जो आप गलत समझते होंगे, और यहाँ भी यह जानकर आप केवल दाँतों तले उँगली ही दबा सकते हैं, कि इतने कम घनत्व के बावजूद पूर्ण ब्रह्माण्ड में उपस्थित आकाशगंगाओं के बीच उपस्थित गैसों का भार सारी आकाशगंगाओं के भार से लगभग दस गुना होता है । यह आश्चर्यजनक लगता है परन्तु वास्तव में आकाशगंगाएं पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक बहुत अल्प भाग ही भर पाती हैं और अधिकतर भाग में यह कम घनत्ववाली गैस ही विद्यमान है । ब्रह्माण्ड की यह विशिष्ट रचना अपने इतिहास की कहानी बताती है । अरबों वर्ष पूर्व यह अनादि अनन्त ब्रह्माण्ड इसी कम घनत्व वाली गैस से ही भरा हुआ था, न आकाशगंगा थी, न चाँद, न सितारे और न हम । फिर धीरे धीरे अलग अलग स्थानों पर इस गैस के छोटे छोटे भाग कुछ ठंडे होते गये और इन भागों का घनत्व बढ़ता गया, और इस प्रकार हमारी आकाशगंगाओं की माँ का जन्म हो गया । यह स्थिति है अब से लगभग 50 अरब वर्ष पूर्व की, जब ब्रह्माण्ड में थी केवल यह गैस और उसमें लाखों प्रकाश वर्षों की दूरियों पर कुछ चकत्ते–कुछ अधिक घनत्व वाले ।

अब हमें देखना है कि फिर आकाशगंगा का आधुनिक रूप किस प्रकार बना, अर्थात आकाशगंगा जो अधिक घनत्व की गैस के चकत्तों के रूप में ब्रह्माण्ड में थी, उसमें नक्षत्रों का जन्म किस प्रकार हुआ ? इसे समझने के लिये मैं अपनी आकाशगंगा का ही अरबों वर्ष पूर्व का चित्र लेता हूँ, तो हमारे पास लगभग 60,000 प्रकाश वर्ष का गैस का एक भाग है जो लगभग 5 लाख मील प्रति घंटा की दर से गोल घूम रहा है, तो इस गोल घूमने के कारण गैस में कुछ भँवरें उत्पन्न होंगी । सुविधा के लिये आप इस गति की तुलना एक गोल थाली में रखे हुए पानी से कर सकते हैं, यदि थाली को तीव्रता पूर्वक गोल घुमाएँ तो पानी में भी लहरें उत्पन्न होने लगती हैं । इस प्रकार वृत्ताकार गति के कारण गैस की गति सर्वत्र समान नहीं रही, और विभिन्न स्थानों पर गैस का जमना प्रारम्भ हो गया, साथ ही साथ इस जमें हुए स्थान के आसपास उपस्थित अधिक दबाव वाली गैस ने उस पर और दबाव डाला । लगातार इसी क्रिया के होते रहने के कारण अंत में उस स्थान का घनत्व अत्यधिक हो जाता है, और फिर एक विशेष क्रिया (जिसका वर्णन सविस्तार बाद में किया जाएगा) के द्वारा यह भाग तीव्रतापूर्वक ऊष्मा विकरित करने लगता है । और संक्षेप में यही है एक नक्षत्र के जन्म की कहानी । यद्यपि पूर्णतः समझने के लिये कि किस प्रकार यह सब होता है, हमें कई सिद्धान्त समझने पड़ेंगे और इसी प्रकार कई उलझनों को दूर करना होगा

अब एक प्रश्न मैं आपसे ही पूछना चाहूँगा, सूर्य से आने वाली ऊष्मा (धूप के रूप में) के बारे में आपके क्या विचार हैं, आपके जीवन में इसकी क्या आवश्यकता है ? मोटे तौर पर, बगैर अधिक विचार किए हुए आप कहेंगे, बस सर्दियों में कुछ गर्मी देने के लिए और प्रकाश देने के लिए, गर्मियों में तो यह कष्ट ही अधिक देती है । कितना अच्छा लगता है जब बादल का एक नन्हा सा टुकड़ा भी जून की दोपहर में सूर्य को ढक लेता है । सड़क पर जाता हुआ मुसाफिर आशा भरी हुई नजरों से बार बार ऊपर देखता है, उसके मस्तिष्क में उस समय केवल एक ही बात होती है—काश यह बादल का टुकड़ा थोड़ा और बड़ा होता या वायु की गति ही थोड़ीकम होती, जिससे वहछाया में ही अपनी मंजिल तक पहुँच सकता । कितना दुखःदायी लगता है, यह सूर्य उस समय । तो केवल इतनी बातों पर ही यदि हम ध्यान दें तो सूर्य की कोई विशेष महत्ता समझ में नहीं आती है, क्योंकि ऊष्मा व प्रकाश तो आप विद्युत धारा से भी प्राप्त कर सकते हैं । रात्रि में अथवा अन्य समय भी धूप की अनुपस्थिति में जीवन प्रवाह रुकता नहीं है, अबाध गति से चलता ही रहता है—कवि काव्य रचना करता रहता है, वैज्ञानिक अनुसंधान करता रहता है—विद्युत धारा के प्रकाश में । पर, थोड़ा

ठहरिए यहाँ—विद्युत धारा के प्रकाश में, यह विद्युत धारा कहाँ से आई ? किस प्रकार बनाई गई ? मुख्यतः जल की सहायता से अथवा पृथ्वी के अन्दर से निकाले हुए कोयले से। पर जलाशयों में जल एकत्रित कैसे हुआ ? नदियों द्वारा, नदियाँ आईं पर्वतों से वर्षा के पानी को साथ लेते हुए, फिर वर्षा के लिए बादल किस प्रकार बनें ? सूर्य से प्राप्त ऊष्मा द्वारा सागर के जल की वाष्प बनने से—और लीजिए यहाँ भी सूर्य आ गया। छोड़िए—हम विद्युतधारा तो भूगर्भ से प्राप्त कोयले से बना लेंगे, पर वहाँ कोयला कैसे पहुँचा—प्राचीन वनस्पति के दहन से। यह कार्य किसने किया ? यह भी सूर्य ने। तब तो सूर्य हमारे लिए कुछ अधिक ही आवश्यकीय प्रतीत होता है। जरा और सोचिए—श्वास लेने के लिए हमें आक्सीजन कहाँ से प्राप्त होती है—वनस्पतियों द्वारा—और यह वनस्पति, पेड़ पौधे—यह क्रिया कैसे करते हैं—सूर्य द्वारा ऊष्मा प्राप्त करके, नदियों में पानी भी सूर्य की ऊष्मा के कारण ही आता है यही नहीं हमारे चारों ओर जो वातावरण विशेष रहता है और जैसा कि पिछले अंक के अंत में मैंने कहा कि इस विशेष वातावरण में ही हमारे शरीर के डी० एन० ए० अणु जीवित रह सकते हैं क्योंकि सूर्य से जितनी दूरी पर हमारी पृथ्वी है इसी दूरी पर हमें केवल उतनी ही ऊष्मा प्राप्त होती है जितनी कि आवश्यक हैं। यदि सूर्य से हमारी दूरी कुछ कम या अधिक हो जाए तो सूर्य से प्राप्त ऊष्मा में कुछ वृद्धि अथवा ह्रास हो जाएगा और हमारा जीवन दूभर हो जाएगा।

यह सूर्य से अबाध गति से जो ऊष्मा हमें प्राप्त होती है इसी भाँति सूर्य के चारों ओर ऊष्मा विकरित होती रहती हैं। इस कार्य के लिए सूर्य प्रति सेकिंड 3.8×10^{33} अर्ग ऊर्जा विकरित करता है। सूर्य के आंतरिक भाग का तापक्रम 1.5 करोड़ डिग्री सेंटीग्रेड के लगभग होता है, परन्तु इसकी तुलना यदि हम एक अच्छी विद्युत भट्टी से करें (जिसमें हम लगभग 3000° से० ग्रे० ताप उत्पन्न कर सकते हैं) तो यह इस प्रकार की 5000 विद्युत भट्टियों के बराबर होता है। परन्तु इतने गर्म आंतरिक भाग के आसपास एक ठंडी गैसों का कवच होता है बिल्कुल उसी प्रकार, जैसे कि हम किसी गर्म चीज को कम्बल से ढक देते हैं और सूर्य की इस बाहरी पर्त्त का तापक्रम केवल 6000° से० ग्रे० ही होता है। और इसी भाँति तीव्र गति से ऊर्जा विकरित करने की क्रिया सभी नक्षत्र करते रहते हैं केवल हमारी आकाशगंगा के ही नहीं—सारी आकाशगंगाओं के।

स्वभावतः आपके मस्तिष्क में इस समय एक प्रश्न उठेगा कि नक्षत्रों में अन्दर ऐसी क्या चीज है, कौन सी क्रिया हो रही है कि इतना अधिक तापक्रम उत्पन्न होता है,—सदियों से सूर्य हमें इतनी ऊष्मा देता आ रहा है और आशा है कि देता रहेगा। सबसे पहली बात जो हम सोच सकते हैं वह है कि सूर्य में किसी अच्छे गुण वाले कोयले का संग्रह हो और उसके दहन से ऊष्मा उत्पन्न होती हो परन्तु पिछले कई अरब वर्षो से सूर्य से लगातार ऊष्मा विकरित हो रही है, इसी अबाध गति से और सूर्य की आकृति देखते हुए यह पूर्णतः असम्भव प्रतीत होता है कि कोयले के दहन से यह क्रिया हो रही हो, साथ ही साथ सूर्य में इतनी मात्रा में कार्बन की उपस्थिति भी नहीं पाई गई हैं। अतः अवश्य ही नक्षत्रों में कोई ऐसी तीव्र क्रिया होती होगी जो कि प्राकृतिक रूप से हमारी पृथ्वी पर नहीं होती है। तो अब हम अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न करने वाली किसी ऐसी क्रिया के बारे में सोचते हैं जो प्राकृतिक रूप से पृथ्वी पर न होती हो। हिरोशिमा व नागासाकी की याद तो अभी ताजी ही है—हाँ—परमाणु बम (एटम बम) एक ऐसी क्रिया हो सकती है। इस क्रिया में अधिक भार वाला एक परमाणु दो छोटे छोटे कम भारवाले परमाणुओं में विभक्त हो जाता है और यह क्रिया कुछ इस प्रकार होती है कि दोनों कम भार वाले परमाणुओं की मात्रा का योग अपने पितृ परमाणु के भार से कम ही रहता है और इस प्रकार इस विघटन में कुछ मात्रा का ह्रास होता है यही मात्रा ऊर्जा के रूप में हमें प्राप्त होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक, विचारक आइंसटीन ने इस विषय में निम्नलिखित समीकरण दिया,

उत्पन्न ऊर्जा (E)=मात्रा में ह्रास (M)$\times$ (प्रकास का वेग)^2 $(C)^2$

प्रकाश का वेग, हम जानते हैं कि अत्यधिक है (3×10^{10} से० मी० प्रति सेकंड) अतः अल्प मात्रा ह्रास होने पर भी अत्यधिक ऊर्जा उत्सर्जित होगी। परन्तु फिर भी इस क्रिया द्वारा सूर्य में ऊर्जा उत्पन्न होना सम्भव नहीं है क्योंकि इसके लिए आवश्यकीय है कि सूर्य में विशेष रूप से अधिक भार वाले परमाणु उपस्थित हों परन्तु वास्तव में सूर्य अथवा किसी भी अन्य नक्षत्र में सर्वाधिक मात्रा हल्की गैस हाइड्रोजन की होती है तथा भारी परमाणुओं की मात्रा अति न्यून होती है।

किसी नवजात शिशु नक्षत्र में विभिन्न पदार्थ इस प्रतिशत में पाए जाते हैं—(1) आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन और दूसरे भारी पदार्थ जैसे लोहा—2% (2) हीलियम—25% (3) हाइड्रोजन 73% तथा साथ ही साथ ऐसा पाया गया है कि आयु बढ़ने के साथ साथ हाइड्रोजन की मात्रा नक्षत्रों में घटती जाती है, तथा हीलियम की मात्रा में लगातार वृद्धि होती जाती है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि सूर्य में ऊर्जा हाइड्रोजन के हीलियम के रूप में परिवर्त्तित होने से उत्पन्न होती है और यह क्रिया है हाइड्रोजन बम की। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बेथेने इस रसायनिक क्रिया का पूर्ण सिद्धांत रसायनिक समीकरणों द्वारा प्रदर्शित किया है, इस विषय में अधिक रूचि रखने वाले पाठकों के लिए मैं इन समीकरणों को यहाँ दे रहा हूँ।

(1) ${}_1H^1 + {}_6C^{12} \rightarrow {}_7N^{13} + \gamma$ rays

(2) ${}_7N^{13} \rightarrow {}_6C^{13} + {}_1e^0$

(3) ${}_1H^1 + {}_6C^{13} \rightarrow {}_7N^{14} + \gamma$ rays

(4) ${}_1H_1 + {}_7N^{14} \rightarrow {}_8O^{15} + \gamma$ rays

(5) ${}_8O^{15} \rightarrow {}_7N^{15} + {}_1e^0$

(6) ${}_1H^1 + {}_7N^{15} \rightarrow {}_6C^{13} + {}_2H_6{}^4$

$4{}_1H^1 \rightarrow {}_2H_6{}^4 + 2{}_1e^0 + \gamma$ rays
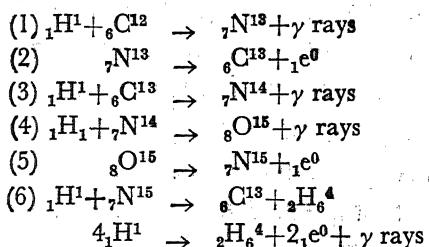
अंतिम समीकरण प्रदर्शित करता है कि जब चार हाइड्रोजन परमाणु (मात्रा $4 \times 1{\cdot}007276$) आपस में मिलते हैं तो एक हीलियम परमाणु (मात्रा $4{\cdot}000373$) तथा दो पाजिट्रान (मात्रा $2 \times 0{\cdot}000544$) उत्पन्न होते हैं तथा गामा किरणों के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित होती है।

तो अब हम देखते हैं कि इस क्रिया में हाइड्रोजन की कितनी मात्रा ऊर्जा में परिवर्तित हो गई। यह प्राप्त होगी चारों हाइड्रोजन परमाणुओं की मात्रा में से, एक हीलियम व दो पाजिट्रान परमाणुओं की मात्रा के योग, को घटाने से।

अतः ऊर्जा के रूप में परिवर्तित पदार्थ की मात्रा

$= 4 \times 1{\cdot}007276 - 4{\cdot}000373 - 2 \times 0{\cdot}000544$

$= 0{\cdot}0286$ मात्रा इकाई (मास यूनिट)

$= 0{\cdot}0286 \times 931{\cdot}46$ मिलियन एलेक्ट्रॉन वोल्ट

$= 25{\cdot}6$ मि० ए० वो०

जिस तीव्र गति से यह क्रियाएँ होती है, उनसे लगभग दो करोड़ डिग्री सें० ग्रे० तक तापक्रम उत्पन्न हो सकता है। मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि सूर्य से लगभग $3{\cdot}8 \times 10^{33}$ अर्ग ऊर्जा प्रति सेकिंड उत्सर्जित होती है। अतः आइंसटीन के ऊर्जा-मात्रा समीकरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ऊर्जा उत्सर्जन के लिए इसे प्रति सेकिंड $4{\cdot}1 \times 10^{12}$ ग्राम अर्थात 44 लाख टन हाइड्रोजन खर्च करनी पड़ती है, इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे जीवन के एक दिन को सामान्य रूप से जीवित रखने के लिए सूर्य को 330,000 लाख टन हाइड्रोजन खर्च करनी पड़ती है, प्रतिदिन सूर्य की मात्रा में इतनी कमी सदियों से होती आ रही है और बेचारा सूर्य यह सब सहन करता आ रहा है। पर आप यह सोच कर घबड़ाइए नहीं कि कहीं सूर्य की हाइड्रोजन किसी दिन समाप्त न हो जाए और दिन में भी रात नजर आने लगे, ऐसा नहीं होगा केवल आपके ही लिए नहीं आपकी आने वाली सैकड़ों पीढ़ियों के लिए भी सूर्य के पास हाइड्रोजन का सुरक्षित भण्डार अभी मौजूद है। वास्तव में जिस गति से सूर्य अपनी हाइड्रोजन खर्च कर रहा है उसके अनुसार लगभग 8×10^{12} वर्षों बाद भी इसकी आधी हाइड्रोजन बची रहेगी।

तो यह हुई कुछ बात सूर्य तथा अन्य नक्षत्रों में अत्य-

धिक ऊर्जा उत्पन्न होने के बारे में। और, अब एक बात और। यह तो ठीक है कि सूर्य व अन्य नक्षत्रों के पास अभी एक लम्बे अरसे के लिए हाइड्रोजन का भण्डार सुरक्षित है, परन्तु फिर ? फिर उसके बाद क्या होगा—जब सारी हाइड्रोजन, हीलियम में परिवर्त्तित हो चुकी होगी ? उस दशा में क्या नक्षत्र ऊष्मा व प्रकाश देना बंद कर देंगे। इस बात को समझने के लिए हमें कुछ विशेष प्रकार के बड़े नक्षत्रों की ओर ध्यान देना होगा जिनके नाम ही उनके आकार को प्रदर्शित कर देते हैं। जैसे कि 'रेड जाइन्ट्स', 'सुपरजाइन्ट्स' आदि। आकार सेयह नक्षत्र इतने बड़े होते हैं कि पृथ्वी सूर्य के आस-पास जिस गोलाकार मार्ग में भ्रमण करती है उस पूरी आकृति को एक 'रेड जाइन्ट्' भर सकता है, अर्थात् यह हमारे सूर्य से कई हजार गुना बड़े होते हैं। और अब जरा ध्यान दीजिए इन दोनों की आयु के वारे में आयु के लिए आप एक रेड जाइन्ट् व एक सामान्य प्रकार के नक्षत्र की तुलना हाथी व मनुष्य से कर सकते हैं एक छोटा दूध मुँहा हाथी अपने से आयु में बहुत वड़े बूढ़े मनुष्य की अपेक्षा आकृति में कहीं बहुत बड़ा होता है यही बात एक बूढ़े चूहे व बालक मगरमच्छ के बीच आप पाएँगे। तो आयु के अनुसार आपका सूर्य अधेड़ हो चुका है जबकि इन रेड जाइन्ट्स का अभी बचपन ही चल रहा है। आकृति में इसके विपरीत बालक नक्षत्र अधेड़ नक्षत्र से कहीं बहुत बड़ा है।

ऐसा क्यों है ? इसके लिए फिर एक बार नक्षत्रोंके जन्म के समय की परिस्थितियों पर ध्यान दीजिये। एक खास स्थान पर गैसों के ठंडे होकर सिकुड़ते रहने पर अंत में नक्षत्र का जन्म होता है, इस क्रिया के बीच इस स्थान में जो मिट्टी-धूल के कण या कुछ चट्टानों के टुकड़े (जो अंतरिक्ष में यंत्र-तंत्र बिखरे रहते हैं) होते है वह भी नक्षत्र के गर्भ में बन्द हो जाते हैं। और जब चट्टानों के कुछ अधिक बड़े टुकड़े-अधिक बड़े स्थान में बन्द हो जाते हैं तो एक बड़े प्रकार के नक्षत्र का जन्म होता है, इसमें उपस्थित गैस की मात्रा भी अत्यधिक होती है, और यह बहुत ही तेज प्रकाश देने वाला नक्षत्र होता है इसके विपरीत यदि जन्म के समय कम मात्रा में गैस व अन्य पदार्थ उपस्थित हों तो जन्म लेने वाला नक्षत्र हमारे सूर्य की भाँति का एक सामान्य नक्षत्र होगा जिसकी आयु बड़े प्रकार के नक्षत्र से कई गुना अधिक होती है। और यदि प्रारम्भ में इससे भी कम मात्रा में पदार्थ रहे हों, तो जन्म लेने वाला नक्षत्र सूर्य से भी छोटा होगा, जो बौना नक्षत्र कहलाता है। इसका प्रकाश सूर्य से बहुत कम पर आयु अत्यधिक होगी।

यह आश्यर्मजनक लगता है कि जितने कम मात्रा के पदार्थ के सहित नक्षत्र जन्म ले उसकी आयु उतनीं ही अधिक हो, पर यह है सत्य। आपने शायद देखा होगा कि एक धनवान व्यक्ति एक निर्धन की अपेक्षा बहुधा शीघ्र कंगाल हो जाता है, यदि वह धन संचय के लिए उद्यम न करे। व्यावहारिक जगत में ऐसा इसलिए होता है क्योंकि धनवान व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए एक निर्धन की अपेक्षा अधिक परिमाण में प्रतिदिन खर्च करता है और यही बात नक्षत्रों के विषय में भी है, बड़े प्रकार के नक्षत्रों को अपनी तेज चमक को बनाए रखने के लिए छोटे नक्षत्रों से कहीं अधिक तेज गति से संचित हाइड्रोजन खर्च करनी पड़ती है और इस प्रकार यदि एक बड़ा व एक छोटा नक्षत्र साथ-साथ जन्म ले तो बड़े नक्षत्र की संचित गैस बहुत शीघ्र (10-12 करोड़ वर्षों में) ही समाप्त हो जाएगी जबकि छोटे प्रकार का नक्षत्र धीरे-धीरे अपनी हाइड्रोजन खर्च करता हुआ कई अरब वर्षों तक जीवित रहेगा।

[अगले अंक में इस विवेचन की तृतीय व अंतिम कड़ी-जिसमें सर्वप्रथम विवरण होगा नक्षत्रों की मृत्यु के क्षणों का तथा साथ ही ब्रह्माण्ड के विषय में सर्वाधिक मनोरंजक तथ्य-'फैलता हुआ ब्रह्माण्ड']

● ●

संख्याओं में मैत्रीभाव

□ पारस नाथ पाण्डेय

विज्ञान ज्ञान को विशिष्ट रूप में रखने की पद्धति है। प्रारम्भ में गणित और विज्ञान में विशेष अंतर नहीं था, पर आगे चल कर जब गणित एवम् विज्ञान के क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति हो गई तब उनके क्षेत्रों को अलग करना आवश्यक हो गया। और तब गणित विज्ञान के नियमों के स्पष्टीकरण के लिये एक आधार के रूप में प्रयुक्त हुआ। अब तो गणित विज्ञान की नींव में उसकी भाषा के रूप में व्यवहरित हो रहा है। इसके बिना न तो विज्ञान में नये शोध सम्भव हैं और न ही ज्ञात सिद्धांतों का स्पष्ट प्रकटीकरण। आज गणित के कुछ क्षेत्रों में यह भी दृढ़तापूर्वक कहा जाने लगा है कि प्रकृति की प्रत्येक नियम की व्याख्या गणित द्वारा संभव है। मैत्री भाव मानव समाज का एक अपरिहार्य अंग है। इसकी जड़ गणित के सूत्रों में ढूंढ़ी जा सकती है। ऐसा ही एक प्रयास मैंने भी किया है।

मित्रता समान लोगों में होती है। यह समत्व भाव भावना का हो सकता है, उद्देश्य का हो सकता है, गुण या धर्म का हो सकता है। बाघ बकरी या अंधे लंगड़े की मित्रता संभव नहीं। यदि होती भी है तो वह किसी विशेष उद्देश्य के लिये ही होगी। उद्देश्य सिद्धि के साथ ही असमानता पर आधारित मित्रता टूट जायेगी।

मित्र सुख-दुख में साथ-साथ रहते हैं। उनका प्रेरणा-स्रोत एवम् भावों का प्रकटीकरण एक ही और एक ही तरह को होता है। वाह्य आक्रमणों में वे योजना बद्ध हो शत्रु से जूझ पड़ते हैं। मैत्री भाव के इन मूल भूत सिद्धांतों का पालन गणित परिवार की कुछ संख्यायें भी करती हैं। यथा समान धर्मी आर्डर्ड पेयर्स के एक समुच्चय पर विचार किया जाय, जिसका धर्म निम्न है।

$$a \cdot b = 10a + b$$

जहाँ a और b पूर्ण संख्यायें हैं। और a,b किसी आर्डर्ड पेयर (a,b) के पहले एवम् दूसरे सदस्य हैं। इसका अर्थ है कि यदि a और b का आपस में गुणा किया जाय तो वह a में 10 से गुणा करके b को जोड़ने पर प्राप्त संख्या के बराबर होगा। उदाहरण के लिये (3,15) पर विचार करें।

$$3.15 = 45$$
$$3.10 + 15 = 45$$
$$\therefore \quad 3.15 = 3.10 + 15$$

इस समुच्चय में केवल सात सदस्य हैं, जो निम्न हैं
(−1,5); (−4,8); (−9,9); (2,20); (3,15); (6,12); (11,11)

ये सदस्य एक तरह से अपने में पूर्ण हैं, क्योंकि यदि हर आर्डर्ड पेयर्स के सदस्यों को आपस में गुणा किया जाय और उन सबका बीजगणितीय योग निकाला जाय तो उनके अंकों का योग सात आता है, यथा

$$(-1).5 + (-4).8 + (-9).9 + 2 \cdot 20 + 3 \cdot 15 + 6 \cdot 12 + 11 \cdot 11$$
$$= -5 - 32 - 81 + 40 + 45 + 72 + 121$$
$$= -118 + 278 = 160$$

अंकों का योग $= 1 + 6 + 0 = 7$

सिंह के आक्रमण के समय सूकर गण एक वृत्त की परिधि पर बहिर्मुखी अभिलम्ब की दिशा में मुँह करके लड़ने के लिये तैयार खड़े हो जाते हैं। इस समुच्चय के किसी भी आर्डर्ड पेयर के सदस्यों को आपस में यदि घटाया जाता है तो प्रत्येक आर्डर्ड पेयर $b - a = 3k$ के रूप में आ जाता है, जहाँ k शून्य या कोई पूर्ण संख्या है। उदाहरणार्थ

$5-(-1)=5+1=6 \quad =3\cdot2$
$8-(-4)=8+4=12=3\cdot4$
$9-(-9)=9+9=18=3\cdot6$
$20-2 \quad =18 \quad =3\cdot6$
$15-3=12 \quad =3\cdot4$
$12-6=6 \quad =3\cdot2$
$11-11=0 \quad =3\cdot0$

स्पष्टतः केन्द्र विन्दु 3K है।*

मित्रगरा सुख दुख में इकट्ठे रहते हैं।

प्रत्येक ग्रार्डर्ड पेयर के सदस्यों को ग्रापस में जोड़ा जाय तो वे 2K' के रूप में ग्रा जाते हैं, जहां K' शून्य या कोई पूर्ण संख्या है।

यथा

$-1+5=4=2\cdot2$
$-4+8=4=2\cdot2$
$-9+9=0=2\cdot0$
$3+15=18=2\cdot9$
$6+12=18=2\cdot9$
$2+20=22=2\cdot11$
$11+11=22=2\cdot11$

उपरोक्त क्रियायें दुख एवम् सुख के उदाहरण के रूप में हैं। उपरोक्त परिणाम स्पष्ट करते हैं कि ये ग्रार्डर्ड पेयर्स सुख दुख में समान धर्मी हैं।

वस्तुतः मित्रों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में परम मित्र एवम् द्वितीय वर्ग में साधारण मित्र ग्राते हैं। परम मित्र वे हैं जिनके तन दो पर मन सदा एक होता है। वास्तव में वे एक दूसरे के प्रतिविम्ब होते हैं। साधारण मित्रों में समानतायें तो बहुत होती हैं पर कभी कभी विभिन्नतायें भी देखने को मिलती हैं। इन मित्र संख्याग्रों को भी हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। प्रथम वर्ग में (3,15) ग्रौर (6,12) हैं तथा द्वितीय वर्ग में (–1,5), (–4,8), (2,20) एवम् (11,11) हैं। (–9,9) बहुत हद तक प्रथम वर्ग के सदस्यों से मिलता जुलता है। ग्राइये हम प्रथम वर्ग के सदस्यों पर विचार करें।

माना (a,b) इस वर्ग का एक सदस्य है तो ग्रंकों के योग की दृष्टि से

$a.b=a^2.b^2=a^3b^3=.....=a+b=a^2+b^2=a^3+b^3=...=9$

ग्रगर (c,d) इस वर्ग का दूसरा सदस्य हो तो

$a.c+b\cdot d$ में भी ग्रंकों का योग 9 ही ग्राता है।

यथा,

$3.15=45$, ग्रंकों का योग$=4+5=9$

$3^2.15^2=9\cdot225=2025$, ग्रंकों का योग$=2+0+2+5=9$

$3^3\cdot15^3=27\cdot3375=91125$, ग्रंकों का योग$=9+1+1+2+5=18$ पुनः $1+8=9$

इसी प्रकार ग्रागे भी..।

पुनः $3+15=18$ ग्रंकों का योग$=1+8=9$

$3^2+15^2=9+225$
$=234$, ग्रंकों का योग$=2+3+4=9$

$3^3+15^3=27+3375=3402$

ग्रंकों का योग$=3+4+0+2=9$

इसी प्रकार ग्रागे भी............।

$a.c+b.d=3.6+15.12=18+180=198$

ग्रंकों का योग$=1+9+8=18$

पुनः $1+8=9$

$a^2.c^2+b^2.d^2=3^2.6^2+15^2.12^2=324+32400=32724$

ग्रंकों का योग$=3+2+7+2+4=18$

पुनः $1+8=9$

इसी प्रकार ग्रागे भी.........।

ग्रब (–9,9) को लें। तो देखते हैं कि ग्रंकों को दृष्टि से

$a.b=a^2.b^2=...=a^2+b^2=a^4+b^4=a^6+b^6=...=9$
$a+b=a^3+b^3=...=0$

---

*उपरोक्त परिणाम 0 (mod 3) के रूप में लिखे जा सकते हैं ग्रर्थात उपरोक्त परिणाम $\bar{0}$ कक्षा में रखे जा सकते हैं।

अब दूसरे वर्ग के सदस्यों पर ध्यान दें। इस वर्ग में निम्न सदस्य हैं

(—1,5), (—4,8), (2, 20), (11, 11)

यदि (a, b) इस वर्ग का कोई सदस्य है तो अंकों के योग की दृष्टि से

$$a+b=4,$$
$$a^2+b^2=8$$
$$a^3+b^3=7$$
$$a^4+b^4=5$$

....

....

$a^2.b^2=7$, $a^4 b^4=4$,

$a.c+b.d=8$

$a^2.c^2+b^2.d^2=5$

$a^3.c^3+b^3.d^3=2$

यहां तक ये चारों सदस्य एक सा व्यवहार करते हैं, पर जब हम a. b, a^3. b^3,...को ध्यान में लेते हैं, तब (—1,5) एवम् (—4,8) का व्यवहार एक सा तथा (2,20) एवम् (11, 11) का व्यवहार एक सा पाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये चारों सदस्य साधारण मित्र हैं, पर (—1,5), (—4,8) तथा (2,20), (11,11) भी आपस में परम मित्र हैं। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परम मित्र किसी भी आदमी का, एक और केवल एक हो सकता है। पर (—9,9) के उदाहरण से स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जिनका परम मित्र कोई न हो।

लेखकों से निवेदन

- 'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।
- लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।
- अस्वीकृत लेखों को वापस मंगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

चंद्रमा पर निवास : कुछ समस्याएँ तथा कुछ समाधान

□ कु० वंदना

चन्द्रमा पर मनुष्य का पहुँचना अब कहानियों की कल्पना नहीं अपितु प्रत्यक्ष सत्य है। हम सब लोग पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से काफी कुछ यह भी जान गये हैं कि चन्द्रमा तक मनुष्य को ले जाने वाला वाहन 'राकेट' कहलाता है, कि राकेट गैसों से चलता है, कि चन्द्र यात्री को भारी भरकम लबादा पहनना पड़ता है। लेकिन अगर चन्द्रमा पर लम्बे समय तक निवास करना पड़े तो किन समस्याओं का सामना होगा, तथा उन समस्याओं को हल करने में वैज्ञानिकों ने क्या प्रगति की है—इसकी समुचित जानकारी सम्भवतः सभी पाठकवर्ग को न हो ?

वायुमंडल की समस्या

पृथ्वी के चारो ओर वायु का घेरा है, यह भी कह सकते हैं कि हम वायु के सागर की तली पर रहने वाले जीव हैं। वायुमंडल की आक्सीजन सांस द्वारा फेफड़ों में और वहाँ से हमारे शरीर की अनेकानेक कोशिकाओं में पहुँचती है। बिना आक्सीजन के हम जीवित नहीं रह सकते। हमको एक अन्य कारण से भी वायुमंडल की आवश्यकता है। वह यह है कि यदि वायु मंडल नहीं होगा तो शरीर अंदर के रुधिर दाब के कारण गुब्बारे की तरह फूट जायेगा।

अब समस्या यह है कि चन्द्रमा पर वायु मंडल बनाने की चेष्टा करें भी, (यद्यपि यह लगभग असंभव ही है) तो यह वायुमंडल चन्द्रमा पर अधिक समय रुकेगा नहीं। चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण कम होने के कारण पृथ्वी से ले जाकर चन्द्रमा पर छोड़ा गया वायुमंडल शीघ्र ही चन्द्रमा से बहुत दूर चला जायगा। ऐसी दशा में स्पष्ट है कि हमको हर समय किसी न किसी प्रकार के गैस-टाइट खोल में रहना होगा—यह खोल हमारा अंतरिक्ष लबादा हो सकता है, हमारी मोटर कार हो सकती है, या हमारा मकान। इस खोल के अन्दर हमारे लिये आवश्यक गैसें भरी होंगी तथा आवश्यक और हानिकर गैसों को किसी न किसी प्रकार समाप्त करने का इंतजाम होगा। पृथ्वी के वायुमंडल से इन खोलों के वायुमंडल में एक भिन्नता होगी—इनमें नाइट्रोजन के स्थान पर हीलियम का प्रयोग होगा।

शरीर कार्बन डाइ आक्साइड, पानी की भाप मुख्य रूप से और मीथेन, यूरिया, कार्बन मोनोक्साइड, इंडोल, स्केटोल आदि कुछ कम मात्रा में उत्सर्जित करता है। इनमें से कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन, इंडोल और स्केटोल तो अणु चलनीयों द्वारा सोखे जाएँगे। कार्बन मोनोक्साइड को पहले कार्बन डाइआक्साइड में बदलना होगा तब इसका निष्कर्षण होगा। इसके लिये सिलवर, मैंग्नीज आदि धातुओं का एक विशेष मिश्रण प्रयोग करेंगे। भाप को ठंडा करके पानी में बदल कर अलग करेंगे।

मकानों के अन्दर वनस्पति लगा कर आवश्यक आक्सीजन उनकी प्रकाश संश्लेषण क्रिया से प्राप्त करने की योजना है। इसमें दूसरा लाभ यह भी है कि श्वसन से उत्सर्जित कार्बन डाइआक्साइड भी इस्तेमाल होती रहती है। इस काम के लिये एल्गी सबसे अच्छी वनस्पति पाई गई है। प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि एक व्यक्ति के लिये आवश्यक आक्सीजन केवल पांच पौंड एल्गी से प्राप्त होती रहेगी।

जल

वायु के पश्चात जीवन धारण करने के लिये जल सबसे आवश्यक है। बिना पानी के शारीरिक क्रियायें

संपन्न नहीं होंगी। चन्द्रमा पर जल भी एक समस्या होगी लेकिन उतनी गंभीर नहीं जितनी आप सोच रहे हैं। चन्द्रमा पर पृथ्वी की तरह नदी, तालाब और समुद्र नहीं है यानी पानी आपको सरलता से नहीं मिल सकेगा। फिर भी चन्द्रमा की गहराई में पानी प्राप्त होने की काफी संभावना है। दूसरे चन्द्र सतह पर अनेक स्थानों पर जल चट्टानों में केलासीय जल के रूप में भी प्राप्त हो सकेगा। यह अवश्य है कि इसके लिये चट्टानों को काफी गर्म करना पड़ेगा। लेकिन यह सौर-भट्टी द्वारा आसानी से किया जा सकता है। एक बात और-जल के प्रमुख स्रोत आप स्वयं ही होंगे। हम जल प्रयोग अवश्य करते हैं, लेकिन वह हमारे शरीर से जल के रूप में हो उत्सर्जित हो जाता है। इस उत्सर्जित जल को सरल साधनों द्वारा फिर से प्रयुक्त किया जा सकेगा। इस तरह जल एक समस्या अवश्य होगी लेकिन आसानी से हल हो जायेगी।

भोजन

चन्द्रमा पर पहुंचते ही हमको किसी प्रकार का भोजन नहीं मिल सकेगा—क्योंकि वहाँ न तो वनस्पति है और न जन्तु। काफी समय के लिये अपना राशन हमको पृथ्वी से ही ले जाना होगा। चन्द्रमा पर ले जाने के लिये आपको जो भोजन मिलेगा उसमें फल, तरकारी, मांस, कंडेस्ड दूध होगा (दाल और रोटी के बिना अगर आपका निर्वाह न हो सके तो आप चन्द्र यात्रा का विचार त्याग दें)। यह भोजन भी टिकियों और रौड की शक्ल में होगा। भोजन आपको अपने लबादे के अन्दर ही (क्योंकि उसके बाहर तो आप एक क्षण के लिये भी निकल नहीं सकते) करना होगा इसलिये खाने के डिब्बे ऐसे होंगे कि उनको भी खाया जा सके, ताकि उनको लबादे से बाहर फेंकने की समस्या ही पैदा न हो।

कुछ समय के लिये तो भोजन पृथ्वी से साथ ले जा सकते हैं, लेकिन अधिक समय चन्द्रमा पर रहना हो तो भोजन वहीं पर उत्पन्न करना करना होगा। इसके लिये चन्द्रमा की सतह पर बड़े २ गड्ढे खोदेंगे फिर इनकी सतह पर खिलकोन रबर का लेप करके उसको गैस टाइट कर देंगे। गड्ढे की तली पर कूटी हुई चन्द्र चट्टानों की एक तह बिछा कर इसको पानी और खाद से तर कर देंगे। जब तक चांद पर खाद के कारखाने न लग जायें-खाद जमीन से ही ले जानी पड़ेगी। इसके बाद पृथ्वी से लाये हुये फल, तरकारी के बीज छिटक देंगे। फिर गड्ढे का मुँह काँच से अच्छी तरह ढक कर गड्ढे में आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड गैसों का मिश्रण भर दिया जायगा। अब प्रकाश की व्यवस्था करनी शेष रही। इसके लिये बड़े 2 परावर्तक फिट किये जायेंगे जो धूप को गड्ढे में भेज सके। इतने पर भी क्योंकि चन्द्रमा पर रातें बहुत लम्बी होती है (पृथ्वी के कई दिनों के बराबर) इसलिये रातों में कृत्रिम रोशनी का इन्तजाम भी करना पड़ेगा। अनुमान है कि चन्द्रमा पर एल्गी और कुकुरमुत्तों की फसल और चीजों से अच्छी होगी।

निवास

निवास मनुष्य की मूल आवश्यकताओं में से एक है। हम लम्बे समय तक अपने चन्द्र लबादे या चन्द्र यान में नहीं रह सकते। किसी ऐसे निवास स्थान की आवश्यकता होगी जहाँ हम अपना लबादा उतार सकें।

चन्द्रमा पर मकान सतह के नीचे—यानी तह खाने जैसे बनाना सरल और फायदेमंद होगा। हालांकि सतह पर मकान बनाना असंभव नहीं होगा लेकिन बहुत कठिन अवश्य है।

गड्ढा बुलडोजर से खोद सकते हैं। लेकिन बेहतर यह होगा कि किसी विस्फोटक से खोदें। इसकी दीवारें प्लास्टिक शीट से एयर टाइट की जायेंगी। बाहर निकलने के दरवाजे में दोहरी किवाड़े होंगी ताकि आने-जाने में मकान का वायुमंडल बाहर न निकल जाये। तहखाने में रहने के कई लाभ हैं जो सतह पर नहीं मिलते। उदाहरण के लिये सतह की तेज सर्दी, तेज गर्मी और घातक कास्मिक किरणों से रक्षा होगी, मकान की दीवारें और फर्श बनाने के लिये अलग से किसी चीज की जरूरत नहीं होगी।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखें कि प्राकृतिक रूप से मौजूद गुफाओं के मुँह पर डबल एयर लाक किवाड़ें लगा कर रहना तहखानों में रहने से भी अच्छा होगा।

ताप तथा विकिरण

चन्द्रमा पर वायुमंडल न होने के कारण सूर्य से आने वाली सब ऊर्जा चन्द्रमा पर आ जाती है। इसमें साधारण प्रकाश के अलावा एक्स-रेज और अल्टा वायलट-किरणें भी काफी मात्रा में होती हैं और शरीर पर हानिकारक प्रभाव डालती है। इनसे बचाव के लिये लबादे में कार्बन या धातु की एक पर्त लगानी पड़ेगी और आँखों पर हमेशा रंगीन चश्मा पहनना पड़ेगा। यहाँ यह बताना अनुपयुक्त नहीं होगा कि पृथ्वी पर ये हानिकर विकिरण हम तक नहीं पहुँच पाते क्योंकि वायुमंडल उनको पहले ही सोख लेता है।

चन्द्रमा पर हमको एक अन्य खतरनाक समस्या का और सामना करना होगा। ये हैं ब्रह्मांड किरणें—जो असल में बहुत नन्हें 2 कणों का झुन्ड होती हैं। ये कण अत्यधिक तीव्र गति से चलते हैं और जिस चीज से भी टकराते हैं उसको नुकसान पहुँचाते हैं—यहाँ तक कि अगर मनुष्य पर ये बहुत सारे कण टकरा जायें तो उसकी मृत्यु हो सकती है। इन कणों से रक्षा के लिये हमारे लबादे में कार्बन की तह देनी पड़ेगी। लेकिन कभी-कभी सूर्य विशेष उत्तेजित हो जाता है और उससे इतनी शक्तिशाली ब्रह्मांड किरणें विकसित होती है कि हमारा लबादा या वाहन हमको निश्चित मृत्यु से बचा नहीं पायेंगे। इन दिनों हमको चन्द्रमा की सतह के नीचे तहखाने नुमा मकानों ही में हमको शरण लेनी होगी। सौभाग्य की बात यह है कि सूर्य के उत्तेजित होने की पूर्व सूचना मिल जाती है।

चन्द्रमा पर तापक्रम भी एक समस्या होगा लेकिन यह समस्या सरलता से हल हो जायेगी। क्योंकि चन्द्रमा पर वायुमंडल का अभाव है इसलिये वहाँ सतह पर पृथ्वी की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक तीव्र सूर्य-ताप पहुँचता है! दूसरे चन्द्रमा में दिन-रात बहुत लम्बे होते हैं। इसलिये जिस भाग पर धूप पड़ती है वहाँ काफी लम्बे समय तक पड़ती ही रहती है। तीसरे वायु न होने के कारण गर्म स्थानों का ताप अन्य स्थानों में फैल नहीं पाता। इन सब कारणों से चन्द्रमा के वे स्थान जिन पर धूप पड़ती है बहुत तेज गर्म हो जाते हैं और वे स्थान जहाँ छाया या रात हो बहुत ठंडे। ताप का इतना अंतर अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर सकता था लेकिन सौभाग्य से सतह से कुछ इंच ही नीचे ताप बहुत कुछ एकसार और सह्य होता है। सतह पर पालिश करके उनके ताप को इच्छानुसार नियंत्रित कर सकते हैं।

वस्त्र

क्योंकि चन्द्रमा पर वायुमंडल नहीं है, ताप का परिवर्तन बहुत तीव्रता से होता है, हानिकर एक्स किरणें, अल्ट्रावायलट किरणें और ब्रह्मांड किरणें लगातार चंद्रमा के तल पर आती रहती हैं इसलिए चन्द्रमा पर हमको कवच जैसा विशेष वस्त्र पहनना पड़ेगा जो इन विपरीत परिस्थितियों में हमारी रक्षा कर सके। यह कवच हमको सिर से लेकर पैर तक ढके रहेगा। इसके अन्दर गैस भरी होगी जिसका दाब लगभग उतना ही होगा जितना पृथ्वी की सतह पर वायु दाब होता है। यह दाब हमारे शरीर को बैलून की तरह फूटने से रोकेगा। स्पष्ट है कि इस लबादे के सभी जोड़ जिप आदि बहुत अधिक गैस रुद्ध होने चाहिये अन्यथा अन्दर की गैस बाहर निकल जायेगी।

लबादे प्रमुख रूप से दो किस्म के बनाये गये हैं। एक में धड़, हाथ, पैरों आदि को घेरने के लिये कई और बेलना कार रचनाएँ होती हैं। ये कड़ी होती हैं तथा परस्पर लचीले जोड़ों से जुड़ी होती है। सिर व चेहरे के लिये गुबंदनुमा खोल होता है जिसमें सामने की ओर काँच होता है। वार्तालाप के लिये लाउडस्पीकर

[शेष पृष्ठ 29 पर]

लेजर रमन वर्णक्रमिकी

□ विश्वनाथ वर्मा

प्रविक्षिप्त-तरंगायाम परिवर्तन-प्रभाव (रमन-प्रभाव) जिसको स्वर्गीय डा० सी० वी० रमन ने सन् 1928 में खोजा था तथा उसके द्वारा प्रायौगिक रूप में परमाणुओं के गुणों के विषय में विभिन्न अध्ययन होता रहा है।

विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के साथ ही सन 1960 में लेजर स्रोत का अविष्कार हुआ। इसके उपयोग से रमन वर्णक्रम मापी में अधिक तीव्रता की प्रकाश की किरण पाते हैं। इसका गुण यह है कि यह प्रकाश की किरण एक दैशिक तथा एक वर्णी होती है। पुराने तरीके से जो रमन-प्रभाव का अध्ययन किया जाता रहा, उसकी कमियों को यह लेजर स्रोत दूर कर देता है। इसके उपयोग से हमें किसी विशेष पात्रक, गोलक या सैम्पुल की जरूरत नहीं पड़ती है। यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में लेजर स्रोत के सहयोग से हम अवरक्त वर्णक्रमिकी के स्थान पर रमन लेजर वर्णक्रमिकी का प्रायः उपयोग करने लगेंगे।

रमन-प्रभाव (प्रविक्षिप्त तरंगायाम-परिवर्तन-प्रभाव)

जब प्रकाश की किरण किसी ठोस, द्रव या गैस माध्यम से गुजरती है तो उस प्रकाश का कुछ भाग माध्यम के अणुओं से टक्कर के बाद सभी दिशाओं में फैलता है। इस प्रकार के प्रभाव को हम रेलेप्रकीर्णन कहते हैं। लेकिन जब एकवर्णी, विकिरण की किरण किसी पारदर्शक माध्यम से गुजरती है तो उस माध्यम के परमाणुओं के ध्रुवीयणता में कुछ परिवर्तन होता है और प्रकीर्ण विकिरण की किरणों के कुछ भाग में यह गुण होता है कि उसकी आवृति का मूल्य आपाती विकिरण की आवृति के मूल्य से भिन्न होता है। इस प्रकार के प्रभाव को रमन-प्रभाव कहते हैं। इस प्रकार की क्रिया में जो ऊर्जा की अदली-बदली होती है उसको निम्न समीकरणों से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$E+hv_1=E_2+hv_2$$

and

$$\triangle E=hv_1-hv_2=\pm h\triangle v$$

जहां v_1 और v_2 क्रमशः आपाती और प्रकीर्णित विकिरण की किरणों की आवृति का मूल्य है तथा E_1 E_2 माध्यम की क्रमशः पूर्व तथा पश्चात की ऊर्जा का द्योतक है। क्रिया में आपाती-फोटान परमाणु को एक आभास-उत्तेजित अवस्था में छोड़ देता है। जब फोटान उत्तेजित अवस्था से निम्नतम इलेक्ट्रानिक अवस्था में आता है तो इस दशा में कम्पन-यांत्रिकी-ऊर्जा प्रकीर्णन के साथ मिश्रित होती है और इस कारण से पुनः छोड़ी गई विकिरण की आवृति का मूल्य पहले के आवृति के मूल्य से कम हो जाता है। लेकिन जब पहले से प्रकीर्णन परमाणु उत्तेजित कम्पनावस्था में होता है तो उस समय कम्पन-यांत्रिकी-ऊर्जा प्रकीर्णन से ली जा सकती है। और उसको निम्नतम ऊर्जा वाली अवस्था में छोड़ता है। इस कारण से प्रकिर्णित विकिरण की आवृति का मूल्य पहले की आवृति के मूल्य से बढ़ जाता है।

वास्तव में अवरक्त अवशोषण वर्णपट तथा रमन अवशोषण वर्णपट एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि दोनों दशाओं में हम कम्पनावृति की मूल्य की माप ही पाते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि इनकी उत्पत्ति का ढंग केवल भिन्न होता है। एक दशा में परमाणुओं

के द्विध्रुवी घूर्ण में परिवर्तन के कारण यह कल्पनावृत्ति प्राप्त होती है तो दूसरी दशा में परमाणुओं के ध्रुवीयणता में परिवर्तन के कारण।

रमन वर्णक्रमिकी में लेजर स्रोत का उपयोग

रमन प्रकीर्णन के पश्चात विकिरण की जो किरण निकलती है उसकी तीव्रता बहुत ही कम होती है। इस कम तीव्रता वाली लाइनों को अधिक तीव्रता वाली रेले-प्रकीर्णन की लाइनों से पृथक करने के लिये हमें एक ऐसे साधन की जरूरत होती है जो एकवर्णी विकिरण की किरण दे सके, जिसकी तीव्रता काफी तेज हो। साधारणतया कम दबाव वाला "मरकरी आर्क" जिसको "टोरोन्टो आर्क" कहते हैं प्रयोग में लाया जाता है। जो कि एक वर्णी प्रकाश की किरण देने का काम करता है। इस प्रकाश की किरण में बहुत सी तीक्ष्ण तथा पतली उत्सर्जन पट्ट की लाइनें तथा काफी तीव्रतावाली आसमानी रंग की लाइन भी होती हैंजिसका मूल्य 4358 आंगस्ट्रांम इकाई होता है। इस प्रकार के गुण वाली एक विसरित लाइन को किसी छोटे से क्षेत्र में आसानी से केन्द्रित नहीं किया जा सकता। प्रकाश पुंज के अखण्ड-रंगावली-पृष्ठभूमि की किरण भी आती है जो कम तीव्रता वाली रमन लाइनों को अपने अन्दर छिपा देती है। साथ साथ आसमानी रंग की तरंग वाली किरण प्रायः प्रतिदीप्ति वर्णपट्टको उत्पन्न करती है या नहीं तो ऐसा होता है कि जिस पदार्थ का रमन वर्णपट्ट लेना चाहते हैं उस पदार्थ का स्वयं प्रकाश-रसायनिक-अपघटन हो जाता है और इस हेतु हम वास्तविक रमन-वर्णपट्ट नहीं पाते। रंगीन पदार्थ इस आसमानी रंग की किरण को अपने अन्दर मिला लेता है जिस कारण से हम किसी भी रंगीन पदार्थ का रमन-वर्णपट्ट नहीं ले पाते हैं। साथ ही वे ठोस पदार्थ जो स्फटिक-अवस्था में पाये जाते हैं उनका भी आसानी से अध्ययन नहीं कर पाते। क्योंकि किरणों का परावर्तन बहुत अधिक मात्रा में स्फटिक की सतहों से हो जाता है।

इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये अब प्रायः लेजर स्रोत का उपयोग आधुनिक सभी वर्णक्रम मापी में किया जाने लगा है। लेजर स्रोत से हम काफी ऊर्जा की एकवर्णी प्रकाश की किरण पाते हैं जिसको हम बहुत ही कम क्षेत्र पर भी केन्द्रित कर सकते हैं और इस कारण से हम बहुत अच्छा रमन-वर्णपट्ट उस अवस्था में भी पाते हैं जबकि परमाणु गैसीय अवस्था में होते हैं। गैसीय अवस्था में परमाणु द्रवीय अवस्था के अपेक्षा काफी विरल होते हैं तथा अणुओं के बीच का तनाव भी कम होता है। दूसरी उपयोगिता यह है कि लेजर स्रोत से निकली प्रकाश की किरणें रेखीयतः ध्रुवित प्रकाश के गुण वाली होती हैं।

प्रकाश की किरण जो लेजर स्रोत से निकलती है वह पहले 'पोलेराजेसन रोटेटर' से गुजरती है फिर वह एक सकरे 'पासफिल्टर' से निकलकर आगे बढ़ती है। इस 'पासफिल्टर' का गुण यह होता है कि यह लेजर के गुण से भिन्न वाली किरणों को छाँटकर अलग कर देता है। इस प्रकार की किरण आगे बढ़ती है और उसको उस पदार्थ पर केन्द्रित किया जाता है जिसका अध्ययन करना होता है। इसके बाद प्रकीर्णित प्रकाश की किरण 'मोनोक्रोमेटर' के रेखाछिद्र पर पड़ती हैं। यह प्रकाश की किरण 'फोटोमल्टी-प्लायर' तथा 'सिगनल एम्पि-लिफायर' पर पड़ती है जिसको 'रेकार्डर' आवृति के रूप में कागज पर अंकित करता है।

लेजर स्रोत के रमन वर्णक्रमिकी में प्रविष्ट कर जाने से काफी सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं। इस विधि में अवरक्त वर्णक्रमिकी की अपेक्षा बहुत ही कम 'सैम्पुल' की मात्रा की जरूरत पड़ती है। तथा प्रविधि भी काफी सुविधाजनक होती है। इस विधि में शीशे के भी 'सैम्पुल पात्रक' का उपयोग कर सकते हैं जबकि अवरक्त वर्णक्रमिकी में सोडियम क्लोराइड, पोटैशियम ब्रोमाइड या सिसियम ब्रोमाइड आदि का ही स्तेमाल कर सकते हैं। साथ ही साथ पानी का उपयोग रमन वर्णक्रमिकी

[शेष पृष्ठ 16 पर]

रासायनिक-परिरक्षण

□ डा० अरुणकुमार सक्सेना

खाद्य पदार्थ कहीं तो अत्यधिक प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं परन्तु कहीं बिलकुल नगण्य। विश्व की बढ़ती हुई जन संख्या खाद्य समस्या को चुनौती दे रही है। वैज्ञानिकों ने चुनौती को स्वीकार किया है और समस्या को दूर करने के लिए जी जान से लगे हैं। खाद्य पदार्थों की कमी अब काफी अखरने लगी है। जहां प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थ प्राप्त हो रहे हैं तो वहीं यह समस्या विकराल रूप धारण कर रही है कि उन्हें किसी प्रकार नष्ट होने से बचाया जाये तथा इस प्रकार सावधानी से रक्खा जाय कि वह अधिक समय तक नष्ट न होने पावें।

इस दिशा में भौतिक विधि ही सब से सरल तथा लाभदायक है। केवल पदार्थों को सुखा देने पर ही वे बहुत समय तक नष्ट होने से बच जाते हैं। वास्तव में इस भौतिक विधि में एक प्रकार की क्रिया होती है। सूक्ष्म जीवों को बढ़ने के लिए जल की आवश्यकता होती है वे इसे वस्तुओं से खींच लेते हैं, तथा वस्तुओं के नष्ट होने में यह जल की कमी सहायता करती है। यदि ऐसा किया जाय कि उन्हें जल ही न प्राप्त होने दिया जाये तो संरक्षण कार्य आसान हो जायेगा और पदार्थ नष्ट होने से बच जावेंगे। नमक तथा चीनी का घोल जो कि जीवाणुओं की कोशिकाओं से जल खींच लेता है जब कि ये अतिपरासारी सान्द्रताओं में होते हैं। सुअर के मांस को बड़ी मात्रा में इसी भौतिक परिरक्षण के रीति के द्वारा नष्ट होने से बचाया जाता है। इस रीति में मांस में नमक लगाकर सुखाया जाता है साथ में इसमें सोडियम नाईट्राइट परिरक्षक के रूप में मिलाया जाता है।

खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में (Antiseptic) प्रतिरोधी पदार्थों का उपयोग सदैव वर्जित किया गया है। 1400 ई० में जर्मनी के असवर्ग शहर में सल्फर डाई आक्साईड के परिरक्षक की तरह उपयोग पर मुकदमेंबाजी हुई थी एवं उसे वर्जित करार कर दिया गया था। 1600 ई० में ब्रिटेन में भी इसी परिरक्षक को शराब में मिलाने का प्रतिरोध किया गया था क्योंकि इसकी अधिकता पेय को विषाक्त बना देती थी तथा साथ ही साथ इसके दूषित प्रभाव शरीर पर पड़ते थे। ब्रिटेन की सरकार ने इस पदार्थ के परिरक्षक को भांति उपयोग करने की एक सीमा बना दी थी।

आजकल लगभग सभी देशों में बिन्जोइक तथा सल्फ्यूरस अम्लों और इनके लवणों का केवल सरकारी तौर पर परिरक्षकों की भांति उपयोग करने की अनुमति दी गयी है। बेन्जोइक अम्ल जो कि प्राकृतिक रूप में फलों तथा तरकारियों में अधिकता से पाया जाता है। इसकी शरीर में ०·5 ग्राम तथा इससे भी और अधिक मात्रा मूत्र के द्वारा हिपूरिक अम्ल के रूप में बाहर निकल जाती है। फौज में परिरक्षक की भांति उपयोग होने वाले पदार्थों को, जैसे कि बोरेट, क्लोराइड, फार्मल्डीहाइड, तथा फीनोल आदि रासायनिक यौगिकों को धीरे धीरे समाप्त कर दिया गया है।

कार्बन डाई आक्साईड गैस भी परिरक्षण में प्रयोग की जाती हैं। अंडे तथा फल इसी के द्वारा सड़ने से बचाये जाते हैं। अंडे एकत्रित अवस्था में कार्बन डाई आक्साईड गैस की कमी से खराब होने लगते हैं। इस गैस का इन पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता है। पी-एच के बढ़ने पर कार्बन डाई आक्साईड गैस की कमी हो जाती है

इस कारण से प्राकृतिक प्रतिरोधी क्षमता और अधिक हो जाती है। (पी-एच) बढ़ने के कारण प्रोटीन की अवस्था पर प्रभाव पड़ता है जो कि अंडों की सफेदी में पाया जाता है इससे प्रोटीन में खराबी आने लगती है। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है। अंडों का जल वाष्पन के द्वारा कम होने लगता है इस कारण भी उसमें खराबी आ जाती है। आक्सीजन, जलवाष्प तथा कार्बन डाई आक्साईड गैस को नियंत्रित करके अंडों को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

फल भी वास्तव में अंडों के समान जीवित प्राणी हैं। जिस स्थान पर रक्खे जाते हैं वे सांस लेकर उस स्थान की आक्सीजन को ले लेते हैं तथा कार्बन-डाई आक्साईड गैस को निकालते हैं। इस कारण उस स्थान या कमरे की आक्सीजन में कमी हो जाती है और कार्बन आक्साइड गैस उन फलों की सांस लेने की गति को कम कर देती है जिसके फलस्वरूप वे काफी दिनों तक सड़ नहीं पाते हैं। इसी प्रकार ठण्डे कमरों में सेबों को कार्बन डाई आक्साइड तथा आक्सीजन की गति को नियंत्रित करके सड़ने से रोका जाता है। फलों को जैसे सेब, टमाटर केले आदि को एकत्रित कर रक्खा जाता है तो वे शीघ्रता से पकने लगते हैं। इन्हीं फलों को अकेले ही रक्खा जाये तो वे इतनी शीघ्रता से नहीं पकते हैं। एकाएक प्रश्न उठता है कि इसका कारण क्या है ? जब फल पकते हैं इस अवस्था में उनसे इथलीन गैस निकलती है जो कि औरों को शीघ्रता से पकने में सहायता पहुंचाती हैं यदि वे सब बन्द कमरों में रक्खे हुए हों। किसी प्रकार इथलीन गैस को उस स्थान से निकाल दिया जाय तो यह समस्या भी दूर हो जाती है। वास्तव में जब फलों को शीघ्रता से पकाने की आवश्यक्ता हो तो उन्हें इथलीन के वायुमण्डल में रक्खा जाता है। किन्तु बड़ी ही अजीब सी बात है कि इथलीन गैस जहां फलों को शीघ्रता से पकाकर सड़ाने लगती है वहीं वह कहीं-कहीं यह इसकी विपरीत क्रिया भी करती है। आलू के भण्डारों में एक समस्या यह होती है कि उनमें कल्ले न फूटने पावें। इनको रोकने के लिए इथलीन गैस अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुई है।

कुछ ही समय पश्चात् 1952 ई० में डब्ल्यू० डब्ल्यू० हेजेलटाईन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह बताया कि एक और रासायनिक यौगिक तथा, उसके लवणों का उपयोग परिरक्षक की भाँति किया जा सकता है और वह था प्रोपियोनिक अम्ल। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि लगभग इक्कीस प्रकार के सूक्ष्म जीवों को बढ़ने में उन्हें रोकने के कार्य भी आ सकता है। वास्तव में यह अम्ल एक वसीय अम्ल है तथा प्रकृति में भी प्रचुरता से पाया जाता है। विशेष कर जब पनीर बनाया जाता है तो साथ ही साथ यह भी प्राप्त होता है। जर्मनी के वैज्ञानिक पी० एफ० पेल्सेंकी ने अपने प्रयोगों के आधारपर यह ज्ञात किया कि जब राई की डबल रोटी बनाने वाले आटे में इसे मिला दिया जाता है तो एक प्रकार का जीवाणु पैदा हो जाता है, जो कि डबल रोटी को नष्ट होने से बचाता है। वास्तव में यही ऐसा सर्व प्रथम उदाहरण है जब कि एक एन्टिवायोटिक परिरक्षक की भांति उपयोग किया गया।

इसके अतिरिक्त एक और एन्टिवायोटिक जो कि बहुत ही जटिल यौगिक है का उपयोग किया जा रहा है। इसका नाम सवटिलिन है। यह वेसिलस सवटिलिस नामक एन्जाइम से प्राप्त होती है। डिब्बों में बन्द किए जाने वाले पदार्थों में, जैसे कि टमाटर का रस, तरकारियाँ तथा दूध आदि को नष्ट होने से बचाने में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके उपयोग में एक विशेष बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि ताप लगभग बहुत ही कम रहे। अर्थात् डिब्बों को बन्द करते समय ताप कम रहे। कुछ समय पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि कभी-कभी इसमें परिरक्षण किए गए पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण इसका उपयोग भी बन्द हो गया क्योंकि इस पर निर्भर किया जाना हानिकारक है।

मांस के परिरक्षण के लिए सवटिलिन, पेन्सिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन का अकेले या मिश्रित करके प्रयोग किया जाने लगा है। वास्तव में ये भी एन्टिवायोटिक हैं और नवीन शोध-कार्यों के फल स्वरूप यह तथ्य सामने

आया कि ओरियोमाइसिन माँस के परिरक्षण में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। मछलियों के परिरक्षण में ओरियो-माइसिन को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। नमक, साल्टपीटर, नाईट्राईट, तथा चीनी आदि का परिरक्षक की भाँति उपयोग प्राचीनकाल से चला आ रहा है। नवीन रासायनिक पदार्थों का उपयोग बीच में हुआ था वह अब लगभग समाप्त-सा होता जा रहा है क्योंकि इसके कारण खाद्य पदार्थ विषाक्त हो जाते हैं तथा वे शरीर को हानि पहुंचाते हैं। इन्हीं के कारण नई नई बीमारियाँ भी हो जाती हैं। खाद्य पदार्थों के परिरक्षण में एन्टिवायोटिक यौगिकों से आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है जो कि भविष्य में बड़े पैमाने में उपयोग में लाई जायगी और पदार्थों को नष्ट होने से बचाया जा सकेगा।

[पृष्ठ 13 का शेषांश]

में एक घोलक के रूप में कर सकते हैं जबकि अवरक्त वर्णक्रमिकी में ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि पानी अवरक्त वर्णक्रमिकी में स्वयं अपना अवशोषण देता है। लेजर स्रोत से युक्त रमन वर्णक्रममापी 60–4000 तरंग संख्या तक वर्णपट्ट देता है लेकिन ऐसा कोई भी अवरक्त वर्णक्रममापी नहीं है जो इतने अधिक क्षेत्र तक वर्णपट्ट का माप दे सके।

लेजर रमन वर्णक्रमिकी की विशेष बात यह है कि इसके द्वारा ठोस, द्रव तथा गैस अवस्था में पदार्थ का अध्ययन आसानी से कर सकते हैं तथा तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर $NbOCl_3$ परमाणु ले लें। जब इस परमाणु का अध्ययन गैसीय अवस्था में करते हैं तो Nb—O के बीच का तनाव का मूल्य 997 तरंग संख्या आता है लेकिन इसी का मूल्य ठोस अवस्था में 770 तरंग संख्या होता है जिससे यह परिणाम निकलता है $NbOCl_3$ परमाणु गैसीय दशा में चतुष्फलकीय है जबकि ठोस दशा में बहुलक रूप वाला है।

"मानव की सेवा में पृथ्वी का वायुमण्डल"

□ रमेश प्रताप सिंह

पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं वायु के द्वारा घिरी हुई है जिसे हम वायुमण्डल कहते हैं। पृथ्वी का वायुमण्डल मानव जीव-जन्तु एवं पौधों के लिए एक अद्भुत देन है। वायु का घनत्व ऊँचाई के साथ कम होता जाता है। सूर्य की प्रचण्ड किरणें इस माध्यम से होकर पृथ्वी के धरातल पर पहुँचती है, जिससे सूर्य की अपरमित ऊष्मा का कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त दिन में वायु मण्डल सूर्य की गर्मी यथाशक्ति सो लेता है तथा रात को सूर्य की अनुपस्थिति में छोड़ता है। जिससे रात बड़ी ठंडी नहीं होने पातीहै। पृथ्वी के प्राणी एवं पौधों की आवश्यकतानुसार हवा, पानी और बर्फ तूफान का प्रधान द्योतक भी पृथ्वी का विशाल वायुमण्डल है। ध्वनि प्रसारण के लिए वायुमण्डल एक मात्र माध्यम ही है जिससे हम एक दूसरे की आवाज सुनते हैं।

प्राचीन काल से ही पृथ्वी के समीपी वायुमण्डल का अध्ययन होता रहा है। इस भाग की भविष्यवाणी का विज्ञान बहुत ही प्राचीन है तथा दिन में कई बार मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। इससे अधिक ऊँचाई के वायुमण्डल की भौतिक दशा एकदम भिन्न है।

सम्पूर्ण वायुमण्डल की भौतिक दशा बदलने का प्रधान कारण सूर्य की प्रचण्ड किरणें हैं। सूर्य की ये किरणें छोटी से छोटी तरंग दैर्ध्य से लेकर बड़ी से बड़ी तरंग दैर्ध्य की होती हैं। प्रायः हम अपनी आँख से प्रकाश देखते हैं जिसके लिए हमारा वायुमण्डल एक खिड़की का काम करता है। इसके अतिरिक्त भी बहुत से हानिकारक विकिरण सूर्य से उत्पन्न होते हैं। लिसे वायुमण्डल रोक लेता है जिससे जीव-जन्तु तथा पौधों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता है। जो भी विकिरण वायुमण्डल सोखता है वे सभी प्रायः अदृश्य होते हैं जिसे हमारी आँख देखने में असमर्थ होती है। जो भी विकिरण सूर्य द्वारा उत्पन्न होते उनकी शक्ति सूर्य के सतह पर सबसे अधिक होती है, जैसे-जैसे पृथ्वी की ओर बढ़ते हैं इनकी शक्ति कम होती जाती है। वायुमण्डल जब इन विकिरणों को सोखता है तो इसकी भौतिक अवस्था बदल जाती है और हमारा विचार गलत हो जाता है कि वायुमण्डल अणु और परमाणुओं से बना हुआ उदासीन है। वायुमण्डल द्वारा सोखी हुई शक्ति अणु और परमाणु की बनावट पर प्रभाव डालती है और इनसे एक या एक से अधिक परमाणु को बाहर निकाल देती है। इससे वायुमण्डल, इलेक्ट्रान तथा आयनों में विभाजित हो जाता है जिसका भौतिक गुण उदासीन वायुमण्डल से बहुत ही भिन्न होता है। वायुमंडल के इस भाग में इलेक्ट्रानों तथा आयनों की मात्रा अधिक होती है। इसे आयनोसफियर कहते हैं। हम जानते हैं कि वायु का घनत्व उपर कम होता है और सूर्य की किरणों की शक्ति जैसे-जैसे हम पृथ्वी पर आते हैं कम होता है। वायु के घनत्व तथा सूर्य की 'किरणों की शक्ति का गुणनफल वायुमण्डल के जिस भाग में अधिकतम् हो जाता है वही आयनोसफियर का मध्य भाग कहलाता है। वैज्ञानिकों ने आयनोसफियर के पूर्ण प्रसार की ऊँचाई को कई भागों में टकर इसकी भौतिक दशा के अनुसार नामकरण किया है इस प्रकार वायुमण्डल की भौतिक दशा ऊँचाई के ाँथ बदला करती है। अतः भौतिक दशा ध्यान में रखते बहुए वैज्ञानिकों ने नामकरण निम्न प्रकार किया है।

(1) ट्रोपोसफियर :—0 से 12 किमी० तक। (2)

स्ट्राटोसफियर:—12 से 60 किमी० तक। (3) मीसोसफियर :—60 से 80 किमी० तक। (4) आइनोसफियर :—60 से 500 किमी० तक। (5) एक्सोसफियर :—500 से 9000 किमी० तक इस भाग में वायु सदैव वायुमंडल के बाहर जाया करती हैं। तथा (6) आउटर स्पेस :—9000 किमी० के ऊपर।

वायुमण्डल का ताप :—

वायुमण्डल के ताप के विषय में लोगों को संदेह रहता है। साधारण अनुभव से हम सभी जानते हैं कि ऊँचाई के साथ वायुमण्डल का ताप गिरता है, यही कारण है कि गर्मी के दिनों में हम पहाड़ की चोटियों पर ताप से बचने के लिए जाते हैं और जब पृथ्वी के धरातल पर साधारण जाड़ा पड़ती है उस समय ऊँची पहाड़ियाँ बर्फ से दब जाती हैं। इस साधारण अनुभव के विपरीत जब हम एक निश्चित ऊँचाई (लगभग 25 किमी०) के ऊपर जाते हैं तो वायुमण्डल का ताप बढ़ने लगता है और लगभग 50 किमी पर अधिकतम् हो जाता है। इस ऊँचाई के ऊपर ताप फिर से गिरने लगता है और लगभग 80 किमी० पर न्यूनतम् होकर फिर ताप बढ़ने लगता है। वायुमण्डल का ताप ऊँचाई के साथ कई बार बढ़ता और घटता है।

वायुमण्डल में 0—25 किमी० तक वायु गर्म होकर पृथ्वी से ऊपर उठती है और ठंडी होती जाती है। इस प्रकार इस भाग में (25 किमी० तक) ताप गिरता जाता है। इसके ऊपर आक्सीजन मालिक्यूल सूर्य के अल्ट्रा-वायलेट विकिरण के प्रभाव से एटामिक दशा में आकर एक नया तत्व ओजोन बनाता है। यह नवजनित ओजोन सूर्य के विकिरण को प्रचुर मात्रा में सोखकर 25—50 किमी० तक ताप को बढ़ा देता है। ओजोन की मात्रा 80 किमी० पर न्यूनतम् हो जाती है अतः वायुमण्डल का ताप भी इस ऊँचाई पर न्यूनतम् होकर पुनः बढ़ने लगता है और लगभग 400 किमी० पर ताप 2000—3000° K तक पहुँच जाता है।

उदासीन वायुमण्डल

इस भाग तक आते-आते सूर्य का अल्ट्रावायलेट विकिरण बहुत कमजोर पड़ जाता है अतः अणु और पर-माणु को इलेक्ट्रान तथा आयन में विभाजित नहीं कर पाता है, यही कारण है कि वायुमण्डल 0—55 किमी० की ऊँचाई तक उदासीन है परन्तु पृथ्वी के जीव-जन्तु एवं पौधों के लिए इसकी बड़ी महानता है। मौसम में होने वाले परिवर्तन, इस भाग की भौतिक दशा पर निर्भर करता हैं। इस भाग का अध्ययन तथा मौसम की भविष्यवाणी एक विज्ञान का प्राचीन तथा प्रधान अंग है जिसे मीटी-रियोलॉजी कहते है।

आयनोसफियर

रेडियों की तरंगों का प्रसरण हर्ट्ज़ के प्रारम्भिक प्रयोगों से पता चल गया है उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि रेडियों तरंगे एक सीधी रेखा में चलती हैं। मारकोनी १९०१ में जब कार्नवाल से न्यूफाउन्डलैण्ड तक रेडियों तरंगे भेजने में सफल हुए उस समय वैज्ञानिक जगत में तहलका सा मच गया। तत्कालीन वैज्ञानिकों ने यह सोचा कि रेडियों तरंगे विवर्तित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती हैं परन्तु गणित तथा भौतिक शास्त्री गणना के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रेडियों तरंगे विवर्तन द्वारा कार्नवाल से न्यूफाउन्ड लैण्ड तक की दूरी नहीं तय कर सकती।

मारकोनी के 1901 ई० के प्रयोग की विवेचना करते हुये अमेरिका के वैज्ञानिक केनेली एवं इग्लैण्ड के वैज्ञानिक हेवीसाइड ने 1902 ई० में स्वतन्त्र रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वायुमण्डल में निश्चित ऊँचाई पर चालक तह स्थित है जो कि रेडियों तरंगों को अधिक दूरी तय करने में सहायता पहुँचाता है। इस बात की पुष्टि लगभग 25 वर्ष पूर्व चुम्बकीय शक्ति की विवेचना करते हुए वालफर स्टबर्ट ने की। सन् 1912 ई० में इक्लिस ने "निश्चित ऊँचाई पर चालक तह की उपस्थिति" की सत्यता के आधार पर रेडियों तरंगों के प्रसारण का सिद्धान्त स्थापित किया। इस सिद्धान्त की कुछ कमियों को 1924 ई० में लारमर ने ठीक किया और फलतः आज भी यह सिद्धान्त

इक्लिस-लारमर के नाम से प्रसिद्ध है। चालक तह के बारे में इतने प्रमाण होने के अतिरिक्त भी 1924 तक कोई प्रयोगिक प्रमाण नहीं था जिससे चालकतह की उपस्थिति को सदा सत्य मान लिया जाय। सर एडवर्ड अपेल्टन 1925 ई० में रेडियों तरंगों को दो एरियलों पर प्राप्त किय। जिसमें से एक पृथ्वी के धरातल पर चलने वाली तरंगों को पकड़ने की अधिक क्षमता रखता हो और दूसरा वायुमण्डल से आयी हुई तरंगों के पकड़ने की अधिक समर्थता रखता हो। इन दोनों तरंगों की तुलनात्मक अध्ययन एवं विवेचना के आधार पर सर एडवर्ड अपेल्टन ने चालक तह की उपस्थिति के बारे में प्रथम प्रमाण उपस्थित किया। सन् 1926 ई० में ब्राईट-ट्यूबं ने एक ऐसा चमत्कारिक तरीका निकाला जिससे कि रेडियों तरंगे ऊपर जाकर चालक तह से शीशे की भाँति परावर्तित हों और परावर्तन के पश्चात् वे पृथ्वी पर प्राप्त की जा सके। इस तरीके से चालक तह की ऊँचाई भौतिक दशा तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान आसानी से हो जाता है, यही कारण है कि यह तरीका आज भी आइनोसफियरिक खोज का प्रधान अंग है।

आइनोसफियर का विभागीकरण

नवीनतम खोजों के आधार पर आयनोसफियर का प्रसार 40 किमी० से लेकर 1000 किमी० तक माना जाता है। अल्ट्रावायलट किरणें सूर्य के द्वारा सोख लिए जाने के कारण वायु के भिन्न-भिन्न तत्व अलग-अलग ऊँचाइयों पर अधिकतम आयन और इलेक्ट्रान पैदा करते हैं जिन्हें हम आइनोसफियर के विभाग कहते हैं। इसका सर्व प्रथम नामकरण सर एडवर्ड अपेल्टन ने किया था।

आइनोसफियर एवं रेडियों तरंगों का प्रसरण

रेडियों पर आनन्द विभोर करने वाले कार्यक्रम को सुनकर साधारणतः यह सुनने को मिलता है कि वैज्ञानिकों ने इस प्लास्टिक के डिब्बे में जान डाल दी है। इसकी सत्यता में कोई संदेह नहीं परन्तु इसकी सफलता का एक मात्र कारण आयनोसफियर ही है। इस अनुभव के विपरीत कभी-कभी रेडियों कार्यक्रम सुनते हुए लोगों को झल्लाते हुए भी सुनते है। रेडियों की आवाज कभी कम कभी अधिक, खरखराहट तथा एक कार्यक्रम सुनते समय दूसरे कार्यक्रम का सुनाई देना आदि भी आइनोसफियर की भौतिक दशा बदलने का ही कारण है। रेडियों तरंगे एक स्थान से दूसरे स्थान तक तीन, प्रकार के प्रसरण द्वारा पहुँच सकती है। (1) पृथ्वी धरातल के समानान्तर (2) आइनोसफियर से परावर्तन (3) वायुमण्डलीय प्रसरण।

पृथ्वी के समानान्तर चलने वाली तरंगों की शक्ति, जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है वैसे-वैसे कम हो जाती है। यही कारण है कि यह तरंगें बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। कुछ तरंगें ऊपर जाकर आइनोसफियर से परावर्तित हो निश्चित दूरी पर पहुँचती हैं। जहाँ कार्यक्रम पृथ्वी धरातल के समानान्तर प्रसरण तथा आइनोसफियर से परावर्तन के कारण सुनाई देता है। इन दोनों भागों के बीच में एक ऐसा भाग होता है जहाँ कि रेडियो का कार्यक्रम किसी प्रकार से भी नहीं पहुँच पाता है। जिसे हम अतंरगित भाग कहते हैं। वास्तव में प्रत्येक रेडियो स्टेशन ऐसी रेडियो तरंगों की आवृत्ति, प्रसरण का कोण तथा एरियल चुनता है जिससे अतंरगित भाग कम से कम हो। आइनोसफियर का प्रत्येक भाग एक निश्चित आवृत्ति की तरंगों को ही परावर्तित कर सकता है; अतः जब आवृत्ति एक निश्चित आवृत्ति से अधिक बढ़ाहेंदी जाती है तो वह परावर्तित न होकर सदैव के लिए लुप्त हो जाती है। टेलीविजन तथा राडार की तरंगे बहुत ऊँची आवृत्ति की होती है अतः वे आयनोसफियर से परावर्तित नहीं हो सकती हैं यही कारण है कि ये तरंगे कम ऊँचाई पर ही पृथ्वी के गोलाई के साथ प्रसारित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचती हैं। टेलिविजन की तरंगे बहुत अधिक दूरी नहीं तय कर सकती और हर 100 किमी० के बाद नये स्टेशन की आवश्यकता पड़ती है।

आइनोसफ़ियर में विभिन्न परतों के बनने का कारण

वायुमण्डल का विद्युतिकरण अणु तथा परमाणु के

विभिन्न भागों में विभाजित होने के कारण पैदा होता है। वायुमण्डल में मालिक्यूल विद्युत रहित रहते हैं परन्तु सूर्य के अल्ट्रा वायलेट विकिरण के प्रभाव से ये विभिन्न भागों में टूट जाते हैं। सूर्य से आने वाली शक्ति जैसे-जैसे पृथ्वी की ओर आती है कम होती जाती है। अतः पहले 400 किमी० की ऊँचाई पर आक्सीजन एटम तथा नाइट्रोजन मालिक्यूल को विदीर्ण कर आयन तथा इलेक्ट्रान जनित करता है इससे नीचे आने पर सूर्य विकिरण कम हो जाता है अतः आक्सीजन तथा नाइट्रोजन मालिक्यूल को विपर्ण कर आयन तथा इलेक्ट्रान बनाता है रात में जब कि सूर्य का विकिरण नहीं होता है तब इसके विपरीत आयन तथा इलेक्ट्रान मिलकर उदासीन अणु तथा परमाणु बनाते हैं यही कारण है कि ऊँचाई के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के परत आयनोसफियर में पाये जाते हैं।

आइनोसफ़ियर की भौतिक दशा पर सूर्य का प्रभाव

आइनोसफियर की भौतिक दशा पर सूर्य के विकिरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। दिन तथा रात में आयन तथा इलेक्ट्रान की संख्या घटती बढ़ती रहती है। इसके अतिरिक्त सूर्य के चमकते हुए गोले पर हम कुछ काले धब्बे देखते हैं। आयनोसफियर की भौतिक दशा से इन काले धब्बों का गहरा सम्बन्ध है। वास्तव में वे धब्बे खौलती तथा चक्कर खाती हुई गैस के वे भाग है जहाँ से गैस बड़े वेग से चारों ओर फैलती है। इस तेज फैलान के कारण इस भाग का ताप 6000°C से घटकर 4500°C हो जाता है। यही कारण है कि इस भाग से प्रकाश कम निकलता है और ये भाग काले धब्बे प्रतीत होते हैं। ये धब्बे समूह में दिखाई देते है तथा इनसे परा बैंगनी विकिरण अधिक होता है। इसके साथ ही साथ विद्युतिप कण आयन तथा इलेक्ट्रान की धारा निकल कर पृथ्वी की ओर चलती है।

पराबैंगनी विकिरण के बढ़ जाने के कारण आयनोसफियर में आयन तथा इलेक्ट्रान की संख्या पर प्रभाव पड़ता है। जिससे रेडियो तरंगों का प्रसरण व्यस्त हो जाता है। जिससे कभी-कभी रेडियो कार्यक्रम कुछ क्षण के लिए लुप्त हो जाता है। सूर्य द्वारा भेजे हुए विद्युतीय कण आयन तथा इलेक्ट्रान पराबैंगनी विकिरण की अपेक्षा बहुत कम गति से चलते हैं। जब ये पृथ्वी के समीप पहुचते हैं तो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव से कारावासी हो जाते हैं और पृथ्वी की ओर नहीं बढ़ पाते हैं। इस दूरी पर ये कण या तो चुम्बकीय बल रेखाओं के साथ चलते हैं या इसके लम्बवत् चलते हैं। पृथ्वी की बल रेखाओं की दिशा में चलने वाले कण ध्रुव के पास गिर-गिर कर एक विचित्र तरह का प्रकाश पैदा करते हैं जिसे "उत्तरी प्रकाश" या "अरोरा" कहते हैं। दूसरे कण जो चुम्बकीय बल रेखाओं के लम्बवत् चलते हैं पृथ्वी की चुम्बकीय क्षेत्र में उथल-पुथल पैदा करते है जिनका प्रभाव आयनोसफियर की भौतिक दशा पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

ऊँची उड़ान वाले रॉकेट तथा उपग्रहों से इन घटनाओं का अध्ययन आजकल और सुलभ हो गया है।

● ●

भू ताप शक्ति

□ श्यामलाल काकानी

भू-ताप-ऊर्जा शक्ति का एक असीम स्रोत है जिसकी ओर विश्व के अनेक देशों का ध्यान पिछले 15-20 वर्षों में ही आकर्षित हुआ है। अगर इस साधन का पूर्ण उपयोग किया गया तो आने वाले कई हजार वर्षों तक हमें शक्ति के साधनों की चिन्ता से मुक्ति मिल जावेगी। भारत में भी इस वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता से इस ऊर्जा के स्रोतों को विद्युत उत्पादन के लिए विकसित करने के प्रयास शुरू हो रहे हैं।

औद्योगिक और टैक्नोलोजी के क्षेत्र में तीव्र प्रगति के साथ साथ शक्ति के साधनों के विकास की चिन्ता भी बराबर बढ़ती जा रही है। परम्परागत शक्ति के साधनों जैसे कोयला, पेट्रोलियम इत्यादि के भूगर्भ भंडार अति सीमित रह गए हैं। जिस दर से इनका उपयोग हो रहा है उसको देखते हुए वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि अगली शताब्दी के अन्त तक इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। परमाणु विखंडन क्रिया से शक्ति प्राप्त करने की भी चरम सीमा पहुँच चुकी है। इस समय विश्व में लगभग 600 नाभिकीय प्रतिकारियों से विद्युत शक्ति प्राप्त हो रही है। नाभिकीय ईंधन यूरेनियम इत्यादि के भूगर्भ भंडार भी सीमित ही है। नाभिकीय प्रतिकारियों से विद्युत शक्ति प्राप्त करने में सबसे प्रमुख समस्या अनुपयोगी रेडियोधर्मी पदार्थों को नष्ट करने एवं प्रतिकारियों के निर्माण के लिए आवश्यक धन राशि के प्रबन्ध की है। शक्ति का अन्य प्रमुख साधन जल विद्युत है। इस स्रोत का विकास भी लगभग चरम सीमा पर पहुंच चुका है। इस स्रोत से शक्ति प्राप्त करने के लिए बड़े 2 बांधों का निर्माण करना पड़ता है, जिनमें पानी वर्षा पर निर्भर करता है। शक्ति के अन्य स्रोत जैसे सौर ऊर्जा, नाभिकीय संश्लेषण क्रिया इत्यादि से विद्युत शक्ति उत्पादन करने की दिशा में प्रयत्न हो रहा है। लेकिन अब तक इस दिशा में कोई प्रगति नहीं है। अब विभिन्न देशों का ध्यान ऊर्जा के असीम स्रोत भू ताप की ओर आकर्षित हुआ है। पिछली दशाब्दी में कुछ देशों में भू ताप ऊर्जा से विद्युत उत्पादन के सफल प्रयास हुए हैं।

भू ताप ऊर्जा से सर्व प्रथम विद्युत शक्ति उत्पादन करने का श्रेय इटली के काउंट पियरो गिनोरी काँटी को ही जाता है जिसने स्थानीय पावर हाउस कम्पनी के अधिकारियों से मनमुटाव हो जाने पर सोचा कि क्यों नहीं इटली में उष्ण जल चश्मों या सोतों का उपयोग कर विद्युत उत्पन्न की जाय। इस दिशा में उसने प्रयास किया और सन् 1904 में वह उष्ण जलीय स्रोतों से 5 विद्युत लैंपों को प्रदीप्त करने मेंसफल जिसकी हुआ। सन् 1914 में भू ताप ऊर्जा को उपयोग में लाकर इटली में एक ऐसे विद्युत शक्ति संयंत्र का निर्माण हुआ जिसकी क्षमता 250 किलो वाट थी इसके पश्चात् न तो इटली में और न ही अन्य देशों में भू ताप ऊर्जा को उपयोग में लाकर विद्युत शक्ति उत्पादित करने के कोई प्रयास हुए। पिछली दो दशाब्दियों से पुनः इस ओर प्रयास शुरू हुए हैं।

भू ताप शक्ति क्या है ?

पृथ्वी के अंतराश में कुछ प्राकृतिक रूप से होने वाले नाभिकीय विखंडनों और विभिन्न घर्षण क्रियाओं से उष्मा केन्द्रित होती रहती है। कुछ भू वैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण यह उष्मा अंतराश से धरातल पर पहुंचती है,

जैसे ज्वालामुखी के कारण उष्ण चट्टानों इत्यादि का सतह पर पहुंचना। इन क्रियाओं से यह ऊष्मा भूमिगत जल को स्थानान्तरित हो जाती है जो चट्टानों की दरारों के बीच से धाराओं या छिद्रों में से चश्मों इत्यादि के रूप में प्रकट होकर भूतापीय प्रणाली का निर्माण करती है। यह आवश्यक नहीं है कि उष्ण जल के चश्मे या वाष्प उसी स्थान पर प्रकट हो जो ज्वालामुखी क्षेत्र हो।

कुछ भूमिगत स्थानों पर जल दबाव निम्न और तापक्रम ऊँचा होता है जिससे वहां जल उबलने लगता है और भाप के रूप में चट्टानों की दरारों में एकत्रित हो जाता है। इस भाप को चट्टानों में बहुत गहरे सूराख बनाकर सीधी टरबाइन्स को गतिशील बनाने में उपयोग किया जा सकता है। वैसे इस प्रकार शुष्क भाप के क्षेत्रों की संख्या बहुत ही कम है साधारणतया ये ज्वालामुखी क्षेत्रों तक ही सीमित है। संयुक्त राज्य अमेरीका में उत्तरी केलिफोर्निया और लेडरेलो में ऐसे क्षेत्र है। भूमिगत क्षेत्रों में उबलते हुए या उष्ण जल के स्रोत अधिक है। अनुमानतः इनका क्षेत्र शुष्क भाप के क्षेत्रों से 20 गुना है। भारत में हिमालय की तराई और बिहार के कुछ क्षेत्रों में उष्ण जल के स्रोत है।

वैसे किसी भी क्षेत्र में स्रोतों या चश्मों की उपस्थिति केवल यह प्रदर्शित करती है कि उस स्थान पर भूमिगत क्या है? केवल उष्ण स्रोतों में जल के बहाव की गति और तापक्रम से उस स्थान पर निहित भू ताप शक्ति का सही मूल्यांकन संभव नहीं है। उस स्थान पर उष्ण जल की धारायें केवल यह प्रदर्शित करती है कि उस क्षेत्र में भूमिगत उष्ण जल या वाष्प का स्रोत वर्तमान है। पूर्ण रूप से उस स्थान पर भू ताप शक्ति की क्षमता का पता भू वैज्ञानिक, भू भौतिकीय और भू रसायनिक पूर्वेक्षण से ही संभव है।

सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वेक्षण से ऐसी रिपोर्टें प्राप्त हुई है कि कुछ क्षेत्रों में बहुत गहराई पर भाप और उष्ण जल के स्रोत है। इनको बहुत गहरे कुओं का निर्माण कर उपयोग किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में केलिफोर्नियां के इम्पीरियल वैली उष्ण जल का सबसे अधिक गहरा कुआं है। इस कुएं की गहराई 2,100 मीटर और जल का तापक्रम 370 डिग्री सेन्टीग्रेड है। भारत में तैल और प्राकृतिक गैस आयोग ने सर्वे से यह पता लगाया है कि गुजरात के खम्भात् क्षेत्र में 1,500 से 2,000 मीटर की गहराई पर उष्ण जल और भाप के स्रोत है।

सन् 1970 में इटली के पीसा नगर में भू ताप ऊर्जा पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था, इस सम्मेलन में सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि उनके देश में 20 प्रतिशत से भी अधिक भूमिगत क्षेत्रों में उष्ण जल और भाप के रूप में भू ताप उष्मा के स्रोत है और इन स्रोतों की कुल ऊर्जा क्षमता अन्य सभी ऊर्जा स्रोतों की कुल क्षमता से अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी पश्चिमी क्षेत्र के बहुत बड़े भाग को आरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया है क्योंकि इस क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में भू ताप ऊर्जा के भूमिगत स्रोतों की उपस्थिति का पता चला है।

मेक्सिको ने भू ताप ऊर्जा से विद्युत उत्पादन करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता से इस देश में भू ताप ऊर्जा से शक्ति उत्पादन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। भू वैज्ञानिक सर्वे के अनुसार मेक्सिको में लगभग 100,000 MW विद्युत उत्पन्न करने की भू ताप क्षमता है। जापान की तोसिबा कम्पनी के सहयोग से मेक्सिको में एक विशेष प्रकार के टरबाइन से युक्त 75 MW क्षमता के पावर प्लांट का निर्माण किया जा रहा है।

केलिफोर्निया, अमेरीका में पैसिफिक गैस और विद्युत कम्पनी इस समय 82 MW विद्युत भू ताप ऊर्जा को उपयोग में लाकर उत्पन्न करती है। इस वर्ष के अन्त तक 220 MW विद्युत उत्पन्न करने का लक्ष्य है। कुछ वैज्ञानिक और इंजीनियर यह प्रयास कर रहे हैं कि नाभिकीय शक्ति संयंत्रों को भू तापीय इकाइयों से सम्बन्धित कर विद्युत उत्पन्न की जाय।

भू वैज्ञानिक सर्वे के अनुसार भारत में भी भू ताप ऊर्जा की बहुत क्षमता है। पूरे देश में लगभग 300 उष्ण जल सोते हैं। इनमें से अधिकतर हिमाचल प्रदेश, बिहार और बम्बई के पश्चिमी तट और रत्नगिरी की बीच है। इनमें से बहुत कम में ही उष्ण जल और भाप निकलती है। ऐसे ज्यादातर स्थानों के समीप मन्दिर और तालाबों का निर्माण हुआ है। इन स्थानों को धार्मिक पूजा स्थल बना रखा गया है।

भारत में भू ताप ऊर्जा स्रोतों के सर्वे का कार्य पिछले कुछ वर्षो से ही शुरू हुआ है। सन् 1966 में सरकार ने विशेषज्ञों की समिति भू ताप ऊर्जा स्रोतों का सर्वे करने के लिए नियुक्ति की थी। इस समिति ने 1968 में अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत कर दी थी। समिति मे रिपोर्ट में सुझाव दिया था कि लद्दाख में पुग्गा और हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले के मनीकरन उष्म स्रोतों की गवेषणा होनी चाहिए। इन पर कुछ प्रारंभिक कार्य भी हुआ लेकिन नौकरशाही के कारण कार्य आगे नहीं बढ़ सका। सन् 1971 में सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ से प्रार्थना की जिसके परिणाम स्वरूप दो विशेषज्ञ भारत आए। इन विशेषज्ञों ने सर्वे के पश्चात् एक करोड़ रुपये की लागत का तीन वर्षीय प्रोजेक्ट की रूप रेखा प्रस्तुत की। इस प्रोजेक्ट के खर्च का $\frac{2}{3}$ भाग संयुक्त राष्ट्र और शेष भारत सरकार वहन करेगी। इस प्रोजेक्ट पर कार्य इसी वर्ष में शुरू हो जायगा।

भारतवर्ष में भू ताप स्रोतों से विद्युत उत्पादन करने के लिए केवल इस शक्ति का उचित मूल्यांकन करने की आवश्यकता तकनीकी जानकारी की ट्रेनिंग के लिए विदेशों में भेजा जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के दोनों विशषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में यह भीं बताया है कि भू ताप स्रोतों से विद्युत उत्पादन बहुत ही सस्ता है और प्लांट निर्माण करने के लिए खर्च भी बहुत कमहोगा। निम्न सारिणी में विभिन्न ऊर्जा स्रोतों से विद्युत उत्पादन एवं प्लांट निर्माण करने पर आने वाले खर्च की तुलना की गई है।

सारिणी

शक्ति	औसत खर्च पैसों में /KWH	प्लांट निर्मित करने में आवश्यक पूंजी निवेश। करोड़ रुपयों में
भू ताप शक्ति	1.972	4.60
कोयला	5.325	5.58
नाभिकीय विखंडन क्रिया से	5.330	10.74

भू तापीय ऊर्जा से विद्युत शक्ति प्राप्त करना तो केवल इस शक्ति के विभिन्न संभाव्य उपयोगों में से एक महत्वपूर्ण उपयोग है। अमेरीका, जापान, न्यूजीलेंड इत्यादि में तो भू वाष्प एवं उष्ण जल का उपयोग पादप गृहों (Green houses) और स्वीमिंग पूलों को गर्म रखने में किया जाने लगा है। भू ताप क्षेत्रों को स्पास, (Spas) मनोरंजन और पर्यटन केन्द्रों में भी बिकसित किया जा सकता है। जापान ने इस दिशा में कार्य किया है और स्पास तैयार किए हैं। इस कारण से जापान में प्रतिवर्ष 1,500 लाख व्यक्ति स्पास देखते हैं जिससे करीब 700 करोड़ रुपयों का प्रति वर्ष व्यापार होता है। आने वाले कुछ वर्षो में भू ताप ऊर्जा स्रोतों का पूर्ण सर्वे व उपयोग संभव हो सकेगा।

विज्ञान-वार्ता

अधिक आलोकित प्रतिबिम्ब

सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों को प्रायः वे लघु जीवाणु मृत मिलते हैं।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे सूक्ष्म जीव उस तेज प्रकाश की गरमी नहीं सह पाते जिसका प्रयोग वैज्ञानिक उन जीवाणुओं को देखने और उनके फोटो लेने के लिए करते हैं। और ये जीवाणु हलके प्रकाश में दीखते नहीं।

एक नये यन्त्र की सहायता से अनुसन्धानकर्ताओं को शीघ्र ही इस परेशानी से छुटकारा मिल जायेगा। वैज्ञानिकों ने बताया कि इस नये यन्त्र के आविष्कार से वे जीवित लघु जीवाणु या एक-कोषीय जीव (मिसाल के तौर पर अमीबा) को हलके प्रकाश के सामने रख कर उसे चमकीले प्रकाश में देख सकेंगे।

इस यन्त्र का आविष्कार कैलिफोर्निया स्थित स्टेनफर्ड विश्वविद्यालय के तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों ने किया है। उनके नाम हैं थियोडोर डब्ल्यू० हेन्श, फ्रैंक वार्सेन्यी और आर्थर एल० शालोव। यन्त्र में कांच के दो सेल होते हैं जिनमें से एक 'प्रदीपन सेल' होता है और दूसरा 'विस्तारक सेल'। 'प्रदीपन सेल' से निकला हलका प्रकाश सूक्ष्म जीवाणुओं पर पड़ता है और तब उन्हें देखा जा सकता है। पदार्थ से प्रतिक्षिप्त प्रकाश विस्तारक सेल में प्रविष्ट होता है और वह अधिक प्रकाशमान हो जाता है।

यह यन्त्र उसी सिद्धान्त पर काम करता है जिससे प्रकाश विस्तारित हो कर लेसर किरण में जाता है। लेसर मशीन बहुत तीव्र किन्तु संकुचित प्रकाश किरणें पैदा करती है। इसके विपरीत नया यन्त्र उस प्रतिबिम्ब की प्रकाश-घनता को बढ़ा सकता है जो विस्तृत क्षेत्र को घेरे हुए हो।

'विस्तारक सेल' से प्रक्षिप्त प्रतिबिम्ब मूल के ही समान और उसी आकार का होता है, पर अधिक आलोकित होता हैं। वैज्ञानिकों ने बताया कि चूंकि मूल आकृति का रंग कायम रहता है इसलिए यह यन्त्र रंगीन टेलिविजन और फिल्म प्रदर्शन में भी उपयोगी हो सकता है।

दक्षिणी ध्रुव के हिमाच्छादित पृष्ठ पर अनुसन्धान-केन्द्र

अब से 60 साल पहले मनुष्य ने पहली बार दक्षिणी ध्रुव पर पांव रखा था। यह ऐतिहासिक घटना 16 दिसम्बर, 1911 को हुई थी। तब रोनल्ड एमण्डसन और उनके चार साथी दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचे थे।

उसके बाद से संसार भर के वैज्ञानिक दक्षिणी ध्रुव महाद्वीप के सम्बन्ध में अध्ययन और अनुसन्धान करते रहे हैं।

उस प्रदेश के रहस्यों का उद्घाटन करने के पुराने कार्यक्रम के सिलसिले में अमेरिका इस वर्ष दक्षिणी ध्रुव के हिमाच्छादित पृष्ठ के ऊपर एक वैज्ञानिक अनुसन्धान केन्द्र स्थापित करेगा। यह 81,60,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले महाद्वीप के मध्य में बर्फ के ऊपर प्रथम निर्माण कार्य होगा।

इस केन्द्र का नाम दक्षिणी ध्रुव के दो अन्वेषकों के नाम पर 'एमण्डसन-स्काट केन्द्र' होगा।

इस केन्द्र में दो-मंजिली तीन इमारतें होंगी और वे अलमोनियम के गुम्वद से ढकी हुई होंगी। इमारतों और प्रयोगशालाओं को मजबूत बनाने के लिए बर्फ के ऊपर सुरंगों से जोड़ा जायेगा।

गुम्बद की गोलाई 49.2 मीटर और ऊंचाई 15 मीटर होगी। इसके कारण केन्द्र जाड़ों में तेज ठण्ड और तूफान से बचा रहेगा। वहां सर्दियों में तापमान शून्य से भी 43 अंश सेण्टीग्रेड नीचे हो जाता है।

गुम्बद के नीचे वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं होंगी और उनमें अमेरिका के 'दक्षिणी ध्रुव अनुसन्धान कार्यक्रम' की योजनाओं को कार्यान्वित किया जायेगा तथा केन्द्र के कर्मचारियों के निवास और मनोरंजन की सुविधाएं होंगी।

उक्त योजना के अधीन 50 निर्माण-विशेषज्ञ काम करते हैं और वे इस वर्ष के दक्षिण ध्रुवीय ग्रीष्मकाल के दो महीनों में गुम्बद तथा पूर्व-निर्मित इमारतें खड़ी कर रहे हैं। इमारतों और अन्य साज-सामान को वायुयानों से निर्माणस्थल पर पहुंचाया गया है।

अलमोनियम के पूर्व-निर्मित गुम्बद के भीतर उन 16 व्यक्तियों के लिए निवासस्थान और प्रयोगशालाएं होंगी जो ध्रुव-क्षेत्र की कठोर शीत ऋतु में परीक्षण करेंगे। ग्रीष्मकाल में इन वैज्ञानिकों की संख्या दुगनी की जा सकेगी।

तीनों इमारतें बक्सनुमा हैं और उनमें निवास, खेल-कूद, संचारसम्पर्क तथा चिकित्सा की सब सुविधाएं होंगी। इन इमारतों को एक दूसरे के ऊपर भी फिट किया जा सकता है।

डीजल चालित जेनरेटर लगाने, गाड़ियों को खड़ा करने व उनकी मरम्मत करने तथा ईंधन जमा रखने के लिए 6 मीटर ऊँचा और 180 मीटर लम्बा इस्पाती ढांचा अलग खड़ा किया जायेगा। वहां ध्रुवीय हिमपृष्ठ में छेद करने और छानबीन के लिए भी जगह होगी।

'अमेरिकी ध्रुवीय अनुसन्धान कार्यक्रम' के वैज्ञानिकों के अनुसार, इस गुम्बदाकार केन्द्र को 10-15 वर्षों तक प्रयुक्त किया जा सकेगा।

अमेरिका के 'दक्षिण ध्रुवीय अनुसन्धान कार्यक्रम के अन्तर्गत पहला ध्रुव-केन्द्र 1957 में बनाया गया था। वह 15 वर्षों तक काम देने लायक था, पर अब हजारों टन बर्फ के नीचे दबकर लुप्त हो चुका है।

अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए ऑक्सीजन का नया स्रोत

अन्तरिक्ष की भावी उड़ानों में भाग लेने वाले अन्तरिक्षयात्री श्वास लेने में शायद ऐसी ऑक्सीजन का प्रयोग करेंगे जो उनके अपने श्वास और पसीने में पाई जाने वाली आर्द्रता से तैयार होगी।

अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के कैलिफोर्निया स्थित ऐम्ज अनुसन्धान केन्द्र ने एक ऐसी पद्धति निकाली है जो हवा में विद्यमान आर्द्रता को सीधे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में परिणत कर देती है और शुद्ध ऑक्सीजन को पुनः हवा में छोड़ देती है।

राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के वैज्ञानिकों ने नई पद्धति की 2,000 घंटे से अधिक समय तक सफलतापूर्वक जांच की। यह अवधि 80 दिन की अन्तरिक्ष-उड़ान के बराबर है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन करीब एक किलोग्राम ऑक्सीजन श्वास द्वारा ग्रहण करता है। साथ ही वह निःश्वास और पसीने द्वारा करीब 1,500 ग्राम कार्बन-डायोक्साइड हवा में छोड़ता है। वह जो अतिरिक्त 500 ग्राम मात्रा—पानी की भाप—छोड़ता है वह उस पानी से बनती है जो खाने और पीने से मनुष्य की पाचन-प्रणाली में पहुंचता है।

अन्तरिक्ष-विशेषज्ञों का कहना है कि 'ऐम्ज कन्वर्जन सिस्टम' नामक इस नई पद्धति में जब किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी तो भविष्य में दूर की अन्तरिक्ष-उड़ानों में ऑक्सीजन की बड़ी-बड़ी टंकियां ले जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

इस यन्त्र का गतिशील भाग एक ही है और वह है बिजली का पंखा। वह हवा को एक स्पंज सदृश वस्तु की ओर खींचता है जिसमें इलेक्ट्रॉलिट एसिड होता है।

यह एसिड हवा में पाई जाने वाली नमी को सोख लेता है और जब उसमें से बिजली गुजारी जाती है तो एसिड वाले घोल का पानी उसके घटकों में विभक्त हो जाता है। कोष्ठ के एक ओर ऑक्सीजन निकलती है और दूसरी ओर हाइड्रोजन। यन्त्र में लगी झिल्ली दोनों गैसों को आपस में मिलने नहीं देती।

छोटे-मोटे काम करने वाला यन्त्र-मानव

छोटे-मोटे काम करने वाले इस यन्त्र का नाम 'शेकी' है। उसका यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि उसकी क्रियाएं बहुत स्थिर नहीं होतीं।

किन्तु उसके बेडौल आकार और क्रियाओं के बावजूद वैज्ञानिकों का विश्वास है कि उससे इस प्रकार काम करवाये जा सकते हैं कि भविष्य में उसे अत्यधिक उपयोगी माना जाये।

एक दिन 'शेकी' को आदेश दिया गया कि वह एक बक्से को चबूतरे से ढकेल कर उस कमरे में पहुंचा दे जहां वह खड़ा था।

उसने तुरन्त कमरे में ढलुवां पटिया ढूंढी और उसे सरका कर चबूतरे से जोड़ दिया। फिर उसने पटिया पर चढ़ कर बक्स को नीचे ढकेल दिया।

यह शेकी क्या बला है ?

स्टेनफर्ड अनुसन्धान-संस्थान के वैज्ञानिकों ने बताया कि यह समझदार यन्त्र-मानवों को अग्रदूत है।

यन्त्रमानव 'शेकी' में मोटरें, पहिये, भुजाएं, टेलिविजनी आंख और दूरी-मापक उपकरण लगे हैं। इन सब उपकरणों को रेडियो द्वारा एक बड़े गणनायन्त्र से जोड़ रखा गया है।

यन्त्र-मानव कमरे की पड़ताल कर सकता है उसकी कुछ चीजों की 'याद रख सकता है और किसी मामूली काम को पूरा करने के लिए यह तय कर सकता है कि क्या करना होगा।

अमेरिका के वैज्ञानिक डा० चार्ल्स रोजेन ने कहा—अब समय आ गया है जब सामान्य औद्योगिक समस्याओं को हल करने के लिए 'शेकी' और उसके भाई-बहनों की कृत्रिम बुद्धिमत्ता से काम लेने के उपक्रम किये जायें।

कृत्रिम हृदय शारीरिक तापमान के अनुसार काम करता है

ब्रुकलिन (न्यूयार्क) के 'डाउनस्टेट मेडिकल सेन्टर' के चिकित्सकों और वैज्ञानिकों ने एक नई किस्म का कृत्रिम हृदय तैयार किया है।

नया कृत्रिम हृदय पहले तैयार किये गये हृदयों से इस रूप में बढ़िया है कि यह उसी तरह काम करता है जैसे मानवी हृदय करता है।

ब्रुकलिन की टोली के एक सदस्य ने बतलाया कि नया हृदय-पम्प हर 'धड़कन' के साथ गति करता है और उससे रक्त अवरुद्ध नहीं होता। पहले बने पम्पों में रक्त वाले कोष्ठ का कुछ ही हिस्सा गति करता था जिससे रक्त के छोटे छोटे हिस्से रुक कर जम जाते थे।

नया पम्प एक मैकेनिकल इंजीनियर ने तैयार किया है और प्लास्टिक तथा एक ऐसी मिश्र धातु के तन्तु-गुच्छों का बना है जो तापमान के परिवर्तनों से प्रभावित होती है। यह मिश्र धातु की बनी 'मांसपेशियों' का प्रयोग करके मुख्य पम्पिंग चेम्बर से रक्त को 'निचोड़' कर बाहर कर देता है और मांसपेशियां तापमान में परिवर्तन के अनुसार फैलती व सिकुड़ती रहती हैं।

ज्ञान-विज्ञान

सिंचाई वाले इलाकों में गेहूं की खड़ी फसल पर उर्वरकों का भुरकाव करने से भारी पैदावार

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला, नयी दिल्ली के वैज्ञानिकों के अनुसार सिंचाई वाले इलाकों में उन्नत किस्म के गेहूँ की फसल पर शुरू में ही 40 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से नाइट्रोजन का भुरकाव करने से पैदावार में काफी बढ़ोतरी होती है।

यदि फसल की पहली सिंचाई करते समय पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन डालना सम्भव न हो सके तो दूसरी सिंचाई नियत समय से पहले करके 80 से 100 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से उर्वरकों की पूरी मात्रा डाली जा सकती है।

पत्तियों पर यूरिया का छिड़काव; गेहूं की पैदावार में बढ़ोतरी

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला के वैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि की है कि पत्तियों पर यूरिया का छिड़काव करने से गेहूँ की पैदावार में बढ़ोतरी हो जाती है।

250 लिटर पानी में 25 किलो यूरिया डाल कर बनाया गया घोल एक हेक्टर में छिड़काव करने के लिये काफी होता है।

जिन इलाकों में जस्ते की कमी हो, वहां यूरिया के घोल में 5 किलो जिंक सल्फेट मिलाकर छिड़कना चाहिए। एक हफ्ते के बाद जिंक सल्फेट से बिना यूरिया के घोल का दूसरा छिड़काव करें। लेकिन उसमें 200 ग्राम डायथेन, जेड–78, एम–45, लोंकोल का जिनेब के किसी अन्य मिश्रण को मिला कर छिड़काव करने से रतुआ रोग की रोकथाम करने में मदद मिलती है।

गेहूं की पैदावार को घटाने वाली मकड़ी; रोकथाम का प्रभावी उपाय

फसल उत्पादन वैज्ञानिकों ने गेहूँ पैदा करने वालों को मकड़ी की रोकथाम के लिये फसल पर 0.15 प्रतिशत थिओमेटॉन या डिमेथोयट या 0.06 प्रतिशत पैराथिओंन का छिड़ंकाव करने की सलाह दी है।

900 लिटर घोल एक हैक्टर में छिड़काव करने के लिये पर्याप्त होता है।

यदि छिड़काव करना सम्भव न हो सके तो इसकी रोकथाम के लिये फसल पर 25 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से 1.5 प्रतिशत पैराथिओंन दवा का भुरकाव भी किया जा सकता है।

मूंगफली के बीजों का उपचार

बोने से पहले बीजों को आंरगेनोमरक्यूरियल कम्पाउंड दवा से उपचारित करने से मूंगफली की फसल में कालर और बीज गलन की बीमारी नहीं लगती।

ये बीमारियाँ फफूंद से पैदा होती हैं जो बीज और मिट्टी में लग जाती हैं। बीज को घड़े में डाल कर सेरेसन या एग्रोसन (एक भाग दवा और 400 भाग बीज) या 75 प्रतिशत थिरम (एक भाग दवा और 250 भाग बीज) या कैप्टान (एक भाग दवा और 300 भाग बीज) दवाओं से उपचारित किया जा सकता है।

अरंडी की एक नयी किस्म; कम समय में भारी पैदावार

तमिलनाडु के कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने अरंडी की कम समय में पकने वाली किस्म आर० सी०—1377 निकाली है।

उनका कहना है कि इस किस्म से खराब मौसम होने पर भी 95 से 100 दिन के अन्दर प्रति हैक्टर 1750 किलो० पैदावार मिलती है। दिसम्बर-जनवरी में धान की फसल काटने के बाद खाली खेतों में उगाने के लिये यह किस्म काफी उपयुक्त है।

इसके बीज में तेल की मात्रा 53 प्रतिशत होती है और इसे विभिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु में उगाया जा सकता है।

कीड़ों से आलू की फसल का बचाव

मिट्टी में एल्ड्रिन, डैल्ड्रिन या फारेट के दाने डालकर आलू की फसल को कटवो कीड़े, नेमाटोड्स आदि से बचाया जा सकता है।

बोआई से पहले मिट्टी में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन का चूर्ण 25 किलो० फी हैक्टर के हिसाब से मिट्टी में मिलाने से आलू की फसल में कटवी कीड़े नहीं लगते। 5 से 10 प्रतिशत डैल्ड्रिन का चूर्ण 25 से 30 किलो फी हैक्टर अथवा 10 प्रतिशत फारेट के दाने 62.5 किलो० फी हैक्टर के हिसाब से मिट्टी में डालने से नेमाटोड्स और अन्य मिट्टी में लगने वाले कीड़े नहीं लगते।

रासायनिक दवाओं से गेहूं की फसल के खरपतवारों की रोकथाम सम्भव

गेहूं की फसल में लगने वाले बथुआ, प्याजी, कृष्णनील, पोहली और हिरनखुरी जैसे साधारण खरपतवारों की रोकथाम 2,4–डी जैसी खरपतवारनाशक दवाओं का चार से पांच हफ्ते की फसल पर छिड़काव करके की जा सकती है।

700 लिटर पानी में 4 किलो 2, 4–डी सोडियम साल्ट और 20 किलो यूरिया मिला कर बनाया गया घोल एक हैक्टर गेहूं की फसल में छिड़काव के लिये पर्याप्त रहता है।

जौ की फसल का एफिड्स से बचाव

पौध संरक्षण वैज्ञानिकों ने बताया है कि जौ की फसल को भारी मात्रा में नुकसान पहुंचाने वाले एफिड्स की रोकथाम करके 18 से 28 प्रतिशत तक अधिक पैदावार आसानी से ली जा सकती है।

जौ की फसल में लगने वाले एफिड्स की रोकथाम के लिये मिथाइल पैराथिऑन (0.5 प्रतिशत), फेनीट्रोथिऑन (0.05 प्रतिशत), एन्डोसल्फान (0.05 प्रतिशत), मिथाइलडिमीटॉन (0.02 प्रतिशत), लिन्डेन (0.03 प्रतिशत), डिआजीनॉन (0.03 प्रतिशत), डाइमिथोएट (0 02 प्रतिशत) और मैलाथिऑन (0.14 प्रतिशत) रासायनिक दवाओं का इस्तेमाल किया जा सकता है।

जैसे ही एफिड्स दिखाई दें पहला छिड़काव तुरन्त कर देना चाहिए। ये जनवरी के मध्य से लेकर जनवरी के अन्त तक सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं।

इनको पूरी रोकथाम के लिए पहले छिड़काव के दो हफ्ते बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

कीटनाशक दवाओं के घोल को अच्छी तरह से हिला ले जिससे यह पौधों के ऊपर जमकर हानि नहीं पहुंचा सके।

कीट-पतंगों की रोकथाम के लिए लहसुन के रासायनिक तत्वों की खोज की गई

लहसुन भारत और अन्य देशों में स्वादिष्ट भोजन के शौकीनों की तो प्रिय वस्तु है ही, उससे मच्छरों, मक्खियों और खेती की फसलों के कीडों को मारने का काम लेने की भी संभावना हो गई है।

बम्बई के 'भाभा अणुशक्ति-अनुसन्धान केन्द्र' के दो भारतीय वैज्ञानिक लहसुन के तेल के क्रियाशील रासायनिक तत्वों को अलग करने, पहचानने और उन्हें कृत्रिम रूप से तैयार करने तक में सफल हो गये हैं।

इन घटकों के नाम 'डायलिल डाइसल्फाइड' और 'डायलिल ट्राइसल्फाइड' रखे गये हैं।

भाभा केन्द्र के वैज्ञानिकों ने बताया कि लहसुन के प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार के घटकों के नमूने मच्छरों के डिब्बों, मक्खियों के अंडों, आलुओं की गांठों में लगने वाले कीड़ों, कपास के रतुआ और ताड़ में लगने

वाले घुनों के लिए घातक सिद्ध हुए हैं।

प्रयोगशाला में किये गये सफल परीक्षणों के बाद, बम्बई नगर निगम के अनुरोध पर कुछ उपनगरों में मच्छर पनपने के क्षेत्रों में इन रसायनों को छिड़क कर देखा जा रहा है।

डा० शंकर वासुदेव अमोनकर ने बताया 'इन क्षेत्रों में हमारे परीक्षणों का परिणाम बहुत उत्साहजनक रहा है। लहसुन के प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से निर्मित रसायनों से—मिश्रण में 10 लाख के पीछे 5 अंश तक न्यून मात्रा से—कीड़ों का अन्त हो गया।

डा० अमोनकर ने 'भाभा अणुशक्ति अनुसन्धान-केन्द्र' में डा० अशोक बनर्जी के साथ मिलकर तीन वर्ष पूर्व अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ किया था।

डा० अमोनकर ने बताया कि लहसुन के तेल का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह कीट-पतंगों के लिए घातक होता है किन्तु पशुओं पर इसका वैसा विषैला प्रभाव नहीं होता जैसा अन्य कीटमार रसायनों का होता है। इसके अलावा बाद में लहसुन से कोई और गड़बड़ी भी नहीं होती।

आशा की जाती है कि भाभा केन्द्र में इस अनुसन्धान-कार्य की सफलता से अन्ततः किसानों और खेतीबाड़ी का काम करने वाले लोगों को भारत और उन अन्य देशों में लाभ पहुंचेगा जहाँ कीड़ों से फसलों को भारी नुकसान पहुंचता है।

[पृष्ठ 23 का शेषांश]

और माइक्रोफोन लगे होते हैं। इस प्रकार के लबादे में अड़चन कम होती है और इसलिये अधिक समय तक इसको पहने रह सकते हैं। दूसरे इसमें अधिक स्थान होने के कारण बहुत सारे आवश्यक उपकरण सरलता पूर्वक आ जाते हैं इस प्रकार के लबादे का दोष यह है कि एक तो चलने-फिरने, व हाथों के इस्तेमाल करने में काफी असुविधा होती है। दूसरे इस कवच को पहन कर बैठ पाना बहुत कठिन है। तीसरे इसको पहने हुये आप किसी तरह से गिर गये तो अपने आप उठ कर खड़ा हो पाना असंभव है।

दूसरे प्रकार का लबादा बहुत कुछ लचीला होता है। इसमें हाथों को इतनी स्वतंत्रता होती है कि इसे पहने हुये आदमी सुई में डोरा तक डाल सकता है। इसकी अनेक अच्छाइयाँ हैं। लेकिन सबसे बड़ी खराबी यह है कि इसको अधिक समय तक पहनना कष्ट दायक होता है। दूसरे ये कम सुरक्षा प्रदान करता है और तीसरे इसमें अन्दर आवश्यक उपकरण आदि के रखने के लिये स्थान की बहुत कमी होती है।

हमारे शरीर से लगातार ताप निकलता रहता है। लबादे जैसे हर तरफ से बंद खोल में थोड़ी ही देर में शरीर से निकला हुआ इतना ताप इक्ट्ठा हो जाएगा कि प्रारंभ में तो असुविधा होगी, कुछ देर बाद बेचैनी, उसके बाद बेहोशी और अन्त में मृत्यु। इस ताप से बचने के लिये दो तरीके अपनाए गए हैं। एक तो यह है कि खोखली नलियों का बना एक खोल सा पहन लिया जाये और इसमें ठंडा जल प्रवाहित करे। यह खोल मुख्य लबादे के अन्दर रहेगा। दूसरा ढंग यह है कि मुख्य लबादे की भीतरी सतह फोम (रबर या प्लास्टिक का) की तह लगा दें और इस तह में होकर ठंडी वायु प्रवाहित करें।

अन्य

चन्द्रमा पर लम्बे समय तक रहने में इससे कहीं अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। वैज्ञानिक और टैक्नोलोजिस्ट उनके प्रति सजग है तथा निरंतर प्रयास करके उनको अच्छी से अच्छी तरह हल करते चले जा रहे हैं।

परिशिष्ठ

523—कु० हेमलता पाण्डेय,
141, साउथ मलाका, इलाहाबाद ।

524—सुश्री सुधा पाण्डेय,
द्वारा डा० एस० वी० पाण्डेय, बाटनी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

525—सुश्री सरोज श्रीवास्तव,
सरोजनी नायडू छात्रावास, इलाहाबाद-२

526—डा० श्यामलाल श्रीवास्तव,
भौतिकी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद

527—श्री अशोक मालवीय, विज्ञान क्लब,
राजकीय इण्टर कालेज, सुल्तानपुर (उ० प्र०)

528—श्री नरसिंह भदौरिया,
ब्रह्मानन्द मालवीय विद्यालय, हमीरपुर उ० प्र०

529—श्री प्रधानाध्यापक,
श्री पा० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
फालना (पाली राजस्थान)

530—श्री प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
गुढ़ावालाताल (जालौर-राजस्थान)

531—श्री प्रधानाध्यापक,
कड़वाल हाई स्कूल, कड़वाल स्टेशन,
पानीमाइन्स, बड़ौदा (गुजरात)

532—श्री प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
सम्बलपुर (उदयपुर-राजस्थान)

533—श्री प्रधानाध्यापक,
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
गुलाबपुरा (राजस्थान)

534—श्री प्रधानाध्यापक,
भूपाल नोबल्स उ० मा० विद्यालय,
उदयपुर (राजस्थान)

535—श्री प्रधानाध्यापक,
गवर्नमेन्ट हायर सेकेन्डरी स्कूल,
गोविन्दगढ़ (अलवर)

536—कु० पूर्णिमा,
द्वारा श्री पी० एन० विश्नोई
2 पार्क रोड, इलाहाबाद-2

537—श्री बद्रीप्रसाद,
239 तुलाराम बाग, इलाहाबाद-6

538—श्री अरविन्द कुमार सिंघल,
द्वारा श्री एस० पी० सिंघल, 120 द्वारकापुरी
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

539— श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
आदर्श इण्टर कालेज, सरायआकिल
जिला इलाहाबाद

540—श्री राधेश्याम मिश्र,
आदर्श वस्त्रालय, सरायआकिल
जिला इलाहाबाद

541—श्री ओंकारनाथ मिश्र, प्रवक्ता
आदर्श इण्टर कालेज, सरायआकिल
जिला इलाहाबाद

542—श्री शिवशंकर सिंह, प्रवक्ता
आदर्श इण्टर कालेज, सरायआकिल
जिला इलाहाबाद

543—श्री महेन्द्रनाथ शुक्ल, प्रवक्ता
आदर्श इण्टर कालेज, सरायआकिल
जिला इलाहाबाद

544—श्री प्रिंसिपल,
गवर्नमेन्ट इण्टर कालेज, मुन्सियारी
पिथौरागढ़

545—श्री कमलकृष्ण,
185 बंधरोड, एलनगंज, इलाहाबाद-2

546—श्री सुभाषचन्द्र अग्रवाल,
द्वारा बद्रीदास बांकेलाल, राजामण्डी
आगरा-3

547—श्री श्रीकान्त,
3 जवाहरलाल नेहरू रोड,
टैगोर टाउन, इलाहाबाद

548—श्री डी॰ कुमार,
कला प्रेस, बहादुरगंज, इलाहाबाद।

549—श्री विजयस्वरूप,
द्वारा ईश्वरस्वरूप, 242 कर्नलगंज,
इलाहाबाद।

550—श्री प्रिंसिपल,
हायर सेकेण्डरी स्कूल,
कसरावद (जिला खरगोन म॰ प्र॰)

551—श्री आचार्य,
विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय,
गोवर्द्धनविलास, उदयपुर (राजस्थान)

552—श्री प्रिंसिपल,
पटेल विद्यालय, बरौर, कानपुर

553—श्री प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
गढ़ी (बांसवाड़ा-राजस्थान)

554—श्री ओ॰ पी॰ पचौरी,
जनता विद्यालय, अजीतमल, इटावा

555—श्री वी० के० अग्रवाल,
जनता विद्यालय अजीतमल, इटावा

556—श्री सतीश कुमार,
द्वारा जी० टी० कं०, बुलानाला, वाराणसी।

557—श्री प्रधानाध्यापक,
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
रायपुर (भीलवाड़ा-राजस्थान)

558—श्री अशोक कुमार जोशी,
द्वारा श्री तुलसीराम जी
खेमपुरा-उदयपुर (राजस्थान)

559—श्री के० वी० नरेला, द्वारा हजारीलाल जैन,
आदर्श मिष्ठान भण्डार, इब्राहीमपुरा
भोपाल म० प्र०

560—श्री प्रधानाध्यापक,
सेठ रामदयाल राठी उ० मा० विद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

561—श्री सी० एल० सिंह,
कमरा नं० 103, भौतिकी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० |3|5|

भाग 109 | फाल्गुन 2028 विक्र०, 1892 शक फरवरी 1972 | संख्या 2

पौधों की वियुक्त कोशिकाओं का संवर्धन और उनकी भ्रूण-विज्ञान एवं रचनाजनक प्रयोगों में सार्थकता

□ श्यामसुन्दर पुरोहित

पौधों की वियुक्त कोशिकाओं का संवर्धन तथा उनका पूर्ण रूप से प्रायोगिक ज्ञान यह दर्शित करता है कि उनका जन्म, वर्धन, भेदीकरण तथा भ्रूण विकास किन किन रसायनों व कारकों पर निर्भर रहता है। प्रस्तुत लेख का प्रमुख बिन्दु पौधों की वियुक्ति कोशिकाओं के प्रायोगिक संवर्धन–भेदीकरण व भ्रूण विकास की प्रगति से सम्बन्धित है। सूक्ष्म व अपुष्पीय समूह वाले पौधों में युक्त (जाइगोट) पैतृक पौधों से मुक्त होकर बीजाणुओं को जन्म देता है तथा वह उपयुक्त स्थिति में अंकुरित हो नये पौधे का रूप लेता है। परन्तु पुष्पीय पौधों का युक्त व भ्रूण विकास उनके जनन अंगों की रक्षित अवस्था में होता है तथा उनका विकास बीजाणु—जनन—संतति पर निर्भर रहता है जो कि उनके पोषण की पूर्ण रूप से पूर्ति करता है। बीजाणु—जनन—संतति (स्पोरोफाइट—जनेरेशन) पुष्पीय पौधे के जीवन-चक्र की प्रमुख अवस्था होती है। पुष्पीय पौधों में दोहरे—निषेचन का गुण अ—पुष्पीय पौधे से अलग होता है–जोकि पोलर नाभिकि से सायुज्यीय फ्यूजन होकर एण्डोसपर्म बनाता है तथा यह भ्रूण के भेदीकरण—विकास में पोषण के लिए सहायक होता है। अगर भ्रूण के भेदीकरण व विकास की गति मन्द होती है तो एन्डोस्पर्म प्रचुर मात्रा में तरल अवस्था में एकत्रित हो जाता है जैसे कि नारियल व चेस्ट-नट में पाया जाता है। अन्त में, यह तरल पदार्थ बीज-पत्र कोटिलीड़न तक पहुँचकर उसकेद्वारा सोखलिया जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि प्रयोगशाला में एक वियुक्त कोशिका या वियुक्त भ्रूण के संवर्धन से पूर्ण पौधा प्राप्त किया जा सकता है या नहीं, अगर यह संभव है तो इसके विकास व भेदीकरण में किन-किन जीव–रसायनों व प्रायोगिक वातावरण का होना जरूरी है ?

पौधों के पूर्ण विकास के लिए प्रयोगशाला में कार्बनिक व अकार्बनिक खनिज-लवणों में व दूसरे अनुकूलतम कारकों का होना आवश्यक है जोकि स्वतन्त्र कोशिका या भ्रूण के संवर्धन के लिये पोषण में सहायक हो सके।

यह कहना कठिन है कि स्वतन्त्र कोशिकाओं का प्रायोगिक संवर्धन कहां व किस समय शुरू हुआ। 1902 ई० में प्रकाशित हेबर लैण्ड द्वारा रचित लेख इस दृष्टिकोण की दिशा में प्रथम प्रयास था। एकल कोशिका सम्वर्धन का तत्कालीन विकास यह सिद्ध नहीं करता था कि एक कोशिका-सम्वर्धन विधि प्रयोगशाला में एक पूर्ण पौधे का रूप ले सकती है।

स्टीवार्ड तथा मोहनराम ने 1961 में स्वतन्त्र कोशिका के वर्धन तथा वर्धनजनक बाहरी वातावरण की अनुकूलतम स्थिति का होना जरूरी बताया लेकिन तत्कालीन ज्ञान से यह बताना कठिन था कि कौन सी दैहिक (फिजियोलोजिकल) व जीव-रसायनों (बायो-केमिकल) की क्रियाएँ एक कोशिका या भ्रूण को पूर्ण पौधा बनाने के लिये उत्तेजित करती है। प्रयोगशाला में बाहरी वातावरण जो कि वर्धन में सहायक होता है, रसायनिक माध्यम व नियन्त्रित तापक्रम व प्रकाश द्वारा प्राप्त किया जाता है क्योंकि कार्बनिक व अकार्बनिक रसायनिक माध्यम (अ) विकासशील कोशिका के वर्धन, (ब) विटामिनों की प्राप्ति, (स) कोशिका को भ्रूण में परिणत करने के लिये उत्तेजित तथा स्थूल व सूक्ष्म पोषक तत्वों को पहुँचाने में सहायक होता है। कोशिका का सम्वर्धन अयुयिक (एसैप्टिक) वातावरण में होना जरूरी है।

रोबिन्स 1922 तथा व्हाइट 1934 ने वियुक्त जड़ों का संवर्धन कर इस प्रयोगात्मक गति में क्रान्ति ला दी। उनके प्राप्त परिणामों से यह सिद्ध हुआ कि थायमीन (एक विटामिन जो यीस्ट से प्राप्त होता है), टामाटर की जड़-वर्धन व भेदीकरण क्रिया के लिये महत्वपूर्ण होता है क्योंकि समान्यतया पौधा मिट्टी द्वारा उन विटामिन, सूक्ष्म तत्व के लवणों की प्राप्ति नहीं कर पाता है जोकि एक पौधे के पूर्ण विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है। प्रयोगशाला में इन आवश्यक रसायनों की प्राप्ति संश्लेशित माध्यम द्वारा पूर्ण की जाती है।

सन् 1920 से 1950 के बीच का समय संवर्धन प्रयोगों के इतिहास का महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इस युग ने इस संशय का निराकरण कर दिया कि संवर्धन-विधि में किन-किन रसायनों व सीमा-कारकों का होना आवश्यक है।

स्टीवार्ड व केल्पिन 1948 में गाजर के अधोवाही (फ्लोएम) को उसकी जड़ से अलग करके उसको आधारीय—रसायन—माध्यम (बेसल-केमिकल-मीडियम) में, नारियल के तरल एण्डोस्पर्म को, मिलाकर सम्वर्धित किया। लेकिन अधोवाही की कोशिकाओं की विभाजन गति इस संवर्धन में अत्यन्त मन्द थी। इस धीमी गति को ध्यान में रखते हुये 1951 में स्टीवार्ड ने आधारीय माध्यम में, नारियल का दूध, 2,4-डी (2,4-डाई क्लोरो फिनाक्सी-एसीटिक एसिड व नेपत्थेलीन एसीटिक अम्ल को मिलाकर, कोशिका विभाजन की इस मन्द गति को अभिभूत किया। क्योंकि 2,4-डी० व नेफ्थेलीन एसीटिक अम्ल कोशिका विभाजन में इण्डोलएसीटिक अम्ल के तुल्य क्रिया करता है। इण्डोल एसीटिक एसिड कोशिका विभाजन का महत्वपूर्ण न्यासर्ग (होरमोन) है। नारियल के दूध की रसायनिक संरचना प्रोटीन तेल, डी-आक्सीराइबोज न्यूक्लिक अम्ल, अमीनो अम्ल, इण्डोल एसीटिक अम्ल आदि से संरक्षित होती है।

अधोवाही मुख्यतः पुष्पीय पौधों में अन्न-संक्रमण (फूड ट्रांस लोकेशन) में सहायक होता है। स्टीवार्ड ने सर्वप्रथम गाजर की जड़ से एक अधोवाही कोशिका लेकर उसे आधारीय माध्यम में बार-बार संवर्धित करने के पश्चात् अन्त में नारियल-दुग्ध-मिश्रित आधारीय-माध्यम-में सम्वर्धित किया। इस क्रिया के दौरान प्रेक्षित किया गया कि कोशिकाओं के गतिशील वर्धन पर जड़ तने व अन्त में उसके द्वितीय जीवन-चक्र में पुष्पों का अवलोकन हुआ। नवजात पुष्पों में बीज निर्माण करने की क्षमता पाई गई। एक और प्रेक्षण अंकित किया गया कि एक

कोशिका को सम्वर्धित करने के पश्चात् उसमें भ्रूण की तरह सूक्ष्म ग्रन्थियां प्रक्षित की गई जिन्हें एम्ब्राइड कहते हैं। प्रत्येक एम्ब्राइड जड़ तने पत्तियों व बीज-पत्र को उत्पन्न करने में सक्षम है। प्रत्येक अधोवाही व एमब्राइड से बनने वाले पौधों की पैतृक सूत्र संख्या (करोमोजोम-नम्बर) द्विसूत्रक ही रहती है। यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है कि बीजाणु जनन संतति बिना किसी अनुवांशिक भिन्नता व युग्मक पौधा बनाये बिना द्विसूत्रीय पौधे को उत्पन्न कर सकता है।

गाजर के अलावा दूसरे पौधों पर भी सम्वर्धन के सफलतम प्रयोग देखे गये। धनिये (कोरियेण्डम्) की वियुक्त कोशिकाओं से एक पूर्ण बीजयुक्त पौधे की प्राप्ति अगर-अगर के आधारीय माध्यम की उपस्थिति में हुई।

सेवोबोड़ोवा ने 1964 में, आलूके तने से छोटे से भाग को उस तने पर ही सम्वर्धितकर एक अभेदीय-कोशिकाओं (केलस कोशिकाओं) का समूह प्राप्त किया तथा उस समूह को नारियल-दुग्ध व 2,4,डी आदि से मिश्रित आधारीय माध्यम में सम्वर्धित किया जिससे पूर्ण पुष्पीय पौधे की प्राप्ति हुई।

इस बात का स्पष्टीकरण अभी तक कठिन है कि कुल अम्बेलीफेरी में रखे गये पौधों की स्वतन्त्र कोशिकाओं के संवर्धन में नारियल दुग्ध का होना क्यों आवश्यक है ? इस संशयका उत्तर इस आधार पर दिया जा सकता है कि इस कुल के भ्रूण में बनने वाले निलम्ब का भेदीकरण अपर्याप्त होने से वह एण्डोस्पर्म से भ्रूणवर्धन के लिये पूर्ण पोषण प्राप्त नहीं कर सकता तथा कृत्रिम सम्वर्धन विधि से इस कमी को नारियल के दूध से दूर की जाती है।

तम्बाकू (निकोटिएना) के पौधों का सम्वर्धन भी इस दिशा में एक नया कदम था। सन् 1965 में वासिल व हिल-डिबरलैंड ने निकोटिएना ग्लूटनियोसा व नि० टोबोकम से संकरण (हाइब्रिड़ाइजेशन) से प्राप्त पौधों की कोशिका निकालकर उनका प्रयोगिक सम्वर्धन किया तथा इससे प्राप्त नवजात पौधों में पैतृक जातीय गुणों का अंकन किया। इस प्रयोग से यह पुष्टि हुई कि कोई भी दो सजातीय व अजातीय पौधों में प्रसंकरप कराया जा सकता है तथा उससे नये जातीय पौधों की उपलब्धि हो सकती है।

संवर्धन-विज्ञान भारत में भी प्रगतिशील अवस्था में है। इस प्रयोगशाला की स्थापना दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति विभाग के स्वर्गीय प्रो० पी० महेश्वरी व प्रो० बी० एम० जौहरीने की। इसका प्रमुख कार्य-बिन्दु कोशिका व ऊतक (टिशू) का संवर्धन व परजीवी पौधों के भ्रूण का संवर्धन कर उनके पोषण में कार्बनिक व अकार्बनिक खनिज लवणों का ज्ञान प्राप्त करना था। भारत में मिलने वाले बिना बीजों के अंगूर, आम, नीबू तथा कई बहुभ्रूणीय पौधों व बीजों की उपलब्धि इत्यादि इसी प्रयोगशाला की देन है। तम्बाकू, धतूरा तथा औषधियों में काम आने वाले पौधे जैसे डेजीलेटिस, पोपी, ब्रायोफिल्लम आदि का सम्वर्धन कर उनमें नये जातीय गुणों व शीघ्र पौधों से प्राप्ति के प्रयोग भारत में ही किये गये। उपरोक्त प्रयोगों से प्राप्त पौधों को "परख-नली पौधा" भी कहा जाता है जिसमें कि प्राकृतिक वातावरण जैसे मिट्टी, पानी, तापक्रम व हवा बिना भी पौधे की प्राप्ति की जा सकती है।

संवर्धन विज्ञान द्वारा भ्रूण का भेदीकरण व वर्धन अणु-आनुवंशिक स्तर पर विवेचित किया जा सकता है। हर कोशिका केन्द्र में एक न्यष्टि होती है जोकि जननिक गुणों का भंडार होती है। एक न्यष्टि किसी प्रकार भेदीकरण व वर्धन के समय अपना प्रभाव कोशिका पार दर्शाती है-यह विचारणीय है। जेकब व मोनाड़ ने बेक्टीरिया-संवर्धन से प्राप्त परिणामों से यह सिद्ध किया कि जननिक संकेत, न्यष्टि से मेसेन्जर राईबोस न्यूक्लिक एसिड द्वारा कोशारस तक पहुँच, विशेष प्रकार की प्रोटीन का संश्लेषणकरता है। विकर (एन्जाइम) के सदृश संश्लेषित प्रोटीन भी वियुक्त स्वतन्त्र कोशिकाओं या भ्रूण के रचनात्मक भेदीकरण में सहायक होता हैं।
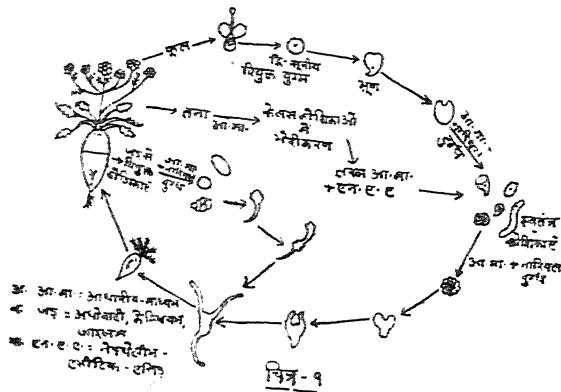
गाजर का रचना जनक-भेदीकरण व वियुक्त कोशिकाओं की प्राप्ति का साधन ।
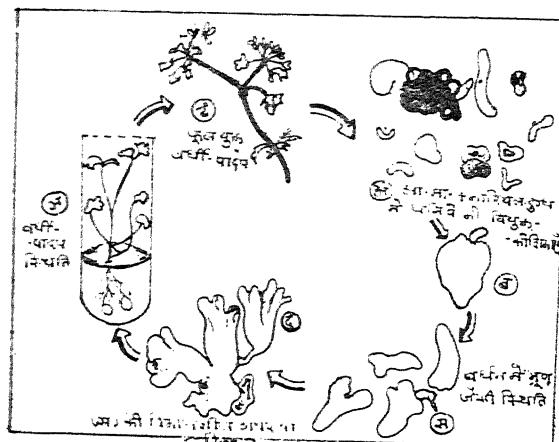
धनिये के पौधे से प्राप्त वियुक्त-कोषिकाओं का आधारीय माध्यम व नारियल के दूध में भ्रूण व पुष्पीय पौधे का विकास ।
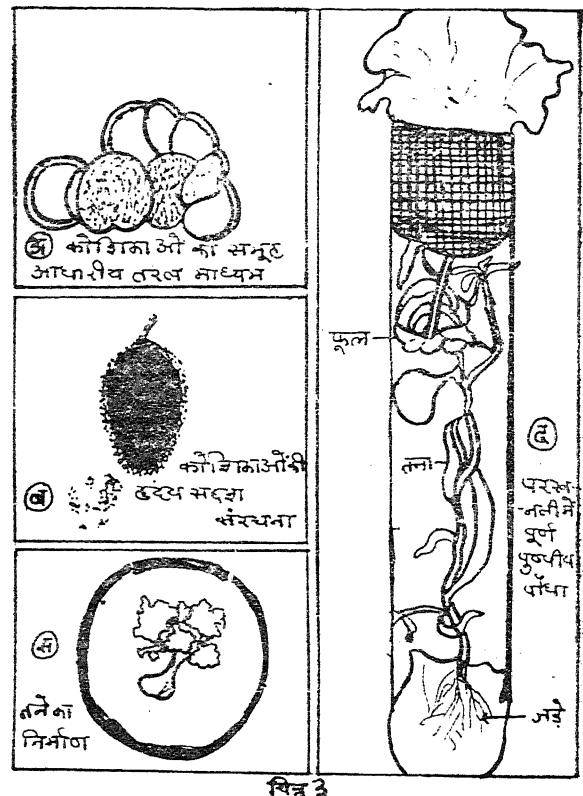
तम्बाकू से प्राप्त कोशिकाओं का समूह व उसका आधारीय तरल माध्यम व नारियल के दूध में पूर्ण पौधे का वर्धन व भेदी-करण ।

कम्प्यूटर (मशीनी-दिमाग)

□ लक्ष्मीकान्त सिंह

विज्ञान के वर्तमान युग में कम्प्यूटर एक महत्व पूर्ण आविष्कार सिद्ध हुआ है । जैसा कि सभी जानते हैं कम्प्यूटर एक मशीनी दिमाग है जो कि आजकल बहुत ही आश्चर्य जनक कार्य करता पाया जाता है। जहाँ जहाँ भी यह यन्त्र उपयोग में लाया जारहा है, बड़े से बड़े विभिन्न प्रकार के गणित-गणनाओं के हल बड़ी ही आसानी से तथा कम समय में निकाल पाने हेतु प्रयोग में लाया जाता है । आजकल तो कम्प्यूटर बात करने, सामयिक तथा असामयिक प्रश्नों के उत्तर देने, जन गणना, परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं के निरीक्षण, कार्यालयों में प्रतिचयन और प्रतिदर्शीनिरीक्षण एवं अन्य विभिन्न विभिन्न प्रकार के कार्यों में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। यहाँ इसके सिद्धांत और कार्य प्रणाली के हेतु कुछ मूल विचारों को दिया जा रहा है।

प्रायः दो प्रकार के कम्प्यूटर पाये जाते हैं:—

1. आँकिक (Digital) कम्प्यूटर
2. अनुरूप (Analogue) कम्प्यूटर

साधारणतया दोनों ही प्रकार के कम्प्यूटर ऐसी परिकलन एवँ गणितीय समस्याओं को हल करने के कार्य में लाये जाते हैं जो अत्यधिक कठिन, समय व्ययी होते हैं तथा जिन्हें हस्तकौशल से हल कर पाना कठिन होता है। इस प्रकार से कम्प्यूटर का प्रयोग समय तथा दिमागी थकान दोनों ही की बचत करता है।

बहुधा 'आंकिक कम्प्यूटर'-वाणिज्यीय और औद्योगिक उपयोग हेतु काम में लाया जाता है जहाँ रोजमर्रा की गणनाएें तथा परिकलन होते रहते हैं जो कि बिना इसके असंख्य क्लर्कों का दिक्कती कार्य हो जाता है । प्रायः आँकड़ा संसाधन (Data Processing) एक महत्वपूर्ण पद-वस्तु है जो साधारणतया ऐसे खास उपयोगों के संदर्भ में साधारणतया कम्प्युटर से कार्य-परिणित होती है । 'अनुरूप-कम्प्युटर' शोध कार्य तथा अभिकलपना में प्रयोग किये जाते हैं।

आँकिक कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली

यह बहुत ही तीव्र गति से गणित और परिकलन करता है तथा बड़े ही तर्क पूर्ण ढंग से औचित्यिक निर्णय देता है विशेषतया जब भिन्न भिन्न तरीकों से निकाले गये हल भ्रमित कर रहे हों और सही निर्णय संदेहास्पद हो। इसके कार्य करते समय यह निहायत ही बहुत जरूरी नहीं कि कार्य-कर्ता स्थिर रूप से इसका निरीक्षण करे, इस प्रकार से बचे हुये समय को कार्य कर्त्ता साथ ही साथ किसी अन्य कार्य के करने में उपयोग ला सकता है। जो कार्य कम्प्यूटर द्वारा किया जाना है ऊसे यदि उचित ढंग से मशीन में निर्देशित कर दिया जाता है तो उसमें गल्ती की सम्भावना कठिनता से ही की जा सकती है। निर्देशित कार्य को सर्वप्रथम कम्प्यूटर एक 'प्रोग्राम' में परिवर्तित कर देता है । 'प्रोग्रामिंग' का तात्पर्य यह है कि आँकड़ों का संसाधन इस प्रकार हो कि पूरे आँकड़े बड़े ही साधारण, सरल और सुरुचिपूर्ण ढंग से व्यवस्थित हों। यहीं पर एक महत्वपूर्ण आवश्यकता इस बात की भी होती है कि दशमलव अंकों को युग्म-संकेतों (Binary codes) में परिवर्तित किया जाय।

आँकड़ा संसाधन (Data processing) **तन्त्र के मूल खन्ड**
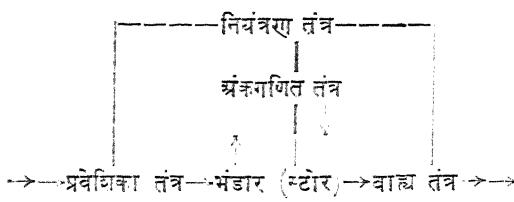
इस चित्र में आँकड़ों का कम्प्यूटर के अन्दर भ्रमण दिखाया गया है। यह आँकड़ा संसाधन क्रिया बहुधा वाणिज्यीय आँकड़ों के संसाधन तथा औद्योगिक-कार्यालयों के दैनिक अंकगणित, गणना और समस्यासमाधान हेतु प्रयोग में लायी जाती है। इसके मुख्य-मुख्य भागों का संक्षिप्त वर्णन निम्न सांकेतिक परिभाषाओं से दिया जा रहा है।

1. **प्रवेशिका तंत्र** (Input unit)—यह यंत्र-तंत्र कम्प्यूटर द्वारा किये जाने वाले कार्य के सुचारु रूप से निर्देशित करने में उपयोग किया जाता है। संसाधन क्रिया हेतु आँकड़े इसी तंत्र द्वारा प्रवेश कराये जाते हैं।

2. **बाह्य तंत्र** (Out put unit)—यह तंत्र अंक-गणितीय-गणना अथवा परिकलन के परिणामों के संचार की व्यवस्था करता है। अर्थात अंतिम फल यहीं आकर प्रदर्शित होते हैं।

3. **भंडार** (Store)—इस यंत्र खंड को 'Memory' अर्थात स्मृति-तंन्त्र भी कहा जाता है। यह आँकड़ों का भंडारहै। कम्प्यूटिंग-संसाधन के समय आँकड़े यहीं एकत्रित होते हैं तथा इसी यन्त्र-तन्त्र के द्वारा आँकड़ों को विशेष प्रकार से व्यवस्थित करने के निर्देशन-संकेत प्राप्त होते हैं। इसको स्मृति तंन्त्र इसलिए कहा जाताहै कि लम्बी सन्साधन क्रिया के समय आंकड़ों के सही निर्देशन अथवा समय समय पर उनकी अपनी औचित्यता की निगरानी यहीं होती है।

4. **अंक गणित तंत्र** (Arithmatic unit)—इस कम्प्यूटर के लघु तन्त्र में गणितीय गुणा-भाग आदि अर्थात परिकलन की क्रिया होती है।

5. **नियन्त्रण तंत्र** (Control unit)—**इस** यन्त्र-तंत्र के द्वारा कम्प्यूटर में होने वाली अथवा किये जाने वाली निर्देशन, परिकलन, संसाधन एवँ कम्प्यूटर की 'प्रोग्रामिंग' क्रियाओं आदि का नियन्त्रण किया जाता है।

युग्म सांकेती (Binary code)

शून्य से लेकर 9 तक की सभी संख्याओं और उनके दशमलव अंकों का प्रयोग प्रायः सभी गणितीय परिकलनों में किया जाता है। कम्प्यूटर में इन दशों अंकों, उनके दशमलव अंकों के साथ साथ अन्य भिन्न प्रकार की तथा कुछ विशेष प्रकार की अंक भाषा और इकाइयों का भी प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इन्हीं दश अंकों के प्रयोग और उपयोग के आधार पर एक मशीन अथवा ऐसे यन्त्र का निर्माण किया जा सकता है और किया गया है जो गणितीय परिकलनों के काम में लायी जा सके। परन्तु एक साधारण यन्त्र-तन्त्र जिससे बहुधा क्लिष्ट परिकलनों और गणितीय समस्याओं का हल किया जा सके वह 'वैद्युत कम्प्यूटर' ही हैं, जिसमें इन दश अंकों के साथ साथ दशमलव अंकों के लिए विशेष प्रकार के युग्म संकेत प्रयोग किये जाते हैं। इसका मुख्य कारण है 'कम्प्यूटर' में भिन्न भिन्न तरह की वैद्युत मशीनरी का प्रयोग किया जाना। विशेषतया दो-मुखी युक्ति-तन्त्रों (Two state devices) का प्रयोग होता है जो या तो 'आन' (On) होती है अथवा 'आफ' (Off); और दोनों ही (विच्छेद और सम्पर्क) स्थितियों में विभिन्न प्रक्रियाओं का संचालन करती हैं। अतः युग्म संकतों का कम्प्यूटरों में बहुधा प्रयोग होता है, क्योंकि इस प्रणाली में प्रायः दो ही अंक 0 और 1 ही प्रयोग आते हैं, ये दोनों अंक 0 या 1 मशीन की विच्छेद स्थिति और संपर्क स्थिति का प्रति-निधित्व एवँ प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि ऐसा लगता हैं कि सिर्फ इन दो संकेतों के प्रयोग से परिकलन की क्रिया लम्बी तथा अग्राह्य होगी पर कम्प्यूटर के अन्दर होने वाला अंकगणितीय चक्रवृत्त इन संकेतों की स्थितियों को बड़ी ही तीव्रता से (एक सैकेन्ड में कई करोड़ बार) परिर्वातित करता है।

संकेतों की परिशुद्धि-ढंग एक अच्छा सुचारु व्यवहार प्रदर्शित करती है और वह सिद्धांत जिस पर समान दशमलव संकेतांक प्राप्त होते है, आसानी से समझा जा सकता है। दशमलव अंकअथवा संख्या इस तरह से सुव्यवस्थित की जाती है कि हर दुहराये जाने वाली संख्या 2 से विभाज्य हो और शेष हर स्थिति में 0 से प्रदर्शित किया जाय। उदाहरणार्थ 55 का युग्म समसंकेत (Binary epui ralent) नीचे दिया जाता है।

55; $\frac{55}{2}(27)$; $\frac{27}{2}(13)$; $\frac{13}{2}(6)$; $\frac{6}{2}(3)$;
शेष 1 ; शेष 1 ; शेष 1 ; शेष 0;
$\frac{3}{2}(1)$; $\frac{1}{2}(0)$
शेष 1; शेष 1।

नीचे की पंक्तिमें दिये गये शेष-अंकों से युग्म संख्या नियत की जाती है। यह युग्म संख्या दाॅयी तरफ से बाॅयी तरफ को लेकर लिखे गये शेष अंकों 110111 से प्रदशित होगी।

सूचना-भंडार (Storage of information)—सूचनाओं और परिणामों को एकत्र रूप में एक जगह नियंत्रित रखने का यह युक्ति-तंत्र (Device) बड़े ही विचार तथा समझ के साथ विकसित किया जाता है, क्योंकि आँकिक कम्प्यूटर में इसका अत्यधिक उपयोग रहता है। पूर्व विकसित स्टोर कैथोडरेट्यूब के द्वारा बनाया जाता है। इसमें ट्यूब के पर्दे पर का विशेष प्रकार का लेप भिन्न भिन्न सूचना संकेतों से प्रभावित हो छोटे छोटे आवेशित क्षेत्रों में बंट जाता है। आधुनिक-काल में इस कार्य हेतु चुम्बकीय-चक्रिका ड्रम (Magnetic Disc Drum) का प्रयोग किया जाताहै। करीब 1 फुट लम्बा इस प्रकार का ड्रम 3 लाख से भी अधिक सूचनादायी युग्म संकेतों के भंडार का कार्य-भार संभाल सकता है। अर्थात करीब तीन लाख के युग्म संकेतों का स्टोर इसमें रह सकता है। इन संकेतों को सूचनार्थ प्रदर्शन करने हेतु इस यंत्र तंत्र को सिर्फ $\frac{1}{1000}$ सैकेन्ड लगता है।

अंकगणितीय तंत्र (Arithmatic Unit)—

इस तंत्र से कम्प्यूटर में जोड़, वाकी, गुणा, भाग चलन कलन आदि होता है। मशीनरी जो इस कार्य का संचालन करती है बड़ी ही साधारण और आधार भूती मूलरूप से सुव्यवस्थित होती है। इनयंत्रों में सिर्फ विच्छेद-सम्पर्क चक्रवृत्त और प्रावृद्धि चक्र ही प्रयोग किये जाते हैं क्योंकि इनके कार्य करने की मुख्य रूप से दो ही स्थिति होती है एक0 युग्म संकेत हेतु दूसरे। युग्म संकेत हेतु ।

अनुरूप कम्प्यूटर (Analogue Computer)—

इस कम्प्यूटर में वैद्युत चक्र सीधे सीधे और सरल ढंग से गणितीय हलों के करने हेतु ही तैयार किये जाते हैं। इसके यंत्र-तंत्र स्वनिर्भर रहते हैं। ये कम्प्यूटर डिफरैन्सियल, इन्टीग्रेशन तथा अन्य बीजगणितीय और कठिनतम परिकलन के लिये उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के कम्प्यूटरों का प्रयोग हवाई जहाजों और पनडुब्बियों आदि में दबावों के नापने और दर्शाने हेतु मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। यह शिक्षण उद्देश्यों तथा सख्यात्मक आँकड़ों को एकत्र करने के काम आता है।

प्रयोगः—

दैनिक चर्या के छोटे छोटे कार्यों से लेकर ऊँची से ऊँची वैज्ञानिक तथा तकनीकी शोध और अनुसंधान कार्यों में इस तरह की दिमागी मशीनों का प्रयोग होता है। ये मशीनें बड़े बड़े जटिल इलेक्ट्रीकल-सर्किट की युक्तियाँ सोच निकालने तथा उनको कामयाब बनाने में भी मदद करती हैं। जहाँ विद्युत-चक्रों द्वारा प्राप्त परिणामों तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं के आँकड़ों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है, वहाँ इन्हीं मशीनों के उपयोग द्वारा कामयाबी हासिल की जाती है। सरल से सरल और कठिन से कठिन प्रश्नों के और समस्याओं के ठीक समाधान इनसे प्राप्त होते हैं।

जीन–क्रोमोज़ोम के बाहर !

□ प्रेमेन्दु प्रकाश माथुर

आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि जीन सन्तति के गुणों का निर्धारण करते हैं जो क्रोमोज़ोम या गुणसूत्र में पाये जाते हैं। गुणसूत्र कोशिका के केन्द्रक (न्यूक्लियस) में पायी जाने वाली सूत्र के समान रचना होती है। एक जाति के सभी जीवधारियों में तथा एक जीवधारी की सभी सोमेटिक कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है। साधारणतः मनुष्य के शरीर की कोशिकाओं में 46 तथा जनन कोशिकाओं में ठीक आधे अर्थात् 23 गुणसूत्र होते हैं। गुणसूत्र तथा जीन का वृहत् वर्णन आप 'विज्ञान' के पिछले अंकों में पढ़ चुके हैं।

अगुणसूत्रीय जीन क्या है ?

कोलम्बिया विश्वविद्यालय से प्रकाशित अनुसंधानों से एक अन्य प्रकार के जीन का ज्ञान हुआ है। इस प्रकार के जीन गुण सूत्र के अतिरिक्त कोशारस (साइटोप्लाज्म) में किसी स्थान पर स्थित होते हैं। ये जीन भी साधारण अथवा परिवर्तित दशा (म्यूटेशन) में रह सकते हैं। इनकी संरचना गुणसूत्र के जीन के समान ही होती है तथा ये भी न्यूक्लिक एसिड से बने होते हैं।

सन् 1908 में जर्मनी के वनस्पति-शास्त्री कार्ल कोरेन्स ने अगुणसूत्रीय जीन की उपस्थिति बतायी। कोरेन्स उन तीन वैज्ञानिकों में से एक हैं, जिन्होंने मण्डल के आनुवंशिकी के नियमों का पुनः आविष्कार किया। कोरेन्स का विचार था कि जीवधारियों में एक से अधिक पैत्रागतिक तंत्र होते हैं। इसके बाद अगुणसूत्रीय जीन का अध्ययन किया जाने लगा।

गुणसूत्रीय तथा अगुणसूत्रीय जीन में अन्तर

हमें मेंडल के आनुवंशिकी के सिद्धान्त से ज्ञात होता है कि पिता तथा माता के बराबर जीन सन्तान में पैत्रागतिक संविधान का नियंत्रण करते हैं। यह तथ्य द्विगुणित जीवधारियों (जिनकी शरीर की कोशिकाओं में गुण सूत्र के दो जोड़े होते हैं), तथा और अधिक प्राचीन अगुणित जीवधारियों (जिनमें केवल एक ही जोड़ा पाया जाता है) के लिये सत्य है। अगुणसूत्रीय जीन मेन्डेल के नियमों का पालन नहीं करते हैं। इसी के आधार पर उनकी पहिचान की जाती है। सन्तान में अगुण सूत्रीय जीन मादा द्वारा अर्धसूत्री विभाजन के समय पहुँचाये जाते हैं तथा नर के द्वारा कोई भी अगुणसूत्रीय जीन नहीं पहुँचाया जाता है। इस मात्रानुगति के लिये सबसे उपयुक्त कारण यह है कि प्रायः सभी जीवधारियों में अगुणसूत्रीय जीन केन्द्रक के बाहर अर्थात् कोशारस में होते हैं। उच्च वनस्पतियों एवं जन्तुओं में मादा युग्मक निषेचित अण्ड के लिये कोशारस का निर्माण करता है, न कि नर युग्मक। कई सूक्ष्मजीवों में ऐसा न होकर, नर तथा मादा युग्मक समान रूप से कोशारस के निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं। अतः अगुणसूत्रीय जीन मात्रानुगति की प्रक्रिया में किसी पदार्थ की कमी अथवा अधिकता अवश्य होगी।

अध्ययन में कठिनाइयाँ

मात्रानुगति अगुणसूत्रीय जीन के पहिचानने का मुख्य लक्षण तो है ही चाहे मात्रानुगति की प्रक्रिया कुछ भी क्यों न हो। परन्तु अगुणसूत्रीय जीन को पहचानने में दो मुख्य बाधायें आती हैं।

(1) प्रथम बाधा परिवर्तित जीन को पहचानने की आती है। पैत्रागति की साधारण जीन तथा परिवर्तित जीन पर ही टिकी हुई है। वैज्ञानिकों के लिये यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि कुल पदार्थ, जिसका अगुण-सूत्रीय जीन के लिये अध्ययन किया जा रहा है, आनुवंशिकी में कितना भाग लेता है।

(2) अगुणसूत्रीय जीन के अध्ययन में दूसरी बाधा मात्रानुगति में है, जो कि इसे स्पष्ट रूप से पृथक करती है, जब सन्तान में नर के एक भी नहीं परन्तु सभी मादा के अगुणसूत्रीय जीन पहुँचते हैं, इसके द्वारा जीन के संश्लेषण के प्रामाणिक तरीके कोई भी वैज्ञानिक प्राप्त करने में समर्थ नहीं था। क्योंकि जीन का संश्लेषण सन्तान में माता-पिता के जीन के वितरण के ढंग पर निर्भर करता है।

आधुनिक अनुसन्धान

इन दोनों कठिनाइयों का निवारण कुछ वर्ष पूर्व कोलम्बिया विश्वद्यालय के डा० रुथ सेजर ने अपनी प्रयोगशाला में किया। डा० सेजर ने एक प्रकार के शैवाल (क्लेमाइडोमोनस) पर अपने प्रयोग किये। क्लेमाइडो-मोनस की कोशिका उच्च जन्तुओं एवं वनस्पतियों के समान होती है। इसमें शक्ति उत्पन्न करने के लिये माइलेकॉन्डिया, प्रोटीन संश्लेषण हेतु रिबौसोम, प्रकाश संश्लेषण के लिये क्लोरोप्लास्ट तथा अन्य सभी प्रारूपिक रचनायें पाई जाती हैं।

डा० सेजर ने अपने प्रयोगों में म्यूरेशन के अध्ययन के लिये क्लेमाइडोमोनस की कोशिकाओ को स्ट्रेप्टो-माइसिन (एन्टीबायोटिक) के माध्यम में रखा। एक कोशिका असंख्य कोशिकाओं में विभाजित हो गयीं तथा म्यूटेशन के फलस्वरूप स्ट्रेप्टोमाइसिन प्रतिरोधक कोशि-काएँ बनीं। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि अधिकतर म्यूटेशन गुणसूत्रीय थे परन्तु लगभग 10 प्रतिशत मात्रानु-गति के थे, जो कि अगुणसूत्रीय थे। प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि गुण सूत्रीय जीन तथा अगुण-सूत्रीय जीन समान लक्षणों को बनाते हैं, परन्तु जब वे पृथक गुणों का निर्धारण करते हैं, तब भी कार्य की दृष्टि से वे परस्पर काफी सहयोग करते हैं।

आधुनिक प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि अगुण-सूत्रीय जीन कोशिका-विभाजन के समय क्रमरहित वित-रित नहीं होते हैं। यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रत्येक अगुणसूत्रीय जीन प्रत्येक कोशिका-विभाजन में नियमित रूप से पहुँचाये जाते हैं।

अगुणसूत्रीय जीन का रहस्य

अन्त में हमें यह विचार करना है कि एक से अधिक जीन-तंत्र का क्या रहस्य है? वैज्ञानिकों का विचार है कि अगुणसूत्रीय जीन-तंत्र अवश्य ही कोशिका के जीवन में कोई आवश्यक भूमिका अदा करता होगा। वैज्ञानिकों का कथन है कि ये जीन प्रारम्भ से ही आवश्यक कार्य करते होंगे, उनका विचार है कि स्थिर त्रिखंडीय तंत्र के प्रकट होने से जीवन का प्रारम्भ हुआ। इस त्रिखंडीय तंत्र के अन्तर्गत न्यूक्लिक एसिड, उर्जा परिवर्तन के लिये एक प्रकाश संश्लेषण तंत्र तथा क्रिया को तीव्र करने के लिये प्रोटीन विकर आते हैं। यह त्रिखडीय तंत्र क्लोरोप्लास्ट व माइटोकाँड्रिया या स्वयं कोशिका का पूर्वज हो सकता है। विकास के चक्र में ये प्राथमिक तंत्र कोशिका के रूप में बड़े ढांचे में परिवर्तित हो सकते हैं, जिनमें अधिकतर प्राथमिक पैत्रागतिक लक्षण गुणसूत्र में स्थानान्तरित कर दिये गये हों। यहाँ पर प्रश्न उठ सकता है कि सम्पूर्ण पैत्रागतिक लक्षण गुण सूत्र में स्थानान्तरित क्यों नही कर दिये जाते? इसका कारण बुद्धि के लिये नम्यता की आवश्यकता हो सकती है। अतः गुणसूत्रीय जीन तंत्र का महत्व किसी जीवधारी की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल नम्यता प्रदान करना है।

जो कुछ भी इस लेख में बताया गया है वह अगुण-सूत्रीय जीन के स्वभाव संरचना आदि के विषय में है। इनके रहस्योद्घाटन के लिये देश विदेश में काफी अनुसंधान कार्य हो रहे हैं जिनसे निकट भविष्य में अगुणसूत्रीय जीन के कार्यों पर विस्तृत प्रकाश पड़ने की आशा है।

● ●

सापेक्षवाद

□ महावीर प्रसाद मुर्डिया

सापेक्षवाद वैज्ञानिक जगत में बीसवीं सदी की एक महान देन समझा जाता है। इसके आविष्कर्ता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर अलबर्ट आइन्स्टीन थे। सन् 1905 में आइन्स्टीन ने विशिष्ट सापेक्षता शीर्षक एक निबन्ध लिखा जो 'भौतिक शास्त्र का वर्ष पत्र' नामक जर्मन पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध ने वैज्ञानिक जगत में अजीब हलचल मचा दी। सन् 1916 में उन्होंने अपने सिद्धांत को व्यापक रूप दिया जिसका नाम था—सामान्य सापेक्षता। सचमुच ही आइन्स्टीन का अपेक्षावाद विज्ञान के शान्त समुद्र में एक ज्वार था। उसने विज्ञान की बहुत सी बद्धमूल धारणाओं पर प्रहार कर एक नया मानदण्ड स्थापित किया। सापेक्षवाद के मान्य होते ही न्यूटन के काल से धाक जमा कर बैठे हुये गुरुत्वाकर्षण का सिंहासन डोल उठा और देश काल की धारणाओं ने भी एक नया रूप ग्रहण किया।

सापेक्षवाद के विकास का प्रारम्भ गतिशील माध्यमों से सम्बन्धित प्रकाश वैज्ञानिक तथ्यों के अध्ययन से हुआ। प्रकाश के तरंग-सिद्धान्त के विकास के साथ, वैज्ञानिकों ने यह आवश्यक समझा कि शून्य दिक को कतिपय यान्त्रिक तत्वों से सम्पन्न समझा जाए। इसलिये अनुभव किया गया कि दिक को किसी प्रकार के तत्व से निर्मित समझा जा सके। न्यूटन के समय से पहले, फ्रांसिसी दार्शनिक डेकार्टे ने भी यह तर्क प्रस्तुत किया था कि दूर होने के कारण वस्तुओं का बिलगाव ही यह प्रमाणित करता है कि उनके बीच कोई माध्यम है। 18वीं और 19वीं शताब्दी के भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के समक्ष यह स्पष्ट हो गया कि यदि प्रकाश में तरंगे होती हैं तो उनका कुछ आधार भी होगा, जैसे पानी सागर की तरंगो को पैदा करता है और हवा उन कम्पनों को जन्म देती है जिन्हें ध्वनि कहा जाता है। तब वैज्ञानिकों ने ईथर नामक एक काल्पनिक तत्व को जन्म दिया, जो उनके विचार में, समस्त दिक और पदार्थ में व्याप्त है। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व वैज्ञानिकों में ईथर का कोई स्थान नहीं था। इस ओर वैज्ञानिकों की मनीषा नहीं दौड़ी थी। किन्तु यह कैसे हो, सृष्टि के अणु-अणु पर विचार करने वाला वर्ग उसकी रचना के इस अनिवार्य अंग से अपरिचित ही बना रहे। सूर्यग्रह और तारों के बीच में जो इतना शून्य प्रदेश पड़ा है, प्रकाश किरणें बिना माध्यम के किस प्रकार विचरण कर सकती हैं? परिणामस्वरूप ईथर की कल्पना की गई। माना गया—ईथर तारों, ग्रहों और दूसरे आकाशीय पिण्डों की खाली जगह में ही नहीं भरा है, अपितु अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु के रिक्त देश में भी व्याप्त है। बाद में मेक्सवेल ने प्रकाश को एक 'विद्युत-चुम्बकीय विक्षोभ' के रूप में मान्यता प्रदान की, तब ईथर का अस्तित्व निश्चित सा हो गया।

न्यूटन के भौतिक विज्ञान का अन्तिम निष्कर्ष था—एक ब्रह्माण्ड, जो एक ऐसे अदृश्य माध्यम से सम्बद्ध है, जिसमें नक्षत्र गतिशील है और जिससे होकर प्रकाश कम्पनों के रूप में विचरता है। इसमें प्रकृति के सभी ज्ञात तत्वों के लिये एक यांत्रिक स्वरूप और आधार के लिये स्थिर ढाँचे—विशुद्ध और स्थिर दिक—की व्यवस्था थी, जिनकी न्यूटन के विश्व-विज्ञान को आवश्यकता थी। फिर भी ईथर के कारण कई समस्याएँ उपस्थित हुई, क्योंकि उसका अस्तित्व कभी प्रमाणित नहीं हो सकता

था। इस बात का पता लगाने के लिये कि वस्तुतः ईथर नाम की किसी वस्तु का कोई अस्तित्व है भी या नहीं, दो अमरीकी भौतिक विज्ञानवेत्ताओं, ए० ए० माइकेलसन और इ० डबल्यू० मोरले, ने क्लीवलैण्ड में सन् 1881 में एक भव्य परीक्षण किया।

परीक्षण का आधार था, यदि आकाशीय पिण्ड ईथर के अनन्त समुद्र में सचमुच ही तैर रहे हों तो उनकी गति का वेग जानना सहज है। मिचेलसन-मोरले के प्रयोग को समझने के लिये एक निम्न उदाहरण दिया गया है जिसमें ठीक उसी प्रकार का तर्क किया गया है। दो समान वायुयान माइक और आइक एक ही जगह से—फोटान नगर से—रवाना होकर एक दौड़ प्रतियोगिता में भाग ले रहे है। माइक यान पूर्व की ओर नूक्लीआन नगर जाकर वापस आता है। आइक यान उत्तर की ओर मेसान नगर जाकर वापस आता है। नूक्लीआन नगर मेसान नगर फोटान नगर से 500 मील दूर है। अब यदि दोनों यानों की गति 1000 मील प्रति घंटा है और दौड़ के वक्त बिल्कुल हवा नहीं है तो दोनों यान एक ही समय में दौड़ पूरी कर लेंगे।

लेकिन यदि 100 मील प्र० घं० के हिसाब से हवा पूर्व से बह रही हो तो आइक यान, माइक यान की अपेक्षाकृत जल्दी दौड़ पूरी कर लेगा। इसका कारण यह है कि हवा की 100 मी० प्र० घं० की गति के कारण, माइक यान नूक्लीआन नगर की ओर केवल 900 मी० प्र० घं० के हिसाब से ही जाता हैं। लौटते वक्त यद्यपि उसकी गति 1100 मी० प्र० घं० है लेकिन कम गति (900 मी० प्र० घं०) से ज्यादा देर तक जाना पड़ा इसलिये उसकी औसत गति 1000 मी० प्र० घं० से कम रहेगी। यह सत्य है कि आइक यान को भी इस हवा की गति से मेसान नगर जाने में कुछ बाधा रहेगी फिर भी उसकी औसत गति माइक से ज्यादा ही रहती है। उपर्युक्त उदाहरण में आइक को 1 घंटा और 18 सेकण्ड लगेंगे और माइक को 1 घंटा 36 सेकण्ड लगते हैं। इस प्रकार आइक दौड जल्दी पूरी करता है।

इसी तरह से यह तर्क किया गया कि अगर पृथ्वी वास्तव में ईथर में घूमती है तो रोशनी की एक किरण पृथ्वी की चाल के साथ-साथ दर्पण तक पहुँच कर वापस लौटने में ज्यादा समय लेगी अपेक्षाकृत उसके कि रोशनी पृथ्वी की चाल के सम्मुख पहुँचती हो। यदि ईथर पृथ्वी की गति के लिए एक भौतिक माध्यम है तो उपर्युक्त परिणाम होना जरूरी है। यह परीक्षण अमेरिका में एक बहुत सूक्ष्म यन्त्र 'व्यतिकरण' मापी द्वारा किया गया किन्तु उससे मालुम हुआ कि प्रकाश की किरणें दोनों यात्रा में बराबर समय लेती हैं। सारा परीक्षण इतनी सावधानी से आयोजित और पूरा किया गया कि इसके परिणामों में किसी तरह के संदेह की गुन्जाइश नहीं रह गयी।

माइकेलसन और मोरले के परीक्षण के कारण वैज्ञानिकों के सामने एक व्याकुल कर देने वाला विकल्प आया। उनके सामने यह समस्या थी कि वे ईथर सिद्धान्त को—जिसने विद्युत, चुम्बकत्व और प्रकाश के बारे में बहुत सी बातें बतलाई थीं—छोड़ें या उससे भी अधिक मान्य कोपरनिकन-सिद्धान्त को मानें जिसके अनुसार पृथ्वी स्थिर, नहीं गतिशील है। बहुत से भौतिक विज्ञानवेत्ताओं को ऐसा लगा कि यह विश्वाश करना अधिक आसान है कि पृथ्वी स्थिर है, बनिस्बत इसके कि तरंगें-प्रकाश तरंगें, विद्युत-चुम्बकीय तरंगें— बिना किसी सहारे के अस्तित्व में रह सकती हैं। यह एक बड़ी विकट समस्या थी— इतनी विकट कि इसके कारण वैज्ञानिक विचारधारा 25 वर्षों तक भिन्न-भिन्न रही, एक मत न हो सकी। कई नई कल्पनाएं सामने प्रस्तुत की गयीं और रद्द भी कर दी गयीं। उसपरीक्षण को मोरले और दूसरे लोगों ने फिर शुरू किया, पर नतीजा वही निकला—ईथर में पृथ्वी का प्रत्यक्ष वेग शून्य है।

स्पष्ट है कि इस विकट समस्या का समाधान करने के लिये वैज्ञानिक विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने को था। समस्या का समाधान भी अनूठे ढंग से सापेक्षवाद के सिद्धान्त ने प्रस्तुत किया। यही नहीं, इस सिद्धान्त ने नये और अकल्पनीय निष्कर्ष निकाले जिनकी

वजह से परमाणु बम और उद्जन बम का निर्माण हुआ। परमाणु शक्ति का असीम भंडार वैज्ञानिकों को प्राप्त हुआ।

सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त में गति के स्वरूप का अध्ययन किया गया और बतलाया गया कि ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई स्थिर प्रमाण नहीं है जिसके द्वारा मनुष्य पृथ्वी की निरपेक्ष गति या अन्य गतिशील प्रणाली का निश्चय कर सके। गति का अनुमान किसी दूसरी वस्तु के संदर्भ में स्थिति के परिवर्तन मात्र से किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, हम जानते हैं कि पृथ्वी 18 मील प्रति सेकण्ड की गति से सूर्य का चक्कर लगा रही है। सभी ग्रह, तारे, ज्योतिर्मालाएं और ब्रह्माण्ड की गतिशील प्रणालियाँ अबाध रूप से निरंतर स्थान परिवर्तन कर रही हैं, तो भी उनकी गतिविधियों को केवल उनकी परस्पर स्थितियों से ही समझा जा सकता है। यदि एक को छोड़कर ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ हटा लिये जाएं तो यह कोई भी नहीं बतला सकता था कि वह पदार्थ स्थिर है या शून्य में एक हजार मील प्रति घंटे की गति से चल रहा है। गति एक सापेक्षिक अवस्था में है। यदि शून्याकाश में दो राकेट एक दिशा में जा रहे हैं तो एक राकेट में बैठे हुए व्यक्ति को अपनी गति का पता दूसरे राकेट के द्वारा ही लगेगा। यदि यह दूसरा राकेट नहीं हो और प्रथम राकेट बराबर सम गति से चलता रहे तो राकेट में बैठे व्यक्ति को उसकी चाल का पता नहीं लग सकेगा। इस प्रकार हम सापेक्ष गति ही मालूम कर सकते हैं और निरपेक्ष गति जैसी कोई कल्पना नहीं कर सकते हैं। सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धांत के प्रथम नियम के अनुसार बतलाया गया कि ईथर के अस्तित्व का पता नहीं लगाया जा सकता क्योंकि एक स्थिर ईथर में निरपेक्ष गति होगी जो कि संभव नहीं है। इस प्रथम नियम ने ईथर की विकट समस्या का समाधान अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया।

सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त के दूसरे नियम के अनुसार प्रकाश का वेग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थिर है। प्रकाश के वेग पर न तो उसके उद्गम की गति का असर पड़ता है और न उसके संग्राहक की गति का। यह आश्चर्यजनक तथ्य उन दुहरे सितारों के अध्ययन से भी पुष्ट हुआ जो एक गुरुत्वाकर्षण केन्द्र का चक्कर लगाते हैं। इन गतिशील प्रणालियों के सावधानीपूर्ण विश्लेषण से यह प्रकट हुआ कि पृथ्वी के निकट आने वाले और दूर जाने वाले प्रत्येक जोड़ सितारों की प्रकाशकिरणें पृथ्वी पर पहुँचती हैं, उनका वेग एक समान ही होता है। यदि एक रेलगाड़ी 10000 मील प्रति घंटा की रफ्तार से जा रही है, तब भी प्रकाश के वेग की स्थिरता के सिद्धान्त के अनुसार उस गाड़ी पर सवार व्यक्ति प्रकाशकिरण की गति प्रति सेकण्ड पास 1,86,000 मील ही पायेगा, न अधिक न कम। एक प्रकाश किरण किसी तारे से निकल कर एक प्रेक्षक के 1,86,000 मील प्र० से० के हिसाब से ही जायगी, चाहे प्रेक्षक और तारा एक दूसरे से दूर जा रहे हैं अथवा निकट आ रहे हैं। यह एक क्रांतिकारी नियम था जो कि साधारण रूप में बुद्धिगम्य नहीं किया जा सकता था। फिर भी यह एक प्राकृतिक नियम माना गया। यदि प्रकाश का वेग स्थिर है और पृथ्वी की गति से प्रभावित नहीं होता तो सूर्य, चन्द्रमा, सितारे या नक्षत्रों से भी प्रभावित नहीं होगा। सभी एकरूप गतिशील प्रणालियों के लिये प्रकृति के नियम समान हैं। इसमें गैलिलियों का सापेक्ष सिद्धान्त भी सामिल है जिसमें कहा गया था कि सभी एकरूप गतिशील प्रणालियों के लिये यांत्रिक नियम एक समान हैं। किन्तु यह अधिक विस्तृत है। इसमें यांत्रिक नियमों के साथ-साथ प्रकाश को संचालित करने वाले व अन्य विद्युत चुम्बकीय नियमों का भी समावेश है।

विशिष्ट सापेक्षता के अनुसार ब्रह्माण्ड एक अस्थिर स्थान है। तारे, तेजोमेघ, ज्योतिमंडल और बाह्य आकाश की समस्त गुरुत्वाकर्षण प्रणालियाँ निरन्तर गतिशील है। लेकिन उनकी गतिविधियाँ उनके परस्पर संबन्धों के रूप में ही वर्णन की जा सकती हैं क्योंकि दिक में न दिशाएँ हैं और न सीमाएँ हैं। प्रकाश को मापदण्ड मानकर किसी भी प्रणाली का सही वेग मालूम करना एक वैज्ञानिक के लिये निरर्थक है, क्योंकि प्रकाश का वेग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

में स्थिर है ।

निरपेक्ष दिक के साथ-साथ, आइन्स्टीन ने विशिष्ट सापेक्षता में निरपेक्ष काल की धारणा का भी परित्याग किया। इस धारणा के अनुसार, काल अनादि भूत से अनन्त भविष्य के बीच की एक स्थिर अपरिवर्तनीय, अप्रभावित और सर्वव्यापक काल-धारा है। सापेक्षवाद के सिद्धान्त में होने वाली गूढ़ता अधिकांशत: इसी कारण उत्पन्न हुई है कि मनुष्य ने काल के ज्ञान को, रंग के ज्ञान की तरह, अनुभूति के एक रूप में नहीं माना है। जिस तरह आंख के अभाव में रंग का कोई अस्तित्व नहीं है उसी तरह किसी घटना के अभाव में दिन और घंटे का भी कोई अस्तित्व नहीं है। जिस प्रकार से दिक् भौतिक पदार्थों की एक सम्भावित क्रम वद्धता है उसी प्रकार काल भी घटनाओंकी सम्भावि क्रमवद्धता है।

अपने अनुभवों का एक घड़ी या कलेन्डर से सम्बन्ध जोड़ कर हम समय को एक भौतिक भाव प्रदान करते हैं। फिर भी घड़ी अथवा कलेन्डर में व्यक्त समय का अन्तर यथार्थ नहीं है। सभी घड़ियां और प्रणाली के अनुसार बनाई जाती हैं।

जो हम एक घन्टा कहते है वह वास्तव में दिक का एक मापदण्ड है। इस नैसर्गिक मंडल की प्रत्यक्ष दैनिक गति का 15 अंशों का वृत्त खन्ड है। हमारा एक एक वर्ष, सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की गति का माप-दण्ड है। बुध के निवासी की समय की धारणा बिलकुल अलग होगी क्योंकि बुध ग्रह हमारे यहां के 88 दिनों में सूर्य का चक्कर लगा लेता है। वहां एक वर्ष केवल 88 दिन का ही होता है। यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि दूर सितारों में क्या हो रहा है तो हमें और भी विस्मयकारक परिणाम प्राप्त होंगे। पृथ्वी से निकटतम तारा 'अल्फा सेन्टरी' 4 प्रकाश वर्ष दूर है और यदि रेडियो के द्वारा इस तारे से सम्बन्ध स्थापित करें तो अभी दिखाई पड़ने वाले तारे की वस्तु–स्थिति सन् 1960 की होगी। यह जानने के लिये कि अभी वहाँ पर क्या हो रहा है हमें 1968 तक ठहरना पड़ेगा।

इस परिस्थिति के उपरान्त भी पृथ्वी के मनुष्य के लिये यह मानना कठिन है कि इस क्षण की बात जिसे वह अभी को संज्ञा देता है समस्त ब्रह्माण्ड पर लागू नहीं होती। एक वैज्ञानिक जिसका कार्य प्राकृतिक घटनाओं की भौतिक रूप में चर्चा करना है वह 'यह' यहाँ' और 'अब' जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। उसके लिये दिक् और काल सम्बन्धी धारणाएं जब घटनाओं और प्रणालियों के सम्बन्धों की व्याख्या हो जाती है, केवल तभी भौतिक महत्व रखती है। और उसके लिये यह आवश्यक है कि गति के दुरूह स्वरूपों जैसे भौतिक यांत्रिकता, चल वैद्युत से सम्बन्धित पदार्थों के बारे में किसी निश्चय पर पहुँचने के लिये वह एक प्रणाली के परिमाणों के साथ दूसरी प्रणाली के परिमाणों का सम्बन्ध निश्चित करे! इन सम्बन्धों की व्याख्या करने वाले गणित के नियमों को रूपान्तर के नियम कहा जाता है। एक व्यक्ति जहाज के डेक पर टहल रहा है। यदि वह डेक पर तीन मील प्रति घन्टे की गति से आगे बढ़ता है और जहाज की गति 12 मील प्रति घन्टे है तो उस व्यक्ति की गति सागर की गति की तुलना में 15 मील प्र० घं० होगी। यदि वह उसी गति से पीछे की ओर चलता है तो उसकी गति सागर की गति की तुलना में 9 मील प्र० घं० होगी। वेगों का यह योग एक साधारण अनुभव की बात है लेकिन प्रकाश सम्बन्धी समस्याओं में इसके प्रयोग में बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं।

महान डच भौतिक शास्त्री एच० ए० लारेन्ज के रूपान्तर सिद्धान्त का मौलिक प्रयोग यद्यपि अब केवल वैज्ञानिक इतिहासकारों तक ही सीमित है, तथापि सापेक्षवाद के गणित विषयक ढाँचे के एक अंग के रूप में भी इसका अस्तित्व है। यह सिद्धांत क्या बतलाता है, यह जानने के लिये पहले वेगों के प्राचीन यौगिक सिद्धांत के दोषों पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

एक लम्बे रेल-पथ पर जोर का तूफान आया और दो बिजलियाँ एक साथ रेल-पथ के दो स्थल "अ" "ब" पर गिरीं। एक साथ से क्या तात्पर्य है? इसे स्पष्ट करने के

लिये मान लीजिये अ और ब के बीचोबीच एक व्यक्ति बैठा है। उसके पास एक शीशा है कि जिससे वह बिना आँख उठाये 'अ' और 'ब' को देख सकता है। अब यदि बिजली की चमक शीशे में एक ही समय दिखाई देती है तो इसेएक साथ की संज्ञा दी जायगी। अब उस पथ पर गाड़ी आती है और एक अन्य पर्यवेक्षक गाड़ी के उपर वैसा ही एक शीशा लिये बैठा है। संयोगवश जब वह किनारे वाले पर्यवेक्षक के पास पहुँचता है तभी 'अ' और 'ब' स्थलों पर बिजली गिरती है। उसे दोनों बिजलियां एक साथ गिरती नहीं दिखाई देंगी क्योंकि गाड़ी 'ब' स्थल से 'अ' स्थल की ओर बढ़ रही है। 'ब' पर गिरने वाली बिजली उसे 'अ' पर गिरने वाली बिजली की अपेक्षा बाद में दिखाई पड़ेगी। इस सन्देह को दूर करने के लिये ऐसा माना जा सकता है कि गाड़ी प्रकाश की गति से दौड़ रही है। ऐसी अवस्था में 'ब' चमक यद्यपि 'अ' चमक के वेग की होगी, पर शीशे में कभी नहीं दिखाई देगी क्योंकि वह गाड़ी को नहीं पकड़ सकेगी। इसलिये गाड़ी का पर्यवेक्षक तो यही मानेगा कि केवल एक ही बिजली गिरी है। इस प्रकार बिजली की चमकें स्थिर पर्यवेक्षक को भले ही एक साथ दिखाई पड़ें, गाड़ी में बैठे पर्यवेक्षक को एक साथ नहीं दिखाई पड़ेंगी।

इस प्रकार बिजली की चमकों का विरोध सापेक्षवाद के अत्यधिक विलक्षण और कठिन सिद्धांतों में से एक को नाटकीय स्वरूप में प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत है— समकालीनता की सापेक्षता। इससे व्यक्त होता है कि मनुष्य इस बात की आशा नहीं कर सकता कि अभी की उसकी आत्मगत भावना ब्रह्माण्ड के सभी क्षेत्रों में लागू होती है। प्रत्येक संदर्भ वस्तु या सहनिर्देशक प्रणाली का अपना विशेष काल होता है। अतः जब तक हमें यह नहीं मालूम कि किस काल का किस संदर्भ वस्तु से सम्बन्ध है किसी घटना के बारे में बोलना व्यर्थ है। इसलिये वेगों के योग संबन्धी प्राचीन सिद्धान्त का दोष उसकी इस अव्यक्त धारणा में है कि किसी घटना की अवधि उसकी संदर्भ प्रणाली की गति की अवधि से स्वतन्त्र होती है। काल की तरह दूरी भी एक सापेक्ष कल्पना है और संदर्भ प्रणाली की गति से मुक्त दिक के अन्तर जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। जो वैज्ञानिक प्रकृति के तत्वों की सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सभी प्रणालियों के लिये व्याख्या करना चाहते हैं, उन्हें काल और दूरी के मापों को परिवर्तनीय मानना होगा। लारेन्ज के रूपान्तर सम्बन्धी समीकरण भी यही इंगित करते हैं। वे प्रकाश के वेग को एक ब्रह्माण्डीय स्थिरांक मानते हैं। लेकिन काल और दूरी के सभी नापों को संदर्भ प्रणालियों के वेग के अनुसार संशोधित करते हैं। सापेक्षता के सिद्धांत ने एक अन्य धारणा को जन्म दिया—लारेञ्ज के रूपान्तर के संदर्भ में प्रकृति के नियम सभी प्रणाली में अपनी एकरूपता को स्थापित करते हैं। इस तरह विशुद्ध गणित की भाषा में व्यक्त किये जाने पर वैज्ञानिक प्रकृति के तत्वों की व्याख्या करने में सुविधा का अनुभव करता है लारेञ्ज के रूपान्तर सम्बन्धी समीकरणों में निहित संदेश के अनुरूप ही आइन्स्टीन ने भौतिक ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में कई नई और असाधारण सच्चाइयों का रहस्योद्घाटन किया। सापेक्षवाद के सिद्धांत को अवास्तविक देखने का वस्तुतः कारण यह नहीं कि उसके निष्कर्ष समझे नहीं जाते बल्कि यह है कि उन पर सहसा विश्वास नहीं होता।

यदि 'अ और ब' में सापेक्ष गति है तो 'अ' को 'ब' की लम्बाई संकुचित प्रतीत होगी।

$$l' = l\sqrt{\left(1 - \frac{V^2}{c^2}\right)}$$

l 'ब' की लम्बाई l' लम्बाइयां जो 'अ' को मालूम पड़ेगी V सापेक्ष गति और C प्रकाश की गति। उदाहरण के तौर पर यदि 'अ' और 'ब' दोनों की लम्बाई 20 फीट है और दोनों एक दूसरे से 93000 मील प्रति सेकेण्ड (प्रकाश की गति से आधी गति) से पृथक जा रहे हैं तो 'अ' को ब की लम्बाई 17 फीट ही मालूम पड़ेगी। यदि उनमें सापेक्ष गति 1,61,000 मील प्रति सेकण्ड है तो उक्त समीकरण के द्वारा ब, की लम्बाई केवल 10 फीट ही 'अ' को दिखाई देगी। इसी प्रकार एक घड़ी अपनी

गतिशील प्रणाली की गति बढ़ने से सुस्त हो जाती है। जितनी अधिक गति उतना अधिक धीमापन । प्रकाश के सम्पूर्ण वेग के साथ जाने वाली वस्तु सिकुड़ कर शून्य के बराबर हो जायगी और घडी पूर्णतः रुक जायगी। यदि किसी वस्तु का प्रकाश के वेग से, थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय, अधिक है अर्थात V गति C से अधिक है तो लम्बाई का चिह्न ऋण (–) होगा जो यह बतलाया है कि वस्तु का अब कोई अस्तित्व नहीं रहा । इससे यह निष्कर्ष निकला है कि प्रकाश का वेग ब्रह्माण्ड का सर्वाधिक तीव्र वेग है। प्रकाश से अधिक गति किसी वस्तु की नहीं हो सकती । विशिष्ट सापेक्षवाद की यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनकदेन है।

पहले पहल इन तथ्यों को समझना कुछ कठिन ही लगता है। लेकिन यह केवल इसलिये कि विशिष्ट भौतिक विज्ञान ने अनुचित रूप से यह धारणा स्थिर कर ली थी कि कोई पदार्थ—चाहे वह गतिशील हो या स्थिर—समान विस्तार को कायम रखता है और एक घड़ी चाहे वह गतिशील अवस्था में हो या स्थिर अवस्था में अपनी ताल-बद्धता एक समान रखती है। एक मोटर गाड़ी, एक विमान, या राकेट में किसी घड़ी के सुस्त होने को नहीं नापा जा सकता। ऐसा तभी संभव है, जब— प्रकाश के समान वेग उपस्थित हो—ऐसी स्थिति में ही सापेक्षिक प्रभावों का अनुभव किया जा सकता है । इस प्रकार, सापेक्षता विशिष्ट भौतिक विज्ञान का खण्डन नहीं करती। यह पुराने सिद्धांतों को केवल एक सीमित क्षेत्र में मानती है—अर्थात उनका सम्बन्ध केवल मनुष्य के सामान्य अनुभवों से होता है। आज का वैज्ञानिक, जो परमाणु के तीव्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त भीषण वेगों अथवा दिक् और काल की अनन्तता का पता लगाने में व्यस्त है, न्यूटन के पुराने नियमों को अपर्याप्त मानता है, लेकिन सापेक्षता से उसे हर मामले में प्राकृति का सम्पूर्ण और सही विवरण प्राप्त होता है।

भौतिक ब्रह्माण्ड की यांत्रिकता के व्यक्त करने के लिये तीन परिमाणों की आवश्यकता पड़ती है—काल दूरी और राशि। चूंकि काल और दूरी सापेक्षिक परिमाण हैं, इसलिए ऐसा सोचा जा सकता है कि किसी वस्तु की राशि उसकी गति के अनुसार विभिन्न होती है और वास्तव में, सापेक्षता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवहारिक परिणाम इसी सिद्धांत राशि की सापेक्षता से प्रकट हुए हैं।

वेग के साथ वस्तु की रशि भी बढ़ती है।

$$M = \frac{Mo}{\sqrt{\left(1-\frac{V^2}{c^2}\right)}}$$

वस्तु की राशि जब वस्तु का वेग V है, mo स्थिर राशि का द्योतक है और C प्रकाश का वेग है । इस समीकरण में यदि V=C हो तो वस्तु की राशि अनन्त होगी। क्योंकि अनन्त राशि सम्पन्न वस्तु गति का अनन्त रूप से प्रतिरोध करेगी। अतः कोई भी भौतिक वस्तु प्रकाश की गति से नहीं चल सकती । एक गतिशील वस्तु की राशि गति की बृद्धि के साथ बढ़ती है, और चूंकि गति शक्ति का एक रूप हो, एक गतिशील वस्तु की बर्द्धित राशि उसकी बर्द्धित शक्ति से उत्पन्न होती है । संक्षेप में, शक्ति में राशि होती है । राशि और गति सम्बन्धी समीकरण निम्न प्रकार है ।

$$E = mc^2$$

E = शक्ति, m = राँशि, c = प्रकाश का वेग।

इस सिद्धान्त ने बताया कि छोटी राशि अत्यन्त अधिक शक्ति का स्रोत हो सकती है।

सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धांत ने वेगों के संयोग के बारे में भी अद्भुत व्याख्या दी। यदि अ और ब प्रत्येक की गति 1,00,000 मील प्रति सेकण्ड है तो सामान्य रूप से यही माना जायगा कि 'अ' की गति ब की गति की अपेक्षा 2'00,000 मील है (यदि वे दोनों एक दूसरे के निकट आ रहे हैं) लेकिन सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार उनकी गति 1,55,000 मील होगी।

$$V_{BA} = \frac{V_A + V_B}{1 + \frac{V_A V_B}{c^2}}$$

V_A और V_B 'अ' और 'ब' की गतियाँ हैं

जब कभी आइन्स्टीन के सिद्धांतों की परीक्षा की गई, उनका औचित्य पूर्णतः सिद्ध हुआ। सन् 1936 में बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज के एच० आई० आइव्स ने एक परीक्षण किया, जिससे कालान्तर के सापेक्षित ह्रास का उल्लेखयोग्य प्रमाण मिला। एक विकीर्णात्मिक परमाणु को एक प्रकार की घड़ी माना जा सकता है, क्योंकि वह एक निश्चित आवृति और तरंग दैर्ध्यवाला प्रकाश फेंकता है जो एक स्पेक्ट्रोस्कोप की सहायता से बड़ी सूक्ष्मता से मापाजा सकता है। आइव्स ने उच्च वेग सहित गतिशील उद्जन परमाणुओं द्वारा छोड़े गये प्रकाश की, स्थिर उद्जन परमाणुओं द्वारा छोड़े गये प्रकाश के साथ तुलना की और पाया कि गतिशील अणुओं के प्रकम्पन की आवृति कम होगी। मानव हृदय भी एक तरह की घड़ी है। सापेक्षता के अनुसार, अधिक गति के साथ हृदय घड़ी धीमी पड़ जायगी और एक स्थिर पर्यवेक्षक की दृष्टि में उसकी उम्र धीमी गति से बढ़ती प्रतीत होगी। अतएव यह सम्भव हैं कि भविष्य में ब्रह्माण्ड का अन्वेषण करने वाला कोई व्यक्ति परमाणु चालित राकेट पर जिसकी गति 1,67,000 मील प्रति सेकण्ड हो, चढ़ कर यात्रा करने के उपरान्त, दस वर्ष बाद' पृथ्वी पर जब लौटेगा, तो अपनी उम्र में केवल पाँच वर्ष की वृद्धि का अनुभव करेगा।

सन् 1902 में काफमेन जब रेडियम से निकली बीटा किरणों का अध्ययन कर रहे थे तो उन्होंने पाया कि जितनी तेज गति से बीटा किरणें निकलतीं थीं उतनी ही अधिक उनकी राशि में वृद्धिहोती थी। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य ही समझा गया। सापेक्षवाद के वेग के साथ राशि सम्बन्धी समीकरण से उन्होंने पाया कि गति के साथ राशि में वृद्धि उतनी ही होती थी जितनी कि उक्त समीकरण के द्वारा व्यक्त की गयो थी। इसी प्रकार सोमरफील्ड की परमाणु वृत सिद्धान्त में भी गति के साथ राशि वृद्धि का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। सोमरफील्ड ने बताया कि इलेक्ट्रान कण नाभिक के चारों ओर दीर्घवृतात्मक वृत में घूमते हैं। सन् 1609 में केपलर ने सिद्ध किया कि जब कोई ग्रह सूर्य का चक्कर लगाता है तो उसकी गति कम और ज्यादा होती है। यह परिवर्तन वृत के आकार पर निर्भर करता है। अर्थात जब ग्रह सूर्य के निकट होगा तो उसका वेग अधिक होगा और दूर जाने पर वेग कम हो जायगा क्योंकि गति में परिवर्तन होता है तो राशि में भी परिवर्तन होगा (राशि वृद्धि समीकरण के अनुसार)। बीटा किरणों की गति भी तीव्र होती है अतएव राशि में वृद्धि का ठीक-ठीक पता लगता है। गणित के आधार पर सोमरफील्ड ने बताया कि इस प्रकार इलेक्ट्रान एक रोजेट पथ पर घूमेगा जिसका असर एक स्पेक्ट्रास्कोप के द्वारा विभाजित रेखाओं के अध्ययन से सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार की विभाजित रेखाएँ पाशेन ने सन् 1916 में सर्व प्रथम प्राप्त की जब वे हीलियम के स्पेक्ट्रम का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार राशि में वृद्धि के प्रभाव की पुष्टि होती है।

विशालकाय परमाणु भंजक यंत्रों जो कि परमाणु के नाभिक की बनावट का पता लगाने हेतु बनाये गये हैं, के द्वारा भी गति के साथ राशि में वृद्धि का प्रमाण मिलता है। इन यंत्रों का मुख्य कार्य विभिन्न कणों को तीव्र गति प्रदान करना है। अधिक गति के साथ राशि में भी वृद्धि होती है। सन् 1912 में ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में प्रोटान कणों को 1,77,000 मील प्रति सेकण्ड की गति प्रदान की गई और परिणामतः राशि में तिगुनी वृद्धि हुई। जून 1952 में केलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी में इलेक्ट्रान कणों को 9999999 c(c=प्रकाश का वेग) गति तक प्रदान की गई और इलेक्ट्रान्स में राशि की वृद्धि 900 गुना अधिक हुई।

$E = mc^2$ समीकरण भौतिक विज्ञान के अनेक अति प्राचीन रहस्यों का समाधान करता है। यह बतलाता है कि कैसे रेडियम और यूरेनियम जैसे रेडियो-सक्रिय तत्व भारी वेग से कणों को विकीर्ण करते हैं और लाखों वर्षों तक वैसा करने की क्षमता रखते हैं। यस बतलाता है कि कैसे सूरज और सभी तारे अरबों वर्षों तक प्रकाश

और ताप विकीर्ण करते रह सकते हैं । यदि साधारण दाह क्रिया (जैसे कोयले इत्यादि के जलने से) के द्वारा सूरज की शक्ति व्यय होती, तो यह पृथ्वी युगों पूर्व ही घोर अंधकार में पड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो गयी होती । यह नाभिकीय संलग्न प्रक्रिया ही सूर्य और सितारों की अनन्त शक्ति का स्रोत है और इस गूढ़ रहस्य को भी प्रसिद्ध समीकरण $E=mc^2$ के द्वारा भलीभाँति समझा जाता है । उक्त समीकरण के अनुसार एक थोड़ी सी राशि अनन्त शक्ति के रूप में परिवर्तित की जा सकती है । एक ग्राम पदार्थ यदि पूर्ण रूप से शक्ति में परिवर्तित किया जा सके तो उतनी ऊर्जा देगा जितनी 3 अरब ग्राम कोयले के जलने से प्राप्त होगा । साथ ही यह प्राकृतिक यथार्थता के सम्बन्ध में कुछ मूलभूत सच्चाइयों को भी प्रकट करता है । सापेक्षवाद से पहले वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड को दो स्पष्ट तत्वों-पदार्थ और शक्ति से सम्पन्न जहाज के रूप में माना था । इनमें से पदार्थ को निष्क्रिय अवलोकन योग्य और राशि नामक तत्व से व्याख्या के योग्य माना था' जब कि शक्ति को सक्रिय अदृश्य और राशि विहीन स्वीकार किया गया था । लेकिन उक्त समीकरण के अनुसार राशि संगठित शक्ति ही है । दूसरे शब्दों में, पदार्थ शक्ति है । और शक्ति पदार्थ है । इन दोनों का अन्तर केवल अस्थायी ढंग का है ।

इस सिद्धान्त के प्रकाश में प्रकृति की अनेक पहेलियाँ सुलझी हैं । पदार्थ और विकिरण की रहस्यमयी परस्पर क्रीडा, जो कभी तो कणों का समूह प्रतीत होती हैं और कभी तरंग अधिक समझने योग्य बन जाती है। पदार्थ की इकाई और विद्युत की इकाई के रूप में विद्युत-अणु की दोहरी भूमिका, तरंगीय विद्युत अणु, फोटोन, पदार्थीय ब्रह्माण्ड — ये सब पहेली के रूप में कम प्रतीत होते हैं ! ये सभी धारणाएँ प्राकृतिक यथार्थता के केवल विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या करती है और यह प्रश्न करने का अवसर नहीं देतीं कि उनमें से कोई वस्तुतः क्या है ? पदार्थ और शक्ति परस्पर परिवर्तनीय हैं । यदि पदार्थ अपनी राशि को त्याग कर प्रकाश की गति के साथ विचरण करता है, तो हम इसे विकिरण या शक्ति कहते हैं । ठीक इसी तरह, यदि शक्ति अपने को जमा कर जड़ बन जाती है तो हम उसकी राशि का निश्चय कर लेते हैं तो उसके पदार्थ के नाम से पुकारते हैं । तब तक विज्ञान उनके क्षणिक तत्वों और पर्थिव मनुष्य के अवलोकन से उनके स्पर्श का ही पता लग सका था । परन्तु 16 जुलाई 1945 से परमाणु बम के विस्फोट द्वारा, मनुष्य दोनों को एक दूसरे में परिवर्तित करने में समर्थ हो गया ।

प्रमात्रा-सिद्धान्त महान भौतिक-श्रोडिंगर की तरंग यांत्रिकी यद्यपि, परमाणु की रचना की अधिकतम गुत्थियों को समझने में सहायक हुई फिर भी सापेक्षवाद के अनुसार वह असंतोषजनक ही थी क्योंकि उसमें दिक और काल सम्बन्धी यथार्थता का सही अंकन नहीं किया गया था । इलेक्ट्रान की सापेक्षीय गति के आधार पर डिरेक ने सन् 1928 में अपना प्रसिद्ध समीकरण प्रस्तुत किया जिसमें वे पुराने दोष नहीं थे और जिसके द्वारा इलेक्ट्रान स्पिन का पता चला । डिरेक के अनुसार एक इलेक्ट्रान; जिसका विराम द्रव्यमान (Rest mass) m_0 है, दिक में और संवेग (Momentum) P है उसकी शक्ति E निम्न होगी ।

$+\sqrt{(P^2 c^2+m_0^2 c^4)}$ या

$-\sqrt{(P^2c^2+m^2_0 c^4)}$

इस आधार पर ऋण राशि की कल्पना की गई और के अस्तित्व का पता चला और सन्1932 में ब्लेकेट और एन्डरसन के द्वारा पाजिट्रान का अस्तित्व सिद्ध हुआ । इसी प्रकार प्रति प्रोटान, प्रति न्यूट्रान और अनेक कणों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण गवेषणा हुई ।

फिर भी मौलिक रहस्य बच जाता है। धारणाओं के एकीकरण—सभी पदार्थों का तत्वों के रूप में और फिर कणों के रूप में साक्षेसिकरण, शक्तियों का शक्ति की एकिक धारणा में परिवर्तन और पदार्थ तथा शक्ति का एक मौलिक परिमाण में अल्पीकरण की दिशा में विज्ञान की सम्पूर्ण प्रगति किस लक्ष्य की ओर हो रही है, यह अब भी अज्ञात है । राशि शक्ति तत्व का सार

क्या है ? प्राकृतिक यथार्थता के किस स्तर का उद्घाटन विज्ञान करना चाहता हैं ? इस तरह प्रमात्रा सिद्धान्त की तरह ही सापेक्षवाद भी मनुष्य की बुद्धि को न्यूटन के ब्रह्माण्ड से बहुत दूर ले जाता है। न्यूटन का ब्रह्माण्ड दिक और काल में अच्छी तरह जड़ जमाये हुए है और किसी बड़े सही और व्यवस्था योग्य यंत्र की तरह काम कर रहा है। सापेक्षवाद के गति सम्बन्धी नियम, राशि, दूरी और काल मौलिक, सिद्धान्त और इन सिद्धान्त के आधारों पर निकाले गये निष्कर्ष अनोखे और क्रान्तिकारी हैं।

साधारण सापेक्षता

न्यूटन के अनुसार गुरुत्वाकर्षण अपनी शक्ति का प्रयोग किसी वस्तु की जड़ता के अनुपात में ही करता है और यही कारण है कि सभी पदार्थ, अपनी जड़ता की मात्रा से प्रभावित हुए बिना समान गति से नीचे गिरते हैं। इस उल्लेखनीय संयोग, गुरुत्वाकर्षण और जड़ता का संतुलन, को विश्वास के आधार पर स्वीकार किया गया था, लेकिन न्यूटन के बाद के तीन सौ वर्षो तक इसे न तो कभी समझा गया और न इसकी व्याख्या ही की गई। साधारण सापेक्षता का मुख्य आधार है गुरुत्वाकर्षण और जड़ता की समानता का सिद्धान्त। यह सिद्धान्त यह बतलाता है कि जड़ शक्तियों (वेग, पलायन, केन्द्र त्यागी शक्ति, आदि) द्वारा उत्पन्न गति को गुरुत्वाकर्षण-शक्ति द्वारा उत्पन्न गति से पृथक् करने का कोई उपाय नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार गुरुत्वाकर्षण की पहेली और निरपेक्ष गति की समस्या का भी अनूठा समाधान हुआ। एक ऊँची इमारत के अन्दर एक एलिवेटर (लिफ्ट की तरह का यंत्र नीचे गिर रहा है। एलिवेटर के अन्दर कुछ भौतिक विज्ञानवेता है। वे अपनी जेबों से फाउन्टेनपेन, सिक्के इत्यादि निकालते हैं और अपने हाथ में से छोड़ देते हैं। फाउन्टेनपेन, सिक्के इत्यादि उन लोगों को बीच में ही लटके दिखाई पड़ते हैं क्योंकि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार, वे सब के सब एलिवेटर और वैज्ञानिकों सहित, समान गति के नीचे गिर रहे है। अब यदि इसे माना जाय कि एलिवेटर के शीर्ष भाग में एक तार बंधा है और कोई अदृश्य शक्ति उस तार को खींचना शुरू करती है और एलिवेटर ऊपर उठता है। अब अन्दर के लोगों को यह अनुभव होता है कि उनके पैरों पर फर्श का दबाव पड़ रहा है और वस्तुएँ हाथ से छोड़ने पर नीचे गिरती दिखाई देंगी। एलिवेटर से बाहर स्थित पर्यवेक्षक शीघ्र ही इस शक्ति के रूप में पहचान लेंगे लेकिन उसके अन्दर के व्यक्ति, इसे गुरुत्वाकर्षण की शक्ति ही मानेंगे। गति या दिशा के परिवर्तन से उत्पन्न दूसरे जड़ प्रभावों का भी सम्बन्ध इसी तरह परिवर्तनशील गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से जोड़ा जा सकता है अतएव सापेक्षता की मूल प्रस्तावना सत्य ठहरती है, गति के सम्बन्ध में—चाहे वह एक रूप हो या बहुरूपी हो—कोई भी निश्चिय किसी संदर्भ प्रणाली की सहायता से ही किया जा सकता है, निरपेक्ष गति का कहीं अस्तित्व नहीं है।

आइन्स्टीन का गुरुत्वाकर्षण न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण से सर्वथा भिन्न है। यह कोई शक्ति नहीं है। गुरुत्वाकर्षण जड़ता का एक भाग मात्र है। सितारों और ग्रहों की गतिविधियाँ उनकी स्वभावगत जड़ता से उत्पन्न होती है और वे जो मार्ग अपनाते हैं, वे दिक के वृत्तीय तत्वों द्वारा निर्धारित होते हैं। यद्यपि यह कुछ अव्यावहारिक सा प्रतीत होता है, तथापि इस धारणा को त्यागने के साथ ही भौतिक वस्तुएँ शून्य में लाखों मील की दूरी तय करके एक दूसरे पर भौतिक शक्ति मूलक प्रभाव डालती है, यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। न्यूटन के समय से ही दूर कार्य प्रभाव के इस सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों को परेशान कर रखा था। उदाहरण के लिये विद्युत और चुम्बकीय गुणों को समझने में इसने खास तौर पर बाधा डाली। अब वैज्ञानिक यह नहीं कहते कि चुम्बक किसी लोहे के टुकड़े को किसी रहस्यपूर्ण शक्ति से आकर्षित करता है। इसके बजाय अब वे कहते हैं कि चुम्बक अपने आसपास के वातावरण में एक खास प्राकृ-

तिक अवस्था जिसे वे चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं—उत्पन्न कर देता है और यही क्षेत्र लोहे को अपने गुणों से प्रभावित करके उसे एक खास तरह का आचरण करने को बाध्य कर देता है।

शक्ति में राशि होती है $\left(m = \frac{E}{c^2}\right)$ चूँकि प्रकाश शक्ति का एक रूप है इसलिये प्रकाश को गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से प्रभावित होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य के पार्श्ववती तारों का प्रकाश सुरज के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र को पार करते समय सूरज की ओर झुका होना चाहिए। अतः उन सितारों की आकृतियाँ पृथ्वी पर के पर्यवेक्षकों को आकाश में अपने स्थानों से बाहर की ओर हटी हुई प्रतीत होंगी। 29 मई 1929 के सूर्य-ग्रहण के फोटो लेने के बाद चित्र विकसित करने पर प्रकाश का स्वलन 1.64 सेकण्ड साबित हुआ। यह यंत्रों के विशुद्धता को लक्ष्य में रख बिलकुल अनुकूल निकला।

काल एक अग्राह्य परिणाम है, चतुर्विस्तारात्मकदिक-काल-अखन्डता का कोई चित्र या नमूना तैयार कर सकना संभव नहीं। यदि सौर प्रणाली के परे, आकाश गंगा के सितारों से परे मेघों और समूहों के परे एवं शून्य में प्रज्ज्वलिक ज्योतिर्मालाओं के परे के ब्रह्माण्ड को समझना है तो उसे इन सबको आकाश की त्रिविस्तारात्मकता और काल के एक विस्तार की अखण्डता के रूप में देखना पड़ेगा। विज्ञान की आकांक्षा के अनुकूल, ब्रह्माण्ड की किसी भी वास्तविक-व्याख्या में, काल विस्तार को दिक विस्तार से केवल उस हद तक ही अलग किया जा सकता है, जितना एक मकान या वृक्ष की चौड़ाई और मोटाई को लम्बाई से। संसार एक दिक-काल अखण्डता है। सारा यथार्थ दिक और काल में निहित है और ये दोनों अविभाज्य हैं। काल की सारी पैमाइशें वस्तुतः दिक की पैमाइशें हैं। और इसी तरह दिक की पैमाइशें काल की पैमाइशों पर निर्भर करती है। एक नक्षत्र विज्ञानवेता टेलिस्कोप से झाँकता है तो केवल दिक में बाहर की ओर नहीं देखता, बल्कि पीछे मुड़ कर काल पर भी नजर डालता है। उसके सूक्ष्मग्राही केमरे 10 करोड़ प्रकाश वर्ष दूरस्थ ब्रह्माण्डों की चमक देखते हैं और 10 करोड़ प्रकाश वर्ष पहले से वे दूर हट रही हैं।

संदर्भ

ये विचित्र खाद्य रुचियाँ

□ । कलित

मेढक—न्यूसाउथ वेल्स में अमरीकी बुल मेढक से रुचिकर व्यंजन बनाये जाते हैं और वहाँ के वासियों का विश्वास है कि मेढक में पर्याप्त पोषण-तत्व पाये जाते हैं। मेढक खाने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। कनाडा के मांट्रियल शहर में 5 लाख डालर के मेढक प्रतिवर्ष खाद्य के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसा विश्वास हैं कि हरा मेढक अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। कहा जाता है कि सर्व प्रथम इटली के पादरियों ने मेढकों के खाने का प्रचार किया। इटली तथा स्विटजरलैंड के लाखों किसान आज भी मेढक पकड़ पकड़ कर बेचते हैं। मेढक पकड़ने के लिये रात में तालाबों के किनारे रंग-बिरंगा प्रकाश किया जाता है। आस्ट्रेलिया में मेढक का व्यापार करने वाली अनेकों बस्तियाँ हैं।

ऐसा समाचार है कि हमारे देश के दक्षिणी भागों में तमाम मेढक पकड़ कर फ्रांस भेजे जाते हैं जहाँ उनकी टाँगों से विशिष्ट व्यंजन तैयार किये जाते हैं जिनका पर्याप्त सम्मान है।

कुत्ता—हमारे देश में कुत्ते के मांस को कोई नहीं खाता किन्तु विश्व के अनेक स्थानों में छोटे-छोटे पिल्लों के मांस को प्राथमिकता प्राप्त हैं।

बन्दर—हमारे देश में बन्दर पूज्य हैं। वह भले ही हानि पहुँचावे किन्तु कोई भी मार करके इसका मांस नहीं खाता। दक्षिणी अमरीका में बन्दर के मांस को अत्यन्त स्वादिष्ट एवं बलयुक्त माना है और यह वहाँ का रुचिपूर्ण भोज्य पदार्थ है।

मगर—अफ्रीका के लोग मगर के मांस को खाते हैं। भारत में केवट (धींव जाति के लोग) नदियों से मगर का शिकार करते हैं और उसे काट-काट कर खाते हैं। कछुआ को भी खाया जाता है।

छिपकली—कितनी घृणित होती है छिपकली। साथ ही विषैली भी। यदि खाने में छिपकली गिर पड़े या इसका मूत्र मिल जाय तो उस खाने को फेंक दिया जाता है। किन्तु बर्मा में छिपकली को चाव से खाया जाता है। कछुड़ लोग छिपकली का अचार बनाते हैं।

साँप—जापान तथा हांगकांग में सभी प्रकार के सर्पों को खाया जाता है। इनका माँस स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्य-वर्द्धक होने के साथ ही गठिया रोग को दूर करने वाला बताया जाता है। केवल हाँगकाँग में प्रत्येक ऋतु में कई लाख सर्प खाने के काम आते हैं। ये सर्प चीन, फारमोसा तथा श्याम देश से आयात किये जाते हैं। जापान में अनेक "सर्पशालाये" हैं जहाँ प्रति वर्ष लाखों सर्प बेचे जाते हैं। कालिया तथा करैत साँप जो अत्यन्त विषैले माने जाते हैं वे भी खाने के काम आते हैं। जापान में तो साँप को उबाल कर सुखा लिया जाता हैं। और बुकनी बना ली जाती है। यह बुकनी गठिया रोग की रामबाण औषधि बताई जाती है।

पक्षियाँ तथा पतंगे—हमारे देश में तथा अन्यत्र कौवा तथा गीध को छोड़ कर सभी पक्षियों का शिकार खाने के उद्देश्य से किया जाता है। बाज, बत्तख, कबूतर, लवे, बटेर, तोते–इन पक्षियों को विशेष रूप से खाया जाता है। किन्तु गुबरैले, टिड्डे आदि भी भोज्य पदार्थ हो सकते हैं शायद यह सबों को विश्वसनीय न प्रतीत हो। किन्तु यह तथ्य है कि बर्मा में वर्षा के दिनों में जंगलों में रहने वाली जातियाँ गुबरैलों को पकड़-पकड़ कर गर्म जल

में डालती हैं और फिर नमक लगाकर रुचि से उन्हें खाती हैं। हमारे यहाँ गुबरैला घृणित माना जाता है।

अमरीकी इंडियन टिड्डियों के झुन्ड के झुन्ड पकड़ कर उन्हें उबालकर सुखा लेते हैं और फिर तल कर खाते हैं। अरबवासी टिड्डों को पकड़ कर सुखाते हैं और पीस कर आटा बनाते हैं। जापान की स्वर - सुन्दरियाँ जीते टिड्डों को निगल जाती हैं जिससे उनका स्वर सुरीला हो।

यदि यह मान लिया जाय कि मांसाहार की प्रवृत्ति के कारण तथा इन भोज्य पदार्थों में पोषक तत्वों की उपस्थिति के करण इनका उपयोग होता है तो यह कहाँ तक तर्कसंगत है कि निर्जीव पदार्थों को भी भोजन के रूप में प्रयुक्त किया जाय ? वास्तव में यह कुटेव है जो शरीर के भीतर किसी विशेष तत्व की न्यूनता होने के कारण विकसित होती है

ऐसी सूचना है कि राजस्थान में एक गड़रिये का बालक नित्यप्रति 1 पाव पत्थर के टुकड़े खाता था। बहुत दिनों के बाद उसके उदर में शूल उठने लगा। इसी प्रकार त्रिनिदाद के एक भारतीयवासी की लत थी कि वह नित्यप्रति काँच के टुकड़े तथा लोहे ताँबे की कीलें निगलता रहता था। बाद में उसके उदर में पीड़ा उत्पन्न हुई और आपरेशन किया गया तो कई सौ ग्राम कीलें तथा टुकड़े निकले। ये विचित्र प्रवृत्तियाँ हैं।

उपर्युक्त से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य इतना विकास कर लेने के बाद भी पाशविक वृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सका। उसका स्वाद उसे विभिन्न पदार्थों को खाने के लिये प्रेरित करता है। किन्तु इसका एक पहलू लाभप्रद है—वह है अन्न समस्या का समाधान —कि इन स्त्रोतों से भी भूख मिटाई जा सकती है।

लेखकों से निवेदन

- **'विज्ञान' में छपने हेतु भेजे जाने वाले लेखों में अंग्रेजी शब्दों का कम से कम प्रयोग करें। इससे हमें आपका अधिकतम सहयोग प्राप्त होगा।**
- **लेखों के साथ आवश्यक चित्र अवश्य भेजें। इनके ब्लाक बनाकर छापने में हमें प्रसन्नता होगी।**
- **अस्वीकृत लेखों को वापस मँगाने के लिये साथ में टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।**

ज्ञान-विज्ञान

आसमान नीला क्यों दिखाई देता है ?

नीले रंग का प्रकाश ही इसका रहस्य है। यह नीला रंग कहां से आया ? वास्तव में यह रंग वर्णपट्टक्रम में से एक है। यदि हम इन सातों रंगों को एक साथ मिला दें तो ये मिलकर चमकते हुए सफेद रंग मे बदल जाएंगे। सूर्य का प्रकाश भी वर्णपट्टक्रम के इन्हीं सात रंगों का प्रकाश है। ये सात रंग बैंगनी, आसमानी नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल हैं। प्रकाश की प्रकृति तरंगों की भाँति है, इसी कारण इनके प्रत्येक रंग का तरंग दैर्ध्य अलग अलग होती है। इनमें से नीले रंग के प्रकाश का तरंग दैर्ध्य लाल, नारंगी इत्यादि रंगों की दूरी से कम है। जब सूर्य पृथ्वी के लिये वायुमण्डल पर उदय होता है तब प्रतियोगियों की भाँति ये रंग भागते हैं और इस दौड़ में बेचारा नीला रंग ही पीछे रह जाने के कारण वायुमण्डल में धूल के छोटे छोटे टुकड़ों से टकरा कर वहीं छिटक कर फैल जाता है। और सभी रंग तो वह मैदान पार कर बाहर निकल आते हैं पर नीला रंग ऊपर रह जाने के कारण हमें दिखाई भी नहीं देता। यही कारण है कि आसमान हमें सदा नीला दिखाई देता है। इन्द्रधनुष में हमें वर्णपट्टक्रम के यही सात रंग दिखाई देते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में हमें आकाश कभी कभी रंग बिरंगा दिखाई देता है। ऐसा क्यों ? सुबह सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी के वायुमण्डल में अधिक रास्ता तय करना पड़ता है। इस कारण रंगों में प्रतियोगिता के फलस्वरूप लाल, पीले, हल्के गुलाबी इत्यादि रंग दिखाई देते हैं। यही स्थिति शाम को भी रहती है। पर दिन में सूर्य की रंग बिरंगी किरणें एक साथ मिल कर सीधी पृथ्वी पर पड़ती है फिर वायुमण्डल का रास्ता भी कम हो जाता है इसलिए दिन में सूर्य तेज होकर चमकने लगता है।

समुद्र कितना गहरा है ?

जिस प्रकार जमीन की ऊँचाई कहीं कुछ और कहीं कुछ होती है। इसी तरह समुद्र की गहराई भी हर जगह एक जैसी नहीं होती। समुद्र की सतह धीरे धीरे ढालू होती जाती है और यह लगभग 6 मील से भी अधिक गहरी हो जाती है। यह तथ्य समुद्र के कई स्थानों पर अनेक वर्षों की खोज के नतीजे से पता चला। और इस प्रकार हिन्द महासागर, प्रशान्त और अन्ध्र महासागर से ली गई विभिन्न गहराइयों का एक नक्शा बनाया गया।

लोगों को समुद्र की गहराई नापने की रुचि तब और भी बढ़ गई जब यह पता लगा लिया गया कि पानी के अन्दर तारों द्वारा समाचार भेजा जा सकता है। और तब से अनेक दल गहराई को नापने के लिये निकल पड़े। 1906 में अमेरिकन जहाज नीरो द्वारा नापी गई दूरी लेड्रोन्स में प्रशान्त सागर के उत्तर में गुअमा द्वीप के समीप अधिकतम गहराई 5,269 फैदम (6 मील से 66 फुट कम) नापी गई थी। 1912 तक यही सबसे अधिक गहराई थी परन्तु 1912 में एक अमेरिकन जहाज ने फिलिपीन के दक्षिण द्वीपों में से मिन्डेनों द्वीप के 40 मील उत्तर पूर्व में सबसे अधिक गहराई लगभग 6 मील के नापी ! 1924 में एक जापानी जहाज 'मन्चू' ने जापान से 50 मील नीचे की ओर इससे अधिक गहराई का पता

लगाया था—यह दूरी 32,644 फीट थी जब कि तार नीचे की सतह को नहीं छू पाया था। 1951 में एक अंग्रेजी जहाज एच० एम० एस० चैलेन्जर ने मैरिना में सब से अधिक गहराई 35,640 फीट नापी थी।

एटलान्टिक महासागर में सबसे अधिक गहराई वेस्टइन्डीज के उत्तर में नार्स में 4,562 फैदम नापी गई थी और हिन्द महासागर में सबसे अधिक गहराई ईस्ट-इन्डीज के दक्षिण में व्हर्टन नाम के स्थान पर 3,828 फैदम नापी गई है। आमतौर से समुद्र की गहराई 10000 से 15,000 फीट है। सोवियत वैज्ञानिकों ने अभी हाल ही में प्रशान्त महासागर की गहराई को विभिन्न स्थानों पर नापा है। पता लगा है कि तोंगा डिप्रेशन में समुद्र,की गहराई 5893 फैदम और मेरियम डिप्रेशन की गहराई लगभग 5959 फैदम है। एक आश्चर्य जनक बात यह है कि समुद्र की सबसे अधिक गहराई लगभग पृथ्वी पर सबसे ऊँचे पहाड़ के बराबर है और सबसे ऊँचे पहाड़ से सबसे अधिक गहरे समुद्र तक के लिए हमको 12 मील का रास्ता तय करना पड़ेगा।

अब यह गहराई कैसे पता लगाई जाय? सबसे आसान तरीका तो यह है कि एक रस्से के एक सिरे पर कोई भारी चीज बाँध कर पानी में छोड़ दी जाय और जब वह नीचे की सतह को छूले तब हम निशान लगी हुई रस्सी से गहराई का पता लगा सकते हैं। परन्तु यह तरीका कम गहरे समुद्र में ही सफल हो सकता है। 1920 तक सबसे अच्छे और सही तरीके का रस्सी की भाँति ही एक लोहे के तार में भारी वस्तु बाँध कर प्रयोग किया जाता था। परन्तु यह दोनों ही तरीके बिलकुल सही नहीं हैं क्योंकि रस्सी या तार दोनों समुद्र की तेज धार में बजाय नीचे सीधे सतह की ओर जाने के इधर उधर चले जाते हैं और इस प्रकार गहराई का बिलकुल ठीक पता नहीं चल पाता।

गहराई नापने का सही तरीका जानने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि यदि एक मोटरकार एक घंटे में 25 मील जाती है और हमें निश्चित स्थान पर पहुँच कर वापस लौटने में चार घंटे लगते हैं, तो हम यह कह सकते हैं कि मोटर ने चार घन्टे में 100 मील का रास्ता तय किया। और इस प्रकार हमारा निश्चित स्थान 50 मील लम्बा है।

ठीक इसी तरह हम समुद्र की गहराई भी नापते हैं। इसके लिए हम एक विद्युत यंत्र पानी के अन्दर डालते हैं जो पानी की सतह को छूते ही वापस 'आवाज' ऊपर की ओर भेजता है। आवाज को जितना समय ऊपर आने में लगा उसे हम लिख लेते हैं। अब क्योंकि हमें यह मालूम रहता है कि एक मिनट में आवाज पानी के अन्दर कितनी दूर जाती है। हम यह पता लगा लेते हैं कि इतनी देर में इस आवाज ने कितना रास्ता तय किया-और इसका आधा ही समुद्र की गहराई होती है।

क्रमशः

विज्ञान-वार्ता

विटर्न से पोटेशियम क्लोराइड

समुद्री पानी से नमक तैयार करते समय जो चिकना तरल पदार्थ रह जाता है उसे विटर्न कहते हैं । अब भावनगर की केन्द्रीय नमक अनुसंधानशाला ने इससे पोटेशियम निकालने का सरल और सस्ता तरीका निकाला है।

देश में समुद्री जल से प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख टन नमक तैयार किया जाता हैं । नमक बनाने के बाद जो विटर्न फेंक दिया जाता है, उससे लगभग 80-85 हजार टन पोटेशियम क्लोराइड तैयार किया जा सकता है। यह पोटेशियम क्लोराइड खेतों में खाद के काम आता है ।

विटर्न से पोटेशिमम क्लोराइड तैयार करने का ढंग मोटे तौर पर यह है । बिटर्न को निश्चित तापमान पर धूप में सुखाया जाता है और उसमें चूना सान कर मिला दिया जाता है ताकि उसमें से मेगनेशियम सल्फेट निकाला जा सके । इसके बाद उसमें पोटेशियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड और कैल्सियम क्लोराइड शेष रह जाते हैं। इसे और सुखाया जाता है, जिससे सोडियम क्लोराइड और कैल्सियम क्लोराइड के रवे बन जाते हैं । इसके बाद पोटेशियम क्लोराइड को उन कणों से अलग कर दिया जाता है ।

औजार पैक करने के लिए प्लास्टिपील

छोटे औजार, मशीन के पुर्जे और अन्य यंत्र रखने वालों तथा पैक करने और भेजने वालों के सामने एक कठिनाई यह रही है कि औजारों, पुर्जों आदि को किस तरह रखा जाय जिससे वे आपस की रगड़, जंग आदि से बचे रहें।

दिल्ली के श्रीराम इन्स्टीट्यूट फार इंडस्ट्रियल रिसर्च ने उनकी यह कठिनाई दूर करने का तरीका निकाल लिया है। उसने देशी सामान से ही एक पदार्थ प्लास्टिपील तैयार किया है, जिसकी परत चढ़ाने के बाद औजारों, पुर्जों आदि पर जंग नहीं लगता और अधिक नमी का भी असर नहीं पडता । प्लास्टिपील छोटे और नाजुक औजारों, यंत्रों आदि को पैक करने और भेजने में सहायक सिद्ध होगा । यह चीनी मिट्टी और कांच के बर्तन पैक करने में भी काम आ सकता है।

विदेशों में औजारों आदि को पैक करने, भेजने तथा रखने के लिए अनेक प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं । देश में इसका निर्माण बहुत कम होता है और यह विदेश से ही मंगाया जाता है। श्रीराम अनुसंधानशाला की इस खोज से अब देश में ही बनने लगेगा ।

मिलावटी घी की पहिचान

गृहिणी अब इसका आसानी से पता लगा सकती है कि उसके घर में जो घी जाता है, वह शुद्ध है या उसमें वनस्पति आदि मिला हुआ है।

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य शिल्प-विज्ञान अनुसंधानशाला एक छोटी सी डिबिया देती है जिसकी मदद से यह पता लगाया जा सकता है । यह डिबिया बहुत सस्ती है और पता लगाने का ढंग भी बहुत सरल है।

इस डिबिया में ये उपकरण होते हैं । चिन्ह लगा हुआ एक टेस्ट ट्यूब, सील किया हुआ एक कैपसूल जिसमें थोड़ा सा तेजाब होता है, कुछ रसायनों की सील लगी हुई एक शीशी और एक कटर । इन उपकरणों की मदद से बहुत आसानी से घी में मिलावट का पता लगाया जा सकता है ।

डिबिया की एक विशेषता यह है कि इसक दाम केवल 8 नए पैसे हैं। दूसरी बार जांच करने के लिए केवल 3 नए पैसे का और सामान खरीदना पड़ता है ।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3/5/

भाग 111 | फाल्गुन 2030 विक्र०, 1894 शकाब्द, नवम्बर-दिसम्बर 1973 | संख्या 12

मॉसबाउअर प्रभाव

श्यामलाल काकानी

सन् 1961 में मॉक्स प्लांक इंस्टीट्यूट, हैड्लवर्ग के रूडोल्फ एल० मॉसबाउअर को घनाकृतियों में परिबंध नाभिकों द्वारा गामा किरणों के रिकॉयल रहित उत्सर्जन एवं पुनः अनुनादी अवशोषण क्रिया की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण खोज के लिए विश्व के सर्वाधिक सम्मान का पारितोषक 'नोबल पुरस्कार' प्रदान कर सम्मानित किया गया। मॉसबाउअर के नाम पर ही इस महत्वपूर्ण खोज को 'मॉसबाउअर प्रभाव' कहा जाने लगा है। आज इसकी सहायता से विज्ञान के कई तथ्यों की सत्यता प्रमाणित की जा सकती है विज्ञान का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं बचा है जिसमें इस क्षेत्र का उपयोग किसी न किसी रूप में न होता हो। मॉसबाउअर प्रभाव की खोज होने के पश्चात् अब तक 30 से अधिक ऐसे तत्वों की खोज की जा चुकी है जो मॉसबाउअर प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। अब हम मॉसबाउअर प्रभाव को समझने का प्रयास करेंगे।

रिकॉयल रहित गामा किरणों का उत्सर्जन

एक नाभिक विभिन्न अस्थिर अवस्थाओं में विद्यमान होता है और फोटॉन का उत्सर्जन कर अपेक्षाकृत स्थिर अवस्था में पहुँच जाता है। उत्सर्जित फोटॉन (या गामा किरण) की ऊर्जा लगभग नाभिक की दोनों अवस्थाओं की ऊर्जाओं के अन्तर के तुल्य होती है। जब नाभिक से फोटॉन बाहर निकलता है तो नाभिक पीछे की ओर कुछ संवेग से रिकॉयल करता है (चित्र 1)। लेकिन यदि नाभिक स्वतंत्र नहीं है अर्थात् किसी क्रिस्टल में परिबंध है तो नाभिक का रिकॉयल लगभग नगण्य होता है और नाभिक की दोनों अवस्थाओं का ऊर्जा अन्तर गामा किरण (फोटॉन) ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है।

संवेग संरक्षण नियम के अनुसार एक स्वतंत्र नाभिक का रिकॉयल संवेग उत्सर्जित फोटॉन के तुल्य होना चाहिए। यदि फोटॉन की ऊर्जा $\triangle E$ है तो इसका
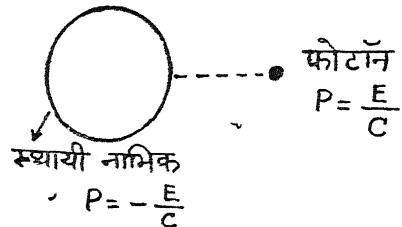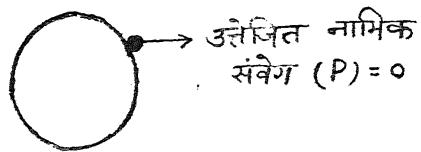
फोटॉन उत्सर्जन के पश्चात्
रिकॉयल उर्जा = $\frac{E^2}{2m_0c^2}$
जहाँ m_0 = नाभिक की संहति

चित्र 1

संवेग $\frac{\Delta E}{C} = \frac{h\upsilon}{C}$ होगा जहाँ C प्रकाश का वेग है। एक स्वतंत्र नाभिक के लिए रिकॉयल ऊर्जा (R) का मान निम्न सूत्र से प्राप्त किया जा सकता है :

$$R = \frac{E^2}{m^o C^2} \qquad \ldots\ldots(1)$$

यहाँ m_0 नाभिक की स्थिर संहति को प्रदर्शित करता है। लेकिन यदि नाभिक क्रिस्टल में परिबन्ध है तो नाभिक के स्थान पर सम्पूर्ण क्रिस्टल का रिकॉयल होगा (चित्र 2) यदि M_N क्रिस्टल की संहति हो तो रिकॉयल ऊर्जा का मान निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं।

$$R = \frac{E^2}{M_N C^2} \qquad \ldots\ldots(2)$$
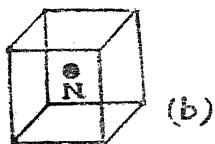
क्रिस्टल में परिबद्ध उत्तेजित नाभिक(N)
संवेग (P) = 0
रिकायल उर्जा = $\frac{E^2}{2M_cC^2}$
जहाँ M_c = क्रिस्टल की संहति
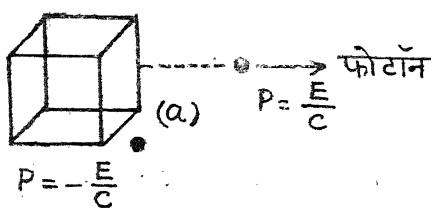
चित्र 2

समीकरण (1) और (2) से स्पष्ट है कि रिकॉयल ऊर्जा का मान संहति के व्युत्क्रमानुपाती होता है। एक स्वतंत्र नाभिक के लिए रिकॉयल ऊर्जा का मान लगभग 10^{-10} ev (यदि E ∼ 1ev हो तो) होता है।

क्रिस्टल में परिबंध नाभिक के लिए रिकॉयल ऊर्जा का मान लगभग शून्य होता है क्योंकि नाभिक की संहति की तुलना में क्रिस्टल की संहति कई गुना अधिक होती है।

क्रिस्टल में परिबंध नाभिक जब गामा किरण उत्सर्जित करता है तो रिकॉयल ऊर्जा सम्पूर्ण क्रिस्टल द्वारा ग्रहण कर ली जाती है। क्रिस्टल जालक (crystal lattice) इस ऊर्जा के क्षय के लिए कंपन करना प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार के क्रिस्टल जालक कंपनों को फोनॉन कहते हैं। इनका उत्सर्जन केवल क्वान्टाइजड इकाइयों जैसे $0, h\upsilon, 2h\upsilon\cdots$ इत्यादि में ही संभव है। एक स्थिति ऐसी उत्पन्न हो सकती है जब शून्य फोनॉन का उत्सर्जन हो और गामा किरण का उत्सर्जन बिना किसी रिकॉयल ऊर्जा की क्षति के संभव हो सके। ऐसी स्थिति ही मॉसबाउअर प्रभाव को देखने के लिए आवश्यक है।

रिकायल रहित गामा किरणों का अनुवादी अवशोषण

रिकॉयल से ऊर्जा क्षति के प्रभाव को विलोपित करने के लिए नाभिक को उपयुक्त ताप पर क्रिस्टल जालक में दृढ़ता से परिबंध कर दिया जाता है।

रिकॉयल की अनुपस्थिति में उत्तेजित अवस्था में निम्न ऊर्जा अवस्था में लौटने पर विकिरण ऊर्जा का मान पूर्ण रूप से निम्न ऊर्जा अवस्था से उच्च ऊर्जा अवस्था (उत्तेजित अवस्था) में पहुँचने के लिए आवश्यक ऊर्जा के अवशोषण के मान के तुल्य होता है (चित्र 3) रिकॉयल की उपस्थिति के कारण ये क्रियाएं रूपान्तरित हो जाती हैं (चित्र 4)।
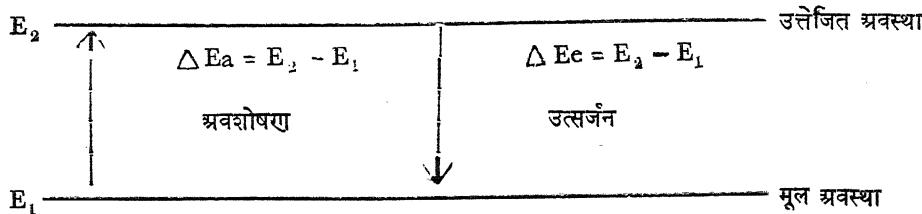
चित्र—3 रिकॉयल की अनुपल्थिति में अवशोषण और उत्सर्जन (ऊर्जा—तल आरेख)
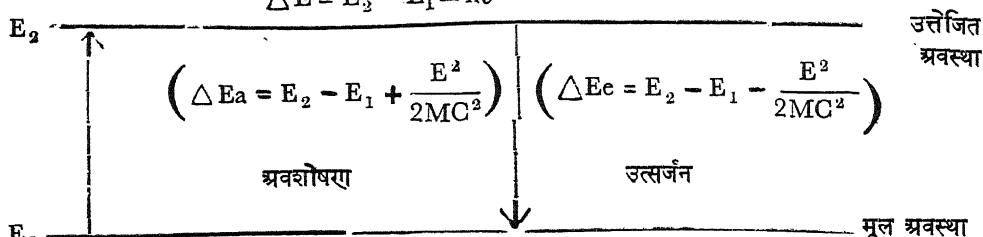
चित्र—4 रिकॉयल की उपस्थिति में अवशोषण और उत्सर्जन का ऊर्जा-तल आरेख

मॉसबाउअर प्रभाव को देखने के लिए यह आवश्यक है क्रिस्टल में परिबंध नाभिक द्वारा उत्सर्जित रिकॉयल रहित गामा किरण का अन्य समरूप परिबंध नाभिक द्वारा अनुनादी (जब एक कंपन करते हुए स्रोत को दूसरे स्रोत के समीप ले जाने पर वह भी उसी आवृत्ति से कंपन करना प्रारंभ कर देता है तो अनुनाद होता है) अवशोषण होना चाहिए। अतः अनुनादी अवशोषण के लिए दोनों नाभिक पूर्ण रूप से समरूप और इनका वातावरण भी एक ही होना चाहिए। यदि उत्सर्जित नाभिक और अवशोषणकारी नाभिक की आवृत्ति में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर (10^{12} में एक भाग का) भी है तो अनुनादी अवशोषण नहीं होगा। नाभिकों में गामा

किरणों का अनुनाद प्रकृति में सबसे अधिक समस्वरित तीक्ष्ण प्रणाली है और यही कारण है कि वैज्ञानिकों को इतना पता लगाने में इतना समय लगा। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि क्रिस्टल में परिबंध नाभिक भी कुछ विशेष परिस्थितियों में ही रिकॉयल रहित गामा किरणों का अनुनाद प्रदर्शित करते हैं।

अनुनाद की तीक्ष्णता

अनुनाद की तीक्ष्णता परमाणु के अर्द्ध जीवन काल (T) पर निर्भर करती है और इसको संक्रमण ऊर्जा (E) और अर्द्ध जीवन काल (T) के अनुपात से व्यक्त करते हैं। एक परमाणु के लिए अनुनाद की तीक्ष्णता का मान लभग, $\frac{E}{T} \backsim 10^{8}$ होता है ($E \backsim 1ev$ और $T \backsim 10^{-8}ev$)। एक नाभिक के लिए संक्रमण ऊर्जा, $E \backsim 10^{+4}ev$ और $T \backsim 10^{-8}ev$ होता है, अतः अनुनाद की तीक्ष्णता का मान

$$\frac{E}{T} \backsim 10^{12}$$

होता है जो परमाणु की अनुनाद की तीक्ष्णता की तुलना में 10^{4} गुना अधिक होता है। इसी से आप अनुमान लगा सकते हैं कि परमाणुओं में अनुनाद की तीक्ष्णता की तुलना में नाभिकों में गामा किरणों का अनुनाद कितना अधिक तीक्ष्ण होता है।

डॉप्लर व्यापकता

नाभिकों में गामा किरणों के अनुनादी प्रभाव को देखने में रिकॉयल ऊर्जा के अतिरिक्त दूसरी प्रमुख बाधा डॉप्लर व्यापकत है। उत्सर्जन एवं अवशोषण करने वाले नाभिक ऊष्मीय गति में होते हैं जिससे डॉप्लर प्रभाव के कारण अनुनाद रेखा की चौड़ाई बढ़ जाती है अर्थात् अनुनाद की तीक्ष्णता कम हो जाती है और गामा किरणों का अनुनादी प्रभाव विलोपित हो जाता है। डॉप्लर व्यापकता का प्रभाव निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं।

$$D = \sqrt{8RE_{\Gamma}}$$

जहाँ E_{T} (ऊष्मीय ऊर्जा) $= \frac{1}{2}$ KT/चूँकि D ताप के वर्गमूल के समानुपाती ($D \propto \sqrt{T}$) होता है अतः ताप को कम करने पर अनुवाद को संकीर्ण किया जा सकता है लेकिन तीक्ष्णता में वृद्धि नहीं की जा सकती है। इसके लिए उपकरण की अभिकल्पना तैयार करते समय ही विशेष प्रकार की युक्ति काम में ली जाती है। मॉसबाउअर प्रभाव को देखने के लिए अब मॉसबाउअर स्पेक्ट्रोमीटर उपलब्ध है।

मॉसबाउअर स्पेक्ट्रोमीटर

चित्र 5 में मॉसबाउअर स्पेक्ट्रोमीटर की एक सामान्य रूप रेखा प्रदर्शित की गई है। इसके प्रमुख उपस्कर निम्न होते हैं। (i) गामा किरण स्रोत (ii) एक स्थायी समस्थानिक वाला अवशोषणकारी (iii) गामा किरणों के लिए एक परिचायक (iv) डॉप्लर व्यापकता को विलोपित करने के लिए स्रोत एवं अवशोषणकारी में सापेक्ष गति कराने वाला तंत्र।

मॉसबाउअर प्रभाव का असाधारण उपयोग, आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त का सत्यापन, समय संकुचन का माप।

आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार यदि
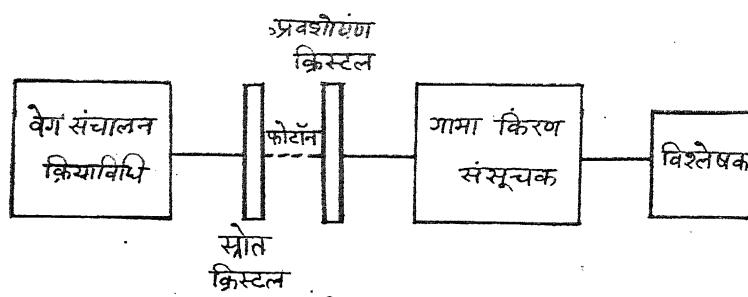
चित्र 5

दो समरूप घड़ियों को भिन्न-भिन्न गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों में रख दी जाये तो उनके चलने की दर भिन्न-भिन्न होगी अर्थात् दोनों घड़ियाँ भिन्न-भिन्न समय प्रदर्शित करेगी। यह अन्तर इतना कम होता है कि साधारण विधियों से इसे नापना नितान्त असम्भव है। लेकिन मॉसबाउअर प्रभाव प्रदर्शित करने वाले नाभिकों की सहायता से घड़ियों में समयान्तराल को सही ढंग से नापा जा सकता है। दूसरे शब्दों में ये नाभिक एक बहुत अच्छी परमाणु
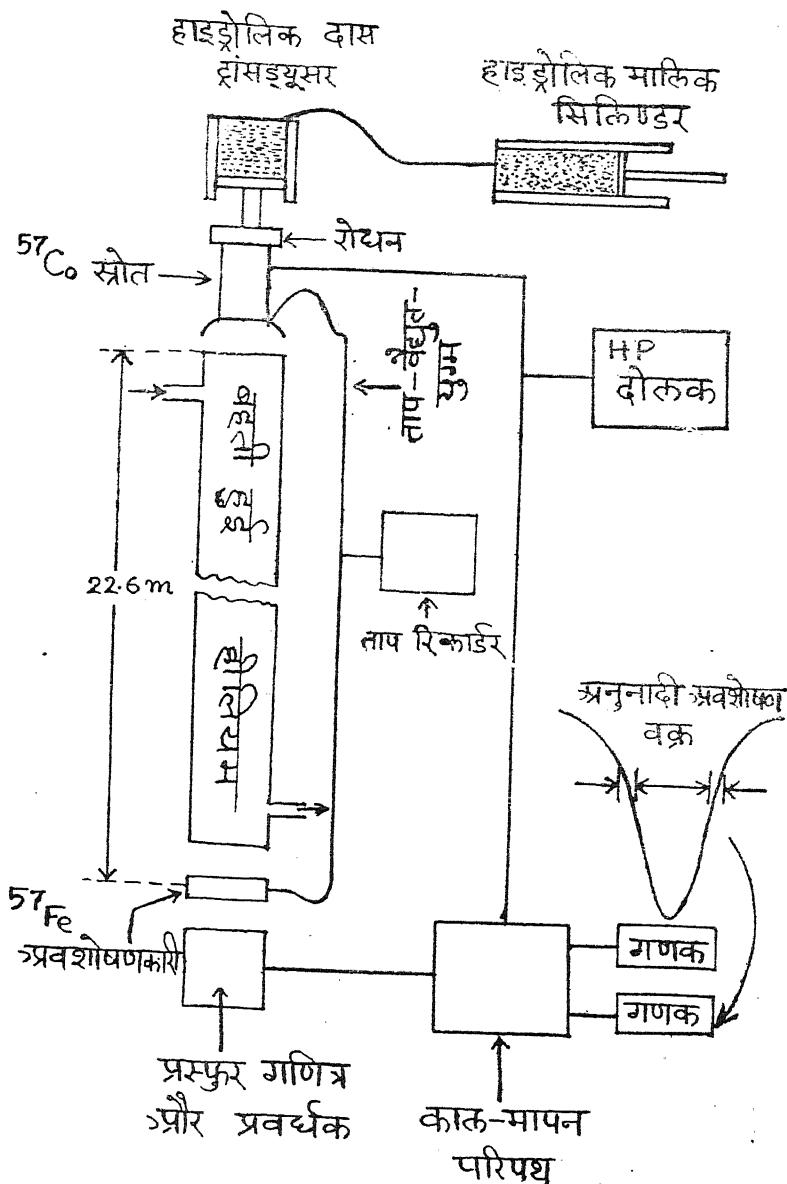
चित्र—6

नाभिक घड़ी का कार्य करते हैं। हॉवर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों रेबका और पांड ने 57_{Fe} नाभिक का स्रोत के रूप में उपयोग कर चित्र 6 में प्रदर्शित प्रयोग से गुरुत्वीय लाल विचलन को नापने में सफलता प्राप्त की। लाल विचलन एक मीटर का लगभग 10^{-16} वाँ भाग होता है। यह मान सापेक्षता सिद्धान्त के आधार पर घोषित मान से पूर्णतः मेल खाता है। अतः यह प्रयोग सापेक्षता सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

मॉसबाउअर प्रभाव की अन्य कई उपयोगिताएँ हैं और इस क्षेत्र में अनुसंधान की प्रगति के साथ-साथ इसकी कई नवीन उपयोगिताएँ प्रकाश में आ रही हैं। निसंदेह मॉसबॉउअर प्रभाव पिछली दशाब्दि की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

श्यामलाल काकानी
प्राध्यापक भौतिक शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय
शाहपुरा (भीलवाड़ा)

अध्ययन की सामग्री

1. आर एल० मॉसबाउअर — साइन्स 137, 731, (1962)
मॉसबाउअर इफेक्ट इन केमिस्ट्री एण्ड सालिड स्टेट फिजिक्स—

2. गुन्थर वर्थाइम — साइन्स 144, 253, (1964)

3. ,, — मॉसबाउअर इफेक्ट—
फिजिक्स टुडे 20, 7, 31-37 (1967)

4. ,, — मॉसबाउअर इफेक्ट एण्ड इट्स एप्लीकेशन्स, अकादमी प्रेस 1964

5. आर० एल० मॉसबाउअर — एन्वल रिव्यू ऑफ न्युक्लियर साइन्स 12, 123 (1962)

6. श्याम लाल काकानी — भौतिकी की नई दिशाएँ—
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ
अकादमी, जयपुर—4, 1972

7. श्याम लाल काकानी — जूनियर साइंस
8 (16) 17 1971

सोयूज़ अभियान

डा० सन्त प्रकाश

हाल ही में रूस ने सोयूज—12 अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में 2 दिन के लिये भेजा था। इस यान में रूस के 2 अंतरिक्ष यात्री भी भेजे गये थे जिनके नाम कमांडर वैसिली लैजोख एवम् इंजीनियर ओलेग मैंकारेव हैं। 2 वर्ष पूर्व 3 जून, 1971 को सोयूज—11 के तीन अंतरिक्ष यात्रियों की मृत्यु हो जाने से अब तक रूस ने अंतरिक्ष यात्रियों को अंतरिक्ष में नहीं भेजा था। जब ये तीनों यात्री अपना कार्य समाप्त करके पृथ्वी पर वापस आ रहे थे तो उनके यान का 'हैच' ठीक से बन्द नहीं हो पाया था जिससे यान के अन्दर का दबाव कम हो गया था। अमरीका के वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि अंतरिक्ष यात्री हल्के पोशाक पहने होते तो शायद बच जाते। यह बात अब स्पष्ट हो गई है क्योंकि सोयूज़—12 के अंतरिक्ष यात्रियों की पोशाकें हल्की थीं।

इस बार यह बात आश्चर्यजनक रही कि रूस के वैज्ञानिकों ने सोयूज़—12 के कार्यक्रम को पहले से ही घोषित कर दिया था।

सोयूज़ 12 की सफलता से रूस के वैज्ञानिकों को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला है और ऐसी आशा की जा रही है कि निकट भविष्य में अन्य अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष यात्रियों सहित अंतरिक्ष में भेजे जायेंगे। वैसे तो लगभग सप्ताह में एक बार यह सुनने को अवश्य मिल जाता है कि कोस्मस श्रृंखला का अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में भेजा गया है।

रूस और अमरीका के संयुक्त सहयोग से 1975 में अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में भेजे जायेंगे। इस संयुक्त प्रयास के अंतरिक्ष में एक बड़ी प्रयोगशाला की स्थापना की जायेगी।

अंतरिक्ष प्रयोगशाला की प्रारम्भिक स्थापना 1971 में की गई थी जबकि सैलूर—1 अंतरिक्ष में भेजा गया था। अमरीका ने भी स्काईलैब—1 एवम् स्काईलैब - 2 अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में भेजे थे। स्काईलैब—2 अभियान तो हाल ही में समाप्त हुआ है। 26 सितम्बर, 1973 को स्काईलैब—2 के अंतरिक्ष यात्री एलेन बीन, ओवन गैरियो एवम् जैक लौज़मा 59·5 दिन अंतरिक्ष में बिता कर वापस हुए हैं। अमरीका के ये अंतरिक्ष यात्री सबसे अधिक दिन तक अंतरिक्ष में रहे हैं। प्रारम्भ में इन यात्रियों को अंतरिक्ष में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। एक बार यहाँ तक सोचा गया कि शायद वे लोग अधिक दिन तक अंतरिक्ष में नहीं रह पायेंगे और उन्हें वापस आना पड़ेगा। पर धीरे-धीरे अंतरिक्ष के वातावरण में रह कर उन लोगों ने अपने को सुधारा एवम् अपने कार्य को निर्धारित समय में पूरा किया। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि भारहीनता की स्थिति में अंतरिक्ष में रहने के लिए लगभग 1 सप्ताह के बाद ही अंतरिक्ष यात्री अपने को उस वातावरण के अनुकूल कर पाता है। यही कारण है कि स्काईलैब—2 के अंतरिक्ष यात्री ने कुछ दिनों बाद अधिक खाना खाया है। वैसे भारहीनता की स्थिति में रहने के लिए यात्रियों की कसरत आदि नियमित रूप से करने पड़ते हैं। स्काईलैब—2 के यात्री स्काईलैब—1 के यात्रियों की अपेक्षा अच्छी दशा में पाये गये हैं। स्काई लैब—2 के यात्रियों की डाक्टरी जाँच करने से ज्ञात हुआ कि उन लोगों के कान में कुछ कष्ट था और उनको मचली भी आ रही थी।

अंतरिक्ष में प्रयोगशाला की स्थापना के लिये गुरुत्वा-

कर्षणहीनता का पूरा-पूरा अध्ययन करना बहुत ही अनिवार्य है। नहीं तो पृथ्वी पर यात्रियों के पुनः वापस आने पर परेशानियाँ होंगी। स्वायज—9 के अंतरिक्ष यात्रियों को 18 दिन तक अंतरिक्ष में रहने के बाद पृथ्वी पर वापस आने पर यान में से बाहर निकाला गया था। वे स्वयम् नहीं निकल पाये थे। पर स्काईलैब—2 के यात्रियों ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया था। उन लोगों ने उतरने के बाद ही चलना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए अधिक दिन तक अंतरिक्ष में रहने से पृथ्वी पर पुनः वापस आने पर परेशानी नहीं होती। इसी बात को ध्यान में रखकर स्काईलैब—3 के अंतरिक्ष यात्रियों का कार्यक्रम 70 दिन तक रहेगा।

कुछ माने में रूस की तकनीकी अमरीका की अपेक्षा ज्यादा अच्छी मानी जाती है। अमेरिका का हर एक अंतरिक्ष यान पृथ्वी पर जब वापस आता है तो उसे समुन्द्र पर ही उतारा जाता है पर रूस के सारे अंतरिक्ष यान पृथ्वी पर ही उतारे जाते हैं। रूस ने पृथ्वी पर से ही चन्द्रयान का संचालन किया। जब चाहा उसे रोका, जब चाहा उसे चलाया। यह निश्चित रूप से कहना कठिन होगा कि रूस अंतरिक्ष यात्रियों के द्वारा अपने अंतरिक्ष कार्य को पूरा नहीं कर पा रहा है। निकट भविष्य में उसकी पुष्टि हो जायेगी।

डा० संत प्रकाश
प्राध्यापक, भौतिकी विभाग
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल—13

स्काईलैब—2 के अन्तरिक्ष यात्रियों ने अपने अन्तरिक्ष प्रवास की अवधि में यह खोज की है कि पौष्टिक भोजन, गहरी नींद तथा कठोर व्यायाम के सहारे मनुष्य अन्तरिक्ष में भी पूर्ण स्वस्थ रह सकता है।

ये यात्री अपने साथ जो मकड़ियाँ और मछलियाँ ले गये थे उन पर प्रयोगों से यह पता चला कि भारहीनता की स्थिति में इनका आचरण कैसा होता है। आरम्भ में मकड़ी को कुछ कठिनाई हुई किन्तु बाद में वह सामान्य ढंग से जाला बुनने लगी। मछलियों को भी भारहीनता की स्थिति में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई।

क्या जीवित कोषों की स्वतः हीन होने की शक्ति घटाई तथा बढ़ाई जा सकती है ?

डा० अरुण कुमार सक्सेना तथा डा० नन्द लाल तिलयानी

रेडियो-सक्रिय पदार्थों को कौन नहीं जानता कि वे अनवरत कितने भयावह विकिरण उगलते रहते हैं जो कि प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए जीवन मरण का प्रश्न पैदा कर देते हैं। केवल सीसे की मोटी दीवार ही, इन विकिरणों को, जो कि न्यूट्रांन, गामा किरण तथा भारी आयनों के रूप में निकलते हैं, रोक सकती है। इसके सीधे प्रभाव में जो भी जीवित वस्तु आ जाती है उसका नष्ट होना लगभग अनिवार्य ही हो जाता है।

शरीर के जीवित कोषों पर इनका प्रभाव भी कम हानिकारण नहीं। इन कोषों में जो हानि हो जाती है वह ये स्वतः ठीक नहीं कर पाते। प्रकृति ने इन कोषों को इतनी शक्ति प्रदान की है कि वे शरीर के जले भाग, कटे भाग आदि को स्वतः ठीक कर लेती है। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रकृति विकिरण के मामले में इतना निष्ठुर हो क्यों गई और बेचारे कोष इस अस्त्र के सामने अपने को सवर्था असहाय सा समझने लगते हैं। यह एक अत्यन्त ही जटिल प्रश्न था जो 1957 में वैज्ञानिकों के समझ में भी नहीं आया था।

मास्को विश्वविद्यालय के एक स्नाकोत्तर विद्यार्थी वी० आई० कोरोगोडिन आज से 15 वर्ष पूर्व जीव-भौतिक विभाग में रेडियो-जैवकीय क्रियाओं (विधाओं) पर शोध कार्य में जुटा था। उसका विषय यही उपरोक्त पेचीदा प्रश्न था। इस प्रश्न का उत्तर एक महत्वपूर्ण खोज के रूप में संसार के समक्ष आया जिसने वैज्ञानिकों में खलबली मचा दी। वही विद्यार्थी आज रूस में उच्च कोटि का विभागी अध्यक्ष है। इस मेधावी विद्यार्थी के शोध कार्यों के फलस्वरूप यह तथ्य सामने आया कि विकिरण-स्नान की हुई कोषों में भी स्वतः ठीक होने या अपनी पूर्व दशा प्राप्त होने की क्रियाएँ होती है जो कि उस समय के प्राप्त पुरातन साधनों तथा यंत्रों के द्वारा वैज्ञानिकों के समझ में नहीं आई थी। वास्तव में यह साधन अणुओं की अन्तराल गहराइयों को पार करने में सहायता न कर सका था। इस कारण वैज्ञानिकों को केवल असफलता ही हाथ लगी। प्रोफेसर कोरोगोडिन ने एक ऐसी विधि ज्ञात की जिसके द्वारा जीवित कोषों की स्वतः ठीक होने की क्रिया को घटाया तथा बढ़ाया भी जा सका है। उन्होंने एक गणितीय मॉडल भी बनाया जिसकी सहायता से वे इस घटना की जैवकीय क्रियाओं को सरलतापूर्वक समझाने में भी सफल हुये।

इस विधि के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि विकिरण के द्वारा हानि पहुँचने के पश्चात् कोष लगभग 80 तथा 85 प्रतिशत स्वतः ठीक हो जाने की क्षमता रखते हैं। ये जीवित कोष जो कि इन विकिरणों के प्रभाव से मरणा-अन्त से हो जाते हैं फिर एकाएक पुनः सजीव हो उठते हैं और जीवित रहने के लिए एक अद्वितीय शक्ति लगाते हैं। इस सनसनीपूर्ण खोज ने तो तहलका मचा दिया। इधर इन्हीं रूसी वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधारों पर यहाँ तक सिद्ध कर दिया कि कोषों की स्वतः ठीक होने की क्षमता को सैकड़ों तथा हजारों गुना बढ़ाया जा सकता है। इसका प्रयोजन यह हुआ कि कोषों को किसी हानिकारक बाहरी प्रभाव से आत्म-रक्षा करने के लिए सक्रिय भी बनाया जा सकता है। इन प्रभावों में पैतृक प्रभाव का परिवर्तन भी जोड़ा जा सकता है। प्रो० कोरोगोडिन के शोध कार्यों के फलस्वरूप एक और भी

तथ्य सामने आया जिसने कि एक जैवकीय नियम का रूप धारण कर लिया। इस जैवकीय नियम के अनुसार कोषों में पैतृक उपकरण के द्वारा स्वत: ठीक होने कि क्रिया की रोकथाम की जा सकती है। सोवियत रूस के वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में एलगी, पौधों, कीटाणुओं आदि के जीवित प्राणियों के नष्टप्राय: कोषों को पुन: सजीव करने का दावा भी किया है।

कैन्सर पनपाने वाले पदार्थों के द्वारा ये कोष भी विनष्टप्राय: हो जाते हैं। इन्हें भी पुन: इसी विधि के द्वारा सजीव किया जा सकता है।

समस्त संसार के कैन्सर पर शोध कार्य करने वाले वैज्ञानिकों के कान खड़े हो गये और वे इस कोरोगोडिन विधि को अपना कर कैन्सर के अर्बुदों को नष्ट करने के प्रयोगों में जुट गये हैं। उन्हें निकट भविष्य में इस दिशा में आशातीत सफलता भी प्राप्त हो सकती है। समस्त संसार उत्सुकता से उस दिन की बाट जोह रहा है जब इस शुभ संदेश की घोषणा होगी और इस रोग से पीड़ित करोड़ों रोगियों के हृदयों में आशा की नवीन किरणों का संचार हो उठेगा।

भौतिक तथा रसयान शास्त्र में नोबेल पुरस्कार

1973 वर्ष का भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार दो अमरीकी भौतिक विदों, लिओ एसाकी तथा आइवर ग्याइवर और एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ब्रियन जोजेफ्सन को प्रदान किया गया है।

इसी वर्ष का रसायन शास्त्र के लिये पुरस्कार प्रो० ज्योफ्रे विलकिंसन, जो ब्रिटिश हैं, तथा प्रो० अरन्सट फिशर, जो जर्मन वासी हैं, को संयुक्त रूप से उनके संक्रमण तत्वों के रसायन सम्बन्धी उत्कृष्ट खोजों के लिये प्रदान किया गया है। 1,20,000 डालर में बराबर-बराबर भाग दोनों को मिलेगा। डॉ० विलकिंसन इम्पीरियल कालेज ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नॉलाजी, लन्दन, में प्रोफेसर हैं तथा प्रो० फिशर म्युनिख में अकार्बनिक रसायन की प्रयोगशाला के निदेशक है।

धूम्रपान एवं मांसाहार के ख़तरे

शुकदेव प्रसाद

वैज्ञानिकों ने धूम्रपान एवं मांसाहार दोनों विषयों पर शोध कार्य किया और अन्त में दोनों को ही स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक पाया। वे किस प्रकार हमारे लिए हानिकारक हैं, उसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

धूम्रपान

आज के विकासशील युग में सिगरेट, बीड़ी इत्यादि पीना सभ्यता का अंग बन गया है। लोग शौक में सिगरेट पीना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे उसके आदी हो जाते हैं लेकिन वे बाद में पता कर पाते हैं कि इसका स्वास्थ्य के प्रति कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है। सिगरेट की तम्बाकू में एक विषैला पदार्थ निकोटीन होता है। यह रंगहीन एवं वाष्पशील तरल पदार्थ है जो कि गरम होने पर भाप या गैस बन जाता है। सिगरेट लगभग 884° से०ग्रे० पर जलता है। इस ताप पर तमाम रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इसके धुएँ में लगभग 300 भिन्न पदार्थ होते हैं जिसमें टी०डी०ई०, एसीटोन, मिथेनाल, फ़ार्मल व एसिटल्डिहाइड, एक्रोलिन, ग्लिसराल, ग्लाइकाल, एलिफेटिक एवं एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन मुख्य हैं। अनुमानतः हर सिगरेट पीने के पश्चात 0·2 से 0·5 मिलीग्राम तक निकोटीन मुँह के अन्दर प्रवेश करता है और यही विषैला तत्व अन्य रोगों को जन्म देता है। सिगरेट के धुएँ से फेफड़ों को क्षति पहुँचती है।

धूम्रपान के समय रक्त में कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। यह गैस रक्त की आक्सीजन धारण करने की क्षमता को कम कर देती है जिससे हृदय पर काफी जोर पड़ता है और श्वसन तन्त्र पर भी। क्योंकि अधिक आक्सीजन फेफड़ों में पहुँचानी रहती है। फलस्वरूप थकान महसूस होती है और साँस लेने में परेशानी होती है। बहुत अधिक सिगरेट पीने से कार्बन मोनोक्साइड रक्त में उपस्थित लौह प्रोटीन हीमोग्लोबिन से क्रिया कर स्थाई रूप से विषाक्तता पैदा कर देती है जो रक्त में संचित होते रहते हैं और शरीर के अन्य भागों में रक्त पहुँचाने से रोकते हैं। धूम्रपान से फेफड़ों में कैंसर होने की सम्भावना सबसे ज्यादा होती है। कैंसर एक घातक रोग है। कैंसर के वास्तविक रोगी को बचाना मुश्किल है। इंगलैण्ड और वेल्स में प्रति वर्ष 5,50,00 मौतों में से 1,10,00 मौतें कैंसर के ही कारण होती हैं। धूम्रपान जितना ही ज्यादा होगा कैंसर होने की सम्भावना उतना ही ज्यादा होगी। धूम्रपान अधिक करने से कैंसर बढ़ता है तो धूम्रपान त्यागने से कैंसर घटता भी है।

सिगरेट पीने से दिल की बीमारियाँ भी होती हैं। अभी तक इसके कारण का पता नहीं चल पाया है लेकिन ऐसा अनुमान है कि निकोटीन की रक्त के साथ क्रिया के फलस्वरूप होता है। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति को भी वे रोग हो सकते हैं यदि वह धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के साथ बैठता है। रक्त में कार्बन मोनोक्साइड की मात्रा तीन प्रतिशत से अधिक हो जाने पर मनुष्य में जड़ता की भावना पैदा हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धूम्रपान से अनेक घातक रोग होते हैं।

मांसाहार

वैज्ञानिक निष्कर्षों के आधार पर अब यह सिद्ध हो गया है कि मांसाहार से लाभ के अपेक्षा शरीर को अधिक हानि ही उठानी पड़ती है। इंगलैण्ड के डा० आर जे० विलियम ने कहा है—"हो सकता है, अंडे

खाने वाले लोग शुरू में अपने को अधिक स्वस्थ्य अनुभव करें और दूसरों को भी ऐसा लगे पर बाद में वे कई रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं, जिनमें रक्त चाप और एग्जीमा जैसे भयानक रोग भी हैं।'' अमेरिका के वैज्ञानिकों ने सामिष भोजन के विषय में परीक्षणों के दौरान उसे स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक पाया। कैलिफोर्निया के वैज्ञानिक डा० कैथरीन निम्मी तथा डा० जे० अमेन के अनुसार अंडे में 'कोलेस्ट्राल' नामक विष पाया जाता है जो कि रक्तवाहिनी नलिकाओं को घायल करता है जिससे उनमें गंदगी भर जाती है और उनका मार्ग सकरा हो जाता है, जो हृदय रोग का प्रमुख कारण है। रक्तवाहिनियों में गंदगी जमा हो जाने से उनकी प्रत्यास्थता खत्म हो जाती है, कोमलता एवं संवेदनशीलता घटने लगती है जिससे बुढ़ापा आता है एवं आयु घट जाती है।

इस विवरण को फ्लोरीडा विश्वविद्यालय (अमेरिका) के कृषि विभाग ने 1967 में एक स्वास्थ्य बुलेटिन में प्रकाशित किया था और यह भी वर्णित था कि अंडे में हानिप्रद विषाणु (वाइरस) होते हैं। अंडे खाने से उच्च रक्तचाप बढ़ता है और पाचन क्रिया भी गड़बड़ होती है। पथरी भी पैदा होती है। अंडे खाने वालों के आमाशय की दीवारों तथा आँत एवं रक्तवादी नलिकाओं में घाव पड़ जाते हैं जो तमाम रोगों का कारण बनते हैं तथा इससे पेचिश भी होती है। अमेरिकी चिकित्सक डा० ए० वाचमन एवं उनके सहयोगी डा० डी० एस० वर्नस्टी ने अपने अध्ययन के फलस्वरूप घोषणा की कि, मांसाहार से हड्डियां क्रमशः कमजोर होती हैं और गलने लगती हैं। मांसाहारियों के मूत्र में क्षारीय पदार्थ तथा लवणों की अधिक मात्रा बह कर शरीर से बाहर जाती है, जिससे इन लवणों और क्षारीय पदार्थों की रक्त में कमी होने लगती है। रक्त अपनी इस कमी को हड्डियों से लेकर पूरा करता है। इस आवश्यक संतुलन के बिगड़ने पर व्यक्ति रोग प्रतिरोध शक्ति खो बैठता है। डा० अलैक्जैण्डर हैक ने उक्त दोनों डाक्टरों के बातों की पुष्टि करते हुए बताया कि, रक्त में इन लवणों और क्षारीय पदार्थों का गुर्दे के माध्यम से छनकर तेजी से बाहर जाने का कारण यह है कि, मांस के पाचन में शरीर में ताप अधिक उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त ताप के कारण गुर्दों के रक्त छानने की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है और बोमन कैप्स्यूल्ल में ये लवण तथा क्षार अतिरिक्त दबाव के कारण छनने से बच नहीं पाते और मूत्र के साथ बहकर बाहर चले जाते हैं। हड्डियाँ क्रमशः कमजोर होती रहती हैं। कई दूसरे रोग भी रासायनिक प्रक्रियाओं के असंतुलन के कारण पैदा हो जाते हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में आते ही संसार के लोग अवशाकाहार की महत्ता समझ रहे हैं। केवल अमेरिका में अब चार करोड़ से अधिक लोग शुद्ध शाकाहारी हैं।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद--2

अन्तरिक्ष-अनुसंधान से लाभ—आज और कल

(संकलित)

अमेरिका का अन्तरिक्ष कार्यक्रम अतीव फलदायी सिद्ध हुआ है। इसका प्रारम्भ पृथ्वी के वायुमण्डल से आगे के असीम क्षेत्र की खोज करने के लिए हुआ था। किन्तु इससे मौसम की भविष्यवाणी में सुधार से लेकर, त्वरित पीड़ाहीन यन्त्र-चिकित्सा और वायुमण्डलीय प्रदूषण की जांच-पड़ताल की श्रेष्ठतर विधियाँ तक, अगणित लाभों का प्रादुर्भाव हुआ है। इसके अनेक लाभ व्यवहार-संगत, घरों में दृश्यमान और बाजार में उपलब्ध है। इन लाभों से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्र—शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा, वाणिज्य, उद्योग, कृषि, उड्डयन, संचार, परिवहन, वातावरण, महासागरीय और भौमिक प्रसाधन, मौसम, आदि—प्रभावित हुए हैं।

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के लाभों को दो श्रेणियों—'प्रत्यक्ष' और 'प्रादुर्भूत'—में बांटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी से पृथ्वी और उसके वायुमण्डल, सूर्य और ग्रह, सृष्टि और स्वयं मानव के विषय में जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

इस श्रेणी में योग प्रदान करने वाले मुख्य कारक उपग्रह हैं। इनमें भी, संचार और मौसम उपग्रह विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि सम्भावना की दृष्टि से, अन्तरिक्ष उड़ान का सबसे बड़ा उपयोग पृथ्वी का पर्यवेक्षण करने और ऐसी जानकारियाँ और आंकड़े प्राप्त करने में निहित है, जो हमारी अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने तथा प्राकृतिक संकटों के विरुद्ध सुरक्षा की व्यवस्था को सम्भव बनाने में सहायक हो सकें।

संचार के क्षेत्र में, जिस लाभ को व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है, वह है अन्तर्राष्ट्रीय टेलिविजन। 'इण्टेलसेट' की प्रणाली के अन्तर्गत, पृथ्वी से हजारों मील ऊपर अन्तरिक्ष में परिक्रमा कर रहे उपग्रहों की एक शृंखला के माध्यम से चन्द्र-तल पर मानव के अवतरण और विश्व क्रीडा-प्रतियोगिताओं जैसी घननाओं को कमरे में बैठकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

किन्तु, अपनी समस्त लोकप्रियता के बावजूद, टेलिविजन इण्टेलसेट के सम्पूर्ण कार्यक्रम के केवल 2 प्रतिशत का ही प्रतिनिधित्व करता है। उससे भी अधिक बड़ा लाभ अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य को मिल रहा प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ है। उपग्रहों की सहायता से दूरवर्ती संचार अधिक विश्वसनीय और सस्ता सिद्ध हो रहा है। इससे व्यावसायिक सम्पर्क सरल हो गये हैं और व्यवसायों की क्षमता में वृद्धि हो रही है। उदाहरण के लिए, इण्टेलसेट-3 के माध्यम से भारत अब कुछ ही सेकण्डों में विश्व के किसी भी देश से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। इस समय 80 से अधिक अदस्य-देश इण्टेलसेट से लाभान्वित हो रहे हैं।

पृथ्वी पर जीवन के स्वरूप को परिष्कृत करने में, अन्तर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष प्रयोग का एक महत्व-पूर्ण दृष्टान्त अमेरिकी मौसम उपग्रहों की प्रणाली द्वारा प्रस्तुत है। इस व्यवस्था का लक्ष्य मौसम की दो सप्ताह पूर्व सही-सही भविष्यवाणी करना है। यह एक ऐसी उपलब्धि है, जिससे कृषि, मत्स्यपालन, निर्माण, परिवहन, बाढ़-नियन्त्रण और तूफानों की रोकथाम के क्षेत्र में करोड़ों डालर मूल्य की बचत हो सकती है। आगे चल कर भविष्य में इसके फलस्वरूप, ऋतुओं में अनुकूल परिवर्तन और उनकी रोकथाम भी सम्भव हो सकती है।

मौसम उपग्रहों से 'संसूचनाएँ उपलब्ध होने के अलावा प्राणों की रक्षा भी होती है। 'कैमिले' नामक आधुनिक युग के सबसे भयंकर तूफान का पता लगा कर और उसके पक्ष का मानचित्र प्रस्तुत करके एक मौसम उपग्रह ने पूर्व चेतावनी द्वारा लाखों लोगों के प्राणों की रक्षा की और प्रभूत सम्पत्ति की रक्षा करने में सहायता प्रदान की।

उपग्रहों का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान शिक्षा के क्षेत्र में है, जहाँ वे अज्ञानता, भूख और रोग के विरुद्ध अभियान में सहायक सिद्ध होंगे। कुछ ही समय में, भारत अमेरिका के 'ए टी एस-एफ' उपग्रह के माध्यम से, जो हिन्द महासागर के ऊपर 35,680 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित होगा, संचालित विश्व की प्रथम प्रत्यक्ष टेलिविजन प्रसारण प्रणाली में भाग लेगा। इस कार्यक्रम से भारत के 5,000 ग्राम लाभान्वित होंगे।

अर्थ रिसोर्सेज टेक्नोलाजी सैटेलाइट ('अर्ट्स-ए') जो 23 जुलाई, 1972 को अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त हुआ, अमेरिका में फसलों और वनों के विकास और स्वास्थ्य की, जलाशयों में तलछट के संग्रहों की, तथा समुद्र में हिम के वितरण की जाँच-पड़ताल कर रहा है। वह जलीय और वातावरणीय प्रदूषण, तथा दावाग्नि की तत्काल चेतावनी देने के अलावा, पेय जल के स्रोतों, मछली के शिकार के सम्भाव्य क्षेत्रों, तथा खनिजों और तेल की सम्भाव्य खानों के सुराग प्रदान करता है।

इसके अलावा, 'अर्ट्स-ए' पृथ्वी की ऐसी स्थितियाँ और बनावटों की जानकारी भी दे रहा है, जिनके विषय में पहले बहुत ही कम अथवा कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं थी। यह हर सप्ताह पृथ्वी के बारे में कई हजार चित्र और अन्य आंकड़े सम्प्रेषित करता है। अमेरिका द्वारा वितरित इन चित्रों और सूचनाओं का विश्लेषण 30 राष्ट्रों के 300 वैज्ञानिक कर रहे हैं।

1958 में अमेरिका में अन्तरिक्ष कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर अब तक अन्तरिक्ष-अनुसन्धान से सम्बद्ध 30,000 से अधिक आविष्कार हो चुके हैं। वे अनुसन्धान के 'प्रादुर्भूत' लाभों की श्रेणी में आते हैं।

सबसे अधिक और महत्वपूर्ण प्रगति चिकित्सा के क्षेत्र में हुई है। अन्तरिक्षीय प्रौद्योगिकी का उपयोग करके चिकित्सक अब ऐसे उपचार करने में समर्थ हैं, जिनकी अबसे 10 या 15 वर्ष पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। वह दिन भी दूर नहीं, जब अन्तरिक्ष में अस्पताल संचालित होंगे, जहाँ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण और कीटाणुओं से मुक्त स्थितियों में ऐसे उपचार सम्भव हो सकेंगे, जो पृथ्वी पर सम्भव नहीं। हृदय विकार से पीड़ितों और आग से जले रोगियों के उपचार की दृष्टि से यह सम्भावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान से प्रादुर्भूत चिकित्सा सम्बन्धी कुछ प्रमुख लाभों में, निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

—संचरण के लिए एक पहियेदार कुर्सी, जिसके द्वारा चल फिर सकने में असमर्थ लोग दूसरों से सहायता लिये बगैर, केवल अपनी आंखें घुमा कर सीढ़ियों पर चढ़ सकते हैं, या उनसे उतर सकते हैं।

— एक प्रणाली, जो एक चलती एम्बुलैस गाड़ी पर सवार रोगी के हृदय-संकेतों को अस्पताल में उसके पहुँचने से पहले ही अस्पताल तक सम्प्रेषित कर देती है। इस प्रकार, अस्पताल के डाक्टरों को रोगी की दशा की अग्रिम सूचना मिल जाती है और वे पहले ही से उपचार की तैयारी कर सकते हैं। हृदय रोग के पीड़ितों के उपचार में यह प्रणाली विशेष रूप से सहायक है।

— 'नैसा' ने अन्तरिक्षयात्रियों को चन्द्रतल पर पैदल चलने का पूर्व-पशिक्षण प्रदान करने के लिए एक 'रिड्यूम्ड ग्रेविटी सिमुलेटर' नामक उपकरण विकसित किया है। यह उपकरण अब पंगु लोगों को चलना-फिरना सिखाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

—सूई की नोंक से भी छोटे आकार का एक सेंसर, जिसे किसी नस या नाड़ी में प्रविष्ट करके, रक्तप्रवाह में कोई रुकावट डाले बगैर ही रक्तचाप का माप किया जा सकता है।

—एक वाष्प-प्रणाली, जो सांस और पसीने से आक्सीजन को पुनः संसोधित और संग्रहीत कर लेती है। यह प्रणाली अस्पतालों और घरों में प्रयोग के लिए एक वहनीय आक्सीजन उत्पादक यन्त्र सिद्ध हो सकती है। खानों, गुफाओं, हवाई हमले से बचाव के लिए बनी खाइयों में भी उसका प्रयोग किया जा सकता है।

शिक्षा एक अन्य क्षेत्र है, जो अन्तरिक्ष-अनुसन्धान द्वारा विशेष रूप से लाभान्वित हुआ है। अन्तरिक्ष कार्यक्रम प्रारम्भ होने के थोड़े ही समय के भीतर विज्ञान की शिक्षण विधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पाठ्यक्रम परिवर्तित हुए और नयी गणित और भौतिकी का प्रादुर्भाव हुआ। 'नैसा' ने विश्वविद्यालयों और स्कूलों

के माध्यम से इन सबके लिए प्रोत्साहन प्रदान किया। अब बहुत से स्कूल अन्तरिक्ष कार्यक्रमों में दिलचस्पी ले रहे हैं। स्काईलैब पर हो रहे कितने ही प्रयोगों का सुझाव अमेरिका के हाईस्कूल के छात्रों ने दिया है।

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के फलस्वरूप उपभोक्ताओं के लाभार्थ भी अगणित नयी वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ है। इनमें टिकाऊ और अग्निरोधक रंगरोगन, धात्विक मिश्रण, विद्युदाणविक पुर्जे, औद्योगिक उपकरण, अदह्यमान वस्त्र, छोटे हाथ के आकार के टेलिविजन कैमरा, आदि मुख्य हैं।

'नैसा' ने संगणक प्रौद्योगिकी विकसित करने में भी महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है। अन्तरिक्ष-कार्यक्रम के प्रथम 10 वर्षों के भीतर इस उद्योग में 1,400 प्रतिशत वृद्धि हुई। अब संगणक व्यवसाय का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। अन्तरिक्ष एजेंसी सस्ते संगणक-कार्यक्रम सुलभ करके उसके विकास में योग दे रही है।

विद्युत शक्ति के नये स्रोतों की खोज बराबर जारी है। आशा है कि उसके फलस्वरूप, अपोलो कार्यक्रम में प्रयुक्त फ़्युएल सेलों को अलग-अलग पड़े दूरस्थ क्षेत्रों के फार्मों और घरों में बिजली की पूर्ति के लिए प्रयुक्त करना सम्भव हो जायेगा।

वायु-अन्तरिक्षीय अनुसन्धान से ऐसे उपकरणों के आविष्कार की सम्भावना है, जिनसे मोटरगाड़ियों और ट्रेनों की दुर्घटनाएं रोकने, नगरों में शोरगुल कम करने, वायु-प्रदूषण को मूल स्रोत पर ही उन्मूलित करने, कचड़े और अपशिष्ट पदार्थों को ठिकाने लगाने, जल शुद्ध करने, आदि में विशेष सहायता मिल सकेगी।

बार-बार, प्रयुक्त हो सकने वाली स्पेस शटल, शायद, वर्तमान दशाब्द में अन्तरिक्ष कार्यक्रम की सबसे महत्वपूर्ण देन सिद्ध होगी। इसके द्वारा वे लोग भी जो अन्तरिक्षयात्री नहीं होंगे, अन्तरिक्ष की सैर कर सकेंगे।

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान से अभी भी जो लाभ प्राप्त होने वाले हैं, उनका स्वरूप चाहे जो भी हो, किन्तु इतना निश्चित है कि कार्यक्रम पर्याप्त मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से चलाये जायेंगे सहयोगी अन्तरिक्ष-उड़ानों और भूतल स्थित परियोजनाओं में 90 से अधिक देश नैसा के साथ सहयोग कर रहे हैं। कौन जानता है? हो सकता है कि आगे चल कर अन्तरिक्ष-अनुसन्धान कार्यक्रम का सबसे बड़ा लाभ विश्व-शान्ति के रूप में ही उभर कर सामने आये।

भारत में शोध कार्य की प्रगति

जगदीश प्रकाश

किसी भी देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वहाँ पर वैज्ञानिक परिशोध के लिए पर्याप्त मात्रा में नियोजन किया जाय। आज जो समुन्नत देश हैं उनके विकास में ऐसे शोध-कार्यों का बहुत बड़ा हाथ रहा है और अब भी वे अपने राष्ट्रीय आय का एक निश्चित भाग इस पर व्यय करते हैं। भारत जैसे अल्प-विकसित देशों के लिए भी यह केवल उचित ही नहीं परन्तु परमावश्यक है कि वे पर्याप्त मात्रा में इसके लिए विनियोजन करें। परन्तु खेद है कि हमने अभी भी इसकी महत्ता को स्वीकार नहीं किया है और शिक्षा एवं शोध कार्यों पर यथावश्यक विनियोजन नहीं कर रहे हैं। यह सही है कि हमें यह लाभ प्राप्त है कि हम समुन्नत देशों द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक तथा तकनीको ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं परन्तु देश की परिस्थितियों में भिन्नता होने के कारण यह भी आवश्यक है कि हम देश की परिस्थितियों के अनुकूल यथावश्यक तकनीकी का विकास करें। हमें विदेशी तकनीको का बिना सुधार किए हुए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

हमारे देश में औद्योगिक शोध का कार्य सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों में ही किया जा रहा है, परन्तु अभी भी निजी उद्योगपतियों तथा व्यवसायियों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। केवल कुछ गिने-चुने बड़े-बड़े औद्योगिक गृह ही इस क्षेत्र में कुछ निवेश कर रहे हैं। आश्चर्य की बात है कि देश का वार्षिक औद्योगिक उत्पादन लगभग 8,000 करोड़ रुपया है परन्तु शोध के लिये 0·5 प्रतिशत भी इनके द्वारा व्यय नहीं किया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में, इसका भार वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोध परिषद (CSIR) के ऊपर है। इसका प्रमुख उद्देश्य देश के उद्योगों को नवीन वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त कराने में सहायता पहुँचाना है जिससे वे अपने उत्पादन को पर्याप्त मात्रा में कम लागत पर बढ़ा सकें। यह परिषद् इन उद्योगों द्वारा निदेशित समस्याओं पर भी शोध कार्य कराती है। विदेशी वस्तुओं के स्थान पर देशी वस्तुओं के प्रयोग के निर्माण में सहायता देने में भी यह संलग्न है। कृषीय तथा औद्योगिक बरबाद वस्तुओं (wastes) का समुचित उपयोग कैसे हो इस दिशा में भी यह कार्य कराती है। साथ ही साथ विदेशी तकनीकी जानकारी को देश की परिस्थितियों के अनुसार ढालने में भी इसका प्रयास जारी है।

इस परिषद के अन्तर्गत 34 संस्थान हैं जो कि विभिन्न क्षेत्रों में शोध-कार्य में संलग्न हैं। परिषद के अन्तर्गत विभिन्न प्रयोगशालाओं द्वारा अपनाये गये विभिन्न प्रायोजनाओं की संख्या में वृद्धि होती रही है। 1966 में इन प्रायोजनाओं की संख्या 582 थी जो 1970 में बढ़कर 778 हो गई थी परन्तु 1971 में ये घटकर 622 हो गई थीं। वैसे इस परिषद के द्वारा किए गए व्यय में वर्ष प्रति-वर्ष वृद्धि होती रही है। 1968 में, परिषद का कुल व्यय 19·45 करोड़ रुपये था जो कि 1971 में बढ़कर 23·70 करोड़ रुपये हो गया और अनुमान है कि 1972 और 1973 में क्रमश: 28·04 करोड़ रुपये तथा 2[illegible]·46 करोड़ रुपये होगा।

परिषद के द्वारा दायर की गई पेटेण्ट की संख्या में भी, 1969 को छोड़कर, वृद्धि होती रही है। 1968 में इन पेटण्टों की संख्या 113 थी जो 1966 में घटकर 48 रह गई थी परन्तु फिर 1970 में बढ़कर 148 हो गई। 1972 में इनकी संख्या 185 थी।

जहाँ तक देश में R & D पर किये जाने वाले

व्यय की बात है इसमें भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। साथ ही, शोध पर किए जाने वाले प्रति व्यक्ति व्यय में भी निरन्तर वृद्धि होती रही है। परन्तु यदि हम इसकी तुलना अन्य देशों में इस मद पर किए जाने वाले व्यय से की जाय तो वह अपर्याप्त है। जैसा कि निम्नलिखित तालिका से ज्ञात होगा, R & D पर किया जाने वाला व्यय 1958-59 में 29 करोड़ रुपये से बढ़कर 1965-66 में 85 करोड़ रुपये हो गया। इसमें निरन्तर वृद्धि होती रही है और 1971-72 तक यह बढ़कर 215 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार 1958-59 की अपेक्षाकृत 1971-72 में 7 गुने से भी अधिक व्यय किया गया।

भारत में R & D का विकास

वर्ष	R & D पर किया गया कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	प्रति व्यक्ति शोध सम्बन्ध व्यय (रु०)	राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में R & D पर किया गया व्यय
1958-59	29	0·78	0·25
1965-66	85	1·79	0·39
1968-69	131	2·56	0·44
1969-70	146	2·79	0·44
1970-71	173	3·22	0·48
1971-72	215	3·91	0·54

स्रोत : The Economic Times, अक्टूबर 4, 1973 पृष्ठ 5

उपर्युक्त तालिका को देखने से यह ज्ञात होता है कि प्रति व्यक्ति शोध एवं उन्नति सम्बन्धी व्यय में भी वर्ष-प्रति-वर्ष वृद्धि होती रही है। इसकी मात्रा 1958-59 में 78 पैसे से बढ़कर 1971-72 में लगभग 4 रु० हो गई और इस प्रकार इसमें 5 गुनी वृद्धि हुई है। परन्तु यदि इसकी तुलना विश्व के अन्य देशों से करें तो यह अपर्याप्त सा लगता है। उदाहरण के लिए 1960-61 में संयुक्त राज्य अमेरिका में इस पर किया गया प्रति व्यक्ति व्यय 400 रु० है, इंगलैंड में 160 रु० तथा रूस में 100 रुपये था। इस दृष्टिकोण से अभी अपने देश में इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना है।

राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में इस मद पर किये गये व्यय में भी वृद्धि होती रही है और यह 1958-59 में 0·25 प्रतिशत से बढ़ कर 1971-72 में 0·25 प्रतिशत हो गया और इस प्रकार इसमें भी दो-गुनी वृद्धि हुई परन्तु वास्तव में यह खेद की बात है कि इतने विशाल देश में जहाँ सरकार तेजी से समग्र विकास लाना चाहती है यह कितना कम है। ऐसी आशा की जाती है कि 1979 में, जबकि पंचम पंचवर्षीय योजना समाप्त होगी, यह प्रतिशत बढ़कर केवल 1 प्रतिशत हो पायेगा।

ऐसा अनुमान है कि हमारे देश में लगभग 12 लाख वैज्ञानिक एवं इंजीनियर हैं और इस प्रकार जनसंख्या में इनका अनुपात लगभग 1:450 आता है। जापान में भी इनका अनुपात लगभग इतना ही है (1:440)। परन्तु अनुसन्धानशालाओं में लगे ऐसे व्यक्तियों की संख्या जापान की अपेक्षाकृत कम है। वैसे विगत वर्षों की अपेक्षाकृत इनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है। यह 1958-59 में 20,724 से बढ़कर 1971-72 में 1,03,767 हो गयी। जहाँ तक पंजीकृत पेटेण्ट की बात है जापान में भारत से 30 गुना अधिक पेटेण्ट पंजीकृत कराये गये।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत वर्ष में विगत वर्षों में इस सम्बन्ध में प्रयास तो किया जाता रहा है परन्तु वह अपर्याप्त रहा है। साथ ही, अनुसन्धानशालाओं और उद्योगों एवं व्यवसाय के साथ आवश्यक तारतम्य स्थापित नहीं हो पाया है। यदि हमें अपने देश का विकास त्वरित गति से तथा देशी तकनीक के आधार पर करना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि इस दिशा में यथावश्यक अधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

●●

विज्ञान के नये चरण

(1) रोगी के ऊतकों से नये, अंगों का निर्माण

कैंसर द्वारा निकाले गये कण्ठ (लोरेक्स) के स्थान पर नया कण्ठ प्रत्यारोपित किये जाने की सम्भावना बढ़ रही है। इस सिलसिले में सिनसिनाटी विश्वविद्यालय में शोधकार्य किया जा रहा है। यहाँ डा० डोनाल्ड ए० शुमरिक स्वयं ऐसे रोगियों के ही ऊतकों से नये कण्ठों (स्वर-यन्त्र) का निर्माण करने में संलग्न हैं, जिनके कण्ठ कैंसर के कारण निकाल दिये गये हैं।

डा० शुमरिक को प्रयोगशाला में कुत्तों में कृत्रिम कण्ठ बनाने में सफलता प्राप्त हुई है। अब वह वनमानुषों पर इसका परीक्षण कर रहे हैं। यदि यह परीक्षण सफल रहा तो इसका प्रयोग मनुष्यों पर किया जायेगा।

(2) शीश प्रतिरोपण

गुर्दा, फेफड़ा तथा हृदय के प्रतिरोपण की ओर वैज्ञानिकों को बराबर सफलता प्राप्त हो रही थी और अब उन्होंने मनुष्य के शीश का प्रतिरोपण करने की दिशा में महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है? क्लीवलैंड मेट्रोपोलिटन जनरल हास्पिटल, क्लीवलैण्ड (यू० एस०ए०) के न्युरो सर्जन डा० राबर्ट व्हाइट ने जापान में हो रहे न्युरोलॉजिकल सर्जरी के पांचवें अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में यह सूचना दी है कि उन्होंने बन्दरों पर शीश प्रतिरोपण का प्रयोग किया है और उनमें से एक बन्दर 36 घण्टे तक जीवित रहा जो ऑपरेशन के बाद आंख को इधर उधर घुमा रहा था और खाने को जो दिया गया उसे चबा रहा था। डा० ह्वाइट का अनुमान है कि बन्दरों की अपेक्षा मानव में शीश प्रतिरोपण प्रविधि की दृष्टि से अधिक आसान है क्योंकि आकार में बड़ा होता है।

(3) कैंसर परीक्षण की पराश्रव्यकी विधि

पराश्रव्यकी (अल्ट्रासाउण्ड) तरंगों का औषधि के क्षेत्र में कई रूपों में बहुत दिनों से प्रयोग हो रहा है। वीसबाडेन डायग्नोस्टिक अस्पताल के प्रोफेसर अडलबर्ट गासा तथा अर्न्सट गेरहार्ड लोच ने पराश्रव्यकी पर आधारित एक ऐसी प्राविधि का विकास किया है जिसकी सहायता से पुरस्थ ग्रन्थि में पाये जाने वाले कैंसर का प्रारम्भिक स्थिति में ही निदान किया जा सकता है। इस विधि से रोगी को तनिक भी दर्द व कष्ट नहीं होता। पुरस्थ ग्रन्थि में होने वाले परिवर्तनों को आरम्भ में जान कर उपचार किया जा सकता है।

(4) मिट्टी की दीवार को जल-सह बनाना

भारत की 85% जनता गाँवों में रहती है और उनमें से 95% से अधिक लोग मिट्टी-कीचड़ से बनी दीवारों के मकानों में रहते हैं। वर्षा के मौसम में जल के कारण यह दीवारें काफी सीमा तक नष्ट हो जाती हैं और प्रत्येक वर्ष समय, श्रम तथा पूंजी का ह्रास होता है। सेन्ट्रल विल्डिंग रिसर्च इन्सटीट्यूट रुड़की, ने इन दीवारों को एस्फाल्ट पर आधारित जल-सह पदार्थ द्वारा इस योग्य बनाने की क्रिया का विकास किया है कि वर्षा का तथा खड़िया मिट्टी का प्रभाव इन दीवारों पर नहीं पड़ेगा। इस जल सह पदार्थ को दीवारों पर तीन चार वार छिड़का जाता है जिससे वह गहरे भूरे रंग की हो जाती है। मिट्टी में अवशोषित होकर यह पदार्थ, पानी, वर्षा तथा खड़िया से बचाव करता है। चूने में कोई आसंजक (adhesive) मिलाकर इन दीवारों की पुताई भी की जा सकती है।

(5) लेसर किरण द्वारा शल्यक्रिया

कण्ठ (लोरेक्स) की शल्य-चिकित्सा की विकट समस्या यह है कि कैंसरयुक्त अथवा कैंसर की सम्भावना युक्त ऊतकों को हटाते समय, इस सुकुमार अंग की कार्य-क्षमता समाप्त हो जाती है। अब कण्ठ की शल्य-क्रिया की इस कठिनाई का समाधान ढूंढ़ निकाला गया है। बोस्टन विश्वविद्यालय के शोधशास्त्री एम० स्टुअर्ट स्ट्रांग ने ऐसी विधि का विकास किया है जिसके अंतर्गत कण्ठ

[शेष पृष्ठ 21 पर]

विज्ञान वार्ता

(1) फौलिक एसिड विटामिन की कमी से अरक्तता रोग

एक वैज्ञानिक शोध से ज्ञात हुआ है कि फौलिक एसिड की कमी के कारण अरक्तता (अनीमिया नामक रोग होता है। फौलिक एसिड लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण करता है। इस रोग की चिकित्सा के लिए शरीर में रक्त पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि भोजन में ऐसी पोषक ताजी साग-सब्जियाँ और रसीले फलों की मात्रा बढ़ा दी जाये जिनमें फौलिक एसिड प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, तो अरक्तता रोग स्वयं ही दूर हो सकता है।

हाल ही में, न्यूयार्क नगर की एक प्रमुख चिकित्सा-पत्रिका, 'दि मेडीकल लेटर' में प्रकाशित एक शोध-पत्र से ज्ञात हुआ है कि भोजन को अधिक देर तक पानी में पकाये जाने के कारण उसमें फौलिक एसिड विटामिन नष्ट हो जाता है। और, जहाँ फलियाँ और चावल ही भोजन के मुख्य अंग हैं, जहाँ वैसे भी पोषक तत्वों की कमी होती है।

इस पत्रिका के अनुसार, अरक्तता एक आम रोग है। इसमें कहा गया है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि कुल गर्भवती महिलाओं की एक तिहाई से लेकर आधी संख्या तक अपने गर्भकाल के अंतिम तीन माहों तक फौलिक एसिड की कमी (अरक्तता) की शिकार हो जाती है। इसका कारण यह है कि तब गर्भस्थ शिशु को अधिक मात्रा में पोषक-तत्वों की आवश्यकता होती है वह इस आवश्यकता की पूर्ति माँ के शरीर में विद्यमान पोषक-तत्वों से करता है, जब कि माँ के शरीर में पोषक तत्वों अर्थात् फोलिक एसिड की पहले ही कमी होती है। इसलिए, साधारणतया, चिकित्सक अपने रोगी को फौलिक एसिड विटामिन अधिक मात्रा में देते हैं।

शरीर में फौलिक एसिड की आवश्यकता डी० एन० ए० तत्व के निर्माण के लिए भी होती है। फौलिक एसिड की कमी के कारण शरीर में रक्त कोशिकाओं के निर्माण में भी कमी होती है। विभाजन के लिए हर कोशिका में 'डी एन ए' नामक तत्व की दुगुनी मात्रा होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता तो कोशिकाओं के विभाजन की गति में शिथिलता आती है।

(2) ज्वार और बाजरे की कल्ले की मक्खी मिट्टी और बीज उपचार से रोकथाम

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिकों के अनुसार ज्वार और बाजरा की फसल में कल्ले की लगने वाली मक्खी की रोकथाम बीज की कार्बोफूरांन दवा से उपचारित करके या मिट्टी में फारेट के दाने मिलाकर की जा सकती है।

कल्ले की मक्खी की रोकथाम करके ज्वार की फसल से 20 क्विंटल और बाजरे की फसल से लगभग 14 क्विंटल प्रति हैक्टर की अतिरिक्त पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

ज्वार और बाजरा के 100 ग्राम बीज की उपचारित करने के लिए 5 ग्राम सक्रिय कार्बोफूरांन दवा की जरूरत पड़ती है। मिट्टी का उपचार करने के लिये बोआई करते समय खूटों में 10 प्रतिशत फारेट के दाने डालने चाहिए।

रागी की फसल को लगने वाली जैसिड़ की रोकथाम भी इस तरीके से की जा सकती है।

3—पित्त-पथरी की चिकित्सा

पित्तकारी के रोगी की चिकित्सा में प्रायः शल्य-क्रिया द्वारा पथरी को निकाल दिया जाता है। परन्तु

मैयो क्लिनिक के एक समाचार द्वारा अब खाने की एक दवा द्वारा, बिना शल्यक्रिया के ही, इस रोग का निदान सम्भव हैं। डा० जानसन एल० मेसल का कथन है कि केनोडिग्रोक्सीकोलिड एसिड की सीमित मात्रा के प्रयोग से पथरी रोग पर विजय पाना सम्भव हुआ है। इस दवा का चार महिलाओं पर परीक्षण करने पर आशानुकूल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

कैनेडिग्रोक्सीकोलिक एसिड रसायन मनुष्य के पित्त का प्रमुख रसायन है। डा० थिसल का कहना है कि इस दवा के कोई विषैले प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। परन्तु, उनका कहना हैं कि अभी भी इस बात की अत्यधिक आवश्यकता हैं कि यकृत और पैत्तज (कोटेस्टरौल) पर इसके सम्भावित प्रभावों की जांच के लिये काफी परीक्षण किये जाने चाहिए।

4—वर्फ़ के नीचे विशाल झीलें

स्कांट पोलर एंसर्च इन्सटीट्यूट के डा० जी० ग्रोस्वाक्ड तथा डा० डेक रॉबिन ने विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में यह सूचना दी है कि अण्टारटिका के 3 किलोमीटर मोटी बर्फ़ के नीचे 1-15 किलोमीटर चौड़ी झीलों की खोज की गई है। इनकी संख्या 17 बताई जाती है। इनके निर्माण की दो सम्भावनाएँ—भूमिगत उष्मा से गरमी पाकर अथवा ऊपर से वर्फ़ की विशाल चट्टानों के दाब को वर्फ़ का पिघलना। इस क्षेत्र में अणु हथियारों को दबा देने की योजना थी पर अब झीलों की खोज से वैज्ञानिकों को इस खतरा का आभास हो रहा है कि यदि यह झीलें नीचे नीचे समुद्र से मिली हैं तो इन हथियारों से हानिकर पदार्थ जल में पहुँच कर पुन: मानव के सम्पर्क में आ जायेगा।

5—बुढ़ापा और स्मरणशक्ति

जैसे-जैसे मनुष्य अधिकाधिक वृद्ध होता जाता है, नाम और घटनाओं के सम्बन्ध में उसकी स्मरण शक्ति में ह्रास आता जाता है। यह माना जाता है कि वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति में क्षीणता आने का कारण यह है कि इस आयु-काल में मस्तिष्क रक्त में से कम मात्रा में आक्सीजन ग्रहण कर पाता है और इससे स्मरणशक्ति प्रभावित होती है।

बफ़ेलो (न्यूयार्क) के वेटरन्स एडमिनिस्ट्रेशन हास्पीटल के डा० एलिनोर जैकेब और उनकी अनुसन्धान टोली ने वृद्धों पर प्रयोग करके पता लगाया है कि यदि ऐसे व्यक्तियों को एक हाइपरवैरिक चेम्बर (जो प्राय: एक दबावमुक्त कक्ष की भाँति होता है) में आक्सीजन प्रदान की जाये तो उनकी स्मरण शक्ति बढ़ाई जा सकती है। इस कक्ष में जैसे-जैसे अधिक आक्सीनयुक्त वायु का दबाव बढ़ता है, रक्त अधिकाधिक आक्सीजन ग्रहण करता है और उसे तेजी से मस्तिष्क में पहुँचाता है।

हाल ही में किये गये एक परीक्षण के अन्तर्गत 80 में से 70 व्यक्तियों को लाभ पहुँचा। अनुसन्धानकर्ताओं का कहना है कि यद्यपि उनकी स्मरणशक्ति में सुधार की गति एक समान नहीं रही, फिर भी एक बार स्मरणशक्ति तीव्र होने पर, वह कई सप्ताह और माह तक बनी रही।

(7) समुद्र के स्तर का उत्थान

युगों से अतलांतिक और प्रशान्त महासागरों में उत्थान-पतन की दृष्टि से समरूपता रही है। परन्तु, पिछले आठ वर्षों में इनकी सतहों में लगभग आठ सेण्टीमीटर का उत्थान आया है। अधिकांश वैज्ञानिक अभी भी यह जानने में असमर्थ रहे हैं कि समुद्र में इतनी तीव्रता से उत्थान आने का क्या कारण है।

अमेरिका के वाणिज्य विभाग के राष्ट्रीय महासागरीय एवं वातावरणीय प्रशासन ने अपनी एक रिपोर्ट में समुद्र के स्तर में उत्थान की सूचना दी है। यह सूचना उस अध्ययन पर आधारित है जो अमेरिका के मैन राज्य से लेकर वर्जिनिया राज्य तक के समुद्री तट पर स्थापित 150 तथ्य-संग्रह केन्द्रों द्वारा किया गया। समुद्री स्तर के अध्ययन से पता चला है कि पृथ्वी की तुलना में समुद्री स्तर में बराबर उत्थान आ रहा है। सबसे अधिक उत्थान अमेरिका के पूर्वी तट पर आया है।

वैज्ञानिकों में इस बात में मतभेद है कि समुद्री स्तर में उत्थान हो रहा है अथवा धरती का स्तर धस रहा है। परिणाम एक ही है, अब पहले की अपेक्षा अधिक भूमि पर समुद्र उत्प्लावित है। अधिकांश वैज्ञानिकों का विचार है कि इसके दोनों ही कारण हैं—वर्फ के पिघलाव के कारण समुद्र के स्तर में उत्थान आया है और धरती के गर्भ से अधिक मात्रा में पानी और खनिज तेल निकाले जाने के कारण उसका स्तर धंसा है।

इन्सुलिन : मधुमेह की रामबाण औषधि

"आज मधुमेह रोग के विषय में जितना अधिक अनुसन्धान किया जा रहा है, उतना पिछले 5 दशकों में कभी नहीं किया गया। मधुमेह की चिकित्सा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू भोजन पर नियन्त्रण रखना है। भोजन-सन्तुलन मधुमेह के नियन्त्रण का सर्वोत्तम उपाय है।"

मधुमेह की चिकित्सा में इन्सुलिन के प्रयोग की 15 वीं वार्षिकी पर, एक भाषण के दौरान उक्त विचार डा० अर्नाल्ड ए० लजारो ने व्यक्त किये। अनुसन्धानकर्त्ता और चिकित्सक, डा० लजारो, मिनेसोटा विश्वविद्यालय के चिकित्सा प्रोफेसर हैं। उनके अनुसार, इन्सुलिन का प्रयोग किये जाने से पूर्व अनेक रोगियों की अकाल-मृत्यु होती थी और अनेकों को जीवन पर्यन्त रोग-अभिशप्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

19.2 से पूर्व मधुमेह की चिकित्सा में केवल सन्तुलित भोजन पर ही जोर दिया जाता था। इससे रोगी की जीवनशक्ति क्षीण हो जाने के कारण, उसे अन्य अनेक रोग घेर लेते थे। तब, कनाडा के दो चिकित्सकों—डा० फ्रैडरिक बेण्टिंग तथा डा० चार्ल्स एच० वेस्ट—ने कृत्रिम इन्सुलिन की खोज की। तब से मधुमेह रोगियों को केवल चीनी की प्रचुरता वाले खाद्य पदार्थों को छोड़ कर और कोई निषेध नहीं रहा। कुछेक आन्तरिक प्रभावों को छोड़ कर, इन्सुलिन बहुत ही कारगर दवा सिद्ध हुई।

अग्न्याशय अथवा पाचक-ग्रन्थि (पेन्क्रयाज) उदर का सूक्ष्म सा अंग है। इसकी स्थिति उदर क्षेत्र में इत पीछे की ओर है कि चिकित्सक जाँच अथवा शल्यक्रिया के लिए इस तक कठिनाई से पहुँच पाते हैं। इसके कार्य और महत्व के बारे में बहुत समय तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं थी। सोचा जाता था कि क्या यह पाचन-क्रिया में काम आने वाले अंग हैं? शारीरिक क्रियाविधि में यह कौन सी मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है?

परन्तु, अब यह विदित हो गया है कि अग्न्याशय 'इन्सुलिन' नामक तत्व का निर्माण करता है। इस तत्व की अनुपस्थिति अथवा अनियमितता से शरीर में सर्करा (चीनी) की मात्रा असन्तुलित हो जाती है। चिकित्सक इसे 'ग्लूकोज का असन्तुलन' कह कर पुकारते हैं। यद्यपि अनेक वर्ष पूर्व ही ज्ञात हो गया था कि इन्सुलिन, चाहे प्राकृतिक, रक्त-सर्करा को सन्तुलित रखती है, तथापि चिकित्सक अभी तक यह जान पाने में समर्थ नहीं हैं कि मधुमेह रोग क्यों होता है? अब इस खोज की दिशा में भगीरथ प्रयास किये जा रहे हैं कि इन्सुलिन का निर्माण किस प्रकार होता है; यह किस प्रकार प्रवाहित होती है; तथा वे कौन से कारण हैं जिनसे इसका निर्माण और प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है?

मधुमेह एक ऐसा रोग है जो अनेक वर्षों तक रहता है। यह हर अवस्था तथा हर श्रेणी के व्यक्तियों में पाया जाता है। परन्तु तरुणाई में यह रोग होने पर इसके अन्य दुष्परिणाम भी दिखायी देते हैं, जैसे सूक्ष्म-रुधिर शिराएँ, गुर्दा, आँख, आदि का प्रभावित होना। उदाहरण के तौर पर, जैसा कि डाक्टरों का विश्वास है, अन्धेपन का एक कारण मधुमेह भी हो सकता है। दूसरे, इसके छः रोगियों में प्रायः एक को पैरों के संज्ञाहीन होने का रोग हो जाता है और वह उसके द्वारा पीड़ा अथवा ठण्डक को पहचानने में असमर्थ होते है, जिसका कारण रक्त-संचालन की अपर्याप्तता है!

डा० लजारो ने बताया कि पिछले एक या दो दशकों में मधुमेह की चिकित्सा में मुँह से खायी जाने वाली दवाओं का बहुत अधिक प्रयोउ किया जाता रहा है। इनमें से कुछेक इन्सुलिन निर्माण करने वाली कोशिकाओं को प्रभावित करके ईन्सुलिन के प्रवाह में

सहायक भी होती है। आसानी से प्रयोग में लायी जा सकने के कारण इनका अन्धाधुन्ध प्रयोग किया गया है। परन्तु, उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा कि पिछले अनेक वर्षों की खोजों से पता चला है कि ऐसे रोगियों की, जो निरन्तर इन औषधियों का सेवन करते थे, हृदय-वाहिका प्रभावित होने के कारण मृत्यु संख्या बढ़ रही थी। अतः इन औषधियों के लापरवाही से प्रयोग किये जाने पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा।

चिकित्सकों का विश्वास है कि मधुमेह रोग होने के करणों में 'वंशानुगतकारण' भी एक है। उदाहरण के लिये, यदि माता-पिता दोनों ही मधुमेह से पीड़ित हैं, तो यह बहुत सम्भव है कि उनकी सन्तान भी मधुमेह से पीड़ित हो। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि उनका बच्चा इस रोग को लेकर ही जन्मे। हो सकता है कि पचास वर्ष की आयु तक भी उसमें इस रोग के लक्षण न दिखायी पड़े। इसके वंशानुगत कारणों की प्रकृति का अभी तक पता नहीं लगाया जा सका है।

मधुमेह के रोगियों में इस रोग की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ और लक्षण दिखायी देते हैं। प्रौढ़ अथवा 50 वर्ष से अधिक आयु वाले रोगी प्रायः स्थूलकाय होते हैं, जबकि बच्चों में इसके कोई बाह्य लक्षण दिखायी नहीं देते। बच्चों को ही इन्सुलिन चिकित्सा से अधिक लाभ होता है। पाया गया है कि इसके रोगियों में इन्सुलिन उत्पादक कोशिकाएँ पर्याप्त नहीं होतीं। यदि यह होती भी हैं तो आवश्यक मात्रा में इन्सुलिन प्रवाहित नहीं कर पातीं। इस सम्भावना पर भी विचार किया जा रहा है कि तरुणों और किशोरों में मधुमेह का कारण एक प्रकार का विषाणु है, जो इन कोशिकाओं को नष्ट कर देता है। साथ ही, सूक्ष्म रुधिर शिराओं और इनकी बनावट पर भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। ये शिराएँ एक प्रकार की झिल्लियों द्वारा आच्छादित रहती हैं। विचार है कि मधुमेह के कारण ये झिल्लियाँ मोटी हो जाती है।

इन्सुलिन निर्माणकारी कोशिकाएँ अग्न्याशय के एक छोटे से भाग में ही विद्यमान रहती हैं। ये अग्न्याशय का एक प्रतिशत—लगभग एक ग्राम—ही होती हैं, फिर भी, एक स्वस्थ व्यक्ति में ये इतनी मात्रा में इन्सुलिन का निर्माण करती है, जिससे सर्करा को पचा करो आवश्यक मात्रा में शक्ति उपार्जित कर सकें। डा० लजारो का कथन है: "यदि इन्सुलिन निर्माण की आधारभूत प्रकृति का पता लगाया जा सका, तो इन्सुलिन-प्रवाह के उत्तम ढंग और मधुमेह की चिकित्सा आज से अधिक उचित रूप में कर पाना सम्भव हो सकेगा।"

आजकल अनुसन्धान के क्षेत्र में, हर प्रकार के अंग-प्रत्यारोपण की अत्यधिक चर्चा है। अब कुछ शोधकर्ता मधुमेह के रोगियों में इन्सुलिन निर्माणकारी कोशिकाओं अथवा समूचे अग्न्याशय को ही प्रत्यारोपित किये जाने की कल्पना को मूर्तरूप देने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत, किन्हीं दानशील अथवा मृत व्यक्तियों के अग्न्याशय से इन कोशिकाओं को अलग करके, उन्हें प्रयोगशाला के अन्दर टेस्टट्यूबों में रख कर कृत्रिम तौर पर बढ़ाये जाने पर मधुमेह रोगियों में प्रत्यारोपित किये जाने की सम्भावना की जा रही है। आजकल इसका परीक्षण पशुओं पर किया जा रहा है।

वैज्ञानिकों के अनुसार, इस दिशा में कठिनाई यही है कि सभी अंग-प्रत्यारोपण के मामलों में एक व्यक्ति के आन्तरिक तत्व (ऊतक) अन्य व्यक्ति के प्रत्यारोपित अंग को अस्वीकार कर देते हैं। यदि इस समस्या पर विजय प्राप्त हो जाती है, तो प्रत्यारोपण द्वारा मधुमेह के रोगियों की अति व्यावहारिक चिकित्सा सम्भव हो सकेगी। इसके माध्यम से इन्सुलिन-प्रवाह में बाधक कोशिकाओं के स्थान पर स्वस्थ और सुप्रवाह कोशिकाओं की प्रतिस्थापना की जा सकेगी। इस रोग के निदान में मात्र इन्सुलिन का सुचारुप्रवाह ही आवश्यक है।

डा० लजारो का कथन है कि इन्सुलिन के पहले मनुमेह के रोगियों को अपने जीवन की आशा एक-दो वर्ष ही रहती थी। परन्तु, अब मधुमेह की सफल चिकित्सा के कारण व्यक्ति अपना पूर्ण और सामान्य जीवन जीता है। हमारे सामने ऐसे कई उदाहरण हैं कि व्यक्ति 40 वर्ष से अधिक समय से इन्सुलिन का

टेनिस खेलना उस समय प्रारम्भ किया था, जब उसे ज्ञात हुआ कि उसे मधुमेह रोग है। वास्तव में, उनके चिकित्सक ने ही उन्हें यह सुझाव दिया था कि इस रोग पर विजय पाने के लिए उन्हें व्यायाम के रूप में टेनिस खेलना चाहिये। और सच ही, वह उचित चिकित्सा और व्यायाम के माध्यम से एक उच्चकोटि के खिलाड़ी बन सके।"

मधुमेह रोग के क्षेत्र में 'नई खोजों द्वारा जो तथ्य प्रकाशित हुए हैं, उनमें जहाँ इसकी चिकित्सा में इन्सुलिन एक अति कारगर दवा है, वहीं सन्तुलित भोजन, नियन्त्रित वजन, स्वास्थ्यकारी व्यायाम और संयमित जीवन द्वारा इस रोग पर विजय पायी जा सकती है। ये कुछ ऐसे निदान हैं जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक हैं, और इनका पालन करना हमारे लिये सदा लाभकारी है।

प्रयोग कर रहे हैं और उन्हें कभी कोई विशेष शिकायत नहीं हुई है। 40 वर्ष से अधिक समय से इस रोग को भोगने वालों में कुछ चिकित्सक और अनुसन्धानकर्ता भी है, जो मधुमेह के क्षेत्र में अति उपयोगी कार्य कर रहे हैं। खिलाड़ी भी इसके अच्छे प्रमाण हैं। खिलाड़ी अपने वजन पर सन्तुलन द्वारा मधुमेह पर नियन्त्रण रखते हैं। निश्चय ही, व्यायाम द्वारा इसे भली प्रकार नियन्त्रित किया जा सकता है।

उनका कहना है: "यह एक रोचक बात है कि जब मधुमेह की चिकित्सा में इन्सुलिन कीबड़ी आवश्यकता होती है, तब एक मधुमेह रोगी को, जो दिन में काफी व्यायाम करता है, कम मात्रा में इन्सुलिन लेने का सुझाव दिया जाता है निश्चय ही व्यायाम के कारण शरीर को इन्सुलिन की अधिक आवश्यकता नहीं रहता। एक प्रमुख टेनिस खिलाड़ी, श्री टालबोट, ने

●●

[पृष्ठ 18 का शेषांश]

की शल्य-चिकित्सा में साधारण शल्य-छुरी का प्रयोग न करके, लेसर-किरण—अत्यधिक तीव्र प्रकाशवान किरण—का प्रयोग किया जाता है।

डा० स्ट्रांग का कथन है कि लेसर-किरण द्वारा शल्य-क्रिया के कई लाभ हैं। एक, इस प्रक्रिया द्वारा शल्य-क्रिया में घाव बहुत जल्दी भर जाता है; दूसरे, इसके द्वारा ऊतकों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है; और तीसरे, इस क्रिया में कैंसरयुक्त ऊतकों को इतनी सूक्ष्मता के साथ अलग किया जा सकता है कि रोगी के स्वर को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचता।

●●

प्रकृति का रहस्य—कोहूटेक पुच्छल तारा

पुच्छल तारा के प्रकट होने का समाचार सदैव ही वैज्ञानिकों तथा साधारण मनुष्यों को एक प्रकार से रोमांचित कर जाता है। यही बात 1910 में हुई थी जब सन् 1910 में 50 मील प्रति सेकण्ड के वेग से चलता हुआ हैली पुच्छल तारा उदय हुआ था। हैम्बुर्ग एस्ट्रोनामिकल लैबोरेट्री के डा० लुबोस कोहूटेक ने एक अन्य पुच्छल तारा की खोज की थी और इसका नाम भी इसी वैज्ञानिक के ही नाम पर कोहूटेक पुच्छल तारा पड़ा। इस वैज्ञानिक की गणना के अनुसार नवम्बर के प्रथम सप्ताह में यह पुच्छल तारा नभमण्डल पर उदय होने वाला था पर वैटिकन के देव. मार्टिन मैकार्थी के अनुसार अब यह नवम्बर के अन्त या दिसम्बर के आरम्भ में उदय हो रहा है। यह पुच्छल तारा इस शतक का सबसे बड़ा तथा सबसे चमकदार पुच्छल तारा होगा जिससे आंख से देखा जा सकेगा क्योंकि इसकी चमक हैली की चमक से दस गुना होगी। सौर-मण्डल के निर्माण के बारे में विशेष सूचनाएँ प्राप्त हो सकेंगी ऐसी आशा की जाती है।

दूरदर्शी से देखने पर यह पुच्छल तारा वर्फ के गंदे गेंद की तरह लगता है जिसके चारों ओर धूल तथा गैसों का 160,000 किमी० व्यास का चमकदार हैलो है और जिसकी पूंछ बहुत ही लम्बी है। यह दिसम्बर में उदय होकर फरवरी के अंत में अस्त होगा। 28 दिसम्बर के पूर्व सूर्योदय से $1\frac{1}{2}$ घंटा पहले दिखाई पड़ेगा और 28 दिसम्बर के पश्चात् सूर्यास्त के शीघ्र बाद इसे देखा जा सकता है। अमरीका के वैज्ञानिक राडार की सहायता से इस पुच्छल तारा की चौड़ाई नापने की तैयारी कर रहे हैं। नासा के वैज्ञानिक इस पुच्छल तारा से संबंधित हरसंभव जानकारी अन्तरिक्ष यानों, कृत्रिम ग्रहों तथा स्काईलैब-3 की सहायता से प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। यह पुच्छल तारे लगभग उसी समय बने थे जब हमारा सौर-मण्डल निर्मित हुआ था। वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग 100000 करोड़ पुच्छल तारे हैं जो सूर्य से भिन्न-भिन्न दूरियों पर हैं। कोहूटेक पुच्छल तारा सूर्य के सबसे निकट आने पर 210 लाख किलोमीटर दूरी पर होगा जबकि हैली 880 लाख किलोमीटर की दूरी पर तथा बेनेट 770 लाख किलोमीटर दूर रहता है। पुच्छल तारा की कक्षा में गड़बड़ी पैदा होने पर यह धूल, गैसें, तथा जमा हुए पानी के टुकड़े सूर्य की ओर फेंकते हैं। कोहूटेक पृथ्वी से 350 लाख किमी दूर रहेगा फिर भी कुछ लोग यह आशा करते हैं कि कोई बहुत बड़ी दुर्घटना हो सकती है। पुच्छल तारा अपशकुन को भी प्रदर्शित करता है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3 5/

भाग 111 } फाल्गुन 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द अक्तूबर 1973 { संख्या 12

क्या सैकरीन भी हानिकारक है ?

डा० अरुण कुमार सक्सेना

टालवर्ट ने 1879 ई० में सैकरीन की खोज कर मानव जाति का बड़ा उपकार किया। इसी खोज के फलस्वरूप तिरानवे वर्ष से इस हाईड्रोकार्बन का शक्कर के स्थान पर बहुलता से उपयोग किया जा रहा है। इस पदार्थ में यह विशेपता है कि यह सरलतापूर्वक तथा साधारण ताप पर जल में घुलनशील है। यह मधुमेह के रोगियों के लिये, जिन्हें शक्कर बिल्कुल मना है, एक वरदान सिद्ध हुई है। इसके उपयोग करने वालों ने इस बात पर कभी ध्यान दिया है कि कहीं यह हानिकारक तो नहीं हैं ?

सैकरीन के उपयोग होने के पूर्व शक्कर के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले रासायनिक यौगिक साईक्लामेट थे और वे अभी तक उपयोग में लाये जा रहे थे। इन पदार्थों के उपयोग 1969 ई० में अवैध घोषित कर दिये गये। डुलचिन तथा पी 4000 को कुप्रभावों के कारण एकदम बन्द कर दिया गया है। इन पदार्थों का उपयोग चूहों की खुराकों में किया गया था। शोधकार्यों से यह तथ्य सामने आया कि उन चूहों के आमाशयों में ये पदार्थ अर्बुद बनाने में सहायता करते हैं जो आगे चल कर कैंसर जैसे भयंकर रोग में परिवर्तित हो जाते थे।

अमरीका के फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन ने सैकरीन को भी जी आर ए एस (Generally Recognized as safe) वाली सूची से निकाल देने का प्रस्ताव रक्खा है इसके उपयोग को भी सीमित कर देने की राय दी है। केवल बालिगो के लिये दिन भर में एक ग्राम सैकरीन उपयोग करने की सलाह दी है। इस घोषणा से पचास करोड़ डालर की खाद्य सामग्रियाँ बनाने वाली अमरीकी कम्पनियों को एक गहरा धक्का लगा है क्योंकि बहुलता से उपयोग करने वाले मधुमेह के रोगियों में खलबली सी मच गई। इस घबराहट के कारण थे शोध कार्य।

अमरीका के विसकानसिन एल्युमनाई रिसर्च फाउंडेशन ने बीस चूहों की खुराकों में पांच प्रतिशत सैकरीन का उपयोग दो वर्ष तक किया फिर उन चूहों को मार कर उनके आमाशयों की परीक्षा की। बीस में तीन चूहों के आमाशयों में अर्बुद पाये गये। अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि इन अर्बुदों के बनने का कारण क्या द्वेषिता है। अनेक वैज्ञानिकों को इन प्रयोगों की सत्यता पर शक हुआ क्योंकि यह शोध कार्य केवल अमरीका की सुगर रिसर्च फाउन्डेशन की देख-रेख में हुआ था। इन वैज्ञानिकों का मत है कि कितना सैकरीन एक चूहे को प्रतिदिन दिया गया उतना सैकरीन शर्बत जैसे हलके पेय पदार्थों के रूप में एक मनुष्य को 875 बोतल लेने पर मिलेगा ! फिलेडेल्फिया के जेफर्सन मेडिकल कालेज के डा० जूलियस एम० कून, जो कि नेशनल एकेडेमी आफ साइंसेज के पैनल के चेयरमैन थे, का मत है कि सैकरीन हानिकारक नहीं है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि मनुष्य तथा जानवरों के चयापचय के कार्य कलापों में समानता नहीं है इस कारण जो पदार्थ जानवरों में अर्बुद बनाते हैं वे संभव हो कि मानव शरीर में दूसरा प्रभाव डाल दें।

अमरीका के फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन सैकरीन के उपयोग पर शीघ्र प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता है क्योंकि विसकानसिन के अतिरिक्त सात और अन्य प्रयोगशालायें चूहों आदि पर सैकरीन के प्रभावों के अध्ययन में जुटी हैं और उन्हें अपने अपने प्रयोगों के आधारों पर रिपोर्ट देने में समय लगा।

एफ डी ए ब्यूरो आफ फूड के डायरेक्टर डा० विर्जिल ओ वोडिका का कथन है कि इन प्रयोगशालाओं के प्रयोगों ने यदि तनिक भी यह सिद्ध किया कि सैकरीन कैंसर के अर्बुद बनाने में सहायता करता है तो सैकरीन के उपयोगों की कहानी भी यहीं समाप्त हो जायेगी। मधुमेह के रोगियों के लिये इसे चिकित्सकों की सलाह से दिया जायेगा और शरीर को सुन्दर बनाने तथा भार कम करने वाले इसके उपयोग से वंचित हो जायेंगे।

अमरीका की तीन बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ जो इसका धड़ल्ले से बिक्री कर बड़ी मात्रा में उत्पादन करने में जुटी हुई हैं एकदम बन्द हो जावेंगी। इनमें से शिरविन-विलियम कम्पनी भी एक है। इसके एक उच्च अधिकारी का मत है कि साइक्लामेंट आदि पर प्रतिबन्ध लगा तो मानव मात्र के सहायतार्थ सैकरीन सामने आई किन्तु, अब इस पर प्रतिबन्ध लगा तो इसकी पूर्ति करने वाला कोई भी पदार्थ नहीं है। बेचारे सुन्दर बनने वालों को कुरूप बन कर रहना पड़ेगा और विश्व में मुटापा बढ़ जायगा।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
15, कटरा रोड, इलाहाबाद-2 यू० पी०

रसायन के अध्ययन-अध्यापन में हिन्दी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

स्वतंत्र होने के पूर्व समग्र भारत हिन्दी का पक्षधर था किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद क्रमशः एक-एक करके विभिन्न प्रान्त हिन्दी के विरोधी बनते गये। अन्त में कुल पांच राज्य ऐसे बचे रहे जिन्हे "हिन्दी-प्रान्त" के नाम से अभिहित किया गया। ये हैं—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार तथा हरियाणा। इन प्रदेशों द्वारा हिन्दी साम्राज्यवाद चलाने और अन्य प्रान्तों पर हिन्दी लादने का अभियोग लगाया गया। प्रतिद्वन्दियों में अनेक विरोधी आन्दोलन चलाये गये, किन्तु यदि वास्तविकता का विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि इन राज्यों के मत्थे बदनामी ही मढ़ी गयी है। इनमें हिन्दी के संवर्धन की दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाये गये। उल्टे इन पर अंग्रेजी का ऐसा व्यामोह फैला कि 1947 के पहले से भी दशा बुरी हो गई।

कोई भी भाषा जो राष्ट्रभाषा पद पर सुशोभित होती है उसे यह अधिकार मिलता है कि वह यथा शीघ्र उच्च शिक्षा तक का माध्यम बन सके। दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसा अभी तक नहीं हो पाया। 25 वर्षों के बाद भी हम वहीं के वहीं रह आये हैं। स्वतन्त्रता के पहले राष्ट्रीय भावना के वशीभूत हमने जितनी भी तैयारी की थी, वह वहीं की वहीं धरी रह गयी है। विश्वविद्यालयों ने हिन्दी के लिए अपने 'प्रवेश-द्वार' बन्द कर रखे हैं। हां, सिद्धान्त रूप में चर्चा चलती रहती है कि हिन्दी के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन शुरू हो। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि इस प्रकार से सोचते-विचारते हुए हमने एक दशक से भी अधिक अवधि बिता दी है। स्वार्थ-सुविधा के लिए उच्चमाध्यमिक स्तर तक हम ने हिन्दी-करण की हिमायत की है। क्योंकि पाठ्य-पुस्तकें परीक्षकत्व जैसे आकर्षण हमारे समक्ष बारम्बार आते रहे हैं किन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर हमने हिन्दी के प्रवेश को ठुकराया है। इस विरोध के समर्थन में मुख्य रूप से दो बातें बारम्बार दुहराई गई हैं—शिक्षा-स्तर में ह्रास की आशंका तथा हिन्दी में मौलिक वैज्ञानिक साहित्य का अभाव।

जरा कल्पना कीजिए कि उन शिक्षा-शास्त्रियों के भाषा सम्बन्धी विचारों पर जिन्होंने देश में हिन्दी के माध्यम से शिक्षा-दीक्षा के प्रबन्ध की संस्तुति की, जिन्होंने पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की दिशा में सक्रिय योग दिया, जिन्होंने मौलिक ग्रन्थों के लेखन एवं अनुवाद किए जाने पर बल दिया, हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों के माध्यम से उच्चस्तरीय साहित्य सृजन किए जाने का अनुमोदन किया, क्या उनके सारे के सारे सपने भंग होकर रह जावें? क्या हमें उच्चमाध्यमिक स्तर तक हिन्दी के माध्यम से शिक्षा पाये हुए लाखों छात्रों की भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों की उपेक्षा नहीं कर रहे हैं? क्या हमने अपने पुत्र-पुत्रियों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने से विरत किया? क्या हमने भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रतियोगिता के लिए हिन्दी वरीयता दिलाने की आवाज उठाई? ये ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनके उत्तर पूरी तरह से नहीं दिये जा रहे हैं।

आज उन समस्त हिन्दी-प्रेमियों या हिन्दी के पक्षधरों का मस्तक लज्जा से नत हो जाता है जिन्होंने आजीवन हिन्दी को समुन्नत एवं समर्थ बनाने की दिशा में कोई कसर नहीं उठा रखी। शायद वे 'अतिवादी' करार कर दिए जाते हैं।

राष्ट्र के कर्णधारों के समक्ष वैज्ञानिक प्रगति प्रारम्भ से ही सर्वोपरि रही है। इसके लिए हम विदेशों के मुखापेक्षी बनते चले आए हैं। अंग्रेजी के माध्यम से हमने 'ज्ञान के वातायन' के उस पार झांका है। अधिकांश राजनीतिक नेताओं का यही विचार रहा है कि अंग्रेजी के बिना वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति हो पानी कठिन है। बात आज के लिए चरितार्थ हो सकती है किन्तु क्या भविष्य में भी ऐसा ही होता रहेगा ? यदि हिन्दी को पूरी शक्ति के साथ ग्रहण नहीं करने दिया जायेगा तो भावी भारत के सामने एक-एक करके न जाने कितनी कठिनाइयां आवेंगी। क्या रूस, चीन, जापान, स्वीडन, इटली, स्पेन— इन राष्ट्रों में अपनी-अपनी भाषाओं में वैज्ञानिक शिक्षण एवं कार्य-कलाप नहीं होते ? क्या इन्होंने कभी यह घोषित किया कि उनकी भाषायें इसके लिए अक्षम हैं ? शायद भाषा नीति के सम्बन्ध में हम अमरीका तथा ग्रेट ब्रिटेन से अधिक प्रभावित होते आये हैं। किन्तु यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या भारत रूस सन्धि से यही संतुलन पलटेगा नहीं ? क्या अब हम रूसी भाषा पर अधिकाधिक बल नहीं देंगे ? तात्पर्य यह कि पराधीनताकाल में जिस तत्परता से हम पर अंग्रेजी लादी गई हम आज भी उसी की चकाचौंध से हतप्रभ हैं।

हिन्दी में अध्ययन-अध्यापन का उपयुक्त समय—

अब ऐसा सुयोग आ पहुँचा है, जब हम एक ही साहसिक छलांग में विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण के लिए हिन्दी को मान्य करा सकते हैं। अब द्विधा से काम चलने वाला नहीं है। हमें त्याग, संकल्प एवं सेवा भाव से हिन्दी को उन्नत बनाना होगा। भाषा तो मात्र साधन हुआ करती है। राष्ट्रीयता का तकाजा भी यही है कि हिन्दी में ही सारा अध्ययन-अध्यापन हो। हिन्दी सीखने में आना-कानी का कोई अर्थ नहीं होगा। भारतीय वैज्ञानिकों के लिए तो यह अतीव सुगम मार्ग होगा। उनके समक्षएक उज्ज्वल अतीतकालीन भारतीय परम्परा है, उनके समक्ष आधुनिक विज्ञान की हिन्दी परिभाषिक शब्दावलियां हैं, उनके समक्ष विदेशी मानक पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद हैं और वैज्ञानिक विषयों में पारंगतों के हिन्दी ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। यदि किस वस्तु की कमी है तो वह 'चाह' है, और जहां चाह है वहां राह है।

रसायन और हिन्दी—

इसे आप सौभाग्य ही समझें कि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में से रसायन ऐसी शाखा है जिसमें हिन्दी में सर्वाधिक सामग्री उपलब्ध है। चाहे स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर की पाठ्यपुस्तकों को लें, या संदर्भ-ग्रन्थ चाहे लोकप्रिय पत्रिकाएं लें या ऐतिहासिक कृतियां, रसायन के विविध क्षेत्रों में होने वाली सम्यक जानकारी हिन्दी में प्राप्य है। हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, प्रादेशिक हिन्दी ग्रन्थ अकादमियां, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं ने कार्बनिक रसायन, अकार्बनिक रसायन, भौतिक रसायन, प्रायोगिक रसायन, पर कई-कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वैश्लेषिक रसायन सम्बन्धी पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। भारत में रसायन के विकास से सम्बन्धित ऐतिहासिक कृति भी प्राप्य है। जाने-अनजाने अनेक लेखकों ने लेखन में कुशलता एवं त्वरा प्राप्त कर ली है। वे अच्छे वक्ता और विचारक भी हैं। ऐसे लेखकों में से डा० सत्यप्रकाश, प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, डा० रामचरण मेहरोत्रा, डा० सन्तप्रसाद टण्डन, डा० रामदास तिवारी, तथा डा० रमेशचन्द्र कपूर जैसे नामों से बहुतों का परिचय है। बहुत पहले (1947 ई०) डा० रघुबीर ने अपने संपादकत्व में आई० डी० आय द्वारा रसायन की पाठ्यपुस्तकें तैयार कराई थीं। इससे भी पूर्व गुरुकुल कांगड़ी के प्रो० रामशरणदास ने वैश्लेषिक रसायन पर तथा डा० महेशचरण सिंह ने रसायन पर पुस्तकें लिखीं। वहां पर सदैव से हिन्दी में विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन होता आया है।

इन लेखकों के अतिरिक्त हिन्दी में अनुवाद करने वालों की संख्या काफी बड़ी है। अनुवाद की गयी पुस्तकों में डा० पालिंग की पुस्तक "विद्यालय रसायन" सब से पहली प्रकाशित पुस्तक है। उसके पश्चात अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें अनूदित होकर अभी प्रेस की बाट जोह रही हैं। इधर मध्य प्रदेश, बिहार तथा हरियाणा अकादमियों ने रसायन पर कुछ अनूदित तथा मौलिक ग्रन्थों का

प्रकाशन करके महत्वपूर्ण कार्य किया है। कुछ उत्साही अध्यापकों ने हिन्दी में अध्यापन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है। किन्तु परीक्षाओं में विद्यार्थी हिन्दी में लिखते हुए डरते हैं कि उनकी उत्तर पुस्तकें कहीं ऐसे परीक्षक के पास न पहुँच जांय जो हिन्दी न जानता हो। अन्यथा उन्हें हिन्दी समझने, लिखने, बोलने में कोई कठिनाई नहीं होती। अनेक विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के प्रश्न पत्रों में भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी पाठ दिया रहता है। पुस्तकालयों में रसायन की हिन्दी पुस्तकें उपलब्ध हैं। पुस्तक विक्रेता भी उन्हें बेचते हैं। यदि कहीं हिचक है तो वह विद्वत्समिति-स्तर पर है जो हिन्दी को प्रविष्ट करके वैज्ञानिक शिक्षा के स्तर को गिराना नहीं चाहती। यही कारण है कि अध्यापकों, छात्रों के चाहने तथा पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध हो जाने पर भी अभी तक न तो अध्ययन का और न अध्यापन का ही माध्यम स्वीकृत की जा सकी है।

कुत्सित मनोवृत्ति—

रसायन के समान शायद ही कोई विषय इतना रोचक हो। कीमियागिरी से लेकर परमाणु युग तक की प्रगति का इतिहास एक से एक रोमांचकारी घटनाओं से पूर्ण है। उसमें इतने पारिभाषिक शब्दों, सूत्रों, समीकरणों का व्यवहार होता है, उसमें 100 से ऊपर तत्वों के नाम, लाखों यौगिक, उनके गुणधर्म तथा उनकी संरचनाएं–इन सब का हिन्दी में यथातथ्य अंकन, रूपान्तरण या प्रकटीकरण किस प्रकार सम्भव बन सका है, यह अपने में स्वयं लम्बी कहानी है, किन्तु आज भी परम्परा को न मानने वाले, पीछे न देख कर केवल वर्तमान या वर्तमान और भविष्य पर दृष्टिपात करने वाले ऐसे अनेक रसायन-शास्त्री मिल जावेंगे जो हिन्दी का उपहास करना चाहते हैं। किसी एक पारिभाषिक शब्द के होते हुए भी वे या तो उसे जानते ही नहीं या जानकर भी मानते नहीं और नित प्रति नये शब्द गढ़ने या अंग्रेजी शब्दों को मूल रूप में ग्रहण करने अथवा हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों को दुरूह घोषित करने की दुर्प्रवृत्ति दिखाते हैं। न जाने क्यों हिन्दी की शब्द-सम्पदा से उन्हें चिढ़ होती है जब कि वे अंग्रेजी के कठिन से कठिन शब्दों को हृदयंगम कर लेते हैं। यदि सही-सही सोचा जाय तो किसी भी वैज्ञानिक के लिए कोई भाषा बाधक नहीं हो सकती। वह कम से कम समय में हिन्दी पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। कहने का तात्पर्य है कि ऐसी मनोवृत्ति शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी के लिए अहितकर है। न तो हिन्दी वाले हम पर हिन्दी थोप रहे हैं और न वे मनमानी रीति से शब्दों को गढ़ रहे हैं। अब तो सारा शब्द निर्माण हमें ही अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए करना होगा। हर एक रसायन-शास्त्री को हिन्दी में अधिकाधिक निष्णात बनने का गर्व होना चाहिए। सरलता के नाम पर वैज्ञानिकों तथ्यों की बलि नहीं की जा सकती।। वैज्ञानिकों की विशेषतया रसायनज्ञों की भाषा सदैव से विशिष्ट होती चली आयी है। वे उसे सरलता से समझते रहे हैं और समझते रहेंगे। जो लोग पारिभाषिक शब्दावली की संस्कृत-परकता अथवा दुरूहता की दुहाई देते हैं, वे वास्तविक रसायनज्ञ नहीं हैं। आज तक किसी भी देश में वैज्ञानिक व्यवहार के लिए किसी भी भाषा को जटिल नहीं बताया गया। उल्टे, उसे जटिलतर बनाने का प्रयास होता रहा है जिससे वह भावों का ठीक से वहन कर सके।

कुछ सुझाव—

हिन्दी द्वारा रसायन के अध्ययन-अध्यापन का मार्ग प्रशस्त हो। उसमें लेखकों, शिक्षकों एवं प्रतिभावना वैज्ञानिकों की कमी न तो रही है, न आगे रहेगी। यदि हिन्दी को अधिकाधिक समर्थ एवं सुन्दर बनाना है तो हिन्दी में अनेक संदर्भ-ग्रन्थ लिखे जाने चाहिए, द्विभाषा शब्दकोश तैयार होने चाहिए, और पुनश्चर्या पाठ्क्रम जैसे आयोजन होने चाहिए। साथ ही, छात्रों में हिन्दी का सही प्रसार हो इसके लिये पृथक से हिन्दी की पुस्तकें लिखी जानी चाहिए जिनमें शब्द-निर्माण की प्रक्रिया, शब्दार्थ परिवर्तन, व्याकरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख हो।

अनुसन्धान के क्षेत्र में रसायन विज्ञान के शोध-पत्रों का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण समस्या है। जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। 15 वर्ष पूर्व विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद द्वारा अनुसन्धान पत्रिका के प्रकाशन

मे इस दिशा में मार्ग-दर्शन का प्रयास हुआ। अच्छा हो यदि दार्शनिक रसायन, जैव-रसायन, वैश्लैषिक-रसायन, आदि नामों से अन्य शोध-पत्रिकाएँ प्रकाशित हों। इधर रसायन विज्ञान में कई शोध प्रबन्ध भी हिन्दी में प्रस्तुत हुए हैं जो हिन्दी की परिपक्वता का प्रमाण हैं। उत्साही प्रकाशक इन प्रबन्धों को प्रकाशित करके शिक्षा क्षेत्र में नवीन दिशा का शुभारंभ करें। समस्त भारतीय रसायनज्ञ यदि यह नियम बना लें कि उनके श्रेष्ठ शोध-पत्रों में से आधे हिन्दी में प्रकाशित होंगे तो पांच वर्षों के भीतर हिन्दी की शक्ति का लोगों को परिचय प्राप्त हो जाय।

एक अन्य सुझाव है जो सामयिक और उपयोगी हो सकता है, अभी तक जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनकी सब की विस्तृत आलोचनाएँ हों, उनके गुण-दोषों पर विचार हो, यदि कोई लेखक पारिभाषिक शब्दावली का अतिक्रमण करता है तो क्यों करता है? क्या वह उससे अच्छे शब्द प्रयुक्त कर सकता है? इस पर विचार हो और आलोचना निर्भीक छपें। विद्यार्थियों को सही-सही शब्दों के प्रयोग एवं उनके अर्थ बताये जाँय। नये ढंग से सामग्री प्रस्तुत करने, अनुवाद की शैली में रोचकता लाने, नये विषयों की तलाश तथा उन पर कृतियाँ लिखने आदि के संबंध में निरन्तर प्रयास होने चाहिए। प्रकाशकों को अपने उत्तरदायित्व की गुरुता समझनी होगी। पुस्तकों में त्रुटियों का न रहना, शब्दावली में एकरूपता मनोहर मुद्रण आदि पर ध्यान देना होगा।

यह सच है कि पुराने शिक्षकों को हिन्दी माध्यम से लिखते हुए सुविधा हो सकती है किन्तु अध्यापन में कठिनाई होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु अपने को कठिनाई से बचाने के लिए भावी पीढ़ी को अन्धकार के गर्त में ढकेलना न्यायपूर्ण नहीं होगा। राजनीतिज्ञों की चीख-चीत्कार से दूर रहकर हिन्दी का सतत प्रयोग करके रसायन के अध्ययन अध्यापन में क्रांति लाई जा सकती है।

डा० शिवगोपाल मिश्र
रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

रक्त की संरचना एवं कार्य

शुकदेव प्रसाद

जीवन की गाड़ी को सुचारु रूप से चलाने का श्रेय रक्त को ही है। यह एक तरल उतक है। हमारे शरीर के विभिन्न अंगों के बीच यातायात का कार्य करता है। रक्त के द्वारा ही शरीर के तमाम कोशिकाओं के बीच सम्पर्क बना रहता है तथा उन्हें आवश्यक भोजन एवं आक्सीजन पहुँचाता रहता है जिससे वे जीवित रहती हैं अन्यथा नष्ट हो सकती हैं। साथ ही साथ रक्त शरीर में उत्पन्न तमाम विकारों का निवारण भी करता है। अतः रक्त बहुत ही उपयोगी तत्व है।

संरचना -

रक्त एक जटिल एवं तरल उतक है। मुख्य रूप से रक्त के दो भाग हैं।

(1) प्लाज्मा

(2) रुधिर कणिकाएँ

प्लाज्मा—

रक्त में लगभग 60% प्लाज्मा होता है। यह मात्रा घट बढ़ भी सकती है। रक्त का द्रव भाग है जो कि निर्जीव होता है। यह हल्के पीले रंग का होता है। इसमें लगभग 90% जल ही होता है तथा शेषभाग में अन्य पदार्थ होते हैं। प्लाज्मा में कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों के घुले होने के कारण इसकी रचना जटिल हो जाती है। अकार्बनिक पदार्थों में सोडियम क्लोराइड तथा सोडियम कार्बोनेट नामक लवण प्रमुख हैं तथा पोटैशियम कैल्सियम, लोहा और मैग्नशियम के फॉस्फेट, सल्फेट, क्लोराइड, बाइकार्बोनेट भी सम्मिलित हैं। प्लाज्मा के लगभग 1% भाग की रचना ये सब लवण ही करते हैं। कार्बनिक पदार्थ निम्न हैं। प्लाज्मा में रुधिर प्रोटीन्स पाई जाती हैं। जिनमें ग्लोब्यूलिन फाइब्रिनोजन, एल्बूमिन मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त प्लाज्मा में पचे हुए खाद्य पदार्थ ग्लूकोज, वसा, एमीनोअम्ल के रूप में तथा उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया, यूरिया तथा यूरिक एसिड के रूप में मिलते हैं। प्लाज़्मा में आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा कार्बन डाइआक्साइड गैसें भी होती हैं। अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों द्वारा स्त्रावित हारमोन्स एवं विटामिन भी उपस्थित होते हैं। प्लाज्मा में एन्टीबॉडीज भी पाई जाती है। जिनका निर्माण रुधिर में जीवाणु इत्यादि के प्रविष्ट होने से होता है। जो कि उनसे मिलकर उन्हें निष्क्रिय कर देते हैं। प्लाज्मा की उपर्युक्त रचना नियमित नहीं होती है। इसमें परिवर्त्तन होता रहता है।

रुधिर काणिकाएँ—

रक्त के प्लाज्मा में कुछ निलम्बित कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें रुधिर कणिकाएँ कहते हैं। रक्त में इनकी मात्रा लगभग 40% तक होती हैं। ये मुख्यतः 3 प्रकार की होती हैं।

(1) लाल रुधिर-कणिकाएँ

(2) श्वेत रुधिर-कणिकाएँ

(3) रुधिर प्लेटलेट या थ्रौम्बोसाइट

लाल रुधिर कणिकाएँ—

मेढक के रुधिर की ये कणिकाएँ बड़ी, अण्डाकार, चपटी तथा बीच में दोनों ओर से कुछ उभरी हुई होती हैं तथा इनके बीच में एक केन्द्रक भी होता है लेकिन स्तन धारियों की लाल रुधिर कणिकाएँ छोटी, गोल तथा बीच में दोनों ओर से चिपकी हुई रहती हैं एवं इनमें केन्द्रक का अभाव होता है। इसीलिए हमारे शरीर की ये कणिकाएँ जल्दी मर जाती हैं। कणिका के कोशिका-द्रव्य में एक प्रकार का लाल रंग पाया जाता है जिससे

बहुत सारी कोशिकाएँ एक साथ होने से रक्त का रंग लाल दिखाई देता है। इस रंग की रचना एक प्रकार के लौह प्रोटीन से होती है जिसे हीमोग्लोबिन (C_{3032} H_{4816} O_{872} N_{780} S_8 Fe_4) कहते हैं। इसी के द्वारा लाल रुधिर कणिकाएँ शरीर के अंगों में आक्सीजन पहुँचाती रहती हैं। अतः श्वसन क्रिया में हीमोग्लोबिन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

श्वेत रुधिर कणिकाएँ—

ये कणिकाएँ लाल रुधिर कणिकाओं की अपेक्षा संख्या में कम होती हैं लेकिन परिमाण में बड़ी होती हैं। प्रत्येक कणिका में केन्द्रक होता है तथा ये रंगहीन होती हैं। इनका आकार अमीबा के समान अनिश्चि होता है। मुख्यतः ये दो प्रकार की होती है—कणमय एवं कण रहित श्वेत कणिकाएँ। कणमय कणिकाओं के जीव द्रव्य में छोटे-छोटे कण बिखरे होते हैं एवं इनका केन्द्रक अनियमित तथा पिण्डाकार होता है। ये तीन प्रकार की क्रमशः बेसोफिल्स, इओसिनोफिल्स एवं न्यूट्रोफिल्स होती हैं। कण रहित कणिकाओं के जीव द्रव्य में कण नहीं होते हैं तथा परिमाण के अनुसार ये भी दो प्रकार की होती हैं। छोटी रक्त कणिकाओं को लिम्फोसाइट्स एवं बड़ी रक्त कणिकाओं को मोनोसाइट्स कहते हैं। ये श्वेत कणिकाएँ विशेषतः न्यूट्रोफिल्स, इओसिनोफिम्स एवं मोनोसाइट्स हानिकारिक जीवाणुओं एवं टूटी-फूटी कोशिकाओं का भक्षण करती हैं अतः इन्हें भक्षी कणिकाएँ अर्थात् फैगोसाइट्स कहते हैं। जीवाणुओं का भक्षण करने के साथ ही साथ उनके द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थों को नष्ट करने के लिए ऐन्टी-टॉक्सिन के बनने में सहयोग देती है। इस प्रकार ये श्वेत रक्त कणिकाएँ हमारे शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सहायक हैं।

ब्लडप्लेटलेस अथवा थ्रोम्बोसाइट्स—

ये केवल स्तन धारियों में पायी जाती हैं। इनमें केन्द्रक नहीं होता है। संख्या में अधिक होती हैं। इनकी रचना का अध्ययन कठिन है क्योंकि शरीर से बाहर निकलते ही टूटकर रुधिर को जमा देती हैं। इनका कोशिका द्रव्य कणमय होता है। रक्त के जमने में इनका महत्व अधिक है।

रक्त के कार्य—

रक्त हमारे लिए कई महत्वपूर्ण कार्य करता है जो निम्न हैं।

1. पोषक एवं अन्य पदार्थों का परिवहन -

आहार नली में पचे हुए भोजन को पहले यकृत में और फिर वहाँ से आवश्यकतानुसार शरीर के अन्य भागों में पहुँचाने कार्य रक्त ही करता है। शरीर के किसी अंग को कार्य करने के लिए आक्सीजन का प्रयोग होता है। यह आक्सीजन की आवश्यक मात्रा लाल रुधिर कणिकाओं में उपस्थित हीमोग्लोबिन द्वारा शरीर के अंगों में पहुँचायी जाती है। हीमोग्लोबिन आक्सीजन से मिलकर एक अस्थायी यौगिक आक्सीजन हीमोग्लोबिन बनाती है। यह यौगिक जब किसी ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ आक्सीजन कम होता है तो यह टूटकर रिडयूस्ड हीमोग्लोबिन एवं आक्सीजन बनाता है। विभिन्न कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में इसी O_2 से जटिल पदार्थों का जारण होता है जिससे उर्जा उत्पन्न होती है और CO_2 मुक्त होती है। रुधिर द्वारा ही यह CO_2 श्वसन अंगों तक पहुँचायी जाती है। जहाँ से बाहर निकाल दी जाती है। इस प्रकार रुधिर शरीर में आक्सीजन एवं कार्बन डाईआक्साइड का आदान प्रदान करता है। पोषक पदार्थों तथा O_2, CO_2 के अतिरिक्त अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकले हुए हारमोन्स को रक्त आवश्यकतानुसार शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाता है।

2. उत्सर्जन—

शरीर की कोशिकाओं में जटिल पदार्थों के आक्सीडेशन के फलस्वरूप कार्बन डाइ-आक्साइड तो बनती ही है तथा साथ ही नाइट्रोजन युक्त कुछ विषैले, पदार्थ भी बन जाते हैं जिनका उत्सर्जन वृक्कों द्वारा होना है। इन विषैले पदार्थों को वृक्कों तक पहुँचाने का कार्य रक्त ही करता है।

(3) स्वास्थ्य रक्षा एवं उपचार

शरीर के किसी भाग पर चोट लग जाने से घाव द्वारा जब हानिकारक वैक्टीरिया रुधिर परिसंचरण में प्रवेश कर जाते हैं तब वहाँ श्वेत रुधिर-कणिकाएँ काफी संख्याओं में एकत्रित होकर उनका भक्षण करने लगती हैं तथा जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थं को नष्ट

करने के लिए एन्टी-टॉक्सिन बनाती हैं। यह पदार्थ रोगाणुओं को तथा उनसे निकले हुए विष को निष्क्रिय कर देते हैं। भक्षाणुओं तथा रोगाणुओं की लड़ाई में कभी-कभी कोशिकाएँ भी अधिक संख्या में मारी जाती हैं। वैक्टीरिया, मरी हुई कोशिकाएँ तथा टूटी-फूटी कोशिकाएँ मिलकर हल्के पीले रंग का गाढ़ा द्रव बना देती हैं जिसे पीप कहते हैं और यह शरीर के घायल भाग से बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार रुधिर हानिकारक जीवाणुओं के आक्रमण से बचाता है। रुधिर का परिसंचरण शरीर का ताप एकसा बनाए रखता है।

रक्त में बाहरी हमलों से बचाता है तथा उपचार भी करता है। जब शरीर में चोट लगने से घाव बन जाता है तो रक्त बहने लगता है लेकिन बहुत थोड़े ही समय में कई क्रियायें एक साथ होती हैं और रक्त थक्के के रूप में जम जाता है जिससे कि और अधिक रक्त शरीर से बाहर नहीं निकलने पाता है (रुधिर के प्लाज्मा में उपस्थित इन्जाइम थ्रॉम्बिन रुधिर की फाइब्रीनोजन प्रोटीन को द्रव से ठोस में बदल देता है लेकिन रुधिर की एण्टीप्रोथ्रॉम्बिन सक्रिय थ्रॉम्बिन को निष्क्रिय प्रोथ्रॉम्बिन की दशा में रखती है। चोट लगने पर ऊतक की रुधिर के कोशिकाएँ एवं वाहिनियाँ टूट-फूट जाती हैं जिससे प्रोथॉम्बोप्लास्टिन नामक द्रव निकलता है और यह प्लाज्मा के Ca^{++} मिलकर थ्रॉम्बोप्लास्टिन में बदल जाता है और यह ट्रिपटेज की उपस्थिति में एण्टी-प्रोथ्रॉम्बिन को नष्ट कर देता है जिससे निष्क्रिय प्रोथ्रॉम्बिन सक्रिय थ्रॉम्बिन में बदल जाता है तथा यह फाइब्रीनोजन से मिलकर उसे ठोस फाइब्रिन में बदल देता है जो कि चोट पर महीन सूत्रों के रूप में जाल-सा बिछा देती है और रुधिर कणिकाएँ आकर इससे उलझ जाती हैं तथा बाहर नहीं निकल पाती है। इस प्रकार रुधिर थक्का बन जाता है—वैज्ञानिक होवेल के अनुसार) तथा रक्त टूटे-फूटे भागों की मरम्मत और घावों के भरने में भी सहायता करता है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने 4 अक्टूबर को उन वैज्ञानिक के नामों की घोषणा कर दी जिन्हें 1970-71 में उत्कृष्ठ वैज्ञानिक अनुसंधान करने के लिये शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार दिया जायगा। प्रत्येक पुरस्कार रु० 10,000 का है। वैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैं : डॉ० पी. के. आयंगर, डॉ० एम. एम. धर, डॉ० ए. के. मैती, डॉ. ओ. डी. गुलाटी, डॉ० ए. भट्टाचार्या, प्रो. एम. बालकृष्णन नायर तथा प्रो. पी. टी. नरसिम्हन।

विज्ञान की ओर से समस्त वैज्ञानिकों को बधाई !

भविष्य निधि में जमा धनराशि पर ब्याज की गणना की सरल विधि

चन्द्रिका सिंह

प्रत्येक कर्मचारी अपने वेतन से निश्चित धनराशि भविष्य निधि में जमा करते हैं और चूँकि यह निश्चित धनराशि प्रत्येक माह जमा होती है अतः वर्ष के अन्त में जमा कुल धन पर ब्याज कितना होगा इसकी गणना करने में कठिनाई महसूस होती है। आसानी के लिये एक सरल विधि यहाँ पर उदाहरण सहित दी जा रही है।

मान लीजिये कोई कर्मचारी प्रतिमाह पचास रुपया भविष्य निधि में जमा करता है और उस पर ब्याज की दर 5·50% है तो प्रतिमाह जमा धन पर एक वर्ष के अन्त में ब्याज कितना होगा उसकी गणना निम्न प्रकार से की जायेगी।

1—प्रथम माह की किस्त पर उस माह क ब्याज की गणना कीजिये।

$$\left(\frac{5{\cdot}50 \times 50}{100 \times 12} = 22{\cdot}916 \text{ पै०}\right)$$

2—ग्यारह माह की किस्त पर ब्याज की मात्रा ज्ञात करें।

$(22{\cdot}916 \times 11 = 252{\cdot}076 \text{ पै०})$

3—निम्नलिखित सूत्र की सहायता से योग ज्ञात करें—

$$\text{स} = \frac{\text{न}}{2}\left[2\,\text{क} + (\text{न} - 1)\right]$$

जबकि :—

स - वर्ष भर में जमा धन पर ब्याज की कुल मात्रा

न - किस्तों की संख्या (12)

क प्रथम माह के किस्त पर एक माह का ब्याज (22·916 पै०)

न - 1 ग्यारह महीने तक जमा पहली किस्त पर ब्याज की मात्रा का ग्यारह गुना (22·916 × 11 = 252·076 पै०)

उदाहरणार्थ —

$$\text{स} = \frac{12}{2}\left[45{\cdot}832 + 252{\cdot}076\right]$$

$= 6 \times 296{\cdot}908 \quad 1781{\cdot}448$ पै०

$= 17{\cdot}8144$ रुपया $= 17{\cdot}82$ रुपये

अतः एक वर्ष में जमा रु० 50·00 की मासिक किस्त पर रु० 5·50 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से कुल जमा धन रु० 600·00 पर ब्याज रु० 17·82 होगी। इसी प्रकार किसी भी धनराशि पर ब्याज की मात्रा उपरोक्त विधि से आसानी से ज्ञात की जा सकती है।

चन्द्रिका सिंह
वरिष्ठ शोध सहायक, मृदा अणु
जैविकी, कृषि विज्ञान संस्थान
कानपुर-2

इयूजिन रैबिनोविच

(1901—1973)

डा० गोविन्द जी

इयूजिन रैबिनोविच का, जिन्होंने अपने उत्साह, गवेषणात्मक विचारों तथा मार्मिक कल्पनाओं से प्रकाश जैविकी के वैज्ञानिकों के एक पूरे वंश को प्रेरणा प्रदान किया, 15 मई, 1973 को वाशिंगटन डी. सी. संयुक्त राज्य अमरीका में स्वर्गवास हो गया। वे उस समय वहाँ पर स्मिथसोनियन संस्थान में अन्तर्राष्ट्रीय फ़ेलो के रूप में अपनी अन्तिम पुस्तक 'द साइंटिफिक रेव्यूलूशन' के लेखन-कार्य में व्यस्त थे। मेरे लिये तो रैबिनोविच केवल एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक, सर्जनात्मक शिक्षक, भौतिकी-रसायन के स्तर पर प्रकाश-संश्लेषण जैसे गूढ़ विषय के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले, कवि, मॉनववादी जो संसार की शान्ति से अत्यधिक लगाव रखने वाले ही नहीं थे वरन् व्यक्तिगत मित्र, जिसका मेरे व मेरी पत्नी रजनी के प्रति अपार स्नेह था, भी थे। वे हमारे लिये पिता तुल्य थे।

उन्होंने विज्ञान में इतना योगदान किया है कि उनकी चर्चा करना सम्भव नहीं है। उन्होंने रसायनशास्त्र में 6 पुस्तकें, प्रकाश रसायन की 3 पुस्तकें जन-सम्बन्धी विषयों (संसार के लिये विज्ञान का लक्ष्यार्थ) पर 4 पुस्तकें तथा 150 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित किये। अपने दीर्घ कार्यकाल में इयूजिन ने भौतिक रसायन (फ्रैंक-रैबिनोविच "केज" प्रभाव आदि के रूप में), अभिक्रिया की बल गतिकी, यूरेनियम रसायन तथा प्रकाश-संश्लेषण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान प्रकाश-संश्लेषण—ऐसी क्रिया जिस पर पृथ्वी के सारे जीव अपने जीवन के लिये निर्भर करते हैं—को समझने में भौतिक तथा भौतिक रासायनिक सिद्धान्तों व प्राविधियों के सतत उपयोग में था।

शिक्षक के रूप में रैबिनोविच के साथ कार्य करने के लिये संसार भर के विद्यार्थी आते रहे जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड, पोलैंड, हंगरी, सोवियत संघ, भारत तथा जापान के विद्यार्थी। भारतीय विद्यार्थियों के नाम इस प्रकार हैं—डॉ० मृन्मॉयी दास, आशिश घोष, नेती आर० मूर्ति, गौरी सिंघल, के० जी० मथाई, वी० श्रीनिवासन, गोविन्द जी तथा रजनी गोविन्द जी। इयूजिन भारत तथा भारतीय वैज्ञानिकों के साथ पूरी सहानुभूति रखते थे। वह उन वैज्ञानिकों के साथ बहुत ही भद्र व उदार थे। उनकी शान्त प्रकृति तथा क्षमाशीलता ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

इयूजिन का जन्म 26 जनवरी 1901 को रूस में सेंट पीटर्सबर्ग नामक स्थान पर हुआ था। क्रान्ति तथा विद्रोह से उनकी शिक्षा में अवरोध आ गया था। उनका परिवार पहले पोलैंड गया फिर जर्मनी, फिर डेनमार्क, फिर इंगलैण्ड और अन्त में संयुक्त राज्य अमरीका पहुँच गया जहाँ पर उन्होंने अपने जीवन के 35 वर्ष व्यतीत किये। बर्लिन में उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की और अपना जीवन भौतिक रसायनज्ञ (फोटो रसायनज्ञ) के रूप में भौतिकी के प्रोफेसर जेम्स फ्रैंक (नोबेल पुरस्कार विजेता) के साथ आरम्भ किया। 1933 में वह नोबेल पुरस्कार विजेता नील्स बोर के साथ काम करने उनकी प्रयोगशाला में गये उसके बाद वह इंगलैण्ड गये और 1938 में अमरीका में मेसाचुसेट्स इन्सटीट्यूट ऑफ

टेक्नॉलॉजी गये। 1943 में वह शिकागो विश्वविद्यालय के "मनहट्टन परियोजना" पर कार्य करने गये जहाँ पर विश्व-युद्ध के समय परमाणु बम बनाने की प्रयोग-शाला स्थित थी। 1947 में वह इलिनॉय विश्व-विद्यालय आये जहाँ पर वह स्वर्गीय रॉबर्ट इमरसन के साथ प्रकाश संश्लेषण प्रयोगशाला के सह-निर्देशक बने। 1968 में इलिनॉय विश्वविद्यालय से रिटायर होने पर वह अल्बनी में न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय में रसायन विभाग में पहुँचे और अन्तिम वर्ष में स्मिथसोनियन संस्थान के छात्रों के लिये वुडरो विल्सन केन्द्र, वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय फेलो के रूप में कार्य कर रहे थे।

इयूजिन को आदर स्वरूप डाक्टर की उपाधियाँ ब्रॉडाइस विश्वविद्यालय ने तथा डार्टमाउथ कालेज ने प्रदान कीं। वह 'पगवाश' आन्दोलन के नेता थे जिसने विज्ञान तथा संसार की अन्य समस्याओं पर कान्फ्रेंस बुलाया और जिसमें संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भाग लिया। शिकागो से मुद्रित होने वाली पत्रिका बुलेटिन ऑफ एटामिक साइंटिस्ट्स के वह संस्थापक तथा सम्पादक थे।

उनमें वैज्ञानिक की कुशाग्र बुद्धि और शिक्षक की योग्यता थी वह ऐसा लिखते थे कि सब समझ सकें उनका दृढ़ विश्वास था कि वैज्ञानिकों के नेतृत्व और सद्भावना से संसार में अधिक शान्ति स्थापित हो सकती है। 1965 में उन्हें कलिंग पुरस्कार मिला जिसका संचालन यूनेस्को करता है ताकि विज्ञान का प्रचार हो सके। इयूजिन को एकेडेमी ऑफ आर्ट एण्ड साइंस तथा अमेरिकन सोसाइटी ऑफ प्लाण्ट फीजियोलॉजी (चार्ल्स एफ़० केटरिंग पुरस्कार) तथा वेनुजुला एसोसियेशन फॉर द एडवांसमेण्ट ऑफ साइंस द्वारा पुरस्कृत किया गया।

इयूजिन एक अच्छे व्यक्ति थे। वह दूरदर्शी, वैज्ञानिक कवि, शिक्षक, लेखक तथा सम्पादक भी थे। पर वह इन सबसे ऊपर भी कुछ थे। वह सभी लोगों के लिये संसार को अच्छा बनाने के लिये युद्ध रहित संसार की कल्पना करने वालों के अन्तर्राष्ट्रीय नेता थे। हमें उनकी क्षति से शोक है। हम यह शपथ लें कि उनके लक्ष्य की पूर्ति का उपाय करेंगे।

गोविन्द जी
289 मॉरिल हाल
इलिनॉय विश्वविद्यालय
अरबाना, इल०, यू० एस० ए०

ओषधि का नोबेल पुरस्कार

स्वेडेन के युवा सम्राट कार्ल गुस्टाफ ने 1973 वर्ष के लिये ओषधि के नोबेल पुरस्कार की घोषणा कर दी है। यह पुरस्कार तीन वैज्ञानिकों को एक साथ प्रदान किया गया है। नीदरलैण्ड्स के प्रोफेसर निकोलास टिम्बरगेन तथा आस्ट्रिया के प्रोफेसर कार्ल फॉन फ़िश तथा डा० कोनराड लोगेन्ज़ को उनके उत्कर्ष कार्य के लिये दिया गया है। 'आचरण का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर इन वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

रबड़

डा० शिव प्रकाश

आपने रबड़ के खिलौनों से लेकर मोटरकारों व ट्रकों के पहियों में रबड़ की उपयोगिता देखी है। वास्तव में सभ्यता के चरम विकास में रबड़ का एक महत्वपूर्ण योगदान है। दैनिक जीवन में काम आने वाली अनेक वस्तुयें ऐसी हैं जिन्हें हम प्रतिदिन देखते हैं और उनका उपयोग कर लाभ उठाते हैं। रबड़ के कारण यातायात में जो सुगमता आई है वह स्पष्ट है। यह इतना उपयोगी होते हुये भी कठोर हृदयी न होकर कोमल हृदयी है इसे एक सीमा तक आप खींच सकते हैं और दाब हटा देने पर यह पुनः अपनी पूर्वस्थिति को आ जाता है। क्या आपने यह जानने की कोशिश की है कि यह अद्भुत पदार्थ क्या है और कैसे इस रूप में आ जाता है ?

कृत्रिम रबड़ जब तक नहीं बनाया गया था प्राकृतिक रबड़ का ही उपयोग किया जाता था। प्राकृतिक रबड़ उष्ण कटिबन्धीय देशों में पाये जाने वाले वृक्षों से लैटेक्स नामक रेज़िन पदार्थ के रूप में पाया जाता है। ब्रजील इस बृक्ष का जन्म प्रदेश है लेकिन पूर्वी द्वीप समूह और मलाया प्रायद्वीप से संसार का अधिकांश रबड़ प्राप्त होता है। लैटेक्स दूध के समान सफ़ेद पदार्थ है जो उष्मा अथवा विद्युत अपघट्यों द्वारा शीघ्र ही स्कंदित हो जाता है। एसीटिक एसिड का प्रयोग विशेषतया किया जाता है। पेड़ की छाल को उतारने पर धीरे-धीरे लैटेक्स बहता हुआ निकलता है उसके नीचे बाल्टी या ऐसे ही पात्र रख दिया जाता है जिसमें यह जमा होता रहता है।

इस प्रकार प्राप्त रबड़ को प्रयोग में लाने में इसलिये कठिनाई होती है क्योंकि वह ठंढे मौसम में कठोर बन जाता है गर्मी से मुलायम व चिपचिपा हो जाता है जबकि हवा और धूप में रहने से भंजक बन जाता है। 1839 में चार्ल्स गुडईयर ने वल्कनीकरण की विधि का आविष्कार किया तब से इस समस्या का समाधान हो गया। इस विधि में रबड़ को गंधक के साथ 140° सें० पर गरम किया जाता है तो यह कठोर बन जाता है और साथ-साथ लचीला भी रहता है और यह गुण उच्चताप तक बना रहता है। 1% गंधक मिलाने से वांछित गुण प्राप्त हो सकते हैं जबकि इसकी अधिकतम मात्रा 32% से इबोनाइट के समान कठोर रबड़ प्राप्त होता है। वल्कनीकरण में गंधक के परमाणु रबड़ अणु के असंतृप्त कार्बन परमाणुओं से संयोजन करते है। इस संयोजन में गंधक रबड़ के एक अणु के कार्बन तथा दूसरे अणु के कार्बन के बीच सेतु निर्माण करता है। अत गंधक के परमाणु लम्बी श्रृंखला वाले अणुओं को एक साथ जोड़ देते हैं और इस प्रकार निर्मित अणु काफी बड़े हो जाते हैं और त्रिविमीय होते हैं। बहुत सी रबड़ की वस्तुओं में दूसरे प्रकार के रबड़ को प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ काला रबड़ में कार्बन ब्लैक व लाल रबड़ में ऐंटमिनी सल्फाइड मिश्रित रहता है। कार्बन ब्लैक व ऐंटिमनी सल्फाइड के कारण रबड़ की मज़बूती बढ़ जाती है और वह अधिक टिकाऊ भी हो जाता है। रबड़ की ठीक-ठीक संरचना तो ज्ञात नहीं है पर अवक्रमण (degradation) का अध्ययन करके यह देखा गया है कि रबड़ कई अणुओं से मिलकर बना होता है जिसकी निर्माण इकाई आइसोप्रीन (C_5H_8) एक असंतृप्त हाइड्रोकार्बन है। प्राकृतिक रबड़ का अणु भार 100,000 से 300,000 तक होता है और इसमें

1500 से 4500 तक आइसोप्रीन के एकलक होते हैं जो बहुलक का निर्माण करते हैं।

प्राकृतिक गैसोलीन में तथा अन्य हाइड्रो कार्बन द्रवों में धीरे-धीरे विलेय हो जाता है अतः इन द्रवों के संपर्क में रहने वाली वस्तुओं को इस रबड़ से नहीं बनाया जा सकता। कहावत है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। पहला कारण तो यह था और दूसरा कारण जिसने मनुष्य को प्राकृतिक रबड़ के स्थान पर कृत्रिम रबड़ बनाने की प्रेरणा दी वह थी द्वितीय विश्व युद्ध के समय जापान की पूर्वी द्वीप समूहों पर अधिकम। पूर्वी द्वीप समूह से युद्ध के लिये जो रबड़ मिलता था वह बन्द हो गया और अमरीका में कृत्रिम रबड़ बनाने की विधि को खोज निकाला गया। वैसे तो प्रथम विश्व युद्ध के समय भी जर्मनी को जब रबड़ की कमी हुई थी तो जर्मन वैज्ञानिकों ने कृत्रिम रबड़ बनाने का प्रयास किया था। परन्तु व्यापारिक मात्रा में कृत्रिम रबड़ बनाने की ओर जो उन्नति हुई वह अमरीका द्वारा हुई।

एक प्रकार का कृत्रिम रबड़ जिसे नियोप्रीन कहते हैं उसे क्लोरोप्रीन नामक एकलक से बनाया जाता है। क्लोप्रीन स्वयं एसिटिलीन तथा हाइड्रोजन क्लोराइड की आपसी क्रिया द्वारा बनाया जाता है।

$$\text{एसिटिलीन} + \text{हाइड्रोक्लोरिक एसिड} \xrightarrow{\text{उत्प्रेरक}} \text{क्लोरोप्रीन}$$

क्लोरोप्रीन कम क्वथनांक वाला द्रव है जो उत्प्रेरक की उपस्थिति में बहुलीकृत हो जाता है और नियोप्रीन का निर्माण करता है। ब्युटाडाइन काफ़ी प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है अतः जो कृत्रिम रबड़ सर्वप्रथम बनाया गया वह था बूना रबड़ जो ब्युटाडाइन का बहुलक था। ब्युटाडाइन तथा स्टाइरीन के सह-बहुलीकरण द्वारा बूना-s प्रकार का रबड़ बनता है। ब्युटाडाइन तथा एक्राइलोनाइट्राइल के सह बहुलीकरण द्वारा प्राप्त रबड़ को बून-N रबड़ कहते हैं। आइसो ब्युटाइलीन के आइसोप्रीन तथा ब्युटाडाइन के साथ बहुलीकरण करने पर ब्युटाइल रबड़ प्राप्त होता है। एथिलिन डाइक्लोराइड, डाइक्लोरो एथिल ईथर तथा डाइ सोडियम ट्रेटासल्फाइड यौगिकों के द्वारा थायोकॉल रबड़ बनाया जाता है। यह संभव हो गया है कि कृत्रिम रूप से ऐसा रबड़ बनाया जाय जिसके गुण प्राकृतिक रबड़ के ही समान हों। कृत्रिम रबड़ में प्राकृतिक रबड़ की अपेक्षा यह गुण पाया जाता है कि यह कार्बनिक विलायकों में घुलता नहीं गैसों के लिये अपारगम्य होता है और इसमें विद्युत इन्सुलेटर के गुण होते हैं। अब सभी भीतरी ट्यूब, स्वयं सील बंद होने वाली गैस टंकी तथा के लिये होज़ कृत्रिम रबड़ से ही बनाये जाते हैं।

रबड़ का सबसे रोचक गुण उसका लचीलापन है जिसके अन्तर्गत बल लगाने पर बिना टूटे हुए काफी हद तक मुड़ सकता है और बल हटाने पर पूर्व स्थिति में आ जाता है। रबड़ विस्पता में द्रव के समान है और प्रत्यास्थता में ठोस के समान है। उसका यह गुण लंबी शृंखला वाले बहुलक अणुओं की उपस्थिति के कारण होता है। बिना खिंचे हुये रबड़ में बहुलक की शृंखलायें यादच्छिक रूप से विस्तृत होती हैं और कुण्डली के आकार में होती हैं। खींचे जाने पर यादाच्छिक रूप से निर्देशित यह शृंखलायें नियमित आकार ग्रहण कर लेती हैं। अतः बिना खिंचे हुये रबड़ की एन्ट्रापी अधिक होती है। एक्स-रे चित्र द्वारा रबड़ की इस संरचना की पुष्टि भी की जा चुकी है।

हृदय का रोग

शशि कान्त

वैसे तो हमारे शरीर के प्रत्येक अंग का अपना अपना महत्व है और स्वस्थ रखने में उसका प्रमुख योगदान होता है परन्तु हृदय का अलग ही स्थान है। यदि हृदय की देखरेख न की गई और उसका धड़कना वन्द हो गया तो इस शरीर का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय। इस धड़कन के साथ हृदय में शिराओं द्वारा रक्त का संचार होता है। इन प्राकृतिक नलिकाओं में वहता हुआ रक्त हृदय में पहुँचता है। जब कभी गम्भीर चोट लग जाने से अत्याधिक रक्तस्राव हो जाता है और हृदय तक रक्त नहीं पहुँच पाता तो उसका धड़कना धीरे-धीरे बन्द हो जाता है। इसीलिये गहरी चोट लगने पर और रक्तस्राव हो जाने पर रोगी को रक्त की बोतल चढ़ाई जाती है। इस रक्त का वही ग्रूप होना चाहिये जो रोगी के ग्रूप का है नहीं तो एक नई स्थिति पैदा हो जायगी कि विजातीय रक्त मृत्यु का कारण न बन जाय।

हृदय के दौरों का सबसे बड़ा कारण कोरोनरी हृदय रोग है जो अधिकांशत: ऐसे लोगों को होता है जिनमें रक्तचाप में बढ़ोत्तरी हो गई हो या रक्त में वसा की मात्रा एक विशेष तल से अधिक हो गई हो। मोटापा, मधुमेह भावात्मक तनाव भी हृदय के दौरा पड़ने के लिए जिम्मेदार होते हैं। वंश में ही दिल की बीमारी की परम्परा का उपस्थिति होना एक अन्य कारण है। अब तो सिगरेट पीना भी दिल की बीमारी को निमंत्रण देने के समान हो गया है। अमेरिका के कुछ विशेषज्ञों ने तो यहाँ तक सुझाव दे दिया कि सिगरेट की फैक्ट्रियों को ही शनैः शनैः बन्द कर दिया जाय। मोटापा एक प्रकार का रोग ही है इससे सब को बचना चाहिये। बहुत बढ़िया भोजन खाते समय तो अच्छा लगता है पर उसमें विद्यमान चिकनाई आपके शरीर में प्रवेश करके भविष्य में आपके लिए खतरनाक बन सकती है यह बात भी सही है और भोजन करते समय इसका पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये।

कोलेस्टाइल नामक पदार्थ हृदय रोग का बहुत बड़ा कारण होता है। 1913 में रूसी वैज्ञानिक एनिचकोक ने यह देखा कि जिन खरगोशों को कोलेस्ट्राल तथा जीव वसा दिया गया उनकी शिराओं में कठोरता आ जाती है। शिराओं के कठोर होने से उनकी प्रत्यास्थतता कम हो जाती है और रक्त के सामान्य प्रवाह में बाधा उत्पन्न हो जाती है। निरीक्षणों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि जिन देशों में लोग वसा का उपयोग अधिक करते हैं वहाँ हृद रोग अधिक पाया जाता है। अमेरिका की इण्टर सोसाइटी कमीशन फॉर हार्ट डिप्सीज़ रिसोर्सेन, जिसमें 150 हृद विशेषज्ञ हैं, ने लोगों को यह सुझाव दिया है कि वह अपने भोजन में कोलेट्रॉल की मात्रा अल्पतम कर दें तो हृद रोग में कमी हो सकती है। इस कमीशन ने यह भी सुझाव दिया है कि लोगों को अपने भार और रक्त चाप का विशेष ध्यान रखना चाहिये और धूम्रपान बन्द कर देना चाहिये। यद्यपि ऐसा कोई अन्तिम प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि वसा और कोलेस्ट्रॉल ही हृद रोग के जनक हैं। तथापि अब तक की अवधारणाओं को देते हुये यह कहना पड़ता है, कि हमें भोजन में आवश्यक सुधार करके वसा और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम रखनी चाहिये। रोग का उपचार करने के बजाय रोग को आने ही न देना

अधिक बुद्धिमानी होगी। कलेस्ट्रॉल की मात्रा ही कम न की जाय वरन् किसी भी प्रकार के वसा की मात्रा चाहे वह वानस्पतिक हो या जैविक, हमारे पूर्ण कैलारी के 35% से अधिक नहीं लेना चाहिये और संतृप्त वसा को तो 10% से भी ऊपर नहीं होना चाहिये।

कोलेस्ट्रॉल सफेद पदार्थ है जो कोशिका झिल्ली की संरचना तथा विभिन्न हारमोनों के संश्लेषण में प्रमुख पार्ट अदा करता है। यह कोलेस्ट्राल शरीर में अपने आप भी बनता है और भोजन की चिकनाई के रक्त में आने से भी बनता है। ऐसे भोजन से जिसमें कोलेस्ट्रॉल तथा संतृप्त वसा की मात्रा अधिक होती है रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ती है और यदि भोजन में इनकी मात्रा कम हो तो रक्त कोलेस्ट्रॉल तक भी कम रहता है। कोलेस्ट्रॉल नामक चिकनाई की सबसे अधिक मात्रा ऐसी चीजों में होती है जैसे अंडे की जर्दी, जिगर और अन्य जीव अंड; माँस मक्खन की, पनीर, मलाई, दूध की मिठाई अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जो पशुओं से प्राप्त होने वाली चिकनाई से निर्मित हों। पशु चिकनाई साधारण ताप पर कठोर होती है जबकि वानस्पतिक चिकनाई (यथा जैतून का तेल, सूरजमुखी का तेल, मूँगफली का तेल, सरसों का तेल, नारियल का तेल आदि) साधारण ताप पर द्रव रूप में पाई जाती हैं। जिन देशों में पशुओं से प्राप्त चिकनाई का अधिक प्रयोग होता है वहाँ दिल की बीमारी अधिक होती है और जहाँ वनस्पति व मछली आदि से प्राप्त चिकनाई काम में लाई जाती है वहाँ हृद रोग कम पाया जाता है। प्रथम प्रकार का देश फिनलैण्ड है और द्वितीय प्रकार में जापान आता है। यदि व्यक्ति के रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अधिक हो गई हो तो उनकी खूराक में घी, मक्खन के स्थान पर वानस्पतिक तेल का उपयोग करने से कोलेस्ट्रॉल की मात्रा उचित तल पर पहुँच जाती है। मोटापा की चिकित्सा करते समय यह देखा जाता है कि शरीर भार में केवल पाँच दस पौंड की कमी से ही रक्त क दाब और रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा दोनों ही काफी कम हो जाते हैं।

यह भी पाया गया है कि निरन्तर मृदु जल पीते रहने से हृदय रोग में कमी आती है और मृत्यु की संभावनायें कम हो जाती हैं यह निष्कर्ष लंदन स्कूल ऑफ हाइजीन एण्ड ट्रॉपिकल मेडिसिन के वैज्ञानिक डा० क्राफोर्ड और उनके सहयोगियों ने निकाले हैं। अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि उन नगरों में जहाँ पिछले 30 वर्षों के दौरान मृदु जल के स्थान पर कठोर जल का उपयोग हुआ वहाँ हृदय रोग और मृत्यु दर अधिक था। इसके विपरीत कठोर जल के बदले मृदु जल पीने वालों में हृदय रोग से पीड़ित लोगों की संख्या कम पाई गई।

हृदय के रोगों को विस्तृत जानकारी प्राप्त करने और रोगियों की सुख सुविधा की खोजें निरन्तर होती रहती हैं। नाभिकीय ऊर्जा से रोगी हृदयों की गति देने के लिये पेसमेंकर बनाये गये हैं। अनियमित धड़कन वाले रोगी हृदय को चालू रखने के लिये वर्षों से बैटरी चालित विद्युत पेस मेकर का उपयोग हो रहा हैं। योरोप में 20 लोगों के नाभिकीय ऊर्जा से संचालित होने वाले पेस मेकर लगाये जा चुके हैं जो निर्बाध काम कर रहे हैं। रेडियो समस्थानिक की ऊर्जा से संचालित होने वाले इस सूक्ष्म कैप्सूल में एक थर्मोपाइल रखा गया है जो कि ऊष्मा को विद्युत ऊर्जा में बदल देता है। इनमें प्लूटोनियम 238 को ईंधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। हानिकर विकिरणों से बचाव की भी पूरी व्यवस्था यह पेस मेकर दस वर्ष तक चल सकता है जबकि बैटरी चालित यंत्र केवल दो वर्ष तक ही काम देता है।

बर्मिंघम के मेडिकल सेन्टर विश्वविद्यालय में कमी हो जाने से हृदय विशेषज्ञों के हृदय रोगियों की सहायता के लिये कंप्यूटर का प्रयोग आरम्भ कर दिया है। इस कंप्यूटर द्वारा हृदय गति का अध्ययन ही नहीं होता बल्कि यह आवश्यक अंगों में रक्त की पूर्ति भी कर सकता है।

[शेष पृष्ठ 22 पर]

ट्रान्ज़िस्टर

डा० प्रदीप कुमार

ट्रान्ज़िस्टर रेडियो—इतना छोटा कि आप जेब में रखकर जहाँ चाहें ले जायें और जब चाहें आसानी से सुन सकें—एक साधारण सी वस्तु हो गया है। ये ट्रान्ज़िस्टर रेडियो बनाना तभी सम्भव हो पाया जब विज्ञान व तकनीकी द्वारा नाखून या इससे भी बहुत छोटे ट्रान्ज़िस्टर व अर्धचालक डायोड बनाये जा सके। वास्तव में इन ट्रान्ज़िस्टरों के द्वारा ही इलेक्ट्रानिकी में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया व इलेक्ट्रॉनिकी के विभिन्न उपकरणों को बहुत छोटा आकार देना सम्भव हुआ। ट्रान्ज़िस्टरों के पहले सभी उपकरणों में वैक्यूम ट्यूब या बल्व प्रयोग में लाये जाते थे। इलेक्ट्रानिकी के कुछ उपकरणों को बनाने में बाल्व अभी भी प्रयोग में लाये जाते हैं। ये वाल्व आकार में ट्रान्ज़िस्टर से कई गुना (दस गुना या इससे भी अधिक) बड़े होते हैं व इनके तन्तु को धारा प्रवाहित करके इतना गरम करना पड़ता है कि इनसे इलेक्ट्रान आसानी से बाहर निकल सकें। इस कारण तन्तु के गरम होने में समय भी लगता है व कभी-कभी उपकरण को हवा से ठंडा भी करना पड़ता है। चूँकि ट्रान्ज़िस्टर को इस प्रकार की कोई ऊर्जा नहीं देनी पड़ती है अतः कुल ऊर्जा जो कि एक ट्रान्ज़िस्टर में खर्च होती है वह एक वाल्व के अनुपात में बहुत कम होती है। कुछ वाल्व का खोल काँच का बना होता है जिससे इन्हें सावधानी से उठाना-रखना पड़ता है तथा कभी-कभी तन्तु के जल जाने या उपकरणों के हिलने-डुलने पर उनके टूटने का भय रहता है। इस प्रकार की सावधानियाँ एक ट्रांज़िस्टर के साथ नहीं बरतनी पड़ती है। अतः सिद्धान्त रूप से यह चिरकाल तक कार्य करने की क्षमता रखता है। अपनी इन उपयोगिताओं के कारण ही ट्रान्ज़िस्टर मनुष्य के लिये स्वयं 'चालित घड़ियाँ' कान में लगा सकने योग्य श्रवण उपकरण, कम्प्यूटर, अन्तरिक्ष की खोज के लिये अपोलो, कॉस्मॉस व स्काइलैब जैसे यान व टेलस्टार बनाने में साधक हुआ है। भविष्य में भी विज्ञान व आधुनिक तकनीकी की उन्नति के लिये लघु-ट्रान्ज़िस्टर से बहुत सी अपेक्षाएँ हैं।

अमेरिका की बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज़ के तीन वैज्ञानिक—जान बारडीन वाल्टर ब्राटेन और विलियम शॉकली ने दिसम्बर 1947 को पहली बार एक काम देने लायक ट्रान्ज़िस्टर का प्रदर्शन किया था। इस आविष्कार पर तीनों वैज्ञानिकों को 1956 में भौतिक शास्त्र में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

अर्धचालक पदार्थ जैसे जरमेनियम, सिलिकन, सेलिनियम, धात्वीय सल्फाइड, धात्वीय आक्साइड व धात्वीय आर्सेनाइड (जैसे गैलियम आर्सेनाइड) की विद्युत चालकता सुचालक पदार्थ जैसे ताँबा व कुचालक पदार्थ जैसे एबोनाइट के बीच की होती है। ट्रान्ज़िस्टर व अर्धचालक डायोड में अधिकतर जरमेनियम व सिलिकन का प्रयोग किया जाता है। सुचालकों में थोड़ी ही वोल्टता इलेक्ट्रान को गति देने के लिये आवश्यक होती है जबकि कुचालकों में अत्यधिक वोल्टता लगाने पर भी इलेक्ट्रान एटम से बँधे होते हैं। अर्धचालकों में अधिक वोल्टता पर एटमों के बीच के संयोजक बंध टूट जाते हैं जिससे इलेक्ट्रान मुक्त होकर विद्युत वोल्टता के अनुसार गति करने लगते हैं। साथ ही एक टूटा हुआ संयोजक बंध जिसे कोटर (या होल) का नाम दिया गया एक अन्य धनावेशित व धन संहति वाले कण की तरह व्यवहार करता है। एक संयोजक बंध का इलेक्ट्रान एक कोटर में

जाकर अपनी जगह तो कोटर छोड़ देता है परन्तु पहले कोटर का लोप हो जाता है। इस प्रकार एक कोटर एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति करता है। अतः वोल्टता लगाने पर इलेक्ट्रान एनोड की ओर और कोटर कैथोड की ओर गति करते हैं। एक अर्धचालक में धारा इलेक्ट्रॉन व कोटर की गति से प्राप्त परिणामी धारा होती है। अर्धचालकों में चार्ज वाहकों की संख्या बढ़ाने के लिये आवर्तसारिणी के तृतीय व पंचम ग्रुप के परमाणु जिन्हें अपद्रव्य कहा जायेगा मिला दिये जाते हैं। पंचम श्रेणी के अपद्रव्य मिलाने पर अर्धचालकों में इलेक्ट्रॉन की संख्या अधिक हो जाती है। इस प्रकार के अर्धचालकों को n – प्रकार के अर्धचालक कहते हैं। जब तृतीय श्रेणी के अपद्रव्य मिलाये जाते हैं तो अर्धचालकों में कोटर की संख्या अधिक हो जाती है। इस प्रकार के अर्धचालकों p – प्रकार के अर्धचालक कहते हैं। इन अपद्रव्यों की सान्द्रता लगभग दस लाख अर्धचालक एटम में एक की होती है।

p और n प्रकार के अर्धचालकों को परस्पर जोड़ देने पर p – n सन्धि डायोड बन जाता है। ट्रान्ज़िस्टर की रचना p – n सन्धि डायोड के साथ n या p अर्ध-चालक जोड़कर बनाई जाती है। n अर्धचालक जोड़ने पर n p n ट्रान्ज़िस्टर और p अर्धचालक जोड़ने पर p n p ट्रान्ज़िस्टर बनता है। इसमें तीन इलेक्ट्रोड होते हैं—उत्सर्जक, आधार और संग्राहक। उत्सर्जक को अग्रबायस व संग्राहक को प्रतीप बायस रक्खा जाता है।

इन ट्रान्ज़िस्टर व अर्धचालक डायोड के इलेक्ट्रान को नियंत्रित ढंग से प्रवाहित कर निर्वात नली (वाल्व) के तुल्य कार्य लिया जाता है। ट्रान्ज़िस्टर से ट्रायोड की तरह प्रवर्धन, दोलन, माडुलन और संसूचन की क्रियायें कराई जाती हैं। अर्धचालक डायोड से संसूचन और एक दिशकारी की क्रियायें कराई जाती हैं।

कार्य करने के ढंग में वाल्व व ट्रान्ज़िस्टर में कुछ मुख्य अन्तर हैं जैसे वाल्व में वोल्टता का प्रवर्धन होता है। जबकि ट्रान्ज़िस्टर में धारा का प्रवर्धन होता है। एक अर्धचालक में धारा का प्रवाह विभवान्तर व विसरण दोनों के कारण होता है जबकि वाल्व में केवल विभवान्तर के कारण धारा प्रवाह होता है।

यद्यपि इन अर्धचालक युक्तियों द्वारा वाल्व का काम बखूबी लिया जा रहा है तथापि इनकी अपनी कुछ कमियाँ भी हैं। अर्धचालक के अन्दर इलेक्ट्रान, कोटर व एटम के अन्योन्य क्रिया से ये युक्तियाँ शोर युक्त हो जाती हैं। साथ ही ताप के थोड़े परिवर्तन का भी इन पर अधिक प्रभाव पड़ता है जबकि वाल्व में ऐसा नहीं होता। यदि एक अर्धचालक युक्ति का ताप 100°c से अधिक हो जाये तो सम्भव है कि दुबारा काम न दे सके। इन कमियों के कारण ट्रान्ज़िस्टर में विशेष सावधानियाँ बरतनी पड़ती है।

ट्रान्ज़िस्टरों और अर्धचालक डायडों का मूल्य वाल्व की तुलना में बहुत कम होता है इस कारण आज इनकी उपयोगिता सस्ते, छोटे व विशेष प्रकार के इलेक्ट्रानिकी के उपकरणों को बनाने में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

डा० प्रदीप कुमार
भौतिकी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

विज्ञान वार्ता

मूंगफली में पत्तियों पर धब्बे पड़ने के टिक्का रोग

तमिलनाडु में सलेम स्थित टेपीओका अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों के अनुसार बोआई से पहले बीज में फार्मेलिन या ताम्र सल्फेट मिलाने तथा फसल पर 0.1 प्रतिशत ब्रेस्टन का छिड़काव करने से मूंगफली की फसल के पौधों पर धब्बे पड़ने की टिक्का बीमारी की रोकथाम पूरी तरह की जा सकती है।

पौधों की पत्तियों को लगने के साथ-साथ यह बीमारी उनकी पंखुड़ियों, तना तथा कीलों को भी लग जाती है। छोटे रोगी पौधों में मूंगफली नहीं लगती और बड़े पौधों में अधपकी तथा सिकुड़ी हुई मूंगफली लगती हैं।

कचरा, मिट्टी हवा तथा बीज द्वारा यह बीमारी फैलती है। इसलिये वैज्ञानिकों ने रोगी पौधों के कचरे को जला डालने की सलाह दी है। इसके साथ-साथ बीज को उपचारित करने के लिये इसे चार घंटे तक 0.25 प्रतिशत फार्मेलिन या 30 मिनट तक कापर सल्फेट दवा मिला कर रखें। बोआइ से 30 दिन बाद फसल पर 0.1 प्रतिशत ब्रैस्टन या 0.75 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करने या 28 से 25 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से गंधक के चूर्ण का भुरकाव करने से टिक्का रोग की रोकथाम करने में सहायता मिलती है।

इसके साथ-साथ रोग का प्रभाव कम करने के लिये वैज्ञानिकों ने फसल में पोटास डालने की भी सलाह दी है।

बढ़िया माल्टे लेने का उपाय

लुधियाना स्थित पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में बागवानी विभाग के वैज्ञानिकों के अनुसार नाइट्रोजन, जस्ता, मैंगनीज तथा लोहे की कमी से माल्टे के पेड़ों की सामान्य बढ़वार नहीं हो पाती। इनकी कमी से फल भी घटिया किस्म के आते हैं। इन बातों को ध्यान में रख कर प्रत्येक पेड़ से ज्यादा से ज्यादा मात्रा में बढ़िया फल लेने के लिये वैज्ञानिकों ने माल्टा उगाने वालों को इनके पेड़ों में उपरोक्त चारों तत्व देने की सलाह दी है।

नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिये पेड़ों में गोबर-कूड़े की खाद डालने के साथ-साथ उनकी उम्र के अनुसार वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन वाले किसी भी उर्वरक की उतनी मात्रा प्रत्येक पेड़ में डालने की सलाह दी है जिससे उसे 0.20 से 3.20 किलो नाइट्रोजन मिल सके।

जस्ते की कमी को पूरा करने के लिये निष्क्रिय जस्ता सल्फेट (3 किलो जस्ता सल्फेट + 500 लिटर पानी में डेढ़ किलो बुझा हुआ चूना) बसंत तथा गर्मी के मौसमों में पेड़ों पर छिड़कें।

बसंत में फसल फूलने के बाद तथा बरसात के बाद दोबारा मैंगनीज सल्फेट (20 किलो मैंगनीज + 500 लिटर पानी में 1 किलो बुझा हुआ चूना) का छिड़काव करने से मैंगनीज की कमी दूर करने में सहायता मिलती है।

लोहे की कमी को पूरा करने के लिये निष्क्रिय फेरस सल्फेट (2 किलो फेरस सल्फेट + 500 लिटर पानी में 1 किलो बुझा हुआ चूना) का बसंत के मौसम में फसल फूलने के बाद पेड़ों पर छिड़काव करें। यदि बरसात के बाद फिर भी पेड़ों में लोहे की कमी दिखाई दे तो इसका दोबारा छिड़काव करें।

भीमकाय सूर्य प्रदीपन

स्काईलैब के संयन्त्रों ने 6 सितम्बर को एक बहुत बड़े धमाके को रिकार्ड किया। यह धमाका 1000 लाख परमाणु बमों के बराबर था और उससे इतना बड़ा छत्रक बादल बन गया कि वह पाँच पृथ्वी के बराबर था। यह धमाका सूर्य प्रदीपन के कारण था और उसके वजह से संयन्त्रों द्वारा भेजे जानी वाली लघु तरंगों के पथ में बाधा पड़ी। उस समय सुबह के 5 बजे थे जब यह धमाका हुआ और स्काईलैब 2 के यात्री सो रहे थे। हाउस्टन स्थित वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर से ही स्काईलैब के संयन्त्रों को चालू करके धमाके का रिकार्ड किया। प्रदीपन के समय उत्पन्न ताप कई लाख अंश था।

रक्त कैंसर में चाय प्रभावी

चाय में उपस्थित एक रासायनिक पदार्थ ल्युकीमिया अथवा रक्त कैंसर में प्रभावी सिद्ध हो सकता है। सोवियत संघ में कीव स्थित बोगोमोलेट्स फीजियोलॉजी संस्थान में चूहों को विकिरण से उपचारित किया गया। जब उनमें ल्युकीमिया के लक्षण पाये गये तो उन्हें दो समूहों में बाँट दिया गया। एक समूह को कुछ न दिया गया जब कि दूसरे समूह के चूहों को चाय से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ कैटेकिन दिया गया। इसी समूह के चूहे जीवित बच सके ऐसा पाया गया। यह निरीक्षण किया गया कि नीबू या सन्तरा में जितना विटामिन सी होता है उसका पाँच गुना विटामिन सी चाय की हरी पत्ती में पाया जाता है। खोजों से यह भी पता चला है कि चाय में कैटेफिन के रूप में विटामिन पी भी पाया जाता है। इन सभी पदार्थों के संयुक्त प्रभाव से ही ल्युकीमिया के ठीक होने का गुण चाय में पाया जाता है।

कृत्रिम जीन

मेसाचुसेट इन्सटीट्यूट ऑफ टेकनॉलॉजी के डा० कन्हैयालाल अग्रवाल, जो डा० हर गोविन्द खुराना की टोली में कार्य में करते हैं, के अनुसार कृत्रिम जीन बनाने की दिशा में और भी प्रगति होती गई है। टोली ने एक ऐसा जीन संश्लेषित किया है जो एशेरीशिया कोलाई अथवा ई कोलाई जीवाणु में पाये जाने वाले जीन के सदृश हैं। यह जीवाणु मानव तथा पशु की आँतों में पाया जाता है। डा० अग्रवाल ने अमरीकन केमिकल सोसाइटी को बताया है कि 126 इकाई जीन संश्लेषित हो चुके हैं उनमें केवल वही अंश अवशेष रह गये हैं जिनसे कोशिका में आरम्भ या अन्त संकेत प्राप्त होता है और जो जीन के बारे में कोशिका को सूचना देते हैं। उन्होंने कहा कि इस शोध से मानव को क्या लाभ होगा यह ज्ञान प्राप्त होने से हम अभी बहुत दूर हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि सम्भव है इस शोध का मानव को हानि पहुँचाने में भी कुछ लोग प्रयोग करें।

कपास की पैदावार बढ़ाने के गुर

तमिलनाडु, कृषि विश्वविद्यालय तथा कृषि विभाग के वैज्ञानिकों के अनुसार खेती करने की नयी विधियाँ अपनाने से प्रति हैक्टर 2800 रुपये की कीमत की लगभग 1401 किलो कपास की अतिरिक्त पैदावार आसानी से प्राप्त की जा सकती है। नयी विधियाँ ये हैं :—

(1) समय पर बोआई करना (2) पौधों की पास-पास रोपाई करना (3) समय पर फसल की निराई-गोड़ाई करना (4) खेत में उर्वरकों की सिफारिशशुदा मात्रा डालना तथा (5) समयानुसार पौध संरक्षण के तरीकों को अपनाना।

यह पता चला है कि सिंचाई वाले इलाकों में कपास की भारी पैदावार देने वाली एमसीयू-4, एमसीयू-5 तथा सुजाता किस्मों की फसलों में प्रति हैक्टर 60 किलो नाइट्रोजन, 18 किलो फास्फोरिक एसिड तथा 18 किलो पोटाश की सिफारिशशुदा मात्रा डालने से 292 किलो कपास की अतिरिक्त पैदावार मिली जिससे 559 रुपये प्रति हैक्टर के हिसाब से नकद लाभ हुआ।

इसी प्रकार इन किस्मों की समय पर बोआई करने, पौधों के पास-पास रोपने तथा समय-समय पर फसल की निराई-गोड़ाई करने की केवल तीन नयी विधियों के अपनाने से ही प्रति हैक्टर 852 रुपये की कीमत की 420 किलो कपास की अतिरिक्त पैदावार मिली।

[शेष पृष्ठ 22 पर]

आप क्या जानते हैं ?

- तोता ही एक ऐसा पक्षी है जो जम्हाई लेता है।
- जिराफ़ की जीभ इतनी लम्बी होती है कि वह उससे अपने कान चाट कर साफ़ कर सकता है।
- चमगादड़ पराश्रव्य तरंगें उत्पन्न कर सकता है।
- गाय कभी सोती नहीं है।
- टैपी नस्ल की बिल्ली अजीब ढंग से दूध पीती है। दूध में वह पहले पंजा डुबोती है फिर पंजे को चाटती है।
- पृथ्वी का भार रोज लगभग 1,000 किलोग्राम बढ़ जाता है।
- पुरुषों में 50 वर्ष तक हृदय रोग से मृत्यु होने की संभावना स्त्रियों की तुलना में 5 गुना अधिक होती है।
- गैलियम को हथेली पर रखने पर ही वह गलने लगता है।
- रूस में एक ऐसी किलनी पाई जाती है जिसकी जाँघ पर का एक अंग राडार का काम करता है।
- समुद्री झींगा सागर की गहराइयों में अपने शरीर को बहुत चमकदार बादल से घेर कर अपना मार्ग प्रकाशित करता है।
- डिंब में पाया जाने वाला चिपचिपा पदार्थ साइटोप्लास्म एक ऐसा गोदाम है जिसमें भावी भ्रूण की बढ़ोत्तरी के समय उपयोग होने वाले प्रोटीन आदि भोजन के तत्व जमा रहते हैं।
- पुष्प वान पौधा 7000 से अधिक और इंवनिंग प्रिम रोज का एक पौधा 1,18,000 से अधिक बीज उत्पन्न करता है।
- वृहस्पति ग्रह के धरातल का ताप 210°F, उसका घनत्व 1·3 तथा गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्व का ढ़ाई गुना है।

[पृष्ठ 15 का शेषांश]

हृदय की जाँच करने के लिये आजकल चिकित्सक विशेष उपकरण द्वारा हृदय की गति का चित्र प्राप्त करते हैं जिसे वैद्युत-हृद लेख कहते हैं। एस्केन विधि जिसमें पराश्रव्य तरंगों से हृद चित्रण किया जाता है। इस हृद लेख में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त हो सकती है। पराश्रव्य तरंग हृद लेख (अल्ट्रासॉनिक कार्डियो ग्राम-यू० सी० जी०) ध्वनि के गतिवान विन्दुओं की एक निश्चित गति से चलने वाली फिल्म पर अंकित करके प्राप्त कर लिया जाता है। इसे सबसे पहले जर्मनी में विकसित किया गया था और अब सभी-जगह प्रयोग में लाया जा रहा है।

[पृष्ठ 20 का शेषांश]

केवल पौध संरक्षण के तरीकों को ही अपनाने से इन किस्मों की फसल मे प्रति हैक्टर 585 किलो कपास की अतिरिक्त पैदावार मिली जिससे 766 रुपये का मुनाफा हुआ।

खेती करने की पाँचों सिफारिशशुदा नयी विधियों को अपनाने से प्रति हैक्टर 2800 रुपये की लागत की 140 किलो कपास की अतिरिक्त पैदावार मिली।

वर्ष 1975 अन्तरिक्ष अनुसन्धान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष अमेरिका द्वारा निर्मित एक 'एप्लीकेशन टेक्नालॉजी सैटेलाइट' (ए टी एस भारत के पांच हजार गांवों को टेलिविजन पर शिक्षा कार्य क्रम प्रसारित करेगा। उपग्रह हिन्द महासागर के ऊपर एक साल तक प्रयोगों के लिए स्थिर रहेगा जिसके दौरान भारतीय भू-केन्द्र टेलिविजन कार्य-क्रम उपग्रह को भेजेंगे जो संदेशों को शक्तिशाली बना कर गांवों को भेजेगा। इसी वर्ष अमेरिकी अपोलो तथा सोवियत सोयूज दो-तीन यात्रियों सहित पृथ्वी से 265 किलोमीटर की ऊँचाई पर जुड़ कर साथ-साथ उड़ेंगे।

विज्ञान के नये चरण

सी फैक्स—जानकारी का नया यंत्र

इस यंत्र का आविष्कार बी बी सी के इंजीनियरों ने किया है। इसको टेलीविजन के साथ जोड़ने पर मौसम, घुड़दौड़, खेल आदि 30 विषयों पर नवीनतम जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस यंत्र का आकार एक छोटे बक्स जैसा होगा। इसमें 30 पृष्ठों की सामग्री होगी और प्रत्येक पृष्ठ पर टेलीप्रिंटर संदेशों जैसा होगा। एक बटन दबाने पर दर्शक अपनी इच्छानुसार कभी भी किसी भी पृष्ठ को टेलीविजन पर देख सकेगा। इन पृष्ठों की विशेषता यह है कि हर मिनट के बाद इनमें नई जानकारी जुड़ जायगी। ऐसी सुविधा अखबारों में नहीं होती। इस यंत्र को बीधरों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयत्न जारी है।

उड़न चेसिज

एक छोटे हेलीकॉप्टर—"का-26" की बनावट उड़न चेसिज पर आधारित है, जिससे तरह तरह के सामान और कक्ष को लटकाया जा सकता है। एक और युक्ति ने इसे भूगर्भंताओं के लिये बड़ा उपयोगी बना दिया है। हेलीकॉप्टर को परिवृत्त करता हुआ वलय उसके आसपास एक विद्युत चुंबकीय क्षेत्र पैदा कर देता है। यह 'आवेशित' हेलीकॉप्टर जिस जगह के ऊपर होकर उड़ता है, उसके अयस्क विक्षेपों में भी इसी प्रकार का अन्योन्य क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। भूगर्भ सम्बन्धी हवाई विद्युत पुर्वेक्षण का यह नया यंत्र औद्योगिक विकास के उपयुक्त तांबा, लोहा, निकल तथा अन्य धातुओं के बड़े-बड़े अयस्क निक्षेपों को ही दर्ज करता है।

ताप सहन में बेजोड़

रूस में नये प्रकार की भट्टियाँ बनाने की दिशा में नया कदम उठाया गया है। शायद ही कोई ऐसी चीज होगी जो गरमी को सहने के मामले में नायोबियम कार्बाइड का मुकाबला कर सके। यह यौगिक 3000° सें० तक के तापों को आसानी से झेल लेता है, इसका उच्चताप सह्यतासीमांत बहुत ही अधिक है और इसका गलनांक 4000° सें० के निकट है। यूक्रेनी विज्ञान कादमी के धातु संस्थान में किये गये अध्ययनों से पता चला कि नायोबियम कार्बाइड का उपयोग करके आमूलतः नये प्रकार की उच्चताप भट्टियाँ अब सम्भव हैं।

टेस्ट ट्यूब गर्भ

आस्ट्रेलिया के डाक्टरों ने टेस्ट ट्यूब गर्भ निर्धारण में सफलता प्राप्त कर ली है। एक छोटे से टेस्ट ट्यूब कक्ष में महिला की डिम्बग्रंथि से प्राप्त अंडों का उसके प्रति के शुक्राणुओं से संसेचन करने के पश्चात् बने हुए भ्रूण को ससफलतापूर्वक महिला के गर्भाशय में पहुँचा दिया गया और महिला गर्भवती हो गई। क्वीन विक्टोरिया अस्पताल के डाक्टरों ने प्रो० कार्ल वुड के नेतृत्व में उस महिला का 7 सप्ताह पूर्व ऑपरेशन किया था। इसके पूर्व तक वह महिला गर्भ धारण न कर सकी थी।

लेसर घड़ी

लेसर की बहुमुखी उपयोगिता की चर्चा हम सब बराबर पढ़ते रहते हैं। उन्हीं में एक और महत्वपूर्ण उपयोगिता जुड़ गई है इससे मानव समाज को लाभ पहुँचेगा। अंधे लोग अभी पूर्णतया दूसरों पर निर्भर

करते हैं। रास्ते में चलते समय वे बेसहारा ही होते हैं। सानडीगो की एक रिपोर्ट के अनुसार बैटरी चालित घड़ी बनाई गई है जिसमें तीन लेसर होते हैं। यद्यपि अभी इस घड़ी का मूल्य बहुत है (3000 डालर) परन्तु आशा की जाती है कि आगे चलकर इसका मूल्य इतना हो सकेगा कि साधारण व्यक्ति भी उसका उपयोग कर सके।

देखने और स्पर्श करने वाला रॉबॉट

जापान की प्रसिद्ध फर्म हिताशी लिमिटेड ने यह घोषणा की है कि उसने एक ऐसा रॉबॉट बनाया है जिसमें दृष्टि और स्पर्श करने की क्षमता विद्यमान है। इस प्रकार का संसार का पहला रॉबॉट है कांक्रीट फैक्टरी को यह रॉबॉट उपयोग के लिये दिया गया है जहाँ यह पाइल (स्थूणा) के फ्रेम में बोल्ट नर को कसने का कार्य करता है। इस रॉबॉट की सहायता से मानवहित संयंत्र का निर्माण किया जा सकता है। इस रॉबॉट में एक टेलीविजन कैमरा लगा है जो मानव आँख के समान कार्य करता है मनुष्य की उँगलियों की तरह स्पर्श से ज्ञान प्राप्त करने व कार्य करने की प्रविधि भी इसमें है। इसकी दृष्टि वस्तु को देख कर उसके आकार का अनुमान लगती है और आपेक्षित कार्य को स्पर्श तंत्रिका करती है।

पुस्तक समीक्षा

भौतिकी की नई दिशाएँ

पृष्ठ संख्या 142, मूल्य 7 रु०

लेखक : श्यामलाल काकानी

प्रकाशक—राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भौतिकी के क्षेत्र में हो रहे अत्यधिक महत्वपूर्ण अधोदत्त आधुनिक अनुसन्धानों को हिन्दी के माध्यम से अति सरल ढंग से प्रस्तुत किया है।

1. अति चालकता 2. नियन्त्रित ताप नाभिकीय संलयन ऊर्जा 3. मॉस बाउअर प्रभाव 4. टैकियान्स 5. लेसर 6. होलोग्राफी

पुस्तक की भाषा एवं सरल है। विषय का प्रतिपादन चित्रों द्वारा किया गया है जिससे कठिन विषयों को सरलता से समझा जा सकता है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में निर्देश देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पर स्टेलैरेटर का आकर्षक चित्र है। छपाई के कारण कठिन तकनीकी शब्दों के साथ साथ उनका इंग्लिश रूपान्तर देने से पाठकों को इसे समझने में कठिनाई नहीं होगी। पुस्तक की छपाई सुन्दर है, एवं मुखपृष्ठ कुछ त्रुटियाँ पुस्तक में अवश्य रह गई हैं लेकिन अन्त में शुद्धिपत्र के कारण यह पाठकों को किसी प्रकार से अखरेगा नहीं। यदि पुस्तक में निम्न दो अध्याय और होते तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती:

1. मूलकण
2. गुरुत्वीय तरंगें

पुस्तक सभी स्तर के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी होगी क्योंकि इसमें भौतिकी के क्लिष्ट विषयों को गणित का कम से कम सहारा लेकर, रोचक ढंग एवं सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक का मूल्य यदि कुछ कम होता तो ठीक रहता।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | फाल्गुन 2030 विक्र०, 1894 शकाब्द सितम्बर 1973 | संख्या 12

पारे से भी अधिक विषाक्त कैडमियम

डा० अरुण कुमार सक्सेना

आजकल प्रदूषण के प्रसंग में पारे को लेकर काफी वाद-विवाद हो रहा है। यह तत्व कारखानों के मलवों के साथ नदियों में पहुँचता है जहाँ से यह समुद्र में एकत्रित होता जा रहा है। समुद्र से यह पारा जल के जीवों के मांस द्वारा मनुष्य तक फिर पहुँच जाता है। यह पारा शरीर में एक बार व्याप्त होने जाने पर शीघ्र निकलने का नाम ही नहीं लेता और फिर कुछ समय पश्चात् इसके दूषित प्रभाव शरीर में प्रकट होने लगते हैं जिनके कारण संसार के वैज्ञानिकों तथा चिकित्सकों में खलबलीं मची हुई है। शायद आपको ज्ञात नहीं कि पारे से भी अधिक शरीर में व्याप्त होने वाला तत्व कैडमियम है।

कैडमियम के विषैलेपन की कहानी द्वितीय महायुद्ध के तुरन्त बाद ही जापान की राजधानी टोकियो से लगभग एक सौ पचास मील की दूरी पर स्थित फूश्यू-माशी नामक नगर से आरम्भ होती है। इन्हीं दिनों इस नगर के लगभग दो सौ निवासी एक विशेष प्रकार के रोग से पीड़ित हो उठे थे। इस रोग में रोगी के शरीर की मांस-पेशियों में असीम पीड़ा होती थी। इसी पीड़ा के कारण इस रोग का नाम जापानी भाषा में इटाई, इटाई व्यूओं या ओच-ओच रख दिया गया था। इस जापानी इटाई रोग के लक्षण भी विशेष होते थे। यह लम्बैगो की पीड़ाएँ उत्पन्न करता या गुर्दों को अत्यधिक हानि पहुँचाता तथा हड्डियों में कैल्शियम तत्व की कमी उत्पन्न करने लगता था। इससे विशेषकर के जापानी महिलाएँ अधिक पीड़ित हुई थीं जिनके अधिक बच्चे पैदा हुए थे। आज बीस वर्षों पश्चात इस रोग का मूल कारण वैज्ञानिकों के समझ में आ रहा है। यह है कैडमियम का विषैला प्रभाव। इस कुप्रभाव का श्रोत था कैडमियम धातु निकालने वाली एक खान। इस खान की मिट्टी पास बहने वाली नदी में जाकर मिलती है। यह नदी इस फूश्यू-माशी नगर से होकर बहती है और इसके जल का उपयोग आज भी धान के खेतों को सीचने में किया जाता है और उन दिनों भी किया जा रहा था। कैडमियम खाने के द्वारा शनैः-शनैः नागरिकों के शरीर में व्याप्त होता गया और जब इसकी मात्रा अधिक हो गई तो यह रोग उत्पन्न हुआ।

आजकल के वैज्ञानिक इस बात पर अधिक बल दे रहे

हैं कि वातावरण को कैडमियम तथा अन्य इन प्रकार के तत्वों से दूषित न किया जाय और पुरानी भूल फिर से न दोहराई जाये। परीक्षणों से यह ज्ञात हो चुका है कि इस तत्व की रंच मात्रा भी मानव शरीर के लिये अत्यन्त हानिकारक है। यह रोग फेफड़ों तथा गुर्दों पर विशेष रूप से अपना दूषित प्रभाव शीघ्रता से प्रकट करता है।

अमरीका के फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन ने 1971 के जुलाई मास में इसी कैडमियम तत्व के सम्बन्ध में आगाह किया था। इसका आधार एक विशेष मिठाई थी जो लगभग 15 बच्चों ने खाई थी। वे सब इसका सेवन करते ही रुग्ण हो गये थे। विशेष रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ था कि इस मिठाई में प्रति दश लक्षांश पर 1000 अंश से भी अधिक कैडमियम तत्व विद्यमान था। 'अमरीकी इनवायरोमेन्टल प्रोटेक्शन एजेन्सी' ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि हेलेना नगर स्थित मोन्ट नामक तांबा निकालने वाली कालोनी के रहने वालों बच्चों के बालों के परीक्षण करने पर कैडमियम की अत्यधिक मात्रा पाई गई। सिनसिनाटी विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने तम्बाकू के धुयें में इस तत्व की उपस्थिति पाई है। इन्हीं कारणों से फूड एण्ड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन ने आजकल डिब्बों में बन्द तथा ठन्डे जमें हुये खाद्य पदार्थों में कैडमियम की मात्रा का भी निरीक्षण प्रारम्भ कर दिया है।

पिछले दो वर्षों से इस ओर विशेष शोध-कार्य चल रहे हैं। स्वीडन स्थित रोचेस्टर विश्वविद्यालय के केरोलिस्का इस्टीट्यूट के तीन वैज्ञानिकों के एक दल ने एक रिपोर्ट तैयार कर इस तत्व के दूषित प्रभावों पर विशेष प्रकाश डाला है और अन्त में इसे हानिकारक पदार्थ करार कर दिया है। इस दल के नेता डा० लार फराईवर्ग ने इस बात पर बल दिया है कि कैडमियम का प्रतिदिन सूक्ष्म मात्रा में मानव शरीर में पहुँच कर एकत्रित होना अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा। अभी तक इसकी लेड मात्रा का पता लगाने वाले यंत्र इतने अच्छे नहीं थे कि वे इसकी सूक्ष्म मात्रा को सही-सही बता सके।

पारे के समान कैडमियम की सूक्ष्म से सूक्ष्म मात्राएँ शरीर में व्याप्त हो जाती हैं। शरीर में व्याप्त पारे की आधी मात्रा लगभग 70 दिनों में शरीर से निकल जाती है किन्तु कैडमियम की उतनी ही मात्रा को निकलने में लगभग 2 वर्षों से 30 वर्षों तक लग जाते हैं। यह जब शरीर में व्याप्त होने लगता है तो शनैः-शनैः गुर्दे में एकत्रित होने लगता है और जब गुर्दे में इसकी मात्रा प्रतिदशलक्षांश पर 200 अंश हो जाती है तो गुर्दे को जो हानि हुई रहती है उसका पता चल जाता है। इस मात्रा के एकत्रित होने में कुछ समय लगता है।

फलतः वैज्ञानिकों के सम्मुख यह प्रश्न आया कि कैडमियम की वह मात्रा कितनी है? तथा गुर्दे को कितने समय पश्चात् हानि पहुँच सकती है? स्वीडन के वैज्ञानिकों का मत है कि कोई भी मनुष्य जो कैडमियम के उद्योगों में काम करता है। लगभग सात वर्षों तक इसका कुप्रभाव सहन कर सकता है। जापान के वैज्ञानिकों का मत है इससे भिन्न है। कोई भी मनुष्य जिसकी आयु बीस वर्ष के लगभग हो वह इसकी चपेट में आ सकता है। यह रोग प्रोटीन तथा कैल्शियम की कमी के कारण और भी शीघ्रता से हो सकता है। डा० फराईवर्ग का मत है जो कुछ भी हो इससे सदैव दूर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
14 कटरा रोड,
इलाहाबाद 2।

जीवन्त-परमाणुमय–ब्रह्माण्ड

डा० जय शंकर द्विवेदी

अनन्त अन्तरिक्ष के कुहरों में क्या है ? अनादि युग से इसकी खोज हो रही है। भौविक विज्ञान की सहायता से वैज्ञानिकों ने बड़ी-बड़ी दूरबीनों की रचना की है। उनके सहारे अपनी नग्न आँखों से नीहारिकाओं का प्रसार देखते हैं। आकाश गंगा के पार अगणित ज्योतिः पुञ्जों को भीषण वेग से भागते हुए देखते हैं। ये कहाँ भाग रहे हैं ? किसमें भाग रहे हैं ? ये सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका कोई समाधान युक्त उत्तर भौतिक वैज्ञानिकों के पास नहीं है। वह अनन्त अन्तरिक्ष से भयभीत है। स्वभावतः वह अपने ही प्रतिरूप को पाने की उत्कट अभिलाषा रखता है। सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों में अपने ही समान जीवधारियों के पाने इच्छा से उद्विग्न है। ब्रह्माण्ड के इदमित्थम् को जानना चाहता है। पर उसे कहीं टिकाव नहीं है। योग-दर्शन टिकाव देता है। अनन्त ब्रह्माण्ड की भारतीय कल्पना पातञ्जल योग से समुद्भूत है। बौद्ध-दर्शनों में शून्यवाद और पाश्चात्य वैज्ञानिकों में इन्फिनिट् बॉयड की कल्पनाएँ उनके ह्रासोन्मुख मानसिक पृष्टभूमि की द्योतक हैं। इनके विपरीत पातञ्जल योग अनन्त ब्रह्माण्ड को सम्पूर्णता एवं जीवनमय सक्रियता का प्रतीक मानता है।

अभी, कुछ ही दिनों पूर्व साइबीरिया में एक गिरगिटान बर्फ की शिला बीच समाधिस्थ मिला। कुछ ही क्षणों पश्चात् ऊष्मा पाने पर गिरगिट जीवनमय हो रेंगने लगा। उसके शरीर के परमाणुओं की रेडियो-कार्बन-परीक्षा से ज्ञात हुआ कि यह जीव जिसकी औसत साधारण आयु सात या दस वर्ष की होती है समाधिस्थता के कारण १०० वर्ष की हो चुकी है। इस गिरगिट के शरीर के परमाणुओं की रेडियो-कार्बन परीक्षा सोने की खोज में साइबीरिया की हिमावृत भूमि को खोदने वाले रूसी भूगर्भ-शास्त्रियों ने की है। पातञ्जल-योग मृत्यु पर विजय तथा स्वेच्छा से कलेवर परिवर्त्तन का संदेश वाहक ही नहीं अपितु इन्हें कार्यान्वित कराने की परा-प्राकृतिक और अतिमासिक-प्रक्रियों का ग्रन्थ गिरगिट की जिस अवस्था को यहाँ समाधिस्थ अवस्था लिखा गया है उसे अंग्रेजी भाषा में हिबरनेशन कहा जाता है महर्षि वाल्मीकि दीमकों की बाँवियों के बीच कितने दिनों तक दबे पड़े रहे भारतीय पौराणिकों के लिये अनुसन्धान का विषय है। पाश्चात्य वैज्ञानिक इस वाल्मीकि उपाख्यान को हिबरनेशन की प्रक्रिया का वर्णन मानता है। यहाँ पर हिबरनेशन और समाधिस्थता का समीकरण करना उद्देश्य नहीं है। गिरगिट के हिबरनेशन की अवस्था स्वेच्छा और चेतना विहीनता की द्योतक है किन्तु महर्षि की बल्मीकावस्था जीवन्त चेतना एवं बुद्ध्यात्मिका-व्यवसायवृत्ति की निरुद्धावस्था की परिचायिका है। हिबरनेशन विषम प्रकृति से पराभूत हो जीवधारी जीवन की रक्षा के लिये विवश हो उसे अपने ऊपर आरोपित करते हैं। पर योग की समाधि प्राकृतिक विषमताओं का परिणाम नहीं है। वह परमानन्द में लीन होना है।

ऐसी घटनायें विश्व में प्रतिक्षण घटित होने वाले महान परिवर्तनों की तुलना में अति नगण्य हैं, पर विवेकशील मनुष्य के लिये जीवन और उसके विकास और इसकी स्थिति के रहस्यों को उद्घाटित करने वाली हैं। ब्रह्माण्ड की प्रकृति पर प्रकाश डालने वाली हैं। प्राण की रुद्धावस्था में शरीरधारी के शरीरी की स्थिति जैसी की तैसी बनी रहती है। उपर्युक्त घटना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सजीव परमाणुओं को पृथ्वी की गहन पर्तों के बीच स्तब्धावस्था में पड़ा हुआ भूगर्भशास्त्रियों ने पाया है। ये जीव परमाणु हजारों वर्ष की आयु वाले पाये गये हैं, ये जीव परमाणु पुनः स्तब्धावस्था का परित्याग कर जीवित हो उठते हैं। प्राणिशास्त्रियों की उपलब्धि है कि प्रत्येक जीव-परमाणु मातृशक्ति-सम्पन्न-कोष से सदैव युक्त रहता है। यह माल्ट कोष अपने को द्विधा विभक्त कर एक से अनेक होता रहता

है। सतत जीव विकास का यही रहस्य है। योग-दर्शन में इस शक्ति को परा-शक्ति की आभिधा प्राप्त है। इसी शक्ति से यह अनन्त ब्रह्माण्ड ओत प्रोत हो रहा है।

"अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीव भूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥"

वैज्ञानिक इस परा शक्ति को टेक्नॉलोजी का अंग बनाना चाहता है। टेक्नॉलोजी की भाषा द्वारा इसका वर्णन करना चाहता है। पर अभी तक सफल नहीं हो पाया है। यदि ब्रह्माण्ड के सतत वृहद् होते रहने की प्रक्रिया का यह प्रतिफल माना जाय तो हो सकता है कि एक वैज्ञानिक को एक समाधान मिले, क्योंकि इनऑरगेनिक (जड़) पदार्थ अनवरत रूप से ऑरगैनिक (सचेतन) पदार्थ में परिणत होता रहता है। रासायनिक परिवर्तन का यह सिद्धान्त वैज्ञानिकों के लिये समाधान बन सकता है पर योग सिद्धान्त स्पष्ट रूप से इसे परा शक्ति की संज्ञा प्रदान करता है। इस शक्ति की विशद विवेचना भारतीय मनीषा ने की है। इस शक्ति की अनुभूति मनुष्य अपने शरीर-पिण्ड में करता है। मानव-पिण्ड में सतत ऐन्द्रिय-अनुभूति ही सत्य-ज्ञान है। जो कुछ भी अनुभूति से परे है वह ही मिथ्या ज्ञान है। "ट्रूथ इज़ कॉन्स्टैण्ट सेन्सेशन" (विलड्यूराण्ट) अनुभूत्यात्मक चेतना से सम्बन्धित ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। इसके अतिरिक्त सब शब्द-जाल है। विकल्प है। "शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः" विकल्प शब्दों का आडम्बर होता है। उसका भौतिक जगत में कोई अस्तित्व नहीं। इन्द्रियों द्वारा जिसकी सतत चेतनात्मक अनुभूति होती रहे उसी को सत्य कहते हैं उसी को ज्ञान कहते हैं। योग-दर्शन अनन्त ब्रह्माण्ड की संरचना सम्बन्धी सिद्धान्तों को विकल्प रूप से उपस्थित नहीं करता। पातञ्जल योग एक अनुभूति के क्षेत्र का प्रयोगात्मक ग्रन्थ है। ध्वनि, स्पन्दन, श्वास-प्रश्वास जो मानव पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। पिण्ड सत्य है इसीलिये ब्रह्माण्ड सत्य है। अनन्त अन्तरिक्ष प्राणमय है। अखिल ब्रह्माण्ड अनुप्रणित चेतना से स्पन्दित हो रहा है। योग दर्शन का यही संदेश है। आज दिन भौतिक विज्ञान की सबसे भारी समस्या है कि वह हमें यह नहीं समाधित करा सकता कि जैसा हम भीतर से अनुभव करते हैं वैसा ही बाहर भौतिक जगत में भी हम हैं। किन्तु योग दर्शन भीतर और बाहर दोनों को एक करा कर अनुभूत्यात्मक ज्ञान का प्रकाशन कराता है। भौतिक विज्ञान की सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टियों तथा उसके वाह्य प्रयोगात्मक उपलब्धियों के बीच एक भारी खाई पड़ी हुई है। इस विषम खाई को पार कर दोनों को एकाकार करना भौतिक विज्ञान के लिये एक ललकार है जिसका उसे सामना करना है।

पैनस्पर्मिया-सिद्धान्त मानता है कि जीवन्त-परमाणु पोरस द्वारा गतिमान होते हैं और अनन्त अन्तरिक्ष के कोनों कोनों में व्याप्त हैं। उन्हें जब कभी वा जैसे कभी सुअवसर मिलता है वे चंचल हो जीवधारी दृश्यमान रूप धारण कर लेते हैं।

पैनस्पर्मिया का यह सिद्धान्त इस बात का द्योतक है कि यह अनन्त ब्रह्माण्ड जीवमय है। जो पदार्थ जड़ माना जाता है वही चेतना जीव का एक दूसरा रूप है। जड़ पदार्थ एवं चेतन पदार्थ एक ही शक्ति के, मानो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भौतिक विज्ञान उपर्युक्त तथ्य को, चूंकि प्रयोगशाला की परिधि के भीतर ला नहीं सकता अतः उसे विकल्प मानता है। प्रयोगात्मक आधार के अभाव के कारण दृश्यमान एव अदृश्यमान जगत के प्राणमय-जीवन-दर्शन की पूर्ण और सम्पूरक विवेचना भौतिक विज्ञान द्वारा सम्भव नहीं हो पा रही है। ऐसी ही स्थितियों से पराभूत वैज्ञानिक योग दर्शन की ओर झुक रहा है। निश्चय ही भौतिक विज्ञान को भविष्य में उसकी अनेक गुत्थियों का सुलझा हुआ रूप योग दर्शन द्वारा दिखलाई पड़ेगा।

डा० जयशंकर द्विवेदी
S. 8/520 खजुरी, वाराणसी

प्रकृति एवम् जनसंख्या नियन्त्रण

श्यामसुन्दर पुरोहित एवम् चैतन्य कुमार गहलोत

'वर्तमान भारत की प्रमुख समस्याओं' में से एक मुख्य समस्या जनसंख्या की है। यह एक, साधारण रूप से, हमारा विचार बन गया है। परन्तु यह समस्या सिर्फ हमारे राष्ट्र की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व की है। प्रकृति काफी समझदार है, वह अपने आप ही जनसंख्या घनत्व को एक-सा बनाए रखती है। हालांकि यह समस्या हमारे देश के लिए बड़ी विकट है, फिर भी हम यदि जनसंख्या-नियन्त्रण के सम्बन्ध प्रकृति के साथ देखें तो कई अद्भुत बातें दृष्टिगत होती हैं। एक आश्चर्यजनक तथ्य की पुष्टि के लिए हम निम्न वर्षों में विश्व-जनसंख्या को देखेंगे :—

सन् 1868 ई० में विश्व की जनसंख्या 1·25 अरब थी,

सन् 1948 ई० में विश्व की जनसंख्या 2·50 अरब थी, एवम्

सन् 1988 ई० में विश्व की जनसंख्या 5·00 अरब हो जाएगी।

उपर्युक्त अंकों से हमें जो आश्चर्यजनक तथ्य दृष्टिगत होता है कि 1868 ई० (1708 के पश्चात) यानी 160 वर्षों के अन्तर में विश्व जनसंख्या दुगुनी हो गयी। इसके पश्चात् 1868 ई० से 1948 ई० के मध्य यानी 80 वर्षों में जनसंख्या फिर दुगुनी (1868 की जनसंख्या से) हो गयी तथा अब जिस गति से जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है, उसके अनुसार यही जनसंख्या 1988 ई० में यानी सिर्फ 40 वर्षों में फिर दुगुनी हो जाएगी अर्थात् पहले से आधे समय में जनसंख्या दुगुनी होती जाएगी। जहां तक जनसंख्या-नियन्त्रण का प्रश्न है, यह चीन में सबसे अधिक सफलता से किया जा रहा है परन्तु वहां के तथ्य प्राप्त नहीं हैं।

कई वर्षों पूर्व 'माल्थस' नामक अर्थशास्त्री ने अपने लेख "Essay on Population" में लिखा 'कि जनसंख्या वृद्धि भोजन तथा भोजन के स्रोतों पर निर्भर करती है। इसके पश्चात् हत्याएँ होती हैं, जीवन के लिए संघर्ष आरम्भ हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप योग्यतम का चयन (जीवन के लिए) होता है। माल्थस के इस सिद्धान्त ने 'डार्विन' तथा 'वालेस' को प्रभावित किया। माल्थस ने इस प्राकृतिक-चयन के लिए कई कारक इंगित किए, जिनमें युद्ध, अकाल, बीमारी इत्यादि प्रमुख हैं।

आधुनिक विचारधाराएँ, इस धारणा को नहीं मानतीं कि माल्थस का सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही है। प्रकृति स्वयं ही जनसंख्या को नियन्त्रित करती है। वातावरण-प्रलय इस समस्या के अपवाद हैं कि 'जनसंख्या कभी भी भोजन की कमी की स्थिति तक नहीं पहुँचती।' अर्थात् जनसंख्या इतनी बढ़े कि भोजन की कमी हो जाए, उससे पहले ही वातावरण इसे सम्हाल लेता है।

नियन्त्रण के प्रकृतिक तरीके

(1) **स्वत: गर्भपात**—अर्थात् किसी भी न्यासर सक्रियता से बच्चा गिर जाए अर्थात् गर्भपात हो जाए तो बच्चा पैदा ही नहीं होगा। परन्तु इससे अत्यल्प मात्रा में ही नियन्त्रण किया जा सकता है।

(2) **उत्पत्ति में न्यूनता**—यह कई तरह से हो सकता है :—

(अ) माता-पिता द्वारा लापरवाही,

(ब) अपने ही बच्चों को खाना (Infanticide),

(स) स्वभक्षण (Cannibalism)।

इसे देखने के लिए चूहों पर प्रयोग किए गए। जिसमें यह पाया गया कि जन्म देने के बाद 4 दिन के अन्दर यदि किसी दूसरे चूहे की गंध यदि जननी-चूहे को मिल जाए या अपने पूर्व साथी के अलावा किसी दूसरे चूहे से मैथुन कर ले तो भ्रूण विकसित नहीं होगा।

शेर पहले अपना भोजन ढूंढ़ते हैं, बच्चों की परवाह किए बिना। यहाँ तक कि यदि उन्हें खाने को न मिले तो वह अपने ही बच्चों का भक्षण कर लेता है।

अभी तक कुछ आदिवासियों में अपने ही बच्चों को खाने तथा स्वभक्षण के उदाहरण पाये जाते हैं।

(3) **क्षेत्रीय व्यवहार** (Territorial behaviour) प्राचीन समय में क्षेत्रीय-व्यवहार काफी प्रमुख कारण रहा। जैसे—चिड़ियाएँ। ग्राउज चिड़िया में जन्म देने के समय से ये पहले कई नर चिड़ियाएँ अपने-अपने क्षेत्र बना लेती, पर सभी नहीं बनाती हैं। इसके लिए संघर्ष होता है एवम् कमजोर मारे जाते हैं। स्वयं के क्षेत्र में वहां के निवासियों को रहस्यमयी शक्ति मिलती है। शेष बने हुए नर या मादा कुवांरे रहते हैं तथा ये जन्म नहीं देते। अपने बच्चों को खाना आदिकालीन मानव में काफी साधारण बात थी। फ्रांस तथा इंगलैंड में 1878 तक भी अनचाहे अथवा विकलांग बच्चों की हत्या कर दी जाती थी। भारत में भी राजपूतों में सभ्य होने के बावजूद कन्या की हत्या उसके जन्मते ही कर दी जाती थी। इसका कारण मात्र उनकी परम्परा थी। स्वभक्षण जानवरों में काफी पाया जाता है। मादा बच्चों को जन्म देती है परन्तु भूखी होने पर वह उन्हें भी खा जाती है। स्पेन में 'गप्पी' नामक मछली पर प्रयोग किए गये। वहाँ दो विभिन्न 'एक्वेरियम' में क्रमशः 25 एवम् 50 वयस्क मछलियाँ रखीं गयीं। इन्होंने काफी तेज गति से प्रजनन किया परन्तु अन्त में दोनों में सिर्फ 9-9 मछलियाँ ही बचीं, जिनमें 3 नर थीं व 6 मादा थीं।

(4) **बलपूर्वक मृत्यु** (Death by stress) या **आनुवंशिक विकार**—जब संघर्ष समाप्त हो जाता है या रक्षा बढ़ जाती, तब 'आनुवंशिक विकार' दृष्टिगत होता है। सन् 1911 में अलास्का में भोजन तथा कार्य के लिए कई रेण्डियर छोड़े गए। सन् 1938 में मात्र 200 रेण्डियर रह गए। जब कि वहाँ कोई आक्रान्ता या रोग नहीं था। लेकिन 1950 में केवल 8 रेण्डियर बचे क्योंकि अधिक उत्पत्ति के कारण उनका जीन पूल विकृत हो गया। जब हम युद्ध, अकाल तथा रोगों को भी अपने हाथों बन्दी बनाना, अपना धर्म समझ रहे हैं परन्तु वास्तव में यह हमारे ही विरुद्ध सिद्ध होंगे।

इसका एक काफी अच्छा उदाहरण 'स्नो-शू-हेयर' का है, उसकी जनसंख्या 10 वर्ष तक बढ़ती रहती है। इसी समय में इनकी जनसंख्या सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाती है, परन्तु प्रति दस वर्ष के पश्चात् ये अपने आप ही मरने लगते हैं। यहीं प्रयोग नियन्त्रण-पिंजरों में किए गए, तो वहाँ भी यही परिणाम सामने आये। इसी प्रकार उत्तरी यूरोप के 'सेमिंग' प्रति 4-5 वर्ष के पश्चात् बहुत ही शीघ्रता से बढ़ने लगते हैं। ये पानी में बढ़ते रहते हैं तथा सभी मिलकर करते हैं जिसमें इनकी बढ़ी संख्या में मृत्यु हो जाती है। अधिक जनसंख्या का परिणाम बलपूर्वक मृत्यु तथा आनुवंशिक विकार ही होता है। जिसका अच्छा उदाहरण प्रति वर्ष दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि को दिया जा सकता है।

'केनन' ने सभी सुविधाएँ देकर 4 जोड़े चूहे पिंजरे में रखे। इसकी संख्या कुछ ही समय में 150 हो गयी। यदि यह संख्या यहीं स्थिर हो जाती तो ठीक था परन्तु 2 वर्ष में यह संख्या 2200 हो गयी तथा पहले 400 की प्रजनन-शक्ति समाप्त हो गयी। जब ये 2200 हो गए तो सभी की प्रजनन-शक्ति समाप्त हो गयी। 600 शीघ्र ही मर गए लेकिन उनमें से 1600 कुछ समय तक जीवित रहे।

यही परिणाम हमारी विश्व-जनसंख्या (मनुष्यों की) का भी हो सकता है। सन् 2010 तक विश्व की जनसंख्या 9 बिलियन (दस खरब) हो जायेगी जो कि लक्ष्य-शिखर (चरम सीमा) होगी। सन् 2400 तक जन-संख्या $13\frac{1}{2}$ बिलियन हो जायेगी, उस समय सभी की प्रजनन-शक्ति निष्क्रिय हो जायेगी जो एकदम घट कर मात्र 75 करोड़ रह जायेगी जो आज से 2500 वर्ष पूर्व थी।

श्याम सुन्दर पुरोहित एवम् चैतन्य कुमार गहलोत
प्रध्यापक, वनस्पतिशास्त्र अध्यक्ष, विज्ञान-परिषद्
सेठ मथुरादास बिनानी राजकीय महा०, नाथद्वारा (राज०)।

● ●

टैकि प्लांट्स

उमेश चन्द्र बन्सल

पिछले कई वर्षों से फुटफ्लाय (ड्रासोफिला) का उपयोग जीव-विज्ञान प्रयोगशाला में किया जा रहा है, इसका उपयोग केवल आनुवांशिक प्रयोग के निर्देशन में ही नहीं किया जाता बल्कि उच्च जन्तुओं में वृद्धि, प्रजनन व अन्य प्रयोगों में भी किया जाता है।

अण्डे से अण्डे तक यह अपना जीवन-चक्र तीन सप्ताह में पूरा कर लेता है। इसके लिये प्रयोगशाला में प्रायः कुछ स्थान अलग से ही निश्चित कर लेते हैं, और समय-समय पर उचित ध्यान देते हैं।

पिछले कई वर्षों से वनस्पति-विज्ञानवेत्ता भी आनुवांशिक, वृद्धि, प्रजनन, जीवन-इतिहास आदि का पूरा अध्ययन करने के लिये ड्रासोफिला पर ही निर्भर रहते थे। किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ वैज्ञानिकों ने, जिनमें से पोस्टलेथवेट एवं इनोक मुख्यतः हैं, अपने अनुसंधान किये इसके अंतर्गत बहुत से पुष्प वाले पौधे जो कि कुछ ही दिनों में अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेते हैं, प्रयोगशाला में आसानी से उगाये पोस्टलेथवेट एवं इनोक ने इस प्रकार करीब एक सौ जातियों की सूची दी है, जिसमें से एरेबिड़ोपसिस थेलियाना मुख्य है—यह एक प्रमुख क्रूसीकर है जो बहुतायत से उगता है।

एरेबिडोपसिस थेलियाना बीज से बीज तक का जीवन करीब 3 सप्ताह में पूरा कर लेता है। इस प्रकार के पौधे टैकि प्लांट्स (Tachy Plant) कहलाते हैं। टैकि प्लांट्स ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है—टैकि = रफतार वाले या स्पीडी प्लांट्स। वैज्ञानिकों ने इनका नाम बनस्पतिक ड्रासोफिला भी दिया है। एरेबिडोपसिस-थेलियाना के बीज विभिन्न प्रकार की मिट्टी या प्रयोगशाला में कृत्रिम माध्यम में भी वोये जा सकते हैं। इसके बीज केवल 100 माइक्रोन लम्बे होते हैं। इनकी हैप्लाइड गुण-सूत्र संख्या पाँच होती है। एरेबिडोपसिस थेलियाना एक वर्ष में 12 संतति पैदा कर लेता है। हम देखते हैं कि इस पौधे का जीवन-चक्र बहुत ही जल्द पूरा हो जाता है, अतः कम समय में ही इस पौधे के जीवन-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का निर्देशन प्रयोग-शाला में दिया जा सकता है।

कुछ विभिन्न पौधे जो कि टैकि-प्लांट्स कहलाते हैं इस प्रकार हैं। इस चार्ट में उसी प्रकार के कुछ पौधे दिये गये हैं जो कि भारत में सरलता से प्राप्य हैं। (भारत के बाहर देशों में पाये जाने वाले टैकि-प्लांट्स का यहाँ वर्णन नहीं दिया गया है)।

वानस्पतिक नाम	अंग्रेजी नाम	हिन्दी नाम	कुल का नाम
ब्रासिका केम्पेस्ट्रिस	मस्टर्ड	सरसों	क्रूसीफेरी
मायरेबिलस जलेपा	फोर ओ क्लॉक	गुल अब्बास	निकटेजिनेसी
निकोटिआना टेबेकम	टोबेको	तम्बाकू	सोलेनेसी
पिट्यूनिया	पिट्यूनिया	पिट्यूनिया	सोलेनेसी
फेसियोलस वल्गेरिस	किडनी बीन (फ्रेंचबीन)	बाकला	लेग्यूमिनेसी
पाइसम सेटावम	गार्डन पी	मटर	लेग्मूमिनेसी
सिनेसिओ वल्गेरिस	कॉमन ग्रांउड सेल	—	कम्पोजीटी
सोरगम वल्गेर	कॉमन सोरगम	ज्वार	ग्रेमीनी
स्पानेसिआ ओलिरेसिआ	स्पाइनेच	पालक	चीनोपोडियेसी
लेमना माइनर	ड़क वीड़	डकवीड़	लेमनेसी
रेफेनस सेटायवा	रेडिस	मूली	क्रूसीफेरी
स्टीलेरिया मिड़िया	चिकविड़	—	केरियोफिलेसी
जिआ भेजा	मेज	मक्का	ग्नेमीनी

पौधे का नाम	वीज से पुष्प बनने में दिन	पुष्प से बीज वनने में दिन	वृद्धि के लिये आवश्यकताएँ	उपयोगी टिपपणी
लेमना माइनर	15	3-4	ताप 26° से० नमी : जलीय	पौधा साधारण, तीव्रता से उगता है, संकर व उत्परिवर्तित पौधे प्राप्य, प्रारूपिक आवृति-बीजी पोषण, प्रकाश अवधि की प्रतिक्रिया बताने में उपयोगी, कम स्थान में अधिक पौधे पैदा होते हैं।
रेफ़ेनस सेटायवा	20-35	7-15	ताप 21-30° से० दिन रात 180 से० मिट्टी : लोम (दुमट) पी० एच०—6-8. नमी : सामान्य	आकारिकी व आंतरिक रचना का अध्ययन किया जा सकता है। लवण की कमी अच्छी तरह से दिखाई जा सकती है।
स्टीलेरिया मीड़िया	45-46	12	ताप 13-180 से० दिन रात 10-15. मिट्टी : लोम (दुमट) पी० एच०—6.00 नाइट्रोजन की—अधिकता लाभदायक नमी : सामान्य	संकर जाति सरलता से प्राप्त की जा सकती है। परागण का निर्देशन वहुत ही अच्छी तरह से दिया जा सकता है। उभय-द्विगुणित जाति है। सर्वव्यापी वीड़ है।
जिआ मेज	22-30	22-40	ताप 15-27° से० दिन रात 10-21° से० मिट्टी : दुमट-रेतीली नमी : सामान्य	2-3 वार पितृ संकरण (पूर्व-संकर) करने से कई जातियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। ऊँचाई 1½-2½ फिट पौधा वहुत ही कम जगह घेरता है। लवण की कमी अच्छी तरह से दिखाई जा सकती है।

उमेशचन्द्र वंसल
व्याख्याता वनस्पति शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय
शाहपुरा (भीलवाड़ा)

भारतीय कृषि—

डा० शिवगोपाल मिश्र

हर्षकालीन कृषि का प्रेरक प्रसंग

श्री वाण भट्ट कृत 'हर्षचरित' में विंध्याटवी (विन्ध्याचल के जंगली प्रदेश) तथा स्थाण्वीश्वर (हरियाणा प्रदेश का थानेश्वर) में होने वाली कृषि का विस्तृत एवं रोचक वर्णन प्राप्त होता है। श्री वाण भट्ट का काल लगभग 650 ई० है। सम्भवतः जितने भी कृषि-उल्लेख प्राप्त हैं उनमें से यह अत्यन्त प्रामाणिक प्रतीत होता है।

हर्षचरित के सातवें उच्छ्वास में विंध्याटवी का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है :

वनग्राम के चारों ओर जंगल के सिवा कुछ न था इसलिये लोग कुटुम्ब का पेट पालने के लिये व्याकुल रहते थे। उसी चिन्ता में दुर्बल किसान केवल कुदाली से गोड़कर परती धरती तोड़ते और खेत के टुकड़े निकाल लेते। खुली जगह के अभाव में खेत छोटे और दूर-दूर स्थित थे। खेती के लिए बैल न थे। भूमि काँस से भरी थी। काली मिट्टी की पटपड़ तह लोहे के तवे की तरह कड़ी थी जिसे तोड़ने के लिये कुदाल भाँजनी पड़ती थी।"

हल के विना कुदाल से खेती करने की प्रथा **झूम प्रथा** की परिचायक है। मध्य प्रदेश की काली मिट्टी में काँस के कारण बिल्कुल ही खेती नहीं हो पाती थी। अभी कुछ वर्षों पूर्व तक यही स्थिति थी किन्तु अब ट्रैक्टरों के द्वारा कॉस का सफाया कर दिया गया है।

वन सम्पदा के सम्बन्ध में भी विशद वर्णन प्राप्त है :

"गाँव के लोग वन की पैदावार के बोझ सिर पर उठाये जा रहे थे। कोई सेहुँड की छाल का गट्ठर लिये था तो किसी के पास धाय के ताजा लाल फूलों की बोरियाँ थीं। कई लोग रुई, अलसी, सन के मुट्ठों का बोझ लिए थे। वोझिये शहद, मोम, मोर के पिच्छ, खस, कत्थे की लकड़ी, कूठ और लोध्र के भार सिरों पर उठाये जा रहे थे।"

इस उल्लेख से तत्कालीन वन सम्पदा की विविधता का आभास मिलता है। आजकल देहरादून स्थित बन अनुसन्धानशाला द्वारा यह कार्य सम्पन्न हो रहा है। वन-सम्पदा कितनी महत्वपूर्ण है, अभी भी लोगों को समझना शेष है।

काली मिट्टी वाले प्रदेश में काँस, कुसा ही होता रहा हो अथवा जंगलों से बन सम्पदा ही एकत्र होती रही हो, ऐसी वात नहीं थी। व्यवस्थित रूप से हल-बैल से खेती भी की जाती थी। खाद डाली जाती थी और भूमि उर्वरता के प्रति लोग सचेष्ट थे। इसका उल्लेख निम्नांकित प्रकार से हुआ है :

"कुछ किसान हल-बैल से भी खेती करने वाले थे। उनके पास तगड़े बैलों की जोटें थीं। वे पुराने खाद-कूड़े के ढेर उन लदिया गाड़ियों पर जिनके डगमग पहिए घिसटते हुये चूँ चूँ कर रहे थे और कूड़े-धूल से लथपथ जिनके वैल वान वैलों को ललकार रहे थे, लाद कर उन रूखे खेतों में ले जाकर डाल रहे थे जिनकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई थी।"

चारों ओर वन से घिरे ग्राम अत्यन्त मनोहर लगते थे। उनके चारों ओर सेंहुड़ की बाड़ लगी थी। बाँसों की बँसवड़ियाँ, करंजुए की काँटेदार पाँत, एरंड, वैंगन, तुलसी, सूरन, सेंहिजन, मरुआ-धान, लौकी की वेलें, बेरी की झाड़-देखते ही बनती थी। लोग घरों में ककड़ी, लौकी, कोहंड़ा, खीरा की बेलें चढ़ाते थे।

मध्यप्रदेश में ईख की खेती का भी जीवंत वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ

"गन्नों के लहलहाते चौड़े बिआस वाले पौधों से भरे हुये ईख के बाड़े गाँव की हरियाली बढ़ा रहे थे। खेतों की रखवाली करने वाले जब हिरनों को हाँकते तो वे बाँसों की बाड़ को नाँघ जाते। जंगली भैंसों के लम्बे हड्डु खेत में

(शेषांश 19 पर)

विज्ञान की नई उपलब्धियाँ

डा० हीरालाल निगम

विज्ञान और तकनीकी में उत्तरोत्तर होने वाली प्रगति से वैज्ञानिकों की उत्सुकता बढ़ती जा रही है। भूगर्भ की आन्तरिकतायें तथा अन्तरिक्ष की सूक्ष्मतायें समुद्र के अन्तराल की गहराइयाँ व व्योम की ऊँचाइयाँ, सभी विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों के परास में आ चुकी हैं। सर्वाधिक सफलताएँ अन्तरिक्ष-विज्ञान में मिली हैं। प्रक्षेपण प्रणाली में आंशिक गड़बड़ी होने के बावजूद भी अपोलो-१७ की सुपरिचित और योजनानुरूप उड़ान ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी से चन्द्रमा तक की अन्तरिक्ष-यात्रा की प्रविधियों में मनुष्य ने प्रवीणता प्राप्त कर ली है और इस नये कोपर्निकस वर्ष में वह अन्तरिक्ष अनुसन्धान के नये युग में प्रवेश करने के लिये पूरी तौर से तत्पर हैं।

सन् 1980 में चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच नियमित रूप से आवागमन शुरू हो जाने की आशा है, अगले ६-७ वर्षों में मनुष्य सम्भवत: मंगल ग्रह पर भी पहुँच जायगा। वृहस्पति ग्रह, जो सौर-मण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है, के रहस्यों का पता लगाने के लिये ५ अप्रैल को पायनियर-11 का प्रक्षेपण हुआ, मानव रहित इस अमरीकी अन्तरिक्ष यान को वृहस्पति तक पहुँचने में 630 से 795 दिन तक लग सकते हैं। इसी प्रकार इसके पूर्व पायनियर-10 पिछले वर्ष मार्च में प्रक्षेपित किया गया था, जो आज पृथ्वी से इतना दूर पहुँच गया है जितना' इसके पहले कोई भी मानव निर्मित यान नहीं पहुँच सका हैं। सम्भवत: इस कार्यक्रम में सबसे चमत्कारपूर्ण घटना दो मास पूर्व 14 मई को केप केनडी से "स्काईलैब" (अन्तरिक्ष प्रयोगशाला) का प्रक्षेपण है। अन्तरिक्ष में आवास तथा प्रयोगशाला की सम्मिलित व्यवस्था का यह पहला समानव अन्तरिक्ष-यान है जो सौर शक्ति से संचालित है। इसके मुख्य खण्ड का व्यास 6·7 मीटर और लम्बाई 14·7 मीटर है। स्काईलैब के अन्दर पुस्तकालय, क्रीड़ा कक्ष तथा प्रत्येक यात्री के लिये अलग-अलग शयन-कक्ष बनाये गये हैं, इसका भार 8800 किलो ग्राम है और यह पृथ्वी से 435 किलोमीटर की ऊँचाई पर पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है, यह लगभग 8 महीने पृथ्वी की कक्षा में बना रहेगा। अन्तरिक्ष से पृथ्वी का अवलोकन करने में अपनी पृथ्वी के बारे में विशेष ज्ञान प्राप्त होने की आशा है। इस कार्यक्रम में एक और भी अपूर्व घटना तब हुई जब पिछली 15 दिसम्बर को अपोलो-17 के चन्द्रावतरणी यान के ऊपरी खण्ड को पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चन्द्रतल से टकरा कर ध्वस्त कर दिया गया। हमें स्मरण है कि तत्क्षण टेलीविजन द्वारा प्रसारित इस घटना का दृश्य देखकर पहली बार भूतल पर रहने वाले मनुष्य एक ब्रह्मांडीय पिंड पर किसी बड़ी वस्तु को गिरते हुये देखने में समर्थ हुये। चन्द्रावतरणी यान के इस खण्ड का वजन 4850 पौंड था और वह चन्द्रतल पर इतनी शक्ति से टकराया जो लगभग 16000 पौंड टी० एन० टी० की विस्फोट क्षमता के बराबर था।

जहाँ अन्तरिक्ष विज्ञान की असीम सफलताओं के अन्तर्गत प्रक्षिप्त उपग्रहों के माध्यम से त्वरित संवाद संचार, टेलीविजन आदि जनकल्याणकारी नित नई उपलब्धियों का भण्डार भरता जा रहा है, वहीं इन अनुसन्धानों से मानव चिन्तन को आदिकाल चुनौती देने वाले उस मूलभूत प्रश्न का हल निकलने की भी आशा है, जिसका सम्बन्ध जीव की उत्पत्ति से है। पहले तो प्रश्न यह उठता है कि क्या अन्तरिक्ष में जीव है? उजाड़ चन्द्रमा पर तो जीव की सम्भावना नहीं है किन्तु सौर मण्डल के अन्य ग्रहों के बारे में कुछ तथ्य हाल ही में प्रकाशित हुये हैं। इथाका (न्यूयार्क) के कार्नेल विश्वविद्यालय में ज्योतिर्विद काल

सैगन के निदेशन में कार्य कर रही वैज्ञानिकों की एक टीम इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि टाइटन जो शनि का उपग्रह है, पर जीव के होने की सम्भावना है। टाइटन पहले की अपेक्षा अधिक गर्म है, इसका कारण सम्भवतः यह है कि "टाइटन का वायु मण्डल कोमल पौधों के उगाने के लिये शीशे के घर जैसा प्रभाव उत्पन्न करता होगा"। अमरीकी उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नेसा) 1970 के दशक के अन्त में दो मानवहींन अन्तरिक्ष-यान भेजेगा जो 1979 तक बृहस्पति के क्षेत्र में पहुँचेंगे और उसीके गुरुत्वाकर्षण की सहायता से 1981 में शनि ग्रह के पास से गुजरेंगे, टाइटन का अवलोकन वे केवल 160 किलोमीटर दूर से कर सकने में समर्थ होंगे। जीवोत्पत्ति के रहस्योघाटन के सम्बन्ध में हाल ही में एक वहुत महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया हैं, अन्तरावकाशी क्षेत्र में, जो अभी तक विल्कुल रिक्त माना जाता था, कई कार्बनिक अणुओं की विद्यमानता के प्रमाण मिले हैं। मुख्य रूप से हाइड्रोजन, कार्बन मानो आक्साइड, फार्मेल्डीहाइड तथा जीव के रासायनिक आधार अमीनो अम्ल का पूर्व गामी हाइड्रोसायनिक अम्ल पाये गये हैं। कुछ ही समय पूर्व आस्ट्रेलिया में गिरे "मुर्चसान मीटियोराइट" के विश्लेषण करने पर उसमें अनेक अमीनो अम्ल पाये गये हैं। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर जोशवा की धारणा है कि पृथ्वी तल पर जीव की उत्पत्ति अन्तरावकाशी क्षेत्र से गिरे किसी चेतन अणु के कारण ही हुई है। हमें विदित है कि जीव की उत्पत्ति समझने के प्रयास की दो अन्य दिशाएँ भी हैं, एक तो जीव को नष्ट करने वाले रोगों के निदान व निराकरण और दूसरे जीव-रसायन की अभिक्रियाओं का सम्यक अध्ययन। कैंसर अनुसंधान में आंशिक सफलता मिल चुकी है, अनुवांशिक कोड के ज्ञान से स्वस्थ मानव के निर्माण का स्वप्न साकार होने की आशा बंध गई है। संवेदनाहारी औषधियों के प्रयोग से मनुष्य की हिंसक मनोवृत्ति परिवर्त्तित करने का विचार बल पकड़ता जा रहा है।

दिन प्रति दिन की उपलब्धियां तो अनगिनत हैं, किन्तु हाल में प्रकाशित कुछ जन लाभकारी चमत्कारों का उल्लेख वांछनीय है। न्यूजीलैण्ड स्थित कैंटरबरी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लेजली द्वारा हाल ही में विकसित पराश्रव्य (अल्ट्रासानिक) चश्मे के द्वारा अब नेत्रहीन भी देख सकेंगे, अन्तर केवल इतना है कि वे आँखों के बदले कानों से देखेंगे। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा लघु यंत्र बनाया है जिसको दातों में पहन कर वहरे लोग सुन सकेंगे। कृत्रिम हड्डियां, कांच के रेशमी रेशे, प्लास्टिक के रेल के डिब्बे आदि आदि के समाचार आम पत्रिकाओं में छप चुके हैं। संसार की बढ़ती हुई जन संख्या के लिए पर्याप्त खाद्य-पदार्थ उपजाने का कार्य तेजी से हो रहा है, संभवत इस दिशा में सबसे उपयोगी कार्य खाने योग्य क्लारेला यानी "काई" के उगाने में हो रहा है। मनुष्य चाहे चन्द्रलोक में हो या पृथ्वी पर, उसके भोजन की समस्या "काई" से हल हो सकेगी।

मनुष्य जाति के सुख, स्वास्थ्य एवं कल्याण-वर्धन में रत वैज्ञानिक-अनुसन्धान का वास्तविक लक्ष्य सत्य की खोज है, पदार्थ के अन्तिम सत्य की खोज दिशा में क्रान्तिकारी तथ्यों का पता चला है। परमाणु के भीतर एक धनावेषित नाभिक होता है, जिसके चारों ओर ऋणात्मक इलेक्ट्रान मेघ होते हैं। इन्हीं इलेक्ट्रान मेघों को व्यवस्था पर परमाणुओं के रासायनिक गुण आधारित होते हैं। नाभिक के अन्दर होने वाली अभिक्रियायें अनन्त ऊर्जा की स्रोत हैं। यूरेनियम परमाणु के नाभिकीय विखण्डन द्वारा अणुवम के विस्फोट से, दो हाइड्रोजन परमाणुओं के संगलन द्वारा हाइड्रोजन वम के निर्माण से मानव लगभग तीन दशक से परिचित है किन्तु हाल ही में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय की बर्कले प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों ने एक्जोटिक या अभूतपूर्व परमाणुओं के बनाने में सफलता पाई है। सिद्धान्त रूप से परमाणु में स्थित ऋणात्मक इलेक्ट्रान को अन्य ऋणात्मक कणों जैसे पाइयान, म्यूआन से विस्थापित करने पर परमाणु के नाभिक में आन्दोलन होता है और एक नये अभूतपूर्व परमाणु की सृष्टि होती हैं अभिक्रिया में निर्गत एक्स-किरणों का अध्ययन करके नाभिक की अन्तर्व्यवस्था का ज्ञान सम्भव हो सकता है। नाभिक में विद्यमान कणों की खोज से एक विलक्षण विश्व के अस्तित्व की सम्भावना बढ़ गई। द्रव्य के साथ-साथ प्रति द्रव्य का अस्तित्व भी है। परमाणु रचना में निहित—न्यूट्रोनप्रोटोन, इलैक्ट्रोन के प्रति कणों की खोज हो चुकी है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत के वैज्ञानिकों

निकों ने शक्तिशाली नाभिकीय त्वरकों की सहायता से प्रयोगशाला में प्रति द्रव्य बनाने में सफलता प्राप्त की है। प्रति पदार्थ अकेला अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकता। व्युत्पन्न होकर अन्य कणों के साथ संयोग कर ये प्रति कण स्वयं लुप्त हो जाते हैं। द्रव्य और प्रति द्रव्य के टकराव से विकसित ऊर्जा परम्परागत रासायनिक अभिक्रियाओं से प्राप्त ऊर्जा से करोड़ों गुना अधिक होगी। यदि प्रति पदार्थ को नियन्त्रित करने का प्रयास सफल हो गया तो एक अलग सूर्य का निर्माण हो सकेगा। ध्यान रहे कि हमारे सौरमंडल का केन्द्र सूर्य स्वयं एक नाभिक रियेक्टर है। प्रति द्रव्य के अध्ययन से यह कल्पना की गई है कि हमारे विश्व का एक प्रतिद्वन्दी प्रति विश्व भी हैं। आल्फवेन की धारणा है कि विश्व प्रारम्भ में पदार्थ की चतुर्थं अवस्था प्ल जमा के रूप में था जिसमें द्रव्य और प्रति द्रव्य मिले थे जो बाद में एक दूसरे से अलग हो गये।

हमारी वैज्ञानिक सभ्यता का आकार नाभिकीय ऊर्जा है। नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन के लिए त्वरक (एक्सीं-लरेटर्स) यंत्रों का उपयोग आवश्यक है। सर्वाधिक शक्ति-मान ऐसा यंत्र लौरेंस वर्कले प्रयोगशाला वीभाट्रोन है। जिसमें इन सूक्ष्म कणों का त्वरण 6? करोड़ इलैक्ट्रोन वोल्ट पर होता है, किन्तु साइक्लोट्रोन, वीभाट्रोन का निर्माण भी अब पुरानी घटना हो चुकी है। आगे आने वाले तक्नीकी युग अब प्लाज्माट्रोन का युग होगा। तापीय प्लाज्मा एक अत्यन्त तप्त आयनीकृत गैस कहा जा सकता है, जो परमाणुओं, इलैक्ट्रोनों तथा आयनों का सम्मिश्रण है। हाल ही में लन्दन की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों तथा अभियंताओं को प्लाज्मा निर्माण के लिए उपयुक्त भट्टियां या रिएक्टर बनाने की कई वर्षों से चलती योजना में बड़ी सफलता मिली है। प्लाज्मा निर्माण की सबसे सुविधाजनक विधि किसी गैस में विशिष्ट परि-स्थितियों में विद्युत विसर्जन कराना है। रूसी विधि टोकामक में संशोधन करके अमरीकी वैज्ञानिक ऊष्मा नाभिकीय संगलन को नियंत्रित करने में सफल हुए हैं। एडियावेटिक टोराइडल कम्प्रैसर (ए० टी० सी०) के प्रयोग द्वारा प्लाज्मा में विद्युत धारा प्रवाहित कराने से एक करोड़ डिगरी परम तापमान उत्पन्न किया गया है। इन अनुसंधानों से संसार के सम्मुख उपस्थित ईंधन की समस्या को हल किया जा सकेगा। रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए आवश्यक ताप इस प्लाज्मा से प्राप्त हो सकता है। फलस्वरूप किसी भी पदार्थ को वाष्पीकृत कराकर किसी भी पदार्थ से अभिकृत कराया जा सकेगा। औद्योगिक आव-श्यकताओं के अनुसार शुद्धातिशुद्ध धातुएँ और यौगिक अत्यन्त सस्ते दामों पर तैयार किए जा सकेंगे। वस्तुतः प्लाज्माट्रोन से नई तर्कनीकी और नए रसायन का जन्म होगा जो जन-कल्याण में अधिकाधिक सहायक सिद्ध होगा।

(आकाशवाणी के सौजन्य से।

डा० हीरालाल निगम
रसायन विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

तरह-तरह के रोग क्यों और कैसे ?

शुकदेव प्रसाद

आजकल देखने में आता है कि ज्यों-ज्यों हम प्रगति की ओर होते जा रहे हैं, तरह-तरह के अनुसंधान करते जा रहे हैं लेकिन रोग भी नए-नए प्रकार के उत्पन्न हो रहे हैं। वैज्ञानिक चिकित्सा जगत में भी काफी काम कर रहे है। रोगों के निवारणहेतु अनुसंधान हो रहे हैं लेकिन रोग हमारा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। विकासशील एवं प्रगतिशील देश में तरह-तरह की घातक बीमारियाँ फैलती जा रही हैं। आजकल कैंसर, मधुमेह, टी० बी०, हृदयरोग आदि साधारण रोगों की तरह हो गए हैं। आज विश्व में हृदयरोग से मरने वालों की संख्या सबसे अधिक है। वैज्ञानिकों के प्रयत्न कैंसर एवं हृदयरोग जैसे घातक रोगों के कारण एवं निदान की विधि ज्ञात करने में प्रगतिशील हैं लेकिन अभी तक किसी निश्चित एवं ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये हैं। आइए, हम सब इन तमाम रोगों के मुख्य कारणों पर विचार करें।

दूषित वायु--जीवित रहने के लिए भोजन, पानी के साथ युद्ध वायु (आक्सीजन) की आवश्यकता होती है। आज साँस लेने के लिए जो वायु हम प्रयोग में ला रहे हैं, शुद्ध नहीं है। इसमें तमाम प्रकार की अशुद्धियाँ मिश्रित हैं। यह अशुद्ध वायु साँस लेते समय हमारे फेफड़ों में पहुँचकर कर विभिन्न रोगों को जन्म देती है। वायु में मुख्य रूप से धूल के छोटे-छोटे कण, धुआँ, कार्बन के कण, सल्फर डाइ आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, कुहासा, सीसा धातु, कैडमियम इत्यादि मिश्रित हैं जो स्वास्थ्य के प्रति बुरा प्रभाव डालती हैं। ये सब चीजें कई प्रकार से वायुमंडल में आती रहती हैं। घर में ईंधन जलाने से (खासकर उसके अपूर्ण दहन से) तथा चिमनियों से धुआँ निकलता रहता है जो वायुमण्डल को दूषित करता है। इसमें विभिन्न गैसों (हानिकारक) तथा कार्बन के कण मौजूद होते हैं। मोटर गाड़ियों, रेलवे इंजनों को चलाने हेतु पेट्रोल तथा कोयले के जलने से निकलने वाले धुएँ में रेत, कार्बनकण, सीसा, सल्फर डाइ आक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड इत्यादि गैसें विद्यमान होती हैं जो वायु में मिलकर उसे पूर्णतः दूषित करती हैं।

इस प्रकार दूषित वायु के सेवन से तमाम रोग उत्पन्न होते हैं। वायुमंडल में व्याप्त सल्फर डाई आक्साइड गैस बहुत विषैली है। यह फेफड़ों तथा श्वसन तन्त्र के अन्य भागों पर प्रभाव डालती है। यह आँखों और त्वचा के लिए हानिकारक है। इसकी मात्रा बढ़ने से दमे के दौरे भी बढ़ जाते हैं। इसी गैस के कारण चिरकारी जुकाम, उत्तान श्वसन, एम्फाइसीमा तथा थकान की शिकायतें होती हैं। वायुमंडल में उपस्थित कार्बन मोनोक्साइड भी विषैली गैस है। यह रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन से क्रिया कर रक्त में स्थाई विषाक्तता पैदा कर देती है। वायु में विद्यमान सीसे के कण केन्द्रीय तन्त्रिका संस्थानों को प्रभावित करते हैं तथा कैडमियम के कण हृदय रोगों को प्रभावित करते हैं। जिन नगरों की वायु में कैडमियम कणों की सान्द्रता सबसे अधिक है वहाँ हृदय रोग से मरने वाले व्यक्तियों की संख्या भी सबसे अधिक है। कार्बन के कणों की यह विशेषता होती है कि ये वायुमंडल की विषैली गैसों को सोख लेते हैं। इस प्रकार दूषित कार्बन कण साँस लेते समय फेफड़ों में पहुँचकर तमाम रोग फैलाते हैं। वातावरण में कालिख की मात्रा के बढ़ने से निमोनिया के रोगियों की संख्या भी बढ़ जाती है। दिनों दिन नए उद्योगों के खुलने के कारण आक्सीजन की अधिकाधिक मात्रा ईंधन के रूप में प्रयुक्त हो रही है जिसके फलस्वरूप वायुमंडल में कार्बन डाइ आक्साइड की प्रतिशत मात्रा बढ़ती ही जा रही है जिसका कि वायु प्रदूषण में बहुत बड़ा हाथ है।

दूषितजल—जीवन को बनाए रखने के लिए पेय

जल का स्वच्छ होना अनिवार्य है। भारतवर्ष में पीने का जल गाँवों में प्रायः कुओं से लिया जाता है तथा शहरों में नदियों से। आजकल कुओं और नदियों दोनों के जलों में विकार आ गये हैं। गाँवों में 90% कुओं का पानी पीने लायक नहीं है। कुओं के पानी को स्वच्छ एवं स्वास्थ्य-वर्धक बनाये रखने की जानकारी के अभाव में पानी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कुएँ कक्सर खुले होते हैं। उसमें उड़कर धूल, खरपतवार इत्यादि पड़ते रहते हैं। ये सब पानी में सड़ते रहते हैं और उसमें तरह-तरह के जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार से पानी दूषित हो जाता है। प्रायः बहुत से कुओं के चारों ओर ऊँची दीवार नहीं है जिससे कि वर्षा का जल आसपास से बहकर उसमें आता है। इस प्रकार तमाम गन्दगियाँ मिल जाती हैं। ऐसा पानी पीने से तमाम रोग उत्पन्न होते हैं। कुओं के अतिरिक्त गाँवों में पीने का पानी तालाबों, पोखरों इत्यादि से लिया जाता है। पानी तो स्थिर होता है तथा इसमें कुछ विषैली प्रभाववाली वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पानी में उपस्थित जीवाणु कार्बनिक पदार्थों का अवघटन करते हैं और ये वनस्पतियाँ मुख्यतः शैवाल उनसे मिल कर विष उत्पन्न करते हैं इस प्रकार जल दूषित हो जाता है। पानी को दूषित करने वाले शैवालो में निम्न मुख्य हैं : नोड्यूलेरिया, कैथोरोसिसटिस, नोस्टोक, ओसिलियेरिया, पेन्टडोराइना, वोलवोक्स इत्यादि। अतः पोखरों, तालावों का भी पानी पीने योग्य नहीं होता और इसके प्रयोग से पेट की बीमारियाँ अधिक होती हैं।

आजकल नदियों का भी जल अपवित्र हो गया है। गंगा जैसी पवित्र नदियों के जल ये भी विकार आ गए हैं। कूड़े कचरे, गंदे नालों का जल एवं औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ नदियों के जल में डाले जाते हैं। इस प्रकार से नदियों का से जल प्रदूषित होता है। वही जल पुनः पीने के काम में लाया जाता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। प्रदूषित जल से मुख्यतया हैजा, मोतीझरा, पोलियो, पीलिया, पेचिश आदि रोग होते हैं। प्रदूषित जल में साफ किए गए वर्तनों में रखे गए दूध के प्रयोग से टाइफाइड, पैराटाईफाइड हो जाता है। प्रदूषित जल में नहाने-धोने से वाइल रोग तथा शिस्टोसोम रुग्णता हो जाती है।

धूम्रपान --आज के विकासशील युग में सिगरेट, बीड़ी इत्यादि पीना सभ्यता का अंग वन गया है। लोग शौक में पीना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे आदत प्रकृति बन जाती है लेकिन वे बाद में पता कर पाते हैं कि इसका स्वास्थ्य के प्रति कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है। सिगरेट की तम्बाकू में एक विषैला पदार्थ निकोटीन होता है। यह रंगहीन एवं वाष्पशील तरल पदार्थ है जो कि गरम होने पर भाप या गैस बन जाता है। सिगरेट लगभग 885 डिग्री से० ग्रे० पर जलता है। इस ताप पर तमाम रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इसके धुएँ में लगभग 300 भिन्न पदार्थ होते हैं जिसमें टी॰डी॰ ई०, एसीटोन, मिथेनाल, फॉर्मल व एसिटल्डिहाइड, एक्रोलिन, ग्लिसरॉल, ग्लाइकाल एलिफेटिक एवं एरोमेटिक हाईड्रोकार्बन मुख्य हैं। अनुमानतः हर सिगरेट पीने के पश्चात ·2 से 8·5 मिलीग्राम तक निकोटीन मुँह के अन्दर प्रवेश करता है और यही विषैला तत्व अन्य रोगों को जन्म देता है। सिगरेट के धुएँ से फेफड़ों को क्षति पहुँचती है।

धूम्रपान के समय रक्त में कार्वन मोनोक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। यह गैस रक्त की आक्सीजन धारण करने की क्षमता को कम कर देती है जिससे हृदय पर काफी जोर पकड़ता है और स्वसन तंत्र पर भी क्योंकि अधिक आक्सीजन फेफड़ों में पहुँचानी रहती हैं फलस्वरूप थकान महसूस होती है और साँस लेने में परेशानी होती है। बहुत अधिक सिगरेट पीने से कार्बन मोनोक्साइड रक्त में उपस्थित लौह प्रोटीन हीमोग्लोविन से क्रिया कर स्थाई रूप से विषाक्तता पैदा कर देती है जो रक्त में संचित होते रहते हैं और शरीर के अन्य भागों में रक्त पहुँचाने से रोकते हैं। धूम्रपान से फेफड़ों में कैंसर होने की सम्भावना सबसे ज्यादा होती है। कैंसर एक घातक रोग है। कैंसर के वास्तविक रोगी को बचाना मुश्किल है। इंगलैण्ड और वेल्स में प्रतिवर्ष 55000 मौतों में से 10000 मौतें कैंसर के हो कारण होती हैं। धूम्रपान जितना ही ज्यादा होगा कैंसर होने की सम्भावना उतना ही ज्यादा होगी। धूम्रपान अधिक करने से कैंसर बढ़ता है तो धूम्रपान त्यागने से कैंसर घटता भी है।

सिगरेट पीने से दिल की बीमारियाँ भी होती हैं। अभी तक इसके कारण का पता नहीं चल पाया है लेकिन ऐसा अनुमान है कि निकोटीन की रक्त के साथ क्रिया के फलस्वरूप होता है। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति को भी वे रोग हो सकते हैं यदि वह धूम्रपान करने वाले व्यक्ति

के साथ वैठता है। रक्त में कार्वन मोनोक्साइड की मात्रा 3 प्रतिशत से अधिक हो जाने पर मनुष्य में जड़ता की भावना पैदा हो जाती है।

अशुद्ध खाद्य सामग्रियाँ—आजकल के वैज्ञानिक युग में अनेक प्रकार के कीटनाशी फसल को नष्ट करने वाले जीवों को मारने के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं। ये सिंचाई के पानी के साथ-साथ भूमि की निचली सतहों में जाकर पानी की मुख्य धारा से मिल जाते हैं। ये रसायन इतने विषैले होते हैं कि पानी में इनका एक लाखवाँ अंश भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। पौधे अपने जड़ों द्वारा पानी और खनिज पदार्थ तो खींचते ही हैं उसके साथ-ही-साथ ये पौधे के शरीर में पहुँच जाते हैं और उनका विषैला प्रभाव संचित होता रहता है। इस प्रभाव से प्राप्त खाद्य-सामग्रियाँ कितनी हानिकारक होती हैं। तपेदिक के अस्पतालों से निकलने वाले वाहितमल द्वारा सिंचित चरागाहों में चरने वाले पशुओं को भी तपेदिक हो जाता है और उनके दूध के सेवन से संक्रमण की शृंखला प्रारम्भ हो जाती है। वाहितमल युक्त पानी में विभिन्न प्रकार के कीटनाशी, नाशक-जीवनाशी और सल्फाइड मौजूद होते हैं और ऐसे जल की से सींची गई सब्जियों को कच्चा ही अथवा पका कर खाने से, ये मानव में प्रविष्ठ होकर तरह-तरह की बीमारियाँ फैलाते हैं। खाद्य पदार्थों को खुला रखने से उन पर मक्खियाँ वैठती हैं। मानव मल-मूत्र खाने वाली मक्खियों आदि द्वारा प्रदूषित होने वाले सभी प्रकार के खाद्यों के सेवन से मनुष्य को टाइफाइड, पैराटाइफाइड हो जाता है। पौधों में सिंचाई अक्सर वाहितमल से होती हैं, इससे भयंकर रोगों का जन्म होता है। इसके अतिरिक्त कुछ फसलें बीमारियों (रोगों) के कारण दूषित हो जाती हैं जिनका प्रयोग सदैव हानिकारक होता है। जैसे गेहूँ के दानों में पकसीनिया नामक कवक से किट्ट रोग होता हैं। फलस्वरूप दाना काला पड़ जाता है। ऐसे रोगग्रसित गेहूँ को खाने पर नाक तथा गले में उपस्थित म्यूकस झिल्ली पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बाजरा में एरगट नामक कवक उपस्थित होकर अपना जहरीला प्रभाव उसमें संचित करता है। कुछ वनस्पतियाँ विषैली होती हैं जिनका प्रयोग हम सब कर लिया करते हैं। जैसे विभिन्न प्रकार के मशकम व कुकरमुत्ते। मशकमों में स्ट्रोफेरिया, सेमीग्लोवेटा, हाइफोलीना प्रेसीकुलेरी तथा लैक्टोरियस वेलीरियस मुख्य हैं। इनको खा लेने से पेट दर्द तथा उल्टियाँ होती हैं। एक विषैली मटर होती है जो कि हमारे देश के कई भागों में अक्सर खाई जाती है। उसे खेसरी दाल कहते हैं। वैज्ञानिक भाषा में लेथीरस सटाइवस कहते हैं। इसको खाने से लोग पंगु हो जो जाते हैं।

सामिष भोजन—वैज्ञानिक निष्कर्षों के आधार पर अव यह सिद्ध हो गया है कि मांसाहार से लाभ के अपेक्षा शरीर को अधिक हानि ही उठानी पड़ती है। इंग्लैंड के डा० आर० जे० विलियम ने कहा है—'हो सकता है, अंडे खाने वाले लोग शुरू में अपने को अधिक स्वस्थ्य अनुभव करें और दूसरों को भी ऐसा लगे; पर बाद में वे कई रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं, जिनमें रक्तचाप और एक्जीमा जैसे भयानक रोग भी हैं।" अमेरिका के वैज्ञानिकों ने सामिष भोजन के विषय में परीक्षणों के दौरान उसे स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक पाया। कैलिफोर्निया के वैज्ञानिक डा० कैथरीन निम्मो तथा डा० जे० अमेन के अनुसार अंडे में 'कोलेस्ट्राल' नामक विष पाया जाता है जो कि रक्तवाहिनी नलिकाओं को घायल करता है जिससे उनमें गंदगी भर जाती है और उनका मार्ग सकरा हो जाता है, जो हृदयरोग का प्रमुख कारण है। रक्त-वाहिनी में गदंगी जमा हो जाने से उनकी प्रत्यास्थता खत्म हो जाती है, कोमलता एवं संवेदनशीलता घटने लगती है जिससे बुढ़ापा आता है एवं आयु घट जाती है।

इस विवरण को फ्लोरीडा विश्वविद्यालय (अमेरिका) के कृषि-विभाग ने 1967 में एक स्वास्थ्य बुलेटिन में प्रकाशित किया या और यह भी वर्णित या कि, अंडे में हानिप्रद विषाणु (वाइरस) होते हैं। अंडे खाने से उच्च रक्तचाप बढ़ता है और पाचन क्रिया भी गड़बड़ होती है। पथरी भी पैदा होती है। अंडे खाने वालों के आमाशय की दीवारों तथा आंतें एवं रक्तवाही नलिकाओं में घाव पड़ जाते हैं जो तमाम रोगों का कारण बनते हैं। अमेरिकी चिकित्सक डा० ए० वाचमन एवं उनके सहयोगी डा० डी० एस० वर्नस्टी ने अपने अध्ययन के फलस्वरूप घोषणा की कि, मांसाहारी से दृष्टियाँ क्रमश: कमजोर होती हैं और गलने गलती हैं। मांसाहारियों के मूत्र में क्षारीय पदार्थ तथा लवणों की अधिक मात्रा बहकर शरीर से बाहर जाती है, जिससे इन लवणों और क्षारीय पदार्थों की

रक्त में कमी होने लगती हैं। रक्त अपनी इस कमी को दृष्टियों से लेकर पूरी करता है। इस आवश्यक संतुलन के बिगड़ने पर व्यक्ति रोग प्रतिरोध शक्ति खो बैठता है। डा० अलैक्जैण्डर हैक ने उक्त दोनों डाक्टरों के बातों की पुष्टि करते हुए बताया कि, रक्त में इन लवणों और क्षारीय पदार्थों का गुर्दे के माध्यम से छनकर तेजी से बाहर जाने का कारण यह है कि, मांस के पाचन में शरीर में ताप अधिक उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त ताप के कारण गुर्दे की रक्त छानने की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है और बोमन कैप्स्यूल्स में ये लवण तथा क्षार अतिरिक्त दवाव के कारण छनने से बच नहीं पाते और मूत्र के साथ बहकर बाहर चले जाते हैं। दृष्टियाँ क्रमशः कमजोर होती रहती हैं। कई दूसरे रोग भी रासायनिक प्रक्रियाओं के असंतुलन के कारण पैदा हो जाते हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में आते ही संसार के लोग अब शाकाहार की महत्ता समझ रहे हैं। केवल अमेरिका में अब चार करोड़ से अधिक लोग शुद्ध शाकाहारी हैं।

स्पृश्यता--स्पृश्यता या छुआछूत भी तमाम बीमारियों का कारण है। आजकल चाय की दूकानों या होटलों में बर्तन बड़ी लापरवाही से धोए जाते हैं। जूठा भोजन का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। रोगी का जूठा खाने वाले को भी वही रोग हो जाता है। टी० बी० के रोगी के साथ बैठने से उसके रोग के जीवाणु हमारे शरीर में सांस द्वारा प्रवेश कर जायेंगे और हम भी रोग के शिकारी बन जायेंगे। यदि किसी व्यक्ति को गण्डमाला हो गया है और कोई उसका जूठा पानी पीता है, उसकी जूठी थालियों में खाता है तो निःसंदेह उसे भी वह रोग धर दबाएगा। इस नाते रोगों से बचने के लिए अस्पृश्यता के नियमों को पालन करना चाहिए। कुछ कुत्ते सूँघ-सूँघ कर चोरों का पकड़ लेते हैं क्योंकि उनकी घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र होती हैं। ऐसे कुत्तों को अलग-अलग कोठरियों में रखा जाता है। उनके भोजन के पात्र, पानी के पात्र अलग-अलग होते हैं यहाँ तक कि उनको नहलाने की साबुन टिकिया भी अलग और पोंछने के लिए तौलिया भी अलग होता है। मतलब यह कि एक दूसरे का स्पर्श नहीं होने दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो इनकी घ्राण शक्ति नष्ट हो जायगी और बाजारों में घूमने वाले कुत्तों की तरह ये भी हो जायेंगे। इससे आप जान सकते हैं कि अस्पृश्यता की कितनी महत्ता है।

अतः अस्पृश्यता पाखण्ड नहीं, दूसरों के प्रति घृणा नहीं, केवल अपनी विशेष शक्ति की सुरक्षा एवं रोगों से बचाने के लिए आत्मसंयमनार्थ प्रतिबन्धों को लगाए रखना है।

उद्योग--उद्योग में जो पदार्थ काम में लाए जाते हैं, वे ही रोग अथवा विषाक्तता का कारण बनते हैं और ये ठोस, द्रव अथवा गैस के रूप में पाए जाते हैं। निर्माण की प्रक्रिया में इनसे धूल, वाष्प गैसें तथा हानिकारक किरणें निकलती रहती हैं। कार्य करते समय ये वस्तुएँ श्वास, द्वारा मुख द्वारा या त्वचा को ही प्रभावित करती हैं। श्वास द्वारा ये फेंफड़ों में पहुँच जाते हैं तथा रक्त द्वारा शोषित कर लिए जाते हैं जो कि तमाम रोग फैलाते हैं। अधिकांश विषैले पदार्थों का त्वचा पर अथवा नाक, कान, मुख और आँखों की श्लेष्मल कला पर प्रभाव होता है और जो एग्जीमा, त्वक दाह, मुहांसे, ऐन्थक्स, कैंसर, श्वास नली में क्षोभ व आँखों में सूजन इत्यादि के रूप में प्रकट होता है। उद्योगों में अनेक प्रकार के पदार्थ का उपयोग होता है। यदि उन्हें सावधानी के साथ न प्रयोग किया गया तो वे रोग उत्पन्न करते हैं।

सीसा और उसके यौगिक, मैंगनीज, आर्सैनिक, फास्फोरस एवं उनके यौगिक, पारा व पारा धातु मिश्रण कार्बन डाईसल्फाइड, बैंजीन व उसके समजात, क्रोमियम के यौगिक, एन्थ्रैक्स, के कारण उत्पन्न होने वाली विषालुताएँ तथा सिक्तामयता, रेडियम अथवा अन्य रेडियधर्मी पदार्थ और एक्स किरणों द्वारा उत्पन्न विकृतियाँ तथा कैंसर, विषज अरक्तता, विषज पीलिया, अवरक्तविकिरणों के कारण होने वाला मोतियाबिंदु, कोयले की खान में काम करने वालों को होनेवाला फुफ्फुसधूलिसयता रोग, ऐस्बेस्टासिस, व बैगासोसिस और क्लोरीन, डाइक्लोरोईथेन व कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि ऐलीफेटिक श्रेणी के हाइड्रोकार्बनों के हैलोजन व्युत्पन्नों के कारण उत्पन्न होने वाली विषालुताएँ, विशेष कार्य करने के कारण होने वाले, त्वचा रोग आदि अधिसूचित रोग हैं।

शोर एवं बढ़ती हुई जनसंख्या--मानव के विकास के साथ ही साथ सभ्यता का विकास होता गया।

आज तरह-तरह के यंत्रों, मोटरों, रेलों, जेट विमानों का अविष्कार हो गया है। इनसे उत्पन्न शोर परोक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य पर निरंतर घातक प्रभाव डालता है। इटली के वैज्ञानिक लेखक रमजीनी के द्वारा लिखित एक पुस्तक में वर्णित है कि, ताँबा कूटने वाले मजदूर बहरे हो जाते हैं। परीक्षणों से पता चला है कि कर्कश ध्वनि मनुष्य को रोगी और बहरा दोनों बना देने में सहायक है। शोर से कानों के अलावा हृदय, मस्तिष्क, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तथा आमाशय पर भी प्रभाव पड़ता है।

निरीक्षणों के अनुसार पता चला है कि जनसंख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है जिससे प्रत्येक व्यक्ति के वायु की खूराक में अप्रत्यक्ष रूप से कटौती हो रही है। वायु भी दूषित हो रही है। बढ़ती आबादी के भोज्य पदार्थ में कमी एवं खाद्यसंकट की समस्या सामने आ रही है। पिछले वर्षों में संयुक्त राष्ट्रसंघ भी एक संस्था, खाद्य और कृषि संगठन के द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार भारत जैसे विकासशील देश में 80% लोगों को भरपेट जोजन नहीं मिलता है जिसमें 40% से अधिक लोग भुखमरी की स्थिति में हैं। कुपोषण बर्तमान एवं आगामी पीढ़ी के लिए अभिशाप है। 50% से अधिक बच्चे कुपोषण से ग्रसित हो दुर्बल बन कर रोगी के रूप में जीवन बिताने के लिए विवश हैं। ऐसी दुविधाजनक स्थिति में इनकी रोग प्रतिरोध क्षमता क्षीण होती जाती है और वे सूखा, बेरी-बेरी, रक्त-अल्पता जैसे रोगों के शिकार बनकर मौत के घाट उतरते हैं।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

• •

हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है। उसे आदर की दृष्टि से देखना हम सबका कर्तव्य है। बिना अपनी भाषा के वास्तविक ज्ञानोपार्जन कठिन है।

विज्ञान के नये चरण

प्लास्टिक का हृदय

अमेरिका का ऊटा विश्वविद्यालय के डा० विन्शेल ने प्लास्टिक का कृत्रिम हृदय बनाया है। डा० विन्शेल का कहना है कि यदि इसे शरीर में उपयुक्त स्थान पर जड़ दिया जाय तो वह असली हृदय से किसी प्रकार कम सिद्ध नहीं होगा। इन दिनों डा० विन्शेल ऊटा विश्वविद्यालय के ही डा० कोल्फ के साथ मिल कर इस दिशा में अनुसन्धान कर रहे हैं। डा० कोल्फ अपने बनाये नये हृदय से कुछ बछड़ों को चौदह दिन तक जीवित रखने का सफल प्रयोग कर चुके हैं।

कैंसर सूचक यंत्र-मैमोमेट

संसार के लगभग सभी देशों में आजकल कैंसर से पीड़ित रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है इससे मृत्यु दर में भी काफी वृद्धि हुई है। पश्चिम जर्मनी की एक फर्म सीमेन्स ने प्रारम्भिक अवस्था में महिलाओं के स्तन में कैंसर का पता लगाने के लिये "मैमोमेट" नामक एक विशेष प्रकार का यंत्र विकसित किया है। इसकी सहायता से रोग के कारण स्तन में उत्पन्न अर्बुद (ट्यूमर) का किस्म, आकार और उत्पत्ति-स्थान सरलतापूर्वक और तत्काल ज्ञात किये जा सकते हैं। यंत्र की सहायता से सर्वोत्तम एक्सरे चित्र भी प्राप्त हो जाते हैं। इस यन्त्र मैमोमेट का सबसे बड़ा लाभ यह है कि कैंसर-रोग का पता लगाने के लिये अल्प समय में ही अनेक महिलाओं का जांच संभव है।

लेसर कैंची

आपका सूट सिले जाने के पूर्व दर्जी की कैंची कपड़े पर चलती है और उचित नाप के अनुसार वह कपड़े को काटता है। दर्ज़ी का यह काम अब लेसर पुंज कर दिया करेगा। लेसर पुंजों का विविध क्षेत्रों में सदुपयोग हो रहा है। इंग्लैंड में लीडस् की एक फर्म के प्रबन्धक के अनुसार व्यक्ति के सूट की नाप को कम्प्यूटर में भर दिया जायगा। कम्प्युटर द्वारा नियंत्रित लेसर पुंज कपड़े को उसी नाप के अनुसार काट देंगी। इस विधि का व्यय अवश्य अधिक होगा परन्तु बड़ी-बड़ी कम्पनियों में सिलाई करने का काम सरलता से और कम समय में हो जायगा।

अंतरिक्ष विज्ञान से विकलांगों की सेवा

अमरीका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन के वैज्ञानिकों ने रिड्यूस्ड ग्रेविटी सिमुलेटर (आर. जी. एस.) नामक उपकरण विकसित किया है। इस यंत्र का उपयोग मूलत: अपोलो अन्तरिक्ष यात्रियों को चन्द्रतल पर, जहाँ का गुरुत्वाकर्षण भूतल के गुरुत्वाकर्षण के षष्ठमांश के ही बराबर है। संचरण करने का प्रशिक्षण देने के लिये किया गया था। आर० जी० एस उपकरण द्वारा स्नायविक एवं मांसपेशीय विकलांगता से पीड़ित बालकों को कृत्रिम भार-हीनता की स्थिति में चलना-फिरना सिखाया जाता है। गम्भीर शारीरिक असमर्थताओं से पीड़ित लोगों की सहायता के लिये अपोलो अन्तरिक्ष कार्यक्रम के हेतु विकसित विधियों का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है।

जेबी एलार्म

ब्रिटेन में एक ऐसे जेबी एलार्म का विकास किया गया है जिससे तेज़ ध्वनि और रंगीन रोशनी पैदा होती है और इसकी सहायता से 80 गज़ तक की दूरी में लोगों को यह सूचना मिल जायगी कि किसी वृद्ध या अपंग व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता है। इस एलार्म का नाम स्विस-एण्ड है और रेडियो चालित होने के कारण इसमें तार की आवश्यकता नहीं पड़ती। सिगरेट की डिबिया के आकार

की इस युक्ति का एक भाग व्यक्ति अपने जेब में रख सकता है या लॉकेट की तरह गले में पहन सकता है। दूसरा भाग जो टेलीफोन के आकार का है खिड़की आदि मुख्य स्थान पर रखा जा सकता है। पहले भाग पर हल्का दाब डालने से तरंगें निकलती हैं और दूसरे भाग से ध्वनि या प्रकाश उत्पन्न हो जाता है जिससे व्यक्ति की सहायता के लिये चलने फिरने वाले लोगों या पड़ोसियों को सूचना मिल जायगी। विदेशों में इसकी उपयोगिता की ओर अधिक उत्सुकता दिखाई जा रही है।

मंगल ग्रह पर निवास

रूसी वैज्ञानिक विक्टो सिसकाउस्की के मतानुसार मनुष्य का मंगल ग्रह पर निवास संभव है। पृथ्वी पर वढ़ती हुई जन संख्या के संदर्भ में इस मत का अपना महत्व है। सिसकाउस्की का विचार है कि मंगल ग्रह पर जो दो रासायनिक पदार्थ यथा कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी पाये जाते हैं उनकी उपस्थिति मनुष्य को जीवन के लिये जो भी आवश्यक है उन सभी वस्तुओं की उत्पत्ति की जा सकती है। उनका कहना है भविष्य में मंगल ग्रह पर जाकर रहने वाले लोग यदि कम खर्चीली ऊर्जा उत्पन्न कर सकें और मंगल ग्रह के वायुमण्डल को श्वसन के योग्य बना सकें तो वहाँ रह सकना संभव है। इस संभावना को वास्तविकता में बदलने में निसंदेह समय लगेगा फिर भी यह संभावना स्वयं रोमांचकारी है।

●●

[पृष्ठ 9 का शेषांश]

बिजू के की तरह गाड़े गये थे। खरहे गन्ने के अंकुर कुतर डालते थे।"

यह वर्णन ऐसा है जिसमें कृषि को हानि पहुँचाने वाले जंगली पशुओं का उल्लेख तो है ही, साथ ही इन्हें दूर रखने के लिये अपनाई जाने वाली विधियों का भी संकेत है। आज भी खेतों में बिजूका गाड़ा जाता है किन्तु उसके लिये अस्थि का प्रयोग सर्वथा नवीन प्रतीत होता है।

तृतीय उच्छ्वास में श्रीकंठ जनपद और उसकी राजधानी स्थाण्वीश्वर का वर्णन आया है। यह वर्णन बौद्ध साहित्य में प्राप्त इच्छुशालि गो महिषी सम्पन्न मध्यदेश का वर्णन है। इस प्रसंग में गोधन की सम्पन्नता का संकेत मिलता है। उदाहरणार्थ,

"जङ्गल गोधन से भरा था। गायों के गले में घंटियाँ बज रही थीं। भैंसों की पीठ पर बैठे ग्वाले गीत गा रहे थे। जगह-जगह ऊँट दिखाई पड़ते थे।

श्रीकंठ जनपद में फलों की खेती भी की जाती थी। रास्तों पर द्राक्षा और दाडिम लगे थे। बटोही पिंड खजूर तोड़कर खाते थे। आडुओं के बड़े-बड़े बगीचे थे।

इस समृद्ध जनपद में खेतों की जुताई हल से की जाती थी। धान, राजमाष, मूँग और गेहूँ के खेत चारों ओर फैले थे। सिंचाई भी होती थी। सींचने के लिए रहट का प्रयोग होता था। नई तोड़ी हुई धरती के खरपतवार निकालने के लिये हल का अग्रभाग इस्तेमाल होता था। खलिहानों में कटी हुई फसल के पहाड़ के पहाड़ दीखते थे।

निर्देश

हर्ष चरित : सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल 1964

●●

विज्ञानवार्ता

(१) असंगतियाँ : रोग का सूचक

अब यदि मस्तिष्क में किसी कारणवश कोई रसौली उत्पन्न हो जाती है तो उक्त तरंग वक्र में असंगतियां आ जाती हैं। इन असंगतियों के अध्ययन से चिकित्सक आसानी से यह ज्ञात कर सकता है कि मस्तिष्क में रसौली की वास्तविक स्थिति कहाँ है, तथा उसका आकार और आकृति कैसी है। इसके लिए निश्चय ही उसे मस्तिप्क में से अनेक बार विभिन्न कोणों से पराश्रव्य तरंग प्रवाहित करनी पड़ेगी। क्योंकि पराश्रव्य तरंग मस्तिष्क पर कोई दुष्प्रभाव नहीं डालती इसलिए चिकित्सक निःसंकोच उन्हें कितनी ही बार मस्तिष्क में से प्रवाहित कर सकता है।

(२) अन्य अंगों के रोग निदान में भी

उक्त परीक्षण विधि शरीर के अन्य अंगों के विकारों के निदान के लिए भी अपनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ धमनियों के बहुत क्षीण संकुचन का डाप्लर प्रभाव की सहायता से आसानी से पता चल सकता है।

जैसा कि आपको विदित है डाप्लर एक आस्ट्रियन वैज्ञानिक थे और उनके प्रभाव का सम्बन्ध किसी गतिवान वस्तु से टकरा कर लौटने वाली ध्वनि तरंगों की आवृति में होने वाले परिवर्तन से है। दैनिक जीवन में इसके अनेक दृष्टांत मिलते हैं। प्रेक्षक से दूर जाती हुई कार के हार्न की ध्वनि की आवृति प्रेक्षक के निकट आती हुई कार के हार्न की आवृत्ति से भिन्न होती है।

डाप्लर प्रभाव की मदद से, ध्वनि तरंगों से बहुत सूक्ष्म वाहिकाओं में भी रक्त दान मालूम किया जा सकता है जबकि साधारण विधि से ऐसा करना सम्भव नहीं है। उक्त विधि को 'एस्केन' विधि कहते हैं।

(३) वैद्युत हृदलेख का पूरक

हृदय की जाँच करने के लिए आजकल चिकित्सक विशेष उपकरण द्वारा हृदय की गति का चित्र प्राप्त करते हैं जिसे वैद्युत-हृदलेख (इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राफ) कहते हैं। ए-स्केन विधि, जिसमें पराश्रव्य तरंगों से हृद चित्रण किया जाता है, इस हृदलेख में अतिरिक्त जानकारी का समावेश कर सकती है। पराश्रव्य तरङ्ग हृदलेख (अल्ट्रासोनिक कार्डियोग्राम-यू. सी. जी.) ध्वनि के गतिवान विन्दुओं को एक निश्चित गति से चलने वाली फिल्म पर अंकित करके प्राप्त किया जाता है।

उक्त विधि सर्वप्रथम जर्मनी में विकसित की गई थी परन्तु अब संसार के लगभग हर देश में प्रयुक्त की जा रही है। इसे अनेक बार हृदय की आंतरिक स्थिति ज्ञात करने की अन्य विधियों, उदाहरणार्थ कैथीटराइजेशन, के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रगति हाल में ही हुई जब **बी-स्केन** विधि विकसित हुई जिससे अचल वक्र के स्थान पर गतिवान चित्र प्राप्त होता है।

बी-स्कैन विधि का सिद्धान्त भी सरल है परन्तु उससे कार्य करने से पहले लगातार लिये जाने वाले पराश्रव्य मापों को गतिवान चित्र में परिवर्तित करना होता है। बी-स्कैन तकनीक में पराश्रव्य ट्रांसमिटर एक परावलीय दर्पण के सामने घूमता है और पराश्रव्य चित्र युक्ति इतनी तेजी और क्रम से प्रतिबिम्ब बनाती है कि सम्पूर्ण चित्र, रेखा-दर-रेखा टेलीविजन में प्रदर्शित चित्र की भाँति अभिलेखित हो जाता है। जहाँ तक 140 मि.मी. चौड़े अथवा लम्बे पुनिर्माण योग्य (रिप्रोड्यूसेबल) चित्र का सम्बन्ध है उसमें लगभग १४० अनुप्रस्थ रेखायें प्रति मिलीमीटर अभिलेखित होती हैं।

दर्शक की आँख पर चित्र का स्पष्ट प्रतिबिम्ब बनाने के लिये उक्त विधि को एक सेकण्ड में 18 बार दुहरायी जाती है जो वास्तव में एक महत्वपूर्ण प्रौद्योगिक उपलब्धि है।

एक ओर जहाँ बी-स्कैन विधि से सिर के विभिन्न रोगों की जाँच आसानी से की जा सकती है वहाँ उससे आँख जैसे कोमल अंग में रेटिना के पद-च्युत होने, बाहरी पदार्थ के गिर जाने तथा रसौली जैसे विकारों का पता भी लगाया जा सकता है। उदर के ऊपरी भाग में, बी-स्कैन तकनीक का उपयोग करके, यकृत, अग्नाशय और वृक्कों को पहचाना जा सकता है। पर इस विधि के उपयोग का मुख्य क्षेत्र है स्त्री रोग।

पोटाश डालने से काई की रोकथाम

वैज्ञानिकों ने धान की पैदावार घटाने वाली नीली हरी और हरी काई को रोकने के लिये खेत में 40 से 100 किलो प्रति हेक्टर के हिसाब से पोटाश डालने की सिफारिश की है।

यह काई मिट्टी में से नाइट्रोजन और फास्फोरस चूस कर बढ़ती है। जिससे धान की उन्नत किस्मों के लिये मिट्टी में इन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि नाइट्रोजन और फास्फोरस अधिक मात्रा में डालने से काई बढ़ती है। लेकिन केवल पोटाशियम या इसे नाइट्रोजन और फास्फोरस के साथ मिला कर डालने से काई का बढ़ना कम हो जाता है। इसलिये वैज्ञानिकों ने धान की भारी पैदावार देने वाली किस्मों में पोटाश को नाइट्रोजन और फास्फोरस के साथ मिला कर डालने की सिफारिश की है।

गोभी को लगने वाले डायमन्ड बैक पतंगे की रोकथाम का तरीका

लुधियाना स्थित पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के कीट-विज्ञान विभाग के वैज्ञानिकों के अनुसार बंदगोभी, फूल-गोभी और गांठगोभी जैसी सब्जियों को बरबाद करने वाले डायमन्ड बैक पतंगे की रोकथाम फसल पर ट्राइक्लोरोफेन, इन्डोसल्फॉन आदि रासायनिक दवाओं का छिड़काव करके की जा सकती है।

पतंगे आकार में छोटे, रंग के भूरे, धूसर तथा सफेद पीली चित्तियां लिये हुए होते हैं। इनके लारवे हरे रंग के होते हैं तथा वे पौधों की पत्तियों को खाते हैं।

वैज्ञानिकों ने इनकी रोकथाम करने के लिये 625 लिटर पानी में 1000 ग्राम डिप्टेरासी 95 एसपी (ट्राइक्लो-रोफेन) या 900 मिलीग्राम थायडॉन 355 सीसी (इन्डो-सल्फान) या 310 मिलीग्राम फालोथिऑन सुमीथिआन 1000 (फेनीट्रोथिआन) दवाएं मिला कर बनाये गये घोल का 10 दिन के अन्तर से फसल पर छिड़काव करने की सलाह दी है।

धान के तना छेदक की बी० एच० सी० या एन्ड्रिन से रोकथाम

तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय के कीटविज्ञान विभाग द्वारा किये गये परीक्षणों के अनुसार धान के तना छेदक की रोकथाम के लिये सिंचाई के साथ 10 प्रतिशत गामा बी० एच० सी० या एन्ड्रिन के दाने डालना सबसे ज्यादा उपयुक्त और व्यावहारिक तरीका सिद्ध हुआ है।

तना छेदक से पौधों की गोब सूख जाती हैं और पौधों में सफेद बालें निकल आती हैं। चूँकि ये कीड़े पौधों में छिपे रहते हैं इसलिये इनकी रोकथाम करना मुश्किल होता है।

रोपाई से 15 और 45 दिन बाद प्रति हैक्टर 2.2 किलो (तेज दवा) 10 प्रतिशत गामा बी० एच० सी० या एन्ड्रिन के दाने सिंचाई के थोड़े से पानी द्वारा फसल में डालने से इनको अच्छी तरह रोकथाम हो जाती है।

खेत में 5 सेन्टीमीटर खड़े पानी में एन्ड्रिन के दाने भुरक कर डालने चाहियें। पानी में दवा डालने के बाद उसे तीन दिन तक खेत में खड़े रखना चाहिये।

———

सूचना

विज्ञान-परिषद् द्वारा सूचित किया जाता है कि विज्ञान की सर्वोत्तम पुस्तक के लेखक को परिषद् द्वारा 'स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक' देने का निश्चय हुआ है। यह पुस्तक १९७१, १९७२ अथवा १९७३ में प्रकाशित हुई होनी चाहिए। इस विज्ञापन द्वारा लेखकों को आमंत्रित किया जाता है कि वे अपनी पुस्तक की तीन प्रतियाँ निम्न पते पर १ नवम्बर, १९७३ तक रजिस्ट्री डाक द्वारा भेजें। पुस्तक भेजने का पता :—

प्रो० कृष्णजी
प्रधान मंत्री, विज्ञान-परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-२

पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार कर जिन्हें लेखकों ने न भेजा हो।

पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम तथा मान्य होगा।

पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा निर्णायकों की रचना पर पदक प्रदान नहीं होगा।

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक की नियमावली इसी अंक में देखी जा सकती है।

कृष्ण जी
प्रधान मंत्री
विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद-२

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक की नियमावली

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्ध प्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह था और उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा थी। उन्होंने विज्ञान-परिषद् को, वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित करने हेतु एक निधि दी थी। विज्ञान परिषद् के कुछ वर्षों तक इस निधि से, हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के उच्चतम साहित्यिकों को 'हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किए। श्री हरिशरणानन्द जी के निधन के उपरान्त इस निधि में और वृद्धि न हो सकी, इस कारण विज्ञान-परिषद् की अंतरंग सभा ने यह निश्चय किया कि जो निधि शेष है उसके व्याज से एक स्वर्ण पदक प्रदान किया जाय। इस प्रकार परिषद् श्री हरिशरणानन्द जी के विचारों का आदर कर सकेगा और उनकी निधि का सदुपयोग भी होगा। प्रस्तुत नियमावली इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने हेतु बनाई गई है।

1—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के पूर्व अध्यक्ष स्व० श्री हरिशरणानन्द जो की निधि के व्याज से संचालित एवं विज्ञान-परिषद् द्वारा प्रदत्त इस पदक का नाम 'हरिशरणानन्द स्वर्णपदक' होगा।

2—यह स्वर्णपदक विज्ञान परिषद् द्वारा प्रत्येक वर्ष विज्ञान की सर्वोत्तम प्रकाशित पुस्तक के लेखक को प्रदान किया जायगा। जिस वर्ष पदक दिया जायगा, पुस्तक उसके पूर्व तीन कैलेन्डर वर्ष के भीतर प्रकाशित हुई होनी चाहिए।

3—प्रत्येक वर्ष 'विज्ञान' तथा दो अन्य दैनिक समाचारपत्रों में इस पुरस्कार की घोषणा की जायगी और लेखकों को आमंत्रित किया जायगा कि वे पुस्तक की तीन प्रति विज्ञान परिषद् की पुरस्कार समिति को निश्चित विज्ञापित तिथि के भीतर भेजें।

4—स्वर्णपदक प्रदान करने का संचालन परिषद् की पुरस्कार समिति करेगी।

इस समिति के सदस्य निम्नलिखित होंगे :—

क—परिषद् के सभापति

ख—एक पदेन उपसभापति (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)

ग—कोषाध्यक्ष

घ—प्रधान मंत्री

ङ—अनुसन्धान पत्रिका के प्रधान संपादक

5—पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार करें जिन्हें लेखकों ने न भेजा होगा।

6—यह समिति अपना निर्णय तीन विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करने के बाद लेगी। विशेषज्ञों के नाम गोपनीय होंगे।

7—पुरस्कार समिति का निर्णय अंतिम तथा मान्य होगा।

8—पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा सम्मति देने वाले विशेषज्ञों की रचना पर पदक नहीं प्रदान होगा।

9—सामान्यतः यह स्वर्णपदक परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के समय वितरित होगा।

10—प्रतियोगिता में आयी हुई पुस्तकों में से किसी एक पुस्तक पर दो बार से अधिक विचार नहीं होगा। (यह नियम उन पुस्तकों पर लागू नहीं होगा जिन्हें समिति अपनी ओर से रखेगी।

(कृष्णजी)

पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठक गण,

'विज्ञान' का सितम्बर अंक आपके सम्मुख है। विज्ञान परिषद पिछले ७० वर्षों से हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार व प्रसार में प्रमुख भूमिका अदा कर रहा है। यद्यपि हमारे सामने आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयाँ आती रहीं फिर भी हम अपने पाठकों को लाभप्रद सामग्री देने का सदैव प्रयत्न करते रहे। हमारी इस सफलता में आप सभी प्रेमी पाठकों की सद्भावना तथा आपके सहयोग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परिषद परिवार आप सबका आभारी है और हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास भी है कि भविष्य में आप सबका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

हम 'विज्ञान' का कायांतरण करना चाहते हैं ताकि और भी सुरुचिपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की जा सके। हम यह प्रयास करना चाहते हैं कि इस पत्रिका में कुछ सामग्री इस प्रकार की हो जो हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी हो। भौतिकी, रसायन-शास्त्र, जीवविज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित विषयों पर आपके लेख यदि हमें प्राप्त हो सकें तो हमें इस दिशा में सफलता प्राप्त हो सकती है। लेख सरल भाषा में हों और साथ में चित्र भी हों तो उन विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न होगी। बाल विज्ञान के लिये आपके सुझावों का स्वागत किया जायगा। लेखक अपने लेख के साथ चित्र भी भेजें तो हम उन्हें सम्मिलित कर सकते हैं। पत्रिका को अधिक उपयोगी बनाने के लिये आपके सुझाव हमारे लिये अमूल्य होंगे।

--सम्पादक

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111	फाल्गुन 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द अगस्त 1973	संख्या 12

न्यूक्लिइक अम्ल—एक आनुवंशिक पदार्थ

विष्णु कान्त शर्मा

न्यूक्लिइक अम्ल कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व फॉस्फोरस से निर्मित दीर्घ कार्बनिक अणु होते हैं। यह अम्ल दो प्रकार के होते हैं: डीआक्सीराइबोन्यूक्लिइक अम्ल (डी. एन. ए.) व राइबोन्यूक्लिइक अम्ल (आर. एन. ए.)। दोनों न्यूक्लिइक अम्लों का निर्माण न्यूक्लिओटाइड इकाईयों की पुनरावृत्ति के फलस्वरूप होता है। लगभग सभी कोशिकाओं में उपरोक्त दोनों प्रकार के अम्ल उपस्थित रहते हैं परन्तु वाइरसों में सिर्फ एक ही प्रकार का न्यूक्लिइक अम्ल पाया जाता है। उदाहरणार्थ, T_2 जीवाणुभोजी (bacteriophage) में डी. एन. ए. और टोबैको मोज़ेक वाइरस (TMV) में सिर्फ आर. एन. ए. उपस्थित रहता है।

किसी भी आनुवंशिक पदार्थ में कम से कम निम्न तीन विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं :—

(1) आनुवंशिक पदार्थ कोशिका वृद्धि तथा द्विगुणन के समय प्रतिकृति (reblication) कर सके।

(2) इसकी संरचना इतनी अधिक स्थायी हो कि उसमें कम से कम उत्परिवर्त्तन (mutation) हो सकें।

(3) वह समस्त आवश्यक जैविक सूचनाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित कर सकें।

उपरोक्त सभी गुण न्यूक्लिइक अम्लों में पाये जाते हैं। साथ ही निम्नलिखित प्रयोगों द्वारा भी यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो चुका है कि न्यूक्लिइक अम्ल ही आनुवंशिक पदार्थ हैं।

रूपान्तरण :

यद्यपि न्यूक्लिइक अम्लों का आविष्कार सन् 1897 में मीशर नामक वैज्ञानिक ने किया था परन्तु उनकी जैविक और आनुवंशिक सार्थकता का ज्ञान काफी वर्षों बाद ही हो पाया। सन् 1928 में ग्रिफिथ ने अपने प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि डी. एन. ए. आनुवंशिक पदार्थ है।

वह डिप्लोकोकस न्यूमोनी (Diplococcus pneumoniae) नामक जीवाणु पर शोध कर रहे थे जो दो विभेदों में पाया जाता है। एक विभेद के जीवाणु चिकने, बहुशर्कराइड कैप्सूल से घिरे हुए व उग्र होते हैं जबकि दूसरे विभेद की कोशिकाएँ रुक्ष, कैप्सूल रहित, व अनुग्र होती हैं। ग्रिफिथ ने पहले उग्र जीवाणुओं को 60^0 सै. पर गर्म करके नष्ट कर दिया और जब इन्हें चूहों के शरीर में प्रवेश कराया तो जैसी कि संभावना थी—चूहे जीवित रहे। इसके पश्चात् मृत एवं उग्र दोनों प्रकार के जीवाणुओं का चूहों में एक साथ इन्जेक्शन दिया गया तो सभी चूहे मर गये। मृत चूहों के रक्त परीक्षण पर उसमें जीवित, कैप्सूल वाले, उग्र जीवाणु पाये गये। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि मृत, उग्र जीवाणुओं की कोशिकाओं से कोई पदार्थ जीवित, अनुग्र जीवाणुओं की कोशिकाओं में प्रवेश हुआ और उन्हें कैप्सूल वाले, उग्र जीवाणुओं के रूप में परिवर्तित कराया गया जो चूहों में न्यूमोनिया रोग उत्पन्न कर सकते थे।
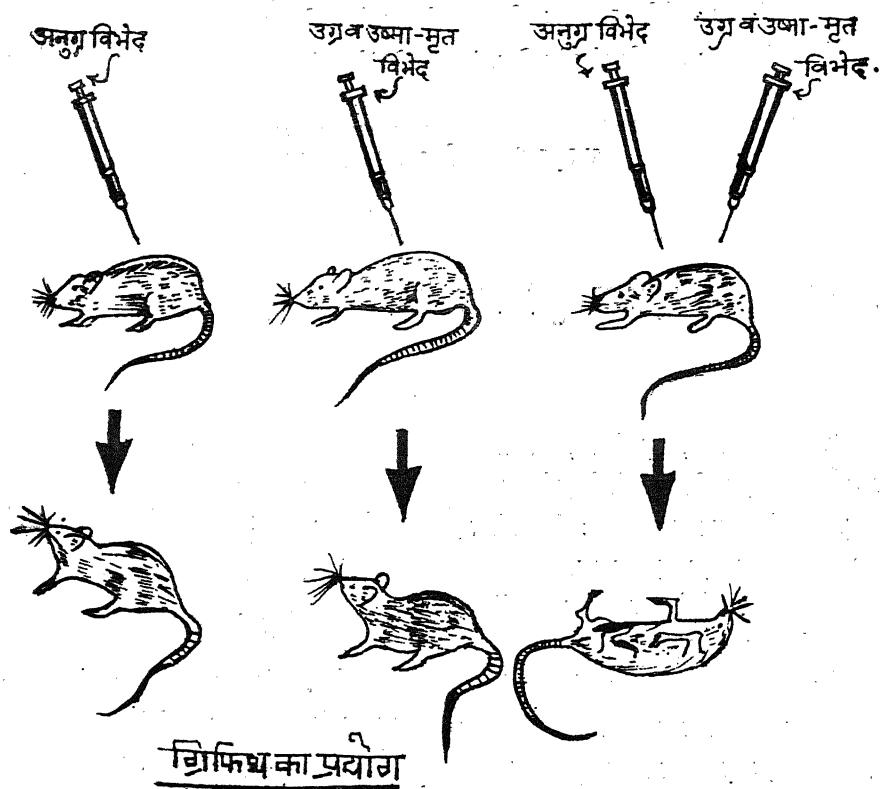
चित्र—1

सन् 1944 में ऐवरी, मैक्लीऑड व मैकार्टी के प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ कि रूपान्तरण की क्रिया के लिये सिर्फ डी. एन. ए. ही उत्तरदायी है जो कि विष-हीन न्यूमोकोकाई को विषैले विभेद में परिवर्तित कर देता है।

वाइरसी संक्रमण :

वाइरसों के एक समूह को जीवाणुभोजी कहते हैं जो जीवाणुओं पर संक्रमण करके उन्हें मार देते हैं। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि जीवाणुभोजिओं में आनुवंशिक पदार्थ डी. एन. ए. होता है। T_2

जीवाणुभोजी ई. कोलाई नामक जीवाणु पर संक्रमण करता है। यह वाइरस एक षट्कोणीय शीर्ष व एक पुच्छ द्वारा निर्मित होता है और इसके आनुवंशिक पदार्थ के चारों ओर प्रोटीन आवरण होता है। ई. कोलाई व T_2 जीवाणुभोजी को एक साथ रखने पर लगभग 20 मिनिट में जीवाण्विक कोशिकायें फट जाती हैं और उनमें से नये जीवाणुभोजी कण प्रकट होते हैं। इससे यह पता लगता है कि जीवाणुभोजिओं से कई पदार्थ जीवाण्विक कोशिकाओं में प्रवेश करता है जहाँ वह नये T_2 जीवाणुभोजिओं का निर्माण करता है। जीवाणुभोजी अपने पुच्छ द्वारा जीवाणु कोशिका से चिपक जाता है। शीघ्र ही वाइरसी डी. एन. ए. जीवाणु कोशिका में प्रवेश कर जाता है और प्रोटीन आवरण कोशिका के बाहर ही रह जाता है। वाइरसी डी. ऐन. ए. कोशिका के अन्दर प्रतिकृति करके नये जीवाणुभोजी कणों को उत्पन्न करता है। सन् 1952 में हेर्षी व चेज़ नामक वैज्ञानिकों ने इन प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया कि T_2 जीवाणुभोजी का आनुवंशिक पदार्थ डी. एन. ए. है।
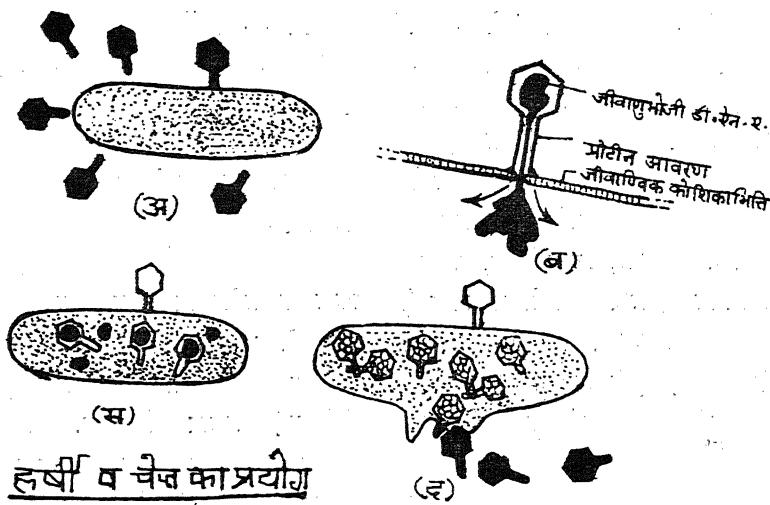
चित्र—2

तम्बाकू मोज़ेक वाइरस संक्रामकता :

समस्त वाइरस न्यूक्लिओप्रोटीनों से निर्मित होते हैं। उच्च पौधों पर संक्रमण करने वाले वाइरसों में डी. एन. ए. के स्थान पर आर. एन. ए. उपस्थित रहता है, जैसे टोबैको मोज़ेक वाइरस (TMV)। फ्रेन्केल-कॉनराट के अनुसार प्रोटीन आवरण स्वयं संक्रमणशील नहीं होता और यह आर. एन. ए. से पृथक किया जा सकता है। यदि प्रोटीन आवरण को विलगित आर. एन. ए. के साथ पुनः संयोजित कराया जाये तो वाइरस संक्रमणशील हो जाता है। टाबैको मोज़ेक वाइरस के एक विभेद के आर. एन. ए. व दूसरे विभेद के प्रोटीन को लेकर पुनः संयोजन करने पर जो नये वाइरसी कण उत्पन्न होते हैं उनके प्रोटीन आवरण पैतृक आर. एन. ए. सदृश होते हैं न कि पैतृक प्रोटीन जैसे। इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि टोबैको मोज़ेक वाइरस में अनुवंशिक पदार्थ आर. एन. ए. होता है।

इन उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रयोगों द्वारा न्यूक्लिइक अम्लों का आनुवंशिक सार्थकता का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है।

विष्णु कान्त शर्मा
वनस्पति विज्ञान विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय,
उदयपुर

कोशिका; जीवन की कार्यात्मक एवं संरचनात्मक इकाई

शुकदेव प्रसाद

जिस प्रकार से भवनों का निर्माण छोटी-छोटी ईंटों से होता है उसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी के शरीर का निर्माण छोटी-छोटी रचनाओं से होता है जिन्हें हम कोशिका (सेल) कहते हैं। कुछ जीवधारी एक कोशीय भी होते हैं। इन्हीं कोशिकाओं में जीवन के गुण व्याप्त रहते हैं। जीवन क्या है ? यह प्रश्न अभी भी रहस्यमय बना हुआ है। किसी भी वैज्ञानिक ने अभी जीवन की परिभाषा ठीक से नहीं दी है। लेकिन हमें जीवन के लक्षण मालूम हैं। जैसे चलना, उठना-बैठना, बातचीत करना, श्वसन, प्रजनन इत्यादि। अर्थात् सक्रियता ही जीवन है। कोशिकाओं के भीतर उपस्थित जीवद्रव्य में जीवन की सारी क्रियाएँ होती हैं। भोज्य पदार्थों के दहन के फलस्वरूप जीवित प्राणियों को उर्जा मिलती है जिससे उनमें कार्य करने की क्षमता उत्पन्न होती है। जीवद्रव्य के खत्म हो जाने पर जीवधारी ये सब क्रियाएँ करना बंद कर देता है अर्थात निर्जीव हो जाता है इस प्रकार हम देखते हैं कि कोशिकाएँ ऐसी रचनाएँ हैं जो कि जीवधारी के शरीर की रचना करती हैं तथा उसे कार्य करने की शक्ति प्रदान करती हैं अतः कोशिका को जीवन की कार्यात्मक एवं संरचनात्मक इकाई कहते हैं।

इतिहास :—सन् 1663 में राबर्ट हुक नामक वैज्ञानिक ने जब कार्क की महीन काटों (Sections) को अपनी सूक्ष्मदर्शी से देखा तो उसे शहद के छत्ते के कोष्ठ जैसी रचनाएँ दिखाई पड़ीं। उसने इन्हीं कोष्ठों को 'सेल' (कोशिका) नाम दिया। कोशिका का विकसित अध्ययन 19वीं शती के प्रारम्भ में तब शुरू हुआ जब कि श्लाइडेन (1838) और श्वान (1839) ने अपने विचार प्रकाशित किये। जर्मन वैज्ञानिक श्वान के मतानुसार "कोशिका जीव हैं और समस्त जन्तु व पौधे निश्चित नियमों के अनुसार व्यवस्थित इन्हीं जीवों के समूह मात्र है।" इनके बाद कई अन्य वैज्ञानिकों ने इस विषय में कार्य किया। प्रोफेसर हक्सले के अनुसार हम जीवद्रव्य के जीवन का भौतिक आधार मानते हैं। अब हम यह मानते हैं कि कोशिका ही सभी जीवधारियों के जीवन की कार्यात्मक एवं संरचनात्मक मूलभूत एकाई है।

संरचना एवं कार्य :—इलेक्ट्रान माइक्रास्कोप के आविष्कार से कोशिका के अध्ययन में बड़ी मदद मिली है। क्योंकि कम्पाउण्ड माइक्रास्कोप से कोशिका के प्रत्येक भाग को देखा नहीं जा सकता है। कोशिकाएँ आकार में गोल, अण्डाकार बहुभुजी, आयताकार अथवा लम्बी हो सकती हैं। कोशिकाएँ साधारणतः ·1 मि०मी० से ·01 तक किसी भी लम्बाई की होती हैं। कुछ और छोटी (:001 मि० मी०) भी होती हैं तथा कुछ कोशिकाएँ काफी बड़ी (6 से 8 मि०मी०) होती हैं। कुछ रेशेदार पौधों जैसे पटसन इत्यादि में इनकी लम्बाई 20 के 550 मि०मी० तक भी होती है।

हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि प्रत्येक जीवधारी का शरीर कोशिकाओं का बना होता है और इसकी रचना बड़ी जटिल होती है। कोशिका की रक्षा के लिए एक दीवार होती है जिसे हम कोशिका भित्ति कहते हैं यह प्रायः सेलुलोज की बनी होती है (कवकों को छोड़कर) तथा निर्जीव होती है। इसका निर्माण कोशिकाद्रव्य के स्रावों से होता है। कोशिका द्रव्य से अनेक सूक्ष्मकण स्रावित होकर इसके चारों ओर लग जाते हैं और आपस में जुड़ जाते हैं जिससे एक भित्ति का निर्माण
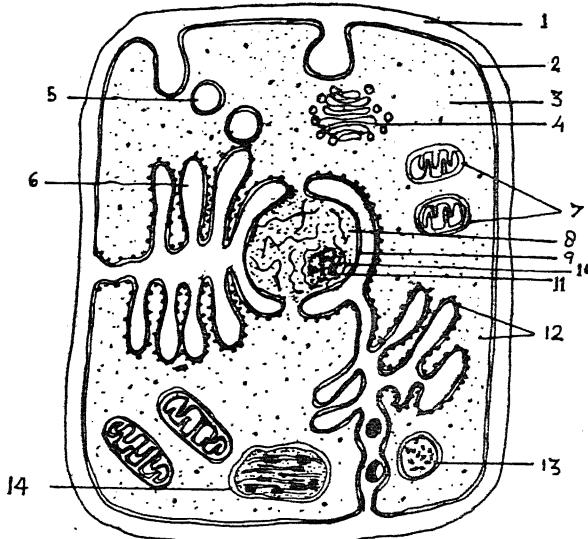
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा गया कोशिका का आदर्श रूप

संकेत 1. कोशिकाभित्ति; 2. कोशिका कला; 3. कोशिका द्रव्य; 4. गॉल्जीकाय; 5. रिक्तिका; 6. एण्डोप्लैस्मिक रेटिकुलम; 7. माइटोकॉण्ड्रिया; 8. केन्द्रक; 9. केन्द्रिक कला; 10. गुणसूत्र; 11. केन्द्रिका; 12. रिबोसोम; 13. लाइसोसोम; 14. क्लोरोप्लास्ट।

होता है। यह कैलशियम और पेक्टेट से बनी होती है। यह बहुत पतली होती है तथा इसमें तमाम सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन्हीं छिद्रों द्वारा एक कोशिका का सम्बन्ध दूसरी कोशिका से होता है। इस भित्ति को प्रथम भित्ति कहते हैं। कोशिका ज्यों-ज्यों विकसित होती रहती है इसके प्रथम भित्ति में भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिससे कोशिका और मोटी हो जाती है। कोशिकाद्रव्य से पेक्टोज और सेलुलोज स्रावित होकर प्रथम भित्ति के उपर जम जाते हैं और द्वितीयक भित्ति का निर्माण करते हैं। इसके भी ऊपर सेलुलोज की तीसरी पर्त बनती है जिससे तृतीय भित्ति का निर्माण होता है उस प्रकार जीवित कोशिका के चारों ओर निर्जीव कोशिका भित्ति का निर्माण होता है। जन्तु कोशिकाओं में कोशिका भित्ति नहीं पाई जाती है। कोशिका भित्ति कोशिका की रक्षा करती है एवं निश्चित आकार तथा दृढ़ता प्रदान करती है।

कोशिका के भीतर उपस्थित भाग को जीवद्रव्य कहते हैं। यह एक स्वच्छ, दानेदार, अर्धद्रव्य, जैली के आकार का पारदर्शक पदार्थ है। जीवित अवस्था में इसमें 75 से 60% तक जल होता है। जीवद्रव्य का अधिकांश भाग आक्सीजन (62 प्रतिशत), कार्बन (20 प्रतिशत), हाइड्रोजन (10 प्रतिशत) और नाइट्रोजन (3 प्रतिशत) होता है। शेष भाग में अन्य पदार्थ सम्मिलित हैं। जीवद्रव्य के संघटन का ठीक पता नहीं चल पाया है क्योंकि रासायनिक विश्लेषण होने पर जीवद्रव्य मर जाता है। यह एक जटिल मिश्रण हैं। इसमें अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ भी पाए जाते हैं। अकार्बनिक पदार्थों में Na, K, Ca, Mg, तथा Fe के फास्फेट, क्लोराइड एवं कार्बोनेट मुख्य हैं। कभी-कभी Cu, Zn, Mn, Al, Si, Cl, Mo, Br आदि भी थोड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। कोशिका के जीवद्रव्य में पाई जाने वाली कार्बनिक वस्तुओं में

कार्बोहाइड्रेटस, फैट या वसा प्रोटीन और न्यूक्लियो प्रोटीन मुख्य हैं। पादप कोशिकाओं में विभिन्न प्रकार के रंग, लेटेक्स, विटामिन, हार्मोन, ऐल्केलॉइड, एन्जाइम तथा कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ मिलते हैं।

जीवद्रव्य के मुख्यतः दो भाग हैं।

(1) कोशिका द्रव्य

(2) केन्द्रक

कोशिका द्रव्य :—कोशिका के अन्दर के जीवद्रव्य को कोशिकाद्रव्य कहते हैं। इसमें केन्द्रक-लवक सम्मिलित नहीं होते। यह अर्द्धपारदर्शक, कणिकामय, जेली के समान जीवित पदार्थ है। इसमें निम्नलिखित अन्तर्वस्तुएँ मिलती हैं।

1. माइटोकॉण्ड्रिया :—ये जन्तु और वनस्पति कोशिकाओं में पाई जाती है। ये कभी सूत्र, कभी कणिका और कभी शलाका के रूप में मिलती हैं। इनके बीच में अंगुली के आकार की रचनाएँ निकली रहती हैं जिन्हें क्रिस्टी कहते हैं। प्रत्येक माइटोकॉण्ड्रियन के चारों ओर वसा और प्रोटीन की दोहरी कला होती है।

कोशिका द्रव्य में ग्लूकोस के जटिल अणु एन्जाइम द्वारा साधारण अणुओं में परिवर्तित होते रहते हैं। इन साधारण अणुओं का अपघटन माइटोकॉण्ड्रिया में होता है जिससे उर्जा उत्पन्न होती है। इस उर्जा से एक नया यौगिक ATP (एडिनोसिनट्राइफास्फेट) बनता है। रासायनिक अपघटन में उत्पन्न उर्जा ATP में संचित होती रहती है जो कि कोशिकाओं को आवश्यकतानुनार मिलती रहती है। इसीलिए माइटोकॉण्ड्रिया को कोशिका का 'बिजलीघर' तथा ATP को जैविक क्रियाओं का संगृहीत कोष कहा जाता है।

2. लवक या प्लैस्टिड :—जीवद्रव्य से बने कुछ विशेष पदार्थ पाए जाते हैं जिन्हें लवक कहते हैं। ये गोलाकार, तश्तरीनुमा होते हैं। लवक रंग, कार्य तथा गुणों के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में ये बदल भी जाते हैं।

(अ) अवर्णी लवक या ल्यूकोप्लास्ट (Leucoplasts) :—ये सफेद रंग के होते हैं तथा पौधों के भूमिगत भागों में पाए जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। छोटे व बड़े। छोटे अवर्णी लवक प्रकाश मिलने पर हरित लवकों में बदल जाते हैं। इनमें अन्य भी रंग बनते हैं तब ये वर्णी लवकों में बदल जाते हैं। बड़े अवर्णी लवक घुलनशील शर्करा से मडंकणों का निर्माण करते हैं जो कि भूमि गति भागों आदि में संचित होते रहते हैं।

(ब) हरित लवक या क्लोरोप्लास्ट (chloroplasfs) :—ये हरे रंग के होते हैं तथा पौधों के हरे भागों जैसे पत्तियों, कोमल तनों आदि में पाये जाते हैं। इनका हरा रंग एक विशेष पदार्थ, पर्णहरित या क्लोरोफिल के कारण होता है। ये सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में पानी तथा CO_2 से क्रिया कर मंड तथा शर्करा बनाते हैं। इस क्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। हरित लवकों में उपस्थित हरा रंग पर्णहरित चार भिन्न रंगों क्रमशः क्लोरोफिल ए ($C_{55}H_{72}O_5N_4Mg$); क्लोरोफिल बी ($C_{55}H_{70}O_6N_4Mg$), पर्णपतिक या कैरोटिन ($C_{40}H_{56}$) और पर्णपति या जैन्थोफिल ($C_{40}H_{56}O_2$) का मिश्रण है।

(स) वर्णी लवक या क्रोमोप्लास्ट (Chromoplast) :— ये रंगीन होते हैं। इनका रंग प्रायः पीला, नारंगी या लाल होता है। ये फूलों के दलों और फलों में पाए जाते हैं जिससे उनमें सुन्दरता आ जाती है और वे आकर्षक बन जाते हैं जिससे परागण एवं प्रकीर्णन में सहायता मिलती है। पुष्पों के आकर्षक रंग केवल क्रोमोप्लास्ट के कारण नहीं होते बल्कि कुछ पुष्पों के रिक्तकाओं में एन्थोसाइएनिन नामक रंग घुले होते हैं जो उनको आकर्षक बनाते हैं। टमाटर पकने पर उसके क्लोरोप्लास्ट में लाइकोपेन नामक लाल रंग उत्पन्न हो जाता है जिससे टमाटर हरे से लाल हो जाता है।

3. अन्तः प्रद्रव्यी जालिका या (Endoplasmic reticulum) एण्डोप्लैस्मिकरेटिकुलम:—कोशिका द्रव्य में अत्यन्त सूक्ष्म नलिकाओं का जाल सा होता है जिसे एण्डोप्लैस्मिक जालिका कहते हैं। इनके द्वारा एक कोशिका के केन्द्रक का सम्बन्ध उससे लगी हुई कोशिका के जीव द्रव्य से हो जाता है। इनकी कलाओं पर अत्यन्त

सूक्ष्मकण लगे होते हैं जिन्हें रिबीसोम कहते हैं । ये प्रोटीन संश्लेषण करते हैं ।

4—गॉल्जीकाय (Golgibodies) :—ये भी सूक्ष्म जाल जैसी रचनाएँ होती हैं । इनकी संख्या वनस्पति कोशिकाओं में बहुत कम होती हैं तथा जन्तु कोशिकाओं में ये अधिकता से मिलती हैं । इनके कार्य का ठीक से पता अभी नहीं चल पाया है लेकिन ऐसा अनुमान है कि ये स्राविक द्रव का संश्लेषण करते हैं ।

5—तारककाय या सेण्ट्रोसोम (Centrosome):—जन्तु कोशिका तथा कुछ शैवाल और कवक के जीवद्रव्य में केन्द्रक के समीप एक स्वच्छ भाग होता है जिसे सेण्ट्रोसोम कहते हैं । इसके बीच में एक नन्हीं सी कणिका होती है जिसे तारक केन्द्र या सेन्ट्रिओल कहते हैं । इनके कार्य का ठीक से अभी पता नहीं हैं लेकिन कोशिका विभाजन का प्रथम संकेत सेन्ट्रिओल के दो भागों में विभक्त हो जाने से मिलता है ।

6—रिक्तकाएँ या (Vacuales) :—कोशिका द्रव्य में एक से अधिक रिक्तिकाएँ मिलती हैं । रिक्तिका के चारों ओर एक कला होती है जिसे टोनोप्लास्म कहते हैं । रिक्तिका के अंदर रिक्तिका रस होता है । इसमें मुख्यतः जल होता है जिसमें खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट, एमाइड, आर्गेनिक अम्ल, टैनिन, एन्थोसाइएनिन आदि घोल कोलॉइडी अवस्था में मिलते हैं ।

केन्द्रक :—कोशिका के बीच में एक गोल सी घनी संरचना होती है जिसे केन्द्रक कहते हैं । केन्द्रक के चारों ओर एक कला होती है जिसे केन्द्रक झिल्ली कहते हैं । केन्द्रक के अन्दर के द्रव न्यूक्लिओप्लाज्म होता है । केन्द्रक के बीच में एक और गोल सी रचना होती है जिसे केन्द्रिका कहते हैं । इसका पदार्थ कोशिका द्रव्य, केन्द्रक रस तथा क्रोमेटिन से अधिक घना होता है और मुख्यतः प्रोटीन का बना होता है । इसमें न्यूक्लीन नामक विशेष पदार्थ होता है । केन्द्रक में एक धूमिल जाल सा दिखाई देता है । परन्तु रंगीन (Stained) अवस्था में जाल स्पष्ट दिखाई पड़ता है । उक्त जाल बनाने वाले पदार्थ का नाम वैज्ञानिकों ने 'क्रोमेटिन' रख दिया । कोशिका विभाजन का अध्ययन करने पर वैज्ञानिकों ने देखा कि 'माइटोसिस' द्वारा कोशिका विभाजन की क्रिया में परिवर्तन आ गया । जाल सदृश उक्त क्रोमेटिन सिमट कर धागों के गुच्छा जैसा हो गया । इस गुच्छे का नाम वैज्ञानिकों ने क्रोमोसोम रख दिया । विभाजन की क्रिया में प्रत्येक क्रोमोसोम के लम्बाई में दो-दो भाग हो गए और दो नई कोशिकाओं का जन्म हुआ तथा दोनों नई कोशिकाओं में क्रोमोसोम की संख्या मातृ कोशिका के बराबर थी । दोनों कोशिकाओं के पूर्णतः अलग होने पर क्रोमेटिन का धुंधला जाल पुनः दिखाई देने लगा । प्रत्येक जीव में क्रोमोसोम की संख्या भिन्न-भिन्न होती है । मनुष्य में 46, सफेद चूहे में 42, मटर के पौधे में 14 आदि-आदि । क्रोमोसोम के ही महत्वपूर्ण अंग जीन हैं जो कि माँ बाप के गुण सन्तान में पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाते रहते हैं । इस प्रकार ये आनुवंशिकता के वाहक कहलाते हैं । प्रत्येक क्रोमोसोम में हिस्टोन नामक प्रोटीन तथा न्यूक्लीक अम्ल होता है । न्यूक्लीक अम्ल दो प्रकार के होते हैं ।

(i) डीआक्सीरिबोन्यूक्लिक अम्ल (डी० एन० ए०)

(ii) रिबोन्यूक्लिक अम्ल (आर० एन० ए०)

डी० एन० ए०:—फिड्रिकमीशेर ने 1869 में केन्द्रक से एक पदार्थ की खोज की जिसका नाम 'न्यूक्लिन' पड़ा । कालांतर में यह न्यूक्लिन अशोधित डीआक्सीराइबो-न्यूक्लिक एसिड पाया गया । कोशिकाओं के केन्द्रक में उपस्थित यह विलक्षण गुणों वाला रासायनिक पदार्थ है । इसमें स्वयं अपने अणु बनाने की क्षमता है । DNA छोटे-छोटे रासायनिक अणुओं से बनता है जिन्हें न्यूक्लिओटाइड कहते हैं । ये चार प्रकार के होते हैं । प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड तीन रसायनों के संयोग से बनता है (i) डी आक्सीराइबोज (ii) फास्फेट और (iii) नाइट्रोनजयुक्त यूनिट 'बेसा । डी आक्सीराइबोज एक प्रकार की शर्करा है जिसमें 5 कार्बन परमाणु होते हैं । डीआक्सीराइबोज के एक सिरे पर फास्फेट का एक समूह और दूसरे सिरे पर नाइट्रोजन-बेस जुड़ा होता है । प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड में डीआक्सीराइबोज और फास्फेट विद्यमान होते हैं । बेस चार क्रमशः एडीनीन, गुआनीन, साइटोसीन और थाइमीन होते हैं । प्रत्येक की रचना भिन्न होती

है ? प्रत्येक न्यूक्लिटाइड में एक बेस होता है और इसके अनुसार चारों न्यूक्लिओटाइड निम्न हैं—एडिनिलिक अम्ल, गुआनिलिक अम्ल, साइटीडिलिक अम्ल और थाइमीडिलिक अम्ल।

एडीनीन और गुआनीन में साथ-साथ दो छल्ले (एक छोटा और एक बड़ा) लगे होते हैं। इसके कारण ये प्यूरीन वर्ग के सदस्य माने जाते हैं। साइटोसीन और थाइमीन में केवल एक 'छल्ला' होता है और इसीलिए इनको पिरीमिडीन वर्ग का सदस्य माना जाता है। प्यूरीन सदा पिरीमिडीन से हाइड्रोजन बन्धों द्वारा जोड़े बना सकता है क्योंकि इसी प्रकार के जोड़ों में सक्रिय समूह एक दूसरे के निकट आ पाते हैं। एडीनीन सदा थाइमीन से और गुआनीन सदा साइटोसीन से जोड़े बनाता है। ये चारों न्यूक्लिओटाइड लम्बी कतार में एक के बाद एक विशेष क्रमों में जुड़े होते हैं: एक न्यूक्लिओटाइड की डीआक्सीराइबोज के पाँचवें कार्बन परमाणु पर स्थित फास्फेट समूह पड़ोसी न्यूक्लिओटाइड की डीआक्सीराईबोज के तीसरे कार्बन परमाणु से जुड़ा होता है। इसी नियम के अनुसार एक न्यूक्लिओटाइड की शर्करा के पाँचवें कार्बन परमाणु को दूसरे न्यूक्लिओटाइड की शर्करा के तीसरे कार्बन परमाणु से, फास्फेट बन्धों द्वारा जोड़ते चले जाने से एडीनीन, गुआनीन, साइटोसीन और थाइमीन का कोई भी क्रम बन सकता है।

1953 में वैज्ञानिक वाटसन और क्रिक ने डी० एन० ए० के सम्पूर्ण आकार को प्रस्तुत करते हुए बताया कि डी० एन० ए० में न्यूक्लिओटाइड के दो लम्बे फीते एक दूसरे के चारों ओर चक्करदार सीढ़ी की आकृति में लिपटे रहते हैं। प्रत्येक फीते की रीढ़ शर्करा और फास्फेट समूहों की कतार से बनती है परन्तु प्यूरीन व पिरीमिडीन इकाइयाँ एक के ऊपर एक DNA की चक्करदार सीढ़ी की धुरी से 90° कोण पर स्थित होती है। DNA फीते के प्रत्येक चक्कर में 10 न्यूक्लिओटाइड होते हैं। एक फीते की प्यूरीन दूसरे फीते की पिरीमिडीन से हाइड्रोजन बन्धों द्वारा ऊपरलिखित नियमों से जुड़ी होती है। इस प्रकार एक फीते में एडीनीन है तो उसके ठीक सामने दूसरे फीते में थाइमीन होगी और गुआनीन के सामने दूसरे फीते में साइटोसीन होगी। अतः DNA के एक फीते के न्यूक्लिओटाइड क्रम की 'नेगेटिव' प्रतिलिपि उसके 'साथी' फीते में पाई जाती है। इस विशेष कार्य के लिए वाटसन और क्रिक को 1962 में नोबुल पुरस्कार मिला था।

कोशिका में होनेवाली सभी रासायनिक क्रियाओं पर DNA नियन्त्रण रखता है तथा एक या एक से अधिक एन्जाइम के कार्य का निर्देशन करता है। यह आनुवंशिक्ता का वाहक है। यह RNA का निर्माण करती है।

आर० एन० ए०—प्रोटीन संश्लेषण का नियंत्रण DNA अपने ही समरूप एक और रसायन, राइबोन्यूक्लिक एसिड (RNA), के माध्यम से करता है। सम्पूर्ण प्रोटीन संश्लेषण RNA द्वारा ही होता है। रासायनिक संरचना में RNA बहुत कुछ DNA जैसा ही होता है। मुख्य अंतर निम्न है (i) DNA में डीआक्सीराइबोज शर्करा होती है और RNA में राइबोज (ii) RNA में सामान्यतः न्यूक्लिओटाइडो का एक ही फीता है जबकि DNA में दो (iii) RNA में थाइमिन न्यूक्लिओराइड (थाइमीडिलिक अम्ल) के स्थान पर यूरासिल न्यूक्लिओटाइड यूरिडिलिक अम्ल) होता है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
उ० प्र०

मधुमक्खियाँ

डा० शिव प्रकाश

शहद से सभी लोग परिचित हैं। गुणकारी होने के कारण इसे औषधि के रूप में भी उपयोग में लाया जाता है। पर यह शहद आता कहाँ से है और इसे कौन बनाता है? फलों का रस चूस-चूस कर अपने छत्तों में इकत्रित करके मधुमक्खियां उसमें शहद का निर्माण करती हैं। छेड़े जाने में अपने डंक गड़ा कर यह कष्ट पहुँचाती अवश्य हैं पर कितने परिश्रम से यह शहद बनाती हैं, उसे इकट्ठा करती हैं किन वैज्ञानिक विधियों से इसे साफ़ व सुरक्षित रखती हैं आदि बातें जानने पर हमें पता चलता है कि हमारे उपयोग के लिये यह कितना उपकारी कार्य करती हैं और हम उन्हें कष्ट देकर छत्तों से भगा देते हैं और शहद 'चुरा' लेते हैं।

मधुमक्खियाँ अपने शरीर से निकले हुए मोम से छत्ता बनाती हैं जिसमें छः कोने वाली हज़ारों कोठरियाँ होती हैं। प्रत्येक कोठरी की शक्ल और नाप एक जैसी होती है यह एक अद्भुत कारीगरी है और उत्तम कला का प्रतीक भी। इनमें जाने के लिये रास्ते बने होते हैं। मक्खियाँ फूलों से पराग और शहद लाकर इन कोठरियों में जमा करती हैं। कुछ कोठरियों में उनके अंडे व लार्वा पाये जाते हैं। मधुमक्खियों के मध्यमान निवेश में लगभग 50,000 की आबादी होती है यह आबादी मनुष्य की आबादी से कहीं सघन होती है। इसीलिये कई विनाशकारी कारकों के प्रभाव पड़ने का सदैव डर बना रहता है जिससे वह अपना बचाव भली भाँति करती हैं। वह अपनी कोठरियों में पंखे फड़फड़ा कर ताज़ा हवा अन्दर बराबर लाती रहती हैं जिससे अन्दर का ताप 92°F के आस-पास बना रहता है। सुरक्षित रहने के लिये शहद में पानी का अंश 19% से अधिक नहीं होना चाहिये। फूलों से जो रस आता है उसमें 90% तक पानी होता है। अतएव जितना पानी आवश्यकता से अधिक होता है वह मधुमक्खियों द्वारा छत्तों की कोठरियों में पंख फड़फड़ा कर हवा चलाने के कारण वाष्पित हो जाता है। बैक्टीरिया से शहद को बचाने की अत्यन्त रोचक वैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। एक विशेष प्रकार के एन्ज़ाइम की उपस्थिति में रासायनिक अभिक्रिया द्वारा हाइड्रोजन परॉक्साइड बनता है जो प्रबल आक्सी-कारक होता है और शहद को नष्ट होने से बचाता है।

मधुमक्खिया पराग कोठरियों को पूरा पूरा न भरकर केवल उसके 80% भाग को ही भरती हैं जबकि शहद की कोठरियां पूरी-पूरी भरी रहती हैं। यदि पराग को जाड़े भर बचा कर रखना होता है तो वे ऊपर के भाग में शहद रख कर मोम से सील कर देती हैं। मधुमक्खियाँ भिन्न रंग के पराग को भिन्न कोठरियों में इकत्रित करती हैं और इसका ढंग विस्तृत होता है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री को भी भिन्न-भिन्न कोठरियों में रखा जाता है ताकि कम गुण वाले अच्छे गुणों वालों से मिल न जांय।

हम जानते हैं कि मधुमक्खियाँ तीन प्रकार की होती हैं। रानी मक्खी केवल अंडे देने का काम करती है। यह एक दिन में दो तीन हजार तक अंडे देती है और छत्ते से बाहर कभी नहीं निकलती। नर मक्खियाँ कुछ काम नहीं करतीं। प्रमुख कार्य करने वाली मादा मक्खियाँ होती हैं जिन्हें कमेरी मक्खी कहा जाता है। यहीं मक्खियाँ दूर-दूर तक उड़कर फूलों का रस अपने पेट की थैली में भर कर लाती हैं। हर छत्ते में इनकी संख्या कई हज़ार तक होती है। कहने को तो यह मज़दूर मक्खियां हैं पर जैसे मानव समाज में मज़दूर काम करते हैं और शेष लोग उसका उपभोग करते हैं शहद इकट्ठा करने का भार इन्हीं मक्खियों पर होता है। फूलों का पराग इनके पैरों में

चिपक जाता है जिसे ये अपने पैरों में लगी थैली में जमा कर लेती हैं शहद और पराग छत्ते में जमा करती हैं, पंखों से हवा देकर अधिक्य में जो पानी होता है उसे वाष्पित करा कर शहद गाढ़ा करती हैं और अन्त में अपने शरीर से मोम खुरच कर कोठरी का मुँह सील कर देती हैं। ये मक्खियाँ बड़ी मेहनती, मिल-जुल कर काम करने वाली व कर्तव्य परायण होती हैं। थकने पर मग्न होकर छत्ते के पास भनभना कर नाचती हैं।

इन मक्खियों में भी सामाजिक संगठन होता है। कार्य बँटा होता है और अपना कार्य लगन से करती भी हैं। कोई बच्चों की देखभाल करती हैं। कुछ पहरेदारी करती हैं और कुछ के ज़िम्मे छत्ते की टूट-फूट होने पर उसकी मरम्मत करना होता है। किसी दूसरे छत्ते की रानी मक्खी के मर जाने पर कुछ मक्खियां उस छत्ते पर धावा करके उसमें जमा शहद पर कब्ज़ा कर लेती हैं। ध्यान रहे कि मधुमक्खियों की संख्या हज़ार में हो सकती हैं पर रानी मक्खी एक छत्ते में एक से अधिक नहीं हो सकती! गर्मी के दिनों में मज़दूर मक्खियों का जीवन काल 5 सप्ताह तक होता है। किसी निवेश में एक दिन में 1000 मक्खियों की दर से इनकी मृत्यु होती है लेकिन मृत मक्खियां जिनकी अवस्था अधिक होती है छत्ते के पास न होकर छत्ते से दूर ही पाई जाती हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ है कि छत्ते के आस-पास स्वच्छता रहती है कोई बैक्टीरिया छूत नहीं फैलता साथ ही साथ इस संख्या में मरने वाली मक्खियों को हटाने की भी समस्या नहीं रहती है।

रूस में जार्जिया प्रान्त की मधुमक्खियां संसार प्रसिद्ध हैं इनका बड़ी संख्या में निर्यात किया जाता है। जार्जियाई मधुमक्खी कष्टसह और शांतिप्रिय होती हैं और इनकी एक निवेश समान परिस्थितियों में अन्य मधुमक्खियों की अपेक्षा 10-20 किलोग्राम अधिक शहद इकट्ठा कर सकती हैं। जार्जियाई मधुमक्खी का मुंह बहुत लम्बा होता है जिससे यह गहरे फूलों से मधु रस खींच सकती हैं। सोवियत वैज्ञानिक एक ऐसी जाति का विकास करना चाहते हैं जिसमें जार्जियाई मक्खी के तो सारे गुण हों ही साथ में उसमें लम्बी और सख्त सरदी को सहन करने की, क्षमता हो। इसका नाम 'प्रिओक्सकाया मधुमक्खी' रखा जायगा।

मधुमक्खियों की प्रतिभाओं के अध्ययन में इलेक्ट्रॉनिक और रेडियो प्रविधियाँ काफ़ी सहायता देती हैं। मधुमक्खियाँ भिनभिनाती तो हैं ही। पता चला है कि भिन्न-भिन्न जातियों की मधुमक्खियां भिन्न-भिन्न बोलियों में संचार करती हैं जिसे अपनी जाति की मधुमक्खियां ही समझ सकती हैं। उनके द्वारा प्रसारित ध्वनियों से पालक को यह पता चल सकता है कि निवेश रानी मक्खी को किस प्रकार ग्रहण करेगा या ताप और आर्द्रता में परिवर्तनों का मधुमक्खियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। 'मधुमक्खी भाषा कोश' का संकलन भी आरम्भ कर दिया गया है। इस कोश और एक माइक्रोफोन की सहायता से अनुसंधानकर्त्ता या मधुमक्खी पालक छत्ते को खोले बिना निवेश में होने वाली घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकता है। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी यह प्राप्त हुई है कि जब मधुमक्खी मधुरस लेकर छत्ते में वापस आती है तो वह मोडों, चक्करों और अंग्रेज़ी अंक 8 की आकृतियाँ बनाते हुए नाचती हैं। इससे अन्य मक्खियों को पता चल जाता है कि मधुरस कहाँ मिल सकता है।

मूल्यांकन लेखमाला—३

भारतीय कृषि

डा० शिवगोपाल मिश्र

सरस्वती

वैदिक काल में जल एवं वनस्पति को जीवन का आधार माना जाता था। इस विचार की अभिव्यक्ति के लिए सरस्वती देवी की कल्पना की गई। सरस्वती को जल की अधिष्ठात्री मानकर अन्न, धन, वैभव तथा बुद्धि प्रदान करने वाली कहा गया है।

सरस्वती शब्द की व्युत्पत्ति सरस्वत + ङीप० (वाणी) और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी, से हुई। सरस्वत सरस-मतुप = सजल, जल युक्त, मधुर। सरस्वत का सरस पद सृ = असुव से बना है जिसका अर्थ है सरोवर, तालाब, पानी समूह। तात्पर्य यह कि सर्वप्रथम नदी के रूप में सरस्वती की कल्पना की गई। ऋवेग्द में एक स्थान पर सरस्वती, सरयू तथा सिंधु नदियों से स्वादिष्ट जल माँगा गया। एक स्थल पर सरस्वती को सभी नदियों से श्रेष्ठ एवं पवित्र बताया गया है।

सरस्वती को उसी प्रकार जल और अन्न प्रदान करने वाली कहा गया है जैसे इन्द्र को जल की वर्षा करने वाला देव। स्पष्ट है कि वैदिक काल में सरस्वती की कल्पना जल से ही आरम्भ हुई। ऋग्वेद में सरस्वती और दृषद्वती नदी के तटों पर आर्यों द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित करने का उल्लेख है। उत्तर वैदिक काल में भी सरस्वती के तट पर यज्ञ-हवन होते रहे। इसीलिये यह नदी इतनी पवित्र मानी गई। अथर्ववेद में सरस्वती का सम्बन्ध जल के देव वरुण और वर्षा के देव इन्द्र से जोड़ा गया है।

ऋग्वेद में प्राय: 40 मन्त्रों में 'सरस्वती' का वर्णन आया है जिनमें से 5-6 स्थानों पर इसका प्रयोग नदी के अर्थ में है और शेष में इला, भारती, के रूप में। इन मन्त्रों में सरस्वती को सत्य की प्रेरणा देने वाली, सौभाग्यशालिनी, सम्पत्ति देने वाली तथा सर्वत्र व्याप्त कहा गया है। वाग्देवी का कथन है, "जो प्राण धारण करता है, देखता सुनता है और अन्नभोग करता है वह यह सब कार्य मेरी सहायता से ही करता है। जो मुझे नहीं मानते वे क्षीण हो जाते हैं"

पुराणों में सरस्वती को भारती का पर्याय मान लिया गया। इस प्रकार धीरे-धीरे सरस्वती की कल्पना अन्न तथा जल की देवी से हट कर शुद्ध बुद्धिप्रदायिनी शारदा के रूप में की जाने लगी। वह श्वेतवसना, हंसवाहिनी के रूप में चित्रित की जाने लगी। लेकिन वसन्त के दिन सरस्वती प्रतिमा का नदी में प्रवाह सरस्वती के साथ जल के पूर्व सम्बन्ध को आज भी बताता है।

विष्णु :—

विष्णु की भी कल्पना अनेक रूप में प्राप्त है। सूर्य को ही विष्णु माना गया है जो समस्त विश्व में व्याप्त है। विष्णु ने समस्त विश्व को अपने तीन चरणों से नाप लिया था।

विष्णु का सम्बन्ध गायों से भी बताया जाता है। विष्णु को अपराजेय गोप के रूप में माना गया है—

विष्णुर्गोपा अदाम्य :—ऋग्वेद 1, 22 18 उनके परम पद में बहुश्रृंगी गायें हैं। ये गायें सूर्य की चंचल किरणें हैं।

सूर्य द्वारा प्रदीप्त तपस् से ऋतु उत्पन्न हुई, ऋत का अर्थ है सूर्य से आने वाली अग्नि। ऋतु इसी से बना है। अग्नि की प्रधानता या ह्रास सूर्य के उत्तरायण या दक्षिणात्य होने पर निर्भर करता है। यही चक्र ऋतु है।

[शेष पृष्ठ 13 पर]

स्वाद और उनका वैज्ञानिक आधार

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश आमेटा

रसगुल्ले के मीठेपन से बच्चे, बूढ़े और जवान सभी परिचित हैं। किसी भी विशेष चीज का नाम लेते ही हमें उसका स्वाद स्वतः ही ज्ञात हो जाता है। जहाँ किसी मिठाई की बात सुनते ही लोगों के मुंह में पानी भर आता है, वही कुनैन की गोलियों के नाम मात्र से ही आप अपनी जबान पर कड़वेपन का अनुभव जरुर करने लगे होंगे। विभिन्न स्वादों का पता लगाने के लिए भगवान ने हमें एक विशिष्ट अंग जीभ के रूप में प्रदान किया।

विभिन्न स्वाद :—वैसे तो हमें कई प्रकार के स्वाद प्रतिदिन चखने को मिलते हैं परन्तु प्रमुखतयाः स्वाद चार प्रकार के होते हैं— (1) मीठा (2) कड़वा (3) खट्टा (4) और खारा। कुछ लोगों ने धात्विक और क्षारीय स्वादों को भी प्राथमिक स्वादों में जोड़ दिया है और इस प्रकार कुल छः प्रकार के स्वाद हमें प्राप्त होते हैं। इसके अलावा जितने भी और दूसरे स्वादों को हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं वे इनके मिश्रणों से ही बने हुए हैं। (i) मीठा स्वाद हमे शर्करा, (ग्लूकोज, लेक्टोज, फ्रुक्टोज आदि) सेकरीन, ग्लिसरीन एवं बहु–शर्कराईड द्वारा प्राप्त होता है। इनके अलावा लेड ऐसीटेट और अत्यधिक तनु क्षारीय बिलयन भी मीठा स्वाद देते हैं। (ii) कड़वा स्वाद हमें कुछ एलकेलाईड (Alkaloids) जैसे कि कुनैन, स्ट्रीकनीन इत्यादि के अलावा ग्लाईकोसाईड और पित्त लवणों से भी मिलता है। अकार्बनिक धनायन जैसे Mg^{++}, Ca^{++}, NH_4^+ इत्यादि भी कड़वा स्वाद देते हैं।

(iii) खट्टा स्वाद-प्रमुखतयाः विलयन में हाईड्रोजन आयन की उपस्थिति से होता है। अतः सभी अम्ल खट्टा स्वाद देते हैं, उदाहरणार्थ—H_2SO_4 HNO_3 इत्यादि।

(iv) खारे स्वाद का कारण कुछ अकार्बनिक ऋणायन हैं जैसे Cl^-, Br^-, I^- और SO_4^{--} आदि।

विभिन्न स्वादों के लिए जीभ पर कुछ विशिष्ट स्थान होते हैं जहाँ वे ही स्वाद प्रमुखतयाः चखने को मिलते हैं। मीठा स्वाद जीभ के अग्र भागों की कलिकाओं द्वारा तथा खारा स्वाद उसके थोड़ा पीछे किनारों पर होता है। इसके पीछे खट्टा स्वाद की कलिकाएँ होती हैं और बिल्कुल पीछे से कडुवा स्वाद का अनुभव होता है।

स्वाद कलिकाएँ :—

स्वाद कलिकाएं ही वे सूक्ष्मदर्शीय रचनाएँ हैं जिनके द्वारा हम स्वाद का अनुभव कर पाते हैं। ये कलिकाएँ अंडाकर आकृति की 70 μ लम्बी एवं 50 μ चौड़ी रचनाएँ हैं जो जीभ की ऊपरी सतह पर असंख्य मात्रा में होती हैं। स्वाद कलिकाओं में एक स्वाद कोशिका होती है। उसके अलावा इसमें एक केन्द्रीय व दो परिवीय आधार कोशाएँ भी होती हैं। स्वाद कोशिका के ऊपरी सिरे पर रोम होते हैं जो कि स्वाद ज्ञान में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक स्वाद कलिका के अन्दर की ओर एक स्वाद तन्त्रिका होती है और इस प्रकार की छोटी-छोटी कई स्वाद तन्त्रिकाएँ मिल कर बड़ी स्वाद तन्त्रिका बनाती हैं। ये बड़ी स्वाद तन्त्रिकाएँ ही जीभ पर रखी चीज का स्वाद मस्तिष्क तक ले जाने का कार्य करती हैं। जीभ के अग्र दो-तिहाई भाग से सूचना ले जाने वाली तन्त्रिका का नाम फेसीयल (Facial) और पश्च एक तिहाई से समाचार ले जाने वाली तन्त्रिका का नाम ग्लासोफेरिन्जियल है।

क्रियाविधि :—

जब भी हम किसी वस्तु को जीभ पर रखते हैं तो प्रथम वह मुंह में उत्पन्न लार में घुल जाती है। इस प्रकार बना विलयन स्वाद रोमों को छूता हुआ स्वाद कलिकाओं के पेंदे में उतर जाता है। वहाँ जाकर यह विलयन छोटी-छोटी तन्त्रिकाओं को उद्दीपित करता है, और इस प्रकार यह समाचार बड़ी स्वाद तन्त्रिकाओं में होता हुआ मस्तिष्क में स्थित स्वाद के उच्च केन्द्रों तक पहुँच जाता है। स्वाद के ये उच्च केन्द्र पोस्ट सेन्ट्रल गाईरस (Post Central Gyrus) में स्थित होते हैं। इस प्रकार हम अपनी जीभ पर रखी वस्तु के स्वाद का ज्ञान कर लेते हैं।

सुरेशचन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा
प्राध्यापक, रसायन विभाग पंचम अर्द्धसत्र
से०म०वि० रा० महाविद्यालय र० ना० टै० आयुर्विज्ञान
नाथद्वारा, (राज०) महाविद्यालय-उदयपुर

[पृष्ठ 11 का शेषांश]

वर्ष में छह ऋतुओं का होना सर्व विदित है। ऋतुओं की कल्पना सूर्य अथवा विष्णु से ही समुद्रभूत है।

लक्ष्मी :—

लक्ष्मी की पूजा हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन है। डा० मोतीचन्द्र का अनुमान है कि प्राचीन संसार में मध्य यूरप से लेकर गंगा की घाटी तक लक्ष्मी पूजा होती थी। वग्लोट्ज के अनुसार लक्ष्मी महाजननी है, यह प्रकृति की उर्वराशक्ति की प्रतीक है............यह अपनी अपार उर्वराशक्ति से औषधियों को बढ़ाती है। पश्चिमी एशिया में इसे अनाहिता या ईश्वर कहा गया है।

रोचक बात तो यह है कि यह सबसे बड़ी अनार्य देवी थी। सम्भावना यही है कि प्राचीन काल में इसकी घर-घर पूजा होतो थी। यह निर्वसना देवी उर्वराशक्ति की प्रतीक थी।

कृषि वैज्ञानिक जानते हैं कि भूमि की उर्वराशक्ति का कितना महत्व है। उसी के बूते पेड़-पौधे उगते और बढ़ते हैं उसी से अन्न प्राप्त होता है। अपरोक्ष रूप से मानव मात्र के भरण-पोषण के लिए वही उत्तरदायी है अतः यदि प्रतीक रूप में इसे लक्ष्मी या महालक्ष्मी मान-कर इसकी पूजा की जाती थी तो यह अत्यन्त तार्किक था। कालान्तर में लोग इस प्रतीक को भूल गये।

संक्षेप में हमने कुछ ऐसे प्रतीकों की चर्चा की जिनका सम्बन्ध कृषि मे है और जिनके द्वारा वैदिक कालीन आर्यों की कृषि सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है। कि कोई भी देवी या देवता ऐसे नहीं बना। उसके भूल में जीवनदायी तत्वों की कल्पना रही है। चाहे जल हो, या अग्नि चाहे उर्वराशक्ति हो या अन्न स्वयं आर्यों ने सबों के महत्व को समझ कर उनकी अर्चना-उपासना प्रारम्भ की। एक प्रकार से यह नितात भौतिक दृष्टिकोण था। किन्तु जब उसने वैदिक ऋचाओं या मन्त्रों का रूप धारण कर लिया तो वह अपौरुषेय बना कर सामान्य जनता कि बुद्धि के परे हो गया।

आवश्यकता है कि अपने साहित्य के इन प्रतीकों सम्यक् अध्ययन करके उनके वास्तविक स्वरूप से परिचित हों। [क्रमशः]

पृथ्वी की रासायनिक प्रकृति

कु० अंजली श्रीवास्तव

रसायनशास्त्र में हम द्रव्य के संघठन, उसके गुणों तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं। रसायनज्ञों की जिज्ञासा प्रारम्भ से ही प्रबल रही है कि उसके आस-पास पाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु-कार्बनिक अथवा अकार्बनिक की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ले! द्रव्य के रासायनिक गुणों को इलेक्ट्रॉन, प्रोटान तथा न्युट्रॉन के पदों में समझाया जा सकता है! जब तक ज्ञात तत्वों के परमाणु इन्हीं आधारभूत इकाइयों से मिलकर बनते हैं और परमाणुओं के संयोग से अणु का निर्माण होता है। परमाणु को द्रव्य की इकाई माना जाता है। जीव पदार्थों के अणु तो अत्यन्त जटिल अवस्था में पाये जाते हैं जिनके बारे में अभी पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त भी नहीं हो सका है यद्यपि अथक प्रयास जारी हैं। जीव पदार्थ के अणु-कोशों की विस्तृत जानकारी हो जाने पर हमारी अनेक समस्याओं का निदान हो सकेगा। विश्व की वर्तमान स्थिति किस प्रकार आई यह समझाने के लिये समय-समय पर परिकल्पनाओं को प्रतिपादित किया गया। इन परिकल्पनाओं में वैज्ञानिकों को संशोधन भी करना पड़ा और अब भी पूर्ण रूप से स्वीकृत कर लेने की स्थिति नहीं आई है।

आज की स्थिति जिसमें महाद्वीपों, महासागरों, वायुमण्डल तथा जीव पदार्थों से बनी हुई पृथ्वी को हम देखते हैं किन चरणों में होकर आई है इसकी विवेचना यहां न करके केवल इस दिशा में अपना ध्यान केन्द्रित करना है कि पृथ्वी की रासायनिक संरचना क्या है। एक परिकल्पना के अनुसार जब पृथ्वी ठंडी हुई और स्थाई यौगिक बने तो इतनी ऑक्सिजन और इतना गंधक उपलब्ध नहीं था कि सभी धातुएँ आक्साइड अथवा सल्फाइड में बदल जातीं! लोहा और निकेल यौगिकों की तुलना में उच्च घनत्व होने के कारण पृथ्वी के केन्द्र की ओर चले गये और उनसे पृथ्वी के क्रोड (Core) का निर्माण हुआ। द्रव्य क्रोड के चारों ओर मैगनीशियम तथा लोह के सिलिकेटों का द्रव तल बना जिसे हम आवरण कहते हैं। लोहे के तथा तत्वों के सल्फाइडों की एक अन्य द्रव कला बनी। अन्य सभी तत्व और उनके यौगिक इन्हीं तीन द्रव कलाओं में बिखर गये। इनके बिखरने का कारण उनका घनत्व न होकर या तो लोहा-निकेल गलन, या सिलिकेट गलन या धात्वीय सल्फाइड गलन की ओर उनकी रासायनिक बन्धुता थी।

उदाहरणार्थ, कोबाल्ट, प्लेटिनम और सोना तो क्रोड में पहुँच गये जबकि यूरेनियम और थोरियम पटल के अवयव बने। जब ठंढे होने का क्रम जारी रहा तो लोहा और मैगनीशियम सिलिकेट पहले पदार्थ थे जो ठोस के रूप में आये। एक अन्य परिकल्पना के अनुसार धात्वीय ऑक्साइड व सल्फाइड सबसे पहले ठोस बने। ठंढा होने के क्रम में कहीं से अवरोध अवश्य हुआ जिसके कारण क्रोड में कुछ द्रव बना रह गया और इस बात की पुष्टि भूचाल के सिद्धान्तों से भी होती है।

ठोस बनने की प्रक्रिया में बचे हुए द्रव में से एल्युमीनियम, कैल्शियम, सिलिकन, ऑक्सिजन, पोटैशियम, सोडियम और अन्य तत्वों के यौगिक ठोस रूप में आये। आगे चलकर इन्हीं के द्वारा फेल्डस्पार तथा क्वार्ट्ज जैसे खनिजों का निर्माण हुआ जो गलित द्रव के तल पर इकत्रित हो गये और अन्त में समुचित होकर ग्रेनाइट प्रकार के चट्टानों का निर्माण किया! पटल के ऊपरी 10 मील तक में 95% अग्निज चट्टानें हैं 0·75% बलुआ पत्थर और 4% स्लेटी पत्थर है और 0·25% चूना है। संसार के विभिन्न स्थानों से प्राप्त चट्टानों और खनिजों का

रासायनिक विश्लेषण करके ही यह संघठन निर्धारित किया गया है। सर्वाधिक मात्रा में पाये जाने वाले बारह तत्वों की भार के अनुसार प्रतिशत मात्रा निम्नांकित है।

आक्सिजन	49·5
सिलिकन	25·7
एल्युमीनियम	7·5
लोहा	4·7
कैल्सियम	3·4
सोडियम	2·6
पोटैशियम	2·4
मैग्नीशियम	1·9
हाइड्रोजन	0·9
टाइटेनियम	0·6
क्लोरीन	0·2
फास्फोरस	0·1
	99·5

हीलियम, आर्गन, निआन तथा क्रिप्टन की मात्रा बहुत कम होती है। ऐसा संभव है कि पृथ्वी के प्रारम्भिक इतिहास में इनकी मात्रा अधिक रही हो और जब यह ग्रह पिछले अवस्था में था तो उसके गुरुत्वाकर्षण से बचकर निकल गयी हों। इनकी मात्रा सूर्य में पृथ्वी को अपेक्षा अधिक पाई जाती है। महासागर, समुद्र, झील, नदियाँ, भूमिगत पानी, बर्फ—इन सबको मिलाकर हाइड्रास्फियर बनता है। सागर पृथ्वी के 71% तल को घेरते हैं। इसमें जो पानी उपस्थित है उसका आयतन, घुले हुए पदार्थों को लेकर, 320 लाख घन मील है। महासागरों में अपार खनिज सम्पत्ति भरी पड़ी हैं यदि इसके एक घन मील पानी को वाष्पित किया जाय तो अवशिष्ट का भार 1400 लाख टन होगा। कुछ के भार निम्नांकित हैं।

क्लोरीन	81,000,000 टन
सोडियम	43,000,000 टन
मैग्नीशियम	5,000,000 टन
ब्रोमीन	280,000 टन
आयोडीन	200 टन

पृथ्वी के चारों ओर गैसों का जो आवरण है उसे वायुमण्डल कहते हैं। इसकी ऊपर की ओर की सीमा का पता नहीं है। उत्तर ध्रुवीय प्रकाश का अध्ययन करने पर पता चलता है कि नाइट्रोजन और आक्सीजन 600 मील की ऊँचाई तक उपस्थित है। इस ऊँचाई पर वायुमण्डल अत्यन्त क्षीण हो जाता है और उसमें विद्यमान अणुओं तथा आयनों की कॉस्मिक किरणों तथा सूर्य विकिरणों से टक्कर होती रहती है। लगभग 20 मील को ऊँचाई के बाद दाब अत्यन्त कम (लगभग शून्य) हो जाता है। सबसे नीचे के क्षेत्र को, जिसमें हम रहते हैं, क्षेत्र मंडल कहते हैं और यह 6·5 मील की ऊँचाई तक होता है। बादलों का निर्माण, वायु की गति तथा ताप परिवर्तन इसी क्षेत्र में होते हैं। इसके ऊपर की पर्त को स्थिरतापी मंडल कहते हैं। इसमें वायु या बादल नहीं रहते। इसके नीचे का भाग ठंडा और ऊपर का भाग गरम होता है। आक्सिजन पर परावैंगनी प्रकाश के प्रभाव से ओज़ोन का निर्माण होता है यह ओज़ोन कॉस्मिक किरणों को रोक लेती हैं जिससे हम उसके दुष्परिणामों से बच जाते हैं।

पृथ्वी पर गिरने वाले उल्काओं को दो प्रकार में बाँटा जा सकता है (1) धात्वीय—यह निकेल—आयरन का मिश्रधातु होता है इसका मध्यमान संघठन (कई स्थानों से प्राप्त उल्का) इस प्रकार है: आयरन 90.8%, निकेल 8.6% कोबाल्ट 0.6%। (2) पथरीला लोहा यह 12–50% तक लोहा-निकेल मिश्रधातु होता है शेष भाग में धात्वीय सिलिकेट आक्साइड व सल्फाइड पाये जाते हैं।

जीव पदार्थ से वायोस्फियर बना है। स्थल, ताज़ा पानी तथा समुद्री पानी में जीव पाये जाते हैं। समुद्रों में सबसे ज़्यादा जीव पाये जाते हैं। अगर कार्बनिक पदार्थ व आक्सिजन का विश्लेषण किया जाय तो स्थल पर 62 टन व समुद्रों से 132 टन मिलेगा। स्थल पर में वायु पानी तथा अन्य कारकों के अग्निज चट्टानों पर क्रिया होने से मुद्रा का निर्माण होता है। रासायनिक क्रियाओं के द्वारा सोडियम, पोटैशियम, फास्फोरस, कैल्सियम, मैग्नीशिया के घुलनशील लवण बनते हैं जिनका उपयोग पौधे अपनी वृद्धि के लिये करते हैं। ●●

पारे से सोना-क्या संभव है ?

प्रफुल्ल चन्द्र कोठारी

पारस पत्थर के बारे में हमने अवश्य ही बहुत कुछ सुना एवं पढ़ा है। केवल स्पर्श मात्र से लौह को स्वर्ण में परिवर्तित कर देने वाला यह पत्थर यद्यपि काल्पनिक क्षेत्र को सीमाओं में ही परिसीमित रहा, मानव की उस लिप्सा तथा लालसा का प्रतीक तो अवश्य ही माना जाना चाहिए जिससे प्रेरित होकर वह संसार के लौह के विस्तृत संचयों को सोने में बदल कर अनंत धन राशि का स्वामी बनाना चाहता था और अब भी चाहता है। इसी प्रकार की भावनाओं का पोषण करते हुए मनुष्य ने इस दिशा में अनेक प्रयत्न किए, परंतु वह सदा विफल ही रहा। मनुष्य का वह सुनहला स्वप्न तो कभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ परन्तु हमें वह एक ऐसे युग की याद अवश्य दिलाती है जिसे कीमिया-युग कहते हैं।

लगभग 500 ईसवी से लेकर सोलहवीं-सत्तहरवीं शताब्दी तक कीमियागर लोह, तांबा आदि तुच्छ धातुओं को सोने में परिवर्तित करने के लिए निरंतर जुटे रहे। भौतिक सुखों की भावनाओं से प्रेरित एवं वशीभूत होकर यह अमृत की खोज में भी लगे रहे ताकि मनुष्य अमर होकर भौतिक सुखों का आनंद सदा लेता रहे। प्रचलित भावनाओं के प्रतिकूल होने से एवं इस होड़ में सर्वप्रथम निकलने की प्रबल उत्कण्ठा से इनके प्रयास प्रायः गुप्त रूप से ही चलते रहे। तहखानों की अंधेरी कालकोठ-रियों में अपने आपको बन्द करके ये लोग लुके-छिपे दिन रात अपनी खोज में लगे रहते थे। लेकिन कीमिया कभी भी सफल नहीं हुई। क्या उनकी असफलता उपयुक्त साधनों के अभाव के कारण थी ? यद्यपि यह तो ठीक ही है, कि कीमियागरों के साधन बहुत ही सीमित थे, परन्तु आधु-निक विज्ञान की दृष्टि से (अब तो यह निश्चित रूप से प्रतिपादित किया जा चुका है) सिद्धान्तः कीमियागरों द्वारा अपनाए हुए तरीके गलत थे। कदाचित कीमियागरों को आज के सभी साधन उपलब्ध भी होते तो भी वे अपने मनसूबों को पूरा नहीं कर पाते क्योंकि जो मार्ग उन्होंने अपनाये वे आधुनिक वैज्ञानिक धारणाओं की दृष्टि से सर्वथा अनुचित थे—फिर उनको सफलता प्राप्त होती भी कैसे ? कीमियागर विफल रहे, क्योंकि उन्हें विफल होना ही था।

कोई पूछे कि कीमियागरों ने कौन सा मार्ग अपनाया और सिद्धान्तः वह ठीक क्यों नहीं था ? उसमें किस बात का अभाव था ? कीमियागरों ने विविध रासायनिक क्रियाओं का उपयोग किया। विभिन्न प्रकार के रासाय-निक पदार्थों की परस्पर में नाना प्रकार की क्रियाओं से वे तुच्छ धातुओं को उत्कृष्ट धातुओं में बदलना चाहते थे। अपनाया हुआ यह मार्ग उनका ठीक नहीं था। इस तथ्य को समझने के लिए हम संक्षेप में परमाण्वीय रचना पर विचार करें। लार्ड रदरफोर्ड द्वारा प्रतिपादित परमाण्वीय प्रतिरूप के अनुसार परमाणु की रचना बहुत कुछ सौरमण्डल के समान है। परमाणु को कदाचित हम सौरमण्डल का एक अति सूक्ष्म प्रतीक मान सकते है। सौरमण्डल के सदृश परमाणु को स्थूल दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं :

(1) **केंद्रीय भाग**—इसको परमाणु की नाभि कहते हैं। नाभि की रचना दो प्रकार के कणों के योग से होती है। ये दो प्रकार के कण हैं–प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन। द्रव्यमान में ये दोनों ही कण लगभग बराबर होते हैं, परन्तु जहाँ प्रोटॉन धन आवेशित होता है, न्यूट्रॉन पर किसी प्रकार का आवेश नहीं होता, अर्थात् न्यूट्रॉन एक उदासीन कण है। किसी भी परमाणु का लगभग समूचा द्रव्यमान उसकी नाभि में ही समाविष्ट होता है।

(2) **वाह्य भाग**—परमाणु की नाभि के चहुँ ओर एक अन्य प्रकार के कण आवेशित ऋण, अर्थात् इलेक्ट्रॉन विभिन्न कक्षाओं में ठीक उसी प्रकार से निरन्तर परि-क्रमण करते रहते हैं–बिना ऊर्जा के विकीरण के–जिस प्रकार ग्रह सूर्य के चक्कर लगाते हैं। यद्यपि एक इलेक्ट्रॉन

का द्रव्यमान प्रोटॉन के द्रव्यमान का लगभग दो हजारवाँ अंश है, उसका ऋण आवेश, प्रोटॉन के घन आवेश के तुल्य होता है। विभिन्न कक्षाओं में परिक्रमण करने वाले इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या सामान्य अवस्था में उस परमाणु की नाभि में विद्यमान प्रोटॉन की संख्या के बराबर होती है—फलतः परमाणु आवेश की दृष्टि से उदासीन है।

किसी भी तत्व के रासायनिक गुण उस तत्व के परमाणु की नाभि में विद्यमान प्रोटॉन की संख्या पर (न्यूट्रॉन की संख्या पर नहीं) ही निर्भर करते हैं। यह एक बड़े ही महत्वपूर्ण तथ्य की बात है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए हम एक सरल उदाहरण पर विचार करते है। भारी पानी के बारे में हमने सुन रखा है। इसका उपयोग मुख्यतः विशेष प्रकाय की परमाण्वीय विस्तृतपैमाने पर आजकल किया जाता है—हमारा भट्ठियों में अभिप्राय भारी पानी से किंचितमात्र भी कठोर पानी से नहीं है, जिसकी कठोरता कतिपय लवणों के घुलन से उत्पन्न होती है। भारी पानी का अणु भी सामान्य पानी के अणु के समान, हाइड्रोजन के दो परमाणु तथा आक्सीजन के एक परमाणु के योग से प्राप्त होता है, परन्तु ये हाइड्रोजन के परमाणु सामान्य हाइड्रोजन के परमाणुओं से भारी होते हैं। इसलिए इनको भारी हाइड्रोजन के परमाणु कहते हैं। भारी हाइड्रोजन के परमाणु की नाभि में प्रोटॉन तो एक ही होता है किन्तु उसके साथ एक न्यूटॉन भी होता है। सामान्य हाइड्रोजन के परमाणु की नाभि केवल एक प्रोटॉन से बनी होती है। न्यूट्रॉन की संख्या समान नहीं होते हुए भी प्रोटॉन की संख्या बराबर होने से भारी तथा सामान्य हाइड्रोजन के परमाणुओं में रासायनिक गुण तो समरूप ही होते हैं। ऐसे परमाणुओं को, जिसमें प्रोटॉन की संख्या तो वही हो किन्तु न्यूट्रॉन की संख्या भिन्न हो, तत्व विशेष के समस्थानिक परमाणु कहते हैं। समस्थानिक परमाणुओं में रासायनिक गुण समान होते हैं। यूरेनियम-238 तथा यूरेनियम-235 समस्थानिक है। इन दोनों ही प्रकार के परमाणुओं में प्रोटॉन की संख्या 92 होती है, अतः रासायनिक गुण उनके समान होते हैं।

यदि किसी विधि से परमाणु की नाभि में प्रोटॉन की संख्या को बदल दे तो फिर उसके रासायनिक गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है अर्थात् वह परमाणु एक अन्य तत्व का परमाणु बन जाता है। इस प्रक्रम को तत्वांतरण कहते हैं।

तत्वांतरण किसी भी रासायनिक अभिक्रिया से संभव नहीं हो सकता चाहे वह क्रिया कितनी प्रखर क्यों न हो। भयंकर से भयंकर रासायनिक विस्फोट पदार्थों के विस्फोट के दौरान भी तत्वांतरण नहीं होता है। कारण यह है कि किसी भी रासायनिक क्रिया में परमाण्वीय नाभियाँ सुरक्षित रहती हैं, उनकी रचना में कोई परिवर्तन नहीं होता—रासायनिक क्रियाएं तो नाभि के चहुँ ओर परिक्रमा लगाने वाले इलेक्ट्रॉन तक ही सीमित रहती हैं। रासायनिक क्रियाओं में उत्पन्न ऊर्जा कक्षीय इलेक्ट्रॉनों के पारस्परीय आदान-प्रदान तथा पुनर्वितरण का ही परिणाम है। अतः स्पष्ट है कि कीमियागरों द्वारा अपनाए गए तरीके सिद्धान्तः ठीक नहीं थे, क्योंकि वे रासायनिक साधनों से पारे को सोने में तत्वांतरित करना चाहते थे, और यह, जैसा कि हम जानते है, असंभव था।

यदि हम किसी भी तत्व की परमाण्वीय नामि में विद्यमान प्रोटॉन की संख्या में हेर-फेर रासायनिक विधियों से नहीं कर सकते तो क्या भौतिक तरीकों से यह संभव है? इस प्रश्न का उत्तर देने में सर्व प्रथम लार्ड रूदरफोर्ड सफल हुए। उन्होंने भौतिक क्रियाओं से ही सर्व प्रथम नाइट्रोजन का आक्सीजन में तत्वान्तरण किया। उन्होंने एक विचित्र ढंग अपनाया। रेडियम तत्व के परमाण्वीय नाभियों के स्वतः विघटन से बड़े वेग के साथ एल्फा-कण निकलते हैं। वास्तव में एल्फा-कण हीलियम गैस के परमाणु की नाभि है। इस प्रकार एल्फा-कणों की टक्कर से नाइट्रोजन के परमाणुओं की नाभि में प्रोटॉन की संख्या 7 से 8 हो गई अर्थात् वह नाभि आक्सीजन परमाणु की नाभि बन गई। यह तत्वान्तरण के क्षेत्र में मानव की प्रथम विजय थी। एल्फा कण के स्थान पर टक्करों के लिए प्रोटॉन तथा अन्य कणों का भी उपयोग किया गया। परन्तु एल्फा-कण, प्रोटॉन आदि घन आवेशित होने के कारण इस कार्य में वे अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सके। जब

घन आवेशित कण, टक्कर के हेतु घन आवेशित नाभि के निकट पहुँचता है तो समान आवेशों में प्रति-विकर्षण के कारण टक्कर में बाधा का होना स्वाभाविक है।

न्यूट्रॉन एक उदासीन कण है। यह सोचा गया कि यदि तत्वांतरण के क्षेत्र में न्यूट्रॉन का उपयोग किया जाए तो कदाचित उदासीन होने के कारण घन नाभि से वे कोई प्रतिकर्षण बल अनुभव नहीं करेंगे। फलतः टक्कर करने में वे विशेष रूप से प्रभावशाली होंगे। वास्तव में न्यूट्रॉन तत्वांतरण के लिए बहुत ही क्रान्तिकारी सिद्ध हुए। न्यूट्रॉन द्वारा तत्वांतरण का एक सुन्दर उदाहरण का उल्लेख यथोचित होगा। तक न्यूट्रॉन की टक्कर, नाइट्रोजन गैस के परमाणु से होने पर, नाइट्रोजन परमाणु की नाभि, कार्बन परमाणु की नाभि में, परिवर्तित हो जाती है—अर्थात् नाइट्रोजन तत्व का कार्बन में तत्वांतरण हो जाता है। इस प्रकार प्राप्त कार्बन सामान्य कार्बन का समस्थानिक है। कार्बन का यह समस्थानिक विघटनशील है तथा इसकी अर्द्ध-आयु 5000 वर्ष है। पुराने पेड़ों अथवा मृत प्राणियों के नमूनों में विद्यमान कार्बन के इस समस्थानिक की मात्रा का पता लगाने से नमूने विशेष की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन फ़ासिल आदि की आयु के अंकन में इस विधि का प्रयोग बड़ा ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

आजकल तो परमाणु-भट्टियाँ तत्वांतरण का एक बहुत ही चमत्कारी साधन हैं। जैसा कि हम जानते है इन भट्टियों में भयंकर मात्रा में न्यूट्रॉन प्राप्त होते हैं जिनसे तत्वों का तत्वान्तरण बड़ी तेजी से होता है। परमाणु भट्टियों से तत्वान्तरण के क्षेत्र में एक नवीन युग का श्रीगणेश हुआ है।

यह ठीक है कि अब किसी भी तत्व का अन्य तत्व में परिवर्तन करने में सैद्धान्तिक दृष्टि से तो कोई प्रतिबन्ध एवं अड़चन नहीं है। कीमियागरों से सुनहले स्वप्न अब सिद्धांतः संभव हैं। पारे को सोने में परिवर्तित करना वास्तविकता के क्षैतिज के ऊपर एक चमकीली बिन्दु के समान है। परन्तु क्षैतिज अभी बहुत दूर है और उस तक पहुँचने में व्यवहारिक कठिनाइयाँ अनेक हैं। जिस प्रकार यद्यपि सिद्धांतः चन्द्रयात्रा गैलीलियों एवं न्यूटन के गति नियमों के अनुसार आज से सैकड़ों वर्ष पहले ही संभव थी परन्तु इसको साक्षात करने के लिए मानव को सैकड़ों वर्ष लग गए और वह भी कितने परिश्रम, प्रयास तथा विफलताओं के पश्चात। पारे को सोने में रूपान्तरित करना आज भी व्यवहारिक दृष्टि से एक महान दुष्कर कार्य है, जो कब पूरा होगा कहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। जहाँ तक पारस पत्थर की बात है, निश्चित् रूप से इस सम्बन्ध में कहना तो खतरे से खाली नहीं है फिर भी सम्भवत्, पारस पत्थर से अभिप्राय हमारे बुद्धिमान पूर्वजों की, तत्वांतरण की किसी युक्ति से हो। यदि इस प्रकार की किसी युक्ति का उनको थोड़ा बहुत भी अनुभव रहा हो जिसके आधार पर उन्होंने इस विचित्र पत्थर की कल्पना की, तो अवश्य ही वे तत्वान्तरण के मूल सिद्धान्तों से किसी भी रूप में परिचित रहें होंगे।

[प्रफुल्ल चन्द्र कोठारी, दिल्ली विश्वविद्यालय]

अब तो घी तथा मक्खन भी भोजन में हानिकारक हैं

डा० अरुण कुमार सक्सेना

विदेशी चिकित्सकों तथा वैज्ञानिकों के मारे नाक में दम है। इन लोगों ने तो मानव जीवन दूभर बना दिया है यह कह-कह कर कि यह खाओ, यह न खाओ। अजी खायें तो क्या खायें? हवा! जी वह भी नहीं क्योंकि यह भी दूषित है। कुछ समझ में नहीं आ रहा है तिस पर एक तुर्रा यह है कि जानवरों से प्राप्त होने वाली वसा अर्थात् घी तथा मक्खन भी कम से कम खायें।

द्वापर में बालक कृष्ण ने न जाने कितना मक्खन खाया था वे कितने बलिष्ठ थे, तो फिर क्यों न हम भी घी मक्खन खाकर स्वस्थ बनें।

वैज्ञानिकों द्वारा यह बड़ा ही विचित्र प्रश्न सामने आया है कि वसा मनुष्य को हानि पहुँचाती है। बुजुर्ग तो कहते हैं कि शुद्ध मक्खन तथा घी हृदय, मस्तिष्क, शरीर तथा आँखों को शक्ति देता है। यह औषध-विज्ञान का विवाद दैनिक जीवन में बिघ्न डाल रहा है। ये लोग प्रयोग करते हैं चूहों के साथ और मनुष्यों पर उसे लागू कर देते हैं।

1913 ई० में एक रूसी वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह मत प्रकट किया था कि जानवरों से प्राप्त वसा अर्थात् कोलस्टेराल खाने से धमनियाँ कड़ी हो जाती हैं जिससे रुधिर के प्रवाह में रुकावट आने लगती है और हृदय-गति का रोग हो जाता है। उन्होंने यह प्रयोग खरगोशों पर किया था जिनके भोजन में जानवरों से प्राप्त वसा तथा कोलस्टेराल की अधिक मात्रा थी।

यह कोलस्टेराल एक सफेद रंग का रासायनिक पदार्थ है इसका निर्माण मानव-शरीर के यकृत में होता है। वास्तव में यह मोम के समान पदार्थ है। यह मुख्यतः वसा से ही प्राप्त होता है। दैनिक जीवन के भोजन में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इस वसा के स्रोत भी अनेक हैं तथा वसा भी अनेक प्रकार की होती हैं।

1—संतृप्त वसा।

2—असंतृप्त वसा।

(i) बहु असंतृप्त वसा।

(ii) मोनो असंतृप्त वसा।

संतृप्त वसा जानवरों से प्राप्त घी, दूध तथा मक्खन में पाई जाती है। वह असंतृप्त वसा का स्रोत स्टाफ फ्लावर का तेल है तथा मोनो असंतृप्त वसा के स्रोत बीज के तेल हैं जैसे जैतून का तेल आदि। संतृप्त वसा साधारण ताप पर ठोस होती है तथा असंतृप्त वसाएँ साधारण ताप पर द्रव होती हैं। इन वसाओं में कोलस्टेराल के साथ-साथ एक और रासायनिक पदार्थ होता है जिसे ट्राईग्लिसराइड के नाम से पुकारा जाता है। प्रयोगों के आधारों से यह ज्ञात हुआ है कि धमनियों की भीतरी सतहों पर जमने तथा उन्हें कड़ा करने वाला पदार्थ वास्तव में ट्राईगिलसराइड है। ट्राईगिलसराइड का मुख्य स्रोत कोलस्टेराल ही है।

अमरीका में नेशनल हार्ट खंड लंब इंस्टिट्यूट है जिसे अमरीका सरकार ने राज्यकीय कोष से 1·4 विलियन डालर की धनराशि इस ओर तीन वर्ष तक शोध-कार्यों आदि के लिये अनुदान के रूप में दी है।

न्यूयार्क चिकित्सालय कोनेल मेडिकल सेंटर के हृदय गति रोग के विशेषज्ञ डा० स्टेफेन शिसिट का मत है कि एथिलोरिसिस ही इस रोग का मुख्य कारण है। यह एथिलोरिसिस छोटे बच्चों का रोग है। शोध-कार्यों से

यह ज्ञात हुआ है कि एथिलोरिसिस वह क्रिया है जिसको मोतियों के समान सिलेटी रंग के वसा के सूक्ष्म कण तथा रेशेदार ऊतक शनैः-शनैः धमनियों की दीवारों पर जमा होने लगते हैं। विशेष अध्ययन तथा शोधकार्यों के आधार पर इस बात की पुष्टि हुई है कि यह क्रिया तीन वर्ष की आयु के बच्चों में होना प्रारंभ हो जाती है। यह वसा पीले रंग की लकीर के रूप में बच्चों की महाधमनी में पाई गई है। बच्चे जब दस वर्ष की आयु के हो जाते हैं तो हृद धमनियों में भी इसकी उपस्थिति पाई गई है। इस आयु में किसी प्रकार भी वसा हानिकारक सिद्ध नहीं हुई है किन्तु यह वास्तव में वसा की नींव मानी गई है जिसके कारण आगे चल कर रक्त को हृदय तथा मस्तिष्क के प्रवाहित होने में अड़ंगा डालती है। यह रुकावट अंत में हृदय गति नामक भयानक रोग का रूप धारण कर लेती है। हृदय गति के रोग में रोगियों का रक्तचाप अधिक हो जाता है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह बढ़ा रक्तचाप इस बात का प्रयत्न करता है कि रक्त में तैरता हुआ अधिक कोलस्टेराल धमनियों की सतह पर शीघ्र जम जाये। अधिक रक्तचाप होने पर हृदय गति का दौरा पड़ने का भय हो जाता है। प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार इसे घटाया जाय तथा कोलस्टेराल को धमनियों में जमने न दिया जाय?

रक्तचाप को कम करने के लिए वाशिंगटन स्थित वाशिंगटन वी० ए० चिकित्सालय के डा० एडवर्ड डब्ल्यु० फ्रिईस ने विशेष औषधियों का प्रयोग किया है इनसे रक्तचाप को कम करने में सहायता मिली है। इन औषधियों का नाम रिसरपाईन तथा हाईड्रोक्लोरो थाई जाईड है। उन्होंने इनका प्रयोग उच्च रक्तचाप से पीड़ित रोगियों पर किया था और उन्हें उसे कम करने में आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई।

अब प्रश्न यह आता है कि किस प्रकार कोलस्टेराल को धममियों में जमने से रोका जाए? इसका सीधा तथा सरल उपाय यही है कि भोजन में वसा की मात्रा घटाई जाए। वसा के स्थान पर और ऐसे प्रकार के पदार्थ लिए जाएँ जो इसकी भी पूर्ति करें तथा वसा भी अधिक न दें। कोलस्टेराल को रक्त में 200 मिग्रा० प्रतिघन से०मी० से कम होना चाहिए। संतृप्त वसा तथा अंडे के पीले भाग में कोलस्टेराल की मात्रा अधिक होती है। केवल एक अंडे के पीले भाग में 230 मि०ग्रा० कोलस्टेराल होता है। अर्थात् अंडा तो सात दिन में एक बार लेना भी हानिकारक है। भारत में तो मनुष्य अंडों पर औंध पड़े हैं कोई-कोई तो छै अंडे प्रतिदिन डकार जाते हैं और समझते हैं कि वे बहुत ही स्वस्थ हो रहे हैं—वास्तव में वे अपने लिए शीघ्रता से कब्र खोद रहे हैं।

इस दिशा में लास एजेंल्स के वेडसवर्थ बी० ए० चिकित्सालय में 846 मनुष्यों पर शोध रहा है ये मनुष्य 54 से 88 वर्ष की आयु के बीच के हैं। इनमें आधों को अधिक वसा, जैसा कि अमरीका के नागरिक प्रतिदिन लेते हैं, वाला प्रधान भोजन है तथा शेष आधों को कम वसा वाला भोजन दिया जा रहा है। जिन्हें कम वसा वाला भोजन दिया जा रहा है। उनकी धमनियों में कोलस्टेराल तो कम पाया गया है किन्तु कैंसर रोग के होने की सम्भावना अधिक है। इस बात का अभी पता लगाना शेष है कि कैंसर क्यों हो जाता है।

शिकागो कोरोगरी प्रेवेन्शन एवोल्यूएशन प्रोग्राम के डायेक्टर डा० जेरेमियाह स्टैमलेर का मत है कि जिस प्रकार शहरों की विशेष सफाई कर टी० बी० ऐसे रोग पर काबू पा लिया गया है उसी प्रकार प्रतिदिन की भोजन की आदतों में भी शनैः-शनैः परिवर्तन करके इस रोग पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय जनता प्रश्न करती है कि भारतीय वैज्ञानिकों तथा चिकित्सकों का इस ओर क्या योगदान है? उत्तर होगा कुछ भी नहीं। चिकित्सक अपनी रोकड़ कमाने में लगे हैं। युवक वैज्ञानिक भारत में परेशान हैं उन्हें कहीं नौकरी नहीं मिल रही, वे शोध कहाँ से करें। लेकिन जनता आगाह तो हो ही सकती है। यही कारण है कि भारत में कैंसर भी हृदय गति रोग के साथ-साथ विकराल रूप धारण कर रहा है।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
एम० एस-सी०, डी० फिल०, डी० एस-सी०
15 कटरा रोड, इलाहाबाद—2

विज्ञान वार्ता

जीव रक्षक औषधि का अन्तरिक्ष में उत्पादन

अमरीकन वैज्ञानिक डा० एलेक्जेंडर कोलीन ने यह दावा किया है कि (रक्त का धब्बा बन जाने से फेफड़ों में रक्त-प्रवाह में अवरोध) के उपचार के लिये जीव रक्षक ऐंजाइम का पृथ्वी की अपेक्षा अन्तरिक्ष में प्रभावी ढंग से उत्पादन किया जा सकता है। अभी यह ऐंज़ाइम-यूरोकिन्स-एक व्यक्ति के उपचार में रु० 7500 में आती है। पुरुष के मूत्र के 1500 क्वार्ट्स से एक बड़े परिश्रम से एक खूराक़ दवा बन पाती है। कक्षा में भाररहित अवस्था में रहकर यह दवा काफी सस्ती बनाई जा सकती है। उन्होंने जो मशीन बनाई है उसे मानवयुक्त यान में लगानी पड़ेगी। यह मशीन गतिशील विद्युत क्षेत्र में विभिन्न सघनता के कोशों को विभिन्न वेग से अभिगमन करा के वृक्क के 19 अक्रिय कोशों में से 1 सक्रिय कोश को प्रथक किया जायगा। तत्पश्चात उसे कांच की शीशी में रखकर जमी हुई अवस्था में पृथ्वी पर लाया जायगा। 1975 में अमरीका और रूस के सम्मिलित अभियान में डा० कोलीन अपने प्रयोग की पुष्टि करना चाहते हैं।

भूकम्प की रोकथाम

अमेरिकी भूतत्व सर्वेक्षण विभाग के वैज्ञानिकों ने बताया है कि पृथ्वी के गर्भ में जल के अन्तःक्षेप—इन्जेक्शन—द्वारा विशाल भूकम्पों पर नियन्त्रण ही नहीं स्थापित किया जा सकता वरन् उन्हें समाप्त भी किया जा सकता है।

कोलारडो में किये गये परीक्षण के समय अन्वेषक भूगर्भ में काफी नीचे जल के इन्जेक्शन द्वारा बहुत हल्की किस्म की भूकम्पों की संख्या में वृद्धि कर सकने में सफल हो सके हैं। उग्रता से जल को खींच लेने पर इन भूकम्पों की उग्रता में काफी कमी आ गई। वैज्ञानिकों का कथन है कि हल्की किस्म के भूकम्प लाकर बड़े भूकम्प रोके जा सकते हैं।

अनुसन्धानकर्त्ताओं के अनुसार दरार वाली चट्टानों से युक्त ऐसे क्षेत्र में जहाँ भूकम्प आने की सबसे अधिक संभावना रहती है जल को इन्जेक्शन देने पर चट्टानों में स्निग्धता आ जाती है जिससे चट्टानें आसानी से इधर-उधर खिसक सकती हैं। चट्टानों का यह खिसकाव ही चाहे चट्टानों में पानी हो या न हो—भूकम्प का कारण होना है। चट्टानों के मामूली खिसकाव के कारण भूमि के अन्दर का तनाव समाप्त हो जाता है और पृथ्वी की ऊपरी सतह को किसी बड़े भूकम्प का शिकार नहीं होना पड़ता। यदि यही तनाव लम्बे समय तक रहे तो भारी एवं विनाशकारी भूकम्प आ सकता है।

नमक में लोहा

मद्रास की एक नमक फैक्टरी में पिछले 25 वर्षों से मैनेजर के पद पर कार्य करने वाले श्री एम. एम. गुरु नाथ ने सामान्य नमक में लोहा मिलाने की विधि विकसित की है। पाँच वर्षों के अनुसन्धान के फलस्वरूप सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ के काम में आने वाला यह तत्व नमक भारत और संसार के करोड़ों लोगों को पोषण प्रदान करेगा। निकट भविष्य में समुद्र के किनारे स्थित नमक के क्षेत्रों में विशेष प्रकार के यंत्रों की स्थापना की जायगी जहाँ लोह मुक्त नमक का उत्पादन होगा।

इसके पूर्व नमक में लोहा मिलाने की दिशा में जो भी प्रयास हुए उनके अन्तर्गत फास्फेट जैसे अघुलनशील लोह नमकों का प्रयोग किया गया। खोज से यह पाया गया कि मानव शरीर ऐसे नमक को स्वीकार नहीं करता। अतः गुरुनाथ और उनके सहयोगियों ने आयरन सल्फेट जैसे घुलनशील लोह नमक का प्रयोग करने की ओर ध्यान दिया। परन्तु इस प्रकार प्राप्त नमक रंगीन था और उसे लोग सन्देहास्पद समझ सकते थे और हो सकता है उसका उपयोग न करते तत्पश्चात् कई महीने के प्रयत्नों के बाद यह रंग दूर करने में उन्हें सफलता मिली। अब एक ऐसा सूत्र तैयार हो चुका है। जिससे

न तो नमक के रूप में और न ही उसके स्वाद में किसी प्रकार का अन्तर आता है। नमक में मिश्रित किये जाने वाले ये सभी रासायनिक तत्व खाने योग्य और हानि-रहित हैं।

रक्तहीनता से या लोहे की कमी का रोग अधिकांशत: सभी राष्ट्रों के लोगों में पाया जाता है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थ द्वारा इस कमी को दूर करने का एक उपाय हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो गया है।

बिनौले से प्रोटीन

कपास का पौधा जो मनुष्य का तन ढंकने के लिये प्रयुक्त होता है अब संभव है निकट भविष्य में उसे आहार भी प्रदान करने लगे। अमेरिका के दो वैज्ञानिकों डा० श्रीमती मार्गरेट हार्डेन तथा श्री एस० पी० यङ्ग ने विनौले के आटे से अत्यन्त पोषक पदार्थ तैयार किये हैं। ये दोनों वैज्ञानिक रेक्सास टेक्नालॉजिकल यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध हैं। इन दोनों वैज्ञानिकों ने इन खाद्य पदार्थों को अपने अनुसन्धान के दौरान विकसित किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में खोज की कि विनौले के आटे से तैयार खाद्य पदार्थ उपभोक्ताओं में कितने लोकप्रिय हो सकते हैं। उन्होंने गेहूँ के आटे में 18% बिनौले का शोधित आटा मिलाकर परम्परागत रोटी के स्वाद को बदल दिया। इस प्रकर तैयार रोटी में प्रोटीन का अंश 25% होता है।

श्रीमती हार्डेन का कहना है कि बिनौले से तैयार पदार्थों की एक मुख्य विशेषता है कि उनमें 71% प्रोटीन होती है जबकि गेहूँ के आटे में प्रोटीन की मात्रा 10—14% होती है। उन्होंने कहा कि प्रोटीन बहुतय खाद्य पदार्थ विश्व के उन क्षेत्रों के लिये अत्यन्त संभावना पूर्ण सिद्ध हो सकते हैं जहाँ बहुत बड़े क्षेत्र में कपास की खेती होती है किन्तु लोगों को पोषक आहार प्राप्त नहीं होता।

ध्वनि : रोगों के निदान में भी

ध्वनियां कई प्रकार की होती हैं। मधुर, कर्णप्रिय गुंजन से लेकर कानों के पर्दे फाड़ डालने वाले धमाके तक। प्रिय संगीत जहां लोगों की कार्यक्षमता बढ़ा देता हैं वहां कर्णकटु शोर न केवल कार्य में बाधा पहुँचाता हैं वरन् मनुष्य को बहरा तक कर देता है। इसके अतिरिक्त ऐसी भी ध्वनियां होती हैं जो हमें सुनाई नहीं देतीं। भौतिक-शस्त्रियों के अनुसार उनकी आवृति बहुत अधिक होती है। ऐसी ध्वनि को पराश्रव्य कहते हैं। यह ध्वनि हमें सुनाई नहीं देती पर बहुत उपयोगी, विशेषरूप से आद्योगिक नाजुक यन्त्रों की सफाई के लिए तो पराश्रव्य ध्वनि अद्वितीय साधन है। इससे सफाई भी अच्छी हो जाती हैं और यन्त्रों को हानि भी नहीं पहुँचती। भूगर्भ और समुद्र की तलों की जानकारी प्राप्त करने से लेकर समुद्र में मछलियों के झुण्ड की सही स्थिति ज्ञात करने तक में भी पराश्रव्य ध्वनि तरंगों का उपयोग किया जाता है।

अब इन तरंगों को रोगों के निदान में भी प्रयुक्त किया जाने लगा है। इस प्रकार का उपयोग सर्वप्रथय स्वीडन के तंत्रिकाशल्य चिकित्सक, लेकसैल, ने किया था। उन्होंने ध्वनि तरंगों को मनुष्य के सिर में, एक कनपटी से दूसरी कनपटी तक, प्रवाहित किया था।

जब खोपड़ीमें से ध्वनि तरंगों के मार्ग को ग्राफ पर वक्र के रूप में अंकित किया है तब वक्र के दोनों सिरों पर दो बहुत ऊंचे शीर्ष और मध्य में एक अपेक्षाकृत कम ऊंचा शीर्ष पाया गया। सिरों शीर्ष कनपटी की हड्डियों को और मध्य का शीर्ष मस्तिष्क को दो एकदम बराबर भाग में बाँटने वाले दृढ़तानिका (पंकिमेनिक्स) खण्ड के 'फाल्क्स सेरेब्री' क्षेत्र को दर्शाता है। उक्त वक्र स्वस्थ मस्तिष्क में से ध्वनि तरंगों के मार्ग का चित्र था।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से कागज के सस्ते मकान—भारत में

विदेशों में प्लास्टिक निर्मित मकानों की चर्चा के साथ-साथ कागज के मकानों की चर्चा प्रारम्भ हो गयी हैं। परंतु कागज के मकानों से संबद्ध यह अनुसन्धान विदेशों में नहीं वरन् भारत में किया गया है और इसका श्रेय क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहाट के वैज्ञानिकों को दिया जा सकता है।

भारत की 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या मिट्टी, बांस और घास-पात से निर्मित ऐसे कच्चे मकानों

ग्रौर झोपड़ियों में रहता है, जो ग्रसुरक्षित ग्रौर ग्रस्वास्थ्यकर भी हैं। इसके ग्रतिरिक्त बाढ़, भूकम्प ग्रौर प्राकृतिक कोप के कारण बेघर व्यक्तियों के लिए ग्रस्थायी आवास प्रदान करना वृहत समस्या है ग्रौर ग्रंधाधुंध व्यय होता है। सेना के ग्रावानों के लिए भी ग्रस्थायी ग्रावास नितान्त ग्रावश्यक है। ग्रतः पूर्वनिर्मित ग्रल्पमल्य वाले ऐसे मकानों की तत्काल ग्रावश्यकता है जिन्हें सरलता से चुटकियों में लगाया जा सकें।

क्षेत्रीय ग्रनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहाट के वैज्ञानिकों ने इस उद्देश्य हेतु स्वदेशी सामग्री से कागज के मकान बनाने का डिजाइन विकसित किया है। इन मकानों के निर्माण में कागज की ऐसी नालीदार या सपाट चादरें प्रयुक्त की जाती हैं जो ग्रग्नि ग्रौर जलरोधी हैं। चादर व्यर्थ कागज, बांस, लुगदी ग्रौर कुछ रसायनों द्वारा सरलता से तैयार किया जा सकता है।

कागज के मकानों के लिए नींव की ग्रावश्यकता नहीं है पर ग्रगर सपाट चादरें प्रयुक्त की जाती हैं तो बाँस लकड़ी या लोहे की कोणीय संरचनाग्रों की ग्रावश्यकता होती है।

व्यापारिक उपक्रम हेतु इन मकानों को लोकप्रिय बनाने की ग्रावश्यकता है परन्तु एक बार लोकप्रिय होने पर इनकी ग्रसीमित मांग होगी।

ग्रावश्यक मशीनरी देश में उपलब्ध है। 5 टन क्षमता वाले संयंत्र की स्थापना में 4·5 लाख रु० की लागत का ग्रनुमान है। ऐसे मकानों के उत्पादन में ग्रनुमानतः तीन से चार रु० की प्रति वर्ग-फुट का व्यय ग्राता हैं।

स्काईलैब की दूसरी टोली का प्रस्थान

एलन बीन, डा० ग्रोवेन गेरियट तथा जैक लूस्मा सहित ग्रन्तरिक्ष यान 27 जुलाई को केप केनेडी से प्रक्षिप्त किया गया जो स्काईलैब से पूर्व निश्चित समय पर जुड़ गया। स्काईलैब में रहकर प्रयोग करने वाली यह दूसरी टोली 59 दिन तक ग्रन्तरिक्ष में रहेगी और सूर्य, तारों, पृथ्वी तथा मनुष्य से सम्बन्धित ग्रध्ययन करेगी। कुछ घण्टों के बाद ही यह सूचना मिली कि ग्रन्तरिक्ष यात्रियों में 'ग्रन्तरिक्ष रोग' के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। दो महीने के इस रेकार्ड उड़ान में इस बात का विशेष ग्रध्ययन किया जाना है कि लम्बी ग्रवधि तक अन्तरिक्ष में रहने का मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। कार्यक्रम के ग्रनुसार इस टोली ने अन्तरिक्ष में बाहर निकल कर पिछली टोली द्वारा लगाई गई गुलाबी पैरोसोल के ऊपर नाइलान का एक छत्र लगाया ताकि सूर्य की किरणों से साया पड़ सके। इस छत्र पर विशेष प्रकार का लेप लगा हुग्रा था।

●●

विज्ञान के नये चरण

कृत्रिम कार्निग्रा

पूर्वी जर्मनी समाचार एजेंसी (एडीएन) के अनुसार ड्रेस्डेन के निकट ज्रिभक में वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक की कृत्रिम कर्निग्रा बनाने में सफलता प्राप्त की है जिसको मनुष्य की नष्ट आँख में लगाया जा सकता है। इस प्लास्टिक की आंख से कई लोगों की ज्योति पुन: वापस आ गई है।

सेलेक्ट्रोफोन :—

अभी तक बड़ी सभा, संगीत आदि के कार्यक्रमों के अवसर पर आवाज़ को ऊँचा करने के लिये माइक्रोफोन का उपयोग किया जाता है। बेल् टेलीफोन प्रयोगशाला में ऐसे यंत्र 'सेलेक्ट्रोफोन' का विकास किया है जो आपकी आवाज़ को चाहे आप कहीं भी खड़े हों पकड़ सकता है। तकनीकी भाषा में इस यंत्र को 'यूनी डायरेक्शनल इलेट्रेट माइक्रोफोन' कहते हैं जो बोलने वाले के स्वर को को ऐसे बड़े कमरे में भी पकड़ सकता है जहाँ बहुत से व्यक्ति बातें कर हों। और काफ़ी शोर हो। आविष्कारकों का कहना है कि सेलेट्रोफोन का प्रयोग टेलीफोन द्वारा किये जाने वाले दलीय सम्मेलनों के लिये भी हो सकेगा।

विद्युतकार :—

अज़रबैजान की राजधानी बाकू में स्थित नोवेटर डिजाईनिंग एण्ड टेक्नॉलॉजिकल आर्गनाइजेशन ने एक नई कार विद्युतकार—73 का निर्माण किया है। इस कार की गति 60 कि॰ मीटर प्रतिघण्टा है और पुन: चार्ज किये बगैर 220 कि॰ मीटर तक यह जा सकती है। तीन यात्री या 600 कि॰ ग्राम का भार इसमें ढोया जा सकता है। इसके इंजन के अग्निसह होने के कारण तेल या गैस के क्षेत्र में भी किसी ख़तरे के बिना इसे चलाया जा सकता है! पेट्रोल का उपयोग न होने के कारण इस प्रकार की कार से प्रदूषण की समस्या का समाधान होता है। भारत में धूम्ररहित कार का प्रदर्शन कुछ समय पूर्व पूना में किया गया था जो एक घंटे में 43 कि॰ मीटर जाती है और 40 कि॰ मीटर जाने का खर्च केवल एक रुपया पचास पैसा आता है।

समुद्रगर्भीय यन्त्र-मानव :—

अमेरिका में एक ऐसे यंत्र का विकास हुआ है जो समुद्र के नीचे पहुँच कर देख-सुन सकता है, वस्तुयें पकड़ सकता है, कटाई का काम कर सकता है और समुद्र की सतह से 6000 मीटर की गहराई तक से वस्तुओं को उठा कर ऊपर ला सकता है। इस यंत्र पर समुद्री जल का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। यह 3.5 मीटर लंबा और 1.5 मीटर ऊँचा है। इसका नाम 'दूरवर्ती मानवहीन कार्य प्रणाली' रखा गया है। इसमें दूर से देखने वाले नेत्र, स्वनान्वेषी कान और इस्पात के पंजे हैं जिनसे काबले और ढिबरियां कसने तथा औज़ार बदलने का काम लिया जा सकता है। यह सामान्यत: प्रतिकूल समझी जाने वाली परिस्थिति में भी आसानी से काम कर सकता है।

इस यंत्र का नियन्त्रण जहाज में बैठे एक संचालक द्वारा किया जाता है। 6 किलोमीटर लम्बे केवल के द्वारा यंत्र का सम्बन्ध जहाज़ से बना रहता है। केवल का अन्दरी भाग कृत्रिम तन्तुओं से बना होता है और वह इस्पात की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ होता है। यंत्र के कैमरे का नियंत्रण जहाज़ पर बैठे संचालक के हाथ में होता है। संचालक विशेष प्रकार का टोप पहने होता है और विद्युदणिवक विधि से उसका सम्बन्ध कैमरे से जुड़ा होता है। टोप के हिलने के साथ ही कैमरे का रुख भी बदल जाता है। संचालक को जहाज़ पर बैठे-बैठे सब क्रिया इस प्रकार दिखाई देती हैं जैसे वह स्वयं समुद्र में उस गहराई तक पहुँचा हुआ हो। वैज्ञानिक को आशा है कि इस यंत्र से गहरे समुद्रों में अनुसंधान-कार्य में क्रान्ति आयेगी।

20000 फीट गहरे समुद्र से टेलीविज़न चित्र

पश्चिमी जर्मनी की एक कम्पनी ने ऐसे केवल का विकास किया है जो समुद्रों में 20000 फीट नीचे से टेलीविज़न चित्र प्रसारित कर सकता है। प्रचलित केबल केवल 2 मील लम्बे होते हैं परन्तु यह नया केवल एक टुकड़े में 5 मील तक लम्बा हो सकता है। केवल और कैमरा को जोड़ने के लिये वैद्युत विधि विकसित की गई है। टेलीविजन कैमरा दाबपूर्ण बक्स में रखा जाता है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3 5/

भाग 111 | फाल्गुन 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द जुलाई 1973 | संख्या 12

स्काईलैब—अन्तरिक्ष प्रयोगशाला

डा० संत प्रकाश

अन्तरिक्ष-विज्ञान में उत्तरोत्तर होने वाली प्रगति से वैज्ञानिकों की उत्सुकता बराबर बढ़ती जा रही है। चन्द्रमा पर मानव की कई उड़ानों के बाद अब इस कार्यक्रम को समाप्त करके अन्तरिक्ष में प्रयोगशाला स्थापित करने का प्रयास आरम्भ हो गया है। इस प्रयोगशाला को स्काईलैब की संज्ञा दो गई है। 14 मई, 1973 की साढ़े ग्यारह बजे रात्रि को (भारतीय समय के अनुसार) एक विशाल राकेट, सैटर्न—5, द्वारा स्काईलैब—1 केपकेनेडी, फ्लोरिडा, अमरोका से छोड़ा गया। स्काईलैब अमरीका का पहला अन्तरिक्ष स्टेशन है। अपोलो अभियान की महान सफलता के बाद स्काईलैब शृंखला का कार्य भी बहुत रोचक होगा और साथ ही हम लोगों को भूमंडल के लाभ के लिये अन्तरिक्ष का प्रयोग करने की दिशा में एक विशाल प्रयास होगा। कुछ लोग यह कहा करते थे कि पृथ्वी का भली-भाँति अन्वेषण करने के लिये मनुष्य को अन्तरिक्ष में जाने की क्या आवश्यकता है। उन लोगों का कहना था कि जो चीज मनुष्य के पैरों तले विद्यमान है उसकी जाँच के लिये वह पृथ्वी से अधिक दूरी तक क्यों जाये। लेकिन पृथ्वी की कक्षा में उपग्रहों की स्थापना के पूर्व ही कुछ वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया था कि यदि मनुष्य अधिक दूरी से पृथ्वी का अवलोकन करे तो उसके बारे में वह बहुत जानकारी प्राप्त कर सकता है।

स्काईलैब अब तक निर्मित अन्तरिक्ष यानों में सबसे बड़ा है। यह इतना विशाल है कि कुछ लोग इसे 'कक्षा में स्थित भवन' के नाम से पुकारने लगे हैं। इसका वजन 88 टन, लम्बाई 82·2 फीट एवम् सबसे चौड़ा भाग 22 फीट है। इसके अन्दर की जगह का क्षेत्रफल 11,500 घन फीट है। स्काईलैब की कक्षा पृथ्वी की भूमध्य रेखा से 50 अंश का कोण बनाती है। स्काईलैब पृथ्वी का चक्कर लगाते समय भूमध्य रेखा के उत्तर एवम् दक्षिण में 3450 मील की दूरी तक जायेगा। इसे दूरबीन की सहायता के बिना ही आकाश में देखा जा सकता है। इसमें रहने वाले अन्तरिक्ष यात्री पृथ्वी के तीन चौथाई भाग का अवलोकन कर सकेंगे। अन्तरिक्ष यान कभी-कभी दक्षिणी अर्जेन्टाइना, उत्तरी कनाडा एवम् मध्य योरोप के ऊपर

से भी गुजरेगा। यह पृथ्वी का चक्कर 93 मिनट में लगा पायेगा। इसमें तीन शयनागारों वाले घर जितना स्थान है और तीन अन्तरिक्ष यात्री आराम से रहकर काम कर सकेंगे। स्काईलैब के बेलनाकार मुख्य खंड के हर ओर पंखे के आकार के पैनेल लगे हैं (28×30 फीट) जिन पर सौर बैटरियाँ लगी हुई हैं। ये बैटरियाँ सूर्य की रोशनी को बिजली में बदल देंगी। यह ऐसा पहला समानव अन्तरिक्ष यान है जिसके उपकरण सौर-शक्ति से संचालित होंगे। स्काईलैब के मुख्य खंड के एक ओर पर एक संकरा गलियारा है जिसमें 'एयर लॉक' एवम् 'मल्टिपल डॉकिंग अडाप्टर' लगे हैं। अपोलो यान इसी भाग से जुड़ेगा तथा इसी मार्ग से होकर अन्तरिक्ष यात्रियों की टोलियाँ स्काईलैब में प्रवेश करेंगी। 'अडाप्टर' खंड में ही टेलिस्कोप और पृथ्वी का निरीक्षण करने वाले यन्त्रों के 'नियन्त्रण पैनेल' हैं।

यह पहला अवसर है कि जब कि अन्तरिक्ष यान में अन्तरिक्ष यात्रियों को सोने के लिये अलग-अलग कमरे दिये गये हैं। अन्तरिक्ष यात्रियों को सोने के लिये एक विशेष प्रकार की सुविधा प्रदान की गई है। जब कोई अन्तरिक्ष यात्री सोना चाहेगा तो वह अपने कमरे में चला जायेगा तथा कमरे की दीवाल से अपनी पीठ सटा लेगा। इसी दीवार से एक सोने वाला बैग लटकता रहता है। इसी बैग से वह अपना शरीर ढंक लेगा और उसमें लगी जिप को कन्धों तक खींचकर बैग को बन्द कर लेगा। बैग के सहारे वह दीवाल से चिपक जायेगा। दीवाल में ही उसके सिर के नीचे एक पैड लगा हुआ है जो तकिये का काम देगा। इससे नींद के दौरान उछलने से अन्तरिक्ष यात्री को किसी प्रकार की चोट लगने की सम्भावना नहीं रहेगी। ऐसी अवस्था में अन्तरिक्ष यात्री सर्वथा भारहीन होता है और चूँकि भारहीनता की दशा में ऊपर या नीचे जैसी कोई स्थिति नहीं होती, इसलिये इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि उसकी स्थिति पृथ्वी के संदर्भ में समान्तर है या उर्ध्वाधर।

स्काईलैब में सोने के कमरों के अलावा एक रसोईघर-भंडार और भोजन कक्ष, एक गुसलखाना तथा मनोरंजन की सुविधायें भी उपलब्ध हैं। गुसलखाने का निर्माण अन्तरिक्ष की परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर किया गया है। रसोईघर में डाइनिंग टेबुल, रेफ्रिजरेटर फ्रीजर एवम् हीटर भी उपलब्ध हैं। इसमें अन्तरिक्ष यात्रियों को भारी अन्तरिक्ष पोशाकें नहीं पहनने पड़ेंगे और वे उसी प्रकार के सामान्य वस्त्रों से अपना काम चला लेंगे जैसा कि आधुनिक वायुयानों में यात्रा के समय पहने जाते हैं। अन्तरिक्ष यात्री 10 घंटे तक कार्य एवम् सप्ताह में एक दिन विश्राम करेंगे। ये लोग स्काईलैब में स्थित छोटे से पुस्तकालय में बैठ कर पुस्तकें पढ़ सकेंगे एवम् टेपांकित संगीत सुन सकेंगे। इसमें खेलने एवम् व्यायाम करने का भी आयोजन है।

वैज्ञानिकों की टोलियों में भारत सहित 21 राष्ट्रों के 202 मुख्य एवम् 424 सह-अनुसन्धान कार्यकर्त्ता लगे हुए हैं। अन्तरिक्ष यात्री सकाईलैब में लगे 58 अनुसन्धान-यन्त्रों का उपयोग 260 विशिष्ट जाचों के लिये करेंगे। इनमें से कुछ उपकरणों को प्रत्येक दिन ध्यान देने की आवश्यकता है एवम् कुछ ऐसे भी उपकरण हैं जिन्हें दिन में कई बार देखा जावेगा।

स्काईलैब द्वारा विभिन्न प्रकार के निम्नलिखित अध्ययन किये जायेंगे :—

(1) 146 अध्ययनों का लक्ष्य पृथ्वी का तथा उसकी भूगर्भीय रचना का विस्तार एवम् बारीकी से अध्ययन करना है। इसके लिये स्काईलैब में लगे 6 यन्त्र-पुञ्जों को विशेष रूप से काम में लाया जायेगा।

(2) 44 वैज्ञानिक अध्ययनों का लक्ष्य—इसके लिये 8 अन्य यन्त्रों का उपयोग किया जायेगा—पृथ्वी के वातावरण के बाहर से सूर्य का, विशेष रूप से उसकी ऊर्जा उत्पादन - प्रक्रियाओं का और पृथ्वी पर तथा उसके जीवों पर उसके प्रभावों का अध्ययन किया जायेगा।

(3) 26 जाँचों का सम्बन्ध, इसमें 18 यन्त्रों का उपयोग होगा, चिकित्सा विज्ञान अथवा जीव विज्ञानों के किसी न किसी पहलू से है।

(4) 24 वैज्ञानिक प्रयोगों का, इसमें 12 उप-

करणों को काम में लाया जायेगा, लक्ष्य अन्तरिक्ष में विद्यमान अन्य नक्षत्रों के चित्र खींचना है।

(5) 17 प्रयोग द्वारा (इनमें 2 यन्त्रों का उपयोग होगा) इस सिद्धान्त की सत्यता जाँच की जायेगी कि भारहीनता की स्थिति में ऐसी मूल्यवान् और उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है जो गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव के कारण पृथ्वी पर नहीं बनाई जा सकतीं।

(6) 9 प्रयोगों का उद्देश्य (इनमें 8 यंत्रों का उपयोग होगा) भावी अन्तरिक्ष यात्राओं, विशेष रूप से लम्बी अन्तरिक्ष यात्राओं, के लिये समानव अन्तरिक्षयान प्रणालियों का मूल्यांकन करने स्वयं उनका विकास करने में सहायता करना है।

(7) स्काई लैब में अधिक स्थान होने से अन्तरिक्ष यात्रियों की पहली बार विस्तृत शारीरिक जाँच की जायेगी। भारहीनता की स्थिति में देर तक रहने का मानव शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी जाँच अब तक यात्रा के पूर्व एवम् बाद में शारीरिक परीक्षा करके अन्तरिक्ष यात्रियों के विवरण सुनकर तथा उड़ान के दौरान कुछ सीमित परीक्षायें करके की जाती थी। अन्तरिक्ष यात्रियों के शरीर पर अत्यन्त सूक्ष्म संवेदन शील यंत्र लगे रहते थे जो हृदय के धड़कन की सूचना देते रहते थे। कुछ अन्तरिक्ष यात्राओं में अन्तरिक्ष यात्रियों के शरीर द्वारा विसर्जित मल के कुछ नमूने भी वापस लाये गये थे ताकि पृथ्वी पर उनकी जाँच की जा सके। पर इस बार अन्तरिक्ष यात्री प्राय: एक दूसरे के रक्त के नमूने लेंगे और एक दूसरे पर ऐसे शारीरिक प्रयोग करेंगे जिनसे चिकित्सा अनुसन्धान कर्त्ताओं को स्वस्थ शरीर तथा रोगी शरीर की प्रतिक्रियाओं के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी। अन्तरिक्ष यात्रियों की प्रथम टोली में इसीलिये एक डाक्टर भी भेजा जा रहा है।

(8) स्काई लैब में 6 चूहे एवम् लगभग 700 कीड़े-मकोड़े भी भेजे गये हैं जिनसे बाद में यह ज्ञात किया जायेगा कि अन्तरिक्ष में रहते हुये साधारण जीवन में किस प्रकार का परिवर्तन होता है।

इस अन्तरिक्ष प्रयोगशाला द्वारा सूर्य के बारे में जो जानकारी प्राप्त होगी उससे वातावरण को दूषित किये बिना अत्यन्त कम लागत पर प्रचुर मात्रा में बिजली का उत्पादन करने के नये तरीकों का विकास करने में सहायता मिलेगी। साथ ही यह भी ज्ञात हो सकेगा कि पृथ्वी की जलवायु पर सूर्य का इतना अधिक प्रभाव क्यों पड़ता है। इस जानकारी के फलस्वरूप मौसम की अधिक सही भविष्य वाणी करना और शायद उस पर नियन्त्रण प्राप्त करना भी सम्भव हो जायेगा। यह भी ज्ञात हो सकेगा कि पृथ्वी तथा सौर मंडल के अन्य ग्रहों में सौर ऊर्जा का वितरण किस अनुपात में है।

स्काई लैब के आकार के कारण ऐसी मशीनों का उपयोग कर पाना सम्भव हो गया है जिन्हें इससे पूर्व प्रक्षिप्त उपग्रहों में लगाना सम्भव नहीं था। इस अध्ययन के फलस्वरूप, पृथ्वी का निरीक्षण करने के लिये ऐसे श्रेष्ठ उपकरणों एवम् विधियों का भी विकास हो सकेगा जिनका उपयोग भविष्य के समानव अन्तरिक्ष स्टेशनों में उन उपग्रहों में किया जा सकेगा जिनका उपयोग जुलाई, 1972 से हो रहा है। स्काई लैब से प्राप्त होने वाले चित्रों से फसलों के आकार के बारे में पहले से जानकारी प्राप्त हो सकेगी। फसलों को होने वाली बीमारियों का पता लगाने में मदद मिलेगी। साथ ही साथ जमीन के अन्दर के पानी का नक्शा तैयार करने में सहायता मिलेगी।

समुन्द्र में ताप की भिन्नताओं के बारे में स्काई लैब से प्राप्त होने वाले आंकड़ों से यह भी ज्ञात हो सकेगा कि किस क्षेत्र में मछलियाँ अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। बाढ़ों के बारे में अधिक सही भविष्य वाणी की जा सकेगी। तब किसान आवश्यक सतर्कता बरत सकेंगे और अधिक से अधिक पैदावार के लिये योजना बना सकेंगे।

उपर्युक्त बातों को कार्यान्वित करने के लिये 15 मई, 1973 को 3 व्यक्तियों की पहली टोली सुधरे हुये अपोलो चन्द्रयान पर सवार होकर अन्तरिक्षयान में जाने वाली थी पर अन्तरिक्ष प्रयोगशाला के प्रक्षेपण

के 63 सेकन्ड बाद ही उसे एक गम्भीर तकनीकी समस्या का सामना करना पड़ा। उसके जिन पंखों में सौर शक्ति उत्पन्न करने वालीबैटरियां थीं वे पूरी तरह खुल नहीं पाये। यह गड़बड़ी वैज्ञानिकों को 32 मिनट बाद ज्ञात हो सकी थी। इस गड़बड़ी के कारण स्काई लैब के अन्दर का ताप लगभग 100° फारेन हाइट हो गया जबकि ताप केवल 60—70° फारेन हाइट लेना चाहिये था। बाद में उसके अन्दर का ताप 150° फारेन हाइट तक पाया गया। इस समस्या का समाधान करने के लिये अन्तरिक्षयान को थोड़ा सा घुमा दिया गया जिससे उसका कम से कम भाग सूर्य की ओर पड़ सके। अन्तरिक्ष यात्रियों को भेजने का कार्य भी स्थगित कर दिया गया था। वैज्ञानिकों ने इस समस्या का समाधान करने के लिये 25 मई, 1973 को तीन अन्तरिक्ष यात्रियों—चार्ल्स कोनराड, जोसेफ़ करविन एवम् पौल पीट्ज को स्काई लैब में लगे हुये सौर्य पंखों को सुधारने के लिये भेजा है। कोनराड तो एक बहुत ही अनुभवी अन्तरिक्षयात्री हैं। ये चन्द्रमा में पहुँचने वाले तीसरे मानव थे। इनके कुशल नेतृत्व में इस बात की पूरी आशा की जा रही है कि अन्तरिक्ष प्रयोगशाला की गड़बड़ियों का सुधार अवश्य हो जायेगा। पाठकों को याद होगा कि अपोलो 13 चन्द्रयान में भी कुछ गड़बड़ी हो गई थी। जिससे उसे भी वापस लाया गया था। लेकिन उस चन्द्रयान को वापस लाने में जो प्रयत्न किये गये थे उससे यह सिद्ध होता है कि स्काई लैब की गड़बड़ी को भी ठीक कर लिया जायेगा।

अन्तरिक्ष यात्रियों ने सूर्य के अधिक ताप से अन्तरिक्षयान को बचाने के लिये छाते की तरह एक शील्ड लगाया है। इससे अन्तरिक्षयान के अन्दर का ताप कम हो गया है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि उसमें लगे सौर्य पंखों को ठीक किया जाये। ऐसी आशा की जा रही है कि अन्तरिक्षयात्री अपने कार्य में अवश्य सफल होंगे।

अन्तरिक्ष यात्रियों की यह पहली टोली 28 दिनों तक स्काई लैब में रहेगी और विभिन्न प्रकार के परीक्षण करेगी। इसके बाद दूसरी एवम् तीसरी टोली 56-56 दिन तक स्काई लैब में रहेगी। इन अन्तरिक्ष यात्रियों के नाम इस प्रकार हैं, बीन, गैरियट, लूजमा, पोग्यू गिब्सन तथा कार।

डा० संत प्रकाश
भौतिकी विभाग
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल

पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का कृषि में उपयोग

—डा० रमेशचन्द्र कपूर तथा
डा० पूरनचन्द वालिया

प्राक्-ऐतिहासिक समय से पृष्ठ-सक्रिय कर्मक प्राकृतिक पदार्थों के निष्कर्षण या रूपान्तरण द्वारा प्राप्त किये जाते रहे। अपने विलायकों की पृष्ठ-ऊर्जा को चरम मात्रा तक परिवर्तित करने का सारिक गुण इन कर्मकों में विद्यमान है। पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों के उत्तम उदाहरण हैं—शोधन पदार्थ (साबुन), जल सहकारी कर्मक (ग्रीज एवं पशु वसा), परिक्षेपक तथा पायसीकरण (श्लेष, अंडे की सफेदी, प्राकृतिक गोंद, और विभिन्न अकार्बनिक पदार्थ जो मिट्टी के पंजीकपण में प्रयोग किये जाते हैं) आदि। परन्तु इन कर्मकों के उपयोग सीमित हैं, क्योंकि ये अम्लीय विलयन में अस्थायी हैं तथा जलीय विलयन में इनका जलांशन हो जाता है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् औद्योगिक तथा तकनीकी विकास के फलस्वरूप लोगों का ध्यान पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों के अवगुणों पर केन्द्रित हुआ। कृत्रिम विधियों द्वारा ऐसे पृष्ठ-सक्रिय कर्मक बनाने के प्रयत्न किये गये जो इन अवगुणों से मुक्त हों और औद्योगिक रूप से उपयोगी भी हो। इस प्रकार कृत्रिम पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का आविष्कार आधुनिक काल में हुआ है।

पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों के उपयोग विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा दैनिक जीवन में दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। इनके उत्पादन का अधिकांश भाग वस्त्र-उद्योग में उपयुक्त होता है। धातु एवं खनिज प्रौद्योगिकी, अंगराग (कोस्मेटिक्स), कागज, चमड़ा, कृतिम रबड़, बहुलक, प्लैस्टिक, प्रलेप, पेट्रोलियम आदि उद्योगों में ये कर्मक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं कृषि तथा उद्यान के क्षेत्र में, पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों के विलयन का उपयोग फुहार में होता है। भवन, सड़क आदि निर्माण-उद्योग में मृदा का स्थायीकरण करने के लिए कंकरीट एवं सीमेन्ट के मिश्रणों में पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों को मिलाया जाता है। हानिकारक कीट, फंगस तथा अन्य शत्रुओं को नष्ट करने के लिए छिड़काव करने वाले विभिन्न विलयनों में भी इन कर्मकों को मिलाया जाता है। पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों की उपस्थिति में खाद तथा मिट्टी दोनों के भौतिक गुणों के संशोधित होने से बीजों का अंकुरण शीघ्र हो जाता है। इनका दूसरा उपयोग उन फल तथा सब्जियों के धोने में होता है जिनमें छिड़काव से बचे हुए हानिकारक अवशेष हैं।

खाद तथा मिट्टी में उपयोग

खाद बनाने में सर्वप्रथम सेम्यूर ने पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का उपयोग किया। उन्होंने यह ज्ञात किया कि पृष्ठ-सक्रिय कर्मक की न्यून मात्रा डालने का पर खाद में पूर्ण तथा समरूप क्लेदन गुण उत्पन्न होता है। खाद में पृष्ठ-सक्रिय कर्मक के डालने का मुख्य उद्देश्य उसके भौतिक गुणों को उन्नत करना है। इससे खाद की कठोरता कम हो जाती है तथा उसके ढेले नहीं बन पाते। कैल्शियम फास्फेट तथा सल्फ्यूरिक अम्ल के मिश्रण में क्लेदन कर्मक की 0·01—0·03 प्रतिशत मात्रा डालने से कैल्शियम सुपर-फास्फेट बनाने की क्रिया का समय कम हो जाता है। इसमें सल्फ़ोनीकरण उत्पादक तथा योगोत्पाद उपयुक्त क्लेदन कर्मक बताये गये हैं। लगभग 0·22 किलो ट्राई डेसिल ऐल्कोहल योगोत्पाद को एक टन सुपर-फास्फेट में मिलाने पर उसका घनत्व कम हो जाता है तथा मिश्रत खादों में सुपर-

फ़ास्फेट द्वारा अमोनिया को शोषित करने की क्षमता बढ़ जाती है। इनके अतिरिक्त, यदि मिट्टी की सिचाई करने वाले पानी में पृष्ठ-सक्रिय कर्मक योगोत्पाद की बहुत कम मात्रा (0·5 प्रतिशत—3 प्रतिशत) डाली जाए, तो मिट्टी के अवशोषण, वेधन, आर्द्रता प्रति धारण आदि गुण उन्नत हो जाते हैं।

खाद-उत्पादन में अम्ल-स्थायी अन्-आयनिक पृष्ठ-सक्रिय कर्मक सबसे उत्तम एवं उपयुक्त होते हैं जिनके उदाहरण हैं—ऐल्किल-फेनिल पालि एथिलीन ग्लाइकाल ईथर, ऐल्किल फ़िनाक्सी पालि आक्सी फेनिल स्थानाल, ऐल्कोहल या मर्केप्टन एथिलीन आक्साइड द्राव। इनके अतिरिक्त ऐल्किल-फेनिल सल्फ़ोनेट प्ररूप के के ऋणायनिक पृष्ठ-सक्रिय कर्मक भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

पृष्ठ-सक्रिय कर्मक मिट्टी के स्थायित्व को उन्नत करने के लिए बहुत ही लाभदायक पाये गये हैं। धनायनिक पृष्ठ-सक्रिय कर्मक वायु की मिट्टी को सुखाने की शक्ति कम करते हैं और महीन चिकनी मिट्टी की स्लेक (बुझाना) करने की गति को बढ़ाते हैं। ऐल्किल-ऐरिल सल्फ़ोनेट मिट्टी के पृष्ठ तल की क्लेदना बढ़ाने में सहायक होते हैं जिससे बीजों का अंकुरण और पौधे की वृद्धि शीघ्रता से होती है।

शर्करा उत्पादन में इन कर्मकों का उपयोग हुआ है। अन्-आयनिक पृष्ठ-सक्रिय कर्मक जैसे प्रोपिलीन आक्साइड-एथिलीन आक्साइड ब्लाक सहबहुलक गन्ने से अन्तिम निष्कर्षण प्रक्रम द्वारा शर्करा की उपज बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। गन्ने के रस का शुद्धीकरण तथा इसकी आविलता को कम करने में कार्बोक्सिलेटिड विनिल ऐसीटेट मलेइक अम्ल बहुलक का उपयोग होता है। पोषण लवण के विलयन में आनयिक तथा अन्-आयनिक दोनों प्रकार के अनेक पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों के प्रभाव का अध्ययन गेहूँ के पौधे की मूल-वृद्धि पर किया गया।

वाष्प निरोधन में उपयोग

पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का वाष्पन निरोधक के रूप में उपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण है। ग्रीष्म ऋतु में कृषि के लिए जल-वाष्पन का निरोध अति आवश्यक है। उदाहरणार्थ, चावल के रोपण में, कृत्रिम ढंग से भूमि का जलप्लावन किया जाता है। यदि जल सतह पर पृष्ठ-सक्रिय कर्मक की जल अविलेय फिल्म का विस्तरण किया जाये तो जल-वाष्पन कम हो जाएगा। प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि उच्चतर मानों हाइड्रिक ऐल्कोहलों में एथिलीन आक्साइड के एक से लेकर तीन अणुओं को जोड़ने पर प्राप्त उत्पाद अधिक मितव्ययी तथा व्यावहारिक होते हैं। ये कर्मक दीर्घ ऋजु शृंखला वाले ऐल्कोहलों की अपेक्षा अधिक अच्छा रसायनिक स्थायित्व उत्पन्न करते हैं। इस श्रेणी के उत्पाद मनुष्य तथा जीव जन्तुओं के लिए हानिकारक नहीं है। परीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि एथिलीन ग्लाइकाल मोनोडाकोसाइलईथर हेक्सा या आक्टेडेकानाल की अपेक्षा अधिक वाष्पन निरोधक सिद्ध हुआ है।

कीट नाशक उपयोग

पायस, परिक्षेपण या निलम्बन द्वारा कीटनाशक पदार्थों का उपयोग अधिक प्रभावशाली तथा सुविधा-जनक होता है। कीटनाशक संघटनों की पायस-स्थायित्व को बनाये रखने के लिए पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का उपयोग हुआ है। ये कई प्रकार से कार्य करते हैं। यदि विषैला पदार्थ तैलीय जल-अविलेय द्रव अथवा ठोस हों तो पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों की सहायता से कार्बनिक विलायकों में इसका पायस बनाया जाता है। यदि विष अविलेय चूर्ण जैसे गन्धक आदि के रूप में हुआ तो सामान्यत: पृष्ठ-सक्रिय कर्मक के तनु जलीय विलयन में उसे निलम्बित अथवा परिक्षेपित किया जा सकता है। जल-विलेय विष की अधिकतम एकरूप व्याप्ति उत्पन्न करने के लिए क्लेदन कर्मक डाला जाता है। ऊपर दिये गये संघटनों में मारक संघटक के निक्षेपण तथा प्रति धारण में पृष्ठ-सक्रिय कर्मक सहायक होते हैं।

छिड़काव में प्रयोग होने वाले कीटनाशक संघटन प्राय: खनिज तेल-पायस होते हैं। अनेक पृष्ठ सक्रिय कर्मक जैसे साबुन, ऐल्किलऐरिल, सल्फ़ोनेट, ऐल्किल-फ़ेनिल सल्फ़ोनेट, वसीय ऐल्किलसल्फ़ेट और उनके

अमीन लवण, महोगनी सल्फ़ोनेट इत्यादि, अच्छे पायसक हैं। कीट नाशक संघटन बनाने के लिए किसी पायसक का आवश्यक गुण यह है कि वह पत्ती तथा पौधों की सतह पर तेल अथवा दूसरे विष के निक्षेपण, संलग्न और विस्तरण में सहायक हो। प्राय: पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों की उपस्थिति में कीटनाशक पायस की विस्तरण एवं क्लेदन शक्तियाँ बढ़ जाती हैं परन्तु इसकी संलग्न शक्ति में कमी आ जाती है। कुछ पदार्थ जैसे गोंद, अर्बुरिक, केसीन आदि पायस की संलग्न शक्ति या पौधे पर तेल के निक्षेपण को बढ़ाते हैं। अपायस कीटनाशक तेल की विस्तरण शक्ति पृष्ठ सक्रिय कर्मकों की न्यून मात्रा डालने से उन्नत की सकती है। ऐसे कर्मक सल्फ़ोनेटीत ऐंरडे का तेल, महोगनी सल्फ़ोनेट इत्यादि हैं।

ताम्र यौगिक, निकोटिन, पाइरीथर्म, क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन (डी॰ डी॰ टी॰, क्लोरडेन, टोक्साफ़ीन) जैसे अत्यंत सक्रिय विषालु पदार्थ प्राय: कीटनाशक पायसों में मिलाये जाते हैं। अभीष्ट सतह पर कीटनाशक पदार्थ की एक-सी फिल्म बनाने में पृष्ठ-सक्रिय कर्मक सहायक हैं। ठोस कीटनाशक पदार्थों का धूलिमार्जन अथवा उनके जलीय परिक्षेपण का छिड़काव किया जाता है। पृष्ठ-सक्रिय कर्मक जैसे साबुन, सोडियम लौराइल सल्फेट, ऐल्किल-ऐरिल सल्फेटीत तेल और एस्टर, चतुष्क अमोनियम यौगिक आदि परिक्षेपण के अतिरिक्त निक्षेपण एवं संलग्न में भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। गोंदी प्रवृत्ति वाले कुछ ठोस पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों की न्यूनतम मात्रा डालने से कीटनाशक धूल में संलग्न शक्ति उन्नत होती है। ये केवल आसजंक के रूप में ही कार्य करते हैं। छिड़काव द्वारा पूर्ण रूप से भीगे हुए कीट को नष्ट करने के लिए कीटनाशक पदार्थ की बहुत कम मात्रा पर्याप्त है। फुहार में क्लेदन तथा विस्तरण को उन्नत करने के लिए साबुन तथा अन्य अनेक क्लेदन कर्मक उपयुक्त हुए हैं। डी॰ डी॰ टी॰ एक अत्याधिक उपयुक्त एवं सक्रिय कीटनाशक पदार्थ है। इसका जलीय विलयन विभिन्न आयनिक तथा अन्-आयनिक पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों की सहायता से बनाया जाता है। संग्रह-कोष्ठागार में गेहूँ को हानि पहुँचाने वाले कीटो का नियंत्रण महीन बन्टोनाइट तथा डी॰ डी॰ टी॰ मिश्रण द्वारा होता है।

बहुत से पृष्ठ-सक्रिय कर्मक स्वयं ही महत्वपूर्ण कीट-नाशक पदार्थ हैं। वसा अम्लों (C_{10} से C_{14}) के पोटैशियम साबुन, ऐफिड तथा दूसरे कोमल शरीर वाले कीटों को नष्ट करने के लिए उपयुक्त हैं। अन्-आयनिक (वसा-अम्ल हेक्सीटाल एस्टर), ऋणायनिक (ऐल्किल-ऐरिल सल्फ़ोनेट, सोडियम लौराइल सल्फेट), दीर्घ शृंखला वाले धनायनिक (डाई-एथिल डोडेसिल बेन्जीन अमोनियम क्लोराइड), पेट्रोलियम सल्फ़ोनिक अम्ल के जिंक लवण इत्यादि पृष्ठ-सक्रिय कर्मक विभिन्न प्रकार के कीटमारक हैं। ऐल्किल-ऐरिल सल्फ़ोनेट के निकोटिन लवण, दीर्घ शृंखला वाले निकोटिनीयम हैलाइड और सल्फ़ोसविसनिक एस्टर के मरक्यूरेटित व्युत्पन्न कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनके अणु में पृष्ठ-सक्रिय तथा विषैला दोनों मूलक विद्यमान हैं।

पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का उपयोग फंगस नाशी, शाक नाशी और बीज रोगाणु-नाशी के रूप में किया जाता है। शाक नाशी पायस को बनाने के लिए सक्रिय विष (2, 4 - डाई क्लोरोफ़िनोक्सी ऐसीटिक अम्ल), कार्बनिक विलायक (चीड़ का तेल, पेट्रोलियम तेल, डाई-ऐसीटोन ऐल्कोहाल इत्यादि और पायसीकारक (ऐल्किल-ऐरिल सल्फ़ोनेट, डाईएथिल साइक्लो हेक्सिल अमोनियम क्लोराइड) को मिलाया जाता है। अपतृणों को नियन्त्रित करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। वसा-ऐल्किल सल्फेट, साबुन तथा ऐल्किल-ऐरिल सल्फ़ोनेट, आर्सेनिक के शाकनाशी तथा फंगस नाशी पदार्थ बनाने में अधिकता से प्रयोग किये जाते हैं। ताम्र-फ़ास्फेट के फंगस नाशी पायस बनाने के लिए मछली के तेल के साबुन उपयुक्त निक्षेपण तथा संलग्न कर्मक सिद्ध हुए हैं। चतुष्क अमोनियम लवण स्वयं ही सक्रिय फंगस नाशी होते हैं।

फल तथा सब्जियों को बाजार में भेजने से पहले छिड़काव किये जाने वाले कीटनाशी पदार्थों को हटाना उचित है क्योंकि ये मनुष्य के लिए विषैले होते हैं।

[शेष पृष्ठ 13 पर

भारतीय कृषि

डा० शिव गोपाल मिश्र

पौराणिक प्रतीक :

वाल्मीकि रामायण राम की यशोगाथा का अद्वितीय काव्य ग्रंथ है। हमारे देश में राम, सीता तथा हनुमान के नाम जिस आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं वह अकथनीय है।

यद्यपि वाल्मीकि रामायण को पढ़कर ऐसा लगता है कि वाल्मीकि अपने समकालीन पुरुष राम का वर्णन कर रहे हैं किन्तु डा० वेबर ने राम की ऐतिहासिकता को अस्वीकार करते हुए सम्पूर्ण रामायण को एक रूपक माना है जिसके द्वारा आर्य सभ्यता और कृषि का विकास दक्षिण भारत में दिखाया गया है। वेबर के अनुसार सीता कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न होकर खेत की सीता (लांगल पद्धति) का मानवीकरण मात्र है जिसे आर्य कृषि का प्रतीक मानना होगा। इस प्रकार से वैदिक सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी और रामायण की सीता अभिन्न है। सीता के जन्म और पृथ्वी में उनके समा जाने की कथाएँ इसी ओर निर्देश करती है।

यही नहीं, सीता की बहन ऊर्मिला (लक्ष्मण पत्नी) भी लहराते खेत की ही प्रतीक है। भवभूति ने उत्तर रामचरित में सीता के पिता जनक के लिए 'सीरध्वज' का जो प्रयोग किया है वह कृषि से ही सम्बन्धित है।

सीता जी के दो पुत्र लव और कुश माने जाते हैं। ये भी कुश नामक घास तथा लुनने की क्रिया (लव) से सम्बन्धित है।

राक्षस द्वारा सीता हरण की कथा इसकी ओर संकेत करती है कि आर्य कृषि के प्रतीक सीता पर जब आदिवासियों ने आक्रमण किया तो उसकी रक्षा का भार श्री राम पर जा पड़ा था।

राम का बनवास हेमन्त ऋतु का प्रतीक है जब कृषि कार्य स्थगित रहता है।

लेकिन यह कहना कि वाल्मीकि ने कृषि को महत्व दिलाने के लिये यह ग्रन्थ रचा, युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। यदि राम ने दक्षिण की यात्रा कृषि प्रसार के लिये की होती तो विभीषण और सुग्रीव को राजा बनाने पर भी कृषि में कोई विशेष सुधार का उल्लेख क्यों नहीं मिलता। फिर वैदिक साहित्य में एक नहीं कई 'राम' मिलते हैं। आर्यों के आगमन के पूर्व भारत के साथ ही दक्षिण में भी कृषि की जाती थी।

इतना होने पर भी प्रतीकात्मता आगे भी पाई जाती है। रामकथा के वानर, ऋक्ष तथा राक्षस विंध्य प्रदेश तथा मध्य भारत की आदिवासी अनार्य जातियाँ स्वीकार की गई है। वास्तव में ये विभिन्न कुल के थे जो विभिन्न पशुओं तथा वनस्पतियों की पूजा करते थे। आज भी आदिवासियों में ऐसे गोत्र पाये जाते हैं जिनका उल्लेख रामायण में हुआ है। छोटा नागपुर में रहने वाली उराँव तथा मुण्डा जातियों में तिग्गा, हलमान, बजरंग, गड़ो आदि गोत्र मिलते हैं जो वानर गोत्र के द्योतक हैं। सिंह भूमि की मुइयाँ जाति अपने को हनुमान का वंशज बताती है। हनुमान वास्तव में एक द्रविड़ शब्द 'आणमंदि' का संस्कृत रूपान्तर जान पड़ता है जिसका अर्थ है नर + कपि।

इसी प्रकार ऋक्ष सूचक गोत्र गिद्ध या गिधि गोत्र हैं। रावना गोत्र भी गीध का पर्याय है। रावण नाम भी अनार्य नाम का संस्कृत रूपान्तर जान पड़ता है। रायपुर जिले के गोंड तथा उराँव अपने को रावणवंशी बताते हैं।

वैदिक साहित्य में, विशेष रूप से अथर्व वेद में, रक्षस, राक्षस या पिशाच मनुष्य के शत्रु माने गये हैं। बाद में यह नाम रावण के क्रूर तथा हिंसक अनुयायियों को मिला। रामायण में राक्षसों का जो वर्णन है वह ऋग्वेद के दस्युओं के वर्णन से मिलता-जुलता है। अवश्य ही वाल्मीकि इनके नामों से परिचित थे। इसीलिये उन्होंने उनके वर्णनात्मक नाम दिए हैं—यथा कुंभकर्ण, मेघनाथ, दशग्रीव, विभीषण आदि। अथर्ववेद में एक दशशीर्ष ब्राह्मण का उल्लेख है अतः होन हो रावण के दशानन होने की कल्पना यहीं से आई हो।

वास्तव में हनुमान और इन्द्र अभिन्न हैं। ऋग्वेद में इन्द्र का एक नाम हनु (शिप्रवत) है भी। हनुमान को वायु पुत्र या मारुति माना जाता है। वास्तव में यह दक्षिण की ओर से चलने वाली मानसून हवाओं का द्योतक है। खेती के लिये मानसूनी वर्षा का अत्यधिक महत्व है। हनुमान ने लंका तक राम का सन्देश पहुँचाया और वापस आये। यह कार्य भी सीता अर्थात् कृषि के पक्ष में ही उतरता है सम्भवतः यही समझ कर याकोबी ने हनुमान को कृषि सम्बन्धी देवता—वर्षा काल के अधिष्ठाता देवता माना है सम्पूर्ण भारत देश में हनुमान की पूजा का रहस्य यही हो सकता है।

वेबर की ही परम्परा में डा० याकोबी को धारणा है कि रामायण के प्रधान पात्रों का प्रतिबिम्ब वैदिक साहित्य के देवताओं में देखा जा सकता है। सीता को 'पर्जन्यपत्नी' अथवा 'इन्द्र पत्नी' भी कहा गया है जिससे इन्द्र और राम की एकरूपता सिद्ध होती है। वैदिक काल में पशुपालन करने वाले आर्यों के देवता इन्द्र थे जो बाद में किसानों के 'राम' बन गये। पूर्व भारत में राम दाशरथि (दशरथ के पुत्र) के रूप में और पश्चिम में वे ही बलराम के रूप में स्वीकृत किये गये। ध्यान देने योग्य तथ्य है कि बलराम और इन्द्र दोनों ही मद्यपान करते हैं।

राम और इन्द्र को एक सिद्ध करने के लिए याकोबी ने वैदिक साहित्य में उल्लिखित वृत्तासुर का प्रश्रय लिया है। इन्द्र वृत्तासुर को मारते हैं और पर्वतों में रोके हुए जल को मुक्त करते हैं। सायण के अनुसार वृत्त का अर्थ मेघ है। आगे चलकर इन्द्र और वृत्त का यह वृत्तान्त राम और रावण के रूप में गृहीत हुआ। उल्लेखनीय बात यह है कि रावण के पुत्र मेघनाथ की एक उपाधि इन्द्रजीत है और मेघनाथ का भाई कुम्भकर्ण गुफा में रहने वाला है जो वृत्तासुर की याद दिलाता है। वैदिक काल में इन्द्र ने गायों की रक्षा की थी। पणियों द्वारा चुराये जाने पर उन्हें मुक्त कराया था। पौराणिक काल में राम द्वारा सीता का उद्धार गायों के हरण और उद्धार के ही समान है। वैदिक काल में पशु पालक आर्यों के लिये जो स्थान गायों का था, वही कृषकों के लिये खेतों की सीता का था।

तात्पर्य यह कि चाहे राम को लें, या सीता अथवा हनुमान को, वे प्रतीकात्मक रूप से आर्यों की कृषि सम्यता के पोषक सिद्ध होते हैं। आर्यों के देश की यह विलक्षणता कृषि के विद्वानों के लिये चमत्कृत नहीं तो और क्या लगेगी। इस सम्बन्ध में आगे और मनन और चिन्तन की आवश्यकता है। जो लोग कृषि को हेय समझते हैं, वे अपनी संस्कृति और सभ्यता की भावभूमि से अपरिचित होने के कारण ही ऐसा करते हैं।

इस अंश के लेखन में मुझे डा० फादर कामिल बुल्के की पुस्तक 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' से सहायता मिली है। एतदर्थ मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगा।

●●

वायुमंडल की अक्रिय गैसें व उनके यौगिक

डॉ० रामचन्द्र कपूर

हीलियम, निऑन, आर्गान, क्रिप्टान, जीनॉन तथा रेडॉन—ये ही वायुमंडल की छः अक्रिय गैसें हैं। चूंकि ये गैसें साधारण ताप व दवाव पर अक्रियाशील हैं और अन्य तत्वों व पदार्थों से कोई क्रिया नहीं करती हैं अतः इन गैसों को "अक्रिय गैसों" के नाम से पुकारा गया। आवृत सारणी में इनको 'शून्य समूह' में ऋण विद्युती हैलोजेन व धन विद्युती क्षारीय तत्वों के बीच रखा गया है और इस प्रकार ये ऋण विद्युती हैलोजेन व धन विद्युती क्षारीय तत्वों के बीच एक कड़ी का कार्य करती हैं (देखिये चित्र 1)।

VII	O	I
F	He	Li
Cl	Ne	Na
Br	Ar	K
I	Kr	Rb
At	Xe	Cs
	Rn	Fr

चित्र—1. आवर्त सारणी में अक्रिय गैसों का स्थान

ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय के नील बार्टलेट ने सर्वप्रथम 1962 में यह देखा कि जब जीनॉन को प्लेटिनम हेक्साफ्लोराइड के साथ क्रिया करायी जाती है तो एक पीला ठोस पदार्थ प्राप्त होता है :

$$Xe + PtF_6 = XePtF_6$$
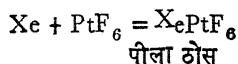
पीला ठोस

इस पीले ठोस पदार्थ का परीक्षण करने पर पता चला कि जीनॉन-अक्रिय गैसों के समूह का एक सदस्य-प्लेटिनम हेक्साफ्लोराइड के साथ क्रिया कर एक जटिल यौगिक बनाती है। इस प्रकार नील बार्टलेट के इस प्रयोग ने सर्वप्रथम यह सिद्ध किया कि 'अक्रिय गैसें' पूर्णतया अक्रियाशील नहीं है।

जीनॉन फ्लोराइड—नील बार्टलेट की इस महत्वपूर्ण खोज के दो माह पश्चात अमरीका की आर्गोन राष्ट्रीय प्रयोगशाला के कुछ वैज्ञानिकों ने जीनॉन और फ्लोरीन की 1:5 के अनुपात में क्रिया कर जीनॉन टेट्राफ्लोराइड प्राप्त किया।

$$Xe + 2F_2 = XeF_4$$
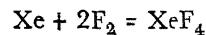
इसके बाद जीनॉन के अन्य फ्लोराइड जैसे जीनॉन डाइफ्लोराइड, XeF_2, जीनॉन हेक्साफ्लोराइड, XeF_6 व जीनॉन आक्टाफ्लोराइड, XeF_8 भी प्राप्त किये गये। विभिन्न फ्लोराडों का निर्माण जीनॉन व फ्लोरीन के अनुपात पर आधारित है :

$$Xe + F_2 \rightarrow XeF_2 \xrightarrow{F_2} XeF_4 \xrightarrow{F_2} XeF_6 \xrightarrow{F_2} XeF_8$$
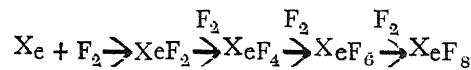
जीनॉन आक्सीफ्लोराइड व आक्साइड—जीनॉन हेक्साफ्लोराइड का जब अपूर्ण जल-अपघटन किया जाता है तब जीनॉन आक्सीटेट्राफ्लोराइड, $XeOF_4$ प्राप्त होता है।

$$XeF_6 + H_2O = XeOF_4 + 2HF$$
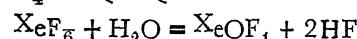
यह आक्सीफ्लोराइड, जीनॉन हेक्साफ्लोराइड व सिलिका की क्रिया द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है :

$$2XeF_6 + SiO_2 = 2XeOF_4 + SiF_4$$
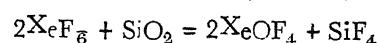
जीनॉन के अन्य आक्सीफ्लोराइड हैं : $XeOF_2$, $XeOF$, XeO_2F_2. XeO_2F_4 व XeO_3F_2.

जीनॉन के आक्सीजन यौगिक जटिल तरीकों द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं उदाहरणतया जब जीनॉन के टेट्रा व हेक्साफ्लोराइड का जल-अपघटन किया जाता है तो जीनॉन ट्राई आक्साइड प्राप्त होता है

$3\,XeF_4 + 6H_2O = XeO_3 + 2Xe + 3/2O_2 + 12\ HF$

$XeF_6 + 3H_2O = XeO_3 + 6HF$
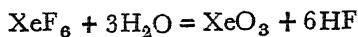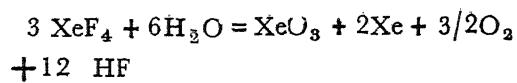
जीनॉन फ्लोराइडों के जल अपघटन से जीनेट, XeO_6^{4-} व परजीनेट, XeO_6^{4-} प्राप्त होते हैं जैसा कि निम्न क्रिया से स्पष्ट है :

$2XeF_6 + 4Na^+ + 16\ OH^- \rightarrow Na_4XeO_6 + Xe + O_2 + 12F^- + 8H_2O$ सोडियम परजीनेट
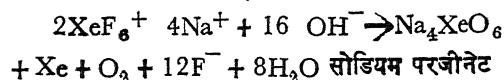
जीनॉन के प्रमुख यौगिक

यौगिक	रूप	गलनांक °C	संरचना
XeF_2	रंगहीन क्रिस्टल	140	रेखाकार
$XeF_2.256F_5$	पीला ठोस	63	
XeF_4	रंगहीन क्रिस्टल	114	प्लेनर
$XeOF_2$	रंगहीन क्रिस्टल	90	
XeF_6	रंगहीन क्रिस्टल	47.7	विकृत अष्टफलीय
$CsXeF_7$	रंगहीन ठोस		
Cs_2XeF_8	पीला ठोस		
$XeOF_4$	रंगहीन द्रव	−28	वर्ग-पिरैमिड
XeO_3	रंगहीन क्रिस्टल		त्रिकोणीय पिरैमिड
XeO_4	रंगहीन गैस		चतुष्फलकीय
XeO_6^{4-}	रंगहीन लवण		अष्टफलीय

बेरियम परजीनेट की जब ठंडे (− 5°c) तथा सान्द्र गंधक के अम्ल से क्रिया करायी जाती है तब जीनॉन टेट्राआक्साइड, XeO_4 प्राप्त होता है।

जीनॉन प्लेटिनम, रूथेनियम, टैन्टेलम, एन्टीमनी, आर्सेनिक, बोरॉन व सिलिकन के फ्लोराइडो के साथ जटिल यौगिक अथवा योगात्मक यौगिक जैसे : $Xe(PtF_6)2$, $XeRuF_6$, $XeF_2.\ 2\ TaF_5$, $XeF_2.\ 2SbF_5$, $XeF_6.\ AsF_5$, $XeF_6.\ BF_3$, $Xe\ SiF_6$ आदि बनाती है।

क्रिप्टॉन के यौगिक :—द्रव नाइट्रोजन ताप पर जब क्रिप्टॉन और फ्लोरीन के मिश्रण में विद्युत विसंजक धारा प्रवाहित की जाती है तब क्रिप्टॉन टेट्राफ्लोराइड, KrF_4 प्राप्त होता है। क्रिप्टॉन के फ्लोराइड भी जीनॉन के फ्लोराइडों की तरह जल-अपघटित होते हैं जैसा कि निम्न क्रिया से स्पष्ट है:

$KrF_x + 1/2 \times H_2O \rightarrow Kr + x/4O_2 + \times HF\ (\times = 2 Or 4)$
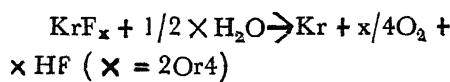
रेडॉन के यौगिक :—जीनॉन तथा क्रिप्टॉन की तरह रेडॉन भी एक स्थायी फ्लोराइड बनाती है जो कि जीनॉन फ्लोराइड से कम वाष्पशील है। इसका आणविक सूत्र RnF_4 है।

हीलियम, निऑन तथा आर्गन के यौगिक अभी नहीं बनाये जा सके हैं, हालाँकि यह यह आशा की जाती है कि हीलियम को भी एक फ्लोराइड, HeF_2 बनाना चाहिये।

डा० रामचन्द्र कपूर,
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर—1

नींबू

शुकदेव प्रसाद

वैसे तो नींबू एक साधारण फल है लेकिन बहुत ही गुणकारी है। मानव इसका प्रयोग अपने भोजन में शुरू से ही करता रहा है। वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार नींबू के प्रति औंस रस में प्रोटीन 1·5, वसा 1·0, कार्बोज 10·9 एवं उष्णता उत्पादन शक्ति 17 केलारी होती है। इसके रस में विटामिन की भी मात्रा उपलब्ध होती है। 100 ग्राम रस में विटामिन 'A', 26, विटामिन B 0·1 और विटामिन सी 63 मिली ग्राम पाया जाता है। साथ ही साथ Ca, Fe, P एवं K, Mg, क्लोपिन आदि प्रर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

औषधि—नींबू का प्रयोग हम औषधि के रूप में करते हैं। इसके प्रयोग से कई रोगों का निवारण हो जाता है। इसकी गुणकारी प्रवृत्ति इसमें उपस्थित विटामिन सी के कारण है। इसका उपयोग निम्न रोगों के निवारण में होता है।

स्कर्वी—18वीं शती के मध्य में स्काटलैंड में डा० जेम्सलिण्ड ने पता लगाया कि जिन नाविकों की मृत्यु समुद्र यात्राओं में स्कर्वी जैसी भयानक बीमारी के कारण हो जाया करती थी, संतरा या नींबू के रस दिये जाने से उस रोग पर काबू पाया जा सकता है। नींबू के प्रयोग से बहुत से नाविकों की जान बचाई गयी थी। अतः इसी नाते 1795 में ब्रिटिश नौ सेना ने ब्रिटिश नाविकों को नींबू का रस दिए जाने का नियम जारी कर दिया था। आज भी नींबू का प्रयोग स्कर्वी रोग में बहुत लाभदायक है। इस रोग के लक्षण हैं दाँत के चारों ओर मसूढ़ों का सूजना, दाँतों का कमजोर होना या हिलना, हड्डियाँ कमजोर होना इत्यादि जो कि विटामिन—सी की कमी से होता है और नींबू की अधिक मात्रा इस रोग को दूर कर सकती है। इसके लिए ताजा जल चार औंस, चीनी दो औस, कुनेन 6 ग्रेन, क्लोरेट आफ पोटास 60 ग्रेन, नींबू का रस चार औंस को मिलाकर मिश्रण तैयार कर लें। दिन में चार बार दो-दो औंस की मात्रा में प्रयोग करें। इससे शीघ्र फायदा होगा।

मधुमेह—विटामिन सी के अधिक मात्रा में उपयोग का मधुमेह के रोगी पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह रोग इन्सूलिन हारमोन की कमी के कारण होता है। इन्सूलिन रक्त में चीनी की मात्रा पर नियन्त्रण रखता है अतः मधुमेह के रोगी को इस नियन्त्रण की कमी या तो भोजन से या तो इन्सूलिन की सूई से करनी पड़ती है। विटामिन सी अधिक मात्रा लेने से इन्सूलिन की निर्भरता कम की जा सकती है। इसके प्रमाण हैं वैज्ञानिक फ्रेड डाइस जो कि 15 वर्ष की ही उम्र से इस रोग के शिकार थे। उन्होंने अनुभव करके देखा कि विटामिन सी की अधिक मात्रा के प्रयोग से इस रोग पर काबू पाया जा सकता है। उसके अनुसार इन्सूलिन की नियत मात्रा का 2/5 वाँ हिस्सा लेने और विटामिन सी नित्य 11 ग्राम लेने से सन्तुलन बना रहता है। यह केवल वैज्ञानिक फ्रेडडाइस के ऊपर जाँच के फलस्वरूप नींबू के प्रयोग का अनुभव किया गया है और जो कि सही उतरा भी है। अतः मधुमेह के रोग में विटामिन सी का महत्वपूर्ण धपयोग है।

हृदरोग—हृदरोग रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ जाने के कारण होता है जिसके फलस्वरूप धमनियाँ सँकरी हो जाती हैं। कोलेस्ट्राल रक्त नलिकाओं में जमा हो जाता है जिससे रक्त का प्रवाह बंद हो जाता है और यही अवस्था बीमारी का सूचक है।

अभी हाल में वैज्ञानिक एमिलगिष्टर ने गिनीपिग (या विलायती चूहा जो कि मानव की ही तरह दूसरा जीव है और जिसकी शारीरिक प्रक्रिया के अन्तर्गत विटामिनों का स्वत: निर्माण नहीं होता है। पर प्रयोग करके देखा है कि विटामिन सी मानवों के हृदरोग के उपचार में प्रयोग की जा सकती है। उनके अनुसार विटामिन सी की कमी के कारण रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ जाती है। शारीरिक प्रक्रिया के फलस्वरूप कोलेस्ट्राल विखण्डित होता है। विटामिन सी की कमी के कारण कोलेस्ट्राल पूर्णरूपेण विखण्डित नहीं हो पाता है और वह रक्त नलिकाओं में जमता जाता है। लेकिन विटामिन सी की अधिक मात्रा उसे रक्त नलिकाओं से साफ करती है।

अत: हृदरोग में भी विटामिन सी काफी उपयोग है।

अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी रोगों के निवारण में—यूरिक एसिड 'जो विष है' हमारे शरीर में बनता रहता है। इसकी मात्रा अधिक होने से शरीर में आलस्य, शिथिलता तथा रक्त का पीलापन बढ़ जाता है। गरम जल में नींबू का प्रयोग रोज सुबह शाम करने से यह यूरिक एसिड को निकाल देता है।

यदि बाल कमजोर हों, टूटते हों, या शुष्क हों तो बालों की जड़ों में नींबू का रस अच्छी तरह मलने से, फिर पानी से धोने से बालों की जड़े मजबूत होती हैं।

यदि दाँतों में पीलापन आ गया हो तो नींबू के रस के साथ मंजन करने से दाँत चमकने लगते हैं। नींबू के छिलके को सुखाकर, जलाकर बारीक चूर्ण बनाकर उसमें कुछ मात्रा में नमक मिलाकर दाँत साफ करने वाले मंजन बनाये जाते हैं जिनसे दाँत खूब चमकने लगता है।

नित्य सुबह शौचादि से निवृति होकर खाली पेट नींबू का रस पानी में लेना स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है। इसके प्रयोग से भूख का न लगना, पुराना कब्ज, हृदय रोग, सिर दर्द, जी मिचलाना, मूत्र का पीलापन, गैस का उत्पन्न होना, रक्त और चर्म सम्बन्धी रोगों का निवारण हो जाता है। साथ ही साथ यह ध्यान रखें, नींबू का सेवन करते समय उसका बीज पेट में न चला जाय अन्यथा इसका परिणाम ऐपेडीसाइटिस जैसा घातक रोग हो सकता है।

अत: हम देखते हैं कि नींबू की गुणकारी प्रवृति उसमें उपस्थित विटामिन सी के कारण है तथा यह तमाम रोगों के उपचार हेतु प्रयोग में आती है। प्रत्येक दृष्टि से नींबू मानव मात्र के लिए अमृत तुल्य है। नींबू एक साधारण सा फल होते हुए भी बड़ा गुणकारी है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

●●

[पृष्ठ 7 का शेषांश]

क्षारीय साबुन को संतरों से डी० डी० टी० का अपनयन करने के लिए उपयोग करते हैं। ऐल्किल-ऐरिल बेन्ज़ीन सल्फ़ोनेट तथा तेल-विलेय ओलेट साबुन का मिश्रण डी० टी० टी० के अवशेष को हटाने के लिए बहुत प्रभावी हैं। फलों तथा सब्जियों को धोने के लिए ऐल्किल-एरिल सल्फ़ोनेट और सल्फेट के तनु विलयनों का ही खंगालने में प्रयोग होना चाहिए क्योंकि वे स्वयं विषैले पदार्थ हैं।

देश में अन्न की बढ़ती हुई समस्या को देखते हुए कृषि के क्षेत्र में ऐसे वैज्ञानिक अनुसंधानों का होना अति आवश्यक हो गया है जो अन्न का उत्पादन बढ़ाने में सहायक हों। पौधों को हानि पहुँचाने वाले अनेक रोगों को नियन्त्रित करके अन्न का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। कृषि में पृष्ठ-सक्रिय कर्मकों का उपयोग दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है और भविष्य में भी बढ़ेगा। परन्तु अभी तक यह ज्ञात नहीं है कि वातावरण विदूषण में उनका क्या स्थान है? इसके लिए विभिन्न अनुसंधानों का किया जाना आवश्यक है जिससे मानव को भविष्य में अधिक विदूषण की समस्या का सामना न करना पड़े।

●●

अलकोक्साइड रसायनिकी

यशवन्त कोठारी

पिछले दो दशकों में अकार्बनिक रसायनिकी के क्षेत्र में जितना शोध कार्य अलकोक्साइड के क्षेत्र में हुआ है शायद ही किसी अन्य विषय पर हुआ हो करीब 50 तत्वों के एक या ज्यादा अलकोक्साइड विश्व के विभिन्न रसायनशास्त्री बना चुके हैं। भारत में यह काम राजस्थान विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डॉ॰ आर सी॰ मेहरोत्रा की देख-रेख में चल रहा है, अलकोक्साइड के क्षेत्र में नवीन अनुराग 1950 के बाद ही शुरू हुआ, अलकोक्साइड सभी प्रकार के उद्योगों में काम आ रहे हैं,

क्या है ?

अलकोक्साइड $M(OR)_n$ अलकोक्साइड (ROH) तथा धातु (M) के बने यौगिक है, सभी आलकोक्साइडों में M – O – C बन्ध होता है तथा इस बन्ध में ध्रुवीकरण निम्नदिशा में होता है $M^{+\delta} - O^{-\delta} - C$

संश्लेषण :– अलकोक्साइड बनाने के लिये विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है, साधारणतया धातु की प्रकृति तथा अलकोहोल को ध्यान में रखकर विधि का चुनाव किया जाता है।

(1) धातु की अलकोहोल से क्रिया द्वारा— एलकलि धातु बेरीलियम तथा कुछ अन्य धातुओं के एलकोक्साइडों को इस विधि द्वारा बनाते है।

$$M + X\,ROH \longrightarrow M(OR)X + X/2\,H_2$$
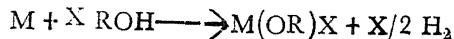
इसी प्रकार धातु के आक्साइडो, शुष्क हेलाइडो पर एलकोहोल की क्रिया द्वारा भी एलकोक्साइड बनाये जाते है।

(2) एलकोहोलि सिरा प्रति क्रियाएँ – मेहरोत्रा तथा सहयोगियों द्वारा इस विधि का काफी प्रयोग किया गया है। इस विधि से बेरीलियम, बोरोन, सिलिकन टाइटेनियम, टेन्टालम आदि धातुओं के एलकोक्साइड बनाये गये हैं। इस विधि में साधारण तथा किसी धातु के अलकोक्साइड को निम्न श्रेणी वाले अलकोहलों से क्रिया कराते है।

$$M(OR)x + R^1OH \longrightarrow M(OR)x{-}x \backslash O{-}R^1$$
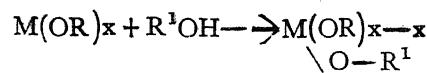
(3) ट्रान्सएस्टेरीफिकेशन प्रतिक्रिया—ब्रडले थोगारा तथा मेहरोत्रा द्वारा इस विधि का व्यापक प्रयोग किया गया है। समीकरण के रूप में विधि को निम्न रूप से लिखा जा सकता है।

$$M(OR)x + x\,CH_3COOR^1 \longrightarrow M(OR')x + x\,CH_3COOR$$
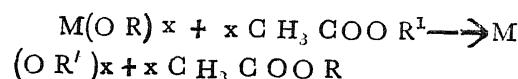
उपरोक्त वर्णित विधियों के अलावा मेहरोत्रा तथा सहयोगियों ने बहुत मिले-झुले अलकोक्साइड भी बनाये है

गुण—इन योगिकों में सह-बन्धता होने के कारण ये कार्बनिक विलायकों में आसानी से घुल जाते है।

चूँकि अलकोक्साइड आसानी से हाइड्रोलाइज हो जाते है। अतः इनके भौतिक गुणों का विस्तृस्त अध्ययन सम्भव नहीं है। इनयोगिकों पर ताप का प्रभाव शीघ्र होता है तथा ग्रुप 3 (B, Al, Ga) तथा ग्रुप 4 व 5 के अलकोक्साइडो की उड़नशीलता तथा उनके बीच पाये जाने वाली बन्धता का अध्ययन करने से पता चला कि धातुओं में सह बन्धता बढ़ती है तथा धातु अलकोक्साइड निम्न रूप का बन जाता है।

$$O{-}M \leftarrow O\overset{M}{\underset{R}{<}} \leftarrow {-}O\overset{R}{\underset{M}{<}}$$

[शेष पृष्ठ 14 पर
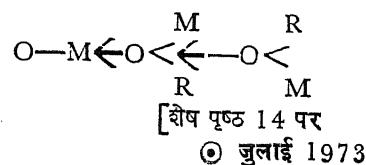
मानव जाति का भयंकर शत्रु—लास्सा वायरस

डा० अरुण कुमार सक्सेना तथा डा० तिलयानी

वायरस का अध्ययन जितना मनोरंजक है, उतना ही मानव जीवन के लियेयह भयंकर तथा हानिकारक भी है। यह विषय शोधकर्ताओं को बड़ा ही रोचक लगता है जैसा कि शिकारियों को मानव भक्षी जानवरों के शिकार करने में आनन्द का होता है। पिछले अनेक वर्षों के आँकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि लगभग सौ मनुष्य वायरसों तथा वैक्टीरियाओं के शिकार हो गये हैं जिनमें अनेक शोधकर्ता तथा चिकित्सक भी सम्मिलित हैं। इनमें से सबसे विषाक्त तथा भयंकर वायरस है लास्सा वायरस है।

लास्सा वायरस अफ्रीका का निवासी है। 1970 ई० के दिसम्बर मास में इसे अमरीका की थोल विश्वविद्याल की प्रयोगशाला में लाया गया था। इसने उस प्रयोगशाला में आते ही करतब दिखाने आरम्भ कर दिये थे। लास्सा वायरस ने सर्वप्रथम इस प्रयोगशाला के कार्यकर्त्ता को ही अपना शिकार चुना था। इसकी भयंकरता तथा हानिकारक क्षमता को को देखते हुये इस पर शोध कार्य एकदम समाप्त कर देना पड़ा था।

इस नये वायरस की कहानी 1969 ई० के जनवरी के मास से आरम्भ होती है इसने नाइजीरिया के लास्सा नगर की एक नर्स जिसका नाम था लाउरा वाइन जो कि वेदर्न मिशन के गिरजे में कार्य करती थी, पर हमला बोल दिया था। इस नर्स को अचानक बहुत ही तीव्र ज्वर चढ़ गया, कै होने लगी, तथा गले के अन्दर छाले पड़ गये थे। इसे त्वचा में गड़बड़ी की शिकायत थी। यह बेचारी नर्स केवल चौबीस घंटों में ही स्वर्ग सिधार गई थी। अगले सप्ताह ही एक दूसरी नर्स—जिसका नाम कु० शारलेट शा था और इसने लाउरा वाइन की अस्पताल में सेवा की थी, इसका दूसरा शिकार बनी और विशेष लक्षणों के साथ वह भी लगभग दस दिनों में स्वर्ग सिधार गई। किसी को इस बात का तनिक भी सन्देह नहीं हुआ कि यह भी इसी लास्सा वायरस की करतूत थी। वास्तव में वायरस को इस समय तक पहिचाना भी नहीं गया था। जब तीसरी लिली पिन्नियों नामक नर्स इसका शिकार हुई तो उसे तुरन्त न्यूयार्क स्थित कोलम्पिया प्रेस्वीटेरियन चिकित्सालय में उपचार के लिये ले जाया गया था। दोनों मृत नर्सों के रक्त के सीरम तथा इसके रक्त के सीरम को परीक्षणों के लिये अमरीका के येल स्थित आर्बोवायरस रिसर्च यूनिट में भेजा गया। लिली लगभग नौ सप्ताह तक इस रोग से सतत युद्ध करती रही और फिर स्वस्थ हो उठी। वास्तविकता यह थी कि चिकित्सक इसका कोई उपचार तथा औषधि नहीं खोज पाये थे।

इधर येल में इसी बीच में तीन चिकित्सकों के दल ने इन्ही तीनों नर्सों के सीरम पर विशेष परीक्षण किये। इन तीनों चिकित्सकों का नाम डा० जोर्डो कासेल, डा० सोन्जा वकले तथा डा० विलवर जी० डोन्स था। अपने परीक्षणों के प्राप्त फलों से ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस रोग का कारण एक नवीन वायरस है जो कि आर्जेंटाइना तथा वोलीवियान के हैमरोहेनिक ज्वर के वायरस से मिलता जुलता है। इस नये वायरस का लास्सा नगर के नाम पर लास्सा वायरस रखा गया।

1970 ई० के जून मास में जून कासेल नामक एक मनुष्य इसका चौथा शिकार बना था। इसे भी तुरन्त कोलंविया प्रेसवीटेरियन चिकित्सालय भेजा

गया। कु० पिन्नियों के कारण कासल महाशय बचा लिये गये और यह इसका उपचार ज्ञात करने की ओर एक नया चरण था। उस नर्स को तुरन्त घर रोचेस्टर से न्यूयार्क बुलाया गया जिससे कि वे अपने रक्त का सीरम दान कर सके। वास्तविकता यह थी कि इस रोग के निवारण के लिये नर्स के शरीर में विशेष एन्टिवोडीज का निर्माण हुआ था उन्हें सीरम से प्राप्त कर कासल महाशय के शरीर में प्रवेश कराया गया था।

इधर लास्सा वायरस ने येल में भी अपने शिकार को खोज निकाला। यह शिकार बेचारा इसी प्रयोगशाला का एक शोधकर्ता था जो कि कासल महाशय के बगल वाले कक्ष में कार्य करता था। इस वायरस ने डा० वकले तथा डा० डोन्स को भी नहीं छोड़ा और वे दोनों बेचारे इससे ग्रसित होकर समाप्त हो गये। डा० डोन्स का कथन था कि अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि यह किस प्रकार फैलता है। इसकी भयंकरता तथा मारक शक्ति को देखते हुये इस पर आगे शोध कार्य करने का विचार एकदम त्याग दिया है। किन्तु अभी हाल में एर्टटलान्टा स्थित यू एस पब्लिक हेल्थ सर्विस के नेशनल कम्यूनीकेविल डिसीज सेन्टर ने इस पर शोधकार्य करने के घोषणा की है। यह शोध कार्य एक विशेष सुरक्षित प्रयोगशाला में बिलकुल आधुनिक उपकरणों की सहायता से होगा। उसमें कार्य करने वालों का विशेष ध्यान रखा जायगा। आज यह वायरस मनुष्य का सबसे भयंकर शत्रु है। इस पर विजय प्राप्त कर मनुष्य अपने ही साथियों का काम तमाम करने के लिये युद्ध भूमि में अमोघ के अस्त्र के रूप में प्रयोग कर सकता है। इस पर का शोध कार्य विशेष महत्व रखता है क्योंकि कहीं यह महामारी की प्रकार रोग न फैलाने लगे। शीघ्र से शीघ्र इसका उपचार खोजना नितान्त आवश्यक है। तथा निकट भविष्य में इस ओर वैज्ञानिकों को सफलता आवश्यक प्राप्त होगी।

[पृष्ठ 14 का शेषांश]

संरचनात्मक विवरण— चूंकि अलकोक्साइडों पर रसायनशास्त्रियों की नवीन रुचि को ज्यादा समय नहीं बीता है। वहुत कम अलकोक्साइडों की संरचना के बारे में हमें पता है। इस सन्दर्भ में अल्युमीनियम पर किया गया कार्य उल्लेखनीय है।

गबिन्सन तथा पीक (1955) ने $[Al(OR)_3]_4$ पर कार्य कर इसकी संरचना को चक्रीय बताया, बाद में मेहरोत्रा ने 'ब्रिज' संरचना को आधार मान कर इन योगिकों के गुणों का अध्ययन किया।

उपयोग—कार्बन धात्विक योगिकों के समान ही एलकोक्साइडो ने भी एक बार फिर अकार्बनिक रसायन को पूर्णजीवन दिया है। सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक कार्यों के अलावा एलकोक्साइड उतप्रेरकों, पेन्ट, वारनिश, ल्युब्रिकेटिंग आइल, रंजिग आदि के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। इन कार्यो में एल्युमीनियम लोहा, टाइटेनियम, परफोनियम आदि धातुओं का विशेष उपयोग है। अमरीका की डयू पोन्ट (Du pont) तथा इंग्लैण्ड की पीटरसोन्स नाम की कार्बनिक अलकोक्साइडों का निर्माण कर रही है। अलकोक्साइडों के महत्व का पता इसी बात से चलता है कि डॉ० आर० सी० मेहरोत्रा इस क्षेत्र में कार्य करने पर देश का विज्ञान के क्षेत्र का सर्वोच्च पुरस्कार शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार दिया गया।

विज्ञान के नये चरण

कमजोर दृष्टि वाले भी पढ़ सकेंगे

कमजोर दृष्टि वाले व्यक्ति, और ऐसे लोग भी जो करीब-करीब अन्धे हो चुके हैं, अब 'औप्टिस्कोप एनलार्जर' नामक एक नई मशीन की मदद से पुस्तकें और समाचार पत्र पढ़ सकेंगे।

यह मशीन 23 सेन्टीमीटर ऊँचे और 36 सेन्टीमीटर चौड़े पर्दे पर छपी हुई या हाथ की लिखी सामग्री को कापनी बड़े आकार में दिखलाती है। 'एनलार्जर' द्वारा प्रकाश का उपयोग किया जाता है। यह प्रकाश आँखों तक पहुँचने वाली रोशनी की मात्रा बढ़ा देता है और इस प्रकार किसी वस्तु या आकृति को स्पष्टता से देखने की आँखों की क्षमता बढ़ जाती है।

इस मशीन को तैयार करने वाली अमेरिकी फर्म का कहना है कि 'औप्टिस्कोप एनलार्जर' चश्मों के उन शीशों से अधिक कारगर है जिन से छोटी चीजें अधिक बड़े आकार में दिखाई देती हैं। यह मशीन उठा कर कहीं भी ले जाई जा सकती है।

गर्भस्थ शिशु लड़का या लड़की

नई दिल्ली स्थित आल इन्डिया इन्सटीट्यूट आफ मेडिकल साइन्सेस के डांक्टरों के अनुसार अब यह संभव है कि गर्भस्थ शिशु के लड़का या लड़की होने की प्रायुक्ति की जा सकती है। अब प्रसव से काफ़ी पूर्व यह बताया जा सकता है कि शिशु के शरीर में कोई विकार तो नहीं है। गर्भ में जिस डल्बी प्रवर्ग (एम्नियोटिक) तरल में शिशु रहता है उसकी जांच करने से वह जाना जा सकता है कि शिशु बालक है या बालिका, सामान्य है या अपसामान्य। इस तरल को, जिसमें शिशु के शरीर द्वारा झड़ी हुई कोशिकायें होती है, हाइपोडरमिस सूई की सहायता से निकाला जाता है इस जाँच को एम्नियो सेंटेसिस कहते हैं और यह 14 वें से 18 वें सप्ताह के बीच किया जाता है। सूई से निकाले गये तरल पदार्थ में उपस्थित कोशिकाओं में छोटे तथा धागे के समान पतले क्रोमोसोम का चित्रण करके माइस्क्रोप की सहायता से जाँच की जाती है। सामान्यतः मनुष्य में 46 क्रोमोसोम होते हैं जिसमें वह जोड़ा भी सम्मिलित होता है जिससे लड़का या लड़की की पहचान की जा सकती हैं। अगर यह क्रोमोसोम दोनों ही XX हैं तो शिशु लड़की है और यह XY का जोड़ा है तो लड़का। शिशु के क्रामोसोमों के आकार रूप तथा संख्या का अध्ययन करके तथा तरल का विश्लेषण करके यह प्रायुक्ति की जा सकती है कि शिशु में किसी प्रकार का दोष तो नहीं है। अपसामान्यता प्रकट होने पर माता की इच्छा से गर्भपात किया जा सकता है। इस प्रकार भी जाँच 40 – 45 वर्ष की महिलाओं के गर्भ धारण करने पर आवश्यक होता है क्योंकि इन महिलाओं में 46 में से। मस्तिष्क विकार केशिशु को जन्म देगी ऐसी संभावना पाई जाती है।

रक्तचाप रिकार्डर

एक नई तकनीक का आविष्कार हुआ है जिससे व्यक्ति अपना रक्त चाप स्वयं नाप सकता है और किसी डाक्टर के सहायकता की आवश्यकता नहीं पड़ती। कमीज़ के कफ़ के आकार की इस साधन को कलाई पर बांध लेने पर रक्त चाप अपने आप एक कागज़ पर अंकित हो जाता है और वह उतना ही सही होता है जितना डाक्टर नाप कर बताता है। यह युक्ति इलेक्ट्रॉनिक्स की सहायता से रक्त वाहिनी में बहने वाले रक्त की ध्वनि को ग्रहण करके चाप का मान

[शेष पृष्ठ 23 पर

विज्ञान वार्ता

शनि ग्रह की पट्टियाँ शायद ठोस पदार्थ से बनी हैं

चमकीले ग्रहों में शनि (सेटर्न) सबसे अधिक दूरी पर है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी की अपेक्षा यह लगभग १० गुनी दूरी पर है। इस उपग्रह की एक अनूठी विशेषता है इसका चक्कर लगाने वाली तीन पट्टियाँ।

वैज्ञानिकों में इन पट्टियों की बनावट पर सदैव विवाद रहा है बहुत से वैज्ञानिकों का यह ख्याल रहा है कि इन पट्टियों का निर्माण गैस, बर्फ या धूल से अथवा इनमें से किन्हीं चीजों के मेल से हुआ है।

अभी हाल में पट्टियों वाले इस ग्रह के बारे में की गई पहली सफल छानबीन में, पैसाडीना कैलीफोर्निया) की 'जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी' के ज्योतिर्विदों इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि शनि ग्रह की इन पट्टियों का निर्माण ठोस पदार्थ के बड़े-बड़े टुकड़ों से हुआ जान पड़ता है जो छोटे-छोटे चन्द्रमाओं के झुण्ड के समान घूमते हैं।

ऐसा लगता है कि इस खोज से इन सिद्धान्तों की पुष्टि होती है कि ये पट्टियाँ शनिग्रह के चन्द्रमा के उस पदार्थ से प्रतिक्षिप्त होने वाले सूर्य के प्रकाश की सूचक हैं जो पिण्डीभूत नहीं हो सका है और जिसके कण उड़ते रहते हैं।

लेबोरेटरी के डा० रिचर्ड एम० गोल्डस्टाइन और जीर्ज एम० मौरिस, जूनियर, ने, मोवावे मरुभूमि (कैलिफोर्निया) में लगे रेडार स्पर्शसूत्र का उपयोग करके, दिसम्बर और जनवरी में कई बार शनि ग्रह की पट्टियों से टकरा कर लौटे रेडार-संकेतों को प्राप्त किया।

पृथ्वी भेजे गये रेडार-संकेत गैसों अथवा बर्फ में जज्ब हो जाते। धूल के कण इतने छोटे होते हैं कि उनसे टकरा कर संकेत इतने जोरों से पृथ्वी पर वापस नहीं आ सकते।

रिपोर्ट में कहा गया है कि शनि ग्रह से, जिस पर घना वायुमण्डल छाया हुआ है, रेडार की ऐसी प्रतिध्वनियाँ प्रतिक्षिप्त नहीं हुई जिनका पता लग सकता। इससे प्रकट होता है कि शनि ग्रह की ठोस सतह तक पहुँचने से पहले ही ये रेडार-संकेत वायुमण्डल के कारण कमजोर पड़ गये।

शनि ग्रह की जिन तीन पट्टियोंकी अब तक पहचान की जा चुकी है, उनका फैलाव बाहर की ओर करीब १,३६,००० किलोमीटर है। अन्दर की मुख्य पट्टी की चौड़ाई २७,६०० किलोमीटर कूती जाती है। पहले इन पट्टियों की चौड़ाई बहुत कम समझी जाती थी।

तथापि, ये पट्टियाँ वैज्ञानिकों के लिए अब भी पहेली बनी हुई हैं। प्रश्न यह है कि इन पट्टियों की सृष्टि कैसे हुई? वैज्ञानिकों का ख्याल है कि एक बड़ा उपग्रह एक बार शनि के बहुत निकट पहुँच गया और विशाल ग्रह की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से टुकड़े-टुकड़े हो गया।

पट्टियों की बनावट के बारे में नई जानकारी से अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों को उन सम्भावित संकटों का पूर्वानुमान करने में मदद मिलेगी जिनका सामना शनि ग्रह की ओर अथवा उसके निकट उड़ने वाले अन्तरिक्षयान को करना पड़ सकता है। ओरिका के 'राष्ट्रीय' उड्यन एवं अन्तरिक्ष प्रकासन' (नैसा) एक मैरिनर अन्तरिक्षयान छोड़ने का विचार कर

रहा है जो १९७७ में बृहस्पति और शनि ग्रहों के पास से होकर गुजरेगा। पट्टियों के बारे में नई खोज की रोशनी में, वैज्ञानिक अन्तरिक्षयान का उड़ान-पथ निर्धारित करते हुए उसे पट्टियों से काफी दूर रहेंगे।

वायुमण्डल में दूषण की रोकथाम के लिए मद्रास संस्थान में अनुसन्धान

मद्रास के भारतीय तकनीकी संस्थान ने एक अनुसन्धान का कार्य अपने हाथ में लिया है जिससे वायुमण्डल में मोटरगाड़ियों के धुएँ से होने वाली गन्दगी की रोकथाम करने में सहायता मिल सकेगी।

इस योजना के अधीन डीजल इंजनों वाली गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ की रोकथाम करने का यत्न किया जायेगा। इस छानबीन के लिए अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान ने अमेरिकी सरकार की ओर से 85,250 रुपये का अनुदान किया है।

वाणिज्य-दूत श्री पामर ने आशा प्रकट की कि वायुमण्डल में गन्दगी की रोकथाम के लिए मद्रास के संस्थान के प्रयत्नों के फलस्वरूप संसार को जन-स्वास्थ्य की इस संकटकारी समस्या का मुक़ाबला करने के सम्बन्ध में नई जानकारी प्राप्त होगी।

क्या अन्तरिक्ष में जीव है ?

जब 'अपोलो—11' अन्तरिक्षयान चन्द्रमा पर पहली बार अवतरण के लिए जुलाई 1969 में केप कैनेडी से रवाना हुआ तो संसार भर के वैज्ञानिकों को आशा थी कि अन्तरिक्ष यात्रियों को चन्द्रमा पर जीवों की विद्यमानता के कुछ प्रमाण मिलेंगे। असल में, जब 'अपोलो—11' के तीनों अन्तरिक्षयात्री नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन और माइकेल कालिन्स—पृथ्वी पर लौटे तो उन्हें इस भय से अलग-थलग रखा गया कि वे शायद अपने साथ चन्द्रमा से कुछ खतरनाक कीटाणु लेकर आये हों।

उसके बाद से पाँच और अपोलो यान चन्द्रमा पर उतर चुके हैं और उन्होंने निस्सन्देह यह सिद्ध कर दिया है कि उजाड़ चन्द्रमा पर जीव नहीं हैं, यहाँ तक कि प्रारम्भिक रूप में भी नहीं है।

किन्तु, सौर-मण्डल में अन्य ग्रहों के चन्द्रमाओं (उपग्रहों) पर जीवों के बारे में क्या सम्भावनाएँ हैं ?

अभी हाल में इथैका (न्यूयार्क) के कोर्नेल विश्वविद्यालय में ज्योतिर्विद काल सैगन के साथ काम कर रही अमेरिकी वैज्ञानिकों की एक टोली इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि टाइटन (उपशनि) पर जीवों के होने की सम्भावना है। टाइटन उपग्रह शनि (सैटर्न) के दस चन्द्रमाओं में सबसे बड़ा है।

टाइटन उपग्रह आकार में उतना ही बड़ा है जितना कि बुध (मर्करी) ग्रह। इन्फ्रारेड तथा दूरवीक्षण यन्त्रों द्वारा की गई पैमाइश से सैगन और उनके सहयोगी इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि पहले टाइटन के जितना गरम होने का अनुमान लगाया गया था, उसको अपेक्षा यह अधिक गरम (लगभग 100 अंश फारेनहाइट) है। इसका वायुमण्डल भी उससे अधिक घना है जितना कि ख्याल किया जाता था और उससे अन्तरिक्ष में अल्प मात्रा में हाइड्रोजन गैस निकलती रहती है। (इसी प्रकार की स्थिति पृथ्वी के बाह्य वायुमण्डल में भी पाई गई है।)

टाइटन की इन विचित्र स्थितियों के कारण कॉर्नेल के वैज्ञानिकों ने एक विचित्र और तूफानी विश्व का चित्र तैयार किया है।

प्रश्न उठता है कि टाइटन, जो पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से करीब दसगुनी दूरी पर है, इतना गरम कैसे रहा ? सैगन का कहना है कि टाइटन का वायु-मण्डल अवश्य ही "कोमल पोधों को उगाने के शीशे के घर जैसा प्रभाव" उत्पन्न करता होगा—यानी वह अन्तरिक्ष में जितना ताप फैलाता है उससे कहीं अधिक ताप को अपने बादलों के नीचे संरक्षित रहता है।

उनका विश्वास है कि टाइटन के बादलों का निर्माण शायद जंग जैसे लाल रंग के प्रांगारिक मिश्रणों से हुआ है और ये मिश्रण ज्वालामुखियों के फटने से निकलने वाली हाइड्रोजन, मैथेन (सड़ी हुई वनस्पति से उत्पन्न गैस) और अमोनिया के घने वायुमण्डल में प्रवहमान रहते हैं।

सूर्य के प्रकाश के सामने आने से ये गैसें शर्करा और एमिनो एसिड जैसे प्रांगारिक मिश्रणों का रूप ले सकती हैं। विभिन्न घटकों का इस प्रकार का मिश्रण उस प्रारम्भिक जूष' जैसा ही है जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी पर जीवों का विकास उसी के फलस्वरूप हुआ था।

सैगन का कहना है : "टाइटन समय बताने वाली एक ऐसी मशीन के समान है जिससे हम पीछे की ओर पृथ्वी के प्रारम्भिक काल पर दृष्टि डाल सकते हैं। मैं नहीं समझता कि वहाँ जीव होने की बात असंगत है।"

अमेरिका का 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' (नैसा) 1970 के दशक के अन्त में दो मानवहीन अन्तरिक्षयान छोड़ने का विचार कर रहा है। ये यान 1979 तक बृहस्पति के क्षेत्र में पहुँचेंगे और वहाँ से, बृहस्पति के गुरुत्वाकर्षण की सहायता से, 1981 में शनि (सैटर्न) ग्रह के पास से होकर गुजरेंगे।

इन उड़ानों के दौरान, स्वचालित उपकरणशनी ग्रह के उपग्रहों, विशेष रूप से टाइटन, का निकट से अध्ययन कर सकेंगे, क्योंकि अन्तरिक्षयान इस उपग्रह से लगभग 160 किलोमीटर की दूरी से होकर गुजरेंगे।

पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय के युवा इन्जिनियर द्वारा नवीन उर्वरक-यन्त्र का विकास

भरपूर फसल लेने के लिए उत्तम तथा उपयुक्त कोटि के उर्वरकों का उपयोग करना बहुत जरूरी होता है। उर्वरकों के उचित इस्तेमाल से उपज में कई गुना वृद्धि की जा सकती है। लेकिन, भारतीय किसान, अधिकतर ठोस उर्वरक, जैसे यूरिया और अमोनिया सल्फेट ही इस्तेमाल करते हैं। वैज्ञानिकों की राय है कि एमोनिया गैस ठोस उर्वरकों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है तथा इसके इस्तेमाल से अधिक उपज भी मिलती है। इसका इस्तेमाल होने पर फसलों के बच रहे ठूँठ भी जल्दी गल जाते हैं तथा मिट्टी में हानिकारक जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। एमोनिया गैस का इस्तेमाल करने से मिट्टी लसदार बनी रहती है।

अमेरिका में खेतों में एमोनिया गैस इस्तेमाल करने के लिए एक सर्वथा नवीन विधि 'इंजेक्शन सिस्टम' का उपयोग किया जाता है इस विधि के अन्तर्गत एमोनिया गैस कुछ गहराई पर मिट्टी के अन्दर छोड़ी जाती है जिसे मिट्टी सीधे जज्ब कर लेती है।

पन्तनगर स्थित गोविंद बल्लभ कृषि विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक कुछ समय से भारत में इस विधि का उपयोग करना चाहते थे। परन्तु उसके लिए आवश्यक उपकरण भारत में सुलभ नहीं थे। बम्बई की एक फर्म ने 22,000 रुपये के मूल्य पर अमेरिका से आयत किया एक 'एमोनिया इंजेक्टर' उपकरण देने का प्रस्ताव किया अवश्य, परन्तु उक्त फर्म उसकी प्रामाणिकता की गारण्टी देने के लिए तैयार नहीं हुई। अतएव कुलपति महोदय, डा० ध्यानपाल सिंह ने विश्वविद्यालय के एक युवा इन्जिनियर श्री एम० डी० गर्ग को देशी साधनों से और कम लागत का यह उपकरण तैयार करने का आदेश दिया।

कई महीनों के निरन्तर प्रयोग और प्रयत्नों के उपरान्त पन्तनगर स्थित कृषि विश्वविद्यालय के श्री एम० डी० गर्ग एक यन्त्र तैयार करने में सफल हो गए हैं जिसका शीघ्र ही विश्वविद्यालय के फर्म में प्रयोग किया जाएगा। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो भारत में बहुत कम लागत पर एमोनिया इंजेक्टर तैयार होने लगेंगे तथा विदेश से उन्हें आयात करने की जरूरत नहीं रहेगी।

श्री गर्ग द्वारा विकसित इस देशी यन्त्र में नीचे की ओर दो लम्बे फलक लगे हैं। यह फलक अन्दर से पोले हैं और यन्त्र के खेत में चलाते समय जमीन के अन्दर कई इंच की गहराई तक धँस जाते हैं। पोले फलकों का सम्बन्ध प्लास्टिक के लम्बे ट्यूबों द्वारा एमोनिया गैस के टैंक से है। टैंक और फलकों के बीच कई वाल्वों की व्यवस्था की गई है। यह पूरी मशीन ट्रैक्टर पर आसानी से फिट की जा सकती है तथा ट्रैक्टर पर बैठा व्यक्ति इच्छानुसार वाल्व खोल या बन्द कर सकता है। वाल्व खुलने पर टैंक में मौजूद एमोनिया ट्यूबों से होती हुई फलकों में पहुँचती है और वहाँ से निकल कर मिट्टी में मिल जाती है। गहराई पर पाई जाने वाली नम मिट्टी इस एमोनिया गैस को तुरन्त जज्ब कर लेती है। दोनों फलकों में लोहे के छोटे पाटल भी है जो फलकों द्वारा की गई खोदाई को समतल करते चलते हैं। इसके कारण एमोनिया गैस ऊपर नहीं निकल पाती।

विदेशों में विज्ञान के बढ़ते चरण

प्रयोगशाला में चन्द्र चट्टान का संश्लेषण

रूस की अंतरिक्ष अन्वेषण संस्थान के वैज्ञानिकों ने पिछले दिनों प्रयोगशाला में 'ल्यूनाइट' का संश्लेषण किया। ल्यूनाइट शैल रासायनिक रचना और भौतिक रासायनिक गुणों में चंद्र चट्टानों के एकदम सदृश्य हैं।

इस बारे में यह प्रश्न उठ सकता है कि प्रयोगशाला में ऐसी चट्टान बनाने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई जब प्राकृतिक चन्द्र चट्टानों के नमूने उपलब्ध हैं। वैज्ञानिकों ने चाँद का पृथ्वी पर से अवलोकन करके, विभिन्न अंतरिक्ष यानों द्वारा लिये गये चाँद के चित्रों का अध्ययन करके तथा अपोलो और लूना द्वारा लाये गये चन्द्र चट्टानों के नमूनों का विश्लेषण करके, चाँद की उत्पत्ति और उस पर चट्टानों के बनने की क्रियाओं के बारे में कुछ परिकल्पनाएँ बनायी थीं। इन परिकल्पनाओं की सत्यता परखने के लिए यह आवश्यक था कि इन घटनाओं को छोटे पैमाने और अपेक्षाकृत बहुत अल्प अवधि में प्रयोगशाला में दुहराया जाये। फलस्वरूप ल्यूनाइट प्राप्त हुआ।

परीक्षणों में ल्यूनाइट के गुणधर्म वास्तविक चंद्र चट्टानों के तुल्य पाये जाते हैं। इससे वैज्ञानिकों की चाँद संबंधी अनेक परिकल्पनाएँ कसौटी पर खरी उतरी हैं।

अब हमें विदित है कि चाँद की वास्तविक सतह रिगोलिथ से ढँकी हुई है जिसके फलस्वरूप तथा वायु जल वर्षा आदि के क्षरण की अनुपस्थिति में, वह पिछले अरबों वर्षों से लगभग अपरिवर्तित है। साथ ही उल्कापिंडों के आघात अथवा ज्वालामुखी के लावे भी परिरक्षित हैं।

रिगोलिथ स्वयं एक भुरभुरा पदार्थ है जिसमें धूल रेत, और चट्टानों के टुकड़े हैं। साथ ही उसमें उल्काओं के टुकड़े तथा कांच और कांचीय कण भी हैं। ल्यूनाइट संश्लेषण का कार्य दाब कक्षों तथा अनेक जटिल उपकरणों की सहायता से किया गया है। उस पर उल्काओं का प्रभाव डालने के लिये लेसर किरणों का उपयोग किया गया।

राष्ट्रीय प्रयोग शालाओं से
मृत्तिका से ऐलुमिनियम सल्फेट

नयी दिल्ली। क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला जोरहाट में मृत्तिका (क्ले) से ऐलुमिनियम सल्फेट तैयार करने की विधि विकसित की गयी है।

ऐलुमिनियम सल्फेट एक महत्वपूर्ण रसायन है, जो वस्त्र व कागज उद्योग, जल स्वच्छीकरण तथा अनेक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। विभिन्न कार्यों में इस रसायन की खपत इसकी शुद्धता के अनुसार की जाती है।

प्रचलित विधि में यद्यपि बॉक्साइट नामक अयस्क से यह तैयार किया जाना लाभदायक रहता है क्योंकि रसायन को निश्चित मात्रा प्राप्ति हेतु बाक्साइट की आधी मात्रा की ही आवश्यकता होती है। परन्तु भारत में बॉक्साइट की बड़ी खदानें या तो दक्षिण में हैं अथवा बिहार में। दूर के कारखानों के लिए बॉक्साइट मँगाने में अनेक कठिनाइयां हैं और यह मँहगा भी पड़ता है।

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला जोरहाट (असम) में विकसित विधि के आधार पर अब यह संभव हो गया है कि उपलब्ध स्थानीय मृत्तिका से ही अति शुद्धता का ऐलुमिनियम सल्फेट तैयार किया जा सके। तैयार रसायन की जाँच की गयी है और यह उद्योगों के लिए अति उपयुक्त है।

अनुमान किया जाता है कि व्यापारिक स्तर पर उत्पादन करने के लिए २० टन प्रति वर्ष क्षमता वाले रसायन संयंत्र की स्थापना में ४८,००० रु० तथा कार्यकारी पूँजी के लिए ५,४०० रु० की आवश्यकता होगी। प्रति किलोग्राम रसायन (१५ प्रतिशत सेलुमिना और ०·१ प्रतिशत से कम लोहा युक्त) के उत्पादन में लगभग ७२ पैसे की लागत आयेगी। आवश्यक संयंत्र और कच्चा माल देश में सरलता से उपलब्ध है।

प्लास्टिक का रेल डिब्बा : प्रचलित डिब्बों से बेहतर

हाल ही में ब्रिटेन में सम्पूर्ण रूप से प्लास्टिक से ही बने रेल के डिब्बे ने अपने कार्यकाल के 10 वर्ष पूरे किये। पिछले दस वर्षों से यह डिब्बा रेलगाड़ियों में उसी तरह से इस्तेमाल किया जाता रहा था जैसे लकड़ी और धातु से बने साधारण डिब्बे प्रयुक्त किये जाते हैं। मजेदार बात यह है कि इतने समय तक इस्तेमाल करने के बाद जब उसे परखा गया तब वह एकदम सही हालत में पाया गया।

इस प्रकार के डिब्बे बनाने का उद्देश्य निर्माण कार्यों के लिये तथा हर प्रकार के मौसम को सहन करने हेतु पुनः समर्थित प्लास्टिक की उपयुक्तता परखना था। इस डिब्बे के बाहर और अन्दर ही और किसी अन्य पदार्थ की सतह नहीं बढ़ायी गयी थी।

ब्रिटिश रेलों के तकनीकी केन्द्र के वैज्ञानिक श्री बी० क्लीथेरो के अनुसार 'प्रचलित रेल डिब्बे, दस वर्ष तक, जिस दौरान उनकी मरम्मत न हुई हो, इस्तेमाल के बाद इतने मजबूत और सुन्दर नहीं रह सकते जितना प्लास्टिक का उक्त डिब्बा।

(विज्ञान समाचार सेवा)

1990 तक मानव की जीवन अवधि बढ़ जायगी ?

विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने अनेक क्षेत्रों में कल्पनातीत प्रगति की है। स्वयं अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने में भी मनुष्य ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। वास्तव में विज्ञान की उपलब्धियाँ इतनी अधिक और इतनी चमत्कारी हैं कि उनके संदर्भ में साधारण मनुष्य का यह प्रश्न करना कि 'जराविज्ञान' (जेरन्टीलॉजी) के बारे में किये गये अनुसंधानों ने हमारी जीवन अवधि को बढ़ाने में क्या उल्लेखनीय सहायता दी है?' विचित्र लगता है। यह सत्य है कि इस क्षेत्र में अभी तक विशेष उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त नहीं हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अभी तक उक्त क्षेत्र में किये गये अध्ययन चूहों अथवा अन्य अल्प अवधि तक जीवित रहने वाले जन्तुओं तक ही सीमित रहे हैं।

इन अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि आयु बढ़ने साथ-साथ प्रत्येक जन्तु में जीवन शक्ति का ह्रास होता रहता है और यदि बूढ़े होने में एक नियमितता है तब यह स्पष्ट है कि शरीर में कोई ऐसी 'घड़ी' है जो इस परिवर्तन को नियंत्रित करती है। इस 'घड़ी' में आवश्यक संशोधन करके बुढ़ापे की ओर ले जाने वाले परिवर्तनों की दर बदली जा सकती है।

इस संदर्भ में यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि मैककाय का सुप्रसिद्ध सिद्धान्त—चूहों को कम केलोरी वाला (कम पौष्टिक) भोजन देने से उनकी जीवन अवधि बढ़ जाती है—मनुष्यों पर क्यों नहीं परखा गया? इसका कारण कदाचित यह है कि मनुष्य के बारे में निर्भरणीय निष्कर्ष प्राप्त करने के लिये 20 से 30 वर्ष तक निरन्तर अध्ययन करना जरूरी होता है। कदाचित इतनी लम्बी अध्ययन अवधि के कारण ही एन्टीआक्सीडेण्ट, एन्टी-क्रॉसलिंकिंग एजेण्ट (क्रॉसलिंकिंग एजेण्ट शीघ्र बुढ़ापा लाने में मदद करते हैं), प्रतिरक्षाकारी नुस्खे (इम्यूनिलॉजिकल प्रिपरेशन) (समझा जाता है कि आयु वृद्धि के साथ-साथ शरीर के स्वप्रतिरक्षा-ऑटोइम्यून-रोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना अधिक हो जाती है), मनुष्यों पर नहीं परखे जा सके हैं।

पिछले दिनों अल्प अवधि में मनुष्य पर आयु की वृद्धि के प्रभावों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया। ऐसे पैरामीटर निश्चित करने के बारे में सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे 3-5 वर्षों के अंतराल पर आयु वृद्धि के प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। एन्थ्रोमेटी, त्वचा का लचीलापन, बालों का सफेद होना (प्रतिएक्सिला-सफेद बालों का प्रतिशत) ऐल्बूमिन-लोबुलिन अनुपात, नाखूनों में कैल्सियम की प्रतिशत मात्रा आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी एकत्रित कर लेने के बाद, वैज्ञानिकों का मत है कि 1975 तक वे आयु में वृद्धि के दुष्प्रभावों को रोकने के बारे में मनुष्यों पर प्रयोग करने लगेंगे। यदि चूहों पर सफलता-पूर्वक आजमायी गई कोई तकनीक मनुष्यों पर प्रयोग करने हेतु उपयुक्त पायी गयी तब 1990 तक कुछ ऐसे एजेन्ट ज्ञात कर लिये जाने की सम्भावना है जो उक्त दुष्प्रभावों को कम कर सकेंगे। यह भी सम्भावना है कि उस समय तक ऐसे एजेण्ट अपेक्षाकृत सस्ते प्राप्त हो सकेंगे। इन एजेण्टों के सही इस्तेमाल से मनुष्य की जीवन अवधि में 20 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाने की सम्भावना है।

(विज्ञान समाचार सेवा)

[पृष्ठ 17 का शेषांश]

बताती है। जिन व्यक्तियों का रक्त चाप उच्च होता है उनके उपचार के लिये उस समय के रक्त चाप को जानना आवश्यक होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये इस युक्ति की विशेष उपयोगिता होगी।

दांत से सुनना

'पापुलर मेकैनिक' जूर्नाल की एक सूचना के अनुसार कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा लघु यंत्र बनाया है जिसकी सहायता से बहरे लोग अपने दांतों से कम्पन ग्रहण करके सुन सकते हैं। इस यंत्र में एक संग्राही और एक प्रेषित्र होता है। इसे पहना भी जा सकता है और जेब में रख कर भी काम में लाया जा सकता है। ध्वनि के कम्पन को ग्रहण करके दांत में लगे संग्राही को प्रेषित किया जाता है। दांत में लगाने वाला संग्राही बहुत छोटा होता है और नकली दांतों में भी लगाया जा सकता है। दांत में लगा यह संग्राही ध्वनि को ऊपरी जबड़े की हड्डियों से होकर आन्तरिक कान तक पहुँचा देता है। शोध से पता चला है कि दांत कान के पीछे की हड्डी संरचना की अपेक्षा ध्वनि के अच्छे चालक होते हैं।

सम्पादकीय

विज्ञान और तकनीकी में कितनी उन्नति हो गई है इसका अन्दाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि पृथ्वी पर बैठ कर अन्तरिक्ष यात्रियों को ऐसे तरकीबें बताना जिससे कि अपोलो 13 सुरक्षित वापस लौटाया जा सका। एक स्थिति यह आगई थी कि यह सुनिश्चित हो गया था कि इस उड़ान में अमरीका को भारी असफलता हो गई है और बाद की उड़ानें भी रद्द हो जायेंगी। हम जानते हैं कि किस प्रकार कम्प्यूटर की सहायता से सारी त्रुटियां ठीक हो गईं और यान वापस लौट आया। अमरीका की उड़ानों में मनुष्य हर बार जाते रहे और अन्वेषण की सामग्री अपने साथ लाते रहे। रूस ने लूना 16 को चांद पर उतारा और उसने ही वहाँ की चट्टान इकत्रित की और चट्टान के साथ वह वापस भी लौट आया। बिना मनुष्य को भेजे (जिसमें रूस को अभी तक सफलता नहीं मिल पाई है) चांद पर की मिट्टी लाकर प्रयोगशाला में उसका परीक्षण अपने में एक अनूठा प्रयास था। रूस ने ही चन्द्रतल पर एक गाड़ी उतारी जो कई महीने तक वहाँ चलती रही और महत्वपूर्ण चित्र लेकर पृथ्वी पर भेजती रही। चन्द्रमा की 'रात' में, जबकि ताप शून्य से बहुत नीचे चला जाता है, उसने स्वयं अपने लिये छायादार स्थान खोज निकाला उस स्थिति के बने रहने तक वह स्थाई हो गई और 'दिन' आने पर फिर स्वतः चालित हो गई। इसका सम्पूर्ण नियन्त्रण वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर से ही किया। अभी हाल ही में अमरीका ने जब स्थाईलैब को पृथ्वी की कक्षा में भेजा तो शीघ्र ही उसमें त्रुटियों के कारण यह लगने लगा कि यह कार्यक्रम सफल न हो पायेगा क्योंकि एक सोलर पैनल के न खुल सकने के कारण भीतरी कक्ष का ताप 150°F हो गया और इस स्थिति में वहां जाकर कोई प्रयोग कर सकना असंभव हो गया था। वैज्ञानिकों व इंजीनियरों ने मिल कर उपाय निकाल ही लिया और कानरॉड पीट के नेतृत्व में जो पहली टोली गई उसने न केवल सारी त्रुटियों को ठीककर लिया वरन 28 दिन तक उसमें रहकर सभी आवश्यक और पूर्व निश्चित प्रयोगों को सम्पन्न किया। अब दूसरी टोली भी जाने की तैयारी कर रही है। इन सफलताओं तथा अन्य कई को ध्यान से हम यदि देखें तो स्पष्टतः यह पता चल जायगा कि मानव मस्तिष्क असीमित सफलतायें प्राप्त करने में सक्षम है। हमें आशा है कि भविष्य में ऐसे चमत्कार देखने को मिलेंगे जिन पर सारे मानव को गर्व होगा।

भारतीय विज्ञान पत्रिका, समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3 5/

भाग 111 | फाल्गुन 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द जून 1973 | संख्या 12

ज़हरीले पदार्थों का शरीर से निष्कासन

कुलदीप राज धारीवाल

मानव शरीर में अनेक प्रकार की परिवर्तनशील प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं जिनके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सभी उत्पाद शरीर के अनुकूल ही हों। इनमें से कुछ लाभदायक व कुछ हानिकारक होते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो न तो लाभदायक होते हैं और न ही हानिकारक ! अगर हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर नहीं निकाला जाय तो वे शरीर की गतिविधियों में रुकावट डाल सकते हैं। ये रुकावटें कभी-कभी मनुष्य की मृत्यु का कारण भी बन सकती हैं। वे सभी प्रतिक्रियाएँ जिनके द्वारा इन हानिकारक उत्पाद को या तो हानिरहित पदार्थ में बदला जाए या उन्हें शरीर से बाहर निकाल दिया जाए या उन्हें किसी ऐसे पदार्थ में बदल दिया जाय जो कि शरीर से मूत्र अथवा मल से आसानी से निकल जाता हो—निर्जीवविषीकरण कहलाती है।

इस प्रकार के हानिप्रद पदार्थ शरीर में दो प्रकार से पैदा होते हैं। एक तो वे जो जीवाणुओं के फलस्वरूप पैदा होते हैं और दूसरे वे जो शरीर में दवाइयों व अन्य भोजन के साथ लिये जाते हैं। बड़ी आँत में पाए जाने वाले जीवाणु भोजन के अपचे भाग पर क्रिया करते हैं और उन्हें हानिप्रद पदार्थों में बदल देते हैं।

हमारा भोजन मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व वसा का बना होता है। कार्बोहाइड्रेट के पूर्ण पाचन के फलस्वरूप जो पदार्थ बनते हैं वो शरीर के लिए हानिप्रद नहीं होते हैं। वस्तुतः उनमें से कुछ तो लाभप्रद भी होते हैं। वसा के उत्पाद भी ज्यादा हानिप्रद पदार्थ नहीं बनते। प्रोटीन के पाचन के फलस्वरूप अमीनो एसिड् बनते हैं। केडावेरिन (पेन्टामिथाइलीन डाइ अमीन) और प्यूट्रिसिन (टेट्रामिथाइलीन डाइ अमीन) लाइसिन व आर्नीथीन से कॉर्बन डाइ ऑक्साइड के अणु के निकल जाने पर बनते हैं। ये पदार्थ टोमेन विषीकरण करते हैं। यह पदार्थ आँत की म्यूकोसा में डाइ अमीन ऑक्सीडेस एन्जाइम के द्वारा ऑक्सीकृत हो जाते हैं। और इस प्रकार इन पदार्थों को रक्त तक पहुँचने नहीं दिया जाता। अमीनो एसिड टाइरोसिन से टाइरेमिन व हिस्टीडीन से हिस्टामिन कार्बोक्सिलहरण की क्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। हिस्टामिन सरल पेशी संकोचनी है और यह

आमाशय रस के स्राव में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हिस्टामिनेस के द्वारा इमिडाजोल एसिटल डीहाइड में परिवर्तित हो जाता है।

शरीर हर प्रकार से या तो विषैलापन को कम करने का प्रयत्न करता है या उन्हें बाहर निकालने की चेष्टा करता है। निर्जीवविषीकरण की यह क्रिया मुख्य रूप से निम्न चार प्रकार से होती हैं—

1—ऑक्सीकरण—प्राइमरी अल्कोहल या तो एल्डिहाइड व कार्बोक्सिलिक एसिड के द्वारा CO_2 व पानी में बदल दिया जाता है या उसका युग्मन हो जाता है। इथेनोल पानी व CO_2 में एसिटल्डिहाइड व एसिटिक एसिड के द्वारा बदला जाता है। सेकेन्डरी एल्कोहल कीरोना में ऑक्सीकृत हो जाते हैं। इथाइलीन ग्लायकोल, जो कि प्रतिहिमायक के काम आता है, विषाक्त होता है अथवा नहीं, अभी तक संदेहात्मक है। प्रोपाइलीन ग्लायकोल परिमित मात्रा में जहरीला नहीं होता है क्योंकि यह आसानी से लेक्टिक एसिड में ऑक्सीकृत हो जाता है। लेकिन अधिक मात्रा में इसका युग्मन हो जाता है और यह ग्लूकोरोनाइड के रूप में उत्सर्जित हो जाता है। क्लोरल एक लम्बे अरसे से सम्मोहक के रूप में मनुष्य के द्वारा काम में लिया जाता है। मनुष्य में यह पदार्थ ट्राइक्लोरो एसिटिक एसिड (T C A में ऑक्सीकृत हो जाता है और उसके लवण के रूप में ही उत्सर्जित होता है। लेकिन अधिकतर यह पदार्थ ट्राइक्लोरोएथेनॉल अपचयन उत्पाद और ग्लूकोरोनाइड युग्मन उत्पाद के रूप में ही उत्सर्जित होता है। सल्फर अधिकतर सल्फेट में ऑक्सीकृत हो जाते हैं जो कि आसानी से उत्सर्जित हो जाते हैं। ये कार्बनिक, अकार्बनिक या उदासीन सभी रूप में उत्सर्जित हो सकते हैं। खरगोश में थायोग्लाकोलिक-एसिड के सल्फर कार्बनिक व उदासीन रूप में व चूहे में अकार्बनिक रूप में उत्सर्जित होते हैं।

2—जलअपघटन—(अ) प्रोकेन जलअपघटन के द्वारा पैरा अमीनो बेंजोइक एसिड (PABA) और डाइ-एथिल अमीनो इथेनोल में बदल दिया जाता है। प्रोकेन एस्टेज एन्जाइम यह क्रिया करता है

(ब) एट्रोपीन, एक औषधि जो पहले केन्द्रीय तंत्रिका संस्थान को उत्तेजित करता है और बाद में मन्द और जो हृदय गति व आमाशय उत्सर्जन को कम करता है एट्रोपीन एस्टेज के द्वारा ट्रापिक एसिड व ट्रापीन में बदल जिया जाता है।

(स) एस्प्रीन जो कि ज्वरांतक है व यकृत एस्टेज के द्वारा सैलिसिलिक एसिड व एसिटिक एसिड में परिवर्त्तित कर दिया जाता है।

3—अवकरण—(क) पिक्रिक एसिड पिक्रेमिक एसिड में अवकृत हो जाता है जो कि मूत्र के साथ आसानी से उत्सर्जित हो जाता है।

(ख) ट्राइनाइट्रोटालुइन NO_3 समूह अमीनो ग्रुप में अवकृत होता है।

ऊपर बताए गए तीन विधियों के फलस्वरूप जो पदार्थ पैदा होते हैं वे यह आवश्यक नहीं कि हानिरहित ही होते हों और आसानी से मूत्र द्वारा उत्सर्जित कर दिये जाते हों। ये पदार्थ इसके बाद युग्मन के द्वारा पूर्ण रूप से हानिरहित पदार्थ में बदले जाते हैं।

4—युग्मन—इस विधि में सामान्यत: एक एस्टर या ईथर की तरह का बंध ग्लुक्यूरोनिक एसिड के साथ बनता है।

अनेक प्रकार के वे पदार्थ जिनमें फीनॉल एल्कोहोल हाइड्राक्सिल या कार्बोक्सिलिक एसिड होते हैं वे युग्मन के द्वारा ग्लूकोरोनाइड बनाते हैं।

बाइलिरूबिन जो कि एक पित्तरंजक है युग्मन के द्वारा ग्लूकोरोनाइड के रूप में उत्सर्जित हो जाता है।

दूसरे प्रकार की विधि में अमीनो एसिड ग्लाइसीन काम आता है। बेंजोइक एसिड, ग्लायसीन से युग्म बनाता है और हिपूरिक एसिड के रूप में उत्सर्जित हो जाता है। जानवरों में सल्फ्यूरिक एसिड भी युग्मन में सहयोग देता है। इन्डोल आँत की प्रतिक्रिया से इन्डाक्सिल में बदला जाता है जो सल्फ्यूरिक एसिड के साथ युग्म बना कर इन्डाक्सिल सलफ्यूरिक एसिड बनाता है। इसका पोटेशियम लवण सरलता से उत्सर्जित हो जाता है।

फिनाइल एसिटिक एसिड मानव शरीर में ग्लूटेमिन के साथ मुर्गी में ऑर्नीथीन के साथ व कुत्तों में ग्लायसीन के साथ युग्म बनाकर उत्सर्जित हो जाता है। मूत्र में थायोसल्फेट होता हैं जो कि सायनाइड को शरीर से निकालने में सहायता देता है एन्जाइम रोडानीज थायो सल्फेट तथा सायनाइड के बीच क्रिया कराता है जिसके फलस्वरूप थायोसाइनेट बन जाता है।

सेलीनियम—विश्व के कुछ भाग को खास तौर से दक्षिणी पठार की भूमि में सेलीनियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिससे हर प्रकार की फसल जो इस जमीन से पैदा होती है सेलीनियम में प्रचुर होती हैं। उस फसल को खाने से जानवर ही नहीं बल्कि मनुष्य भी सेलीनियम के हानिकारक प्रभाव से प्रभावित हो सकते हैं वैज्ञानिक लैम्ले ने यह सिद्ध किया है कि बोमोबेंज़ीन को मुँह के द्वारा दिये जाने पर सेलीनियम का उत्सर्जन मूत्र के द्वारा बढ़ जाता है और यह सेली-नियम मर्केप्टरिक एसिड अंश के साथ होता है। यह एक मर्केप्टरिक एसिड संश्लेषण की व्युत्क्रम क्रिया है।

जहरीले तत्वों को शरीर से बाहर निकालने में डाइ थायोप्रोपेनोल (BAL— ब्रिटिश एण्टी लुइसाइट) सहयोग देता है शरीर में BAL दिये जाने के साथ ही As, Cd, Hg और Au का उत्सर्जन बढ़ जाता है। अभी तक यह पता नहीं लग सका है कि वास्तव में वह क्या क्रियाविधि है जिसके द्वारा BAL इन विषाक्त धातुओं को शरीर से बाहर निकालता है। सम्भवतः कुछ विषाक्त धातुयें शरीर के ऐंजाइम व अन्य पदार्थों के — SH समूह के साथ जुड़ जाते हैं और इस प्रकार उन्हें अक्रिय कर देते हैं। यह सोचा जाता है कि BAL की उन धातुओं के प्रति बंधुता ज्यादा होती है और इस प्रकार वह उन धातुओं को अपनी ओर ले लेता है और यह जटिल शरीर से आसानी से बाहर कर दिया जाता है।

शरीर की विभिन्न बीमारियों में आजकल ओषधि का बहुतायत रूप से प्रयोग होता है। ये ओषधि शरीर में प्लाज्मा प्रोटीन (खासकर एल्बुमिन) के साथ जुड़े होते हैं।

वे ओषधियाँ जो प्रोटीन के साथ मजबूती से जुड़ी होती हैं रक्त परिवहन में ज्यादा देर रहती है। एक बार जब कि प्लाज्मा प्रोटीन इन ओषधियों से संतृप्त हो जाते हैं तब और अधिक मात्रा में लिये जाने पर असंयुक्त अणु को मात्रा बढ़ जाती है। हाइपोएल्बुमीनीमिया की हालत में रोगी इन ओषधियों के प्रति बहुत ज्यादा सुग्राही हो जाता है जब कोई दूसरी ओषधि जो कि पहले वाली ओषधि से प्रबल बंधक शक्ति रखता हो ली जाए तब चूँकि दूसरा वाला ओषधि पहले वाले ओषधि को हटाकर प्रोटीन से जुड़ेगा; पहले वाले ओषधि की मात्रा शरीर में आकस्मिक बढ़ जाएगी। यह बढ़ी हुई मात्रा शरीर के लिए हानिप्रद होती है। डाइक्यु-मेरॉल जो कि एक आतंचन रोधी है अपने प्रोटीन का सल्फोनामाइड हटा देता है। यह शरीर में रुधिरस्राव पैदा कर सकता है।

इस प्रकार के ओषधि शरीर से दो प्रकार से निष्कासित किए जाते हैं। या तो वे किसी अन्य पदार्थ में ऐंजाइम के द्वारा बदल दिये जाते हैं या वे उत्सर्जित हो जाते हैं। उन ऐंजाइमो को जो ओषधि को किसी अन्य पदार्थ में बदलते हैं तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है—

१. माध्यमिक उपापचयन के ऐंजाइम L—α मेथिल डाइ हाइड्रॉक्सिल फेनिल एलेनीन मेथिल डोपा ओषधि को α–m मेथिल नॉरएड्रिनालीन में बदल दिया जाता है। इसमें वे सभी ऐंन्जाइम कार्य करते हैं जो डोपा को एड्रिनेलिन में बदलते हैं।

२. युग्मित ऐंजाइम—इस विधि में ग्लूकेसॉनिक एसिड, एसिटिक एसिड, ग्लाइसीन व सल्फ्यूरिक एसिड काम में आते हैं और युग्मन के द्वारा ओषधि को उपापच में बदलते हैं जो कि पानी में ज्यादा घुलनशील होते हैं और शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं कि सभी ओषधियों के उपापच ज्यादा घुलनशील हों ही।

३. माइक्रोसोम—ये ऐंजाइम अविशिष्ट होते हैं अधिकतर ये ऐंजाइम उन पदार्थों पर क्रिया करते हैं जो लिपिड में अति घुलनशील हों। सामान्यतः ये पदार्थों

में OH समूह जोड़ देते हैं और इस प्रकार उन्हें ज्यादा घुलनशील बना देते हैं। इस प्रकार से पैदा हुए पदार्थ कम हानिकारक होते हैं।

लेकिन कभी-कभी एसिटेनिलाइड, एनिलिन में परिवर्तित हो जाता है जो कि बहुत हानिकारक पदार्थ है।

हमारे यकृत में ऐसे बहुत से ऐंजाइम होते हैं जो हमारे जन्म के कुछ सप्ताह तक पूरे सक्रिय नहीं होते और यह कारण छोटे बच्चों को औषधि के प्रति सुग्राही बना देता है। वृद्धावस्था में भी जबकि ऐंजाइम सक्रियता कम हो जाती है औषधि का उपापचयन पूरा नहीं हो पाता और वे शरीर में हानिकारक हो सकते हैं।

माध्यमिक उपापचयन के एन्जाइम कुछ मनुष्यों में जन्म से ही नहीं होते हैं। यह अन्तर्निहित उपापचयन की क्रिया से आते हैं। G-6-PO_4 डिहाइड्रोजिनेज की R.B.C. में अनुपस्थिति से मनुष्य में रुधिरसंलयन हो जाता है जब वह सल्फेनिल एमाइड वा प्रति—मलेरिया औषधि प्रिमाकीन लेता है।

मूत्र के pH को सोडियम बाइ कार्बोनेट व अमोनियम क्लोराइड के द्वारा बदला जा सकता है। और चूँकि अधिकतर औषधि कमजोर अम्ल या क्षार होते हैं इसलिए मूत्र के pH बदलने से औषधि का उत्सर्जन घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

हिपेरिन एक आतंचनरोधी है। यह रक्त के थक्के बनने से रोकता है। इसका यह गुण इसके प्रबल ऋणायन के कारण होता है इस प्रकार हेपारीन के आतंचनरोधी प्रभाव को ऋणायनी समूह को हटाने से या धनायन समूह से उदासीन करने से समाप्त हो सकता है। प्रोटामीन एक प्रबल धनायनी प्रोटीन है और यह हिपेरिन के आतंचनरोधी गुण को खत्म कर सकती है। यह कम मात्रा में थ्राम्बोप्लास्टीन निर्माण को रोकता है और अधिक मात्रा में थ्राम्बीन की क्रिया को खत्म करती है इसलिए प्रोटामीन सल्फेट (सामान्यत: यह SO_4 के रूप में ही दिया जाता है) एक बार में 100 मिग्रा० तक ही दिया जाता है।

कुलदीपराज धारीवाल
पटेल चेस्ट इन्सटीट्यूट
देहली

ग्राहकों से निवेदन है कि यदि आपका वार्षिक शुल्क इस महीने समाप्त हो रहा हो तो शुल्क भेज कर नवीकरण करा लें।

एक पंथ दो काज

डा० प्रेम चन्द्र मिश्र

शहर हों या गाँव, प्रत्येक जगह प्रति दिन कूड़ा-कचरा एवं रद्दी के ढेर देखने को मिलते हैं। वैसे तो इनको देखकर भी उपेक्षा कर दी जाती है परन्तु यदि यही कूड़ा-करकट या अवांछनीय अवशेष इकट्ठे होते जाँय तो इनकी अपार मात्रा एकत्र हो जायेगी। परिणाम होगा अनेक प्रकार की बीमारियाँ एवं दूषित वातावरण। यदि इन अवशेषों के उद्गम के सम्बन्ध में सोचा जाय तो विदित होगा कि प्रत्येक अवांछनीय अवशेष में कुछ न कुछ ऐसे तत्व विद्यमान होने चाहिये जो पौधों के लिये आवश्यक हैं। अब देखना यह है कि किस प्रकार इन अवशेषों में निहित तत्वों को पुन: पौधों के लिये उपयोगी बनाया जा सकता है।

पत्तियों एवं कूड़ा-कचरा आदि को उपयोगी बनाने की एक बहुप्रचलित विधि कम्पोस्ट का बनाना है। इसके बारे में विस्तृत अध्ययन किये जा चुके हैं एवं पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। कम्पोस्ट बनाने में पौधों से गिरी पत्तियाँ, घरों का कूड़ा-करकट, रद्दी कागज तथा अन्य सेल्यूलोजयुक्त अवशेषों का उपयोग होता है। इन्हें एक गड्ढे में सड़ने के लिये छोड़ दिया जाता है। पूर्ण रूप से सड़ जाने के पश्चात जो खाद प्राप्त होती है उसे कम्पोस्ट कहा जाता है। कम्पोस्ट तैयार करने की अनेक सुगम एवं उत्तम विधियाँ है जिनके बारे में स्वयं अध्ययन करके या ब्लाक स्तर के कृषि अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके जाना जा सकता है। कम्पोस्ट बनाने में प्रयुक्त चीजों को जल्दी एवं अच्छी तरह सड़ने के लिये गड्ढों में थोड़ी सी नाइट्रोजन की मात्रा मिला दी जाती है। इसके लिये अमोनियम सल्फेट का प्रयोग सर्वोत्तम पाया गया है। उत्तम विधि से तैयार की गई कम्पोस्ट में 2 प्रतिशत तक नाइट्रोजन, 1 प्रतिशत फारफोरस तथा 1 प्रतिशत पोटाश की मात्रा होती है। इसके प्रयोग से कुछ अंश तक सूक्ष्म-मात्रिक तत्वों की भी पूर्ति हो जाती है। मृदा सुधारक के रूप में भी कम्पोस्ट का प्रयोग कम महत्वपूर्ण नहीं है। मृदा की भौतिक दशा पर कम्पोस्ट का अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

कम्पोस्ट बनाने की ही तरह विदेशों में प्रचलित एक विधि है तरल मल्च निर्माण की। इस विधि में वानस्पतिक अवशिष्ट में पानी की थोड़ी सी मात्रा मिला दी जाती है एवं मिश्रण को गाढ़े घोल के रूप में तैयार कर लिया जाता है। इसके पश्चात इस गाढ़े घोल को एक विशेष जीवाणु से उपचारित करके खेतों में मल्च के रूप में फैला दिया जाता है। इसकी पर्त एक से दो इंच मोटाई तक फैलाई जा सकती है। सूखने पर यह एक पपड़ी की तरह जम जाती है। इस प्रकार की मल्च को बिछाने से खर-पतवारों में कभी पाई गई। इस गाढ़े घोल को अलग सुखाकर मृदा सुधारक एवं जानवरों को खिलाने के काम में लाया जा सकता है।

शहरों में उत्पन्न मल-मूत्र युक्त गन्दे पानी की प्रति दिन की मात्रा के सम्बन्ध में आप अन्दाजा लगा सकते हैं। इस गन्दे पानी का प्रयोग खेती की जाने वाली भूमि की सिंचाई करने के लिये किया जा सकता है। इस ओर हमारे देशवासियों का ध्यान आकर्षित हो चुका है तथा शहरों के आस-पास के क्षेत्रों में इस जल के वितरण के लिये साधन जुटाये जा रहे हैं। गमलों में पौधे उगाने के लिये 40 भाग बालू, 40 भाग पीट तथा 20 भाग गन्दे पानी का मिश्रण एक आदर्श मृदा की तरह प्रयोग किया जा सकता है। गन्दे पानी के लगातार प्रयोग से कुछ तत्वों के विषालुता की समस्या आ सकती है परन्तु उपयुक्त मृदा-प्रबन्ध के द्वारा इस

कोडनाई से बचा जा सकता है। मल-मूत्र युक्त गन्दे पानी के ही अनुरूप सेप्टिक टैंक की मिट्टी होती है। इसका प्रयोग बिना किसी भय के एक अच्छी खाद के रूप में किया जा सकता है। खुले शहरों तथा कस्बों में फ्लश के स्थान पर सेप्टिक टैंकों की ही व्यवस्था रहती है तथा इन टैंकों से काफी मात्रा में यह उपजाऊ मिट्टी प्राप्त हो सकती है। इस मिट्टी का प्रयोग करके कृष्य भूमि का एक वृहत क्षेत्र उपजाऊ बनाया जा सकता है।

इसी प्रकार मुर्गी के बिछावन का खाद के रूप में प्रयोग बहुत प्रचलित है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा कम्पोस्ट से अधिक होती है। घरों के बगीचों एवं छोटे क्षेत्र में सब्जी उगाने के लिये इसका प्रयोग अत्यंत लाभकारी पाया गया है। चूंकि इसकी प्राप्य मात्रा अधिक नहीं होती इसलिये बड़े पैमाने पर इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

कारखानों के उपजात भी खाद के रूप में प्रयोग में लाये जा सकते हैं। लोह उत्पन्न करने वाले कारखानों का उपजात वेसिक स्लैग फास्फोरस का अच्छा स्रोत सिद्ध हो चुका है। फास्फोरस के अतिरिक्त इसमे बहुत से सूक्ष्म मात्रिक तत्व विशेषकर मैंगनीज तथा लोह भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होते हैं। खाद के रूप में तो यह डाला ही जाने लगा है परन्तु इसके साथ ही साथ यह मृदा की भौतिक दशा को भी बनाये रखने के काम में भी लाया जा सकता है।

इन उपर्युक्त अवांछनीय पदार्थों के अतिरिक्त पौध-अवशेषों को पुन: मिट्टी में उलट देने से भी तत्वों की कुछ अंश तक पूर्ति हो जाती है। बहुत से खर-पतवार, जलकुम्भी आदि को या तो कम्पोस्ट बनाकर या ऐसे ही खेतों में मिलाकर इनमें उपस्थित तत्वों को मिट्टी में पहुँचाया जा सकता है। इस क्षेत्र में किये गये शोध-कार्यों से प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट हो गया है कि यदि कूड़ा-करकट, रद्दी, फैक्टरियों के उपजात तथा अवांछनीय खरपतवारों को उचित ढंग से सड़ाकर खेतों में मिलाया जाय या मिलाकर सड़ाया जाय तो तत्वों की आवश्यक मात्रा के अधिकांश प्रतिशत की पूर्ति हो सकती है। इस प्रकार उर्वरकों की आवश्यक मात्रा में कमी की जा सकती है जो देश के हित में एक बड़ा कदम होगा। दूसरी ओर यदि इन सभी अवशेषों का कोई उपयोग न किया गया तो बढ़ती हुई आबादी से प्राप्त कूड़ा-कचरा, फैक्टरियों के उपजात तथा अवांछनीय वनस्पति की मात्रा बढ़ती जायगी। ये ऐसे ही खुले में सड़ेंगें तथा परिणाम यह होगा कि वातावरण दूषित हो जाने के कारण नाना प्रकार की बीमारियाँ फैलेंगी जिनके कारण जनहित खतरे में पड़ जायगा। अत: अच्छा यही होगा कि इनको उचित ढंग से सड़ाकर खेती के उपयोग में लाया जाय। इस प्रकार इनके प्रयोग से एक ओर तो पौधों के लिये आवश्यक तत्वों की पूर्ति होगी तथा दूसरी ओर इनके एकत्रण से उत्पन्न कठिनाइयों से बचा जा सकेगा। इस प्रकार इन अवशेषों तथा उपजातों का कृषि के लिये उपभोग करके "एक पंथ दो काज" की कहावत को चरितार्थ किया जा सकता है।

डॉ॰ प्रेम चन्द्र मिश्र
रसायन विभाग
इलाहाबाद वि॰ वि॰
इलाहाबाद

हिन्दी में वैज्ञानिक लेख लिख कर विज्ञान के प्रचार व प्रसार में योगदान दें।

प्रकृति के मूल बल

श्याम लाल काकानी

भौतिकी में हमारे ज्ञान का सम्पूर्ण आधार प्रेक्षण है। हम प्रकृति में किसी घटना को देखते हैं उस पर कई प्रयोग करते हैं और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करते हैं। विभिन्न ज्ञात भौतिक राशियों में अच्छी तरह से स्थापित सहसंबंध को हम सामान्यतया एक भौतिक नियम कहते हैं। उदाहरण स्वरूप स्थिर-वैद्युतिकी में कूलॉम का नियम, जो हमें अनुभव किए गए बल, आवेशों की मात्रा, आवेशों के बीच की दूरी इत्यादि में सहसंबंध बतलाता है। कूलॉम के नियम की तरह ही अन्य कई और भी नियम हैं।

अगर हम ज्ञात नियमों का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि सभी प्रेक्षणों का आधार नापने वाली युक्ति और ज्ञात की जाने वाली राशि के बीच अन्योन्य क्रिया है। जैसे निर्वात में स्थित दो आवेशों पर विचार कीजिये।

प्रयोगों के परिणामों के आधार पर हम यह कहते हैं कि प्रत्येक आवेश दूसरे आवेश की उपस्थिति के कारण बराबर व विपरीत बल अनुभव करता है। एक आवेश द्वारा दूसरे आवेश की उपस्थिति से अनुभव किए गए बल को समझने के लिए हमने बलों की भाषा और बलों के बीच अन्योन्य क्रियाओं को विकसित किया है। प्रत्येक आवेश के चारों ओर एक क्षेत्र (एक प्रकार से प्रभावित कर सकने वाला क्षेत्र) होता है। इस क्षेत्र को हम स्थिर विद्युत क्षेत्र कहते हैं। जब कुछ दूरी पर दो आवेश स्थित होते हैं तो इनके चारों ओर अपने विद्युत क्षेत्र होते हैं जो बहुत लम्बी दूरी तक प्रभावी होते हैं। दोनों आवेशों के कारण उनके दोनों क्षेत्रों में अन्योन्य क्रिया होती है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक आवेश एक बल अनुभव करता है। अन्योन्य क्रिया का तात्पर्य और अधिक स्पष्ट करने के लिए हमने लगभग प्रत्येक क्षेत्र के साथ एक क्षेत्र क्वांटम या एक कण जोड़ दिया है जो पारस्परिक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होता है जैसे विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र के साथ फोटॉन। फोटॉन त्वरित आवेशों द्वारा उत्सर्जित होते हैं। दो आवेशों में पारस्परिक अन्योन्य क्रिया का तात्पर्य केवल यह है कि उनके बीच फोटॉनों का विनिमय होता है। अतः एक आवेश द्वारा दूसरे आवेश की उपस्थिति से अनुभव किये गये बल का तात्पर्य फोटॉनों का अवशोषण या उत्सर्जन है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक नाप या अनुभव एक अन्योन्य क्रिया है। भौतिक कणों के बीच हो रही अन्योन्य क्रियाओं को हम उनकी बढ़ती हुई शक्ति के क्रम में निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं, निम्न हैं।

1—गुरुत्वीय बल या अन्योन्य क्रिया।
2—दुर्बल अन्योन्य क्रिया।
3—स्थिर वैद्युत अन्योन्य क्रिया।
4—नाभिकीय या प्रबल अन्योन्य क्रिया।

गुरुत्वीय बल दुर्बलतम ज्ञात बल है और सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इसी बल का ज्ञान हमें सर्वप्रथम हुआ। प्रतिदिन अनुभव होने वाले अधिकतर बलों का मूल गुरुत्वीय या स्थिर वैद्युत है। सारणी 1 में उपर्युक्त वर्णित चारों अधारभूत अन्योन्य क्रियाओं की आपेक्षिक सामर्थ्य (नाभिकीय सामर्थ्य को इकाई मानकर), परास और क्षेत्र क्वांटम को दिखाया गया है।

सारणी 1

क्रम संख्या	बल	आपेक्षिक सामर्थ्य	परास	क्षेत्र क्वांटम या संबद्ध कण
1	नाभिकीय या प्रबल अन्योन्य क्रिया	1	10^{-15} मीटर लघु परिसर	पाइऑन (Pion)
2	स्थिर वैद्युत अन्योन्य क्रिया	10^{-2}	दीर्घ परिसर	फोटॉन
3	दुर्बल अन्योन्य क्रिया	10^{-14}	10^{-15} मीटर लघु परिसर	मध्यवर्ती बोसॉन अभिज्ञान संभव नहीं हुआ है।
4	गुरुत्वीय अन्योन्य क्रिया	10^{-39}	दीर्घ परिसर	ग्रैविटॉन (Graviton) अभिज्ञान संभव नहीं हुआ है।

अब हम इन चारों उपर्युक्त अन्योन्य क्रियाओं के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. **गुरुत्वीय अन्योन्य क्रिया**—यह एक आकर्षक बल है। इस बल के कारण ही वस्तुएँ ऊपर की ओर फेंकने पर पुन: पृथ्वी के धरातल की ओर लौट आती हैं, चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर एक कक्षा में और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक कक्षा में घूमते हैं। दो कणों या पिण्डों के बीच प्रत्येक पर एक दूसरे की उपस्थिति से अनुभव किए जाने वाले बल को न्युटन के प्रसिद्ध गुरुत्वाकर्षण के नियम से ज्ञात कर सकते हैं,

$$Fg = -G \frac{m_1 m_2}{r^2} \qquad —(1)$$

जहाँ m_1 और m_2 दो भौतिक कणों या पिण्डों के द्रव्यमान, r इनके बीच की दूरी, G गुरुत्वांक है। ऋणात्मक चिन्ह यह बताता है कि गुरुत्वीय बल आकर्षक बल है।

समीकरण 1 से स्पष्ट है कि गुरुत्वीय बल द्रव्यमान के समानुपाती होता है अत: आकाशीय पिण्डों के लिए इसका मान बहुत अधिक होता है जबकि मूल कणों के लिए बहुत कम। अणुओं, परमाणुओं और मूल कणों के बीच अन्योन्यक्रियाओं में गुरुत्वीय बल का महत्व नगण्य होता है।

चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच गुरुत्वीय बल का मान लगभग $\simeq 2.3 \times 10^{25}$ डाइन, पृथ्वी और आक्सीजन के अणु के बीच $\simeq 5 \times 10^{-20}$ डाइन और ऑक्सीजन के दो अणुओं के बीच $\simeq 2 \times 10^{-37}$ डाइन होता है। ये संख्यायें अपने आप में स्पष्ट है।

2. **स्थिर वैद्युत बल**— स्थिर आवेशित कणों के बीच लगने वाले बलों को स्थिर वैद्युत बल कहते हैं। ये बल आकर्षक या प्रतिकर्षी दोनों प्रकार के होते हैं। इसके परिणाम में 'आवेश की मात्रा' सम्मिलित होती है। इलेक्ट्रॉन पर आवेश की मात्रा आवेश की सबसे न्यूनतम ज्ञात मात्रा हैं ($e = 4.8 \times 10^{-10}$ स्थिर वैद्युत मात्रक)

दो स्थिर आवेशों पर लगने वाले स्थिर वैद्युत बलों को कूलॉम के निम्नलिखित नियम से ज्ञात करते हैं

"दो अन्योन्य क्रियाशील आवेशित कणों पर लगने वाले बल का परिमाण आवेशों के बीच दूरी का व्युत्क्रमानुपाती और आवेशों के गुणनफल के समानुपाती होता है। अगर दोनों आवेश एक ही प्रकार के होते हैं तो इनके बीच लगने वाला बल प्रतिकर्षण बल और विपरीत प्रकार के आवेशों के बीच लगने वाला बल आकर्षण बल होता है अर्थात्

$$F = K \frac{Q_1 Q_2}{r2} \quad \text{(स्थि. वै. मात्रक में)}$$

K माध्यम की विद्युत शीलता को प्रकट करता है, निर्वात के लिए K = 1 होता है।

कूलॉम का उपर्युक्त वर्णित नियम उन्हीं आवेशों के लिए पूर्ण रूप से ठीक लागू होता है जो उस जड़त्वीय निर्देशांक तंत्र के सापेक्ष स्थिर होते हैं जिसमें उन्हें देखा जाता है। जो कण एक दूसरे के सापेक्ष गतिशील होते हैं उनके लिए चुम्बकीय बलों पर भी विचार करना आवश्यक होता है।

चुम्बकीय बल—जब आवेषित कण गतिशील होते हैं तो उनके बीच चुम्बकीय बल भी उत्पन्न होते

हैं। ये बल गतिशील आवेशित कणों के वेग पर निर्भर करते हैं। ये बल सदैव क्रिया और प्रतिक्रिया के सिद्धान्त का पालन नहीं करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि चुम्बकीय बल सदैव दो आवेशों को मिलाने वाली रेखा पर ही हो। यदि एक आवेश q चुम्बकीय क्षेत्र $\vec{B}$ में वेग $\vec{V}$ से गति करता है तो इस आवेश पर कार्य करने वाले बल को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं

$$\vec{F} = q\left[\vec{V} \times \vec{B}\right]$$

लेकिन जब गतिशील होता है तो हमें उसके विद्युत और चुंम्बकीय दोनों ही प्रभावों पर विचार करना आवश्यक होता है, दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि चुम्बकीय प्रभाव त्वरित या गतिशील आवेश का एक गुण है। अत: गतिशील या त्वरित आवेशों से उत्पन्न क्षेत्रों को विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं। विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का गुरुत्वीय क्षेत्र की तरह हमारे जीवन में बहुत ही महत्व है।

3. नाभिकीय बल—नाभिक में न्यूट्रॉनों और प्रोटॉनों को कौन सा बल बांधे रखता है ? यह बल कूलॉम बल नहीं हो सकता है क्योंकि न्यूट्रॉन और प्रोटॉन के बीच या दो न्यूट्रानों के बीच कूलॉम बल उत्पन्न नहीं होते हैं और कूलॉम बल दो प्रोटानों के बीच प्रतिकर्षण भी उत्पन्न करते हैं। यह बल गुरुत्वीय बल भी नहीं हो सकता है क्योंकि प्रोटॉन और न्यूट्रान या दो प्रोटॉनों या दो न्यूट्रॉनों के बीच इसका परिमाण नगण्य होता है। नाभिकीय प्रकीर्णन प्रयोगों के परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि दो प्रोटॉनों या दो न्यूट्रॉनों या एक प्रोटॉन और एक न्यूट्रॉन के बीच एक ही प्रकार का बल लगता है। इस बल को नाभिकीय बल कहते हैं नाभिकीय प्रकीर्णन प्रयोगों से यह भी स्पष्ट होता है कि नाभिकीय बल लघु परिसर बल है।

हमें अभी तक नाभिकीय बलों के लिए यथार्थ नियम ज्ञात नहीं है। इन बलों की परास नाभिक के आकार के क्रम की अर्थात् 10^{-15} मीटर के लगभग होती है। अधिकांश निम्न ऊर्जा नाभिकीय प्रक्रमों के लिए नाभिकीय बल को निम्न समीकरण से प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$F = \frac{D}{r^2} e^{-r/r_0}$$

जहाँ r_0 का मान लगभग 10^{-15} मीटर के लगभग और D का मान लगभग 10^{-18} अर्ग सेमी होता है।

फोटॉन और लेप्टोन के अतिरिक्त सभी मूल कण नाभिकीय अभिक्रियाओं में भाग लेते हैं। नाभिकीय बल सबसे शक्तिशील बल हैं लेकिन ये 10^{-15} मीटर दूरी तक ही प्रभावी होते हैं।

4. दुर्बल अन्योन्य क्रियायें :—रेडियोएक्टिव क्षय में अभिक्रियाओं की दर उन अभिक्रियाओं की दरों की तुलना में बहुत धीमी होती है जिनमें नाभिकीय या विद्युत-चुम्बकीय अन्योन्य क्रियायें प्रभावी होती हैं। नाभिकीय अभिक्रियाओं का अभिलक्षणिक समय लगभग 10^{-23} से होता है जबकि रेडियोऐक्टिव क्षय में भाग लेने वाली अन्योन्य क्रियाओं का अभिलक्षणिक समय लगभग 10^{-10} से होता है। रेडियोएक्टिव क्षय में इस प्रकार के सुस्त व्यवहार की व्याख्या के लिए गुरुत्वीय बल से कुल तीव्र बल की कल्पना की गई है। यह बल दुर्बल अन्योन्य क्रियाओं से उत्पन्न होते है नाभिकीय अन्योन्य क्रियाओं की तरह ये भी लघु परिसर होती हैं।

β^- (बीटा $- _1e^0$) क्षय दुर्बल अन्योन्य क्रिया का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। ये अभिक्रियायें हैं,

इलेक्ट्रॉन उत्सर्जन

$n \rightarrow p + e^- + \nu$

न्युट्रॉन→(प्रोटॉन) + (इलेक्ट्रॉन) + न्युट्रिनो

पोजिट्रॉन उत्सर्जन

$p \rightarrow n + e^+ + \nu$

प्रोटॉन→न्यूट्रॉन + पोजिट्रॉन + न्युट्रिनो

और $p + e^- \rightarrow n + \nu$

प्रोटॉन + इलेक्ट्रॉन→न्युट्रॉन + न्युट्रिनो
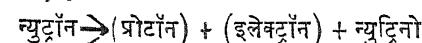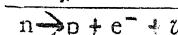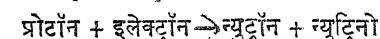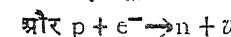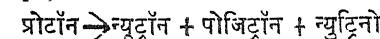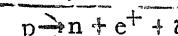
ये सभी प्रक्रम β^- क्षय में सम्मिलित हैं।

[शेष पृष्ठ 17 पर]

भारतीय कृषि

डा० शिव गोपाल मिश्र

भारतवर्ष का एक नाम आर्यावर्त भी है। यह आर्यों के वास स्थान का द्योतक है। 'आर्य' शब्द संस्कृत भाषा का है। जो लोग वैदिक देवताओं की पूजा करते थे वे आर्य कहलाये। मूलतः यह राष्ट्रवाची नाम था इसीलिये भारत आर्यावर्त कहलाया। बाद की संस्कृत में आर्य शब्द का अर्थ बदल कर श्रेष्ठ अथवा श्रेष्ठ वंश के व्यक्ति का द्योतक बन गया। ऋग्वेद के इन्द्र सूक्त में इन्द्र को 'आर्य' कह कर सम्बोधित किया गया है। गुरु के सम्बोधन में भी यही शब्द प्रयुक्त हुआ है।

परवर्ती वैदिक साहित्य में आर्य शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों के लिये हुआ। शतपथ ब्राह्मण में इन्हीं तीन जातियों को आर्य कहा गया है क्योंकि इन्हें यज्ञ का अधिकार था। आर्यों ने अपने शत्रुओं को 'दस्यु' नाम से अभिहित किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त बहुसंख्यक लोग अर्य थे। अर्य से ही आर्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। इस शब्द का प्रयोग कृषकों तथा गृहस्थों के लिये होता था किन्तु कालान्तर में इसका राष्ट्रीय अर्थ गृहीत हुआ।

आर्य शब्द 'अर्य' से और अर्य अर् धातु से व्युत्पन्न है। इस धातु का अर्थ 'भूमि का कर्षण' है अतः आर्य वह था जो भूमि जोतता था। तात्पर्य यह कि आर्य मूलतः कृषक था।

परवर्ती काल में लोग 'आर्य' शब्द के मूल प्रयोग को भूल गये और इसके राष्ट्रीय स्वरूप को ग्रहण करते हुये भारतवर्ष को आर्यावर्त के नाम से पुकारा। लेकिन जेन्द-अवेस्ता के मानने वाले जरथुस्त्रीय धर्मावलम्बियों के ग्रंथों में यह शब्द अपने मूल रूप में आज भी सुरक्षित है। जेन्द में एक शब्द अइर्य है जिसके दो अर्थ हैं—जाति विशेष तथा पूजनीय।

अर्यस लोगों की मूलभूमि मध्यएशिया का वह सबसे ऊँचा भाग है जहाँ से आक्सस तथा याक्सर्टेज नदियाँ निकलती हैं। अर्यस देश की तुलना में अनार्य देश का भी उल्लेख है। स्ट्रैबो के अनुसार दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में सिंधु, उत्तर में हिन्दुकुश तथा पश्चिम में कैस्पियन सागर—यह है अरियाना (आर्य देश) की सीमा। ज्यों-ज्यों जरथुस्त्रीय धर्म पश्चिम की ओर बढ़ते गये, उन प्रदेशों के लोग भी अपने को आर्य कहने लगे।

फारस के अनेक ऐतिहासिक नामों में आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। अरियोबरजाने, अरियोमानेस, तथा अरियोम देसि में अरिय शब्द विद्यमान है। फारस का आधुनिक नाम ईरान भी पुराने नाम 'आर्यान' का स्मरण दिलाने वाला है।

इस प्रकार कैस्पियन तटवर्ती तथा आक्सस-यक्सर्टेज नदियों के सिंचित प्रदेश में आर्य तथा अनार्य (तुरस) लोग शताब्दियों से साथ-साथ रहते आये थे।

आर्य नाम का प्रयोग यूरप की ओर कम होता जाता है किन्तु बिल्कुल ही न मिलता हो, ऐसी बात नहीं। ग्रीक तथा रोमन लोगों के नामों में इस राष्ट्रीय नाम के अवशेष नहीं ही हैं किन्तु आयरलैंड में एरिन या एर शब्द है जिसका अर्थ श्रेष्ठ है जो संस्कृत आर्य शब्द के समान है।

भाषा के साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि मूल स्थान से पृथक होने के पूर्व आर्य लोग घुमन्तू कृषक थे। टैक्टियस के अनुसार प्राचीन जर्मन लोग भी ठीक ऐसे ही थे। ये लोग हल चलाना

तथा सड़क बनाना जानते थे। ये नाव बनाने, घर बनाने तथा कपड़ा बुनने में चतुर थे। ये पशु भी पालते थे। गाय, भेड, घोडा तथा कुत्ता इनके पालतू पशु थे। ये कुल्हाड़ी का प्रयोग जानते थे। लोहा के लिये गाथिक में 'ऐस' तथा लैटिन में 'ऐम्' शब्द प्राप्त हैं जो संस्कृत के 'अयस' शब्द के तुल्य हैं। इसी प्रकार घर के लिये डोमास, डोमुस या दम शब्द हैं।

आर्य शब्द की व्युत्पत्ति सुप्रसिद्ध भाषाविद् एफ० मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक The Science of Language में 'अर्' धातु पर विस्तार से विचार किया है। जैसा कि हम प्रारम्भ में कह चुके हैं आर्य की व्युत्पत्ति 'अर्' धातु से हुई है अतः इसके सम्बन्ध में जानकारी आवश्यक है।

अर् धातु का अर्थ है भूमि कर्षण करना अथवा हल चलाना। लैटिन में ar-are, ग्रीक में ar-oun, आयरिश में ar, रूसी में ora-ti, गाथिक में ar-Jan तथा आधुनिक अंग्रेजी में to ear रूप मिलते हैं। शेक्सपियर ने to ear the land that has some hope to grow का प्रयोग किया है।

इसी कारण हल का नाम लैटिन में ara-trum, ग्रीक में aro-tron, पड़ा। प्राचीन काल में हल ही धन-धान्य उत्पादन करने का साधन था। प्राचीन नार्स उपलब्ध ardhr शब्द का अर्थ हल तथा धन अर्जन दोनों ही है। संस्कृत पशु शब्द लैटिन के pecus शब्द के तुल्य है और आज अंग्रेजी में प्रचलित fees (फीस) के मूल में पशु या धन अर्थ ही निहित है।

हल कर्षण के कार्य को लैटिन में aratio तथा ग्रीक में arosis कहते हैं। मैक्स मूलर की धारणा है कि aroma (सुगन्ध) शब्द के मूल में यही शब्द विद्यमान है। aroma शब्द का प्रयोग न केवल मधुर फल वाली वनस्पतियों के लिए वरन् जौ' जैसे अन्नों के लिये हुआ।

अर् धातु का प्राचीन रूप ग्रीक era, जर्मन ero, तथा संस्कृत इडा या इरा शब्दों में मिलता है। मूलतः इसका अर्थ था हल कर्षित भूमि जो कालान्तर में भूमि हो गया। अंग्रेजी के earth का मूल अर्थ हलकर्षित भूमि ही रहा होगा। बेन्फे ने arvus (जोता हुआ) तथा arvum (खेत) जैसे लैटिन शब्दों और aroura ग्रीक शब्द को अर् धातु से व्युत्पन्न माना है।

हल कर्षण केवल एक प्रकार का प्रारम्भिक श्रम ही नहीं था वरन् यह एक प्राचीन कला भी था। हलकर्षण तथा कृषि कर्म वास्तव में मानव जाति की प्राचीनतम कला है। ग्रीस वासियों ने इसकी अधिष्ठात्री देवी को सरस्वती कहा है।

अर् का व्यापक अर्थ भी ग्रहण किया जाने लगा था। बहुत पहले इसका एक अर्थ 'समुद्र जोतना' या 'नौका चलाना' भी था। संस्कृत का 'अरित्र' शब्द पतवार के लिये प्रयुक्त मिलता है। ग्रीक में नौका चालक के लिये cretes शब्द मिलता है।

अंग्रेजी के plough, ग्रीक के ploion और संस्कृत के प्लव शब्दों में समानता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है आर्य लोग पृथ्वी पर हल चलाने तथा समुद्र में नौका चलाने के लिये एक ही शब्द का व्यवहार करते थे।

मैक्समूलर का कथन है "जो ब्राह्मण अपने को आर्य कहते हैं तथा जो कलाकार अपने को आर्टिस्ट कहते हैं, उन दोनों को यह ज्ञात नहीं कि ये शब्द वास्तव में एक ही धातु अर् से व्युत्पन्न हैं, जिसका मूल अर्थ हल चलाना है।

इस प्रकार हमने देखा कि हमारी जाति (आर्य) या हमारा देश (आर्यावर्त) हमारे मूलतः खेतिहर होने का प्रतीक है।

(क्रमशः)

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एक आलेखन, कुछ सुझाव

के० डी० पडोआ एवं डी० जे० मेहता

विश्व की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई आबादी ने और परिलब्धियों की होती रहती निरंतर कमी ने मानव की उत्तरजीवित रहने की क्षमता को चुनौती दी है। यह निर्विवाद तथ्य है कि केवल विज्ञान ही मानव को उत्तर-जीवित रख सकता है।

तकनीकी और प्रौद्योगिकी में परिणमने वाला विज्ञान औद्योगिकरण में लाभकर है। प्रौद्योगिकी को अपनाकर विकास शील देश अपनी परिलब्धियों का बुद्धिपूर्वक उपयोग कर के उचित आर्थिक प्रतिष्ठा भी बना सकते हैं और इस प्रकार विश्व-प्रसिद्ध होने का सम्मान पा सकते हैं। विकासशील देशों का ध्यान आकर्षित करनेवाले प्रश्नों में से एक यह भी है कि विकसित देशों में जो सुधार हुए हैं उन्हें अपने देशवासियों के लाभ के लिए अपने देश में कैसे लाया जाए। यह सही है कि औद्योगिकरण से बनी हुई पूरी आर्थिक रचना को अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं में दुहराना विकासशील देशों के लिए बहुत कठिन है। अनुभवी तक-नीकी मानवशक्ति की कमी और वित्त या परिलब्धियों की मर्यादा के बावजूद भी उचित शर्तों पर विकासशील देशों के औद्योगिकरण के लिए अंतर-राष्ट्रीय निकायों के चाहे वह संयुक्त राष्ट्र हो या अन्य एजेन्सियां संयुक्त प्रयासों ने कुछ सफलता प्राप्त की है। परन्तु विकासशील देशों के लिए यह संभव नहीं कि वे आगे न आए और दूसरी एजेन्सियों पर ही निर्भर रहे।

वर्तमान संदर्भ में औद्योगिकरण का स्तर उन्नत प्रौद्योगिकी निवेशों के कारण ही इतना ऊँचा है। सभी देश विकसित प्रौद्योगिकी के लाभों को प्रयुक्त करने की दिशा में ही सक्रिय बने हैं। विशेष कर विकासशील देश औद्योगिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकसित देशों से प्रौद्योगिकी प्राप्त करते हैं।

एक एजेन्सी से दूसरी एजेन्सी तक प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में कई समस्याएँ हैं। अतः उन समस्याओं को ध्यान से देखना आवश्यक होगा। यह रिपोर्ट इन समस्याओं से उलझकर संभव हल प्राप्त करने का प्रस्ताव रखता है जो ज़रूरत मंद देशों को अपनी प्रजा का जीवन- स्तर धारण ऊंचा करने में प्रोत्साहन न देगा।

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के दो प्रकार हैं। एक उर्ध्व, दूसरा क्षैतिज। प्रथम प्रकार में "अनुसंधान-विकास" प्रयत्न प्रविधि या तो प्रक्रम में परिवर्तित होते हैं जो अंततः उसकी साधन-सामग्री के बारे में विचार देते हैं। जब कि क्षैतिज प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में उपभोक्ता या निर्माता, या अन्य कोई संस्था जो आवश्यक धनराशि, मानवशक्ति और अभियांत्रिकी प्रदान करती है, उसके द्वारा निश्चित स्तर पर हुए अनुसंधान विकास फिर से विकसित होगा। इस प्रकार उर्ध्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का स्थान अनुसंधान संस्थान में है जब कि क्षैतिज प्रौद्यो-गिकी हस्तांतरण एकाधि संस्थाओं में निहित है। कई रास्तों से और कई माध्यमों से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण होती है, जैसे

(1) प्रकाशन और डेटा बैंक
(2) प्रौद्योगिकी की आयात
(3) प्रौद्योगिकी के लिए अनुज्ञप्ति (लाइसेंस)
(4) विज्ञान पर आधारित उद्योग
(5) परामर्शी इंजीनियरिंग कंपनियाँ
(6) विनियय कार्यक्रम
(7) तकनीकी मानवशक्ति का संचालन

(1) प्रकाशन और डेटा बैंक

यद्यपि पत्रिकाओं या अन्य प्रकाशनों के माध्यम से जानकारी के लिए किए गए प्रयत्नों से पूर्णतया प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता, फिर भी कई संस्थाएँ और कई व्यक्ति प्रकाशित साहित्य से कुछ संकेत प्राप्त करके विशेष प्रौद्योगिकी के लिए अपेक्षित तकनीकी की साधन-सामग्री को विस्तृत करते हैं। कई बार ऐसे प्रकाशनों में संयंत्र के लिए आवश्यक अभियान्त्रिकी डेटा ब्यौरेवार नहीं होता क्योंकि वह संस्था जो कि विचारणीय अभिरुचि रखकर प्रक्रम को विस्तृत करने के लिए जितना धन खर्च करती है, उतना धन प्राप्त करने की आशा भी रखती है और इसलिए डेटाबैंक को प्रकाशन संस्था को सभी डेटा नहीं देगी। डेटा बैंक एक ऐसी आदर्श शाखा बन सकती है जिसके द्वारा प्रौद्योगिकी का प्राप्ति स्थान और उसकी शर्तें प्राप्त हो सकती हैं।

(2) प्रौद्योगिकी की आयात

विकसित देश अपने प्रक्रम स्वत्व शुल्क और विदेशी मुद्रा कमाने के लिए निश्चित शर्तों पर देते हैं। अधिकतम विकासशील देशों ने प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए इसी मार्ग को अग्रता दी है क्योंकि वे अपने दुर्लभवितीय स्रोत और कौशल्य को उस काम में व्यय करना नहीं चाहते जो कहीं अन्यत्र हो गया है और वह परिपक्व स्थिति में प्राप्य है। यद्यपि निकट भविष्य में अन्य देशों पर की निर्भरता को दूर करने की संभावना कम है फिर भी विकासशील देशों के लिए आयात की हुई प्रौद्योगिकी अपना कर अपने आपको प्रशिक्षित करना और उसको विस्तृत करना संभावित होना चाहिए, जैसे जापान ने करके दिखाया है। यहाँ पहुँचने तक प्रौद्योगिकी आयात प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण का सफल माध्यम रहेगी।

(3) प्रौद्योगिकी के लिए अनुज्ञप्ति

जैसा कि सुविदित है, अधिकतर देशों में विकसित प्रक्रम का पेटेंट किया हुआ होता है। यह प्रतिपन्न है कि संशोधकों का अपने प्रयत्नों के लिए कुछ मिलना चाहिए किन्तु त्वरित प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए उचित व्यवस्था नहीं है जैसे कि वाणिज्यीकरण के लिए पेटेंटी को प्रभाती, तर्कसंगत और औचित्य पूर्ण देन। ऐसे सेट की अनुपस्थिति के कारण विकासशील देश अब भी औद्योगिकरण के अपेक्षित स्तर को प्राप्त करने में पीछे हैं। ऐसे संजोगों में विकसित देशों पर विकासशील देशों की मदद की जिम्मेवारी आ जाती है। इस हेतु, कुछ प्रकार के सेट अनिवार्य हैं जिनकी चर्चा इस विवरण के अगले हिस्सों में की गई है। निजी उद्योगों और सरकारी एजेन्सियों द्वारा पेटेन्टों को लाइसेंस देना प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का सफल मार्ग तब ही है जब उसका उद्देश्य निजी लाभ न रहकर वह कई देशों के उत्थान से संबंधित हो और तभी वह पूर्ण रूप से सहायक है।

(4) विज्ञान पर आधारित उद्योग

कई विकासशील देशों ने अपनी निजी प्रौद्योगिकी का विकास करने के लिए "अनुसंधान विकास" संस्थाओं को स्थापना की है। इन देशों में ऐसी संस्थाओं ने विशेष कर देश के प्रत्याशी उद्यमकर्ताओं को प्रौद्योगिकी की परिपूर्णता से विदित करने के लिए ही विज्ञान पर आधारित उद्योगों की स्थापना की है। इस विशेष प्रयुक्ति द्वारा इज़रायलने अच्छे फल प्राप्त किए हैं और विकासशील देशों के संबंध में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए यह उत्तम मार्ग हो सकता है। यहाँ यह कहना भी गलत नहीं होगा कि विकासशील देशों में अधिकांशत: अनुसंधान-विकास प्रवृत्तियाँ विकसित देशों की तरह निजी क्षेत्रों में न रहकर सरकार के हाथ हैं।

(5) परामर्शी इंजीनियरिंग कंपनियाँ

विकसित देश विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी परिलब्धियों के कारण अनुसंधान-विकास के कार्य को केवल सरकार के तत्वावधान में ही नहीं बल्कि निजी क्षेत्रों में भी बढ़ाने में समर्थ हुए हैं। इन देशों में अनुसंधान-विकास के निजी प्रयत्नों को प्रक्रम के प्रौद्योगिकी में सफल हस्ताँतरण से विस्तृत करने में सहायता मिली है। ये डिज़ाइन और परामर्शी इंजीनियरींग संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं का मुख्य कार्य विकासशील अवस्था से ही प्रौद्योगिकी को लेकर उसका वाणिज्यीकरण करने के लिए उसे विस्तृत करने का है। इतना ही नहीं, ऐसी

संस्थाओं के पास अपने अनुसंधान-विकास सेट भी होते हैं जो प्रक्रमों पर नई प्रविधियाँ स्थापित कर के प्रौद्योगिकी को नवीनतम ढाँचे में ढालने के लिए लगातार काम करते रहते हैं। यह आवश्यक है कि क्यों कि प्रौद्योगिकी को गतरोध हो जाने का निरंतर और प्रबल भय रहता है। डिजाइन, अभियांत्रिकी और परामर्श कंपनियाँ सामान्यत: प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण घुमाऊ कल के आधार पर करती हैं। यह भी प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का सफल मार्ग है।

(6) विनिमय कार्यक्रम :

वैज्ञानिकों और तकनीशियनों का विनिमय भी तकनीकी डेटा के एक देश से दूसरे देश में आदान-प्रदान का एक मार्ग है। इस प्रकार का विनिमय-प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण के बजाय केवल प्रौद्योगिकी को समझने में ही सहायक है। विशेष प्रौद्योगिकी तकनीशियनों के प्रयोग में आनेवाली प्रविधियों से अवगत कराती है और कई बार अपने सेट में ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने के संकेत भी देती है। प्रौद्योगिकी हस्तांतिरण का यह विकसित पहलू न हो कर अपेक्षित और विकसित प्रविधियों का केवल संस्थापन है जिसे ग्रहण करना उचित होगा।

(7) तकनीकी मानव-शक्ति का संचालन

एक स्थान से दूसरे स्थान में तकनीकी मानवशक्ति का संचालन बार प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में परिणाम स्वरूप होता है। एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान दूसरों को भी प्राप्त हो जाता है जब वह दूसरों से भी संबंध बनाता है। परन्तु तकनीकी मानव शक्ति का संचालन देश को सचमुच औद्योगिकरण के प्रयास में बड़े पैमाने पर लाभकर नहीं है।

प्रयास :- प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की समस्या की चर्चा काफी की गई। सन् 1970 में द० एशिया का युनेस्को क्षेत्र विज्ञान कार्यालय तथा वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वविधान में प्रयोगिक अनुसंधान से औद्योगिक उपयोग की ओर प्रतिक्रमण की समस्याओं पर एक प्रांतीय विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ था। उस विचार गोष्ठी में दी गई सूचना को यहाँ फिर से प्रस्तुत किया जा रहा है, जो उल्लेखनीय है—

(1) यह गोष्ठी, विकासशील देशों में जहाँ अनुसंधान और विकास ज्यादातर सरकार पर ही निर्भर है, वहाँ अनुसंधान और विकास की समुचित आवश्यकता पर जोर देती है। ऐसे संयोगों में सरकार एक-रूप समाजिक आर्थिक अग्रता के आधार पर अपने अनुसंधान-विकास के निदेशों को उचित मार्ग दे सकती है।

(2) यह भी देखा गया कि गोष्ठी में भाग ले रहे देशों में से अधिकतर देशों में संशोधक, अभियंता, प्रविधिज्ञ, प्रौद्योगिकीविज्ञ और प्रौद्योगिकी प्रबंधकों की प्राप्ति में असमानता है। तर्कसंगत शिक्षा पद्धति द्वारा सामाजिक और आर्थिक वृद्धि के विचारों को लेकर मानव शक्ति को व्यापक प्रशिक्षण देना चाहिए। सरकार आवश्यक निधि एकत्र करके इस दिशा में बहुत कुछ कर सकती है।

(3) गोष्ठी ने अनुसंधान-विकास संस्थाओं में वैज्ञानिकों के लिए बड़े पैमाने पर प्रबंध प्रशिक्षण को आवश्यकता पर भी बल दिया। सरकार देश में अनुसंधान-विकास प्रबंधकों के नियमित और अनियमित निर्माण को प्रोत्साहित कर सकती है। ऐसी वाक् पीठें सरकार तथा निजी अनुसंधान-विकास संस्थाओं में में व्यापक, मूल्य-चेतना को निश्चित करेगी।

(4) वैज्ञानिक व तकनीकी संस्थाओं, महाविद्यालयों, अनुसंधान व विकास संस्थाओं तथा सरकार में परस्पर घनिष्ठ संबंध की आवश्यकता पर बल दिया गया। परामर्श की व्यवस्थाओं के जरिये इन सभी संस्थाओं मे निरन्तर संपर्क का भी प्रभाव होता है। सरकार इन संपर्कों को बढ़ाने में आवश्यक कदम उठा सकती है।

(5) विकासशील देशों में अनुसंधान-विकास संस्थाओं की संशोधन प्रायोजनाओं की सही पहचान को प्रभाव को सुधारने के लिए स्थानिक और अंतरराष्ट्रीय बाजारों की जानकारी के संचयन और विकिरणं के आवश्यकता पर ध्यान दिया। इसकी व्यवस्था विविध देशों में बाजार डेटा विनिमय केन्द्रों की स्थापना

करके की जा सकती है। संप्रति द० एशिया में ऐसे केन्द्र नहीं है, अतः बाजार संशोधन रीति विधान की जानकारी के लिए और ऐसी एजेन्सियों की स्थापना के लिए अंतर-राष्ट्रीय सहायता भी लेनी चाहिए।

(6) यह कहा गया कि आयात की गई प्रौद्योगिकियों को अनुकूलित करके, आत्मसात करके और उसमें सुधार करके विकासशील देशों की आर्थिक उन्नति की जा सकती है। अनुसंधान-विकास इकाइयों की स्थापना के लिए परिलब्धियों के साथ व्यापक उद्योगों द्वारा यह सब कार्य सरलता से हो सकते हैं।

(7) विकासशील देशों में मर्यादित परिलब्धियों के कारण अनुसंधान-विकास निवेशों के बँटवारे में चयनात्मकता को मान्यता दी गई। उच्च सम्बन्ध के चयनकृत क्षेत्रों में देशी अनुसंधान को बढ़ाने के लिए गोष्ठी ने सुपरिभाषित राष्ट्रीय वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी नीति की आवश्यकता के अस्तित्व की भी संस्तुति की। आवश्यक निधि प्राप्त करके ऐसी योजनाओं को पूरा करने की भी सरकारी नीति होनी चाहिए।

(8) प्रायोगिक अनुसंधान से कारखानों तक सफल क्षैतिज प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के कुछ तथ्यों पर गोष्ठी ने प्रकाश डाला, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं :—

1. जितनी हो सके उतनी जल्दी प्रत्याशी उपभोक्ताओं का संगठन।

2. बड़ी प्रायोजनाओं के लिए प्रायोजना अभियंताओं का संगठन।

3. बड़ी से बड़ी पूँजी दे सके ऐसी वित्तीय संस्थाओं का संगठन।

4. विकासशील देशों में वर्तमान विशेष सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के कारण सीमित समय के लिए अनुदान।

5. अनुसंधान-विकास संस्थाओं द्वारा काम के लिए वित्तीय प्रत्याभूति-गारंटी का पूर्व प्रबन्ध।

6. संविदात्मक अनुसंधान की प्रायोजनाओं के लिए उद्यमकर्ताओं को उचित प्रोत्साहन।

7. अनुसंधान-विकास इकाइयों के वैज्ञानिकों-प्रौद्योगिकी-विज्ञों और उद्योगपतियों के बीच

(अ) सम्पर्क अवकाश दूर करने के लिए (ब) पारस्परिक विश्वास सम्पादन के लिए और (स) एक-दूसरे की समस्याओं को समझने के लिए घनिष्ट सहयोग की स्थापना।

8. प्रौद्योगिक विकास और अनुसंधान-विकास संस्थाओं द्वारा किए गए कार्यों की रूपरेखा के प्रकाशन के माध्यम से प्रभावी जनसम्पर्क।

(9) उर्ध्व हस्तांतरण को बढ़ाने वाले महत्वपूर्ण घटक इस प्रकार हैं :—

1. लक्ष्य या उद्देश्य की स्पष्ट व्याख्या।

2. अनुसंधान, विकास, निर्माण और बाजार तक के सर्वोच्च प्रबन्धकों द्वारा इन उद्देश्यों की स्वकृति और सम्पर्क।

3. संस्था में वरिष्ठ स्तर पर कार्य गतिशीलता में और अनुसंधान निर्माण व बाजार जैसे कार्यक्षेत्रों में प्रोत्साहन।

4. वृहत् और सरल प्रौद्योगिकियों की परख, चयन, योजना, परिचालन और अमल के लिए तन्त्र।

5. संशोधकों, इंजीनियरों, उत्पादन एवं बाजार के कर्मिकों, अर्थशास्त्रियों और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों के दल का निर्माण।

(10) अनुसंधान एजेन्सियों और संस्थाओं के हेतु प्रबन्ध को आवश्यकता पर जोर दिया गया। ऐसे प्रबन्ध संस्था के उद्देश्यों की शीघ्र पूर्ति के लिए मानव, वित्त एवं साधन-सामग्री जैसी परिलब्धियों में प्रभावी सहयोग स्थापित कर सकते हैं। संशोधन प्रबन्धक का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य अपने दल को परिपूर्णता के सर्वोच्च स्तर पर ले जाने का है।

गोष्ठी के संचालकों ने अपनी कार्यसूची में यह सही मूल्यांकन किया है कि वे सामने आने वाली कठिनाइयों और संभावित रीतिविधान की जो उद्योगों के हस्तांतरण से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाते वक्त मार्ग में आए, परख में गोष्ठी का हेतु पूर्णतया सफल है। इन सूचनाओं से विकासशील देशों को जहाँ तक प्रायोगिक अनुसंधान के कारखानों के सफल हस्तांतरण का प्रश्न है, अधिक से अधिक लाभ होगा।

डी. वी. रंगनाथनन ने प्रवर्तनशील प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की समस्या का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया। उन्होंने प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की व्यवस्था प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में पेटेंटो का कार्य, विदेशी प्रौद्योगिकी की कीमत और सफल औद्योगिक प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की शर्तों का अध्ययन किया। यह सुझाव रखा गया कि प्रवर्तनशील प्रौद्योगिकी को सुगम बनाने में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण केन्द्र अधिक योगदान दे सकते हैं। ऐसे केन्द्रों को केवल प्रकाशन और अन्य तकनीकी साधनों के भंडार न रह कर, ऐसी अन्य राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी संलग्न रहना चाहिए जिनके पास विशेष तकनीकी जानकारी और परिवर्तनशील प्रक्रम है। ऐसे केन्द्रों के कार्य इस प्रकार है :—

(1) विविध विकल्पों और परिलब्धियों में से किसी एक प्रौद्योगिकी को चुनने के लिए उद्यमकर्त्ताओं अनुसंधान संस्थाओं और अन्य एजेन्सियों को सलाह देना, (2) स्थानीय परिस्थितियों और घरेलू उपयोग में भी आ सके ऐसी आयात की गई प्रौद्योगिकी को पसन्द करने की सलाह देना और (3) तर्कसंगत जानकारी और प्रान्तीय साम्य ध्यान में रखकर प्रान्त की उपयोगिता में जहाँ तक हो सके सहायता करना।

प्रस्तुत गोष्ठी के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपरोक्त महत्वपूर्ण सूचनाओं एवं सुझाओं की छाया में निम्न प्रश्नों के स्वीकारात्मक निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

(1) संयुक्त राष्ट्र की किसी भी एजेन्सी के लिए, ऐसा सेट निर्माण करना जिसके द्वारा विश्व में विकसित सभी प्रौद्योगिकियाँ प्राप्त हो सके और जरुरतमन्द देशों को पहुँचाई जा सके या अन्य देश में से संयुक्त राष्ट्र तक कोई प्रौद्योगिकी पहुँचाई जा सके, ऐसा सम्भव है ?

(2) क्या अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ, प्रौद्योगिकी परिलब्धियाँ और बिकसित देश ऐसे साहसी को सहायता के साधन, ऋण, उधार व्यवस्था और तकनीकी सहयोग द्वारा सहायता करेंगे ऐसा सम्भव है ?

विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण केन्द्र का सेट कुछ इस प्रकार होगा। ऐसी संस्था के उद्देश्य और कार्यक्षेत्र में (1) जरूरत मंद देशों में वर्जित क्षेत्रों की परख (2) उचित प्रवर्तनशील प्रौद्योगिकी की सप्लाई (3) जरूरत मंद देश की मानवशक्ति का प्रशिक्षण (4) विकासशील देशों की अनुसंधान विकास की नींव मजबूत करने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता और साधन सामग्री प्रदान करना (5) जरूरतमंद देशों के लिए निष्णातों की सेवाओं को प्राप्त करना (6) औद्योगिकरण के द्वारा लोगों के जीवन स्तर उच्च करना। संस्था एशिया, अफ्रीका, योरप आदि के लिये प्रादेशिक केन्द्रों में विभाजित भी हो सकती है। ऐसे केन्द्र अपने देश के क्षेत्रों में से प्राप्य परिलब्धियों से व्यापक जानकारी इकत्रित कर सकते हैं और विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संस्था के पास देश की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी माँग प्रस्तुत कर सकते हैं। विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संस्था संयुक्त राष्ट्र सहायक एजेन्सियों और विकसित देशों से धन एकत्रित कर सकती है। संस्था प्रौद्योगिकी में अभिरुचि रखनेवाले देशों से उचित शुल्क ले सकती है और ऐसे देशों को मदद भी कर सकती है जो विविध अंतराष्ट्रीय परिलब्धियों से सहायता लेने में और शुल्क अदा करने में असमर्थ है। प्रौद्योगिकी विकसित करनेवाली एजेन्सियों अपनी प्रौद्योगिकी उचित ढांचे में ढालकर और जरूरत मंद देशों तक पहुँचाने के लिए आवश्यक शर्तों पर इस संस्था के लिये प्राप्य बना सकता है। विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संस्था एक वार्षिक कार्यक्रम बनाए और प्रतिवर्ष स्टाक खरीद ले।

विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संस्था के लिए बतलाया गया कार्य जटिल है क्योंकि विविध क्षेत्रों में विविध प्रौद्योगिकी को आवश्यकता रहती है। विविध कार्यक्षेत्रों के लिये भिन्न-भिन्न फलक एवं विभागों का निर्माण करना संभव है और उसको संसार के विकास के बारे में सतर्क रहकर अपने संपर्क भी विस्तृत करने चाहिए। व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी कई हैं, परन्तु एकबार सैद्धांतिक रूप में विचार को स्वीकार किया गया, तो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम करना संभव हो जायगा।

ध्यान देने योग्य यह भी है कि ऐसा सेट प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को अन्य ऐसी शाखाओं को भाग में नहीं आएगा जो आज परिवर्तनशील है। फिर भी विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण केन्द्र की सफलता का आधार विकसित देश और प्रौद्योगिकी निर्माण केन्द्रों के सहयोग पर निर्भर है। एक बार प्रौद्योगिकी उद्योग इस संस्था को सहयोग दे, तब विश्व प्रौद्योगिकी हस्तांतरण केन्द्र के लिये विकासशील देशों में औद्योगीकरण अधिकतीव्र गति से करना संभव हो जाएगा।

●●

[पृष्ठ 9 का शेषांश]

इस प्रकार भौतिकी में चार प्रकार की मूल अन्योन्य क्रियायें या बल हैं। प्रत्येक का अपना स्रोत है जैसे विद्युत क्षेत्र के लिए आवेश, गुरुत्वीय क्षेत्र के लिए द्रव्यमान इत्यादि। प्रत्येक तंत्र में ऊर्जा विनिमय के साथ एक क्षेत्र क्वांटम संबद्ध होता है [सारणी 1 देखिये]।

कुछ ऐसे कण हैं जो चारों ही प्रकार की अन्योन्य क्रियाओं से संबद्ध है, जैसे प्रोटॉन। आवेश के कारण प्रोटॉन विद्युत-चुम्बकीय अन्योन्य क्रियाओं में भाग लेता है। द्रव्यमान के कारण यह गुरुत्वीय अन्योन्य क्रियाओं में भी भाग लेता है। यह नाभिकीय अभिक्रियाओं में भी भाग लेता है। चूंकि यह रेडियोऐक्टिव नाभिक में पोज़िट्रॉन का उत्सर्जन कर न्यूट्रॉन में परिवर्तित हो जाता है अतः यह दुर्बल अन्योन्य क्रियाओं में भी भाग लेता है।

उपर्युक्त वर्णित चारों अन्योन्य क्रियायें भौतिकी की आधारभूत क्रियायें हैं और भौतिकी के विस्तृत अध्ययन में इनका सूक्ष्म अध्ययन होना अति आवश्यक है।

श्यामलाल काकानी
प्राध्यापक भौतिक शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय
शाहापुरा, जिला।
भीलवाड़ा (राज०)

●●

1973—विज्ञान के लिये कोपेरनिकस वर्ष

निकोलाउस कोपेरनिकस का जन्म 19 फरवरी 1473 को पोलैंड में थोर्न नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने इस विश्वास को चुनौती दी थी कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र विन्दु है। इस प्रकार उन्होंने मानव चिन्तन में क्रान्ति ला दी थी। सबसे पहले कोपेरनिकस ने ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

यूनेस्को और विज्ञान संस्थाओं के अंतरराष्ट्रीय संघ ने 1973 को कोपेरनिकस वर्ष घोषित कर दिया है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर समारोह 19 फरवरी को पेरिस में यूनेस्को समारोहों से आरम्भ हुआ। सितम्बर 4 व 12 के बीच वारसा और काकाऊ में अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन होगा। इस संदर्भ में प्रदर्शनियों का आयोजन किया जा रहा है, पुस्तकें प्रकाशित की जा रही है, शिक्षा फिल्में बनाई जा रही हैं और सम्मेलन आदि हो रहे हैं—विज्ञान जगत इस प्रकार एक महापुरुष की पंचशती मना रहे है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में कोई 2 हजार वैज्ञानिक भाग लेंगे और कोपेरनिकस की ऐतिहासिक भूमिका और खगोल शास्त्र पर उनके प्रभाव पर विचार-विमर्श करेंगे। इस अवसर पर दिये जाने वाले भाषण कॉलोक्विया कोपेरनिकस शीर्षक से प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस अवसर के सभी आयोजनों के लिए अन्तरराष्ट्रीय कोपेरनिकस समिति बना दी गई है जिसके अध्यक्ष हैं पोलैंड के प्रोफेसर बुकोवस्की। फेडरल जर्मनी में प्रोफेसर बर्नहार्ड स्टिकर की अध्यक्षता में 1971 में ही जर्मन कोपेरनिकस समिति की स्थापना की गई थी। जर्मनी के न्युरेम्बर्ग नगर में 19 फरवरी 1973 को समारोह हुआ इसी नगर में उनकी रिवोल्यूश निबुस ओबियम कोलेस्टियम नामक मुख्य रचना उनके निधन वर्ष 1543 में प्रकाशित हुई थी। कोपेरनिकस स्मृति ग्रंथ और कोपेरनिकस चित्रावलि भी प्रकाशित किया जायगा। उनकी स्मृति में डाक टिकट भी जारी किये जायेंगे। जर्मनी के कोपेरनिकस की रचनाओं का दस जिल्दों में एक संग्रह लैटिन और जर्मन भाषाओं में तैयार किया जा रहा है। इसमें खगोल शास्त्र पर अब तक के प्रकाशित लेख होंगे। साथ ही इससे यह भी पता लगेगा कि वह खगोलशास्त्री से भी कुछ अधिक के। उन्होंज चिकित्सा, भाषा शास्त्र अर्थ शास्त्र और प्रशासन क्षेत्र में भी बहुत काम किया। कोपेरनिकस की मातृ भाषा जर्मन थी पर उन्होंने अपनी रचनायें लैटिन में की। रॉयल एस्ट्रॉनामिकल सोसाइटी के तत्वाबधान में आयोजित गोष्ठी में अभी हाल ही में चन्द्रमा पर आने वाले भूचाल के लिये महत्वपूर्ण सिद्धान्त सामने आये हैं।

विज्ञान के नये चरण

हाइड्रोजन बम का नियन्त्रण

हाइड्रोजन बम को नियंत्रित करके संसार के सम्मुख उपस्थित ईंधन की समस्या को टाला जा सकता है। रूसी विधि 'टोकामक' में संशोधन करके अमरीकी वैज्ञानिकों ने उष्मानाभिकीय संगलन को नियंत्रित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। रूसी विधि में प्लाज़्मा को रोक रखने के समय में वृद्धि के लिये चुम्बकीय बल का प्रयोग होता है परन्तु संगलन के लिये आवश्यक उच्च ताप इससे प्राप्त नहीं होता। प्रिंसटन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने स्पन्दी चुम्बकीय बल प्रयुक्त करके न केवल उच्च ताप ही प्राप्त किया बल्कि उच्च घनत्व भी अधिक हो जाता है। रुद्धोष्म संपीडन के सिद्धान्त को फुर्थ तथा योशिकावा ने प्रतिपादित किया। टोकामक के संशोधन में ताम्बे की पट्टुका के स्थान पर चुम्बकीय कुण्डली, लोहा के क्रोड के स्थान पर वायु क्रोड को प्रयुक्त किया गया तथा संपीडक के आकार को आधा कर दिया गया। एडियावेटिक टोरायडल कम्प्रेसर (ATC) प्रयोग करने वालों ने प्लाज़्मा में विद्युत धारा प्रवाहित करके 10000000°K ताप उत्पन्न किया। इससे इलेक्ट्रॉन घनत्व भी अत्यधिक हो जाता है।

कृत्रिम हड्डी

मनुष्य के शरीर में टूट फूट हो जाने के कारण हड्डी को बदलने की समस्या डाक्टरों को सदैव चिन्तित किए रहती है। यदि प्राकृतिक हड्डी के टुकड़ों को यथा आवश्यक आकार देकर जख्मी मनुष्य के शरीर में लगाया जाय तो उसमें सदैव यह भय बना रहता है कि शरीर इसे ग्रहण करेगा या नहीं। हड्डी में कार्बन के कुछ ऐसे यौगिक उपस्थित होते हैं जिनको शरीर ग्रहण नहीं कर सकता और इसीलिये उसका 'बहिष्कार' कर देता है। पेंसलवानिया विश्वविद्यालय के डा. काइट ने यह खोज निकाला है कि प्राकृतिक हड्डी के स्थान पर उसके ही समान का प्रकृतिक पदार्थ मूँगा प्रयुक्त किया जा सकता है मूंगा शंख परिवार का है। इस परिवार का पोराइट मूंगा उपयुक्त पाया गया है। क्योंकि इसकी रंध्रता और हड्डी की रंध्रता लगभग एक जैसी होती है। इसका एक लाभ यह भी है कि इसे बड़ी से बड़ी हड्डी के आकार का बनाया जा सकता है। डा. काइट के अनुसार मूंगे को यदि सांचा के रूप में काम में लाया जाय तो धातु अथवा सिरेमिक की हड्डी बनाई जा सकती है। अंगभंग होने पर यह एक उपयोगी विधि के रूप में लाया जा सकेगा।

कृत्रिम रेशा

लंदन के एक समाचार पत्र ने सूचना दी है कि एक ब्रिटिश कम्पनी ऐसा रेशा बनाने के औद्योगिक प्रयास में लगी है जिससे कपड़ों को सिलाई के बजाय जुड़ाई से काम चलेगा। ये रेशे दो भिन्न प्रकार के बहुलकों' जिनमें से एक बहुलक दूसरे के अन्दर होता है, द्वारा बनाया जाता है। जो बहुलक बाहरी पर्त में होता है उसका द्रवांक अन्दरी पर्तवाले बहुलक के द्रवांक से काफी नीचा होता है इन रेशों के गुच्छे को बाहरी बहुलक के द्रवांक के ताप तक गरम करते हैं तो बाहरी पर्त पिघल जाती है और रेशे एक दूसरे से जुड़ जाते है। इस प्रकार कपड़ा बनकर तैयार हो जाता है।

पफर्स पिल

एक ऐसी गोली का निर्माण हुआ है जो लगातार धूम्रपान करनेवालों की इच्छा को ही नहीं दबाता बल्कि उनकी भूख बढ़ा कर उनके स्वास्थ्य में भी सुधार करती है। इस गोली को बल्गेरिया में बनाया गया है और इसका नाम 'टैबेक्स' है। इसे बल्गेरिया में पाये जाने वाले पौधे सिटिसस लेबर्नम के निष्कर्षण से

बनाया गया है। इस पौधे की बीज से प्राप्त निष्कर्षण को नवजात शिशु की श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करने में प्रयुक्त किया जाता था। 15-25 वर्षों से धूम्र पान करने वाले व्यक्तियों पर प्रयोग करने पर उनमें से केवल 9% ने धूम्र पान जारी रखा शेष ने बन्द कर दिया और उनका दमा भी ठीक हो गया।

कृत्रिम सूर्य

संसार भर में सबसे पहली बार मास्को स्थित कृत्रिम जलवायु की प्रयोगशाला में कृत्रिम सूर्य का निर्माण किया गया है। जेनाब' यन्त्र द्वारा किसी भी समय किसी भी स्थान पर किसी भी मौसम में जुलाई जैसे मध्य दिवस की स्थिति उत्पन्न की जा सकती है। इसका उपयोग गेहूँ, सब्जी तथा लेगुमेनस पौधों को प्रकाश पहुँचाने में किया गया है और इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। विशेषज्ञों का दावा है कि उष्मा तथा प्रकाश के इस नये स्रोत का भविष्य उज्ज्वल है। ठंडे प्रदेशों में बंकरों के भीतर सब्जी उगाने में इससे सहायता मिलेगी। इसकी सहायता से आर्कटिक क्षेत्र के निवासियों को जिन्हें जाड़े में सूर्य नहीं दिखाई देता प्रकाश दिया जा सकता है।

मङ्गल ग्रह पर जलधारा

मैरिनर 9 द्वारा 1 जुलाई 1972 को मंगल ग्रह के जो चित्र लिये गये उनमें से एक में जलधारा दिखाई पड़ती है जिसके बारे में विचार है कि वह युगों पूर्व पानी के बहने से बनी होगी। इस दर्रे का प्रवाह उत्तर की ओर है। इस धारा के छोटे से खण्ड की लम्बाई 75 किलोमीटर है और यह अमेजोनिस और मैमनोनिया के बीच विषवत् रेखा से उत्तर में स्थित है। मैरिनर यान से 13 नवम्बर 1971 से लेकर 27 अक्तूबर 1972 के बीच मंगल ग्रह के सारे पृष्ठभाग का मापन करते हुये 7329 चित्र लिये थे।

विज्ञान वार्ता

'पायोनियर—11' वृहस्पति ग्रह के लिये नया अन्तरिक्ष

बृहस्पति ग्रह, जो सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है, के रहस्यों का पता लगाने के लिए, 5 अप्रैल को मानव-रहित अमेरिकी अन्तरिक्षयान के प्रक्षेपण के साथ ही, अमेरिकी अन्तरिक्ष-अनुसन्धान कार्यक्रम एक नए और महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश कर जाएगा। बृहस्पति ग्रह की यात्रा पूरी करने में इस अन्तरिक्षयान को लगभग 2 वर्ष का समय लगेगा।

570 पौण्ड (257 किलोग्राम) वजन का यह अन्त-रिक्षयान 'पायोनियर-जी' केपकैनेडी, फ्लोरिडा स्थित प्रक्षेपण स्थल से छोड़ा जायेगा। प्रक्षेपण के बाद, इसका नाम 'पायोनियर-11' हो जायेगा।

'पायोनियर-11' अन्तरिक्षयान में 12 यन्त्रपुंजों और 14 वैज्ञानिक परीक्षणों की व्यवस्था की गई है। आशा है कि यह अन्तरिक्षयान 1975 के प्रारम्भ तक बृहस्पति ग्रह के निकट पहुँचेगा।

अपनी इस लम्बी अन्तरिक्षयात्रा के दौरान यह मानवरहित अन्तरिक्षयान, विभिन्न ग्रहों के बीच के अव-काश तथा छोटे-छोटे तारों से भरी अन्तरिक्ष पट्टी तथा 28 करोड़ किलोमीटर चौड़े उस क्षेत्र का अध्ययन करेगा जो चट्टानों तथा अन्य प्रकार के ब्रह्माण्डीय कूड़े-करकट से भरा पड़ा है तथा जिससे होकर इस आन्तरिक्षयान को गुजरना पड़ेगा। इस क्षेत्र के पार करने में अन्तरिक्षयान को कई महीनों का समय लग जायेगा।

इससे पूर्व, इसी प्रकार का एक और मानवरहित पायोनियर-10 2 मार्च, 1972 को प्रक्षिप्त किया गया था। यह अन्तरिक्षयान अब बृहस्पति ग्रह के निकट पहुँचने ही वाला है। वह छोटे-छोटे तारों तथा ब्रह्माण्डीय कूड़े-करकट से भरी पट्टी को सफलता के साथ पार कर गया है। लेकिन, वैज्ञानिक इस बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं कि यह पट्टी सौर-मण्डल के बाहरी क्षेत्र में मनुष्य के प्रवेश में बाधक तो नहीं बनेगी। पायो-नियर-10 पृथ्वी से इतनी दूर पहुँच गया है जितना इससे पहले कोई भी मानव निर्मित अन्तरिक्षयान नहीं पहुँच सका है। यह 3 दिसम्बर को बृहस्पति ग्रह से निकटतम बिन्दु पर पहुँचेगा। 1980 के बाद, यह मानवनिर्मित ऐसी पहली वस्तु होगी, जो सौर-मण्डल के बाहर जाएगी।

'पायोनियर-11' को बृहस्पति ग्रह तक पहुँचने में 630 से लेकर 795 दिन तक लग सकते हैं। 'पायो-नियर-11' के प्रक्षेपण के बाद, कई और अन्तरिक्षयान भी प्रक्षिप्त किए जाएँगे।

असीम आक्सीजन यह कहाँ से आती है ?

वायुमण्डल का 20 प्रतिशत भाग आक्सीजन है। यद्यपि सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं द्वारा इसका निरन्तर उपयोग किया जाता है, किन्तु इसकी मात्रा लगभग उतनी ही बनी रहती है। तब यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि यह प्राणदायक गैस आती कहाँ से है।

वैज्ञानिक बहुत समय से ऐसा मानते रहे हैं कि आक्सीजन पेड़-पौधों की प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रिया से उद्भुत होती है। इस प्रक्रिया के दौरान वनस्पतियाँ धूप की मदद से खाद्यों का निर्माण करने के हेतु कार्बन डायोक्साइड को आत्मसात् कर लेती है और आक्सीजन को वायुमण्डल में जोड़ देती हैं।

किन्तु, अप्रैल 1972 में 'अपोलो 16' के अन्त-रिक्षयान चालकों द्वारा चन्द्रमा पर छोड़े हुए विशेष कैमरे से जो जानकारी पृथ्वी पर भेजी गई, उससे इस धारणा का खण्डन हो जाता है।

अल्ट्रावायोलेट प्रकाश में चित्र लेने वाले उक्त कैमरे के चित्रों से यह प्रकट होता है कि पृथ्वी के जल पर सूर्य के प्रभाव से, जिसके कारण पानी भाप बन

कर आकाश में ऊपर पहुँच जाता है, सम्भवतः पृथ्वी पर आक्सीजन की अधिकांश उपलब्धि होती है।

चन्द्रमा पर स्थापित कैमरे से पृथ्वी पर वापस भेजी गई फिल्म से ऐसी विस्तृत बातें पता चलती हैं, जैसी पृथ्वी के बाह्य वायुमण्डल में पहले कभी नहीं देखी गई थीं। उससे प्रकाट होता है कि पृथ्वी को हाइड्रोजन के विशाल बादलों ने चारों ओर घेरा हुआ है और वह 64,000 किलोमीटर दूर तक फैला हुआ है। इस परीक्षण के मुख्य अनुसन्धानकर्ता डा० जौर्ज कैरुथर्स ने कहा—ख्याल है कि यह हाइड्रोजन पानी की भ-प के कारण है, जो सूर्य के अल्ट्रावायोलेट विकिरण के फलस्वरूप ऊपरी वायुमण्डल में फट कर हाइड्रोजन और आक्सीजन में अलग-अलग हो जाती है।

हाइड्रोजन हल्की होने से बाह्य आकाश में चली जाती है और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र से बाहर हो जाती है। आक्सीजन अपेक्षाकृत भारी होती है, इसलिए वह वायुमण्डल में ही रह जाती है।

विटामिन 'बी-12' का कृत्रिम रूप से निर्माण

मैसाचूसेट्स स्थित हार्वर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने स्विटजरलैण्ड के तकनीकी विद्या सम्बन्धी संघीय संस्थान के सहयोग से कृत्रिम रूप से विटामिन 'बी-12' का निर्माण किया है। यह विटामिन घातक रक्ताल्पता रोग के उपचार में लाभकारी होता है। (इस समय प्राकृतिक बी-12 विटामिन अन्य प्रक्रियायों के गौण उत्पादन के रूप में प्राप्त होता है।)

विशेषज्ञों के अनुसार, विटामिन बी-12 के कृत्रिम निर्माण के फलस्वरूप बहुत सी ऐसी दवाएँ तैयार की जा सकेंगी जिनसे रक्ताल्पता रोग का अधिक अच्छा उपचार हो सकेगा।

वुडवर्ड ने विटामिन बी-12 का कृत्रिम रूप से निर्माण करने के अपने प्रयत्नों की घोषणा गत फरवरी में नई दिल्ली में 'भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी' में आयोजित विशुद्ध और प्रयोगात्मक रसायनविज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में की थी।

विटामिनों के अस्तित्व की खोज 1905 में की गई थी। पहले-पहल विटामिन-बी को चावल के छिलके से निकला गया था। उसके बाद वैज्ञानिक अधिकतर विटामिनों को अलग निकालने और उन्हें कृत्रिम रूप से तैयार करने में सफल हो चुके हैं।

वैज्ञानिकों को पता है कि मूल विटामिन बी असल में भिन्न-भिन्न रसायनों का सभास है। किन्तु पहले-पहल 1949 में अमेरिका और कनाडा के 'औषध-निर्माता वैज्ञानिकों ने प्रकृति में उपलब्ध कच्चे माल से विटामिन बी-12 के कुछ स्फटिकों का शोधन किया। उसे तत्काल रक्ताल्पता रोग के उपचार के लिए उपयोगी माना जाने लगा।

वुडवर्ड ने जो पहले कृत्रिम पदार्थ तैयार किये हैं उनमें विटामिन-डी, कुनैन, कौर्टिजोन, कोलेस्टेरोल, क्लोरोफिल, रेसरपीन (प्रथक शामक औषध) और बहुत सी कीटाणुनाशक दवाएँ शामिल हैं।

अन्तरिक्ष में आवास तथा प्रयोगशाला की सम्मिलित व्यवस्था

14 मई 1973 को भारतीय समय के अनुसार 11 बजे केप केनेडी से 'स्काई लैब' को प्रक्षिप्त करके अमरीका ने भूमण्डल के लिये अन्तरिक्ष का इस्तेमाल करने की दिशा में सबसे विशाल प्रयास आरम्भ किया। यह पहला समानव अन्तरिक्षयान होगा जो सौर शक्ति से संचालित होगा। स्काई लैब के मुख्य खण्ड का व्यास 6·7 मीटर और उसकी लम्बाई 14·6 मीटर है। अन्तरिक्षयात्री अधिकतर समय इसके भीतर रह कर काम करेंगे। अन्तरिक्षयात्री इसके पुस्तकालय में पढ़ सकते हैं, मन पसन्द संगीत सुन सकते हैं, खेल सकते हैं और व्यायाम कर सकते हैं तथा स्नान भी कर सकते हैं। यह 4 जनवरी 1974 तक (लगभग 8 महीने) पृथ्वी की कक्षा में बना रहेगा। अन्तरिक्षयात्रियों को भारी अन्तरिक्ष पोशाकें नहीं पहननी पड़ेंगी। तीन

कक्षों का होने के कारण तीनों यात्री अलग-अलग सोयेंगे। आशा की जाती है कि भारत समेत 143 देशों के 1500 से अधिक वैज्ञानिक अमेरिकी वैज्ञानिकों तथा अन्तरिक्षयात्रियों को सहयोग देंगे।

'स्काई लैब' तीन शयन कक्षों वाले मकान जितना बड़ा है और इसका भार 88000 किलोग्राम है। इसे दूरबीन की सहायता से देखा जा सकता है। यह पृथ्वी से 435 किलोमीटर की ऊँचाई पर 8 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है।

प्रक्षिप्त होने के थोड़ी देर बाद ही 'स्काई लैब' को एक गम्भीर तकनीकी समस्या का सामना करना पड़ा। उसके जिन पंखों में सौर शक्ति उत्पन्न करने वाली बैटरियाँ थीं वे पूरी तरह खुल नहीं पाये। कक्ष का ताप 150°F तक पहुँच गया जिसके कारण अन्तरिक्ष यात्रियों की प्रथम टोली का प्रक्षेपण कुछ समय के लिये स्थगित करना पड़ा। प्रथम चालक टोली चार्ल्स कोनार्ड, जोजेफ करविन तथा पॉल वीट्ज की है जिनको 28 दिन तक स्थाई लैब में रहकर प्रयोग करना है। अन्त में वैज्ञानिकों व तकनीशियनों के निर्णयानुसार 25 मई को उस टोली का यान प्रक्षिप्त किया गया। इसका कार्य स्काई लैब के ऊपर ऐसी छतरी का निर्माण करना है जिससे स्काई लैब की कक्षा का ताप कम किया जा सके। इस सौर छतरी को हाउस्टन में ही निर्मित किया गया था। प्रेस में जाते समय तक की सूचना के अनुसार यह छतरी लगा दी गई है और 28 मई तक 8° तक ताप कम हो गया था।

● ●

सम्पादकीय

4 मार्च, 1973 को विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के 60वें अधिवेशन के अवसर पर बोलते हुए केन्द्रीय शिक्षा मंत्री प्रोफ़ेसर नूरुल हसन ने कहा कि विज्ञान और तकनीकी के ज्ञान को हमें घर-घर पहुँचाना चाहिए और ऐसा हम तभी कर सकेंगे जब हम विज्ञान से संबंधित पठन, पाठन तथा लेखन का कार्य अपनी ही भाषा में करें। केन्द्रीय कैबिनेट मंत्री का यह मत महत्वपूर्ण तथा सराहनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के 27 वर्षों के बाद भी अपनी भाषा में विज्ञान व तकनीकी का अध्ययन संभव नहीं हो सका है। हमने इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाया भी नहीं ! इसमें सन्देह नहीं कि अगर हम अपनी ही भाषा में अपनी बात समझाने की चेष्टा करें तो हमें आशातीत सफलता प्राप्त होगी। जर्मनी, रूस, हालैंड, पुर्तगाल, स्पेन, इटली कोई भी योरोपीय देश ऐसा नहीं है जो किसी विदेशी भाषा के ऊपर इस प्रकार निर्भर हो जैसा कि आज हम अपने को पाते हैं। अभी भी देरी नहीं हुई है यदि हम यह नीति अपना लें और उसे कार्यान्वित भी करें कि राष्ट्र-भाषा को ही प्रयोग किया जायगा। सरकार ने विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकें लिखवाने तथा मानक पुस्तकों का विदेशी भाषाओं से भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने का कार्य आरम्भ किया है। कुछ प्रान्तों में तो बहुत प्रगति हुई है पर कुछ में काम अभी ढीला है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने पारिभाषिक शब्दावली तैयार करवाने का कार्य भी पूरा कर लिया है। पुस्तकें मिलने पर विद्यार्थियों की यह शिकायत दूर हो जायगी कि हमें अपनी भाषा में पढ़ने की प्रचुर सामग्री उपलब्ध नहीं है। विज्ञान व तकनीकी का प्रचार व प्रसार राष्ट्रिय भाषा के द्वारा ही संभव है। अतः हम सब यह निर्णय ले कि देश के हित को ध्यान में रखकर पठन-पाठन व लेखन का कार्य हिन्दी ही में ही करेंगे।

'भारतीय विज्ञान-पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० 35

भाग III | चैत्र 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द, अप्रैल-मई 1973 | संख्या 13

आनुवंशिक कोड

विष्णुकान्त शर्मा

विभिन्न जीवों के डी. एन. ए. अणुओं में विभिन्नता उनके क्षारक युग्मों के विन्यास के कारण होती है। इसी प्रकार प्रोटीनों में विभिन्नताएँ उनकी पॉलीपेप्टाइड शृंखलाओं में अमीनो अम्लों के विभिन्न प्रकार व विन्यास के फलस्वरूप होती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि डी. एन. ए. अणुओं में क्षारक युग्मों का विन्यास किसी जीव की प्रोटीनों में उपस्थित अमीनों अम्लों के प्रकार व विन्यास को नियंत्रित करता है अर्थात् डी. एन. ए. आनुवंशिक कोड का वाहक होता है। विभिन्न अमीनो अम्लों के कोडोनों की सारणी को **आनुवंशिक कोड** कहते हैं। इसी कोड के कारण कोशिकाओं में प्रोटीनो का संश्लेषण सम्भव होता है जो एक जीव को दूसरे जीव से पृथक करती हैं। प्रोटीन संश्लेषण में प्रत्येक अमीनो अम्ल के वरण के लिए 3 न्यूक्लिओटाइडों के एक त्रिक की आवश्यकता होती है। इस त्रिक को **कोडोन** भी कहते हैं। t आर. एन. ए. अणु पर न्यूक्लिओटाइडों के अनुक्रम को, जो कोडोन का पूरक होता है, **ऐन्टीकोडोन** कहते हैं। उदाहरणार्थ, अमीनों अम्ल फिनायल ऐलेनीन का कोडोन UUU है तो इसका ऐन्टीकोडोन AAA होगा।

आनुवंशिक कोड का निर्माण सिर्फ त्रिक क्षारकों से होता है न कि एकल व द्विक्षारकों के संयोजन से। यदि कोड को एकल क्षारक से निर्मित मान लिया जाये तो सिर्फ चार प्रकार के अमीनो अम्लों का वरण हो सकेगा। द्विक्षारक कोड के द्वारा केवल 16 (4^2) अमीनो अम्लों का वरण हो सकता है जो अपर्याप्त है। परन्तु तीन क्षारकों से संगठित कोड द्वारा 64 (4^3) प्रकार के संयोजन प्राप्त किये जा सकते हैं। यदि m आर. एन. ए. अणु में नाइट्रोजनी क्षारकों का अनुक्रम पॉलीपेप्टाइड शृंखला में अमीनो अम्लों के प्रकार व उनके विन्यास को निर्धारित करता है तो यह आशा की जा सकती है कि एक कृत्रिम m आर. एन. ए., जो सिर्फ यूरेसिल क्षारकों से निर्मित है, एक ऐसी पॉलीपेप्टाइड शृंखला का संश्लेषण करेगा जिसमें सिर्फ एक ही प्रकार का अमीनो अम्ल होगा। इस

प्रकार का प्रयोग सन् 1961 में नीरेनवर्ग व उसके साथियों ने किया और फिनायल ऐलेनीन नामक एक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का संश्लेषण किया। इस प्रयोग से यह भी पता लगा कि फिनायल ऐलेनीन का त्रिक कोड UUU है। अतः डी. एन. ए. अणु के संकेतीकरण करने वाले भाग में क्षारकों का अनुक्रम AAA होगा। इस प्रयोग व आनुवंशिक कोड पर अन्य शोधों के परिणाम-स्वरूप नीरेनवर्ग, खुराना आदि को 1968 में नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया।
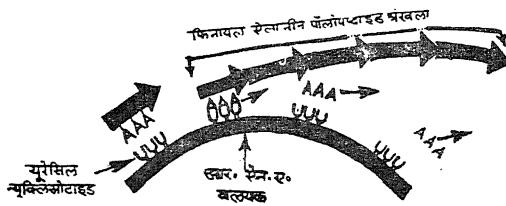
फिनायल ऐलानीन का संश्लेषण

यह देखा गया है कि एक विशिष्ट अमीनो अम्ल का वरण एक से अधिक कोडोनों द्वारा हो सकता है। जैसे सिर्फ ग्लायसीन का ही वरण GGU, GGC, GGA व GGG कोडोनों द्वारा हो सकता है। इस दृष्टि से आनुवंशिक कोड को अपभ्रष्ट कोड (degenerate code) कह सकते हैं। इसके अलावा कोड संदिग्ध हैं क्योंकि एक ही कोडोन विभिन्न अमीनो अम्लों को 'ट्रांसलेट' कर सकता है। कोड अनतिव्यापी भी है क्योंकि पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं में अमीनो अम्ल अनियमित अनुक्रम में उपस्थित रहते हैं और किसी भी अम्ल के अन्य समीपवर्ती अम्ल सदैव एकसे नहीं होते। UAA, UAG, UGA त्रिक पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं की समाप्ति करने का कार्य करते हैं परन्तु किसी भी अमीनो अम्ल का संकेतीकरण नहीं करते। अतः ऐसे त्रिकों को निरर्थक कोडोन कहते हैं। सबसे महत्वपूर्ण गुण जो आनुवंशिक कोड में देखा गया है वह है इसकी सार्वत्रिकता। एक ही प्रकार के कोडोन जो ई० कोलाई में अमीनो अम्लों का वरण करते हैं वही कोडोन यीस्ट, तम्बाकू व गिनीपिग आदि जीवों में भी अमीनो अम्लों का वरण कर सकते हैं।

अमीनो अम्ल	आर० एन० ए० क्षारक
फिनायल ऐलानीन	UUU, UUC
ऐलानीन	GCU, GCC, GCA, GCG
आर्जीनीन	CGU, CGC, CGA, CGG, AGA, AGG
ऐस्पार्टिक अम्ल	GAU, GAC
ऐस्पेरेजीन	AAU, AAC
सिस्टाइन	UGU, UGC
ग्लूटैमिक अम्ल	GAA, GAG
ग्लूटैमीन	CAA, CAG
ग्लायसीन	GGU, GGC, GGA, GGG
हिस्टीडीन	CAU, CAC
आइसोल्यूसीन	AUU, AUC, AUA
ल्यूसीन	CUU, CUC, CUA, CUG, UUA, UUG
लायसीन	AAA, AAG
मैथीओनीन	AUG
प्रोलीन	CCU, CCC, CCA, CCG
सीरीन	UCU, UCC, UCA, UCG
थ्रीओनीन	ACU, ACC, ACA, ACG
ट्रिप्टोफान	UGG
टायरोसीन	UAU, UAC
वैलीन	GUU, GUC, GUA
श्रृंखला टर्मीनेटर	UAA, UAG, UGA

A = ऐडेनीन, G = ग्वानीन, U = यूरेसिल, C = सायटोसिन

विष्णुकान्त शर्मा
वनस्पति विज्ञान विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

जीवोद्भव : एक समस्या

श्याम सुन्दर पुरोहित एवं चैतन्य कुमार गहलोत

मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसका मस्तिष्क कुछ न कुछ उद्यम करता रहता है। उसे रिक्त बैठना नहीं आता। जब मानव ने अपने आसपास के स्थानों का निरीक्षण किया तो उसने कई प्राणी व पौधों को अपने आसपास पाया तो सर्वप्रथम उसे यही विचार आया कि ये कैसे पैदा हुए कब पैदा हुए तथा कहाँ हुए ? आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब उसके मन में इन सब बातों को जानने की इच्छा पैदा हुई तो उसने उसको अनावृत करने की चेष्टा की। इसी कारण जब उसे इस तथ्य को जानने की आवश्यकता अनुभव हुई तो स्वभावत: खोज भी आरम्भ हो गई। ज्यों-ज्यों यह चरण आगे बढ़ता गया, विभिन्न मत दिए गये। कुछ ने इस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश की लेकिन, एक के पश्चात् एक पर कुठाराघात होता रहा।

जीवोद्भव की आवश्यकता का अनुभव सर्वप्रथम प्रेयर नामक वैज्ञानिक को हुआ। उसके पश्चात् कई वैज्ञानिकों ने इस समस्या को सुलझाने के लिए अपने-अपने विचार प्रकट किए। अब पूर्व इसके कि हम इन सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करें, हमें उद्भव की विवेचना कर लेनी चाहिए।

उद्भव क्या है ? जीवन और मृत्यु की परिभाषा कोई नहीं कर सकता। ये परम-अर्थ है युक्त शब्द हैं। वास्तविक जीवन का "उद्भव' आज भी आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिकों के लिए एक विकट समस्या है। यह उत्पत्ति कहाँ और कब हुई ? यह बात अभी तक एक पहेली बनी हुई है जिसे सुलझाने में अभी कितने वर्ष और लगेंगे ?

समय-समय पर दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों ने अपने-अपने मत तथा सिद्धान्त प्रकट किए उनमें से मुख्य निम्न हैं :—

(1) जीवनवादी सिद्धान्त :—जीवोद्भव के लिए इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया। इसे आत्मवादियों ने इस प्रकार दिया कि व्यक्तिगत जीवन ही आत्मा (स्प्रिट) है : अर्थात् इन्होंने आत्मा को परमात्मा का ही एक अंश माना इसी कारण व्यक्तिगत जीवन ही आत्मा कहलाती है।

(2) जीवनवाद के पश्चात् यांत्रिकीवादियों ने अपना मत सबके समक्ष रखा। इनके अनुसार अकार्बनिक तत्वों ने वेष बदल कर एक सजीव दीर्घाणु उत्पन्न किया और वही सजीव दीर्घाणु जीवन का मूल स्रोत बना। अर्थात जीव जीवों को उत्पन्न करता है। क्योंकि उनके अनुसार सजीव दीर्घाणु ही जीवन का मूल स्रोत है।

(3) भौतिकवाद :—भौतिकवाद के अनुसार सर्वप्रथम निर्जीव से सजीव बने तथा इस क्रिया के मध्य प्रोटीन-संश्लेषण में भौतिक-नियम काम आये और जीवोद्भव होते ही जैविक नियम काम में आने लगे। अर्थात निर्जीवों से जीवों की उत्पत्ति हुई।

इसके पश्चात फिर एक नया मत प्रकट हुआ।

(4) अनादि-अनन्तता का सिद्धान्त :—

यह सिद्धान्त प्रेयर नामक वैज्ञानिक द्वारा सन् 1880 में दिया गया। इसके अनुसार जीवनोद्भव अरबों वर्ष पूर्व इसी प्रकार हुआ व अरबों वर्ष तक इसी प्रकार चलता रहेगा। अर्थात इसका न आदि है और न अन्त। यानी जीव जैसा था वैसा ही है और जैसा है वैसा ही

रहेगा। जीव में अब तक कोई उन्नति नहीं हुई एवम् न होगी।

प्रेयर के बाद एक और नया सिद्धान्त प्रकट हुआ :—

(5) ब्रह्माण्डी-उद्भव का सिद्धान्त :—

यह सिद्धान्त रिचटर नामक वैज्ञानिक ने सन् 1885 ने प्रस्तुत किया। इसके अनुसार जीव किसी दूसरे ग्रह से पृथ्वी पर आया और वही उद्भव का मूल स्रोत बना। अर्थात जीवोद्भव के लिए कोई जीव पृथ्वी पर से टपक पड़ा और उसी ने जीवों की उत्पत्ति की। सन् 1905 में एरेनियस नामक वैज्ञानिक ने इसी मत का अवमूल्यन करने के पश्चात ही इसे स्वीकार किया।

परन्तु कालान्तर में एक और नया मत प्रकट हुआ।

(6) स्वतोजनन का सिद्धान्त (थ्योरी आफ एबायोजेनेसिस) :—

इस सिद्धान्त के अनुसार निर्जीव से सजीव पैदा हुआ और यह निर्जीव उद्भव का मूल स्रोत बना।

लेकिन, इटली के वैज्ञानिक फ्रन्सिस्को रेडी ने इसे गलत सिद्ध कर दिया। इसके बाद लुई-पास्च्योर नामक वैज्ञानिक ने फिर से स्वतोजनन सिद्धान्त की पुष्टि की। इन्होंने एक फ्लास्क में पानी उबाल कर उसे कीटाणुरहित कर दिया। इसके पश्चात् फ्लास्क के मुह को लम्बा करके बन्द कर दिया। इस फ्लास्क को उन्होंने यों ही कई दिनों तक पड़ा रहने दिया व बाद में जब उसकी जांच की तो वह कीटाणुओं रहित ही मिला। फिर मुँह खोल कर कई दिन तक छोड़ रखा तो उसमें कीटाणुओं का समूह पाया गया। इसका निष्कर्ष उन्होंने इस प्रकार निकाला कि जीव के बिना जीव उत्पन्न नहीं हो सकते। अर्थात जीव से जीव पैदा होते हैं।

(7) धार्मिक सिद्धान्त—

ये सब विशिष्ट सृजनवाद कहलाते हैं। विभिन्न धर्मों में विभिन्न प्रकार से जीवोद्भव बताया गया है। जैसे—

(अ) हिन्दुओं के अनुसार, विष्णु की नाभि से ब्रह्मा ने प्रकट होकर सृष्टि की रचना की।

(ब) ईसाइयों के अनुसार, ईश्वर ने सर्वप्रथम दो प्राणी नर-आदम (एडम) तथा स्त्री-हव्वा (ईव) को बनाया, जिन्हें शैतान (डेविल) ने सांप का रूप बनाकर, हव्वा को सश्यफल खिला कर भ्रष्ट किया जिससे कि उन्हें भूख, प्यास, दर्द, वासना इत्यादि का अनुभव हुआ और जिससे सृष्टि में जीवोद्भव हुआ।

(स) एक और धर्मानुसार, भगवान् दो दिन तक पदार्थ (हवा, प्रकाश आदि) बनाते रहे, अगले दो दिन वनस्पति बनाई तथा अन्तिम दो दिनों में प्राणी-जगत् का निर्माण किया। सातवें दिन उन्होंने विश्राम किया और यही दिन रविवार के रूप में आता है।

(8) प्रलयवाद का सिद्धान्त—

इस मत के अनुसार जीवोद्भव पानी से हुआ। इस मत को क्यूवियर नामक वैज्ञानिक ने दिया था।

(9) नैसर्गिकवाद—

यह मत रूसी वैज्ञानिक इव्रानोवस्की ने दिया, जिसके अनुसार किसी एक शक्ति ने जाति बनाई तथा वही शुरू से अन्त तक चल रही है और चलती रहेगी। अर्थात् न उन्नति हुई और न अवनति ही।

इन सब के पश्चात् अन्य वैज्ञानिकों ने अपने-अपने मत निम्न प्रकार से दिये—होरोविज़ के अनुसार एक स्वतन्त्र सजीव अणु बहु-आणविक वातावरण में तीन लक्षण रखता है—

(अ) उत्परिवर्तन (म्यूटेशन)—अर्थात् संततियों में होने वाले अचानक परिवर्तन जैसे कि मनुष्य की पूँछ घिस गई तो उसकी सभी सन्तानें बिना पूँछ की ही हुईं।

(ब) आत्मद्विगुणन (सेल्फ-डुप्लीकेशन) अर्थात् जीव का, अपने जैसा ही जीव उत्पन्न करना। तथा

(स) इतरउत्प्रेरण (हिटरोकेटेलिज्म)— मैडिसन नामक वैज्ञानिक ने कहा कि जीव दो अकार्बनिक तत्वों से बना है जो पहली से दूसरी क्रिया का विमोचन करता है। अर्थात जीव में दो अकार्बनिक तत्व उपस्थित रहते हैं। इन तत्वों में पहला जो क्रिया करता है वही क्रिया दूसरा भी करता है।

इसके पश्चात् अरस्तू ने भी अपना मत दिया कि कूड़ा-करकट और कीचड़ में भी जीव स्वत: ही पैदा हो जाता है। इन्होंने अजीव जनन में भी अपना विश्वास प्रकट किया। यह सिद्धान्त 1668 तक चला। इस

सिद्धान्त का अर्थ था कि यदि कुछ समय तक कूड़ा-करकट या कीचड़ पड़ा रहे तो उसमें से अपने आप ही जीवोत्पत्ति हो जाती है। परन्तु इस कथन को 1668 में ही असत्य सिद्ध कर दिया गया।

इसके पश्चात् ल्यूबेन-हॉक के सूक्ष्मदर्शक के बाद जॉव्लांट तथा निघम ने इस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश की लेकिन असफल रहे। इसके पश्चात् 1861 ई० में लुई पास्च्योर ने अरस्तू की जीवनोद्भव सम्बन्धी मान्यता पर मृत्युकारक आघात किया।

आधुनिक जीवनोद्भव सम्बन्धी मान्यता (ह्वोरोविज्ञ के आधार पर)—

5 अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य से पृथक् हुई। तब उसके केन्द्र में अयस (आयस) के भारी परमाणु संग्रहित थे और इन लोह कणों को अल्यूमिनियम और सिलिकन के मध्यमाकार परमाणु घेरे हुए थे व सबसे बाहर वायुमंडल था। वायुमंडल में कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और आक्सीजन चार तत्व उपस्थित थे। क्रियाशील हाइड्रोजन के परमाणु आक्सीजन के परमाणुओं से युक्त हुए और पृथ्वी पर जलवाष्प का साम्राज्य हो गया।

इसके पश्चात् वाष्प धीरे-धीरे शीतल हुई और महासागरों का निर्माण हुआ और इस प्रकार पृथ्वी के चारों ओर जलमण्डल बना। इससे पृथ्वी पर भूपपंटी (पपड़ी) का निर्माण हुआ और ज्वालामुखी जो जगह जगह फूट और इसी समयान्तर में नाइट्रोजन और हाइड्रोजन 3:1 के अनुपात में मिले जिसस अमोनिया का निर्माण हुआ—

फिर 4 योजनीयता वाले तत्व 4:1 के अनुपात में सयुक्त हुआ व मिथेन गैस बनी—

कार्बन और आक्सीजन ने मिल कर (कार्बन डाई आक्साइड) बनाई—

तथा हाइड्रोजन व नाइट्रोजन से कार्बन ने संयुक्त होकर हाइड्रोसायनिक गैस का निर्माण किया—

इन सब क्रियाओं के लिये ऊर्जा एक्स-किरण (एक्स-रे) व सूर्य से प्राप्त की गई एवं ऊर्जा के अन्य स्रोत परा-बैंजनी किरणें व तड़ित रहे। ये गैसें शीघ्र ही महासागरीय जल में विलीन हो गईं तथा नदियों द्वारा खनिज पदार्थ एवं अनेक लवण इस जल में डाले गये। हाइड्रोजन व आक्सीजन अब मुक्तावस्था में न रह सके क्योंकि उनका उपयोग वर्षा व इन प्रतिक्रियाओं में हुआ। वायु में पाये जाने वाले रासायनिक यौगिक भी वर्षा द्वारा समुद्र में पहुँचाये गये व इस प्रकार कार्बनिक संश्लेषण से जैविक आधार का प्रयाण हुआ। साधारण शर्कराएं, ग्लिसरॉल, वसीय-अम्ल जैसे पामिटिक अम्ल, स्टिएरेटिक अम्ल इत्यादि तथा प्यूरीन नामक यौगिक बने तथा साथ-साथ अमीनो अम्लो तथा पिरामिड़ीन्स का संश्लेषण हुआ। इस प्रकार कार्बन के अनेक श्रृंखला व वलय यौगिक बने, जिन्होंने कि जीवन के प्रकटीकरण के लिये तल तत्पर किया। इसके बाद—और समूह वाले प्रोटीन का निर्माण हुआ। इस प्रकार रासायनिक टेम्पों, जैविक दृश्यों में बदलने लगा। फिर विकरों (एन्जाइम) ने उत्प्रेरण से एडनोसिन ट्राई फास्फेट बनाया। इसके बाद न्यूक्लियोटाइड्स बने। ए. टी. पी. ऊर्जा वाहक है, अनेक कोयज़रवेट (चिपचिपा पदार्थ जो पानी में तैरता है) बनाने लगा। इनका विशिष्ट गुण है कि वह दूसरे पदार्थों को आत्मसात् कर सकता है। इसके बाद डि-आक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल बना।

डि-आक्सीराइबो-न्यूक्लिक अम्ल (डी. एन. ए.) नामक नाभिकीय अम्लों का (यदि ये न बनते तो पैतृकता न आती) निर्माण हुआ। तत्पश्चात् महासागरों में बहु-आण्वीय समूह बने और उनमें पित्र्येक (जीन) रहा हो। ऐसी कोई जीवित इकाई न देखी गई जिसमें कि एक या एक से अधिक जीन नहीं हो।

आत्मरिगुन के लिए समुचित पर्यावरण सागरों ने प्रदान किया। एक जीन डी. एन. ए., प्यूरीन, पिरामिडीन नामक यौगिक तथा शक्कर एवं फास्फेट का बना होता है। आत्मद्विगुणन में होने वाली छोटी-छोटी भूलों ने अनेक उत्परिवर्तनों को जन्म दिया।

पृथ्वी पर जीवन का उद्भव इस प्रकार क्रमानुसार हुआ जिसके आधार पर अकार्बनिक तत्व बने। नग्न जीव

(शेष पृष्ठ 7 पर)

प्रोटीन क्या है ?

डॉ० रामचन्द्र कपूर

प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, जल तथा खनिज लवणों के अलावा एक संतुलित आहार में विटामिनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। विटामिन एक प्रकार के कार्बन यौगिक हैं जिनकी भोजन में अनुपस्थिति से शरीर की कुछ क्रियाओं में अपसामान्यता आ जाती है। फंक ने सर्वप्रथम 1911 में ऐसे पदार्थों के लिये 'विटामिन' शब्द का इस्तेमाल किया। मैकओलम और डेवीस ने 1915 में विटामिनों के नामांकन की एक प्रणाली दी और उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया। वे विटामिन जो वसा में घुलनशील थे उन्हें 'वसा-घुलनशील ए' वर्ग और वे जो पानी में घुलनशील थे उन्हें 'जल-घुलनशील बी' वर्ग के नाम से पुकारा गया। विभिन्न विटामिनों को इन्हीं दो वर्गों में रक्खा गया और प्रत्येक को ए. बी. सी. आदि शब्दों द्वारा पुकारा गया। यद्यपि विटामिनों के नामांकन की यह प्रणाली अभी भी प्रचलित है, परन्तु आजकल विटामिनों के लिये रसायनिक नाम जैसे विटामिन सी के लिये एसकारबिक एसिड, विटामिन बी$_1$ के लिये थायमीन, विटामिन बी$_2$ के लिये राइबोफ्लेविन आदि अधिक इस्तेमाल किये जा रहे हैं। प्रस्तुत है इस लेख में विभिन्न प्रकार के विटामिनों का विवरण।

विटामिन ए—यह विटामिन शरीर में 'बीटा-कैरोटीन' वर्णक से बनता है और मछली के तेल, मक्खन, अंडों, क्रीम, हरी सब्जियों, गाजर आदि में काफी मात्रा में पाया जाता है। इस विटामिन की कमी से आँखों की बीमारियाँ जैसे 'जीरोथैलमिया', रतौंधी आदि हो जाती है, त्वचा में सूखापन आ जाता है तथा शरीर की बाढ़ की गति धीमी पड़ जाती है अथवा रुक जाती है।

विटामिन बी सम्मिश्र—यह कोई एक विटामिन नहीं बल्कि विटामिनों का एक समूह है। इसमें मुख्यत: थायमीन (विटामिन बी$_1$), राइबोफ्लेविन (विटामिन बी$_2$) नियासिन व नियासिनामाइड, पिरीडाक्सीन (विटामिन बी$_6$), पेन्टोथेनिक एसिड, बायोटिन, पैरा-अमीनो बेन्जोइक एसिड व फोलिक एसिड आते हैं। विटामिन बी सम्मिश्र की कमी से स्वभाव में चिड़चिड़ापन, थकावट व भूख में कमी आती है।

विटामिन बी$_1$ या थायमीन खमीर, जिगर, गेहूँ, अण्डों आदि में बहुतायत से पाया जाता है और कार्बोहाइड्रेट उपापचय के लिये काफी आवश्यक है। इस विटामिन की कमी से 'बेरी-बेरी' नामक बीमारी हो जाती है।

विटामिन बी$_2$ या राइबोफ्लेविन दूध, खमीर, जिगर, माँस, अण्डों, व हरी सब्जियों में पाया जाता है तथा इसकी कमी से जीभ में जलन होने लगती है।

विटामिन बी सम्मिश्र का एक और सदस्य नियासिन व नियासिनामाइड है। इसकी कमी से 'डरमेटिटिस' व 'पेलाग्रा' नामक बीमारियाँ हो जाती हैं। यह विटामिन जिगर, वृक्क, माँस, खमीर व हरी सब्जियों में पाया जाता है।

पिरीडाक्सीन अथवा विटामिन बी$_6$ भी विटामिन बी सम्मिश्र का एक सदस्य है और अण्डों, योक माँस, मछली व दूध में काफी मात्रा में पाया जाता है। पिरीडाक्सीन के दो व्युत्पन्न पिरीडाक्सल व पिरीडाक्सएमीन भी पिरीडाक्सीन की तरह विटामिन सक्रियता दिखाते हैं।

पेंटोथेनिक एसिड भी विटामिन बी सम्मिश्र का ही एक सदस्य है और वसा, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के उपापचय के लिये महत्वपूर्ण है। यह बहुतायत में माँस, खमीर व गेहूँ में पाया जाता है।

बायोटिन एक दूसरा विटामिन बी सम्मिश्र है और वसा उपापचय के लिये आवश्यक है। यह जिगर, वृक्क, अण्डों के योक, दूध व सब्जियों में काफी मात्रा में पाया जाता है। इसकी कमी से 'डरमेटिटिस', पेशियों में दर्द व भूख में कमी आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

पैरा-एमीनीबेन्ज़ोइक एसिड भी बिटामिन बी सम्मिश्र का एक सदस्य है और यकृत, खमीर व गेहूँ में बहुतायत से पाया जाता है।

फोलिक एसिड, एक अन्य विटामिन बी सम्मिश्र 'एनीमिया' (खून की कमी) के उपचार में प्रयोग किया जाता है।

विटामिन सी (एसकारबिक एसिड)—यह विटामिन संतरे, नीबू, टमाटर, अमरूद तथा हरी तरकारियों में काफी मात्रा में पाया जाता है तथा इसकी कमी से स्कर्वी नामक बीमारी हो जाती है।

विटामिन डी—यह विटामिन कैल्सियम तथा फॉस्फोरस के उपापचय के लिये आवश्यक है। इसकी कमी से बच्चों में सूखा-रोग हो जाता है। इस विटामिन का सबसे सस्ता स्रोत धूप है, वैसे यह विटामिन दूध, अण्डों मक्खन तथा मछली तेल में भी पाया जाता है। इसके अन्तर्गत दो विटामिन आते हैं : विटामिन डी$_2$ व विटामिन डी$_3$।

विटामिन ई—इस विटामिन के कई रूप हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है—'एल्फा-टोकोफेराल।' इस विटामिन की कमी से प्रजनन शक्ति में कमी आ जाती है, तथा यह काफी मात्रा में अण्डों के योक, मटर की फली, सलाद तथा दूध में पाया जाता है।

विटामिन के—इस विटामिन की कमी से खून के जमने की शक्ति में कमी आ जाती है जिसकी वजह से किसी स्थान पर चोट या कट जाने पर खून का बहना बन्द नहीं होता है। यह विटामिन एल्फा-एल्फा, टमाटर सूअर के जिगर, अण्डो, पनीर आदि में काफी मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन बी व सी पानी में घुलनशील हैं तथा ए, डी, ई और के वसा में घुलनशील हैं। यद्यपि स्वस्थ शरीर के लिये भोजन में विटामिनों का होना अत्यन्त आवश्यक है परन्तु इनकी मात्रा बहुत ही कम होनी चाहिये।

● ●

डॉ० रामचन्द्र कपूर
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर—1

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

फिर सजीव कोशिकाओं में बदले होंगे। अब यह स्पष्ट है कि पहला जीव महासागर में एक अरब वर्ष पूर्व हुआ और इस प्रकार जीवन का प्रकाश हुआ। आज से 2-8 अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी बनी व एक लाख वर्ष पूर्व मानव का जन्म हुआ।

●●

श्याम सुन्दर पुरोहित एवं चैतन्य कुमार गहलौत
राजकीय महाविद्यालय, नाथद्वारा-राजस्थान

अन्तरिक्ष से पृथ्वी का अवलोकन

डॉ० शिवप्रकाश

रूस और अमरीका ने अन्तरिक्ष उड़ानों से जो आंकड़े प्राप्त किये हैं उनकी सहायता से हमें वायुमण्डलीय घटनाओं का रोचक ज्ञान प्राप्त होता है। अन्तरिक्ष यात्रियों के व्यक्तिगत निरीक्षणों, उनके द्वारा उड़ान पुस्तिका में अंकित सूचनाओं तथा उपकरणों द्वारा लिये गये बादलों के छायाचित्रों से पृथ्वी के वायुमण्डल में होने वाले भौतिक परिवर्तनों तथा मौसम के बारे में हमारी जानकारी में पर्याप्त वृद्धि सम्भव हो सकी है।

छायाचित्रों तथा टेलिविजन चित्रों से प्राप्त आंकड़ों से पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों गोलार्द्धों में बादलों की स्थिति, बर्फ तथा हिम आवरणों के बारे में पता चलता है। बादलों के आकार तथा उनके परिमाण से ऋतु परिबर्तन जाना जा सकता है। अमरीका के टीरॉस श्रेणी की उड़ानों से कई लाभप्रद जानकारी मिली है। हम यह जानते हैं कि सर्पिल घन आकार उष्ण कटिबन्धीय हरीकेन की विशेषता है। घन आवरण के चित्रों से हरीकेन से उद्गम, विकास तथा प्रतिस्थापन के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। पहले की अपेक्षा अब कहीं सरल हो गया है कि हम हरीकेन आने की पूर्व सूचना काफी पहले से दे सकें! आर्कटिक तथा अन्टार्कटिक महासागरों पर हिम वितरण मालूम करके मौसम का पूर्व ज्ञान तो हो हो जाता है इससे जहाज़रानी में भी सहायता मिलती है। यह कार्य अभी तक हवाई जहाज तथा समुद्री जहाजों की सहायता से किया जाता था जिसमें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

उड्डयन में सुरक्षा की दृष्टि से बादलों की ऊपरी सीमा को ऊँचाई जानना बहुत आवश्यक होता है। मौसम की जटिल परिस्थितियों में उड़ान करते समय इसका ज्ञान परम आवश्यक होता है अन्यथा हवाई जहाज के दुर्घटना ग्रस्त होने की सम्भावना रहती है। उपग्रह द्वारा चित्रित बादलों के चित्रों की तीव्रता से बादलों के ऊपरी सीमा की ऊँचाई ज्ञात की जा सकती है। नियमानुसार जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ती है वायुमण्डल का ताप कम होता जाता है इसलिए बादलों के ऊपरी छोर का ताप पृथ्वी तल के ताप से कम होगा। बादलों के ऊपरी छोर का ताप जानकर उसकी ऊँचाई निकाली जा सकती है। यह देखा गया है कि बादलों की स्थिति व उनकी संरचना में तथा वायु की दिशा में सीधा सम्बन्ध होता है। अगर बादलों की ऊँचाई ज्ञात हो तो स्टीरियोस्कोपी निरीक्षण द्वारा वायु की दिशा का पता लगाया जा सकता है। और जब वायु की दिशा मालूम हो जायगी तो पृथ्वी पर मौसम के बारे में पूर्व घोषणा की जा सकती है।

सूर्य की सक्रियता सदैव स्थिर नहीं रहती। यह परिवर्तन सूर्य धब्बों में होने वाले परिवर्तन के कारण होते हैं। सूर्य की सक्रियता में परिवर्तन होने से मौसम की दशा में परिवर्तन हो जाता है। सूर्य सक्रियता का ग्यारह वर्ष का एक चक्र होता है। 1957-58 में जब अधिकतम सक्रियता का समय था तो अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के अन्तर्गत महत्वपूर्ण खोज किये जा सके। जब यह सक्रियता कम हुई तो 1964-65 में शान्त सूर्य का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष का कार्यक्रम बनाया गया और इसके अन्तर्गत पुनः कई विलक्षण अन्वेषण किये गये। इनसे सूर्य सक्रियता और मौसम के बीच महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये गये। सूर्य विकिरण की माप से यह पाया गया कि सूर्य सक्रियता में परिवर्तन होने से सूर्य द्वारा पृथ्वी को जो ऊर्जा मिलती है उसकी

(शेष पृष्ठ 12 पर)

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन का सर्वेक्षण*

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन का इतिहास अत्यन्त मनोरंजक है। परतन्त्रता के होते हुये भी 1870 ई० से ही गणित और भौतिकी पर पुस्तकें लिखी जाने लगी थीं। शायद ये पुस्तकें देश में हिन्दी के माध्यम से पठन-पाठन प्रारम्भ करने के उद्देश्य से लिखी गई थीं। उदाहरणार्थ, पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र ने 1873 ई० में बनारस से सरल त्रिकोणमिति नामक पुस्तक प्रकाशित कराई थी। 1910 ई० में महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने गणित का इतिहास पुस्तक लिखी।

गुरुकुल कांगड़ी हमारे देश में प्रथम संस्था है जहाँ हिन्दी के माध्यम से शिक्षण कार्य प्रारम्भ हुआ। श्रद्धेय महात्मा मुँशी राम के प्रोत्साहन से प्रोफेसर महेश चरण सिंह ने 1909 ई० में रसायन, वनस्पति तथा भौतिकी पर हिन्दी में पुस्तकें प्रकाशित कीं।

विज्ञान परिषद् दूसरी संस्था है जिसने 1913 ई० में (अपनी स्थापना के वर्ष से ही) विज्ञान प्रवेशिका नाम से पहली पुस्तक प्रकाशित की। तब से यह निरन्तर सेवा कार्य करती रही है।

नागरी प्रचारिणी सभा विज्ञान उत्तर माला (वाराणसी) इंडियन प्रेस, हिन्दुस्तानी एकेडमी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पंजाब आयुर्वेद फार्मेसी, नवल किशोर प्रेस (लखनऊ) आदि अन्य संस्थायें थीं जहाँ से वैज्ञानिक पुस्तकें छपती रहीं।

इस प्रकार हिन्दी का प्रारम्भिक वैज्ञानिक साहित्य पाठ्य पुस्तकों और जनोपयोगी पुस्तकों के रूप में उपलब्ध होता है जिसमें विभिन्न लेखकों ने अपनी सूझबूझ के आधार पर ग्रंथों का प्रणयन किया। इन ग्रंथों का प्रकाशन कुछ उत्साही साहित्यिक संस्थायें या प्रकाशक कर रहे थे। सचमुच यह सारा कार्य निरी राष्ट्रीयता से प्रेरित रहा। 1947 ई० तक ऐसी ही स्थिति बनी रही। इस काल में विज्ञान परिषद ने लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित कीं। अन्य संस्थाओं ने जो वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित की उनमें सर्वाधिक पुस्तकें गणित, बीज गणित, वैद्यक आदि पर थीं। उदाहरणार्थ नागरी प्रचारिणी सभा ने छूत के रोग (शिवरानी देबी) नामक पुस्तक 1909 ई० में और हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने जंतु जगत 1930 ई० में प्रकाशित कीं। नागरी प्रचारिणी ने Hindi Scientific Glossary नामक एक, कोश (भी 1906 ई० में) प्रकाशित किया।

इस काल की प्रकाशित पुस्तकों की छपाई, साज-सज्जा, मूल्य, यहाँ तक कि विषयवस्तु —सभी सामान्यता की ओर ले जाने वाले थे क्योंकि ये पुस्तकें संस्कार बनाने एवं सुरुचि उत्पन्न करने की दृष्टि से लिखी गई थीं। किन्तु इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि इन्हीं की नींव पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद प्राप्त करने में सहायता मिली।

(2) वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशन का दूसरा दौर 1930 से 1947 ई० के बीच का है इस काल में पारिभाषिक कोशों की रचना के संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास उल्लेखनीय हैं। डा० सत्य प्रकाश ने विज्ञान परिषद से "वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द", भारतीय हिन्दी परिषद से अंग्रेजी हिन्दी वैज्ञानिक कोश प्रकाशित कराये। साहित्य सम्मेलन से जीव रसायन कोश छपा। नागपुर से डा० रघुबीर ने अपना वृहद् अंग्रेजी-हिन्दी कोश प्रकाशित किया। इस काल में हाई स्कूल तथा इंटर-मीडिएट कक्षाओं तक के लिये विविध विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई। अनेक पुरानी संस्थायें तथा अनेक नये प्रकाशक इस दिशा में योगदान देते रहे। छपाई में

* विज्ञान परिषद् के ६०वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिया गया भाषण।

सुधार हुआ, पुस्तकें आकर्षक बनीं और लेखक नये शब्द गढ़ने, पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने की ओर उनमुख हुए।

(3) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का सृजन द्रुतगति से हुआ। सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं ने मौलिक एवं अनूदित साहित्य प्रकाशित किया। इसमें पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ सामान्य विज्ञान (लोकोपयोगी साहित्य) तो था ही, संदर्भ ग्रंथों, विश्वकोशों एवं उच्चस्तरीय पुस्तकों के सृजन की ओर ध्यान दिया गया।

1950 ई० में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिये शिक्षा मन्त्रालय ने वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की। हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई और हिन्दी भाषी प्रदेशों में आशा की एक लहर फैल गई।

राष्ट्रभाषा के दायित्व को निभाने के लिये हिन्दी को सब प्रकार से समर्थ बनना आवश्यक हो गया। विशेषतया वैज्ञानिक विषयों के पठन-पाठन के लिये सभी स्तरों की पाठ्य-पुस्तकों तथा सन्दर्भ ग्रंथों की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस दिशा में समान पारिभाषिक शब्दावली के व्यवहार द्वारा ही आशा के अनुकूल फल की प्राप्ति हो सकती थी। एतदर्थ उच्चकोटि के विद्वानों के सहयोग से सरकार ने विविध वैज्ञानिक विषयों की शब्दावलियाँ संकलित कराईं और उन्हें प्रकाशित भी किया। ये शब्दावलियाँ आज सभी प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य के लेखन में व्यवहृत होकर समादरित होने लगी हैं।

(4) अगस्त 1955 ई० में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी का एक आयोजन दिल्ली में किया था जिसमें लगभग १ हजार पुस्तकें प्रदर्शित की गई थीं। अगस्त 1968 में Castasia के नाम से वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकों की जो प्रदर्शिनी हुई थी उसमें भारतीय भाषाओं की 1775 पुस्तकें थीं। हाल ही में विश्व पुस्तक मेला का भी आयोजन हुआ। ऐसी प्रदर्शिनियों से जनता एवं लेखकों को यह पता चल पाता है कि किन-किन विषयों पर कितनी-कितनी पुस्तकें उपलब्ध हैं। यह एक शुभ लक्षण है। ऐसे आयोजनों में वृद्धि होनी चाहिए।

(5) उच्चस्तरीय पुस्तकों के सर्वेक्षण के आधार पर कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं। उदाहरणार्थ 1957 ई० तक भौतिकी में बी एस-सी० स्तर की केवल एक पुस्तक वर्तमान थी निहाल करण सेठी कृत प्रकाश विज्ञान। किन्तु रसायन में तीन पुस्तकें थीं—डा० सत्य प्रकाश कृत सामान्य रसायन शास्त्र, डा० राम चरण मेहरोत्रा कृत भौतिक रसायन की रूपरेखा तथा डा० कृष्णबहादुर कृत वैश्लेषिक रसायन अन्यान्य विषयों में भी ऐसी ही स्थिति थी।

किन्तु इसके बाद सरकार ने पुस्तकों के अनुवाद की जो योजना कार्यान्वित की उसके द्वारा कई संस्थाओं ने कई ग्रंथ प्रकाशित किये हैं। विज्ञान परिषद ने 1968 ई० में इसी योजना के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ पॉलिंग की पुस्तक College Chemistry का हिन्दी अनुवाद "विद्यालय रसायन" के नाम से प्रकाशित किया। अनेक विश्वविद्यालयों ने भी इस दिशा में सराहनीय प्रयास किये हैं।

(6) शिक्षा मन्त्रालय के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने 1968 ई० में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों की सूची प्रकाशित की जिसमें कुल 153 नाम हैं। 1968 के बाद ही राज्य सरकारों को हिन्दी ग्रंथ अकादमियों के माध्यन से विश्वविद्यालय के स्तर की पुस्तकें तैयार करने का कार्य भार सौंपा गया। सूचनाओं के आधार पर मध्य प्रदेश में सर्वाधिक कार्य हुआ है। राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने भी कुछ पुस्तकें छापी हैं। उत्तर प्रदेश जो प्रारम्भिक काल में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में अग्रणी रहा है, वहीं उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी का कार्य कुछ शिथिल रहा है। किन्तु इधर एक वर्ष के भीतर कार्य में प्रगति आई है। और उसने लगभग २ दर्जन वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित कर ली हैं।

1957 के पश्चात से लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, दिल्ली, आगरा के अनेक प्रकाशकों ने पाठ्य पुस्तकों के

प्रकाशन में जो सुरुचि दिखाई है उसके फलस्वरूप उनमें सभी प्रकार से परिष्कार हुये हैं। हिन्दी समिति ने भी कई दर्जन पुस्तकें ऐसी प्रकाशित की हैं जिनसे विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य में सहायता मिल सकती है। इन पुस्तकों की विशेषता है उनका कम मूल्य तथा उनका अधिकारी विद्वानों द्वारा सृजन। इंजीनियरी से सम्बद्ध विषयों पर भी अनेक पुस्तकें प्रकाश में आई हैं।

इसी प्रसंग में **नेशनल बुक ट्रस्ट** तथा **भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्** और **वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्** द्वारा की गई हिन्दी सेवायें उल्लेखनीय हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट सामान्य रोचक विषयों पर अत्यन्त आकर्षक छपाई एवं चित्रों से युक्त पुस्तकें प्रकाशित करता है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद एकान्ति भाव से कृषि विषयक पुस्तकों, शोध-ग्रंथों एवं समाचार पुस्तिकाओं का प्रकाशन करती है। 1968 ई० में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद ने Wealth of India नामक संदर्भ ग्रंथमाला को हिन्दी में अनूदित कराने की योजना डा० सत्य प्रकाश के सम्पादकत्व में कार्यान्वित की। हर्ष का विषय है उसमें **"भारत की सम्पदा"** नाम से 3 खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। यह पहला मानक ग्रंथ है जो हिन्दी प्रदेशों के विद्वानों के सहयोग से प्रकाश में आया है। इसकी छपाई, चित्रादि अत्यन्त आकर्षक हैं। इससे हिन्दी का गौरव बढ़ा है।

इसमें सन्देह नहीं कि अब हिन्दी में बी० एस-सी० स्तर की पुस्तकें सभी वैज्ञानिक विषयों पर उपलब्ध हैं। यदि कहीं कोई अभाव है तो हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ उसे पूरा कर रही हैं। लेकिन अभी तक जितना साहित्य सामने आया है वह अर्थोपलब्धि का प्रमुख साधन होने के कारण प्रकाशक एवं लेखकों को आकृष्ट करता रहा है। इससे आगे का साहित्य उच्चस्तरीय साहित्य है जिसके लेखन के लिये पग-पग पर कठिनाइयाँ हैं—यदि लिखने वाला अधिकारी विद्वान है तो वह हिन्दी में भाव व्यक्त नहीं कर पाता, यदि हिन्दी में लिखने में समर्थ विद्वान है तो प्रकाशक नहीं मिल पाता और सबसे बड़ी आशंका है कि यदि परिश्रम से लिखकर कोई ग्रंथ लिखा भी जाय तो उसका बाजार नहीं है। शायद हिन्दी में उच्चस्तरीय ग्रंथों का अभाव इसीलिये रहा है। लेकिन यह अवस्था अस्थायी है। अकादमियाँ प्रोत्साहित कर रही हैं मौलिक लेखन को। पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय ने कई मौलिक पुस्तकें लिखाकर उनके प्रकाशन की योजना बनाई है। अकादमियाँ भी Monographs लिखाने का यत्न कर रही हैं। लेकिन वैज्ञानिक विषयों के प्रकाशन के हेतु अच्छे मुद्रक और प्रकाशक नहीं मिल पा रहे। चाहे हिन्दी समिति का प्रकाशन है या हिन्दी ग्रंथ अकादमियों का, अनेक पुस्तकें अत्यन्त भ्रष्ट छपी हैं, कुछ के मूल्य बहुत अधिक निर्धारित हुये हैं और उनके ब्लाक चित्रादि सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। पुस्तकों को छात्रोपयोगी बनाने के लिये पेपर बैक कवर दिये जायँ तो अच्छा हो।

वैज्ञानिक साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है पत्र-पत्रिकायें। 'विज्ञान' नामक पत्रिका सबसे प्रचीन हिन्दी मासिक पत्र है। विज्ञान प्रगति, विज्ञान जगत, विज्ञान लोक, वैज्ञानिक खेती, कृषि और पशुपालन जैसी पत्रिकायें विभिन्न दृष्टियों से लोकोपयोगी साहित्य प्रस्तुत करती रही हैं। किन्तु उच्चस्तरीय वैज्ञानिक पत्रिका का अभाव है। शोध विषयक विशिष्ट विषय से सम्बन्धित पत्रिकाओं का तो नितान्त अभाव है।

विज्ञान परिषद गत 16 वर्षों से "विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका" नामक से एक शोध पत्रिका प्रकाशित करता रहा है जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयों के शोध निबन्ध छपते हैं। यह पहली शोध पत्रिका है जो भारतीय भाषा में प्रकाशित होती है। एक अन्य पत्रिका कर्नाल से इसी वर्ष से प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई है—कृषि अनुसन्धान पत्रिका। दिल्ली विश्वविद्यालय से ए जी० झिंगरन के सम्पादकत्व में 'भूवैज्ञानिक, शोध पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है। आशा है कि ऐसी ही अन्य पत्रिकायें प्रकाश में आवेंगी। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने रसायन सम्बन्धी एक वैज्ञानिक पत्रिका "रसायनी" के प्रकाशन की घोषणा की है किन्तु भौतिकी या गणित पर कोई ऐसी पत्रिका नहीं प्रकाशित हो रही।

मुझे आशा है कि अगले 10 वर्षों में विज्ञान के सर्वाङ्ग साहित्य के सृजन एवं प्रकाशन की दिशा में यथेष्ट प्रगति हो सकेगी। हिन्दी का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है किन्तु विश्वविद्यालयों को अपना-अपना दायित्व निभाना परमावश्यक है।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रबन्ध सम्पादक
विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका,
विज्ञान परिषद
इलाहाबाद

● ●

(पृष्ठ 8 का शेष)

मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु सूर्य स्पेक्ट्रम के लघु तरंग दैर्ध्य वाले क्षेत्र (परावैंगनी व एक्सकिरण विकिरण) में काफी परिवर्तन पाया जाता है। यह परिवर्तन चाहे कम ही क्यों न हो परन्तु उससे ऊपरी वायु मण्डल में काफी गम्भीर परिणाम पाये जा सकते हैं। यह सब बातें उपग्रहों में आवश्यक तथा विशिष्ट उपकरण लगाकर सूर्य का स्पेक्ट्रम प्राप्त करके परावैंगनी विकिरण का विस्तृत अध्ययन करके मालूम की जा सकती हैं।

वायु मण्डल में व पृथ्वी पर होने वाली सभी प्राकृतिक घटनाओं के लिये जिस ऊर्जा की आवश्यकता होती है वह सूर्य से ही प्राप्त होती है। वायुमण्डल से गुज़रते हुये सूर्य विकिरण में बहुत परिवर्तन आ जाता है क्योंकि इसके कुछ अंश का अवशोषण और कुछ का प्रकीर्णन होता है। पृथ्वी तल व वायुमण्डल सूर्य विकिरण के अवशोषण से गरम हो जाता है और इसी से ऊष्मीय विकिरण प्राप्त होता है। मौसम व जलवायु का हाल जानने के लिये इन सभी ऊर्जा परिवर्तनों का ज्ञान महत्वपूर्ण होता है। पृथ्वी तक आने वाली और पृथ्वी से जाने वाली ऊर्जा का ज्ञान होने पर वायुताप, वायु मण्डलीय दाब, घनाच्छादन तथा जलवायु व मौसम की अन्य बातों का पता चल सकता है। उष्मा परिवर्तन की स्थिति को भी उपग्रहों पर लगे उपकरणों की सहायता से जाना जा सकता है।

वायुमण्डल का संगठन विभिन्न ऊँचाई पर जानने के लिये पृथ्वी के विकिरण का स्पेक्ट्रमी संगठन ज्ञात किया जाता है। पृथ्वी के वायु मण्डल के गुणों की खोज उपग्रहों की सहायता से सम्भव है। उपग्रह पर लगे उपकरण की सहायता से सूर्यास्त तथा सूर्योदय के समय सूर्य विकिरण के स्पेक्ट्रमी संगठन को रिकार्ड किया जाय तो विभिन्न ऊँचाइयों पर वायुमण्डलीय संगठन के बारे में महत्वपूर्ण सूचनायें मिल सकती हैं। एक अन्य बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी अन्तरिक्ष से प्राप्त की जा सकती है और वह है जंगलों में लगी हुई भीषण आग जिससे जंगल के जंगल साफ हो जाते हैं। समय पर इसकी जानकारी मिल जाने पर कुछ उपाय आग को ठंढा करने का किया जा सकता है ताकि हानि अधिक न हो।

डॉ० शिव प्रकाश
रसायन विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
इलाहाबाद

एल्गी (शैवाल) और उनका हमारे जीवन में महत्व

शुकदेव प्रसाद

यह एक प्रकार की वनस्पति हैं। इनमें क्लोरोफिल-पाया जाता है। ये पानी, CO_2 की सहायता से सूर्य के प्रकाश में अपने हरे रंग या क्लोरोफिल से अपना भोजन बना लेती हैं। इनमें हरे रंग के अतिरिक्त और अन्य रंग भी पाये जाते हैं। अत: रंगों के आधार पर इन्हें कई वर्गों में बाँटा गया है। जैसे नीली, हरी, भूरी, लाल एल्गी इत्यादि।

इन शैवालों का हमारे जीवन में काफी उपयोग है। मानव पहले से ही इनको भोजन तथा औषधियों के रूप में प्रयोग करता आया है और आज भी इनका हमारे जीवन से काफी गहरा सम्बन्ध है। इनका उपयोग हम निम्न रूप में करते हैं।

(क) भोजन के रूप में--इन शैवालों की कई जातियाँ हमारे भोजन के प्रमुख स्रोत हैं। इनमें काफी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, अकार्बनिक पदार्थ, तथा विटामिन पाई जाती हैं। विटामिन A, C, D तथा E इनके मुख्य अवयव हैं।

ये शैवाल पीसेज (मछलियाँ), एम्फीविया (जल तथा थल दोनों में रहने वाले जन्तु), मैमल्स (स्तनधारी) और अन्य जन्तुओं के भोजन के काम आती हैं। हम जानते हैं कि मानव मछलियों तथा पानी वाले कुछ अन्य जन्तुओं को भोजन के रूप में प्रयोग करता है। अत: अप्रत्यक्ष रूप से शैवाल मनुष्य के भोजन के रूप में काम आती हैं। लेकिन फिर भी संसार के कुछ समुद्रतटीय भागों में प्रत्यक्ष रूप से मानव इनका उपयोग भोजन के रूप में करता है।

भारत में स्पाइरोजाइरा अडोगोनियम तथा यूरोप में अल्वा जैसी एल्गी भोजन की मूल्यवान वस्तुएँ हैं। ऊपर वाले दो शैवाल सुखाकर, पैकेट में बन्द करके बेंच दिये जाते हैं तथा रस के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। ब्राजील में नोस्टॉक की कालोनी को उबाल कर खाया जाता है। लैमीनेरिया तथा अलेरिया भी खाई जाती है।

ऐसा माना जाता है कि शैवालों में प्रोटीन काफी मात्रा में पाई जाती है। अगार-अगार, आइस-क्रीम तथा जेली के निर्माण में प्रयुक्त होता है जो कि जेलीडियम तथा ग्रेसीलेरिया इत्यादि शैवालों से प्राप्त किया जाता है।

एक हरीशैवाल क्लोरेला मनुष्य तथा जन्तुओं के भोजन के लिये उपयुक्त मानी गयी है। इसमें प्रोटीन 50% तथा कार्बोहाइड्रेट और चिकनाई भी पाई जाती है। इसका उपयोग अन्तरिक्ष यात्रियों ने भी अपने भोजन के लिये किया है।

विभिन्न प्रकार की पानी में पाई जाने वाली शैवालें पानी में रहने वाले जन्तुओं विशेषकर मछलियों के भोजन के लिए उपयुक्त हैं और मछलियाँ मानव के लिए भोजन का कार्य करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शैवालों से हमें खाद्य पदार्थ मिलते हैं और उनका हमारे जीवन में काफी उपयोग है।

(ख) औषधियों के रूप में--छोटे तालाबों में चारा तथा निटेला जैसी शैवाल पाई जाती हैं जो कि मच्छरों के लार्वा को मार डालती हैं। अत: इनका उपयोग मलेरिया के उन्मूलन में है।

बहुत सी शैवालें समुद्रों में पाई जाती है, उनमें काफी मात्रा में आयोडीन पाई जाती है, जिसका उपयोग गण्डमाला (गले के नीचे थायराइड ग्रन्थि के फूलने से होता है, जो कि आयोडीन की कमी से होती है) रोग की दवा के रूप में किया जाता है।

(शेष पृष्ठ 16 पर)

सावधान ! कहीं आपका दिल फेल तो नहीं हो रहा है ?

कुलदीप राज धारीवाल

आज का युग विज्ञान का युग है। मनुष्य दिन प्रतिदिन मशीनों पर निर्भर होता जा रहा है। टेलीविजन और रेडियो के आ जाने पर मनुष्य स्टेडियम में जाने की बजाय घर पर रहकर ही क्रिकेट मैच देखना ज्यादा पसन्द करता है। विज्ञान ने मनुष्य को आलसी बना दिया है और मनुष्य की भौतिक क्रियाओं को कम कर दिया है। किन्तु मनुष्य ने बदलते समय के अनुसार अपने खाने-पीने की आदतों को नहीं बदला। जिसके फलस्वरूप आज मनुष्यों में मोटापा देखने को ज्यादा मिलता है और इसके साथ ही वह विभिन्न प्रकार की संक्रामक बीमारियों से ग्रसित भी होता जा रहा है। आये दिन सुनने को मिलता है कि वह नेता, वह ऑफिसर या वह बड़े 'साहब' हार्ट-अटैक से चल बसे। गरीबों में हार्ट-अटैक जैसी चीज शायद ही कभी सुनने में आई हो। प्रश्न उठता है कि आखिर ये बड़े लोग ही इन बीमारियों से ग्रसित क्यों होते हैं ? गरीबों पर इन बीमारियों का प्रकोप क्यों नहीं ?

दिल से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों में एथिरोसक्लिरोसिस व आर्टीरियोसक्लिरोसिस मुख्य है। हमारे रक्त में कोलेस्ट्रॉल नामक एक स्टेराल होता है। प्लास्मा में यह मुख्यतर लिपोप्रोटीन के साथ रहता है। प्रायः यह देखा गया है कि रक्त में कोलेस्ट्रॉल तल बढ़ जाने से एथिरोसक्लिरोसिस जैसी संक्रामक बीमारी होती है। विश्व भर में आज जीव रसायन के क्षेत्र में यह अनुसंधान का एक ज्वलंत विषय बना हुआ है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के अनुसंधान से विभिन्न परिणाम दिये हैं लेकिन आज तक दुनिया भर के वैज्ञानिक किसी एक सर्वमान्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकें। कुछ वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि जीव प्रोटीन से कोलेस्ट्रॉल तल बढ़ता है तो कुछ ने इसका उल्टा ही सिद्ध किया है। वैज्ञानिकों की इस दुनिया में प्रोफेसर मेहरोत्रा (अमे० जू० क्लि० न्युट्रीशन, अक्तूबर 1971) ने तो यह तक सिद्ध कर दिया है कि सरिमकोलेस्ट्रॉल तल का इस्केमिक हृदय रोग से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

लिपोप्रोटीन अणु या उसके अन्य घटक कोलेस्ट्राल व कोलेस्ट्राल एस्टर मध्य कोषों में विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करने की क्षमता रखते हैं। यह क्रियाएँ हैं---कोशीय उपापचय को कम करना, कोशीय प्रचुरोद्भवन जो कि धमनी अवकाशिका संकरा करने में सहायक होता है, लिपोप्रोटीन का मध्य कोश में एकत्रित होना और कोशीय अतकक्षय। कभी-कभी धमनियों के वाक्ष्य कंचुक में लसीका के अवरोध से धमनियों की दीवारों में लिपिड का एकत्रित होना बढ़ जाता है। रक्त वाहिनियाँ कठोर बन जाती हैं और उनकी प्रत्यास्थता खत्म हो जाती है। इस अवस्था में कभी-कभी रक्तवाहिका टूट भी जाती हैं जिसके कारण रक्त बहने लग जाता है और प्रमस्तिष्कीय या कोरोनरी थ्राम्बासिस हो जाती है। इस प्रकार के भग्न वाहिकाओं से निकलने वाले रक्त का थक्का बन सकता है जो कि रक्त के प्रवाह को बन्द करता है। यही अवस्था आगे हेमीप्लेगिया या सेनाइल गैंग्रीन जैसी बीमारियों को जन्म देती है।

अब उन पहलुओं पर विचार किया जाए जो रक्त के कोलेस्टाल तल पर प्रभाव डालते हैं।

संतृप्त वसा का आधिक्य→प्लाज्मा उत्थान
कोलेस्ट्राल→एथिरोस क्लिरोसिस→हृद रोग

इसलिए वह भोजन जिनमें इस्केमिक संतृप्त वसा अधिक मात्रा में पाए जाते हों, अधिक मात्रा में नहीं

लिया जाना चाहिये। यह भी देखा गया है कि शर्करा व जीव प्रोटीन रक्त के कोलेस्ट्राल तल को बढ़ाते हैं। कोलेस्ट्राल को अगर भोजन में लिया जाय तो वह रक्त के कोलेस्ट्राल तल पर प्रभाव नहीं डालता है जैसे कि एक दिन में दस अंडे खाने पर भी प्लाज्मा कोलेस्ट्राल बढ़ता नहीं है। जैतून का तेल, मूँगफली का तेल, सूर्यमुखी से प्राप्त तेल, अरेकिस तेल व मक्खन लेने से सीरम कोलेस्ट्राल घटता है व मुर्गा का वसा और हाइड्रोजनीकृत मूँगफली का तेल लेने से बढ़ता है। वे वसा जिनमें संतृप्त वसा अम्ल अधिक मात्रा में हों व आयोडीन अंक कम हो, रक्त के कोलेस्ट्राल तल को बढ़ाते हैं चाय इसके तल को घटाती है व कॉफी बढ़ाती है। प्याज, हल्दी चूर्ण व पेक्टीन भी इसके तल को घटाते हैं। लेकिन अभी तक यह सिद्ध नहीं हो सका है कि ये आहार के कारक किस प्रकार रक्त के कोलेस्ट्राल तल को घटाने या बढ़ाने में क्रियान्वित होते हैं। सम्भवतः ये कोलेस्ट्राल के संश्लेषण उत्सर्जन पर प्रभाव डालते हैं।

तम्बाकू चाहे सिगरेट में पी जाये, चाहे बीड़ी-हुक्के या चुरूट में—तम्बाकू तम्बाकू है। इस तथ्य को कोई नकार नहीं सका है कि अनेक विषैले तत्त्व धूम्रपान के ही माध्यम से शरीर में पहुँचते है कश लेते समय तम्बाकू लगभग 880° सें० पर जलती हैं। अनुमान लगाया गया है कि एक सिगरेट के जलने पर तीन से चालीस मिलीग्राम तक टार और एक से दो मिलीग्राम तक निकोटिन निकलता है। फेफड़ों के लिए विषैले सिद्ध होने वाले अन्य पदार्थ जो तम्बाकू के धुएँ में अवश्य मिलते हैं—इस प्रकार हैं—य्यूथियों, सेविन, टी० डी० ई०, ऐंड्रीन फॉर्मल व एसिटलडिहाइड, एक्रोलीन, मिथेनोल, एसिटोन, अमोनिया, HCN, H_2S, मेथिलिथिलकेटोन तथा 254 प्रकार के अन्य जहरीले धातु कण।

सांख्यिकीय आँकड़ों से ज्ञात होता है कि दिल की बीमारियाँ सिगरेट पीने वालों में अधिक होती है। अभी हाल ही में पश्चिम जर्मनी के प्रो० फर्डीनांड शिमड ने यह सिद्ध किया है कि जलते हुए सिगरेट के आग से जो धुआँ निकलते हैं, उनमें कैंसर उत्पादक ज्यादा मात्रा में होते हैं और वह धुआं जो सिगरेट पीने वाले के शरीर में जाता है इस प्रकार के कारक अपने में ज्यादा नहीं रखता। इसीलिए बल्गारिया व पूर्वी जर्मनी के कार्यालयों में अगर कोई व्यक्ति सिगरेट पीना चाहता है तो उसे कार्यालय के अन्य कर्मचारियों से लिखित आज्ञा लेनी पड़ती है और उन कार्यालयों में जहाँ गर्भवती व प्रसूति मातायें कार्य करती है, धूम्रपान बिल्कुल निषेध है।

अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि वह कौन सा तरीका है जिसके द्वारा सिगरेट में पाए जाने वाले विषैले तत्व दिल की बीमारियाँ पैदा करते हैं। किन्तु यह आशा की जाती है कि यह निकोटीन की क्रिया या रक्त का थक्का बनाना पर प्रभाव के फलस्वरूप होता है।

भौतिक क्रियाएँ दिल की बीमारी से जुड़ी हैं। बस कंडक्टर के बजाय बस ड्राइवर में ये बीमारी ज्यादा पाई जाती है। इसी प्रकार वह पोस्टमैन जो द्वार-द्वार पर पत्र बाँटता है इन बीमारियों से कम ग्रसित होता है जब कि पोस्ट-ऑफिस क्लर्क में यह बीमारी पोस्टमैन की अपेक्षा ज्यादा देखने में आई है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि सक्रिय व्यक्ति में दिल की बीमारियाँ नहीं पाई जाती और अगर हो तो कम तीव्र होती हैं।

अमरीका के प्रेसीडेंट आइज़नहावर को जब एक सुबह गोल्फ खेलते वक्त तीन बार एक अनावश्यक फोन के उत्तर के लिए बुलाया गया तो इससे हुए तनाव से व मानसिक तनाव से उसकी दिल की बीमारी अचानक बढ़ गई।

पैंतालीस वर्ष की अवस्था तक दिल की बीमारी का अनुपात आदमी व औरत में 10:1 होता है। मेनोपाज़ के बाद स्त्रियों में भी यह बीमारी असामान्य रूप से बढ़ जाती है और 60 वर्ष की वायु में इस बीमारी का अनुपात पुरुष व स्त्री में 1:1 हो जाता है। ओवेरियन हारमोन्स स्त्रियों में इस बीमारी को होने से रोकते हैं। अगर स्त्रियों में 25 वर्ष की आयु के पहले डिम्बग्रंथियों को निकाल लिया जाय तो उनमें भी दिल की बीमारियाँ ज्यादा होने लग जाती हैं। इसके अतिरिक्त थायरोइड हारमोन भी वसा के उपाचय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस हारमोन की कमी होने पर कोलोस्ट्राल तल रक्त में बढ़ जाता है।

रेयॉन फैक्टरी में विस्कास रेयॉन के बनने के दौरान जो सैल्यूलोस लकड़ी की लुग्दी से बनता है वह कार्बन डाइसल्फाइड के साथ मिल जाता है। यह सोचा जाता है कि CS_2 भी दिल की बीमारियों में सहायक है। ऐसी फैक्टरी में जो मजदूर 10 वर्ष से काम कर रहे होते हैं और जहाँ कि घूर्णन क्रिया से काम लिया जाता है दिल की बीमारी इनमें पाई जाती है क्योंकि घूर्णन क्रिया से CS_2 ज्यादा पैदा होती है। सल्फर के कम्पाउन्ड्स ऐंज़ाइम क्रिया के अवरोधक माने जाते हैं, अत: यह भी सम्भव है कि सल्फर के अन्य यौगिक (जैसे सल्फर डाइ ऑक्साइड, जो वातावरण में प्रदूषक के रूप में प्रचुर है) भी ऐसे ही अवरोधक होते हों।

बचने के कुछ उपाय—

I. प्रतिदिन व्यायाम।

2. धूम्रपान या तो बन्द किया जाय या जितना हो सके उतना कम किया जाय।

3. खाने-पीने की चीजों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय, खास तौर से वे पदार्थ जो जानवरों के वसा से बने हों।

4. दिनचर्या ऐसी बनाई जाय कि जहाँ तक हो सके, बेकार का मानसिक तनाव नहीं रहे।

5. ज्यादा मक्खन, शक्कर, क्रीम इत्यादि चीजें नहीं खाई जाए।

6. तले हुए पदार्थ कभी-कभी ही खाए जाएँ।

7. जहाँ तक हो सके, मोटापे को न आने दिया जाय, क्यों कि मोटापा स्वयं एक बीमारी ही नहीं, विभिन्न बीमारियों का कारण भी है।

कुलदीप राज धारीवाल
पटेल चेस्ट इन्टीट्यूट
नई दिल्ली

(पृष्ठ 13 का शेष)

कुछ शैवालें एण्टी बायोटिक्स के स्रोत हैं जो कि रोगाणुओं को नष्ट कर देती हैं। क्लोरेलिन भी ऐसी एण्टीबायोटिक्स में से एक है जो कि क्लोरेला नामक एल्गी से बनाई जाती है।

अगार-अगार एक महत्वपूर्ण शैवाल उत्पाद है जो कि दवाई को गोलियों तथा मलहम के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

(ग) कृषि में योगदान—जमीन पर पायी जाने वाली एल्गी में नीला हरा एल्गी काफी महत्वपूर्ण है। ये अपने शरीर में नाइट्रोजन फिक्स करती हैं तथा नाइट्रोजन छोड़ने के पश्चात उससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है।

पी० के० डे० (1939) ने सिद्ध किया है कि नीली एल्गी धान के खेतों में नाइट्रोजन नियत करने में सबसे मुख्य है। ये वायुमण्डल की स्वतन्त्र नाइट्रोजन को स्थिर करके भूमि की उवर्राशक्ति बढ़ा देती हैं क्योंकि नाइट्रोजन पौधों की बाढ़ के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कुछ एल्गी के नाम नीचे दिये जा रहे हैं जो कि नाइट्रोजन फिक्स करती हैं। ऑसिलेटोरिया प्रिंसैप ओ० फार्मोसा एनाबिना स्पिरूलिना नास्टॉक और सिलिंड्रोसपेरमम आदि।

अत: हम उपर्युक्त प्रमाणों से देखते हैं कि एल्गी का हमारे प्रति काफी योगदान है, जिनका उपयोग मानव अपने दैनिक जीवन में करता चला आया है, कर रहा है और करेगा।

शुकदेव प्रसाद
एलनगंज लाज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

विज्ञान के नये चरण

एक्स-रे की नई विधि

रूसी वैज्ञानिकों ने एक्स-रे की एक नई विधि निकाली है जिसमें महँगी एक्स-रे फिल्म के स्थान पर साधारण कागज़ काम में लाया जाता है। इस विद्युत रेडियोग्राफी की नई तकनीक में साधारण कागज़ पर जो बिम्ब आता है वह बहुत साफ होता है और रेखाचित्र से मिलता-जुलता है। बिम्ब दो मिनट में प्राप्त हो सकता है जो अभी प्रचलित समय से दस गुना कम है और दस गुना सस्ता भी होता है। नरम ऊत्तकों, हड्डियों, हृदय, फेफड़ों तथा एलिमेंटरी नलिका की बीमारियों की जानकारी प्राप्त करने में यह विधि अत्यन्त उपयोगी है।

नेत्रहीन के लिये चश्मा

हाल ही में विकसित पराश्रव्य (ultrasonic) चश्मे के द्वारा अब नेत्रहीन भी देख सकेंगे। अन्तर केवल इतना है कि वे आँखों के बदले कानों से देखेंगे।

न्यूज़ीलैण्ड स्थित कैंटरबरी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लेज़-ली द्वारा विकसित यह नया चश्मा पहनने वाले को 20 फिट की दूरी तक की वस्तुओं के ध्वनि चित्र उपलब्ध कराता है।

संश्लेषित त्वचा

मनुष्य की मूलत्वचा के स्थान पर एक संश्लेषित त्वचा का विकास अमेरिका में हुआ है। प्रायः जब व्यक्ति बहुत ज्यादा जल जाता है तो उसकी मूल त्वचा नष्ट हो जाती है। शरीर के द्रवों की हानि के कारण तथा बैक्टीरिया के संक्रामण के कारण मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्था में बदलने के लिये बहुधा जले हुये व्यक्ति के शरीर से ही त्वचा ली जाती है पर वह अच्छी नहीं रह जाती। अब यह नई त्वचा जले हुये स्थान पर लगाकर व्यक्ति की जान बचाई जा सकती है।

यह संश्लेषित त्वचा 0·166 मि० मी० मोटी पॉली-यूरेनथेन जाली से टेफ्लॉन के प्रकार के पदार्थ में बदली हुई होती है। इसमें होकर हवा व नमी प्रवेश कर सकते हैं किन्तु शरीर के द्रवों तथा रक्त प्लाज़्मा के लिये यह अपारगम्य होती है। कीटाणु भी इसमें प्रवेश नहीं कर सकते।

कोयला खानों की बैक्टीरिया द्वारा बचाव

रूस में मास्को स्थित खनन संस्थान ने एक विधि निकाली है जिससे कोयला की खानों में पाई जाने वाली ज्वलनशील मेथेन गैस से खानों को सुरक्षित रखने में बक्टीरिया का उपयोग किया जाता हैं। कटाई की दिशा में क्षैतिज सूराख़ करके बैक्टीरिया पोषक पदार्थ में मिलाकर पम्प किया जाता है और साथ ही साथ पर्याप्त वायु भी पहुँचाई जाती है। आक्सीकरण की क्रिया द्वारा मेथन गैस का कार्बन डाई आक्साइड और पानी में परिवर्तन हो जाता है। बैक्टीरिया पम्प करने का काम खुदाई करने से एक वर्ष पूर्व करना चाहिए। इस विधि को विकसित करने में लगभग पाँच वर्ष लगे।

हृदय के लिये प्रथम परमाणु चालित नियामक

किन्हीं विकारों के कारण जब हृदय की धड़कन में अनियमितता आ जाती है तो उसे नियमित करने के लिए अभी तक विद्युत या इलेक्ट्रॉनिक युक्ति का प्रयोग किया जाता है। इस युक्ति को हृद-नियामक (कार्डिएक पेसमेकर) कहते हैं। पीज़ोइलेक्ट्रिसिटी, प्रकाश विद्युत सेल, इंडक्शन कॉइल आदि के द्वारा ऊर्जा प्राप्त की जाती है। ज्ञात हुआ

(शेष पृष्ठ 19 पर)

विज्ञान वार्ता

यान्त्रिक श्रमिक

न्युयार्क के एक इंजीनियर ने हाथों से की जानेवाली हर तरह की मजदूरी कर सकने वाले 'मनुष्य' का निर्माण किया है जो यन्त्र चालित होगा। इसका मुख्य अंग उसका अनूठी किस्म का हाथ है। इस यान्त्रिक हाथ में जुड़े हुए टुकड़ों की उँगलियाँ, नकली हथेली व अंगूठे की रचना की गई है जिसके कारण वह 'मनुष्य' स्वाभाविक ढंग से कम कर सकेगा। इस आविष्कार का ध्येय दूर से नियन्त्रण रख कर काम कराने के लिए मानव तैयार करना है। इंजीनियरों का कहना है कि यह यन्त्र-मानव असह्य परिस्थितियों में भी काम के योग्य होगा। यह यन्त्र-मानव गहरे पानी में तथा अन्तरिक्ष में देर तक रह सकेगा।

अग्नि-सह साड़ी

बम्बई की एक फर्म ने ऐसी साड़ी बनाई है जिसमें आग लगने का भय नहीं रहता। अग्नि-रोधक धागा से बनी यह साड़ी यदि आग को दिखाई जाय तो धागा जलता नहीं केवल कुछ काला पड़ जाता है। वस्त्र का यह गुण इसलिये है कि उस पर विशेष प्रकार के रसायन का लेप लगाया गया है। रसायन का मानव त्वचा पर कोई अप्रिय प्रभाव तो नहीं पड़ता इसकी पुष्टि हो जाने पर ऐसी साड़ियाँ बाजार में मिलने लगेंगी। ग्रहणियों के लिए यह शुभ समाचार है।

बुढ़ापा टाला जा सकता है

मनुष्य की 'आनुवंशिक घड़ी' (जेनेटिक क्लॉक) पर नियन्त्रण करके बुढ़ापा को कुछ समय तक टाल रखने में बैज्ञानिकों को सफलता मिल जायगी। इतिहास के अनुसार मसुष्य 80 से 90 वर्ष तक जी सकता है। विज्ञान की सहायता से यह तो संभव हो सका है कि अधिक से अधिक मनुष्य इस अवस्था तक पहुँचे पर इस अवधि में वृद्धि अभी तक संभव नहीं हो सकी है। यदि कैंसर तथा हृदय रोग को नियन्त्रित कर लिया जाय तो भी अवधि भी बहुत वृद्धि नहीं होती। इस दिशा में व्यापक शोध-कार्य चल रहा है।

हृदय रोगियों की कम्प्यूटर से मदद

बर्मिंघम के अलबच मेडिकल सेन्टर विश्वविद्यालय में पंजीकृत नर्सों की कमी हो जाने पर वहाँ के हृदय विशेषज्ञों ने हृदय रोगियों की सहायता के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग आरम्भ कर दिया है। इससे न केवल उन्हें आराम मिला बल्कि हृदय शल्य चिकित्सा के रोगियों को उचित देखभाल भी हो सकी। यह कंप्यूटर केवल रोगी की हृदय गति की गहन अध्ययन करता रहता है बल्कि इसके द्वारा आवश्यक अंगों में रक्त की पूर्ति भी की जा सकती है।

कच्चे फलों का गिरना

अक्सर यह समस्या रहती है कि पेड़ों से कच्चे फल गिरने लगते हैं। संतरा, नीबू, मालटा आदि पेड़ों के कच्चे फलों को गिरने से बचाने का उपाय आसान है। 2,4-डी जिंक सल्फेट, बिना बुझा चूना और पानी का मिश्रण का छिड़काव करने से बचाव निश्चित होगी व्यय भी बहुत कम आयेगा। 7 ग्राम 2, 4-डी, 3 ग्राम जिंक सल्फेट व 1·5 किलो बिना बुझा चूना को 550 लिटर पानी में घोल कर एक एकड़ के बाग में प्रयोग में लाइये।

धूम्रपान न करने वाले भी कैंसर से पीड़ित हो सकते हैं

सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है परन्तु अभी हाल में किये गये अध्ययन से पता चला है कि सिगरेट पीने वालों के पास बैठ कर साँस लेने से न पीने वालों को भी हानि पहुँचता है। तम्बाकू के धुंए से जो वायु दूषित हो जाती है उसमें साँस लेने से सिगरेट न पीने वाला भी कार्बन मानो आक्साइड, जो कि तम्बाकू के धुएँ का एक विषैला घटक है, का अवशोषण करता है। कार्बनमानो आक्साइड रक्त के हिमोग्लोबीन से संयोग करके कारबाक्सी हिमोग्लोबीन बनाता है जो कि एक भयानक पदार्थ है।

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि कारबाक्सी हिमोग्लोबीन के तल में वृद्धि उन व्यक्तियों में जो धूम्रपान करने वालों के पास बैठकर साँस लेते हैं काफी मात्रा में हो जाती है अतएव केवल वही व्यक्ति कैंसर के मरीज नहीं हो सकते जो धूम्रपान करते हैं। वरन् उनके पास बैठकर साँस लेने वाले व्यक्तियों में भी कैंसर होने का भय बना रहता है।

गर्भवती महिलाओं के लिये एस्प्रीन हानिकर

मार्च के अन्त में संयुक्त राज्य अमरीका में एक गोष्ठी हुई जिसमें अमरीकी व योरोपीय डाक्टरों ने यह सम्मति प्रकट की कि गर्भवती महिलाओं द्वारा जुलाब, एस्प्रीन तथा अनावश्यक विटामिनों का सेवन करने से गर्भस्थ बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रभाव इस सीमा तक हो सकता है कि बालक में ज्ञान का ही अभाव रह जाय जो आरम्भ में तो पता नहीं चलेगा पर बाद में स्पष्ट हो जायगा। ब्रिटेन में लगभग 65% महिलाएँ अपने से ही औषधि का सेवन करने लगती हैं। इन औषधियों में दर्दनाशक तथा एन्टीबायोटिक सम्मिलित हैं। आरम्भ के 40 दिनों तक भ्रूण पर इन औषधियों से बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः बिना डाक्टर की सलाह के औषधि का सेवन न करने का सुझाव रखा गया है।

●●

(पृष्ठ 17 का शेषांश)

है कि परमाणु चालित नियामक का उपयोग अमरीका में प्रारम्भ हो गया है। योरोप में तो पहले ही लगभग 20 रोगियों को यह नियामक लगाया जा चुका है। यह नियामक दस वर्ष तक काम कर सकता है जबकि ऊपर वर्णित नियामक केवल डेढ़ दो वर्ष तक ही ठीक काम करते हैं।

गैंडे की खाद का उपयोग

गैंडे की खाद के पादप की एक गैस गैर-घास प्रजाति नष्ट नहीं होने पाती। इस पादप को सोलेनम खासियानम कहते हैं और इसमें अनेक स्टेरायड-ऐल्को लायड उपस्थित होते हैं जिनसे कुछ औषधियाँ भी बनाई जाती हैं। यह पादप खाद की तरह भी उपयोग में लाया जाता है।

• ● •

अद्भुत उपचारक क्षमता युक्त पदार्थ विटामिन ई

डा० अरुण कुमार सक्सेना

यह विटामिन आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व खोज निकाला गया था। लेकिन आज भी औषध विज्ञान के लिये यह एक पहेली बना हुआ है। इस बात पर किसी को भी कोई संदेह नहीं है कि यह एक उच्चकोटि का पौष्टिक पदार्थ है किन्तु वास्तविकता यह है कि आज तक किसी को भी मनुष्य के शरीर में इसके कार्यकलापों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं मिली है।

मार्च, 1972 से इसे एक अद्भुत उपचारक क्षमता युक्त पदार्थ घोषित कर दिया गया है। खाद्य पदार्थों के विशेषज्ञों ने इसकी महिमा में यहाँ तक कह डाला है कि यह हृदयगति, पिटिका (Acne) रोग, बुढ़ापा तथा नामर्दी को रोकने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगा। यही नहीं, इसमें शरीर पर खरौंच के दागों को स्वतः समाप्त करने की भी क्षमता है। जले भागों तथा जख्मों को यह शीघ्रता से सुखाता है। इन्हीं कारणों से गत्वर्षों में अमरीका ऐसे देशों में इसकी एकाएक खपत ५०० प्रतिशत बढ़ गई है। यह अब विटामिन-सी की खपत के टक्कर में आ पहुँचा है। विश्वविख्यात तथा दो बार के नोबेल विजेता डा० पाउलिंग इस बात पर विशेष बल दे रहे हैं कि विटामिन-सी ही ऐसा पदार्थ है जो कैन्सर जैसे भयानक रोग की रोकथाम कर सकता है।

विटामिन-ई को अत्यधिक बढ़ावा देने वाले डा० इवान वी० शुटे नामक वैज्ञानिक हैं। ये आजकल लन्दन की शुटे इंस्टिट्यूट के क्लिनीकल एण्ड लेबोरेटरी मेडीसिन विभाग के अध्यक्ष पद पर हैं। कनाडा के एक उच्चकोटि के चिकित्सक का कथन है कि इसके सेवन से मांस पेशियों को अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है तथा इसके अत्यधिक सेवन से मानव शरीर पर कोई विशेष दूषित प्रभाव नहीं पड़ते हैं। कुछ अन्य उच्चकोटि के शोधकर्ताओं ने भी इसी प्रकार के मत प्रकट किये हैं। अमरीका के न्यूयार्क युनिवर्सिटी स्कूल आफ़ मेडीसिन के डा० हर्बर्ट केयेडन का मत है कि वास्तव में विटामिन-ई के बारे में बहुत ही कम ज्ञात है इस कारण ऐसा मनुष्य खोजना कि जिसके शरीर में इसकी अत्यधिक कमी हो बड़ा ही कठिन कार्य है।

यह विटामिन मुख्यतः ताजे फलों, हरी ताजी तरकारियों तथा बीजों के तेल में प्रचुरता से पाया जाता है। विटामिन-ई तीन प्रकार के टोकोफिरोल नामक पदार्थों से मिलकर बना होता है। इन तीनों को ऐल्फा, बीटा, तथा गामा टोकोफिरोल के नाम से पुकारा जाता है। गामा टोकोफिरोल बिनौले के तेल में अधिक होता है। टोकोफिरोल हल्के-पीले रंग के तेल के समान द्रव होते हैं। यदि किसी मनुष्य के भोजन से इसे विलग कर दिया जाय तो उसके शरीर में इस पदार्थ की मात्रा बहुत अधिक समय पश्चात् शनैः-शनैः घटेगी। इस बात का पता केवल लाल रंग के रक्त के कणों की आयु से लगेगा। इसकी कमी से मानव शरीर के रुधिर के लाल रक्त कणों की आयु घटती जायेगी।

अभी तक की खोजों के आधार पर यह विटामिन कुछ विशेष रोग से ग्रसित रोगियों के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ है। इन रोगों के नाम है—

मैल-एवजोर्बश्न साइन्ड्रोमिस, साइस्टिक फिब्रोसिस, तथा वाइलडक्ट की रुकावट। इस प्रकार के रोगों में रोगियों की आँतें विभिन्न प्रकार के विटामिन तथा वसा अवशोषित नहीं कर पाती हैं।

कुछ शोधकर्ताओं तथा वैज्ञानिकों का मत है कि विटामिन-ई की अत्यधिक मात्रा ग्रहण करना फैशन सा

(शेष पृष्ठ 22 पर)

संवेदनाहारी व उनके उपयोग

डॉ० रामचन्द्र कपूर

सिर का दर्द होने पर अक्सर लोग, एस्प्रो आदि लिया करते हैं परन्तु बहुत कम ही लोग यह जानते हैं कि ये दवाइयाँ किस प्रकार कार्य करती हैं। 'एस्प्रो' में एक कार्बनिक पदार्थ एस्पिरिन होता है जो कि तंत्रिका तंत्र के कुछ भागों की सक्रियता को, शरीर के अन्य अंगों को बिना प्रभावित किये हुये कम कर देता है और इस प्रकार हम जो कार्य कर रहे होते हैं उसे बिना किसी रुकावट के करते रहते हैं। दूसरी तरफ संवेदनाहारी वे पदार्थ हैं जो कि बेहोशी की अवस्था पैदा कर देते हैं और दर्द से शरीर को पूरा आराम हो जाता है।

स्थानीय संवेदनाहरी सही रूप में संवेदनाहारी नहीं हैं और इनको 'पीड़ाहारी' कहना अधिक उचित है क्योंकि उनसे बेहोशी की अवस्था तो नहीं पैदा होती है परन्तु दर्द से छुटकारा मिल जाता है। एस्प्रो, एक प्रकार की पीड़ाहारी हैं।

सर हम्फ्री डेवी ने सर्व प्रथम 1799 ई० में दाँत का दर्द दूर करने के लिये नाइट्रस आक्साइड (हासगैस) का इस्तेमाल किया तथा बताया कि शल्य कर्म में भी यह गैस इस्तेमाल की जा सकती है। सन् 1853 में अलेक्जेन्डर वुड ने हाइपोडर्मिक सिरिन्ज, जिसके द्वारा दवाइयों को त्वचा के नीचे दिया जा सकता है, का आविष्कार किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चार पदार्थों के संवेदनाहारी गुणों का आविष्कार किया गया। ये चार पदार्थ थे नाइट्रस आक्साइड, एथिल क्लोराइड, क्लोरोफार्म और ईथर। अमरीका के एक दंत चिकित्सक होर्स वेल्स ने 1844 में बिना दर्द के दाँत उखाड़ने के लिये नाइट्रस-आक्साइड का इस्तेमाल किया। हेफेल्डर ने 1448 में एथिल क्लोराइड का, तथा सर जेम्स सिम्पसन ने 1847 में क्लोरोफार्म का संवेदनाहारी के रूप में इस्तेमाल किया। डा० विलियम मार्टन ने टाँग का विच्छेदन करने के लिये 1846 में ईथर का प्रयोग किया।

प्रत्येक संवेदनाहारी के अपने-अपने गुण हैं तथा ये शरीर पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालते हैं। संवेदनाहारी का प्रभाव मनुष्य की आयु व स्वास्थ्य पर भी निर्भर करता है।

संवेदनाहारी का कार्य केवल बेहोशी व दर्द कम करना ही नहीं बल्कि माँसपेशियों में श्रांति उत्पन्न करना तथा प्रतिवर्ती क्रियाओं को रोकना भी है। प्रस्तुत है इस लेख में विभिन्न संवेदनाहारी पदार्थों का वर्णन व उपयोग :

नाइट्रस आक्साइड :—यह एक गैस है जो कि इस्पात के सिलिन्डरों में अधिक दाब पर द्रव के रूप में रखी जाती है और आक्सीजन के साथ मामूली चीर-फाड़ (जैसे दाँत उखाड़ने, तथा गौण व मुख्य शल्य कर्म) में प्रयोग की जाती है। आक्सीजन का अनुपात स्थिति के अनुसार बदलता रहता है और 12% से 55% तक हो सकता है। नाइट्रस आक्साइड-आक्सीजन मिश्रण का उत्तर-प्रभाव अन्य संबेदनाहारी पदार्थों से काफी कम है।

सोडियम थियोपेन्टोन ('पेन्टोथल') :—यह एक प्रकार की बारबीट्युरेट औषधि है और अतः क्षेपण द्वारा शिरा में नींद लाने के लिये दी जाती है। इस संवेदनाहारी का सावधानी से इस्तेमाल करना चाहिये क्योंकि इसकी अधिक मात्रा से श्वसन रुक जाने का डर

रहता है। द्वितीय महायुद्ध में घायल सैनिकों के उपचार में इसका व्यापक रूप में इस्तेमाल किया गया।

ईथर (डाईएथिल ईथर) :—यह एक द्रव है जो कि वाष्प के रूप में शीघ्रता ने परिणित हो जाता है। यह मरीजों को नींद लाने के लिये दिया जाता है परन्तु अपनी तीखी गंध के कारण कम प्रयोग में लाया जाता है। यह अधिकतर बच्चों के टाँसिल और एडेनायडस् निकालने में प्रयोग किया जाता है।

ट्राइक्लोरोइथिलीन :—यह एक द्रव है जिसमें क्लोरोफार्म जैसी मीठी गंध होती है। यह अधिकतर 'पीड़ाहारी' के रूप में नाइट्रस आक्साइड आक्सीजन मिश्रण के साथ स्त्रियों को प्रजनन के समय दिया जाता है।

साइक्लोप्रोपेन :—यह एक विस्फोटक गैस है और बेलनों में द्रव के रूप में रखी जाती है। यह वृद्धों के लिये बहुत ही उचित संवेदनाहारी है और आक्सीजन की काफी मात्रा के साथ दी जाती है। यह नाइट्रस आक्साइड-आक्सीजन मिश्रण के साथ भी प्रयोग की जा सकती है।

एथिल क्लोराइड :—यह एक बहुत वाष्पशील द्रव है और 12·5° पर उबलने लगता है। यह मुख्यत: नींद लाने के लिये प्रयोग किया जाता है और इससे बहुत शीघ्रता से बेहोशी आ जाती है।

क्लोरोफार्म :—यह एक सस्ता अविस्फोटक द्रव है और बेहोशी की अवस्था लाने तथा माँसपेशियों में श्रांति उत्पन्न करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इसका हृदय व यकृत पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इसी कारणवश यह आजकल बहुत कम इस्तेमाल किया जाता है।

हैलोथेन :—यह एक मँहगा अविस्फोटक द्रव है जिसमें क्लोरोफार्म जैसी गंध होती है। यह आक्सीजन अथवा नाइट्रस आक्साइड-आक्सीजन मिश्रण के साथ प्रयोग में लायी जाती है। यह ईथर की तुलना में ज्यादा शक्तिशाली और विश्वस्त संवेदनाहारी है।

डा० राम चन्द्र कपूर
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर–1

(पृष्ठ 20 का शेषांश)

बन चुका है। ड्यूक युनिवर्सिटी मेडीकल स्कूल के डा० डेनियल मेंजेल इस विटामिन के प्रभाव का अध्ययन चूहों के फेफड़ों पर कर रहे हैं जो कि विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषण के कारण खराब हो चुके हैं, वे ये प्रयोग इसलिये कर रहे हैं कि उनके फेफड़े फिर से किस प्रकार सुधारे जा सकते हैं।

डा० डेविड हर्टिंग, जो कि डिस्टिलेशन प्रोडक्ट इन्डस्ट्रीज के ईस्टमैन कोडाक कम्पनी वाले विभाग में शोध कार्य कर रहे हैं, का मत है कि इस बात का प्रमाण है कि अमरीका के निवासी वास्तव में विटामिन-ई की बहुत कम मात्रा अपने भोजन में लेते हैं। इसका कारण उनका भोजन है। इसका प्रयोजन यह भी नहीं है कि वे इसे लेमन चूस की तरह दिन भर चूसते रहे।

यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि एक ओर संसार के समस्त राष्ट्र परिवार-नियोजन पर बल दे रहे हैं और दूसरी ओर विटामिन ई ऐसे पदार्थ के सेवन की राय देते हैं जो कि परिवार बढ़ाने के कार्य में तेजी लाता है। इस ओर शोधकार्यों में परिवार नियोजन के लिये खाने वाली व विशेष गोलियों का व्यवहार करने पर विशेष महत्व दिया जा रहा है जो कि विटामिन-ई की मात्रा को मानव शरीर में कम करने के लिये तैयार की गई है।

शीघ्र ही निकट भविष्य में इस विटामिन के मानव शरीर पर प्रभाव को देखने के लिये और अधिक शोध कार्य तथा प्रयोग होने लगेंगे तो इसके और भी विलक्षण गुण समक्ष आ सकेंगे जो कि सबको आश्चर्यचकित कर देंगे।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
१५ कटरा रोड, इलाहाबाद २—(उ० प्र०)

'तारों की अनन्त ऊर्जा का रासायनिक आधार'

सुरेश चन्द्र आमेटा

कई वर्षों से हम तारों को टिमटिमाते और सूर्य को आग बरसाते देखते हैं एवं उनमें अन्तर मानते रहे हैं। खगोल शास्त्र के अनुसार ऐसा नहीं है, क्योंकि उसमें सूर्य को भी एक छोटा तारा माना गया है। दूसरे शब्दों में तारे भी सूर्य की तरह ही नहीं, बल्कि उससे अधिक आग बरसाते हैं, परन्तु उनकी दूरी इतनी अधिक है कि वे हमें जलते पिण्ड के बदले टिमटिमाते ठण्डे तारे ही महसूस होते हैं। इन जलते पिण्डों में छिपी ऊर्जा असीम है। ये करोड़ों सालों में ऊर्जा (उष्मा के रूप में) देते रहे हैं और आशा की जाती है कि आने वाले कई करोड़ों वर्षों तक ये उसी प्रकार गर्म रहेंगे। इस लेख का उद्देश्य इनकी ऊर्जा का स्रोत क्या है तथा उसका अन्त कैसा और कब होगा आदि प्रश्नों का उत्तर देना है। कुछ तारों में संकुचन की गुरुत्वाकर्षण की ऊर्जा को इसका आधार बताया गया है परन्तु खगोलज्ञों के अनुसार यह कुछ सीमा तक ही सही है। तारों के विभिन्न प्रकार भी खगोल शास्त्र में वर्णित किये गये हैं। संहति, ताप और ज्योति आदि के आधार पर इनके कुछ समूह बना दिये गये हैं। इन समूहों को निम्न नाम दिये गये हैं :—

(1) मुख्य अनुक्रम वाले तारे
(2) लाल दानव तारे
(3) श्वेत वामन तारे
(4) परिवर्तनशील तारे
(5) महा दानव तारे एवं
(6) अधिनव तारे (नगण्य संख्या में) आदि

हमारे सौर मण्डल का सूर्य इनमें से मुख्य अनुक्रम वाले तारों के समूह का ही एक सदस्य है। इसकी संहति घनत्व एवं ऊर्जा की हानि की दर क्रमशः 2×10^{33} ग्राम 1·4 ग्राम प्रति घन सेमी० तथा 4×10^{33} अर्ग प्रति सेकण्ड है। उत्सर्जन स्पेक्ट्रम की सहायता से प्राप्त परिणामों के अनुसार सूर्य का तापक्रम $6000^\circ K$ है तथा परिकल्पित किया गया केन्द्र का ताप $15,000,000^\circ K$ के लगभग है। इसकी इतनी अधिक ऊर्जा का कारण मात्र रासायनिक अभिक्रियायें नहीं हो सकती हैं। वरन् नाभिकीय अभिक्रियायें ही इसमें कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस रहस्य को जानने के लिये सूर्य पर के रासायनिक तत्वों को, जो परिकल्पनायें की गई, उनके अनुसार प्राप्त परिणाम निम्न है—

हाइड्रोजन	हिलियम	कार्बन + आक्सीजन + नाइड्रोजन + अन्य तत्व
75 से 80 प्रतिशत	15 से 20 प्रतिशत	मात्र एक प्रतिशत तक

इस असीम ऊर्जा की उत्पत्ति को समझाने के लिये दो भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये जिन्हें नीचे लिखा गया है।

(i) **कार्बन-नाइड्रोजन चक्र :**—यह अभिक्रिया चक्र द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसे निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$C^{12} + H^1 \longrightarrow N^{13} + \gamma$$
$$N^{13} \longrightarrow C^{13} + e^+ v$$
$$C^{13} + H^1 \longrightarrow N^{14} + \gamma$$
$$N^{14} + H^1 \longrightarrow O^{15} + \gamma$$
$$O^{15} \longrightarrow N^{15} + e^+ v$$
$$N^{15} + H^1 \longrightarrow C^{12} + He^4$$
$$4\,H^1 \longrightarrow He^4 + 2e^+ 2v + 3\gamma$$
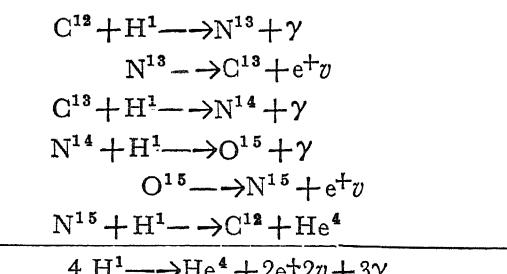
ऊपर दी गई अभिक्रियाओं की श्रेणी के पदों का योग करने पर ज्ञात होता है कि इनमें चार प्रोटॉनों के योग से एक हीलियम केन्द्रक बनता है। C^{12} इस अभि-

क्रिया के प्रथम पद में काम आता है परन्तु अन्तिम पद में फिर से उत्पाद के रूप में प्राप्त हो जाता है। अतः इस चक्र में C^{12} का कार्य एक उत्प्रेरक के रूप में ही है। अन्य सभी केन्द्रक अभिक्रियाओं के मध्य ही किसी पद में उत्पाद के रूप में प्राप्त होकर अन्य पद में अभिकारक बनकर समाप्त हो जाते हैं।

(ii) प्रोटॉन-प्रोटॉन श्रेणी :—

इस श्रेणी में प्रोटॉन की प्रोटॉन से अभिक्रिया होकर हीलियम नाभिक बनता है इन अभिक्रियाओं को साल्ट-पीटर ने प्रतिपादित किया था। इन्हें इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$H^1 + H^1 \xrightarrow{\text{मंद}} H^2 + e^+ \nu$$

$$H^2 + H^1 \xrightarrow{\text{तीव्र}} He^3 + \gamma$$

$$He^3 + He^3 \xrightarrow{\text{तीव्र}} He^4 + 2H^1$$
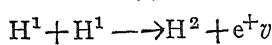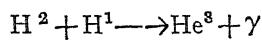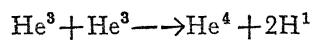
इन दोनों ही अभिक्रिया श्रेणियों के सूर्य पर होने की सम्भावना है परन्तु निम्न ताप पर किसी एक का आधिक्य अवश्य समझाया जा सकता है। सूर्य की सतह पर ताप कम होने के कारण वहां पर प्रोटॉन-प्रोटॉन श्रेणी के होने की अधिक सम्भावना है जब कि आन्तरिक (केन्द्र की ओर) स्थितियों में अधिक ताप से कार्बन-नाइट्रोजन चक्र द्वारा प्रोटानों के हीलियम नाभिक में परिवर्तित होने की अधिक सम्भावना है। इसी प्रकार ताप तथा आकार के आधार पर भी समान रूप से सम्भावनायें बतायी जा सकती हैं। कम ताप तथा छोटे आकार वाले तारों में ऊर्जा के उत्पन्न होने का आधार प्रोटान-प्रोटॉन श्रेणी के ही माना जा सकता है। इसके ठीक विपरीत बढ़े आकार तथा अधिक ताप वाले तारों में कार्बन-नाइट्रोजन चक्र को ही ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में अधिक मान्यता दी जा सकती है।

एक और नया प्रश्न सामने आता है कि क्या इस हाइड्रोजन के सान्द्रण के कम हो जाने पर अथवा समाप्त-प्राय: हो जाने पर ये तारे ठण्डे हो जायेंगे ? यह एक बड़ा ही जटिल प्रश्न है, और इसके बारे में जो सम्भावनायें दी गई हैं, वो इस प्रकार है। इस प्रकार हीलियम के नाभिक (उत्पाद) स्वयं भी आपस में क्रिया करके बेरीलियम बना सकते हैं, जिसे नीचे प्रस्तुत किय गया है।

$$He^4 + He^4 \rightarrow Be^8 + \gamma$$
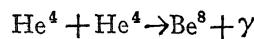
इस क्रिया का अन्त यहीं हो जाये, यह सम्भव नहीं है। बेरीलियम तथा हीलियम नाभिक आपस में क्रिया करके कार्बन बना सकते हैं। इसे नीचे दर्शाया गया है।

$$Be^8 + He^4 \rightarrow C^{12} + \gamma$$
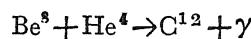
यहाँ यह क्रिया समाप्त नहीं होगी। ताप की अधिकता के साथ आगे होती रहेगी। इसका अन्त अवश्य आयेगा, यह निश्चित है और उस लम्बी अवधि के पश्चात ये ठण्डे होते चले जायेंगे, ऐसा माना जाता है। सम्भव है, उस स्थिति पर कोई अन्य अभिक्रियायें ऐसी होती हों, जो उन्हें आगे के लिए और गर्म रख सके, जिनका ज्ञान अभी तक हमें न हो।

* "शिक्षा जगत-ज्ञानेन्द्र"
- जनवरी 73 से साभार

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 111 | फाल्गुन 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द
फरवरी-मार्च 1973 | संख्या 12

विक्षारों की कच्ची औषधियों से प्राप्ति

डा० जयकृष्ण मेहरोत्रा

गिलबर्ट ने 1817 ई० मॉरफिया को, ज़ो कि अफ़ीम का मुख्य अवयव है, वनस्पति विक्षार बताया था। 1817 से 1835 ई० के बीच 25 से अधिक पदार्थ विभिन्न पौधों से निकाले गए जो कि एक ही तरह के विक्षारीय गुण रखते थे तथा उनमें से अधिकांश में शारीरिक क्रियाएँ भी थीं, उन सभी को विक्षार के नाम से पुकारा गया। तभी से यह नाम प्रकृति में उगने वाले विक्षारीय गुणवर्धक नाइट्रोजनयुक्त कार्बनिक यौगिकों के वर्ग को दिया जाने लगा। प्यूरीनसंजात भी विक्षारों की तालिका में शामिल कर दिए हैं।

विक्षारों को उनकी उत्पत्ति के आधार पर वनस्पति-विक्षार और जन्तुविक्षार में विभाजित किया जा सकता है। वनस्पति विक्षार को फलरहित पौधों और फूलों वाले पौधों-दोनों से निकाला जाता है परन्तु फूलों वाले पौधों से अधिक विक्षार प्राप्त किए गये हैं। इस प्रकार के पौधे पेपेवर्सियल, लेग्यूमिनोस तथा रेनुनकुलेसी हैं।

साधारणतया विक्षार पौधों के हर भाग में मिल सकते हैं। पौधों में कई एक क्षार मौजूद हो सकते है, परन्तु कोई विशेष विक्षार पौधे के विशेष भाग में बहुत अधिक मात्रा में हो सकता है। जब किसी पौधे में केवल एक ही विक्षार हो तब यह देखा गया है कि यह उसके कुछ ही भागों में सीमित होता है। एक [illegible] के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले क्षारों की मात्रा[illegible] में काफी अन्तर होता है। पौधों की विक्षार-मात्रा बहुत से खन्डों पर आश्रित रहती है, और यह पौधों के उगने के स्थान तथा वर्ष के भाग पर अधिक निर्भर करता है।

अधिकतर विक्षार, टनिक अम्ल, सक्सीनिक, आग्जैलिक, मेलिक अम्लों या दूसरे वनस्पति अम्लों के लवणों के रूप में पौधों में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए एकोनिटीन एकोनिटीन अम्ल के साथ, अफीम मकोनिक अम्ल के साथ, सिनकोना म्यूनिक अम्ल के साथ इत्यादि विक्षार के अकार्बनिक अम्ल के लवण भी पाये जाते हैं जैसे मोरफीन सल्फेट के रूप में अफीम मिलता है।

प्रकृति में विक्षार किस प्रकार से बनते हैं इस विषय में बहुत विवाद है तथा विभिन्न वैज्ञानिकों ने अलग-

अलग विचार प्रकट किए हैं इनमें सबसे उल्लेखनीय तथा मान्य रोबिनसन द्वारा बताया गया। इसके अनुसार विक्षार अमीनोंएसिड से प्रकृति में बनते हैं और एमीनों एसिड स्वयं प्रोटीन के विच्छेदन से बनते हैं। यह सर्व विदित है कि पौधों में बहुत सी क्रियाएँ जैसे मीथेलिन संयोजन, अपचयन, आक्सीकरण, निर्जलीकरण, आल्डॉल तथा दूसरे सामान्य संघनन इत्यादि होते रहते हैं। रोबिनसन ने अपनी योजना में इन्हीं साधारण क्रियाओं की सहायता से विक्षार के बनाने का उल्लेख किया है तथा इन्हीं क्रियाओं की सहायता से मुख्य विक्षार की संभव शरीर क्रियात्मक संश्लेषण का न केवल उल्लेख ही किया है, वरन् इनकी सहायता से कुछ विक्षारों को प्रयोगशाला में बनाकर अपनी योजना की पुष्टि की है।

पौधों में विक्षार का क्या काम है यह एक विवाद-ग्रस्त विषय है। एक विचार है कि ये उपापचयन के अन्तिम अवयव हैं तथा यह पौधो के आगे के जीवन में कोई भाग नहीं लेते। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि विक्षार बीज, फल, तना तथा जड़ की छाल में अधिक मात्रा में मिलते हैं जो कि अधिकतर पौधों द्वारा अलग कर दिये जाते हैं और ये पौधों के लिए उत्सर्जन अंग होते हैं। विक्षार की मात्रा, इन पौधों द्वारा दूर किये हुए अंगों में फेंके जाने के बाद भी कम नहीं होती इससे यह सिद्ध होता है कि विक्षार पौधों के एक दूसरे भाग में विसर्जित नहीं होते रहते हैं।

विक्षारों का बिलकुल सही नामांकन तथा वर्गीकरण अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। एक उपयोगी तथा मान्य वर्गीकरण हेनरी द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह वर्गीकरण विक्षार में विषमचक्रीय इकाई की उपस्थिति पर आधारित है।

विक्षारों का वर्ग शरीरक्रियात्मक तथा औषधि-स्वरूप मूल्य रखता है। विक्षारों की अणु रचना किस प्रकार उनकी शरीरक्रियात्मक क्रिया से सम्बन्धित हो सकती है। इस विषय में काफी तथा महत्वपूर्ण काम हो चुका है। लेकिन अभी तक इस विषय में कोई उपयोगी व्याख्या संभव नहीं हो पायी है।

विक्षार मुख्यतया रवारूप होते हैं (हाइग्रिव, निकोटीन, इत्यादि द्रव हैं)। द्रवीय विक्षार अधिकतर आक्सीजन रहित होते हैं। रंगीन विक्षार बहुत कम होते हैं। कार्बनिक तथा अकार्बनिक अम्लों के साथ विक्षार लवण बनाते हैं जो पानी या एल्कोहल में घुलनशील हैं। विक्षार पानी में अघुलनशील होते हैं परन्तु एल्कोहल, क्लोरोफॉर्म, एमायल एल्कोहल में घुल जाते हैं। बहुत से विक्षार ईथर तथा बेंजीन में भी घुलनशील हैं। कुछ तो पेट्रोलियम ईथर में भी घुलनशील होते हैं। विक्षारों में अधिकतर प्रकाशीय सक्रियता होती है और अधिकतर बामघूर्णक होते हैं।

एलकोलायड या विक्षार पौधों से उनकी प्रकृति के आधार पर अनेक ढंग से निकाले जाते हैं। इन विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्न हैं :—

(1) कटी हुई वनस्पति सामग्री को ठण्डे पानी के साथ सारीकृत करते हैं। यह सार अधिकतर रंगीन होता है। इसे गाढ़ा करके लेड एसीटेट से साफ करते हैं। अवशेष लेड को हाइड्रोजन सल्फाइड के द्वारा दूर करते हैं उसके बाद उसकी तनुक्षार से क्रिया कराते हैं। अवक्षिप्त क्षार को उचित विलायक में घोल लेते हैं। इसके उपरान्त कार्बनिक विलायक में से विक्षार को खनिज अम्ल द्वारा नमक के रूप में प्राप्त कर लेते हैं। इस विधि में उत्पादन कम होता है।

(2) पूर्ण विभाजित या कटे हुए वनस्पति पदार्थ को तनु खनिज अम्ल (जैसे हाइड्रोक्लोरिक, सल्फ्यूरिक या एसिटिक अम्ल) के साथ क्रिया कराते हैं। इस अम्लीय विक्षार के घोल में से विक्षार को तनुक्षार के प्रयोग से आपेक्षित करके छान लेते हैं और इसके बाद विधि (1) के अनुसार ही इसे उपचारित करते हैं।

(3) वनस्पति द्रव्य को अमोनिया के साथ मिला करके विक्षार को मुक्त अवस्था में प्राप्त किया जाता है उसके बाद इसे उचित घोलक से सारीकृत किया जाता है। कार्बनिक सार को सूखी हाइड्रोक्लोरिक गैस से संतृप्त करते हैं इससे क्षार अपने हाइड्रोक्लोराइड के रूप में प्राप्त हो जाता है। क्षारों को पौधों से निकालने का यह सबसे अच्छा ढंग है।

क्षारीय विक्षार सार का वाष्प आसवन करके द्रव विक्षार को प्राप्त किया जाता है। ऊपर लिखी विधियों द्वारा जो विक्षार प्राप्त किया किए जाते हैं वे पूर्ण विक्षार कहलाते हैं। इसमें से विक्षार को उचित विधि द्वारा एक दूसरे से पृथक् कर लिया जाता है।

प्राचीन काल से विक्षार का प्रयोग औषधि के रूप में तथा विष की तरह किया जाता है। भारत में इन पौधों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि होने पर भी विदेशों से अधिक मात्रा में आयात होता है। अतः अपने देश में तत्काल आवश्यकता है कि विक्षारो को पौधो से निकालने की उपयोगी विधियाँ निकाली जाय जो कि अपने देश की परिस्थिति तथा जलवायु दोनों को देखते हुए लाभकर हो। हमारे देश की उष्णदेशीय दशा के कारण, अलकलोयइड को कार्वनिक घोलक के द्वारा सारीकृत करने से व्यय अधिक मात्रा में होता है, वर्तमान खोज में कार्बनिक घोलक का प्रयोग कम से कम करने की कोशिश की गई है। इस आशय से सिलीकोटंगस्टिक एसिड को पूर्ण विक्षार को ड्रगो (स्तम्भ 1 सारणी 1) से निकालने में अवक्षेपक की तरह प्रयोग किया गया है। यह विधि उपयुक्त है क्यों कि इसमें विक्षार सार को कार्वनिक घोलक की मदद से दो दो वार शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस विधि में सिलीकोटगस्टिक एसिड को फिर से प्राप्त कर लिया जाता है इस एसिड को बनाने की विधि पूर्णतया ज्ञात है।

विक्षार के सिलीकोटंगस्टैट पानी में बहुत कम घुलनशील हैं। उनमें से कुछ तो इतने अघुलनशील हैं कि उनका प्रयोग सम्बन्धित विक्षार के मापन में किया जाता है। कार्बनिक क्षार भी, अम्लीय माध्यम सिलीकोटंगस्टिक एसिड के द्वारा अवक्षिप्त किये जा में सकते हैं परन्तु इनका अवक्षेपण संकुचित नमीस्तर पर ही पूर्णतया होता है। जैसे अ-पिकोलीनका सिलीकोटंगस्टेंट 3·4% पर नमी सबसे अधिक अवक्षिप्त होता हैं इसी प्रकार ब तथा आर पिकोलीन के सिलीको-टंगस्टैंट 3·2, 3·6% नमी पर सबसे अधिक अवक्षिप्त होते हैं परन्तु अधिकतर विक्षारों के सिलीकोटंगस्टैट 1 से 4·5% नमी के बीच में पूर्णतया अवक्षिप्त हो जाते हैं। विक्षार के अवक्षिप्त सिलीकोटंगस्टैंट उनके तनु घोल से भी अवक्षिप्त किये जा सकते हैं।

औषधियों की विक्षार मात्रा पुस्तकों में वर्णित है। वर्तमान खोज में जिन औषधियों का उपयोग किया गया है वे सारणी के स्तम्भ में दिये गये हैं। विक्षारमात्रा का अनुमापन निम्न विधि से किया जाता है :—6 कि० चूर्ण औषधि तथा 6 लिटर 1% हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को एक बड़े फ्लास्क में जलशावक पर एक घण्टे तक हिला हिलाकर गर्म किया। गर्म अवस्था में ही अम्लीय सार को एक बड़े बुकनर कीप में डालकर कीप के अवशेष को फिर से 6 लि० 1% हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की मदद से फ्लास्क में लेकर 1 घण्टे तक गर्म किया। इस विधि को 3 बार दुहराकर विक्षार का सारीकृत पूरा कर लिया, अन्तिम बार अवशेष को एक बार कीप में डालकर दो बार आधे लीटर गर्म पानी से धो लिया। छनित तथा धोवन को मिलाकर स्थिर होने के लिए रख दिया और फिर छान लिया इसमें 1% सिलीकोटंगस्टिक एसिड उस समय तक डाला जब तक कि कोई अवक्षेप न आये। इस अवक्षेप को छानकर थोड़े से पानी से धो लिया गया। गीली अवस्था में ही सिलीकोटंगस्टैंट्स को पृथक्करण कीप में लेकर इसे 1 लि० गाढ़े अमोनियम हाइड्रोक्साइड विलयन से क्रिया कराया तथा अच्छी तरह से हिलाया और पाँच बार तीन सौ मि० ली० क्लोरोफार्म के साथ इसको सारीकृत किया तथा हर क्लोरोफार्म तल को एक ही 50 मि० ली० पानी से धो लिया गया। कार्बनिक घोलक को कम दबाब में आसवन द्वारा निकाल लिया, अवक्षेप को फास्फोरस पेंटाआक्साइड के ऊपर स्थिर भार तक सुखा लिया गया।

निकोटीन सिली को टंगस्टैट को 2 लि० 5% सोडियम हाइड्रोक्सॉइड के साथ एक बड़े फ्लास्क में लेकर उसका वाष्प आसवन उस समय तक किया जब तक कि विक्षार आसव में न आये (सिलोको टंग-स्टिक एसिड से परीक्षण) आशव के एक ज्ञात भाग में निकोटीन की मात्रा मालूम कर ली गई।

हायोसाइमस नाइगर के लिए, अवशेष को स्टेंडर्ड सल्फ्यूरिक अम्ल (N/25) की अधिकता में, घोल लिया और इस घोल के एक ज्ञात भाग में बचे हुए अम्ल की मात्रा स्टेंडर्ड सोडियम हाइड्रॉक्साइड से ज्ञात कर ली गई।

इन आधारों से पूर्ण विक्षार को औषधियों से सारीकृत करके मापन किया। तालिका के 5 वें स्तम्भ में प्राप्त किये हुए पूर्ण विक्षार की प्रतिशत मात्रा दी गई है जो कि काफी अच्छी है।

ड्रग का नाम	आमापन परिणामों की प्रतिशत मात्रा	7 कि० गा० औषधि में एल्कोलायड की मात्रा आमापन द्वारा ग्राम में	निस्सारित विक्षार ग्राम में	निस्सारित विक्षार प्रतिशत मात्रा
तम्बाकू	2.8900	173.40	173.20	100.00
हायोसाइमस	0.0610	3.67	3.39	92.40
नाइगर नुम्स वोमिक	2.1080	126.48	119.49	94.27
सिनकोना	5.3820	322.92	313.23	96.99
जेवोरेंडी	0.6105	37.20	35 93	98.16
सर्पगंधा	1.0100	60.60	55.56	90.79

डा० जे० के० मेहरोत्रा.
रीडर इन केमस्ट्री.
एम, एन०, आर०, इंजीनियरिंग कालेज,
इलाहाबाद

राजस्थान के राष्ट्रीय प्रदर्शनों में धान के साथ बहु-फसली खेती

लक्ष्मी लाल सोमानी

देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कृषि का तीव्र विकास अति आवश्यक है। अधिकाधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मजदूर, पानी तथा भूमि के समुचित उपयोग के साथ-साथ खेती के आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल हो। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे यहाँ पर्याप्त सूर्य का प्रकाश उपलब्ध है जो कि लगातार फसलें पैदा करने के लिए महत्वपूर्ण है किन्तु खेती योग्य भूमि के 80 प्रतिशत हिस्से में सिंचाई सुविधाएँ नहीं है अतः हमें खेती की भूमि के 20 प्रतिशत भाग में जहाँ पर कि पर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं लगातार 2,3 या अधिक फसलें उगाकर प्रतिवर्ष प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार लेने के प्रयास करने चाहिए। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार भी मिल सकेंगे।

राष्ट्रीय प्रदर्शन

खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए नवीनतम कृषि तरीकों एवं बहु फसली कार्य क्रम को किसानों के खेतों पर पहुँचाने के लिए देश व्यापी राष्ट्रीय प्रदर्शन योजना के माध्यम से भारत सरकार ने कृषि विश्वविद्यालयों एवं कृषि विभागों में अनुसंधान रत कृषि वैज्ञानिकों को आमंत्रित किया है जिससे वे स्वयं किसानों के खेतों पर जाकर इन तकनीकों का प्रदर्शन करें। इससे किसानों में आत्मविश्वास हो सकेगा कि इन नई विधियों एवं बहु-फसली कार्यक्रम को किसान स्वयं अपने खेत पर अपना कर पैदावार बढ़ा सकता है।

संदेश किसानों के लिए

उदयपुर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने राजस्थान के दक्षिणी जिलों में कई राष्ट्रीय प्रदर्शनों का आयोजन कर दूरस्थ गांवों में बहु-फसली कार्यक्रम प्रदर्शित किये। इन्हीं में से धान-गेहूँ-मूंग की फसलें लगातार एक ही खेत से एक वर्ष में लेने का प्रदर्शन डूंगरपुर में लगाया गया। गाँव के किसानों के लिए यह प्रथम अवसर था जबकि उनके खेत पर एक साल में तीन फसलों की पैदावार ली गई थी जिसका विवरण इस प्रकार है।

फसलें / फसल क्रियाएँ	धान	गेहूँ	मूंग
बुवाई	जून के प्रथम सप्ताह में बुवाई कर अन्तिम सप्ताह में रुपाई	नवम्बर के अन्त	अप्रैल के दूसरे सप्ताह में
कटाई	अक्टूबर के अन्त में	अप्रैल के प्रथम सप्ताह में	जून के अन्त में
अवधि	150 दिन	120 दिन	70 दिन
बीज की मात्रा	25 कि प्र० हेक्टर	100 कि० प्र० है०	20 कि० प्र० है०
किस्म	बासमती	सोनालीका	पूसा बैसाखी
फासला	25 × 15 से०मी	20 × 8-10 से० मी०	30 × 15 सै० मी०
उर्वरक			
नाइट्रोजन	120 कि० प्र० है०	120 कि० प्र० है०	20 कि० प्र० है०
फास्फोरस	60 कि० प्र० है०	60 कि० प्र० है०	40 कि० प्र० है०
पोटाश	30 कि० प्र० है०	50 कि० प्र० है०	—
पैदावार	40.0 क्वींटल/है०	56.25 क्वींटल/है०	6.87 क्वींटल/है०
राज्य की औसत पैदावार	10.0 क्वींटल/है०	10.14 क्वींटल/है०	1.25 क्वींटल/है०
राज्य की औसत पर प्रतिशत वृद्धि	400.0 प्र० श०	554.8 प्र० श०	549.6 प्र० श०

कार्बनिक पदार्थ के लिए 10 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद दिया था। इस क्षेत्र में 600 मिली मीटर वर्षा हुई किन्तु किसान के पास पम्प होने से पानी की कोई समस्या नहीं थी धान को दो सिंचाई दी गई। गेहूँ को सात तथा मूंग को चार सिंचाई दी गई। प्रत्येक फसल की दो निराई-गुड़ाई की गई। इस बहु-फसली कार्यक्रम को सफल बनाने में पौध संरक्षण पर पूरा-पूरा ध्यान रखा गया जो इस प्रकार है।

पौध संरक्षण :—(प्रति हैक्टर)

धान :—बीज जनित रोगों की रोक-थाम के लिए बीजों को 2 ग्राम सैरेसन प्रति कि० बीज से उपचारित किया। तना छेदक की रोक थाम के लिए रोपाई से पहले 300 मि० लि० पैराथीयोन छिड़का गया। रुपाई के 25 एवं 55 दिन बाद गन्धीबाग, फड़का, टिड़े, आर्मी वर्म व कतरा आदि कीड़ों का रोकथाम के लिए 400 ०मि लि० डायमेक्रोन तथा पत्तों के धब्बे, ब्लास्ट एवं ब्लाइट जैसी बीमारियों की रोक-थाम के लिए जाइनेब 1200 ग्राम का छिड़काव किया।

गेहूँ—बीज को 250 ग्राम एग्रोसन जी० एन० से उपचारित किया तथा 30 दिन की फसल पर कटवर्म व गजिया वीविल को रोकने के लिए 750 मि० लि० एन्ड्रीन का छिड़काव किया धसल को रोली से सुरक्षित करने के लिये 45 एवम् 75 दिन की फसल पर 1250 ग्राम जाइनेब का छिड़काव किया।

मूंग – बीज को 25 ग्राम एग्रोसन जी० एन० से उपचारित किया तथा 40 दिन की फसल को मौला व फली की लट से बचाने के लिए 1000 मि० लि० मैलाथीयोन तथा बूलाइट के लिए 1000 ग्राम जाइनेब साथ मिलाकर छिड़काव किया।

खर्च तथा आय—किसानों की दृष्टि से इस कार्यक्रम को सफल बनाने में काफी खर्च किया गया किन्तु खर्च से ज्यादा लाभ हुआ जो निम्न तालिका से स्पष्ट है (प्रति हैक्टर)

फसल	धान	गेहूँ	मूंग
खर्च : कुल नकद खर्च—	875·00 रु०	595·00 रु०	193·00 रु०
मजदूरी	1161·00	207·00	127 00
पशु परिश्रम	275·00	227·00	108·00
उत्पादन पर कुल खर्च	2311·00	1029·00	428·00
आय-मुख्य उत्पादन			
पैदावार (क्वींटल)	40·00	56 25	6·87
पैदावार का मूल्य (रु०)	4000·00	4218·75	858·75
अन्य उत्पादन—			
पैदावार (क्वींटल)	60·00	69·00	15·00
पैदावार का मूल्य (रु०)	180·00	69·00	45·00
कुल आय (रु०)	4180·00	4287·75	903·75
शुद्ध आय (रु०)	1869·00	3258·75	475·75
व्यय के प्रत्येक रु० पर शुद्ध लाभ	2·14	3·73	2·46

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि साल में सिर्फ धान की एक फसल लेने से 1869 रु० की शुद्ध आय होती है किन्तु धान के बाद गेहूँ पैदा करने से शुद्ध आय 5127·75 रु० मिलती है तथा खेती की सभी उन्नत विधियाँ अपना कर साल के अन्त में बैसाखी मूंग की फसल लेने से मिट्टी उर्वरता सुधरने के साथ-साथ शुद्ध

शेष पृष्ठ 14 पर

प्रति पदार्थ से निर्मित नया विश्व

श्याम मनोहर व्यास

ईश्वर की यह सृष्टि अपरम्पार है। भगवान ने कहा है—'नान्तंनमध्यं'! जिसका अन्त ही नहीं, न जिसका मध्य है! वह कल्पना से परे है। वह विश्व पदार्थ अर्थात् द्रव्य से बना है! पदार्थ अणु और परमाणु से निर्मित है। पदार्थ भी भिन्न भिन्न तत्वों में विभाजित है। प्रत्येक तत्व का परमाणु भार व उसके रासायनिक गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। परमाणु के तीन मौलिक कण हैं:—प्रोटान, न्यूट्रान एवं इलेक्ट्रान। प्रत्येक तत्व के नाभिक में न्युट्रान व प्रोटान होते हैं व बाहरी कक्ष में इलेक्ट्रान। इलेक्ट्रान ऋण-विद्युन्मय होते हैं व प्रोटान धन विद्युन्मय।

[असीम ऊर्जा की उपलब्धि]

पदार्थ नाशवान् है। इसके नष्ट होने पर ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा उत्पन्न करने का सबसे आधुनिक साधन ताप नाभिकीय प्रक्रिया है। हाइड्रोजन बम इसी प्रक्रिया का परिणाम है।

जब हाइड्रोजन के दो नाभिक टकराकर एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं तो हीलियम तत्व का एक नाभिक बन जाता है। जैसा कि समीकरण से ज्ञात है:—

$$H + H = He.$$

इस प्रक्रिया में हाइड्रोजन के ये नाभिक अपनी थोड़ी सी संहति खो देते हैं जो ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। थोड़ी संहति भी भारी मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न करता है जैसा कि आइन्स्टीन की ऊर्जा सम्बन्धी समीकरण से विदित होता है:—

ऊर्जा = पुंज × (प्रकाश की गति)^2

अर्थात् $E = M \times C^2$.

प्रकाश की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड है। यदि हाइड्रोजन के ये दोनों नाभिक एक दूसरे के टकराने के पश्चात् थोड़ा सा पुंज अर्थात् संहति नष्ट होने के बदले पूर्ण रूप से एक दूसरे को ध्वस्त करें तो उससे जो ऊर्जा निकलेगी वह ताप नाभिकीय प्रक्रिया से हजारों-लाखों गुना अधिक होगी। नाभिकीय विज्ञान में यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

प्रतिकणों की खोज

कुछ वर्षों पूर्व वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि द्रव्य के साथ-साथ प्रतिद्रव्य का अस्तित्व भी है। वे पदार्थ, जिनकी भविष्यवाणी सन् 1928 में सापेक्षतावादी क्वांटम सिद्धान्त के द्वारा की गयी थी, प्रति पदार्थ कहलाये। सन् 1932 में कास्मिक किरणों में प्रति इलेक्ट्रान अर्थात् पॉजीट्रान की खोज हुई। आगे चलकर सन् 1955 में प्रति प्रोटान व प्रति न्यूट्रान की खोज हुई। इलेक्ट्रान के प्रतिकण पॉजीट्रान पर धनात्मक आवेश होता है। यदि ऐसे कण एक दूसरे से टकरा जायें तो विपरीत गुणों के कारण एक दूसरे को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, ध्वनि की प्रतिध्वनि, उसी प्रकार पदार्थ प्रति-पदार्थ होता है। यह तथ्य सर्वप्रथम केम्ब्रिज विश्व विद्यालय के गणित के प्राध्यापक डिराक ने प्रस्तुत किया। डिराक ने क्वाँटम भौतिकी, सापेक्षतावाद के सिद्धान्तों के आधार पर अणु के प्रतिद्वन्दी प्रतिअणु की कल्पना की। ब्रह्माण्ड में पदार्थ के साथ-साथ प्रतिपदार्थ भी अपना काम कर रहा है।

यदि एक डिब्बे में खचाखच गोलियाँ भरदी जाँय तो फिर न तो वह हिलडुल सकेंगी और न गिनी जा सकेंगी।

इसी प्रकार यदि विश्व में अणु खचाखच भरे हों तो वे वैसी गति नहीं कर सकते जैसी कि अब करते हैं;

और न उनका अस्तित्व ही अनुभव किया जा सकेगा। अतएव जितना श्रेय अणु को है उतना ही प्रति-अणु को भी है। दोनों में से एक का अस्तित्व यदि समाप्त हो जाय तो विश्व में फिर किसी प्रकार की कोई हलचल दिखाई न पड़ेगी। तब अणु गति-शील न रहकर स्थिर बने बैठे रहेंगे।

प्रयोग शाला में प्रतिद्रव्य का निर्माण

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने शक्तिशाली नाभिकीय त्वरकों की सहायता से प्रयोग शाला में प्रतिद्रव्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की! इस प्रकार की एक भट्टी रिएक्टर) में नाभिकीय कणों को 3 हजार करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा प्रदान करके प्रति ड्यूट्रोन प्राप्त किया। रसायन विज्ञान के अनुसार ड्यूट्रान भारी हाइड्रोजन का नाभिक है।

सन् 1971 के सितम्बर माह में सोवियत संघ की भौतिक प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों ने एक अत्यन्त जटिल प्रति द्रव्य प्रति हीलियम प्राप्त किया। इसी प्रक्रिया में प्रति ड्यूटोरियम भी प्राप्त हुआ। सब मिलाकर सोवियत वैज्ञानिकों ने पचास हजार प्रतिकण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इसके बावजूद अभी प्रति-कणों को किसी उपयोगी कार्य में लगाने के लिये वैज्ञानिकों को और अथक प्रयास करना पड़ेगा।

वैज्ञानिकों के लिये कठिनाई

आज वैज्ञानिकों के लिये सबसे बड़ी कठिनाई है— रासायनिक क्रिया द्वारा पर्याप्त संख्या में प्रतिकण प्राप्त करना और उन्हें सुरक्षित रखना। प्रति पदार्थ कणों के बारे में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि वे अकेले अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकते। वे उत्पन्न होकर और अन्य कणों के साथ संयोग कर स्वयं लुप्त हो जाते हैं। उनकी इस विचित्र लीला के कारण ही विद्युत, चुम्बकीय विकिरण की ऊर्जा इस विश्व को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो रही है। यदि प्रति पदार्थ को नियन्त्रित किया जा सके तो विश्व में ऊर्जा की समस्या ही नहीं रहेगी। द्रव्य और प्रति द्रव्य के टकराव से प्राप्त ऊर्जा परम्परागत रासायनिक प्रक्रियाओं से प्राप्त ऊर्जा से करोड़ों गुना अधिक होगी।

यह सम्भावना अभी बहुत दूर है क्योंकि अभी प्रति कणों को सुरक्षित रखना सम्भव नहीं हो पाया है।

यदि ऐसा सम्भव हो गया तो इस पृथ्वी पर वैज्ञानिक एक अलग सूर्य तक का निर्माण करने में सफल हो जायेंगे क्योंकि हमारे सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य स्वयं एक विशाल नाभिकीय रिएक्टर है।

प्रति विश्व का अस्तित्व

प्रति द्रव्य के अध्ययन के फलस्वरूप यह तथ्य सामने आया है कि इस विश्व का प्रतिद्वन्द्वी प्रति विश्व भी है। अन्तरिक्ष से प्राप्त रेरियो तरंगों से ज्ञात हुआ है कि सुदूर अन्तरिक्ष में कहीं प्रति द्रव्य भारी मात्रा में उत्पन्न हो रहा है। इसलिये वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बाहरी अन्तरिक्ष में कहीं ऐसा विश्व है जो पूर्ण रूप से प्रति पदार्थ से बना हो। वैज्ञानिक आल्फवेन के अनुसार विश्व प्रारम्भ में पदार्थ की चतुर्थ अवस्था प्लाज्मा के रूप में था जिसमें द्रव्य व प्रति द्रव्य लिये हुये थे। पश्चात् वे एक दूसरे से पृथक हो गये। इनके बीच की दूरी विश्व की त्रिज्या के लगभग सौवें भाग के बराबर है।

वैज्ञानिकों को जानकारी मिली है कि 'साइग्लेस' और 'विर्गो' नीहारिकाओं के द्रव्य व प्रति द्रव्य के बीच प्रक्रिया हो रही है और परिणाम स्वरूप नये आकाशीय पिण्डों का निर्माण हो रहा है एवं असीम ऊर्जा का प्रादुर्भाव हो रहा है। हमारी नीहारिका में पदार्थ का ही बाहुल्य है। यह सम्भव है कि कुछ तारे प्रति-पदार्थ से बने हों। उन तारों में विद्यमान तत्वों के गुण हमारे तत्वों से भिन्न होंगे। जिस दिन हमारी गैलेक्सी (नीहारिका) और प्रति पदार्थ से निर्मित गैलेक्सी में संघर्ष होगा उस दिन प्रलय निश्चित है; पर यह अभी दूर की बात है। इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

वैज्ञानिक प्रति-विश्व की जानकारी प्राप्त करने में प्रयत्न शील हैं। यह सत्य है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रति द्रव्य से निर्मित विश्व का भी अस्तित्व है।

श्याम मनोहर व्यास
17 पंचवटी, उदयपुर

माँस-पेशियों के संकुचन में रासायनिक परिवर्तन

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा

आज हम मानव को खेलते, कूदते, नाचते व गाते देख कर प्रसन्न होते हैं। कहीं हम मजदूर व कुलियों को भारी वजन उठाते देखते हैं तो कहीं ड्राईवरों को तेज मोटर कारों को भगाते भी देखते हैं। इस तरह हम दैनिक जीवन में कई और कार्य करते हैं ये सभी कार्य, हमारे शरीर में उपस्थित, माँस पेशियों की सहायता से सम्पन्न होते हैं। यदि ये मांस-पेशियां न हो तो मानव और जीव विज्ञान की प्रयोग शाला में पडे कंकाल में, कोई ज्यादा फर्क नहीं रह जायेगा। यहां तक कि यदि हम हंसना अथवा किसी वजह से रोना चाहें तो भी उनके लिए हमें माँस पेशियों की जरूरत होगी। और तो और अत्याधिक दुःख में यदि हम अपनी आखों में आँसू भी लाना चाहें तो इसके लिए भी हमें इन्ही माँस पेशियों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

माँस-पेशी का संकुचन एक सरल क्रिया न होकर जटिल रासायनिक अभिक्रियाओं का समूह सा है। साधारणतया: जब भी हम कोई काम करना चाहें अथवा हमारे शरीर को किसी प्रकार का आघात लग जाये तो उसकी सूचना तुरंत ही मस्तिष्क में पहुँच जाती है और इसके थोड़ी देर बाद ही मस्तिष्क द्वारा भेजा गया समाचार माँस-पेशियों तक पहुँच जाता है तथा उनमें संकुचन प्रारम्भ हो जाता है। (यह समाचार लाने ले जाने का कार्य तन्त्रिकाओं द्वारा सम्पन्न होता है।

मानव की पेशियों का तन्तु जटिल कार्बनिक यौगिकों का बना होता है जिनमें एक्टीन व मायोसीन प्रमुख हैं। (एक माँस पेशी कई छोटे २ तन्तुओं की बनी होती है) इसके अलावा पेशियों में एडीनोसीन ट्राई व डाई फास्फेट (ATP एवं ADP) क्रीटीनीन फास्फेट, सोडियम, कैल्शियम व पोटेसियम इत्यादि के आयन भी होते है। जैसै ही कोई तन्त्रिका-पेशी के पास सूचना लेकर आती है तब तुरन्त ही ATP (एडीनोसीन ट्राई फास्फेट) एक्टीन व मायोसीन के सम्पर्क में आता है, जिसके कारण पेशी तन्तु संकुचित हो जाता है। अतः इस प्रकार सम्पूर्ण पेशी में संकुचन हो जाती है और हम अपना मनोवांच्छित कार्य करने में सफल हो जाते हैं।

जब भी पेशी संकुचित होती है तब एडीनोसीन ट्राई फास्फेट (ATP) एडीनोसीन डाई फास्फेट में बदल जाता है। इस अभिक्रिया के फलस्वरूप एक उच्च ऊर्जा वाला फास्फेट बन्ध मुक्त होता है जोकि पेशी के संकुचन में सहायता देता है। ADP (एडीनोसीन डाई फास्फेट) पुनः क्रीटीनिन फास्फेट से संयोग करके ATP (एडीनोसीन ट्राई फास्फेट) में बदल जाता है। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है और पेशी संकुचन करने लगती है। ATP के ADP व उच्च ऊर्जा वाले फास्फेट बंध, (जोकि—P संकेत से दर्शाया जाता है) में टूटने की क्रिया को फास्फोरीलिकरण कहते हैं।

पेशी संकुचन की क्रिया उपरोक्त चक्र द्वारा थोड़ी देर चलने के बाद रुक जाती है क्योंकि यहाँ जो ऊर्जा का स्त्रोत है वह क्रिटीनीन फास्फेट है और किसी भी पेशी में उसका संचय निश्चित सीमा तक ही होता है। अतः क्रिया को आगे चालू रखने के लिए नये इंधन की जरूरत होती है और वह इंधन है पेशीय

ग्लाईकोजन। ग्लाईकोजन प्रथम तो ग्लूकोज-1-फास्फेट, तदन्तर ग्लूकोज -6- फास्फेट और बाद में फ्रुक्टोज 6-फास्फेट और इसके बाद फ्रुक्टोज-2:6-डाई फास्फेट में बदल जाता है। इन क्रियाओं में विभिन्न एन्जाइम काम आते हैं जैसे फास्फोरीलेज, फास्फोग्लूकोम्यूटेज, जाईमोहेकसेज इत्यादि। द्वारा दर्शाया गया है :—

फ्रुक्टोज 1:6-डाई फास्फेट तदन्तर दो तीन कार्बन परमाणु, वाले यौगिकों में विखण्डित हो जाता है और यह कार्बनिक यौगिक विभिन्न प्रक्रियाओं में से होता हुआ अन्त में पाईरुविक अम्ल बनता है। में दर्शाया गया है। इन क्रियाओं के फलस्वरूप 4 ADP के अणु 4 ATP के अणुओं में बदल जाते हैं और इस प्रकार हमें पेशी के संकुचन में सहायता मिलती है। इस सम्पूर्ण अभिक्रिया का अन्तिम उत्पाद पाईरुविक अम्ल या तो (i) ऑक्सीकृत होकर ऊर्जा देता है जो पुनः क्रिटीनीन फास्फेट के रूप में पेशी में संचित हो जाती है या पाईरुविक अम्ल अवकृत होकर (ऑक्सीजन की कमी में) लेक्टिक अम्ल देता है।

$$CH_3COCOOH + 2H^+ \rightarrow CH_3CHOHCOOH$$
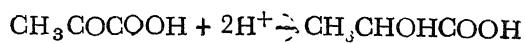
पाईरुविक अम्ल लेक्टिक अम्ल

इस लेक्टिक अम्ल का 80% भाग तो रक्त में घुल कर शरीर के विभिन्न अवयवों में पहुँच जाता है और बचा हुआ 20% ऑक्सीकृत होकर स्थानीय पेशी को ऊर्जा प्रदान करता है। रक्त में घुल कर लेक्टिक अम्ल या तो यकृत में पहुँचता है या हृदय में।

(i) यकृत में लेक्टिक अम्ल संयोजित होकर पुनः ग्लाईकोजन का निर्माण करता है। आवश्यकता होने पर यही ग्लाईकोजन-ग्लूकोज में बदल जाता है और रक्त के माध्यम से पेशी में पहुँच जाता है। यहाँ यह पुनः ग्लाईकोजन में बदल कर पेशियों में संचित हो जाता है। इस प्रकार पेशी का ग्लाईकोजन पेशी के पास ही आ जाता है; आगे यह क्रम चलता रहता है जैसा कि नीचे के चित्र में दर्शाया गया है।

(ii) हृदय में पहुँचा लेक्टिक अम्ल ऑक्सीकृत होकर हृदय को ही ऊर्जा देने के काम आता है।
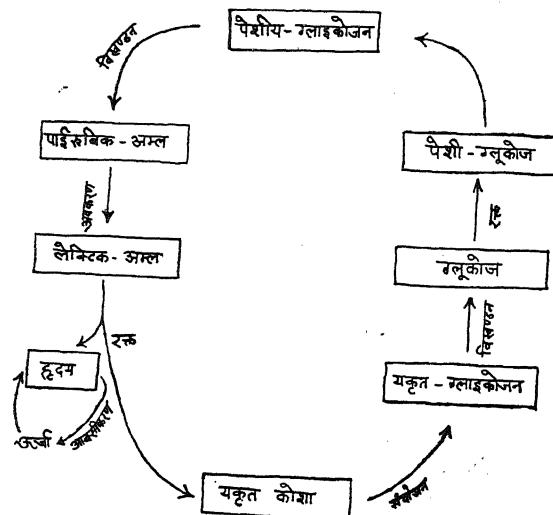
जब तन्त्रिका द्वारा पेशी संवेदित होती है तब उसकी झिल्ली की पारगम्यता बढ़ जाती है। जिसके फलस्वरूप सोडियम और केल्शियम आयन पेशी तन्तु के अन्दर घुस जाते हैं। वहाँ कैल्सियम आयन ATP को ADP में विखण्डित होने में सहायता देते हैं परन्तु कुछ ही क्षण के बाद ये आयन पास की संरचनाओं में अवशोषित

कर लिए जाते हैं। तब ये आयन केल्सियम परमाणु में बदल जाते हैं और इस क्रिया को और अधिक चलाने में असमर्थ रहते है।

$$ATP \xrightarrow{Ca^{2+}} ADP + (\text{ऊर्जा})$$

इस प्रकार सरल शब्दों में उपरोक्त क्रिया को चलाने में केल्सियम आयन उत्प्रेरक का करते हैं।

इन क्रियाओं के साथ पेशी का pH भी बदलता रहता है। साधारणतया: यह क्षारीय (pH7.3-7.5) होता है। ATP के टूटने से यह अम्लीय हो जाता है। थोड़ी देर बाद जब क्रिटीनीन फास्फेट से क्रिटीनीन बनता है (जोकि एक क्षारीय पदार्थ है) तो पेशी फिर से क्षारीय हो जाती है, परन्तु अन्तिम उत्पादों के कारण, (पाइरूबिक अम्ल व लेक्टिक अम्ल) जो कि अम्लीय है, पेशी का pH पूरी तरह से अम्लीय हो जाता है।

सुरेश चन्द्र आमेटा
प्राध्यापक रसायन विभाग
से० म० बि० रा० महाविद्यालय
नाथद्वारा (राज०)

एवं

महेश चन्द्र आमेटा
पंचम अर्द्धसत्र,
(आयुर्विज्ञान)
र० ना० टै० आयु०
महाविद्यालय,
उदयपुर (राज०)

[पृष्ठ ६ का शेषांश]

आय भी बढ़कर कुल 5603·50 रु० प्रति हैक्टर हो जाती है। इस प्रकार वैज्ञानिक विधि से खेती कर इस किसान ने राज्य की औसत पैदावार 400 से 555 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त कर अपने क्षेत्र में एक स्तर स्थापित किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बहु फसली खेती से प्रति इकाई क्षेत्र ऐवम् प्रति। ईकाई समय में उत्पाद एवम् आय बढ़ने के साथ-साथ श्रम का उपयुक्त उपयोग होता है तथा बेकारी कम होती हैं।

लक्ष्मी लाल सोमानी
विस्तार निदेशालय,
उदयपुर विश्वविद्यालय
उदयपुर।

सजीव-जगत में प्रकाश-उत्पादन का रहस्य

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं प्रेम शंकर त्रिपाठी

जुगनू को प्राय: प्रत्येक व्यक्ति ने रात्रि में जगमगाते हुये अवश्य देखा होगा और कईयाँ ने तो उसे पकड़ कर उसके प्रकाश-उत्पादन का आधार भी जानना चाहा होगा, परन्तु उसे वे एक आश्चर्यजनक जन्तु ही समझ पाये होंगे। यही नहीं, सजीव जगत में और भी कई प्राणी है, जो कि इस प्रकार प्रकाश-उत्पादन की स्वयं क्षमता रखते हैं। वनस्पति वर्ग भी इस क्रिया में अछूता नहीं है, कई पेड़-पौधे भी इस प्रकार प्रकाश प्रदान करते हैं। यह क्षमता बैक्टीरिया, कवक आदि कई वर्गों में होती है। प्राणी-जगत में इस प्रकार की क्रिया का निश्चित रूप से कोई विभाजन नहीं हो पाया है। इस प्रक्रिया को जीव संदीप्ति कहा जाता है। प्राय: एक ही वंश में किसी जाति में तो यह क्षमता पाई जाती है परन्तु आवश्यक नहीं कि उसी वंश की किसी दूसरी जाति में भी यह क्षमता हो। जल के कुछ प्राणी भी इस प्रकार की प्रकाश-ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं, उनमें से है घोंघा और दीप्ति कृमि।

इस प्रकाश-उत्पादन की क्रिया का अध्ययन करके इसे रासायनिक आधार पर वर्णित किया गया। ऐसा माना गया है कि यह प्रकाश, जीवों के अवयवों में होने वाले निरन्तर ऑक्सीकरण का परिणाम है। इस प्रक्रिया में कोई आश्रय अणु किसी विशिष्ट एन्ज़ाइम की उपस्थिति में ऑक्सीकृत होकर प्रकाश-उत्पादन करता है। जुगनू के प्रकाश अवयवों से एक विशेष पदार्थ प्राप्त किया गया, जो कि उच्च ताप पर भी विघटित नहीं हो पाता। इसे ल्यूसीफरिन नाम दिया गया। यह पदार्थ ल्यूसीफरेस नामक पात संवेदित एन्जाइम की उपस्थिति में प्रकाश उत्पन्न करता है। ये प्रक्रिया भी दो प्रकार की हो सकती है। प्रकाश उत्पन्न करने वाली क्रियायें, यदि कोशिका में ही हो तो उन्हें अन्तर कोशिकी संन्दिप्ती और यदि बाहर हो तो कोशिका बाह्य संदिप्ती कहते हैं। बेक्टेरिया तथा एक कोशिय प्राणियों में अधिकतर अंत: कोशिकी संदिप्ती होती है। सीलेन्ट्रेटस, क्टीनाँफोरेस, पोलीकीटीस, कीट वर्ग, कुटसीनस, आफीयुरेलिया, बेलेनोग्लोसस और पायोनोमस इत्यादि में कोशिका बाह्य संदिप्ती होती है। कुछ प्राणियों में यह प्रक्रिया सहजीवी संदीप्तिशील जीवाणुओं के कारण होती है।

जीव संदीप्ती के भौतिक गुण—प्राणियों में, प्रकाश उत्पादक अवयवों से निकलने वाली प्रकाश की किरणें इतनी तीव्र नहीं होती कि उन्हें मोमबत्ती से प्राप्त होने वाली प्रकाश किरणों की तीव्रता से नापा जा सके। अत: प्राणी कोशिका से निकलने वाली प्रकाश की किरणों को लेम्बर्ट तथा मिली लेम्बर्ट में नापा जाता है।

विभिन्न प्राणियों से उत्पन्न प्रकाश का रंग भी भिन्न होता है। यही नहीं एक ही प्राणी के विभिन्न अवयवों से उत्पन्न प्रकाश का रंग भी अलग-अलग होता है। ऐसा प्राय: या तो प्रकाश अवयवों के ऊपर ढ़की झिल्ली अथवा इन अवयवों में होने वाली रासायनिक क्रिया ही रंगीन प्रकाशीय किरणों के जन्म देने के कारण होती है। पीली व नीली प्रकाश किरणों के जन्मदाता निम्न वर्ग के प्राणी तथा सफेद, लाल व हरी किरणों को जन्म देने वाले प्राणी उच्च वर्ग के होते हैं।

विभिन्न प्राणियों से प्राप्त प्रकाश के स्पेक्ट्रम विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इन प्रकाश किरणों की तरंग

लम्बाई 670 से 415 Mμ तक होती है, जो कि मानव नेत्रों से स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के प्रकाश से न तो परा-बैंगनी और न ही अवरक्त किरणें निकलती हैं। अतः इस प्रकार के प्रकाश को शीत प्रकाश की संज्ञा दी गई है।

जीव संदीप्ति को रासायनिक अभिक्रियायें— कोशिका के संदीप्ति तन्त्र तथा उर्जाक्षेपी एन्जाईमीय अभिक्रियाओं में गहरा सम्बंध है। विभिन्न प्राणियों के कोशिकाओं अथवा उत्तकों के निष्कर्षण से जो संदीप्ति पदार्थ प्राप्त किये गये हैं, उन्हें ल्यूसिफेरिन नाम दिया गया है जो ल्यूसिफिरेस नामक एन्जाइम की उपस्थिति में ऑक्सीकृत होकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ल्यूसिफेरिन कोई एक पदार्थ नहीं है, अपितु एक ही गुण वाले पदार्थों, जो कि अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त होते हैं, का समूह है। इसी प्रकार ल्यूसीफ्रिरेस भी विभिन्न एन्जाईमों का समूह है। प्रत्येक ल्यूसिफेरिन रासायनिक गुणों में दूसरे से भिन्न होता है परन्तु यह वायुमण्डल की ऑक्सीजन और एन्जाईम ल्यूसिफिरेस की उपस्थिति में ऑक्सीकृत होकर प्रकाश उत्पन्न करता है। ल्यूसिफिरेस एन्जाईम यूरेथेन से प्रभावित होता है परंतु सायनाइड़ व धातु आयनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

जीवाणुओं में होने वाली संदीप्ति अभिक्रियाये इस प्रकार हैं। जीवाणु की कोशाओं में उपस्थित C_6 से C_{16} तक के ऐल्डिहाईड फ्लेविन मोनों न्यूक्लिओटाईड के साथ जटिल बनाकर प्रकाश उत्पादक पदार्थ ल्यूसिफेरिन बनाते हैं। यह जटिल पुनः ल्यूसिफिरेस एन्जाईम की उपस्थिति में ऑक्सीकृत होकर प्रकाश देता है।

$$FMNH_2 + HC_3 \cdots CHO \rightarrow FMNH_2 - CH_3 \cdots CHO \quad (i)$$

$$FMNH_2 - CH_3 \cdots CHO + \tfrac{1}{2}O_2 \xrightarrow{\text{ल्यूसिफिरेस}} FMN - CH_3 \cdots CHO + H_2O \quad (ii)$$

$$FMN - CH_3 \cdots CHO \rightarrow FMN + CH_3 \cdots CHO + h\nu \text{ (प्रकाश)} \quad (iii)$$

$$FMN + NADH + H^+ \rightarrow FMNH_2 + NAD \quad (vi)$$
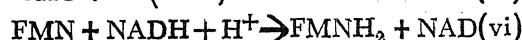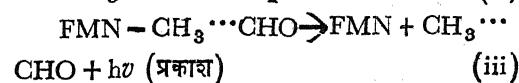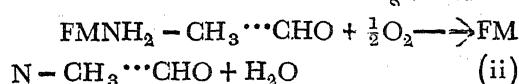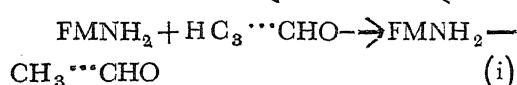
इस प्रकार ऑक्सीकृत होकर ल्यूसिफेरिन का अणु उत्तेजित हो जाता है तथा तुरन्त ही ऑक्सीकृत FMN, एल्डिहाईड व प्रकाश में विच्छेदित हो जाता है। ऑक्सीकृत FMN-पुनः NADH व हाईड्रोजन आयन की सहायता से अवकृत होकर $FMNH_2$ में बदल जाता है। इस प्रकार यह अभिक्रिया चलती रहती है। जूगनू के ल्यूसिफेरिन का अणुभार 308 है। इसका मुलानुपाती सूत्र भी इस प्रकार है $C_{13}H_{12}N_2S_2O_3$। इसका ल्यूसिफेरिन सिर्फ ATP तथा कुछ द्विसंयोजी जैसे Mg^{++}, Mn^{++}, Co^{++} की उपस्थिति में ही प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जूगनू में होने वाली संदीप्ति अभिक्रियायें इस प्रकार है।

$$LH_2 \text{ (ल्यूसिफेरिन)} + ATP \rightarrow LH_2 - AMP + POP \quad \text{एडिनाईल ल्यूसिफोरिन}$$

$$LH_2 - AMP + \tfrac{1}{2}O_2 \xrightarrow{\text{ल्यूसिफिरेस}} L - AMP + H_2O$$

$$L - AMP \longrightarrow L + AMP + h\nu \text{ (प्रकाश)}$$
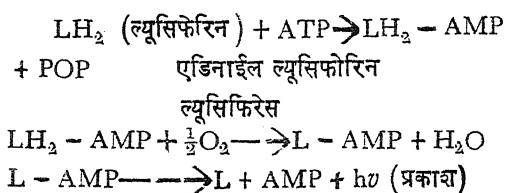
ल्यूसिफेरिन ATP से संयोग करके एडिनाईल ल्यूसिफेरिन बनाता है जो कि ऑक्सीकृत होकर एडिनाईलांस्मी, पानी व अम्ल में परिवर्तित हो जाता है और साथ ही साथ प्रकाश भी देता है।

उपरोक्त अभिक्रियाओं के विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ है कि ल्यूसिफेरिन का एक अणु ऑक्सीकृत होकर प्रकाश का एक क्वान्टम देता है।

क्रियात्मक सार्थकता—प्राणियों में संदीप्ति अभिक्रियायें क्यों होती हैं, इस बारे में अभी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि ये क्रियायें इनके जीवन के लिए आवश्यक है। जीव संदीप्ति के अनुमानतः प्रमुख कार्य निम्न है :—

१—भोजन को आकर्षित करना।
२—दूसरे प्राणियों से रक्षा और
३—प्रजनन के लिए विपरीत सेक्स को संकेत देना।

—:०००:—

"ज्ञानेन्द्र" नवम्बर 1972 से साभार

प्रदूषण

यशवन्त कोठारी

जून 72 में स्टाकहोम में राष्ट्र संघ की ओर से प्रदूषण की रोकथाम के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सम्मेलन बुलाया गया। आयोजकों का कहना था, "हमारे पास केवल एक पृथ्वी है। हमें इसकी रक्षा करनी होगी।" विश्व के गिनेचुने विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञों ने इसमें भाग लिया। भारत से बम्बई की हाफकिन संस्था के डा० पुरुषोत्तम देवरस को बुलाया गया। भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी ने इस सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा कि विश्व के प्रगति शील राष्ट्रों की प्रगति पर इसका कोई असर नहीं पड़ना चाहिये। उन्नत राष्ट्रों द्वारा प्रकृति की सम्पदा का अन्धाधुन्ध प्रयोग के कारण यह संकट उत्पन्न हुआ है। आज प्रदूषण की समस्या समस्त विश्व के बुद्धिजीवियों के लिये चिन्ता का विषय बन चुकी हैं। बढ़ती हुई आबादी, बढ़ते हुए उद्योग धन्धें, तेजी से बढ़ता हुआ शोर इस रोग की जड़ें हैं। प्रदूषण का अनुमान आप इससे ही लगाये कि राजस्थान के खेतड़ी गाँव के लोग इस वक्त शुद्ध जल और शुद्ध हवा का उपयोग कर रहे हैं, लेकिन, जिस रोज खेतड़ी ताम्बा संयन्त्र कार्य करना शुरू कर देगा, वहाँ के निवासियों को शुद्ध जल व शुद्ध हवा मिलना बन्द हो जायेगी। केवल उद्योग धन्धे ही प्रतिवर्ष 800 टन हानिकारक गैसें तथा धुआँ हमारे वायुमण्डल को दूषित करने के लिए छोड़ रहे हैं। यही नहीं लाखों टन बेकार रासायनिक पदार्थ नदियों में बहाये जा रहे हैं। अनुसंधानों से पता चला है कि इनमें भयंकर जहर जैसे संखिया (1-4 टन), एनटीमनी (60-1000 टन), कोबालट तथा करीब 80 हजार टन निकल भी शामिल हैं। कोयले तथा अन्य खनिज पदार्थों के जलाने के कारण पिछले 100 सालों में 2, 40,000 लाख टन प्राणवायु का प्रयोग हुआ और करीब 360000 लाख टन कार्बन डाइ आक्साइड वायुमण्डल में मिली।

एक कार के 1 हजार मील चलाने का अर्थ है एक व्यक्ति की पूरे साल की प्राणवायु का प्रयोग। आज अमेरीका तथा अन्य देशों में उत्पन्न खतरों के प्रति सरकारें सावधान हो गई हैं। इस खतरे को टालने के लिए केलिफोर्निया राज्य की सीनेट ने एक प्रस्ताव पास करके यह निर्णय लिया कि कार तथा अन्य समान वाहनों का प्रयोग 1975 तक बन्द कर देना चाहिये।

दूषित हवा-पानी

जैसा कि लेख के शुरू में कहा चुका है आज का वायुमण्डल व पानी दोनों ही दिन व दिन दूषित होते जा रहे हैं। हवा के दूषित होने के दो कारण हैं पहला फैक्ट्रियों से निकला धुआँ तथा दूसरा वाहनों से निकला धुआँ जब भी कभी किसी जगह धुयें का बाहुल्य हो जाता है तथा हवा चलनी बंद हो जाती है या धीमे चलती है तो वहाँ का वातावरण दूषित हो जाता है और उस जगह रहने वाले लोगों का दम घुटता है। आज जापान तथा अमेरिका के औद्योगिक नगर इन्हीं खतरों से परेशान हैं हृदय तथा फेफड़ों के मरीज तो कई बार स्वर्ग सिधार जाते हैं, इसके अलावा वनस्पति तथा प्राणी जगत भी इस दूषित वायु में सांस लेने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। सामुद्रिक जीव जन्तु भी इसी खतरे से परेशान हैं। प्रति वर्ष पाँच लाख टन तेल विभिन्न जगहों से समुद्र में गिरता है। जिसके फलस्वरूप कई सामुद्रिक

जीव समाप्त हो गये तथा अन्य कई को सांस लेने में दिक्कत होती है, इसी कारण से कई ऐसे जीव और पौधे जो प्राणवायु को हवा में छोड़ते हैं खतरे में पड़ गये हैं।

हानिकारक गैस

वायुमण्डल में छोड़े जाने वाले धुयें में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं ठोस कण तथा गैसें। ठोस कणों में रेत, कार्बन, लवण तथा कुछ सीसा हैं, यह सभी चीजें पेट्रोल के जलने तथा फैक्ट्री की चिमनी में से निकलने वाले धुओं में होती है। हानिकारक गैसों में सल्फरडाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड मुख्य हैं दिल्ली के वल्लभ भाई चेस्ट संस्थान में किये गये प्रयोगों से पता चला है कि ठोस कणों से ज्यादा खतरा है, यह कण फेफड़ों की विभिन्न बीमारियाँ पैदा कर देती है।

गाँवों में जलाये जा रहे कण्डों से भी विभिन्न बीमारियाँ पैदा होती हैं। हमारे गाँवों की महिलाओं में हाने वाली बीमारी "क्रकैनिक ब्रोकिसस" का यही कारण है।

सिगरेटों के धुएँ से फेफड़ों का केंसर हो जाने की संभावना रहती है, इसके अलावा दिनों दिन बढ़ती रेडियो धार्मिक धूल के हानिकारक प्रभावों की तो अलग ही समस्या है।

खेती में

खेती के विभिन्न कार्यों में प्रयोग किये जा रहे रासायनिक प्रदार्थ भी हानिकारक है, आज जितनी भी दवायें कीड़े को मारने के लिए प्रयुक्त की जा रही हैं, हो सकता है यह दवायें आने वाले समय में जीन (आनुवाशिकी की इकाई) पर हानिकारक प्रभाव डाले। इसके अलावा मानव अपनी सुख सुविधाओं के लिए जंगल काट रहा है। केवल भारत में पिछले बीस साल में लाखों ऐकड़ जमीन का सफाया कर दिया गया यही कारण है कि राजस्थान का रेगिस्तान दिल्ली की ओर बढ़ रहा है।

शोर

आज देश-विदेश में हर जगह शोर बढ़ रहा है शोर के कारण उत्पन्न खतरों से पश्चिमी राष्ट्र भयभीत है पिछले दिनों किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि ज्यादा तेज आवाज से कान के पर्दे फट सकते हैं, मानसिक आघात लग सकते हैं तथा गर्भवती महिलाओं को अन्य प्रकार से नुकसान पहुँच सकता है।

शोर होने के कारण कोई अज्ञात नहीं है, लेकिन बीसवी सदी में जब जीवन अत्यन्त व्यस्त तथा तेज हो चुका है यह कारण दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं तेज ध्वनि विस्तारकों का प्रयोग, रेड़ियो व ट्राजिस्टरों की बढ़ती हुई माँग तथा सड़क पर चलने वाले विभिन्न वाहनों की कर्ण-कटु आवाज ये सभी मिल कर हमारे लिए एक भयंकर खतरे का निर्माण कर रहे हैं। जेट विमान तथा ध्वनि से तेज चलने वाले अन्य विमानों से अत्यधिक शोर उत्पन्न होता है जो न केवल हानिकारक है वरन प्राण लेवा भी साबित हो सकता है। इसी प्रकार उन जगहों पर काम करने वाले मनुष्य कुछ समय बाद बहरे हो सकते है।

इनसे बचने के केवल दो ही उपाय हैं या तो कानून से तेज शोर वाले वाहनों का प्रयोग बन्द कर दिया जाय या फिर कानों में कुछ ऐसे यन्त्रों का प्रयोग किया जाय जो कानों की रक्षा कर सके।

इन सब से अलग तथा महत्व पूर्ण खतरा है बढ़ती हुई आवादी का जो वातावरण को दूषित करती है, खाने पीने की वस्तुओं की कमी उत्पन्न करती है और सबसे ऊपर तकनीकी विज्ञान भी उनकी माँगों को पूरा करने में असमर्थ है। सन् 2000 में दुनिया की आबादी अभी से दुगुनी हो जायेगी और उस वक्त तक का तकनीकी ज्ञान उनको केवल तीस वर्ष तक ही जीवित रख सकेगा। आज भारत में भी यह समस्या सिर उठाये खड़ी है बढ़ती हुई आबादी हिंसात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है।

अन्य देशों की भाँति भारत प्रदूषण के खतरों के

शेष पृष्ठ 18 पर

ये अस्त्र-शस्त्र—जिनकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते

डा० अरुण कुमार सक्सेना

वियतनाम में जो युद्ध हो रहा था, उसमें बड़ी-बड़ी शक्तियाँ विभिन्न प्रकार के नवीन अस्त्रों का परीक्षण कर रही थीं और वियतनामी जनता को विशेष प्रकार से बलि का बकरा बनाया जा रहा था। स्वतंत्रता के नाम पर इस देश की आधी से अधिक जनता लगभग समाप्त-सी हो गई है। भविष्य में करोड़ों निरीह जनता का बलिदान तथा त्याग के फलस्वरूप जो भी अच्छे फल प्राप्त होंगे उन्हें लगभग सौ वर्ष तक कुछ बड़े-बड़े नेता तथा उनके परिवार भोग करेंगे जनता जिस स्थान पर थी उसी स्थान पर रहेगी। ऐसा ही अन्य एशिया तथा अफ्रीका के देशों में हो रहा है।

युद्ध की विभीषिकाओं का वर्णन करना तो समय को नष्ट करना होगा, क्योंकि प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध की यादों को भुलाया नहीं जा सकता है। बमों के दिल दहलाने वाले धड़ाके मीलों दूर पर स्थित मकानों की खिड़कियों दरवाजों तथा शीशों को चटका देते थे, किन्तु आज के यह सर्वथा निशब्द अस्त्र ऐसा प्रलयकारी विनाश कर देते हैं कि जिनका आभास कुछ समय के पश्चात् होता है। ये अस्त्र जीवाणु विज्ञान तथा रसायन से अपना विशेष सम्बन्ध रखते हैं। ये अस्त्र वायुयान द्वारा छितरा कर राकेट की तरह फेककर, गोलो की तरह छोड़ कर तथा तटों पर सुरंगों की तरह लगाकर प्रयोग में लाये जाते हैं। इनसे विभिन्न प्रकार के रोग फैलते हैं तथा शरीर पर विचित्र प्रभाव पड़ते हैं। इन अस्त्रों की मार अचूक होती हैं। जीवाणु-विज्ञान से सम्बन्धित कुछ भयंकर रोगों का वर्णन किया जा रहा है जो कि इन अस्त्रों के द्वारा फैलाये जाते हैं।

न्यूमनिक प्लेग—

पास्टेयुरिला पस्टिस नामक जीवाणु, जो कि सभी हानिकारक जीवाणुओं में सबसे हानिकारक है, को इन अस्त्रों में प्रयोग किया गया है। इसने छठी शताब्दी में अपनी भयंकरता 'जस्टियन प्लेग' फैला कर दिखाई थी और मध्यकाल में इसे ही यूरोप में 'काली मौत' के नाम से पुकारा जाता था। इससे फैला रोग अपने अपने रोगियों को लगभग सौ प्रतिशत नष्ट करने की क्षमता रखता है। यह रोग विद्युत गति से मनुष्यों को अपनी चपेट में लाता है।

पुलमोनरी एन्थेरेक्स—

इस रोग को अलसोर्टर के नाम से भी पुकारा जाता है। यह विशेषकर फेफड़ों पर अपना दूषित प्रभाव डालता है और जब ज्वर तीव्र हो जाता है, तब इस रोग का पता चलता है। इस रोग पर किसी भी ऐन्टिबायोटिक्स का वश नहीं चलता है। इससे पीड़त रोगी लगभग चौबीस घण्टों में समाप्त हो जाता है।

थायपस—

यह रोग रिकटाशिया नामक जीवाणुओं के द्वारा फैलता है इसमें भी रोगी तीव्र ज्वर से पीड़ित रहता है। इसी के रोग ने, 1488 ई० में स्पेन के० 'ग्रानादा के घेरे' में लगभग 17,000 सिपाहियों का, 1812 ई० में नेपोलियन की सेना तथा द्वितीय महायुद्ध के दौरान हिटलर के बंदियों का बड़ी ही शीघ्रता से काम तमाम किया था।

बोतुलिस्म

यह विशेष प्रकार का जीव विष है, जिसे बोतुलिस्म जीवविष के नाम से पुकारते हैं। यह जीव विष क्लोस्ट-रिडयम-बोतलिनियम नामक जीवाणुओं द्वारा बनाया गया है। यह संसार के सबसे विषाक्त पदार्थ पोटेशियम साइनाइड से भी 300,0000,000 गुना विषाक्त है। कहा जाता है कि फ्रांस जैसे देश की समस्त जनसंख्या को इसके केवल एक औंस के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। इसका प्रभाव बिलकुल तंत्रिका गैसों के समान मनुष्य पर होता है।

इसी प्रकार के अनेक विनाशकारी रासायनिक पदार्थ भी है, जिनका भी बिना किसी हिचकिचाहट से युद्ध भूमि में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

तंत्रिका गैसे—

इन्हें विशेष कर जी ए, जी वी, जी डी तथा वी एक्स नामों से पुकारा जाता है। इनमें वी एक्स तो सबसे हानिकारक गैस है। ये सब गैसें चोलोनिस्ट्रेएस नामक एक एन्जाइम, जो कि तंत्रिका तंत्र के कार्य-कलापों में अत्यन्त आवश्यक है, का बनाना एकदम बन्द कर देती है। इसका प्रभाव यह होता है कि शरीर में लकवे जैसे स्थिति उत्पन्न हो जाती है और रोगी लगभग तीस सेकेंड में समाप्त हो जाता है। वी एक्स गैस विषैली मस्टर्ड गैस से भी ७५ गुना विषैली है। इस मस्टर्ड गैस का प्रयोग सर्व प्रथम प्रथम विश्व युद्ध में हुआ था। यदि वी एक्स की एक बूंद भी शरीर के किसी भी भाग पर पड़ जाये तो मृत्यु अवश्यंभावी है। बताया जाता है कि अमरीका के ऊठाह स्थित सेना केडुगवे प्रोविंग ग्राउन्ड में 6,400 भेड़े चर रही थीं, कि एका-एक इसके एक हल्के से झोंके ने उन सबको समाप्त कर दिया।

नवीन प्रकार के और भी हानिकारक उद-स्फोटक—

कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं, जो कि मानव शरीर पर बड़ा ही विचित्र प्रभाव डालते हैं। इनके प्रभाव के फलस्वरूप शरीर छालों से भर जाता है ऐसे पदार्थों को उदस्फोटक पदार्थ नाम से पुकारा जाता है। आजकल की नवीन नाइट्रोजन मस्टर्ड पुरानी मस्टर्ड गैस से कहीं हानिकारक है जो भी मनुष्य आँखों तथा फेफड़ों पर छाले पड़ने से बच निकलता है, वह भी कुछ मास के पश्चात् हड्डी की मज्जा में विशेष गड़बड़ी के कारण स्वयं समाप्त हो जाता है।

इस सब के अतिरिक्त अमरीका सेना के पास वी जेड नामक एक और गैस है जो सर दर्द तथा कै पैदा कर देती है एल एस डी गैस का कुप्रभाव भी बड़ा ही विचित्र-सा है। यह मनुष्यों को पागल कर देती है।

नवीन अस्त्र गैस सी एस, सी एन तथा एडेमासाइट आदि भी हल्की गैसे हैं जो कि दंगों आदि में प्रयोग में लाई जाती है। इन्हीं को प्रचुरता से वियतनाम में सुरंगों खाईयों में छिपे वियतकांग सैनिकों को निकालने के लिये प्रयोग में लाया जाता था। नेपाम आदि स्वत: आग उत्पन्न करके भयंकर पदार्थों की कोई कमी नहीं है। आजकल में पदार्थ भी लगभग पुराने से हो चुके हैं। और इनका स्थान और भी भयंकर पदार्थों ने ले लिया है जिनकी विनाशकारी क्षमता का अभी तक किसी को भी पता नहीं है।

इन सभी पदार्थों पर शोध कार्य अमरीका में फिडरिक के पास फोर्टफिडरिक प्रयोगशाला में चल रहा है। इसी स्थान पर अमरीका का सबसे बड़ा जानवरों का बाड़ा भी है। इसी प्रकार का कार्य जर्मनी के वोकम शहर में भी चल रहा है। सोवियत रूस के वैज्ञानिक भी इस दिशा में भी बड़ा महत्व पूर्ण कार्य कर रहे हैं।

अमरीका नवीनतम अस्त्रों का परीक्षण सर्व प्रथम डुगवे में करता है, जो कि साल्ट लेक सिटी के पास स्थित है। अन्त में ये सब नवीन अस्त्र अरकान्साज के पाइन ब्लफ शस्त्रागार में एकत्रित किये जाते हैं। यह शस्त्रागार लगभग 278 स्टील के कमरों से मिला कर बना है ये पूरा का पूरा शस्त्रागार पृथ्वी के नीचे लगभग चार-पाँच फिट गहराई पर है।

यह बात सुन कर आश्चर्य होगा, कि ये सब अस्त्र अब पुराने पड़ चुके हैं और अमरीका इन्हें कहीं नष्ट कर देना चाहता है अर्थात् इन से भी भयंकर अस्त्रों का निर्माण हो रहा है, जिनका विनाशकारी प्रभाव अत्यन्त पेचीदा हो सकता है।

यह बड़ी विचित्र सी बात है कि मनुष्य इतना अधिक ऊँचा उठ गया है कि जिसका अनुमान सहज नहीं लगाया जा सकता है किन्तु आश्चर्य है कि उसने अपनी पशुता पर विजय क्यों नहीं प्राप्त की है ?

डा० अरुण कुमार सक्सेना
१५, कटरा रोड,
इलाहाबाद--२
यू० पी०

[पृष्ठ 15 का शेषांश]

प्रति सावधान है नागपुर स्थित केन्द्रीय जन स्वास्थय इन्जीनियरी अनुसंधान संस्थान तथा औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र लखनऊ इस दिशा में कार्य कर रहें है देश के आठ बड़े औद्योगिक नगरों में वायु दूषण पर अनुसंधान चल रहें है। इसके आधार पर वायु दूषण को रोकने के उपायम चल रहे है। बढ़ते हुये उद्योगों के साथ ही साथ नये व्यावसायिक रोगों का भी विकास हुआ है। अनुसंधानों से पता चला है कि कीटनाशी पदार्थ विशेषकर डी० डी० टी० मनुष्य के लिये भी हानिकारक है और इसका उपयोग कम किया जाना चाहिये। इन अनुसंधानों के साथ ही साथ सरकार को इस ओर कठोर कदम उठाने को आवश्यकता है, नये लाइसेन्स उन्हीं उद्योगों को दिये जाने चाहिये जिनमें प्रदूषण का खतरा कम से कम हो। इसके अलावा सरकार को उद्योगों को दूर-दूर लगाने की कोशिश करनी चाहिये, जिससे एक ही जगह पर हानिकारक गैसों का बाहुल्य न होने पाये।

यशवंत कोठारी
मालवीय आयुर्वेद महाविद्यालय
उदयपुर (राज०)

विज्ञान वार्ता

मनुष्य चन्द्रमा तक के उडुयन-पथ से भली-भाँति परिचित

अपोलो 17 ने पृथ्वी से चन्द्रमा तक की अपनी उड़ान लगभग निर्विघ्न रूप में पूरी करके यह दिखला दिया है कि ब्रह्माण्ड में पृथ्वी के इस निकटतम पड़ोसी तक का पथ मनुष्य के लिए अब भली-भाँति जाना-पहचाना मार्ग बन चुका है। प्रथम चार दिनों की उड़ान से यह स्पष्ट हो चुका है कि अमेरिका में विकसित विशाल और उत्कृष्ट अन्तरिक्ष-सुविधाओं की सहायता से सुप्रशिक्षित अन्तरिक्षयात्री चन्द्रमा तक सर्वथा निर्विघ्न यात्रा कर सकते हैं।

इन प्रारम्भिक बाधाओं के बावजूद, उड़ान-अधिकारियों ने पृथ्वी से चन्द्रमा तक की अपोलो-17 की उड़ान को एक सुपरिचित और योजनानुरूप उड़ान कहा। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रमा तक की पिछली 8 उड़ानों के दौरान मनुष्य द्वारा प्राप्त अनुभवों के फलस्वरूप अब चन्द्रमा तक उडुयन-पथ एक सुपरिचित मार्ग बन चुका है।

प्रक्षेपण-प्रणाली में आंशिक गड़बड़ी के फलस्वरूप, प्रक्षेपण में 160 मिनट बिलम्ब हो गया। लेकिन जिस क्षण अपोलो-17 कैम्प कनेडी में अपने प्रक्षेपण मंच से ऊपर उठा, उस क्षण से लेकर उसकी प्रथम कुछ चन्द्र-परिक्रमाओं तक सारी उड़ान प्रायः निर्विघ्न पूरी हुई और एक भी उल्लेखनीय समस्या सामने नहीं आयी थी।

अन्तरिक्षयान के वेग में जानबूझ कर परिवर्तन करके लगभग उस समय को पूरा कर लिया गया, जो प्रक्षेपण में विलम्ब होने से खो दिया गया था। इस प्रकार यह चन्द्रमा के निकट पूर्वायोजित समय से केवल 2 मिनट देर से ही पहुँचा।

अपोलो-17 की चालक टोली के दो अन्तरिक्षयात्री-श्मिट और इवांस ने पहली बार अन्तरिक्षयात्रा की। वे चन्द्रमा के पृष्ठ भाग का दर्शन करने वाले क्रमशः 23 वें और 24 वें व्यक्ति थे। चन्द्रमा का यह पृष्ठ भाग पृथ्वी से कभी भी दिखलायी नहीं पड़ता।

अपोलो-17 की चन्द्रमा तक की उड़ान इतने सुगम रूप में सम्पन्न हुई कि उड़ान निदेशक नील बी० हचिसन ने सम्वाददाताओं को बताया कि उनके पास सम्वाद के रूप में देने को कुछ भी नहीं है और इसलिए वह अपने साथ कोई लेख आदि नहीं ला सके। उड़ान-निदेशक के रूप में शनिवार को उनकी 8 घण्टे की पाली के दौरान उन्हें सबसे महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिली कि शनिवार को सबेरे अन्तरिक्षयात्री गहरी नींद सो सके थे और यह नींद पूर्व आयोजित कालक्रम से 1 घण्टे अधिक थी।

अन्तरिक्षयात्री इवांस अपना इयरफोन भूल से चालू किये बगैर ही सो गये थे। इसलिए जगाने के लिए उड़ान नियन्त्रण केन्द्र से दिये गये निर्देश को वह नहीं सुन सके थे। सरनन और श्मिट वगैर इयरफोन लगाये सोये थे। अन्तरिक्षयात्री एक घण्टे देर तक सोने के बावजूद अपने लिए निर्धारित सारे कार्य समय से करने में सफल रहे।

रविवार को कमाण्डर सरनन ने अन्तरिक्षयात्रियों के मुख्य चिकित्सक, डॉ० रायस हाकिंस, से एक निजी संचार-श्रृंखला के माध्यम से सलाह-मशविरा किया था। पीने वाले पानी में बुलबुले उठ जाने से उनके पेट में कुछ पीड़ा होने लगी थी, जिसके बारे में उन्होंने चिकित्सक से बातचीत की थी। इस प्रकार की परेशानियाँ पिछली उड़ानों के अन्तरिक्षयात्रियों को भी उठानी पड़ी थीं। अतः सरनन की दशा चिन्ता का कोई विशेष कारण नहीं थी।

किन्तु उड़ान के प्रारम्भिक चरण ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि अमेरिका ने पृथ्वी से चन्द्रमा तक की अन्तरिक्षयात्रा की प्रविधियों में प्रवीणता प्राप्त कर ली है। अब वह अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के नये युग में प्रवेश करने के लिए पूरी तरह तत्पर है, जब वर्तमान स्तर से आगे के विकसित अन्तरिक्ष-अनुसन्धान सम्पन्न हो सकेंगे।

विज्ञान समाचार

डा० आत्मा राम पुरस्कृत

विज्ञान परिषद के आजीवन सदस्य डा० आत्मा राम को 9 जनवरी, 1973 को देहली में 'मैन आफ द,इयर' का पुरस्कार प्रदान किया गया। डा० आत्मा राम सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इन्सटीट्यूट के निदेशक थे और बाद में सी० एस० आइ आर० के महानिदेशक बने थे जिस पद से उन्होंने कुछ समय पूर्व ही अवकाश प्राप्त किया था। 'विज्ञान' की ओर से बधाई।

यूरिया के छिड़काव से धान की भारी पैदावार

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली के वैज्ञानिकों के अनुसार धान की फसल में कल्ले फूटने एवं फसल फूलने की अवस्था में यूरिया का पत्तियों पर छिड़काव करने से इसे एक बार खड़ी फसल में मिट्टी में, भुरकने की अपेक्षा ज्यादा पैदावार मिली।

धान की फसल में 100 किलो नाइट्रोजन तीन बार में डाली गयी। पहली बार 50 किलो नाइट्रोजन पौद रोपने के समय मिट्टी में डाली। दूसरी बार 25 किलो फसल में कल्ले फूटते समय और शेष 25 किलो फसल फूलने की अवस्था में पत्तियों पर छिड़का गया जिससे धान की पैदावार 62 क्विंटल प्रति हेक्टर मिली। इसके। विपरीत एक बार में ही 100 किलो नाइट्रोजन मिट्टी में डालने से पैदावार 59·42 क्विंटल प्रति हेक्टर मिली।

यूरिया छिड़कने के लिये 20 प्रतिशत यूरिया के घोल का हल्के दबाव वाले छिड़काव यंत्र से छिड़काव किया गया।

मूँगफली को छीलने का नया यंत्र

लुधियाना स्थिति पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के कृषि अभियंताओं के अनुसार बीज के लिये हाथ से मूंगफली छीलने की अपेक्षा पैर से चलाने वाले यंत्र से मूंगफली छीलना आसान और सस्ता रहता है। इस यंत्र से मूंगफली छीलने में दाना दस प्रतिशत से भी कम टूटता है।

इस यंत्र से आठ घंटों में दो आदमी आसानी से लगभग 150 किलो मूँगफली छील सकते हैं जब कि हाथ से आमतौर पर 16 से 20 किलो मूँगफली ही छीलना सम्भव होता है।

एकसार और अच्छी तरह से सूखी हुई मूँगफली छीलने में यह यंत्र सबसे अच्छा रहता है। छीलने से पहले मूँगफलियों को पानी से गीला करने से दाना कम टूटता है।

कार्बन ब्लैक बनाने की नई विधि

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहाट में वाष्पशील बिटर्नयुक्त कोयले से कार्बन ब्लैक के उत्पादन प्रक्रम का विकास कर लिया है।

अपूर्ण दहन की अवस्था में हाइड्रोकार्बन के ज्वलन से प्राप्त सूक्ष्म कार्बन कणों को व्यवसाय में कार्बन ब्लैक कहते हैं। रबड़ और चर्मवस्त्र (लेदर क्लाथ) उद्योगों में इसका बड़ी मात्रा में उपयोग किया जाता है। निर्माणावस्था में इसके मिश्रण से टायर, जूते की एड़ी, यांत्रिक सामग्री इत्यादि में इतनी कठोरता आ जाती है कि अधिक घर्षण के उपरान्त भी ये कम घिसते हैं। मुद्रण की अधिकांश काली स्याहियों के निर्माण में इसी का उपयोग होता है। काले प्लास्टिक,

पेंट, लैकर्स, इनमल आदि के पिगिमेण्ट भी यही कार्बन ब्लैक है।

देश में इसकी भारी खपत का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि कलकत्ता, बम्बई की दो फर्मों के द्वारा उत्पादन करने के उपरान्त भी इसकी इतनी मांग है कि केवल पिछले तीन वर्षों में हमें इसके आयात पर 2·5 करोड़ रुपये से भी अधिक की विदेशी मुद्रा व्यय करनी पड़ती है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि नये कारखाने खोल जायें। भारत सरकार ने इस उद्देश्य से तीन परियोजनाओं की स्वीकृति दे दी है। कच्चे माल (खनिज तल) की कमी के कारण देश में इस विधि से समुचित उत्पादन मात्रा प्राप्त करना संभव नहीं है। प्राकृतिक गैसों की कमी के अतिरिक्त तेल शोधक कारखानों से भी इतना अवशेष प्राप्त नहीं होता कि उनसे कार्बन ब्लैक बनाया जा सके।

विकसित प्रक्रम द्वारा प्राप्त कार्बन ब्लैक की परीक्षा एक प्रसिद्ध फर्म ने भी की है और इसे मशीनों के लिए निर्माण हेतु उपयुक्त पाया है। आवश्यक कच्चा माल (कोयला और संयंत्र के उपस्कर जैसे जौ क्रेशर, हैमर मिल, रिएक्टर, वायु ब्लोअर, स्थिरवैद्युत अवक्षेपक (इलेक्ट्रोस्टैटिक प्रेसिपिटेटर्स) कानवेयर टेल्ट्स, वायु प्रवाह मापक, ताप अभिलेखी, जल पम्प, हायस्ट, गोली निर्माणक यूनिट मिक्सिंग व रोटरी ड्राइंग यूनिट, प्लेटफार्म तुलना, निर्वातक (एक्जास्ट) पम्प देश में उपलब्ध हैं।

अनुमान लगाया गया है कि नयी विधि से तीस हजार टन कारबन ब्लैक प्रतिवर्ष बनाने वाले कारखाने की स्थापना हेतु 2 करोड़ 20 लाख रु० की लागत आयेगी। 80 रु० प्रति टन की दर से कोयला उपलब्ध होने पर कार्बन ब्लैक का उत्पादन व्यय 560 रु० प्रति टन आता है। अधिक जानकारी हेतु प्रबंध निदेशक, राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, 61 रिंग रोड, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-14 से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

सर्वाधिक मीठा पदार्थ

एक नया पदार्थ जोकि समान मात्रा में चीनी से 3,000 गुना मीठा है, पश्चिमी अफ्रीका के जंगलों में पाई जाने वाली एक किस्म की लाल बेरियों से बिलगाया गया है।

अल्प-कैलोरी युक्त इस प्राकृतिक पदार्थ का नाम मोनेलिन रखा गया है। इसे सं० रा० अमेरिका के पेन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय को मोनेल केमिकल सेंसिज सण्टर के डा० जेम्स ए० मोरिस और डा० राबर्ट एच० कैगन ने बिलगाया है।

अब तक प्रचलित साइक्लेमेट और सैकरीन जैसे कृत्रिय मधुर कर्त्ताओं से यह इस बात में भिन्न है कि यह घुलनशील और शरीर द्वारा विघटनशील प्रोटीन है। यह अब तक ज्ञात सर्वप्रथम प्रोटीन है जो कि मनुष्य को मधुर स्वाद देता है और सर्वाधिक मीठा प्राकृतिक पदार्थ है। इस पदार्थ की अभी मात्र औंस की पाँच-सौंवा भाग ही उपलब्ध है तो भी इसके रासायनिक और भौतिक गुणों का पता लगाया जा रहा है।

● ●

सूचना

विज्ञान परिषद को आर्थिक सहायता करने के सम्बन्ध में आय-कर विभाग से जो पत्र प्राप्त हुआ है वह मूल रूप में यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

—सम्पादक

TO BE PUBLISHED IN PART II SECTION 3 (ii) OF THE GAZETTE OF INDIA

GOVERNMENT OF INDIA

MINISTRY OF FINANCE

DEPARTMENT OF REVENUE & INSURANCE

New Delhi, the 11th December, 1972.

NOTIFICATION

INCOME-TAX

No. 238 (F. No. 209/25/72-ITA. II) : It is hereby notified for general information that the institution mentioned below has been approved by Council of Scientific and Industrial Research, the prescribed authority for the purposes of clause (ii) of sub-section (1) of Section 35 of the Income-tax Act, 1961.

INSTITUTION

VIJNANA PARISHAD, ALLAHABAD.

Sd/- (T. P. Jhunjhunwala)

Deputy Secretary to the

Government of India

No 238 (F. No. 203/25/72-ITA. II) :

Copy forwarded to :

1. All Commissioners of Income-tax (2 Copies).
2. Director of Inspection (Income tax & Audit) /Investigation/ Research Statistics and Publication, New Delhi.
3. Council of Scientific and Industrial Research. Rafi Marg, New Delhi with reference to their U. O. No 37/56/72-CDN dated 28-10-72.
4. The General Secretary, Vijnana Parishad, Vijnana Bhavan, Thorn Hill Road, Allahabad—2.
5. Comptroller and Auditor General of India (20 copies).
6. Bulletin Section of DI RS & P), New Delhi (3 copies).

Sd. (T. P. Jhunjhunwala)

Deputy Secretary to the Government of India

SECTION 35, SUB-SECTION (1) CLAUSE (ii) OF THE INCOME.TAX ACT 1961

(1) In respect of expenditure on scientific Research, the following deductions shall be allowed.

(i)..

(ii) Any sum paid to a scientific Research association which has as its object the undertaking of scientific Research or to a University, College or other Institution to be used for scientific research :

Provided that such association, University, College or Institution is for the time being approved for the purpose of this clause by the prescribed authority.

हिन्दुस्तानी एकेडेमी का 'विज्ञान पुरस्कार' (१९७३)

१ जनवरी, १९६४ से ३१ दिसंबर, १९६८ के बीच प्रकाशित विज्ञान संबंधी सर्वश्रेष्ठ मौलिक ग्रन्थ पर हन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद रु० २००१ का नकद पुरस्कार देगी ।

विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत विज्ञान संबंधी शोध प्रबन्धों पर विचार नहीं किया जायगा ।

२८ फरवरी, १९७३ तक पुरस्कार के लिए विचारार्थ ग्रन्थ की नौ प्रतियाँ हिंदुस्तानी एकेडेमी कार्यालय १२-डी, कमला नेहरू मार्ग, इलाहाबाद पहुँच जानी चाहिए ।

पुरस्कार के लिए भेजी जाने वाली पुस्तक के साथ उसका प्रकाशन वर्ष, संस्करण, लेखक तथा प्रकाशक का नाम श्रौर स्थायी पता प्रत्येक प्रति के भीतरी पृष्ठ पर चिपका होना चाहिए ।

पुरस्कार के संबंध में किसी भी प्रकार की मतानुयाचना वर्जित है ।

पूरी नियमावली एकेडेमी कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है ।

उमाशंकर शुक्ल
सचिव

'विज्ञान' के सम्बन्ध में

(फार्म 4)

1.	प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
2.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	सरयू प्रसाद पाण्डेय, नागरी प्रेस
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	नागरी प्रेस, इलाहाबाद
4.	प्रकाशक का नाम	प्रो० कृष्ण जी
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
5.	सम्पादक का नाम	डा० हरिमोहन
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	भौतिकी विभाग, प्रयाग वि० वि० इलाहाबाद-२
6.	उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

मैं प्रो० कृष्ण जी घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर कृष्ण जी
प्रकाशक

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक की नियमावली

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्ध प्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह था और उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा थी। उन्होंने विज्ञान-परिषद् को, वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित करने हेतु एक निधि दी थी। विज्ञान परिषद् के कुछ वर्षों तक इस निधि से, हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के उच्चतम साहित्यिकों को 'हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार' प्रदान किए। श्री हरिशरणानन्द जी के निधन के उपरान्त इस निधि में और वृद्धि न हो सकी, इस कारण विज्ञान-परिषद् की अंतरंग सभा ने यह निश्चय किया कि जो निधि शेष है उसके व्याज से एक स्वर्ण पदक प्रदान किया जाय। इस प्रकार परिषद् श्री हरिशरणानन्द जी के विचारों का आदर कर सकेगा और उनकी निधि का सदुपयोग भी होगा। प्रस्तुत नियमावली इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने हेतु बनाई गई है।

1—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के पूर्व अध्यक्ष स्व० श्री हरिशरणानन्द जी की निधि के व्याज से संचालित एवं विज्ञान-परिषद् द्वारा प्रदत्त इस पदक का नाम 'हरिशरणानन्द स्वर्णपदक' होगा।

2—यह स्वर्णपदक विज्ञान परिषद् द्वारा प्रत्येक वर्ष विज्ञान की सर्वोत्तम प्रकाशित पुस्तक के लेखक को प्रदान किया जायगा। जिस वर्ष पदक दिया जायगा, पुस्तक उसके पूर्व तीन कैलेन्डर वर्ष के भीतर प्रकाशित हुई होनी चाहिए।

3—प्रत्येक वर्ष 'विज्ञान' तथा दो अन्य दैनिक समाचारपत्रों में इस पुरस्कार की घोषणा की जायगी और लेखकों को आमंत्रित किया जायगा कि वे पुस्तक की तीन प्रति विज्ञान परिषद् की पुरस्कार समिति को निश्चित विज्ञापित तिथि के भीतर भेजें।

4—स्वर्णपदक प्रदान करने का संचालन परिषद् की पुरस्कार समिति करेगी।

इस समिति के सदस्य निम्नलिखित होंगे :—

क—परिषद् के सभापति

ख—एक पदेन उपसभापति (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)

ग—कोषाध्यक्ष

घ—प्रधान मंत्री

ङ—अनुसन्धान पत्रिका के प्रधान संपादक

5—पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार करें जिन्हें लेखकों ने न भेजा होगा।

6—यह समिति अपना निर्णय तीन विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करने के बाद लेगी। विशेषज्ञों के नाम गोपनीय होंगे।

7—पुरस्कार समिति का निर्णय अंतिम तथा मान्य होगा।

8—पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा सम्मति देने वाले विशेषज्ञों की रचना पर पदक नहीं प्रदान होगा।

9—सामान्यत: यह स्वर्णपदक परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के समय वितरित होगा।

10—प्रतियोगिता में आयी हुई पुस्तकों में से किसी एक पुस्तक पर दो बार से अधिक विचार नहीं होगा। (यह नियम उन पुस्तकों पर लागू नहीं होगा जिन्हें समिति अपनी ओर से रखेगी।)

(कृष्णजी)

श्रीमती डा० रत्नकुमारी स्वर्णपदक की नियमावली

डा० सत्यप्रकाश सरस्वती ने विज्ञान-परिषद् की सेवा अनेक वर्षो से की है। वे परिषद् के सभापति, उपसभापति तथा अन्य पदाधिकारी रह चुके हैं। उनकी निस्वार्थ रुचि तथा ठोस कार्य के कारण ही विज्ञान की प्रगति हो सकी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष होने के नाते विज्ञान तो उनके जीवन का अंग रहा है। डा० सत्यप्रकाश ने अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीय डा० रत्नकुमारी जी की पुण्य-स्मृति को साकार रूप देने हेतु परिषद् को कुछ निधि प्रदान की है। स्व० डा० रत्नकुमारी जी, शिक्षा, विज्ञान तथा अनेक सिद्धान्तों के अनुसरण में अगाध रुचि रखती थीं और अपने जीवनकाल में उन्होंने शिक्षा और विज्ञान की अपूर्व सेवा की। विज्ञान परिषद् ने डा० सत्यप्रकाश के अनुदान को सहर्ष स्वीकार करके निश्चय किया कि निधि के व्याज से एक स्वर्णपदक प्रदान किया जाय। जिसका नाम 'श्रीमती डा० रत्नकुमारी स्वर्णपदक' हो। प्रस्तुत नियमावली इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने हेतु बनाई गयी है।

नियमावली :—

1—परिषद् के पदेन उपसभापति डा० सत्यप्रकाश जी के अनुदान के व्याज से संचालित एवं विज्ञान परिषद् द्वारा प्रदत्त इस पदक का नाम 'श्रीमती डा० रत्नकुमारी स्वर्णपदक' होगा।

2—यह स्वर्णपदक, विज्ञान परिषद् द्वारा हर दूसरे वर्ष विज्ञान परिषद् अनुसंधान-पत्रिका में प्रकाशित सर्वोत्तम शोध-पत्र के लेखक को प्रदान होगा। जिस वर्ष पदक दिया जायगा, लेख उसके पिछले दो वर्षो के किसी अंक में छपा होना चाहिए।

3—इस स्वर्णपदक को प्रदान करने का निर्णय एक पुरस्कार समिति करेगी जिनके सदस्य निम्नलिखित होंगे :—

(क) परिषद् के सभापति

(ख) एक पदेन उपसभापति (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)

(ग) कोषाध्यक्ष

(घ) प्रधान मंत्री

(ङ) विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका के प्रधान संपादक

4—हर दूसरे वर्ष पुरस्कार समिति कम से कम तीन विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करके अपना निर्णय लेगी। विशेषज्ञों के नाम गोपनीय होंगे।

5—पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम तथा मान्य होगा।

6—पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा सम्मति देने वाले विशेषज्ञों के शोधपत्रों पर पदक नहीं प्रदान होगा।

7—सामान्यत: यह स्वर्णपदक परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के समय वितरण होगा।

(कृष्णजी)

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 111	मार्गशिर 2029 विक्र०, 1894 शकाब्द जनवरी 1973	संख्या 12

लेसर तथा उनके उपयोग

श्री श्यामलाल काकानी

"लेसर कुछ पदार्थों द्वारा प्रदर्शित एक आश्चर्य-जनक प्रकाशीय घटना है। इनके अपरिमित व्यवहारिक उपयोगों, जैसे संचार उपग्रह, होलोग्राफी, रेडियो खगोल-विज्ञान, शल्य चिकित्सा अनुसन्धान इत्यादि, के कारण आज लेसर का अत्यधिक महत्व है।"

लेसर "लाइट एम्पलीफिकेशन बाई स्टीमुलेटेड एमिशन ऑफ रेडियेशन" का संक्षिप्त रूप है। इसका तात्पर्य उद्दीपन उत्सर्जन क्रिया द्वारा दृश्य प्रकाश का प्रवर्धन करना है।

सिद्धान्त—लेसर क्रिया को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम परमाणु निकायों की विकिरणात्मक उत्सर्जन क्रियाओं को समझें। हम यह जानते हैं कि प्रत्येक क्रियाहीन परमाणु निकाय में ऊर्जा तल होते हैं। हाइड्रोजन परमाणु के बोर मॉडल के अनुसार साधारणतया सभी परमाणु मूल अवस्था या निम्नतम ऊर्जा तल में रहते है! (यद्यपि यह कथन पूर्ण रूप से सही नहीं है, क्योंकि उष्मीय टक्कर के कारण कुछ परमाणु या इलेक्ट्रॉन उच्च ऊर्जा अवस्था में भी पहुँच सकते हैं जैसे 'वायु' अणु वायुमण्डल में अधिक ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं) जब एक इलेक्ट्रॉन उच्च ऊर्जा अवस्था E_2 से निम्न ऊर्जा अवस्था E_1 में गिरता है तो अधिक ऊर्जा $(E_2 - E_1)$ को विकिरित कर देता है। विकिरण की आवृति निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं।

$$E_2 - E_1 = h \quad v$$

अगर परमाणु की मूल अवस्था E_1 में E_2 और E_1 ऊर्जा तलों के ऊर्जा अन्तर के तुल्य ऊर्जा विकिरण (या फोटोन) गिरता है तो इलेक्ट्रॉन इस विकिरण का अवशोषण कर उच्च ऊर्जा तल E_2 में पहुँच सकता है। इस क्रिया को अवशोषण कहते हैं। अतः सामान्य रूप से विकिरण पदार्थ के साथ निम्न प्रकार से क्रिया करते हैं :—

1. जब विकिरण (फोटॉन) परमाणु से निम्न ऊर्जा तल में टकराते हैं तो परमाणु इसका अवशोषण कर उच्च ऊर्जा तल में पहुँच जाता है। अगर वहाँ और कुछ नहीं होता है तो अवशोषित फोटॉन का पुन: उत्सर्जन कर निम्न ऊर्जा अवस्था में लौट आता है इस क्रिया को स्वत: उत्सर्जन कहते हैं। स्वत: उत्सर्जन क्रिया एक सांख्यिकीय प्रक्रम है अर्थात् हम यह नहीं कह सकते हैं कि कब यह विशिष्ट संक्रमण ठीक-ठीक प्रतिपादित होगा। हम केवल स्वत: उत्सर्जन की संभावना के बारे में ही बात कर सकते हैं। इसमें यह स्पष्ट होता है कि यह स्वत: उत्सर्जित रेडियो-ऐक्टिवता की घटना के सदृश है।

2. अगर फोटॉन उत्तेजित अवस्था के परमाणु से टकराता है तो यह परमाणु को अपनी मूल अवस्था में जाने और संग्रहित ऊर्जा को उत्सर्जित करने के लिए उद्दीपित कर सकता है लेकिन यह तभी सम्भव हो सकता है जब टकराने वाले फोटॉन की ऊर्जा पूर्ण रूप से दोनों ऊर्जा तलों के ऊर्जा के अन्तर के बराबर हो। इस विधि को उद्दीपन उत्सर्जन क्रिया कहते हैं यही क्रिया मेसर और लेसर के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अब हम एक ऐसे परमाणु निकाय पर विचार करते हैं जो संतुलन के प्रतिबन्ध में विकिरण क्षेत्र जिसका घनत्व $E\ (v)$ है, रखा हुआ है। मान लें कि E_1 और E_2 दो ऊर्जा तल हैं। जिनमें क्रमश: N_1 और N_2 परमाणु हैं। E_2 से E_1 में होने वाले संक्रमण से सम्बन्धित फोटॉन की ऊर्जा $E_2 - E_1 = hv$ होगी। परमाणु निकाय में तीन संभव क्रियाएँ हो रही हैं। E_2 से E_1 में स्वत: प्रवर्तित संक्रमण हो सकता है। मान लें कि A_{21} प्रति इकाई समय में स्वत: उत्सर्जन संभावना को प्रदर्शित करता है। द्वितीय hv ऊर्जा का अवशोषण होता है जिसके परिणाम स्वरूप परमाणु E_1 से E_2 ऊर्जा तल में पहुँच जाता है। यह मानना उचित ही है कि प्रति इकाई समय में होने वाले ऐसे अवशोषण संक्रमण ऊर्जा घनत्व $E\ (v)$ के समानुपाती है। अत: प्रेरित अवशोषण संक्रमण संभावना प्रति इकाई समय में $B_{12}\ E\ (v)$ होगी जबकि B_{12} अवशोषण प्रायिकता प्रति इकाई समय प्रति ऊर्जा घनत्व है। तृतीय विकिरण क्षेत्र उच्च ऊर्जा अवस्था E_2 में परमाणु से क्रिया कर परमाणु को निम्न ऊर्जा तल में जाने के लिए प्रेरित कर सकता है। पुन: यह मानना उचित हो है कि प्रेरित उत्सर्जन की संभावना विकिरण क्षेत्र के ऊर्जा घनत्व के समानुपाती है। अत: प्रेरित उत्सर्जन प्रति इकाई समय की $B_{21}\ E\ (v)$ से प्रदर्शित कर सकते हैं, जबकि B_{21} प्रेरित उत्सर्जन प्रति इकाई समय प्रति इकाई ऊर्जा घनत्व प्रदर्शित करता है। अगर ऊर्जा तल E_2 में N_2 परमाणु हैं तो E_2 से E_1 में प्रति इकाई समय आने वाले परमाणुओं की संख्या $[A_{21} + B_{21}\ E\ (v)$ N_1 होगी। अत: E_2 ऊर्जा तल में प्रति इकाई समय में परमाणुओं में परिवर्तन की वास्तविक दर $\frac{dN_2}{dt}$ को निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं—

$$\frac{dN_2}{dt} = B_{12}\ E(v)\ N_1 - A_{21} + B_{21}\ E\ (v) N_2$$

संतुलन की अवस्था में किसी भी तल में परमाणुओं के परिवर्तन की वास्तविक दर शून्य होगी अत: $\frac{dN_2}{dt} = 0$

या $B_{12}\ E\ (v)\ N_1 = [A_{21} + B_{21}\ E\ (v)\ N_2$

बोल्ट्समान ने बताया कि एक दिये हुए तापक्रम T पर विभिन्न ऊर्जा तलों में परमाणुओं की समष्टि निम्न सूत्र से व्यक्त की जा सकती है—

$$N_2 = N_1\ e^{-(E_2 - E_1)/KT} = N_1\ e^{-hv/KT}$$

सामान्य परिस्थितियों में निम्न ऊर्जा तल में उच्च ऊर्जा तल की अपेक्षा परमाणुओं की समष्टि (Popula-tion) अधिक होती है बोल्ट समान् समीकरण से $\frac{N_2}{N_1}$ का मान समीकरण में रखने पर

$$B_{12}\ E\ (v) e^{h/KT}\ A_{21} + B_{21}\ E(v) \qquad (1)$$

$$\text{या } E(v) = \frac{A_{21}/B_{12}}{e^{hv/KT} - \frac{B_{21}}{B_{12}}} \qquad (2)$$

प्लांक के विकिरण सूत्र के अनुसार किसी दिए हुए ताप पर विकिरण का ऊर्जा घनत्व निम्न सूत्र से प्रदर्शित कर सकते हैं

$$E(v) = \frac{8 \pi h v^3}{c^3} \frac{1}{e^{hv/KT} - 1} \quad (3)$$

समीकरण [2] एवं [3] को तुलना करने पर

$$\frac{A_{21}}{B_{12}} = \frac{8 \pi v^3}{c^3} \quad (4)$$

$$\text{और} \quad \frac{B_{21}}{B_{12}} = 1$$

ये समीकरण सर्वप्रथम सन् 1917 में आइन्सटीन ने प्राप्त किए थे। A_{21}, B_{21} और B_{12} को आइन्सटीन गुणांक कहते हैं। समीकरण $\frac{B_{21}}{B_{12}} = 1$ यह प्रदर्शित करता है कि प्रेरित उत्सर्जन और अवशोषण संभावना प्रति इकाई समय आपस में बराबर हैं। समीकरण (4) से समीकरण (2) में मान रखने पर हमें स्वत: उत्सर्जन प्रायिकता में सम्बन्ध प्राप्त होता है (जबकि पदार्थ और विकिरण सन्तुलन में होते हैं)।

$$\frac{\text{स्वत: उत्सर्जन प्रायिकता}}{\text{प्रेरित उत्सर्जन प्रायिकता}} = \frac{A_{21}}{B_{21} E(v)}$$

$$= e^{\frac{hv}{KT}} - 1 \quad (5)$$

अत: अगर $hv >> KT$ हो तो प्रेरित उत्सर्जन की तुलना में स्वत: उत्सर्जन बहुत अधिक संभव होगा! यह परमाणु और अणुओं में इलेक्ट्रान संक्रमणों के के लिए और नाभिकों में विकिरणात्मक संक्रमणों के लिए सही है। लेकिन अगर $hv << KT$ हो तो प्रेरित उत्सर्जन या उद्दीपन उत्सर्जन प्रभावी हो सकता है और यह लघुतरंग व दृश्य प्रकाश पराश (Range) में परमाणु संक्रमणों के लिए सम्भव है।

प्रेरित उत्सर्जन, पदार्थ के परमाणुओं या अणुओं पर उत्तेजित अवस्था में गिरने वाले विकिरणों का परिणाम है अत: प्रेरित परमाणु कम्पन इस पर गिरने वाले विकिरणों के सापेक्ष स्थिर कलान्तर बनाये रखते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सभी परमाणु एक ही कला में विकिरित होते हैं; अत: प्रेरित उत्सर्जन ससंक्त हुआ।

लेकिन दूसरी तरफ स्वत: उत्सर्जन संक्रमण संयोगिक होती है और उन समयों में जिनमें परमाणु संक्रकरण होता है। आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता है अत: स्वत: उत्सर्जन में परमाणु विकिरण की कलायें अनियमित होती हैं। स्पष्ट है कि स्वत: उत्सर्जन क्रिया कला असंबद्ध होती है।

अब हम उन परिस्थितियों को ज्ञात करने का प्रयास करेंगे जिनमें विकिरित उत्सर्जन को निरन्तर प्रेरित या उद्दीपन कर सकें। संतुलन की अवस्था में कोई वास्तविक अवशोषण या उत्सर्जन नहीं होता है। यद्यपि अवशोषण के लिए प्रेरित संक्रमण प्रायिकता उत्सर्जन के लिए प्रेरित संक्रमण प्रायिकता की तुलना में बहुत कम होती है, अवशोषण उत्सर्जन के बराबर हो जाता है क्योंकि निम्न ऊर्जा तल में परमाणु ऊर्जा का अवशोषण कर सकते हैं। इस प्रकार की संतुलन अवस्थायें लेसर क्रिया के लिए उपयोगी नहीं होती है। उस अवस्था में जब पदार्थ पर निरन्तर फोटॉन की बौछार हो और असंतुलित अवस्था बनी रहे तो हमें उत्सर्जन दर और अवशोषण दर का अनुपात इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

$$\frac{\text{उत्सर्जन दर}}{\text{अवशोषण दर}} = \frac{[A_{21} + B_{21} E(v)] N_2}{B_{12} E(v) N_1}$$

$$= \left[1 + \frac{A_{21}}{B_{21} E(v)} \right] \frac{N_2}{N_1}$$

अगर दोनों ऊर्जा तलों में ऊर्जा अन्तर कम हो तो

तो $\frac{hv}{KT}$ का मान कम होगा अर्थात्

$\frac{A_{21}}{B_{21} E(v)} << 1$, अत:

$$\frac{\text{उत्सर्जन दर}}{\text{अवशोषण दर}} = \frac{N_2}{N_1}$$

एक निश्चित ताप पर उच्च ऊर्जा तल E_2 में परमाणु समष्टि N_2 हमेशा निम्न ऊर्जा तल E_1 में परमाणु समष्टि N_1 से कम होगी। अगर किसी तरह से समष्टि प्रतिलोमन प्रभाव उत्पन्न हो सके जिससे $N_2 > N_1$ हो जाय तो उत्सर्जन दर अवशोषण दर से ऊँची बनी रह सकती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि

[शेष पृष्ठ 23 पर

पत्थर का तेल पेट्रोल

डा० बालगोबिन्द जायसवाल

"पत्थर" को आधुनिक यूरोपीय भाषाओं की जननी लेटिन में "पेट्रा" कहा जाता है तथा "पेट्रोल" का शाब्दिक अर्थ है "पत्थर का तेल।" इस नामकरण का कारण यह है कि पेट्रोल का पहला कुँआ सन् 1859 में ड्रेक ने अमेरिका के पेन्सिलवानिया राज्य में काफी गहरी खुदाई करके स्थापित किया था। पृथ्वी के धरातल की मिट्टी खोद लेने के पश्चात् पत्थरों की काफी मोटी परत आती है। इसे खोद लेने पर उन्होंने काले मैले रंग का दुर्गन्ध युक्त एक द्रव नलों द्वारा बाहर निकलता पाया। यही कच्चा पेट्रोल है, जिससे मोटर कारों के अन्तर्दहन इंजनों का द्रव ईंधन, 'गैसोलीन" बनाया जाता है।

पेट्रोल पृथ्वी के धरातल से सौ मीटर नीचे से हजार डेढ़ हजार मीटर नीचे की गहराई तक रेणु शिलाओं के नीचे पाया जाता है, इसके भंडार के ऊपर प्राकृतिक ज्वलनशील गैसें मेथेन, ईथेन आदि एकत्रित पाई जाती हैं, जिनका घरेलू चूल्हों में ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। पेट्रोल द्रव के नीचे सदैव लवण-जल पाया जाता है। अर्थात प्राकृतिक पेट्रोल द्रव सदैव लवण जल पर तैरता पाया जाता हैं।

वैज्ञानिकों का मस्तिष्क सदैव किसी भी वस्तु की उत्पत्ति का कारण जानने को लालायित रहता है। पेट्रोल की उत्पत्ति का प्रथम सिद्धान्त विश्व विख्यात रूसी वैज्ञानिक मेन्डेलियेव ने प्रस्तुत किया। यह "अकार्बनिक सिद्धान्त" कहलाया। इसके अनुसार पृथ्वी के गर्भ में जो धातु कार्बाइड विद्यमान है, उन पर जल की क्रिया होकर विभिन्न हाइड्रोकार्बन उत्पन्न हुए जो कि पेट्रोल में पाए जाते हैं। तथा पृथ्वी की इतनी मोटी परत का दाब इस रासायनिक क्रिया को सम्पन्न कराने में सहायक हुआ। परन्तु बाद के वैज्ञानिकों ने इस मत को त्याग दिया। कारण यह था कि पेट्रोल द्रव के रासायनिक विश्लेषण से उसमें जलीय तथा थलीय प्राणियों के रक्त में पाया जाने वाला जटिल यौगिक "हेमोग्लोबिन" तथा विभिन्न वनस्पत्तियों की हरियाली का यौगिक, "क्लोरोफ़िल" भी किंचित मात्रा में पाए गए। इन पदार्थों की उपस्थिति का कोई कारण मैंडेलियेव का सिद्धान्त नहीं बतला सका।

इसके पश्चात् विद्वान अमरीकी वैज्ञानिक एंग्लर ने पेट्रोल की उत्पत्ति के संबंध में अपना 'कार्बनिक सिद्धान्त" प्रस्तुत किया। इसकी मान्यता है कि जलीय जन्तु जब भूकंप के कारण अथवा ज्वालामुखी विस्फोट से निकली जीवन विरोधी गैसें सल्फर डाई आक्साइड के तटीय जल में फैल जाने के कारण बड़ी संख्या में मारे जाकर एक जगह एकत्रित हो जाते हैं तथा पृथ्वी के धरातल से इतने नीचे के विशाल दाब पर वायु की अनुपस्थिति में उनका भंजन हो जाता है तब हजारों वर्ष की इस रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप उन-उन स्थानों पर पेट्रोल भंडार बन जाते हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन यह प्रेक्षण करता हैं कि विश्व के अधिकांश पेट्रोल भंडार ज्वालामुखी क्षेत्र में तथा समुद्र तट से समीप के स्थानों में पाए जाते हैं। अतः इस सिद्धान्त को बहुत मान्यता प्राप्त हुई।

परन्तु यह सिद्धान्त भी प्राकृतिक पेट्रोल में "क्लोरो फिल" यौगिक जो कि वनस्पतियों में पाया जाता है— की उपस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं कर सका। आधुनिक काल में एंग्लर का मत तो माना ही जाता है उसके साथ-साथ 1939 में ट्राइब्ज द्वारा प्रस्तुत यह मत भी माना जाता है कि अति प्राचीन युग में भीषण तूफानों

के कारण या जमीन फटने से जब अनेक जंगलों का विशाल वनस्पति समूह पृथ्वी के गर्भ में समा गया तब अत्याधिक दाब पर रासायनिक क्रिया से, सहस्त्रों वर्षों में वह भी पेट्रोल भंडार में परिणत हो गया। इसी कारण प्राकृतिक पेट्रोल में वनस्पतीय जटिल यौगिक, 'क्लोरोफिल" पाया जाता है।

रासायनिक दृष्टि से पेट्रोलियम कार्बन तथा हाइड्रोजन के "हाइड्रोकार्बन" कहलाने वाले अनेक यौगिकों का मिश्रण होता है जिनमें से कुछ संवृत्त शृंखल भी होते हैं। एक स्थान से पाए गए पेट्रोल की रासायनिक संरचना अन्य स्थान पर पाए गए पेट्रोलियम की संरचना से भिन्न होती है। प्रारम्भ में प्राकृतिक पेट्रोल का आसवन कर, केवल "केरोसिन" तेल निकाला जाता था व शेष जलाकर नष्ट कर दिया जाता था। परन्तु अब उसकी एक बूंद भी नष्ट नहीं की जाती वरन शेष भाग से अनेक बहुमूल्य उपयोगी पदार्थ प्राप्त किए जाते हैं। इनमें प्रमुख ये हैं :—

1—साइमोजीन तथा रिगोडीन गैसें जो बर्फ बनाने तथा स्थानीय निश्चेतक के रूप में काम में आती है।

2—वसा तथा तेल का विलायक पेट्रोलियम ईथर

3—गैसौलीन, जिसे सामान्य रूप से पेट्रोल कहते हैं तथा जो कारों का ईंधन है।

4—केरोसीन तेल—घरेलू रोशनी तथा ईंधन

5—डीजल तेल—डीजल इंजनों का ईंधन

6—भारी तेल अथवा मशीन तेल

7—अनेक स्नेहक तेल

8—वैसलिन—मलहम बनाने तथा शृंगार सामग्री बनाने में उपयोगी

9 - पैराफिन मोम-मोमबत्ती तथा मोमी कपड़ा बनाने में उपयोगी

10—अवशिष्ट पिच-सड़कों पर बिछाने में उपयोगी

यह उद्योग स्थापित करने हेतु कच्चा तेल कहाँ पाया जाएगा, इसका अनुमान भूवैज्ञानिक लगाते हैं। उचित स्थानों के चुनाव के पश्चात वहाँ विशाल वेधन यंत्रों द्वारा गहरे कुंए खोदे जाते हैं तथा उनमें लोहे के मोटे-मोटे नल उतारे जाते हैं। कभी-कभी तो स्वयं के दबाव के कारण इन नलों से तेल का काफी ऊँचा फव्वारा ऊपर निकल आता है। ऐसा न होने पर, उच्च दबाव पर वायु, एक नल द्वारा भूगर्भ में भेजी जाती है, अन्य नल से कच्चा तेल बाहर आता है। इसे लोहे की बड़ी-बड़ी टंकियों में रखते हैं व आवश्यकतानुसार जमीन के नीचे बिछे नलों द्वारा सैकड़ों किलोमीटर दूर स्थित शोधन शालाओं को पम्प कर दिया जाता है।

चूँकि पेट्रोलियम गैसों, द्रवों, अर्धठोसों तथा ठोस पदार्थों का मिश्रण है अतः प्रभावी आसवन द्वारा उसमें से इन अंशों का पृथक्करण कर लिया जाता है। यह सब एक लम्बे बेलनाकार प्रभाजक-स्तंभ में किया जाता है। कच्चे तेल को 375° से० तक तापित कर प्रभाजक स्तंभ के मध्य में पहुँचाते हैं। गैसें स्तंभ में सबसे ऊपर पृथक होती है तथा पिच उसमें नीचे बचा रहता है। इनके अतिरिक्त अधिक क्वथनांक वाले अंश पहिले और कम क्वथनांक वाले अंश बाद में संघनित होकर पृथक होते जाते हैं।

भारत में एस्सो, बर्मा शैल तथा कालटेक्स नामक विदेशी तेल कम्पनियों के अतिरिक्त बिहार में बरोनी में, बनमती में आसाम में तथा कोयली व कोचीन में सार्वजनिक क्षेत्र की शोधन शालाएँ हैं जिनमें रूस एवं रूमानिया का तकनीकी सहयोग प्राप्त किया गया है।

दैनिक जीवन में उपयोगी तथा युद्ध प्रयत्न में और अधिक उपयोगी ज्वलशील तेल पेट्रोलियम के विश्व वितरण को देखते हुए प्रतीत होता है कि प्रकृति अहिंसक भारत के प्रति बहुत अनुदार रही है। जबकि क्षेत्रफल में भारत से प्रायः दुगने संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व का 65 प्रतिशत पेट्रोल पाया जाता है भारत में केवल एक प्रतिशत के लगभग पाया जाता है। इसी कारण राष्ट्रीय तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा जमीन पर अन्य स्थानों के अतिरिक्त खंभात की खाड़ी के उथले समुद्र भी खुदाई कर इसकी खोज की जा रही है ताकि इस अत्यावश्यक वस्तु के संबंध में हम आत्म निर्भर बन सकें।

(डॉ॰ बाल गोविन्द जायसवाल)

(आकाश वाणी भोपाल के सौजन्य से)

मानव शरीर की अम्लीयता एवं क्षारकता के स्थिरीकरण का रासायनिक आधार

सुरेश चन्द्र आमेटा

मानव शरीर एक स्थिर प्रतिशत नमी पर साधारण रूप से कार्य करता है। इसमें अधिक अथवा कम होने पर कई बीमारियाँ होने की सम्भावना रहती है। प्रस्तुत लेख में इसी पर कुछ विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

मानव रक्त की एक प्रमुख विशेषता उसमें स्थित हाइड्रोजन आयन सान्द्रता है। कुछ छोटे परिवर्तनों को छोड़कर रक्त की सभी अभिक्रियायें सीमाबद्ध में होती हैं। यह सीमा 7·3 से 7·5 तक होती है। अम्ल की सान्द्रता रक्त में बढ़ने को रुधिराम्लता एवं क्षारक की सान्द्रता बढ़ने को रुधिर क्षारकता कहते हैं। इनको क्रमशः अम्लोपचय और क्षारोपचय भी कहा जाता है। यह दोनों शुद्ध पूरे शरीर की नमी को प्रदर्शित करते हैं। साधारणतः रक्त का नमी मान 7·4 होता है और इसको स्थिर रखने के लिये कुछ कारक है, जिन्हें कि नीचे वर्णित किया गया है :—

(अ) वृक्क :

इन कारकों में सर्व प्रथम वृक्क का स्थान है। यह मेरुदण्ड के दोनों ओर अधर तल पर गहरे लाल रंग का होता है, जो कि आँतों से ढका रहता है। इनका मुख्य कार्य तो मूत्र बनाना है परन्तु शरीर की नमी के स्थिरीकरण में भी इनकी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। वृक्क बाइकार्बोनेट, फास्फेट (क्षारकीय एवं अम्लीय) अमोनिया, अम्ल इत्यादि के उत्सर्जन अथवा अवशोषण से शरीर की नमी को स्थिर रखता है।

(i) अमोनिया क्रिया विधि :

वैसे तो प्रमुखतः यकृत की कोशिकाएँ कुछ ऐमीनो अम्लों एवं प्रोटीनों को विघटित कर अमोनिया गैस बनाती हैं परन्तु कुछ हद तक वृक्क भी इसी क्रिया से अमोनिया गैस बना लेता है। इस क्रियाविधि में वृक्क द्वारा प्राप्त अमोनिया गैस ही इस स्थिरीकरण में काम आती है। मुख्यतः काम में आने वाले ऐमीनो अम्ल एवं प्रोटीन निम्न हैं।

ग्लूटामीन, अल्ब्यूमिन (प्रोटीन), ग्लाइसिन, एलेनीन इत्यादि।

इस प्रकार के विघटन के लिये एक एन्जाइम की उपस्थिति अनिवार्य है और इस अभिक्रिया में काम आने वाले एन्जाइम को डिऐमीनेज़ कहा जाता है।

रुधिराम्लता के कारण जब शरीर में अम्लीयता बढ़ रही हो तो Na^+ अथवा K^+ के बदले वृक्क अमोनिया उत्सर्जित कर देता है जिससे कि इनका (Na^+, K^+) उत्सर्जन कम हो जाता है। इस कारण अम्लीयता भी कम हो जायेगी और शरीर फिर से साधारण नमी पर आ जायेगा।

(ii) बाइकार्बोनेट क्रियाविधि :

दूसरा प्रमुख कारक बाइकार्बोनेटों की उपस्थिति है। मूत्र के रूप में उत्सर्जित होने के लिये वृक्क जो विलयन रक्त से छान कर प्राप्त करते हैं, उनमें सोडियम बाइकार्बोनेट भी अधिक मात्रा में उपस्थित होता है। इस $NaHCO_3$ का वियोजन Na^+ एवं HCO_3^- में हो

जाता है, जिसमें से Na^+ का अवशोषण टिव्युलर कोशिकाओं में हो जाता है और इनके बदले में कोशिका से H^+ का उत्सर्जन टिब्यूलर ल्यूमेन में हो जाता है। (जितने Na^+ आयन अवशोषित होंगे, उतने ही H^+ आयन उत्सर्जित होंगे।) ये HCO_3^- आयन H^+ से क्रिया कर कार्वोनिक अम्ल बनाते हैं, जो कि विच्छेदित होकर जल एवं CO_2 बनाता है। जल तो मूत्र के साथ उत्सर्जित हो जाता है और CO_2 सरलता से टिब्यूलर कोशिकाओं में अवशोषित हो जाती है चूँकि यह एक गैस है। कोशिका में यह CO_2 गैस जल से क्रिया कर फिर से H_2CO_3 बना लेती है, जिसके लिये एक एन्जाइम कार्बोनिक एनहाइड्रेज की उपस्थिति इसमें सहायक होती है। कार्बोनिक अम्ल फिर से वियोजित होकर H^+ और HCO^- बनायेगा। यह HCO_1^- रक्त परिवहन में चला जाता है।

ऊपर दी गयी अभिक्रिया में जो H^+ आयन प्राप्त होते हैं, वो फिर से टिब्यूलर ल्यूमैन में उत्सर्जित होते हैं और इनके बदले एक Na^+ आयन कोशिका में प्रवेश पा लेता है। यह चक्र चलता रहता है।

शरीर की अम्लीयता बढ़ जाने पर अधिक से अधिक H^+ आयन इसी क्रियाविधि द्वारा उत्सर्जित कर कर नमी का स्थिरीकरण किया जाता है और साथ ही साथ Na^+ आयन की सान्दता में वृद्धि भी इसमें सहायक होती है। क्षारकता बढ़ने पर शरीर से कम से कम H^+ आयन उत्सर्जित कर शरीर अपना नमी स्थिर रख लेता है।

(iii) फास्फेट क्रियाविधि

साधारणतया: रक्त में दो प्रकार के फास्फेट पाये जाते हैं, (अ) अम्लीय फास्फेट ($Na H_2 PO_4$) (ब) क्षारकीय फास्फेट (Na_2HPO_4) इनका अनुपात रक्त में 1:4 होता है और इसीलिये रक्त की अभिक्रियायें क्षारकीय होती हैं परन्तु मूत्र में इनका अनुपात 9:1 हो जाता है और यही वजह है कि मूत्र अम्लीय होता है।

जब शरीर में क्षारकता बढ़ जाती है तो वृक्क क्षारकीय फास्फेट को अधिक उत्सर्जित करता है, और इनके अनुपात में मूत्र में भिन्नता आ जाती है। इस प्रकार शरीर अधिक क्षारकता से छुटकारा पा लेता है। अम्लीयता बढ़ने पर इसके ठीक विपरीत अम्लीय फास्फेट अधिक उत्सर्जित होंगे और शरीर की नमी पुनः स्थिर हो जायेगी।

(iv) अम्लों का उत्सर्जन

वृक्क मूत्र में साधारणतः कुछ अम्ल उत्सर्जित करता है, जिनमें से प्रमुख ये हैं :—

हिप्यूरिक अम्ल, पैरा-ऐमीनो-हिप्यूरिक अम्ल, यूरिक अम्ल, एवं हाइड्राक्सी-ब्यूटिरिक अम्ल (अपवाद रूप में) शरीर में अम्लीयता अधिक होने पर अथवा क्षारकता अधिक होने पर इनके उत्सर्जन की मात्रा में अन्तर आ जायेगा। वैसे इनके उत्सर्जन की मात्रा अम्लीयता के बढ़ने के समानुपाती होती है।

(vi) बाइकार्बोनेटों का उत्सर्जन

अधिकतर मूत्र में HCO_3 आयन अनुपस्थित होते हैं। क्षारकता के बढ़ जाने पर HCO_3 आयन उत्सर्जित हो कर शरीर की नमी को स्थिर बनाये रखने में सहायक सिद्ध होंगे।

(ब) समावस्थापक या बफ़र

रक्त की नमी को स्थिर रखने के लिये दूसरा प्रमुख कारक रक्त का समावस्थापक होना है। बफ़र अथवा समावस्थापक का अर्थ ऐसे रासायनिक पदार्थ से है, जिसमें कि अम्ल अथवा क्षारक को डाला जाय तो इसकी नमी में कोई अन्तर नहीं आये। हमारे रक्त में भी ऐसे बफ़र होते हैं, जिनका कार्य रक्त की नमी को 7·4 पर स्थिर रखना है। ये रक्त बफ़र निम्न है :—

(i) वाइकार्बोनेट :

यदि रक्त में अम्लीयता बढ़ जाये तो बाइकार्बोनेट उस अम्ल से क्रिया कर एक लवण एवं कार्बोनिक अम्ल बनाता है।

उपरोक्त अभिक्रिया से प्राप्त कार्बोनिक अम्ल विघटित हो कर जल और CO_2 बनाता है, जो कि एक महत्वपूर्ण श्वसन उत्तेजक है। इसलिये यह श्वसन केन्द्र को उत्तेजित कर देती है और श्वसन की गति बढ़ जाती है और अधिक से अधिक CO_2 (उपरोक्त अभिक्रिया से प्राप्त) बाहर निकाल दी जाती है। इस प्रकार शरीर की अम्लीयता फिर से कम हो शरीर साधारण नमी को प्राप्त कर लेता है।

(ii) फास्फेट :

फास्फेट भी एक समावस्थापक की तरह ही कार्य करते हैं। रुधिरक्षारकता से, जब कि शरीर की क्षारकता बढ़ जाती है तो अम्लीय फास्फेट क्षारक से क्रिया कर क्षारकीय फास्फेट बनाता है, जो कि मूत्र के साथ उत्सर्जित कर दिये जाते हैं। इसके विपरीत रुधिराम्लता में अम्ल रक्त के क्षारकीय फास्फेट के साथ क्रिया कर अम्लीय फास्फेट बनाता है जो कि उत्सर्जित कर दिये जाते हैं। इस प्रकार शरीर स्थिर नमी ग्रहण कर लेता है।

(iii) प्रोटीन :

शरीर का एक प्रमुख समावस्थापक प्रोटीन है। प्रोटीन, बाइकार्बोनेट एवं फास्फेट की तुलना में एक अच्छा समावस्थापक तो नहीं होता परन्तु इनकी अधिक मात्रा के कारण ये प्रमुख होते हैं।

(a) ये सोडियम प्रोटीनेट के रूप में क्रिया करते हैं।

(b) प्रोटीन CO_2 से क्रिया कर कार्बामीनो यौगिक भी बनाते हैं तथा रुधिराम्लता को कम करने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार प्रोटीन शरीर की नमी को स्थिर रखने में एक प्रमुख स्थान रखते हैं।

(iv) हीमोग्लोबिन :

यह एक लाल वर्णक होता है जो कि मानव रक्त में उपस्थित होता है। हीमोग्लोबिन रक्त की लाल कोशिकाओं में होता है और यह आक्सीजन को शरीर में ले जाने का कार्य करता है। यह शरीर की pH को स्थिर रखने में दो तरीकों से सहायक होता है। इनमें से प्रथम तो कार्बामिनों यौगिकों के द्वारा होता है, जो कि पहले वर्णित किये गये तरीके से मिलता जुलता है। दूसरा तरीका क्लोराइड का अभिगमन है, जिसे हैमबर्जन का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इसे नीचे लिखा गया है—

जब शरीर की अम्लीयता बढ़ जाती है तो CO_2 की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है और यह H_2O से क्रिया कर H_2CO_3 बना लेती है। लाल रुधिर कणिकाओं में एक विशिष्ट एन्जाइम कार्बोनिक एनहाइड्रेज होता है, जो कि इस अभिक्रिया की गति को अधिक कर देता है, अतः प्लाज्मा में, HCO_3, रक्त कणिकाओं (लाल) की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में बनता है। कार्बोनिक अम्ल KoH से क्रिया $KHCO_3$ बनायेगा। इस प्रकार क्षारकता बढ़ जायेगी। अब कोशिकाओं की नमी को स्थिर रखने के लिये या तो किसी क्षारकीय आयन को बाहर जाना होगा अथवा कोई अम्लीय आयन अन्दर आ जायेगा। कोशिका की भित्ति के रन्ध्रों के छोटे होने की वजह से बड़े क्षारकीय आयन उसमें से पार नहीं हो सकते, अतः कोशिकाओं का नमी स्थिर रखने के लिये प्लाज्मा से अम्लीय आयन क्लोराइड लाल रुधिर कणिकाओं में प्रवेश करेगा। क्लोराइड की अभिक्रिया $KHCO_3$ से होगी, जिससे कि KCl एवं HCO_3 प्राप्त होंगे। इससे कोशिका की अम्लीयता बढ़ जाती है, इससे बचने के लिये HCO_3 आयन प्लाज्मा में चला जाता है। यह प्लाज्मा में क्रिया कर $NaHCO_3$ बनायेगा। इस क्रिया से रक्त कोशिकाएँ साधारण स्थिति में हो जायेगी। यह अभिक्रिया फुफ्फुसों में ठीक विपरीत हो जाती है, जिनसे कि CO_2 बाहर निकाल दी जाती है और इससे श्वसन की गति बढ़ जाती है।

(स) श्वसन :

जब शरीर में रुधिराम्लता बढ़ जाती है, तो रुधिर में CO_2 की मात्रा अधिक होती है। अधिक CO_2

[शेष पृष्ठ 12 पर

उर्वरक—देश में उत्पादन और खपत

डा० राम चन्द्र कपूर

उर्वरक की खपत अपने देश में अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रासायनिक उर्वरकों की खपत अपने देश में विश्व के अन्य देशों की औसतन खपत का पाँचवाँ हिस्सा ही है। 1966-67 में रासायनिक उर्वरकों की खपत हमारे देश में 7·63 किलोग्राम प्रति हेक्टर भूमि थी जब कि विश्व के अन्य देशों की खपत 33·55 किलोग्राम थी।

उर्वरकों का इस्तेमाल व्यावहारिक रूप में 1943 में शुरू हुआ जब कि 'अधिक अन्न उपजाओ' का नारा दिया गया तथा इनकी खपत पंचवर्षीय योजनाओं के शुरू होने से और भी बढ़ गयी। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश उर्वरकों की खपत 1951 में क्रमश: 58·7; 6·9 और 7·7 हजार टन थी और यह बढ़कर 1961 में क्रमश: 297·6; 66·0 और 30·4 हजार टन हो गयी। इस प्रकार रासायनिक उर्वरकों की कुल खपत जो कि 1951 में 73·3 हजार टन थी, 1961 में बढ़कर 394·0 टजार टन हो गयी। यद्यपि उर्बरकों की खपत इन दस वर्षों में (1951-61) में पाँच गुना बढ़ी परंतु प्रति हेक्टर भूमि के हिसाब से यह खपत बहुत कम रही। 1951 की तुलना में नाइट्रोजन उर्वरकों की खपत नौ गुना, फॉस्फोरस उर्वरकों की सत्रह गुना और पोटाश उर्वरकों की तेरह गुना, 1966 में बढ़ी। यद्यपि उर्वरकों की खपत में इन वर्षों में काफी बढ़ोत्तरी हुई परंतु प्रति हेक्टर भूमि पर खपत 1965-66 में 4-7 किलोग्राम हो रही। नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस उर्वरकों का उत्पादन जो कि 1952-53 में क्रमश: 97,000 टन तथा 70,000 टन था, 1967-68 में बढ़कर क्रमश: 13·78 लाख तथा 5·78 लाख टन हो गया।

हमारे देश में नाइट्रोजन उर्वरकों की खपत फॉस्फोरस तथा पोटाश उर्वरकों की अपेक्षा काफी अधिक है। 1951-52 में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश उर्वरकों की खपत 16:2:1 के अनुपात में थी परन्तु 1965-66 में यह खपत घट कर 7:2:1 के अनुपात में हो गयी। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस खपत को घटाकर 4 : 2 : 1 के अनुपात में किया जाय जिससे कि विभिन्न उर्वरकों की खपत संतुलित रूप में हो। यह देखा गया है कि नाइट्रोजन उर्वरकों के लगातार इस्तेमाल से शुरू में खेत की पैदावार तो बढ़ जाती है परन्तु मिट्टी का पोटैशियम अंश काफी शीघ्रता से घटता जाता है और मिट्टी की उत्पादन शक्ति घटती जाती है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को संतुलित उर्बरक इस्तेमाल करने के लिए कहा जाय।

देश में उर्वरकों की खपत की कमी पूरी करने के लिये हमें विदेशों से भी आयात करना पड़ रहा है, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है :

तालिका

उर्वरकों का उत्पादन और आयात, 1961-71

(हजार टन में)

	नाइट्रोजन		फॉस्फेट		पोटाश
	उत्पादन	आयात	उत्पादन	आयात	उपयोगिता
1961-62	154·3	142·9	65·4	0·6	30·4
1962-63	194·2	229·5	88·3	8·0	44·3
1963-64	219·1	197·7	107·8	12·3	64·i
1964-65	243·2	256·5	131·0	12·3	57·2
1965-66	237·9	३76·3	118·8	21·8	96·3
1966-67	304·3	574·6	140·2	129·1	143·3
1967-68	504·3	975·6	268·4	370·8	276·5
1968-69	703·3	1045·0	355·0	330·0	450·0
1969-70	928·4	1024·0	422·9	419·0	550·0
1670-71	1478·6	820·0	511·6	533·0	700·0

पिछले वर्ष देश के उर्वरक कारखानों ने 8 लाख 30 हजार टन नाइट्रोजन तथा 2 लाख 29 हजार टन फॉस्फेट का उत्पादन किया जो कि 1960-61 की क्रमश: 98 हजार और 52 हजार 440 की मात्रा से कहीं अधिक था। फिर भी यह उत्पादन देश में उर्वरकों की खपत में कम था। इन दिनों एक नये कार्यक्रम पर विचार किया जा रहा है जिसके अनुसार देश 1976-77 तक उर्वरक उत्पादन में आत्म निर्भर हो जायगा और इस प्रकार 1978-79 में 15 करोड़ 50 लाख टन अनाज उत्पादन का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

डा० रामचन्द्र कपूर
रसायन विभाग
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर

[पृष्ठ 10 का शेषांश]

श्वसन केन्द्रों को अधिक उत्तेजित करता है, जिससे कि श्वसन की गति एवं आयतन बढ़ जाते हैं और शरीर अधिक से अधिक CO_2 श्वसन के जरिये बाहर निकाल देता है।

(द) अन्य कारक—इनके अलावा भी कुछ कारक ऐसे हैं जो कि नमी को स्थिर रखने में सहायक होते हैं, परन्तु इनके अधिक महत्वपूर्ण न होने से यहाँ उनका विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है; ये कारक निम्न हैं—

पसीना या वाष्प, सीबम, पाचन संस्थान, इत्यादि।

इस प्रकार शरीर की नमी का स्थिर रहना आवश्यक है। और शरीर ये कार्य स्वयं पूरा कर लेता है।

सुरेश चन्द्र आमेटा
रसायन विभाग
सेठ मथुरा दास विनानी
राजकीय महाविद्यालय, राजस्थान

विज्ञान वार्ता

समुद्री प्रदूषण

फ्रांसीसी समुद्र गर्भ अन्वेषक जैकी कूस्तो ने सन् १९४२ में जब सारगासी समुद्र का अन्वेषण किया तो उस समय वह समुद्र जल में 300 फुट की गहराई तक देख पाए थे। लेकिन उनका कहना है कि अब वहाँ मुश्किल से 100 फुट तक देखा जा सकता है। आज से 25 वर्ष पूर्व जब भूमध्य सागर में उन्होंने डुबकी लगाना आरम्भ किया वह 'जीवन' से भरपूर था। परन्तु आज वहाँ तीन इंच मछली भी मुश्किल से दिखती है। इसका कारण यह है कि सागर और महासागर जिस क्षमता से अपने को स्वच्छ कर सकते हैं उससे अधिक मात्रा में प्रदूषक तत्व आकर उन्हें दूषित कर देते हैं। कूस्तो का अनुमान है कि पिछले 20 वर्षों में मछली और पादप उत्पन्न करने की सागरों की क्षमता 30 से 50 प्रतिशत तक कम हो गई है।

पिछले दिनों राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण पर जेनेवा में आयोजित एक गोष्ठी में समुद्री प्रदूषण के संबंध में चिंता प्रकट करते हुए स्विट्जरलैंड के एक सुविख्यात समुद्रगर्भ अन्वेषक श्री जैकी पिकर्ड ने कहा कि यदि इस दिशा में कुछ भी नहीं किया गया तो इस शती के अंत तक धरती के सभी महासागर निर्जीव हो चुके होंगे।

श्री कूस्तो ने बतलाया कि अमेरिकी सेनेटर अर्न्स्ट होलिंग की अध्यक्षता में बनी महासागर और वातावरण उपसमिति ने बताया है कि धरती से बहुत दूर और मैडागास्कर के परे स्थित रीफ निर्जीव हो चुकी है और इसी प्रकार बहुत ही थोड़े वर्षों में कृष्ण सागर और लाल सागर के गहरे जल में कोई भी चीज जीवित नहीं रहेगी।

वैज्ञानिकों का कहना है कि यह सही है कि 70 प्रतिशत भूपृष्ठ पानी से ढका हुआ है लेकिन यह पानी धरती के ठोस गोले की तुलना में आखिर एक पतला सा पोश ही तो है। इसे एक बिना पेंदे का गटर नहीं समझना चाहिए जिसमें कि जहान भर की गंदगी आ-आकर समाती जाए।

श्री पिकर्ड का कहना है कि धरती की आक्सीजन उत्पन्न करने वाला आदि पादप-फाइटो प्लांक्टन-सतह पर ही होता है। यह कूड़े को अवशोषित कर लिया करता है और इस प्रकार प्रदूषण के लिए छन्ने का काम करता है। अतः समुद्र के समस्त जीवन-चक्र को व्यर्थ बनाने के लिए इस फाइटो प्लांक्टन को नष्ट करना काफी है।

पर्यावरण-विशेषज्ञ बैरीकामनर का कहना है बाल्टिक समुद्र में एक स्थल पर सन् 1940 में जल के नमूनों के एक लिटर में आक्सीजन की मात्रा 2.5 घन से० मी० होती थी। सन् 1940 में यह मात्रा 2.5 घन से० मी० होती थी। सन् 1940 में यह मात्रा कुछ घट कर 2.0 घन से० मी० हो गई लेकिन तब से केवल 30 वर्षों में यह मात्रा 0.1 घन से० मी० रह गई है।

पिकर्ड का अनुमान है कि यह आधुनिक मशीनी मानव जाति प्रति वर्ष 50 लाख से एक करोड़ टन तक प्रदूषणकारी पैट्रोलियम उत्पाद समुद्र की अतिसंवेदनशील सतह पर फैला देती है। इसमें से 18 लाख टन मोटर गाड़ियों की धूम्र निकास नलिकाओं से निकलने वाली विषैली गैसें हैं जोकि पहले तो आकाश में ऊपर चढ़ जाती हैं और अंततः जम कर समुद्रों की सतह पर गिर पड़ती हैं। दस लाख टन पेट्रोलियम उत्पाद तेल-वाहक जहाज समुद्र में उंडेल देते हैं और बाकी की मात्रा संसार भर की दूषित नदियाँ लाकर उनमें डाल देती हैं।

कूस्ता का सुझाव है कि समुद्री प्रदूषण को रोकने के लिए अनुसंधान कार्य को और बढ़ाना होगा, विशेषतया 'स्काइ लैब' जैसे कृत्रिम उपग्रहों से जल गर्भ का अन्वेषण किया जा सकेगा। इससे उसके प्रदूषक तत्वों की स्थिति और सांद्रता का पता लग सकेगा वैसे। 80 प्रतिशत

समुद्री प्रदूषण की जिम्मेदारी संसार के औद्योगिक दृष्टि से उन्नत चौदह देशों पर है। कूस्तो का कहना है कि इन सबको एक जुट होकर शीघ्र ही इस प्रदूषण का निराकरण करने का कोई उपाय करना चाहिए।

लेकिन, यह करना जितना सरल है, उतना करना नहीं। एक तो इसलिये कि जितने भी समुद्रगामी राष्ट्र हैं वे औद्योगीकरण का, जोकि प्रदूषण का मुख्य कारण है, कार्य बंद नहीं कर देंगे। वैसे जो गन्दगी पहले ही हो चुकी है, उसे दूर करना भी कोई सरल काम नहीं है। उदाहरणार्थ, भूमध्य सागर की स्वच्छता का कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं है। जिब्राल्टर की संकरी खाड़ी में से होकर इसमें गिरने वाला अटलांटिक महासागर का जल चारे 'फेफड़ों' में से होकर स्वच्छ होता है। ये हैं एड्रियाटिक व ईजियन समुद्र तथा रोन व नील नदियाँ। लेकिन जैसा कि ब्रिटेन के लार्ड रिशी-काल्डर ने चेतावनी दी है, ये फेफड़े स्वयं अब प्रदूषित हो चुके हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि समुद्र को प्रदूषण-मुक्त करने के लिए खर्चीले यंत्रों की जरूरत पड़ेगी। किन्तु पिकर्ड ने एक मौलिक समाधान सुझाया है। उनका कहना है कि जैसे-जैसे प्रदूषण की मात्रा बढ़ती जाएगी प्रत्येक व्यक्ति को कुछ त्याग करने को बाध्य होना पड़ेगा। कल-कारखानों के उत्पादन में योजनाबद्ध कटौती की बात करना मूर्खतापूर्ण है। अल्प-विकसित देश अपने जीवन के स्तर को अब भी बढ़ा सकते हैं लेकिन अतिउन्नत देशों का जीवन-स्तर गिरेगा। औद्योगीकरण को रोकने और संसार भर में जन्म की दर को कारगर ढंग से कम करने के लक्ष्य की पूर्ति यद्यपि सुस्साध्य लगती है लेकिन इसके और कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि यह तो मानव के अस्तित्व की समस्या है।

भूगर्भ की झांकी

पृथ्वी के गर्भ में क्या छिपा है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए तरह-तरह के अध्ययन किए गए हैं। गुरुत्वाकर्षण अध्ययन से पता चला है कि जमीन की औसत घनता करीब 5·52 है। लेकिन हर स्थान पर घनता एक जैसी नहीं है, जैसे-जैसे हम नीचे जाते हैं, घनता बढ़ती जाती है। सतही चट्टानों की घनता 2·5 से 3·6 तक है। अनुमान लगाया गया है कि 1·500 किलोमीटर की गहराई पर घनता बढ़कर 5 तक और 3,000 किलोमीटर गहराई पर 10 हो जाती है। 4·500 किलोमीटर गहराई पर घनता लगभग 12 6·000 किलोमीटर पर करीब 16 हो जाती है।

खानों और कुओं के अन्दर किए गए अध्ययनों के अनुसार यह पता चलता है कि गहराई में तापमाम भी बढ़ जाता है। पृथ्वी की यह गरमी ज्वालामुखी के लावे और गरम पानी के चश्मों मे भी दिखाई देती है। दूसरे स्थानों पर जमीन की मजबूत परत गर्मी को अपने अन्दर दवाव रखती है।

भूकम्पीय तरंगों का अध्ययन करने से भूगर्भ के बारे में और भी जानकारी मिली है। भूकम्पीय तरंगों का एक गुण यह है कि वे तरल पदार्थ में से नहीं गुजरने पातीं। यह पता चला है कि ये तरंगें (जिन्हें 'एस' तरंगें कहते हैं) 2·900 किलोमीटर की गहराई पर नहीं गुजरतीं। यदि हर जगह जमीन ठोस होती तो ये तरंगें कितनी भी गहराई तक जा सकतीं। इससे भूगर्भ वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया कि 2·900 किलोमीटर की गहराई पर भूमि का तरल क्षेत्र है।

पृथ्वी का व्यासार्थ करीव 6,350 किलोमीटर है। जमीन की बाहरी सतह-15 से 40 मीटर की गहराई तक 'भूपृष्ठ' कहलाती है। भूपृष्ठ के नीचे का हिस्सा मध्यावरण (मेंटल) कहलाता है। यह भारी चट्टानों का बना हुआ है तथा करीब 2,900 किलोमीटर मोटा है। मध्यावरण का तापमान लगभग 3000 सेंटीग्रेट है। यहाँ तरल पदार्थ जमा है और ये तरल पदार्थ ज्वालामुखी के फटने पर निकलते हैं। भूकम्प-वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह वह स्थान जहाँ से भूकम्प आरम्भ होते हैं।

इस मध्यावरण के नीचे जो क्षेत्र है वह पृथ्वी का आन्तरिक भाग (कोर) कहलाता है। अनुमान है कि इस आन्तरिक भाग का व्यासार्थ लगभग 3,400 किलोमीटर है। इस आन्तरिक भाग के भी बाह्य और

आभ्यन्तर दो भाग हैं। आन्तरिक भाग का बह्य पार्श्व भी तरल है, लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसका आभ्यन्तर पार्श्व ठोस है और इसमें मुख्य रूप से लोहा और निकल धातुएँ हैं।

कांच का रेशा

लीजिए काँच की नैकटाई खरीदिए। चौंकिए नहीं ......जी हां...कांच की बनी टाइयां, न केवल टाइयाँ बल्कि कपड़े, पर्दे, मेजपोश विस्तर की चादरे, स्त्रियों की टोपियाँ और हैंडबेग। ये सब वस्तुएँ अब मुलायम, चिकने और चमकदार काँच के रेशों से भी बनने लगी हैं। काँच के बने ये कपड़े न तो सिकुड़ते ही हैं और न ही फैलते हैं ये धोए जा सकते हैं, इन पर सलवट नहीं पड़ती. ये आग से सुरक्षित हैं तथा इनके रंग पक्के होते हैं और इन पर किसी रसायन का भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। कांच का बना कपड़ा सूती या रेशमी कपड़े से कहीं अधिक मजबूत होता है। बारिश या बर्फ में यह कपड़ा बहुत ही कम नमी सोखता है।

काँच का रेशा, कांच उद्योग का अत्यन्त विशिष्ट उत्पादन है। हालाँकि इस प्रकार के रेशों के बारे में काफी पहले ही अनुमान लगाए जाने लगे थे, लेकिन तकनीकी कठिनाइयों के दूर हो जाने पर अब ये व्यापारिक स्तर पर तैयार होने लगे हैं।

एक ही वस्तु से बने होने के बावजूद भी, काँच के कृत्रिम रेशों में आम काँच के गुण नहीं होते। ये न तो सख्त ही होते हैं और न ही नाजुक, बल्कि ये रेशम की तरह मुलायम होते हैं। इनको धागे की तरह मरोड़ा जा सकता है तथा स्पंज की तरह दवाया जा सकता है। यह रेशा इतना बारीक होता है कि हल्की सी फूँक भी इसे उड़ा देने के लिए काफी होती है।

अन्य कृत्रिम रेशों से बिल्कुल विपरीत यह रेशा काँच के कारखानों में ही रेत, क्षार, चूना, मैग्नीशिया, अल्युमिना, बोरिक आक्साइड आदि से तैयार किया जाता है।

काँच से आधुनिक कृत्रिम रेशा दो तरीकों से बनाया जाता है। या तो कम लम्बे तंतु के रूप में या बहुत लम्बे रेशे के रूप में।

छोटी-छोटी नालियों में वायु के जबर्दस्त दबाव से पिघला हुआ काँच गुजारा जाता है और इस प्रकार काँच का धागा बनाया जाता है। इसकी लम्बाई 25 से 50 सेंटीमीटर तक होती है तथा इसका व्यास इतना कम होता है कि कई हजार ऐसे रेशों को एक साथ रखने पर ये मुश्किल से एक सेंटीमीटर हों। इन नलियों से निकलने वाले तन्तु एक सचल-पट्टी पर इकट्ठे होते जाते हैं तब वे गिरती हुई बर्फ की भाँति दिखाई देते हैं। इसे काँच की ऊन कहते हैं। इसे तब अन्य प्रक्रियाओं से गुजार कर रुक महीने धागे का रूप प्रदान किया जाता है जो कृत्रिम रेशम के धागे जैसा लगता है। काँच के इस धागे को सूती, रेशमी या रेयन कपड़ों के लिए पारस्परिक करघों वाली कपड़ा-मिलों में पहुँचाया जाता है। सूत या अन्य धागों को काँच के धागों के साथ मिलाया भी जा सकता है।

बहुत लम्बा और बिना टूटा काँच का रेशा तैयार करने की प्रक्रिया और भी जटिल होती है। इसके द्वारा तैयार किया गया रेशा आदमी के बाल से पन्द्रहगुना कम पतला होता है तथा इसमें एक विशेष चमक होती है। विभिन्न मोटाई का धागा तैयार करने के लिए इन रेशों को, दो या तीन तीन करके मिलाकर बट लिया जाता है।

काँच के इन रेशों को रंगना कुछ अधिक कठिन होता है। पहले इन्हें कार्बनिक बिरोजे में डुबाया जाता है. तब ही इन पर रंग या रंजक पक्की तरह चढ़ पाते हैं।

काँच के बीटा रेशे एक नया और बेहतर किस्म का नवीनतम उत्पादन हैं। व्यापारिक व अन्तरिक्ष अन्वेषण क्षेत्र में इन रेशों के उपयोग की काफी सम्भावनाएँ हैं। वाह्य अन्तरिक्ष यात्रियों के वस्त्र तो काँच के रेशों से ही बनाए जा रहे हैं।

विज्ञान समाचार

बार्डीन दूसरी बार नोबेल भौतिकी पुरस्कार जीते

जॉन बार्डीन को, जो इलिनॉय विश्वविद्यालय में भौतिकी एवं विद्युत-अभियंत्रिकी के प्रोफेसर हैं, इलिनॉय विश्वविद्यालय के अपने दो सहयोगियों सहित १९७२ के भौतिकी में नोबल पुरस्कार के लिए घोषित किया गया है।

रॉयल स्वीडिश ऐकैडिमी ऑफ साइंस ने घोषणा की है कि बार्डीन, लियो कूपर एवं जॉन राबर्ट श्रीफर को उनके सुपर कण्डक्टिविटी के सिद्धान्त के लिए इस सर्वोच्च पुरस्कार से अलंकृत किया गया जो सामान्यत: बी० सी० एस० सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

कूपर इस समय ब्राउन विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय में, प्राविडेन्स में हैं और श्रीफर पेन्सीलेवेनिया विश्वविद्यालय में हैं।

बार्डीन के लिए यह पुरस्कार अपने ढंग का दूसरा है। इसके पहले ट्रान्जिस्टर के विकास के लिए वे 1956 में भौतिकी में नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर चुके थे।

इस सम्मान की घोषणा से चांसलर जैक डब्ल्यू पेल्टसन अत्यन्त उत्सुक हुए और उन्होंने बार्डीन के साथ एक संवाददाता सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा—

"विश्वविद्यालय के इतिहास का यह एक गौरवशाली क्षण है। आपका संकाय एक नोबेल पुरस्कार विजेता से सुशोभित है, सदा गौरवपूर्ण है। एक ऐसे व्यक्ति का यहाँ होना जिसने एक ही क्षेत्र में दो बार नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया हो, अतुलनीय है।

जो सम्मान बार्डीन को मिला उससे वे कुछ विनम्रतापूर्वक मंच के पास गये और उन्होंने उपस्थित पत्रकारों से पूछते हुए कहा, "क्या आप चाहते हैं मैं यहाँ बैठ जाऊँ?"

सकारात्मक उत्तर प्राप्त होने पर वे बैठ गये और पूछा, क्या आप चाहते हैं कि मैं प्रश्नों के उत्तर दूँ अथवा मुझे एक वक्तव्य देना चाहिए?

अपने वक्तव्य के आरम्भ में उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि समस्त कार्य, जिस पर पुरस्कार प्राप्त हुआ है, इलिनाय विश्वविद्यालय में किया गया था जब श्रीफर स्नातक विद्यार्थी थे तथा कूपर पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च एशोशिएट थे।

"हम सभी सड़क के उस पार भौतिकी विभाग के पुराने भवन में कार्य करते थे।" उन्होंने कहा, "यह एक वास्तविक सहयोगी प्रयत्न था। सिद्धान्त के लिए तीनों व्यक्तियों का योगदान आवश्यक था।"

सिद्धान्त के विषय में पूँछने पर बार्डीन ने कहा कि मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि यह संक्षिप्त में बताना कठिन होगा क्योंकि इसमें 'अनेक धातुओं के क्वाँटम सिद्धान्त' का उपयोग है।

उन्होंने कई बार अपने सहयोगियों के महत्व की चर्चा की तथा एक स्थान पर उन्होंने कहा कि "मैं इस पुरस्कार से विशेष रूप से इसलिए प्रसन्न हूँ क्योंकि इससे उनको मान्यता मिली है।"

मैं एक भूतपूर्व विजेता के रूप में इस बात से भयभीत था कि मैं संभवत: उनकी मान्यता के रास्ते में बाधक होऊँगा। स्वीडिश एकेडिमी ने ऐसा करके इस परम्परा को तोड़ दिया।"

बार्डीन ने बताया कि बी० सी० एस० सिद्धान्त—(जो तीनों अन्वेषणकर्ताओं के नाम के अंतिम शब्द के पहले अक्षर पर बना है) वास्तव में 1957 में छ: महीने में विकसित हो गया था।

तीनों व्यक्तियों ने इससे अधिक काम किया किन्तु "प्रथम वर्ष में हम लोग कुछ अधिक कार्य नहीं कर पाये, जैसा कि सभी वैज्ञानिक खोजों में होता है," बार्डीन ने आगे कहा, "यह एक मात्र आरम्भ था।"

वह वैज्ञानिक उस समय हँस पड़ा जब इलिनॉय विश्वविद्यालय के एक स्टाफ सदस्य ने यह कहा कि वे संभवत: उस भौतिकीय-समस्या को बताना चाहेंगे जिसका आज सुबह उन्हें सामना करना पड़ा था।

"मेरे गैराज का दरवाजा स्वचालित है" बार्डीन ने आगे कहा, "और वह हमेशा ठीक काम करता था किन्तु आज प्रात:काल वह नहीं चला, उसकी मोटर अवश्य जल गयी होगी।"

जब वे दरवाजे के विषय में सोच रहे थे कि उसका क्या किया जाय, "मिस्टर वाइल्डहैगन (पब्लिक सूचना कार्यालय के आर्थर वाइल्ड हागेन) आ गये और मुझे अपनी कार में विश्वविद्यालय तक पहुँचा दिया।"

बार्डीन ने कहा कि ऐसा सोचते हैं कि सुपर कंडक्टिविटी के सिद्धान्त का उतना आर्थिक महत्व नहीं होगा जितना ट्रांजिस्टर के विकास का था। इसका सबसे संप्रत उपयोग सुपरकंडक्टिंग जेनरेटरों और मोटरों के विकास में होगा।

वर्तमान समय में यह सिद्धान्त विज्ञान की अन्य शाखाओं में प्रयुक्त हो रहा है।

उनको प्रथम नोबेल पुरस्कार कब मिला था? बार्डीन ने याद किया। उन्हें और उनकी पत्नी को पुरस्कार की जानकारी एक रेडियो समाचार प्रसारण में मिली।

इस बार सूचना प्राप्त होने का ढंग कुछ बदला हुआ था। "कल काफी रात गये एक स्वीडिश रेडियो के आदमी ने मुझसे सम्पर्क किया और कहा कि उसे जो कुछ होने जा रहा है, उसके विषय में सूचना प्राप्त हुई है।" बार्डीन ने मुस्कराते हुए बताया, "किन्तु वास्तव में मुझे उस पर विश्वास नहीं हुआ।"

उन्होंने कहा कि इस सम्पर्क के बाद वे जान गये कि पुरस्कृत होने के लिए वे एक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी होंगे। किन्तु पहली बार इस बात का विश्वास, कि वे वास्तव में पुरस्कृत हुए हैं, तब हुआ जब अगले दिन प्रात: काल छ: बजे उनसे पुन: संपर्क स्थापित किया गया।

इलिनॉय विश्वविद्यालय के फैकल्टी मेम्बर ने कहा कि वे अपनी पत्नी के साथ पुरस्कार लेने स्टाकहोम जायेंगे जो परम्परानुरूप एक सप्ताह तक चलने वाले समारोहों के बीच 17 दिसम्बर को दिया जाता है।

और, उन्होंने कहा उनके तीनों बच्चे भी सम्भवत: इस समारोह में भाग लेने उनके साथ स्टॉकहोम जायेंगे।

उनके बच्चे हैं डा० जेम्स बार्डीन, 33, येल विश्वविद्यालय में भौतिकशास्त्री, डा० विलियम बार्डीन 31, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्री और सुपुत्री, एलिजाबेथ ग्रेटाफ, 29, जिसका विवाह एम० आई० टी० के एक भौतिक शास्त्री से हुआ है।

बार्डीन को 1939 में प्रिंसटन विश्वविद्यालय से पी० एच डी० मिली। आजकल वे नेशनल ब्यूरो ऑफ स्टैन्डर्ड की मैटीरियल साइंस एडवाइजरी कमेटी को अपनी सेवायें प्रदान कर रहे हैं और वे प्रेसीडेन्ट्स एडवाइज़री काउन्सिल के 1958 से 1962 तक सदस्य थे। वे और उनकी पत्नी जेन, शैम्पेन में रहते हैं।

बृहस्पति ग्रह की यात्रा पर 'पायोनियर-एफ'

अमेरिकी उपग्रह 'पायोनियर-एफ' ने 25 मई को अन्तरिक्ष के ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया जहाँ इससे पूर्व मानव-निर्मित कोई वस्तु नहीं पहुँची थी। यह उपग्रह बृहस्पति ग्रह की यात्रा पर जा रहा है। उसमें कुल 21 महीने लगेंगे।

उस दिन 259 किलोग्राम वजन का अणुशक्ति चालित अन्तरिक्षयान 'पायोनियर-एफ' मंगल ग्रह की कक्षा को पार कर गहन अन्तरिक्ष में आगे बढ़ गया।

वैज्ञानिकों का कहना है कि 'पायोनियर-एफ' ने यह सफलता प्राप्त कर अन्तरिक्ष-विज्ञान के क्षेत्र में एक और नया रिकार्ड स्थापित किया है। अपनी इसी अंतरिक्षयात्रा में 'पायोनियर-एफ' एक के बाद एक नये रिकार्ड कायम करेगा। वैज्ञानिकों के अनुसार, 'पायोनियर-एफ अन्तरिक्षयान इस बात का पता लगाने में भी

सक्षम है कि क्या गहन अन्तरिक्ष में ऐसी बाधाएँ हैं जो अन्तरिक्षयानों और मानवों को सौरमण्डल के बाह्य क्षेत्र में जाने से रोक सकती है।

इस बात का पता लगाने के लिए राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन ('नैसा') के वैज्ञानिकों ने हाल में अन्तरिक्षयान को इस आशय के रेडियो सन्देश प्रेषित किये हैं कि वह अपनी सभी 11 वैज्ञानिक यन्त्र-प्रणालियों को सक्रिय कर दे।

मंगल ग्रह की ओर अग्रसर होते हुए 'पायोनियर-एफ' एक ऐसे क्षेत्र से गुजरा जिसका नाम वैज्ञानिकों ने 'ग्रेट गैलेकटिक घोल' रख दिया है क्योंकि कई अन्तरिक्ष-यान इस क्षेत्र में यात्रा करते हुए कठिनाई अनुभव कर चुके हैं। इस क्षेत्र का निर्माण धूल और मलवे के अत्यन्त घनीभूत रूप ग्रहण कर लेने से हुआ है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि बृहस्पति ग्रह की ओर उन्मुख 'पायोनियर-एफ' अन्तरिक्षयान की सारकाभ पट्टी यह 28 करोड़ किलोमीटर चौड़ा ऐसा क्षेत्र है जिसमें चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़े तथा बालू के आकार के कण सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं—से गुजरते हुए एक प्रकार की बाधाओं का अधिक बार सामना करना पड़ सकता है। 'पायोनियर—एफ' 8 जुलाई को मंगल ग्रह तथा बृहस्पति के मध्य स्थित इस खतरनाक क्षेत्र में प्रवेश करेगा। इस खतरनाक अन्तरिक्ष पट्टी को पार करने में उसे 7 महीने लगने की सम्भावना है।

अपोलो-12 की चन्द्र उड़ान की प्रमुख घटनाओं का कालक्रम

कालक्रम	तिथि	भारतीय समय	प्रक्षेपण के बाद व्यतीत समय घन्टा : मिनट
प्रक्षेपण	शुक्रवार 8 दिसम्बर	0823	00:00
पृथ्वी की कक्षा से चान्द्र उड्डयन पथ पर अन्तरिक्षयान की स्थापना		1144	03:21
चन्द्रमा के निकट पहुँचना और चन्द्र कक्षा में प्रवेश	सोमवार 11 दिसम्बर	0119	88:56
चन्द्र-यान का, जिस पर दो अन्तरिक्ष-यात्री सवार थे। कमाण्ड यान से पृथक्करण		2251	110:28
चन्द्रमा पर अवतरण	मंगलवार 12 दिसम्बर	0125	113:02
चन्द्रयान से बाहर निकल कर चन्द्रतल पर 7 घन्टे के संचरण का प्रारम्भ		0503	116:40
अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा चन्द्रतल पर 7 घन्टे का द्वितीय संचरण प्रारम्भ	बुधवार 13 दिसम्बर	0343	139:20

अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा चन्द्रतल पर 7 घन्टे का तृतीय संचरण प्रारम्भ	बृहस्पतिवार 14 दिसम्बर	0303	162:40
चन्द्रयान के ऊपरी खण्ड में चन्द्रतल से उत्क्षेपण	शुक्रवार 15 दिसम्बर	0426	188:03
चन्द्र कक्षा में ऊपरी खण्ड का कमाण्ड यान से पुन: संयोजन और अन्तरिक्ष-यात्रियों का उसमें प्रवेश		0623	190:00
कमाण्ड यान का चन्द्रकक्षा से बाहर निकलना और पृथ्वी की ओर वापसी यात्रा	रविवार 17 दिसम्बर	0503	236:40
अन्तरिक्षयात्री का कमाण्डयान से बाहर निकलना और यन्त्र-खण्ड से फिल्म-पेटिकाएं पुनर्ग्रहण करने के लिए अन्तरिक्ष में होकर संचरण	सोमवार 18 दिसम्बर	0103	256:40
महासागर में छपाक के साथ अवतरण	शुक्रवार 20 दिसम्बर	0054	304:31

नौसेना के लिए ट्रांसिस्टरयुक्त गायरो एम्पलीफायर

बंगलौर स्थित रक्षा अनुसंधान संस्थान, इलेक्ट्रानिक्स एवं राडार विकास प्रतिष्ठान ने समुद्री जहाजों की घूर्णाक्षि (गायरो) प्रणाली में सुधार लाने के लिए ट्रांसिस्टरयुक्त गायरो सम्पलीफायर तैयार किया है। इस तरह के पहले उपकरण का सफल परीक्षण बम्बई में नौसैनिक गोदी पर किया जा चुका है। अब नौसेना के जहाजों पर इसका परीक्षण किया जा रहा है।

इस समय भारतीय नौसेना में ब्रिटेन से आयातित गायरो सम्पलीफायर को वाल्व किस्म काम में लायी जा रही है।

इस समय प्रयुक्त होने वाले उपकरण की अपेक्षा यह नया उपकरण आकार में छोटा और मजबूत है। यह जहाज पर मौसम संबंधी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बराबर काम कर सकता है।

ज्ञान विज्ञान

अपोलो 17 के चन्द्रयान-खण्ड का चन्द्रतल से टक्कर

जब अन्तरिक्ष यात्रियों को अपोलो 17 के चन्द्रावतरणी यान के ऊपरी खंड की कोई आवश्यकता नहीं रही, तब इस खण्ड को पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, चन्द्रतल से टकराकर ध्वस्त कर दिया गया। आशा की जाती है कि चन्द्रतल से एक कैमरे द्वारा, जो भूतल से नियन्त्रित होगा, टकराहट की इस घटना का दृश्य तत्क्षण टेलिविजन द्वारा प्रसारित किया जायेगा।

यह अपूर्व टेलिविजन-प्रसारण चन्द्रतल से अन्तरिक्ष-यात्रियों के रवाना हो जाने के लगभग 8 घण्टे बाद, शुक्रवार, 15 दिसम्बर को भारतीय समय के अनुसार, दिन में 12 बजकर 5 मिनट पर, सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार पहली बार भूतल पर रहने वाले मनुष्य एक ब्रह्मांडीय पिण्ड पर किसी बड़ी वस्तु को गिरते हुए देखने में समर्थ हुए।

चन्द्रावतरणी यान के इस खंड का वजन 4,850 पौंड था। यह चन्द्रतल पर इतनी शक्ति से टकराया, जो लगभग 1,600 पौंड टी० एन० टी० की विस्फोट क्षमता के बराबर था।

चन्द्रमा पर जाने और वहाँ से पृथ्वी पर वापस आने के लिए अपोलो-17 अन्तरिक्षयान केप कैनेडी, फ्लोरिडा, से भारतीय समय के अनुसार, वृहस्पतिवार, 7 दिसम्बर को प्रातः 8 बजकर 23 मिनट पर अंतरिक्ष में प्रक्षिप्त हुआ। इस वापसी यात्रा में उसे कुल 13 दिन लगे।

अपोलो-17 के चन्द्रतल पर अवतरण करने वाले यान के निष्क्रिय ऊपरी खंड ('आरोहण खंड') की चन्द्र-तल से टक्कर की घटना प्रक्षेपण के 8 दिन बाद उस समय हुयी, जब अपोलो-17 के चन्द्रयात्री यूजीन एम० सनर्न और हैरिसन एच० (जैम्स) श्मिट चन्द्रतल से ऊपर आने और अपोलो-17 के तीसरे अन्तरिक्षयात्री रोनाल्ड ई० इवाल्स से फिर मिल जाने के लिए, जो उस समय चन्द्रकक्षा में परिक्रमा कर रहे कमांड यान में थे, इसका प्रयोग कर चुके थे।

जब ये अन्तरिक्षयात्री अपने उपकरण और संग्रहीत चन्द्र-शिलाओं को उतार कर तथा कमाण्डयान में रख कर स्वयं कमांडयान में प्रविष्ट हो चुके, तब उन्होंने 'आरोहण खंड' को जिसकी उनके लिए आगे कोई उपयोगिता नहीं रही, खोलकर पृथक् कर दिया। उसके बाद इस खंड को ह्यूस्टन, टैक्सास, स्थित समानव अन्तरिक्षयान केन्द्र से भेजे गये रेडियो-निर्देशों द्वारा उसके परिक्रमा पथ से बाहर निकाल कर एक ऐसे पथ पर ला दिया गया, जिस पर चलकर वह चन्द्रतल पर गिर कर ध्वस्त हो गया।

यह खंड चन्द्रतल के जिस स्थान पर टकराया, वह सरनन और श्मिट द्वारा चन्द्रतल पर छोड़े गये टेलिविजन कैमरे से लगभग 5, 6 मील दूर एक पहाड़ी की बगल में है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कैमरे और टक्कर वाले स्थान की यह दूरी ऐसी है, जिससे यानखंड के चन्द्रतल से टकराने पर उड़ने वाली धूल और यान के टुकड़े कैमरे तक पहुँचने और उसे तथा निकटवर्ती अन्य वैज्ञानिक उपकरणों को क्षति पहुँचाने में असमर्थ रहे।

यद्यपि अभी तक किसी ने चन्द्रतल पर इस तरह की टक्कर का दृश्य नहीं देखा है, फिर भी वैज्ञानिकों ने जले हुए ऐसे राकेट खंडों और चन्द्रयान खंडों की टक्करों से जिन्हें चन्द्रतल पर टकराने के लिए इससे पहले छोड़ा गया था, बहुत बड़ी मात्रा में सूचनाएं और जानकारियाँ एकत्र की है। इस प्रकार की टक्करों की चोट मुख्यतः चन्द्रकम्पन टोहक यंत्रों—'सीसगोनीटरों' द्वारा ली गयी थी। ये चन्द्रकम्पन टोहक यन्त्र चन्द्रतल पर किसी पदार्थ के गिरने के कारण उत्पन्न स्पन्दनों को पकड़ते हैं और तत्सम्बन्धी जानकारी पृथ्वी पर सम्प्रेषित करते हैं।

ये यन्त्र उन स्वतः चालित अनुसंधान केन्द्रों के संजाल के अंग हैं, जो अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा अपनी चन्द्रयात्राओं के दौरान चन्द्रतल पर स्थापित किये गये। इस संजाल ने चन्द्रतल पर उत्कर्षों की टक्करों से उत्पन्न स्पन्दनों को भी अंकित किया है। उसका प्रयोग फिर अपोलो-17 के 'आरोहण खंड' की चन्द्रतल से टक्कर के कारण उत्पन्न कम्पन्न को अंकित करने के लिए किया गया। आरोहरण-खंड की इस टक्कर से भी पहले, इस उड़ान के दौरान एक एस-4 बी राकेट खंड चन्द्रतल से टकराया। यह घटना उस समय हुई, जब उपर्युक्त राकेट खंड अपोलो-17 अन्तरिक्षयान को चन्द्रमा की ओर ले जाने वाले उड़ान-पथ पर पहुँच चुका था।

एस-4 बी की चन्द्रतल से टक्कर अन्तरिक्षयात्रियों के चन्द्रतल पर अवतरण से पहले हुई। अतः उस घटना का टेलिविजन चित्र प्रसारित करने के लिए चंद्रतल पर कोई टेलिविजन कैमरा चालू नहीं हो पाया।

जब अपोलो-17 के अन्तरिक्षयात्री अपने चन्द्रयान से बाहर निकल कर चन्द्रतल पर उतर आयें उसके बाद प्रथम 70 मिनट के दौरान चन्द्रतल से कोई टेलिबिजन चित्र प्रसारण सम्पन्न नहीं हुआ। सरनन और श्मिट द्वारा चन्द्रतल पर सम्पन्न यह प्रथम संचरण भारतीय समय के अनुसार मंगलवार, 12 दिसम्बर को प्रातः 5 बजकर 3 मिनट पर प्रारम्भ हुआ।

अपोलो योजना के अन्तर्गत चन्द्रतल पर अवतरण की अब तक जो 5 घटनाएँ सम्पन्न हो चुकी हैं, उनमें से सभी में उपकरण-कक्ष से बढ़ाकर चन्द्रयान के बाहर तक लाये गये थे एक टेलिविजन कैमरे द्वारा चन्द्रयान की अवरोहण निसैनी से चन्द्रतल पर अन्तरिक्षयात्रियों के उतरने के दृश्य प्रसारित किये गये थे। किन्तु अपोलो-17 में उस कैमरे को नहीं रखा गया।

अतः अपोलो-17 की चन्द्रयात्रा के दौरान, चन्द्रतल से टेलिविजन चित्र तब तक प्रसारित नहीं हुये, जब तक अन्तरिक्षयात्रियों अपनी चन्द्रकार—'ल्यूनर रोविंग विहिकिल' बाहर निकाल कर उस पर स्थापित कैमरे को चालू नहीं कर लिया।

उसके बाद, चन्द्रकार पर लगे कैमरे का प्रयोग चन्द्रतल के पूरे अन्वेषण के दौरान हुआ। उसे अन्तरिक्षयात्री चन्द्रतल पर छोड़ ही आए। चन्द्रतल पर स्थापित यह कैमरा अन्तरिक्षयात्रियों के चन्द्रतल से उड़कर ऊपर जाने के दृश्य को, और वहन में; आरोहण खंड के चन्द्रतल से टकराने के दृश्य को प्रसारित करने में समर्थ हुआ।

अन्तरिक्ष अधिकारियों ने कहा कि अन्तरिक्षयात्रियों के चन्द्रयान के बाहर निकलने और चन्द्रतल पर प्रारंभिक कार्यवाहियाँ करने के दृश्य को टेलिविजन कैमरे द्वारा पुनः प्रसारित करने से वैज्ञानिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं है। ये घटनाएँ अब सामान्य हो चुकी हैं। साथ ही, कैमरे को हटा देने से वजन में जो बचत होगी, उससे चन्द्रतल पर दूसरे नये और उपयोगी वैज्ञानिक उपकरण रखे जा सकेंगे, और अन्तरिक्षयात्री भी अपना वह समय वैज्ञानिक कार्यों में लगा सकेंगे, जो पहले कैमरे को चालू करने पर उन्हें लगाना पड़ता था। इन परिवर्तनों से कमांडयान के टेलिविजन सम्प्रेषण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उस पर अपना पृथक टेलिविजन कैमरा लगा है।

अपोलो-17 अमेरिका द्वारा सम्प्रति आयोजित चन्द्रावसरणी उड़ान है। अतः अन्तरिक्ष अधिकारी इस बात के लिए उत्सुक हैं कि इस उड़ान से सम्बद्ध साधनों का उपयोग अधिकतम वैज्ञानिक लाभ प्राप्त करने के लिए हो।

समुद्र में टिन खनन का प्रयास

समुद्र से अनेक रसायनों की प्राप्ति के बाद अब टिन धातु प्राप्त करना संभव हो रहा है।

जलगत विकास तथा तट से दूर खनन कार्य संबंधी अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में यह सूचना दी गई कि एक कम्पनी निकट भविष्य में एक ऐसे सचल अन्वेषण प्लेटफार्म को चालू करने वाली है जिससे इंग्लैंड के कार्नवाल तट से दूर समुद्र के छिछले पानी में टिन की खोज की जा सकेगी।

अब तक समुद्र के जल में 60 से भी अधिक तत्व और अनेक रसायन प्राप्त हो चुके हैं। कई रसायनों

और तत्वों की प्राप्ति एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। पृथ्वी का 70 प्रतिशत भाग समुद्र से ढका है। अतः यह स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक खनिज प्राप्ति के लिए अंततः समुद्र मंथन को बाध्य हो गए हैं।

(विज्ञान समाचार सेवा)

देश में विज्ञान परिसंवाद

पर्यावरण प्रदूषण पर परिसंवाद

केन्द्रीय जनस्वास्थ्य इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान भारतीय जल प्रदूषण नियंत्रण संस्था (इंडियन एसोसिएशन फार वाटर पाल्यूशन कन्ट्रोल) के सहयोग से जनवरी 9-11, 1973 को पर्यावरण प्रदूषण पर एक परिसंवाद आयोजित हुआ है। इसमें जिन विषयों पर विचार-विमर्श किया गया वे हैं (1) जल प्रदूषण (2) जल उपचार (3) मल उपचार (4) औद्योगिक बेकार पदार्थों का उपचार, (5) वायु प्रदूषण वियंत्रण और (6) बेकार ठोस पदार्थों को ठिकाने लगाना।

इस बारे में अधिक जानकारी डॉ० जी० के० सेठ, केन्द्रीय जन स्वास्थ्य अनुसंधान इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान, नागपुर-17 से प्राप्त की जा सकती है।

बैक्टीरिया जन्य निक्षारण

बैक्टीरिया जन्य निक्षारण पर एक परिसंवाद, दिसम्बर 1972 में राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगाशाला, जमशेदपुर में आयोजित किया गया। अधिक जानकारी डॉ० वाई० एन० त्रेहन और श्री एस० आर० श्रीनिवासन, राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला, जमशेदपुर 7 से प्राप्त की जा सकती है।

(विज्ञान समाचार सेवा)

कागजों के उत्पादन में क्रान्ति सम्भव

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहाट (असम) के वैज्ञानिकों ने बांस के स्थान पर मेस्ता पोधों से और रद्दी समाचार पत्रों से लुगदी उत्पादन की विधि विकसित की है।

मेस्ता जो बांस की तुलना में जल्दी बढ़ता है, लगभग 4-5 माह में ही पक जाता है और गर्म जलवायु में भी सरलता से पैदा किया जा सकता है इसकी वृद्धि हेतु जल की भी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। अनुमान है कि मेस्ता की पैदावार बढ़ाने से समाचार पत्र कागज उत्पादन में क्रांति सी आ जाएगी।

वैज्ञानिकों ने इसके अतिरिक्त यूक्लिप्टस के वृक्षों और गन्ने की खोई से भी समाचार-पत्रों के लिए कागज निर्माण की योजना पर अनुसंधान किया है। भारत को इसके लिए विदेशों पर निर्भर न रहना पड़ेगा। सरकारी क्षेत्र में नेपा पेपर मिल्स में ऐसे कागज के उत्पादन हेतु एक कारखाना कार्य कर रहा है पर देश की आवश्यकताओं को देखते हुए इसकी उत्पादित मात्रा नगण्य ही है।

इसके अतिरिक्त प्रयोगशाला ने उत्तम किस्म के चिकनाई रक्षित और ग्लेज कागजों के निर्माण के लिए एक नया प्रक्रम ढूंढ़ निकाला है।

ग्रीज-पफ कागज खाद्य पदार्थों की डिब्बाबन्दी व मशीन के पुर्जों पर लपेटने में बहुतायत से प्रयुक्त होते हैं पर विदेशों से इसके आयात के कारण यह मंहगा बैठता है। तद्यपि इसके निर्माण हेतु आवश्यक लुगदी का आयात किया जाता रहेगा पर भारत में इसके उत्पादन से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की अच्छी बचत हो सकेगी।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से समुद्री शैवाल से अगर-अगर का उत्पादन

केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर (गुजरात) के वैज्ञानिकों ने भारतीय समुद्री-शैवालों से अगर-अगर प्राप्त करने की विधि विकसित की है।

अगार अगार एक ऐसा पदार्थ है जिसका उपयोग चीन और जापान में खाद्य के रूप में जेली तैयार करने, रसा इत्यादि को गाढ़ा करने के लिए किया जाता रहा है। विदेशों और स्वदेश में इसे आइसक्रीम, जैली, जैम इत्यादि के उत्पादन के अतिरिक्त वस्त्र-उद्योग में साइजिंग सामग्री, पायसी कारक वस्त्रों की रंगाई व छपाई में गाढ़ाकारक इत्यादि के रूप में और चमड़े के

फिनिश जैसे कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। अनेक बढ़िया किस्म के आसंजक (एढ़सिव) उत्पादन में भी इसका बहुतायत से उपयोग होता है। सौंदर्य प्रसाधक, फोटोग्राफी और औषधि उद्योग में भी इसकी विविध उपयोगिता है।

अभी तक देश में यह विदेशों से आयातित (30 टन प्रति वर्ष) किया जाता था। पर प्रयोगशाला की सफलता के फलस्वरूप भारत में ही इसका उत्पादन किया जा रहा है। अनुसंधान की जानकारी चार ऐसे फर्मों को दे दी गई है जो इसके उत्पादन में रत है।

देश में अगार अगार उत्पादन हेतु कच्चा माल (समुद्री लाल शैवाल) यथा जेलीडियम और गैसीलैरिया की जाति दक्षिण के कोरल द्वीपों में बहुतायत से और सामान्य मात्रा में उड़ीसा के चिल्का लेक में पाये जाते हैं।

अनुमान है कि इसके कारखाने की स्थापना पर 571400 रु० की लागत और उत्पादन व्यय लगभग 10 रु० प्रति कि० ग्रा० आयेगा। आवश्यक संयंत्र देश में उपलब्ध है। 160 कि० ग्रा० प्रति दिन व स्तर की क्षमता वाले प्रायोजना की रिपोर्ट प्रयोगशाला में तैयार की गई है और इसे भारतीय राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम, नई दिल्ली-24 से प्राप्त की जा सकती है।

(विज्ञान सामाचार सेवा)

[पृष्ठ 3 का शेषांश]

जब E (v) घनत्व का ऊर्जा विकिरण ऐसे निकाय (System) में से गुजरे जिसमें $N_2 > N_1$ हो तो उत्सर्जित होने वाले विकिरण में v आवृत्ति के फोटॉनों की संख्या आपतित विकिरण में फोटॉनों की संख्या से अधिक होगी। इस क्रिया को विकिरण के उद्दीपन उत्सर्जन द्वारा तरंग प्रवर्धन करना कहते हैं। इस क्रिया को बराबर बनाये रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि बाह्य स्रोत से पम्पिग कर समष्टि अनुपात को उद्दीपन उत्सर्जन के स्तर पर बनाये रखा जाय।

जब परमाणु उत्तेजित अवस्था में से लौटते हैं तो उत्तेजित परमाणुओं का क्षय होकर कुछ देर के लिए मितस्थायी अवस्था में ठहर जाते हैं अतः मितस्थायी अवस्था में आसानी से उच्च समष्टि हो जाती है। इस प्रकार लेसर क्रिया के कम से कम तीन भिन्न ऊर्जा तल होने आवश्यक हैं।

यद्यपि उद्दीपन उत्सर्जन क्रिया का ज्ञान सन् 1917 में ही हो गया था लेकिन इस पर आधारित व्यावहारिक विधि लेसर को निर्माण सन् 1954 में ही संभव हो सका। लेसर की खोज का श्रेय कोलम्बिया विश्व विद्यालय के प्रोफेसर सी० एच० टॉउन्स को ही मिलता है।

लेसर के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए आप लेखक की राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भौतिकी की नई दिशाएँ' का अध्याय 5 देखिये।

श्याम लाल काकानी
प्राध्यापक भौतिक शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय
शाहपुरा जिला भीलवाड़ा
(राजस्थान)

कार्यालय विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-भवन, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-२

दिनांक 18 जनवरी, 1973

सूचना

विज्ञान-परिषद् द्वारा सूचित किया जाता है कि हिन्दी में विज्ञान की सर्वोत्तम पुस्तक के लेखक को परिषद् द्वारा 'स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक' देने का निश्चय हुआ है। यह पुस्तक 1970, 1971 या 1972 में प्रकाशित हुई होनी चाहिए। इस विज्ञापन द्वारा लेखकों को आमंत्रित किया जाता है कि वे अपनी पुस्तक की तीन प्रतियाँ निम्न पते पर 10 फरवरी, 1973 तक रजिस्ट्री डाक द्वारा भेजें। पुस्तक भेजने का पता :—

प्रो० कृष्णजी,
प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–2

पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार करें जिन्हें लेखकों ने न भेजा हो।

पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम तथा मान्य होगा।

पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा निर्णायकों की रचना पर पदक प्रदान नहीं होगा।

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक की नियमावली इसी अंक में आगे देखी जा सकती है।

भवदीय
(कृष्णजी)
प्रधान मंत्री
विज्ञान परिषद्, प्रयाग